॥ श्रीहरिः ॥

ॐ नमः श्रीमते हरिरामदासाय

श्रीहरिरामदासजी महाराजकी
अनुभव-वाणी

श्रीमदाद्यरामस्नेहिसम्प्रदायाचार्यपीठ
श्रीरामधाम, सींथल, बीकानेर (राज०)

26

॥ श्रीहरिः॥

ॐ नमः श्रीमते हरिरामदासाय

श्रीहरिरामदासजी महाराज की अनुभव-वाणी

आदि सम्पादक

रामस्नेहिसम्प्रदाय सींथलपीठ के
नवमाचार्य श्री १००८ श्री भगवद्दासजी महाराज

॥ श्रीहरिः ॥

ॐ नमः श्रीमते हरिरामदासाय

श्रीहरिरामदासजी महाराजकी अनुभव-वाणी

(अनुभव-गिरा उपदेशरत्नाकर)

द्वितीय संस्करण के सम्पादक

रामस्नेहिसम्प्रदाय आचार्यपीठ सींथल के

दशमाचार्य श्री १००८ श्री क्षमारामजी महाराज

व्याकरणायुर्वेदाचार्य एम०ए०

वाङ्मुख

श्री श्रीगोपाल गोस्वामी

प्रथमावृत्ति-१०००
विक्रम संवत्-२०२७

द्वितीयावृत्ति-१५००
विक्रम संवत्-२०५२

प्रकाशक
साधु तुलसीरामजी रामस्नेही
एवं
साधु रामपालजी रामस्नेही
सींथल (बीकानेर) राज०

मूल्य : सौ रुपये

प्राप्ति-स्थान

आचार्यपीठ
श्रीरामधाम
सींथल, (बीकानेर) राज०

श्री आनन्द आश्रम
बीकानेर (राज०)

मुद्रक
वाराणसी एलेक्ट्रानिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०
विशालाक्षी भवन, चौक, वाराणसी - २२१ ००१ (उ०प्र०)
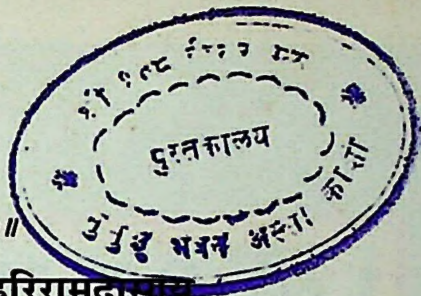
॥ श्रीहरिः ॥

ॐ नमः श्रीमते हरिरामदासाय

सार–'सबद'

हरिया रता तत का, मत का रता नांहि ।
मत का रता से फिरै, तांह तत पाया नांहि ॥

सुरता बकता मनमता, या जुग मांहि अनन्त ।
राम रता वेहद वता, हरिरामा कोई सन्त ॥

ग्यांन बिना किरीया निकुछ, निकुछ क्रिया बिन ग्यांन ।
हरीया किरीया ग्यांन मिल, यौ ही आतम ग्यांन ॥

हरीया ऐसा को मिलै, रामसनेही संत ।
अपना औगुन दूरि करि, औरन का मेटंत ॥

(प्रस्तुत वाणी से उद्धृत)

॥ श्रीहरिः ॥

ॐ नमः श्रीमते हरिरामदासाय

समर्पण

पूज्य श्रीआचार्यचरण!

भगवान के मुखसे विनिःसृत वेदों द्वारा
जिस प्रकार भगवान् की ही स्तुति
की जाती है उसी प्रकार आपकी
अनुभव-वाणी आप ही की
सेवामें सादर समर्पित है—

स्वेनैव तुष्यतु कृतेन स दीननाथः
को नाम तत्प्रति विनाञ्जलिमस्य कुर्यात्—

अकिञ्चन

भगवद्दास

पूज्यपाद अनन्त श्री विभूषित श्री हरिरामदासजी महाराज
(श्री रामस्नेहि सम्प्रदायाद्याचार्य सिंहस्थल)
के पावन पादुका - दर्शन
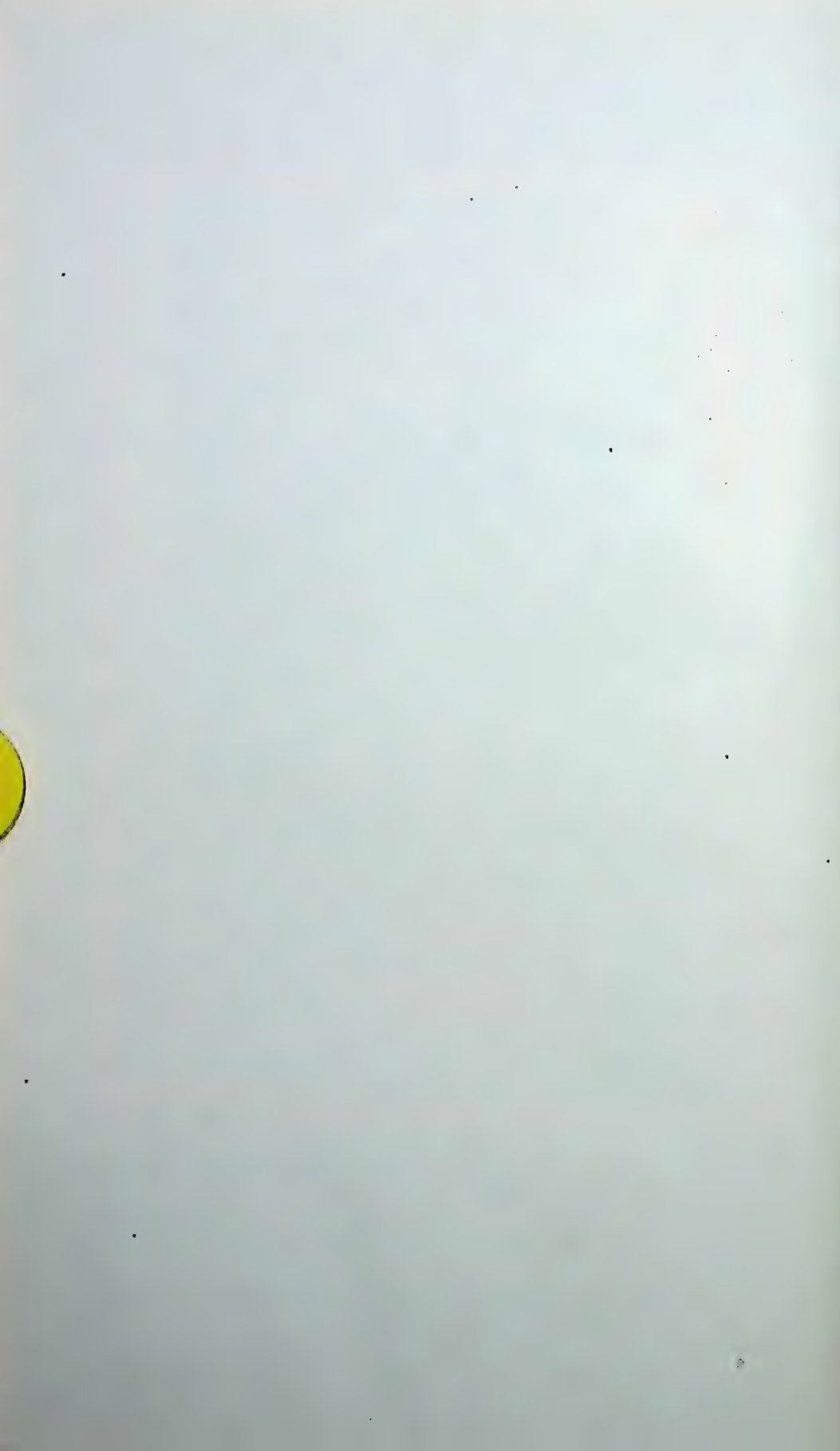
॥ श्रीहरिः॥

ॐ नमः श्रीमते हरिरामदासाय

आत्मनेपद

साध मिल्या सुख संपज्या, उपज्या उर आणंद ।
जन हरिराम कहै बलि जाऊँ, जिन मेट्या दुष दंद ॥

भारतवर्ष का यह परम गौरव है कि यहाँ विभिन्न स्थानों में, विभिन्न भाषाओं में भगवदवतार स्वरूप सन्त महापुरुषों का अवतरण होता ही रहता है। इस सन्दर्भ में मरुभूमि के परमदिव्य, तपोधन, महापुंरुष, रामस्नेहिसम्प्रदाय के परमाद्याचार्य श्री हरिरामदासजी महाराजश्री सींथल (बीकानेर) का नाम ससम्मान लिया जा रहा है।

आचार्यश्री के भाव, साधना, तपस्या, ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, योग, तितिक्षा, त्याग आदि का स्पष्ट दर्शन उनकी इस दिव्य वाणी में किया जा सकता है। ग्रामीण भाषा में लिखी होने पर भी साधना-क्षेत्र की ऊँची से ऊँची एवं गहरी से गहरी बात का खुलासा करने वाली इस वाणी से यह सिद्ध होता है कि परमात्मानुभव के लिए साधननिष्ठ ही होना आवश्यक है, जिससे स्वतः ही परमात्मविषयक ज्ञान स्फूर्त्त होकर जीवन को सरस बना देता है, जो सहज है। वाणीकार ने वैचारिक-स्वातन्त्र्य को आनुभविक निकष पर परख कर ही अङ्गीकार किया है, अतः यह सर्वोपयोगी एवं अत्यन्तोपयोगी है।

प्रस्तुत-वाणी का प्रथम प्रकाशन परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज की पावन प्रेरणा से मेरे परमधामस्थ गुरुवर्य्य सिंहस्थल पीठाधीश्वर श्री १००८ श्री भगवद्दासजी महाराज ने कठिन परिश्रम के साथ किया था। वह प्रकाशन सर्वजन प्रिय होने से दुर्लभ हो गया। अतः वाड्मुख सहित ज्यों का त्यों आफसेट प्रिंटिंग कर यह द्वितीय संस्करण तैयार किया गया है।

इस द्वितीय संस्करण में नवीनता इतनी ही है कि अन्त में श्रीरामस्नेही संप्रदाय सींथल-खेड़ाप का नादवृक्ष दिया है जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि परमाद्याचार्यचरण पूज्य श्रीहरिरामदासजी महाराज सींथल का साधन-तरु कितना बद्धमूल, विस्तृत, पुष्पित-पल्लवित एवं आश्रयवान् है, जिससे जगदातप की सहज निवृत्ति हो जाती है।

इस द्वितीय संस्करण के प्रकाशन के लिए संत-सेवी साधु श्री तुलसीरामजी रामस्नेही एवं साधु श्री रामपालजी रामस्नेही को भूरिशः धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने परमाद्याचार्य चरणों के प्रति परमेष्ट-भाववश इसके प्रकाशन का भार अपने पर लेकर हमें निश्चिन्त किया। वाराणसी वास्तव्य श्री राधेश्यामजी खेमका एवं श्री पुरुषोत्तमदासजी मोदी का भी आभारी हूँ जिन्होंने सस्ते दामों पर कागज एवं मुद्रण की व्यवस्था कर दी। इस पुनीत यज्ञ में अन्य सहयोगी महानुभाव भी स्मरणीय एवं प्रशंसनीय है। परमाद्याचार्य चरणों तथा समस्त महापुरुषों के पावन श्रीचरणों में यही प्रार्थना है कि इस दिव्य वाणी का सभी रसास्वादन करें एवं परमात्मतत्त्व का अनुभव कर परमानन्दित रहें।

मुझ औगुण का छेह नं कोई, तुझि गुणवन्ता सांई ।
जन हरिराम कहै जांहां राखौ, हरि तरुवर कीछांई ॥

आषाढ़ कृष्ण १३
(परमाद्याचार्य दीक्षा जयन्ती) सं०२०५२
आचार्य पीठ
श्रीरामधाम, सींथल, बीकानेर (राज०)

महात्मनां शिशुः
महन्त क्षमाराम शास्त्री
व्याकरणायुर्वेदाचार्य एम.ए.
रामस्नेहिसम्प्रदाय सींथल पीठाचार्य

॥ रामः ॥

सम्पादकीय

साध सकोमल सुष करन, दंद निवारन दूर।
हरीया अैसै साध कौ, नित भेटीजै नूर ॥

प्रत्येक व्यक्ति अपना प्रशस्त मार्ग चुनकर उसके द्वारा आत्म-कल्याण करना चाहता है। आत्मकल्याणके विभिन्न मार्गोंमें उत्थान-पतनको अवलोकन कर मानव किंकर्त्तव्य-विमूढ हो जाता है तब उसे केवल सत्य एवं अक्षुण्ण सनातन धर्मका ही अवलम्बन मिलता है जिसके द्वारा अनेक स्रोत निःसृत होकर जन-मानसको अपूर्व शान्ति प्रदान करते हैं।

भारतवर्षमें उस समय हिमालयसे लेकर कन्याकुमारी पर्यन्त सत्य दया दान अहिंसा आदिका साम्राज्य फैला हुआ था। प्रत्येक व्यक्तिकी आत्मामें आध्यात्मिक ज्ञान-भास्करकी दिव्य ज्योत्स्ना विद्यमान थी। ऐसा समय था, जिसकी आजके युगसे तुलना करनेपर गहन क्षोभ होता है।

किन्तु "अहो! गरीयान् खलु कालचक्रः" इस उक्तिके अनुसार समयने पलटा खाया और उसने एक नयी क्रान्ति उत्पन्न कर दी। चारों ओरके अधार्मिक झंझावातोंसे यह पृथ्वी आक्रांत हो गयी। वैदिक रीति व वैदिक धर्म दान पुण्य पूजा तीर्थ आदि सत्कार्योंपर अधार्मिक कुठाराघात होने लगा। उस समयका जनमानसहंस इन प्रहारोंसे बुरी तरह छटपटाने लगा, और आशंकासे भयभीत होकर त्राणके लिए किसी सुगम सरल व व्ययरहित उपासनाको संगठित रूपसे चाहने लगा।

'यदा यदा हि धर्मस्य' इत्यादि वाक्यानुसार ऐसे ही अवसरोंपर भगवान् संतोंके स्वरूपमें इस भूतलको कृतकृत्य करनेके लिए अवतरित होते आये हैं। संत और भगवान्में कोई अन्तर नहीं होता है। क्योंकि संतोंका व्यक्तित्व युग-युगसे भारतीय जनताको कर्त्तव्य एवं धर्मके क्षेत्रमें अनुप्राणित करता आ रहा है, संतोंके सात्त्विक चरित्रकी रश्मियोंमें वह

दिव्य शक्ति और अलौकिक कान्ति सन्निहित हैं, जो पाप-पंकनिमज्जित हृदयोंको भी पुनीत कर देनेकी सामर्थ्य रखती हैं।

अनेक संत विभिन्न प्रान्तोंमें अवतीर्ण हुए, और भक्ति भागीरथीका प्रवहण करने लगे, साथ ही तारक मंत्रकी उत्पत्ति, महत्त्व-रहस्य उपादेयता-प्रियता बताते हुए, वैष्णव शैवोंकी समानता बतलानेके लिए निर्गुण भक्तिका सदुपदेश देकर विश्वव्यापी ईश्वरके तत्त्वका बोध कराया।

श्रीसम्प्रदायाचार्य रामानुजस्वामीने सगुण भक्तिका विस्तृत प्रचार किया। आगे चलकर इसी सम्प्रदायमें रामानन्द स्वामी हुए, इनके अनुयायी रामानन्दीय वैष्णव कहलाने लगे। इनका क्षेत्र पूर्वी व मध्य भारत एवं राजस्थान रहा, इनके शिष्योंमें बीकानेर राज्यान्तर्गत दुलचासर ग्राममें संत श्रीजैमलदासजी महाराज हुए, जिनसे पूज्यपाद श्रीहरि-रामदासजी महाराजने दीक्षा ग्रहण की, और अपना साधना-क्षेत्र सिंह-स्थल ग्रामको ही प्रशस्त माना। अल्पकालमें तपोबलकी कीर्ति-कौमुदीका विस्तार होनेसे अनेक चमत्कारी शिष्य-प्रशिष्य हुए जिनसे रामस्नेही सम्प्रदायको दृढ़ संबल मिला।

संतोंका लक्ष्य विभिन्न सम्प्रदायोंके अधिष्ठाता बननेका नहीं था, किन्तु वे अपनी अमृतमयी वाणीके माध्यमसे, कलिकलुषित मानव-समुदायको पुनीत व शान्ति प्रदान करने हेतु, एवं धर्मका प्रचार करनेके लिए इस वसुधापर पधारे, तथा भविष्यमें भी परिस्थित्यनुसार पधारते रहेंगे। भक्त अनुयायी जनोंके लिए इन महापुरुषोंकी वाणी ही साक्षात् प्रतिमा स्वरूप है, जिसका आश्रय प्राप्त कर, प्रत्येक प्राणी आत्मनिःश्रेयस्की सरणीपर चढ़ता हुआ अपने शान्तिमय पदको निर्विघ्न प्राप्त कर लेता है। आचार्यों, संतों व आप्तमहापुरुषोंके मुखारविन्दसे विनिःसृत उपदेशको ही वाणीकी संज्ञा दी गई है, वाणी भक्ति-ज्ञान, वैराग्य-तितिक्षाके सम्पुटोंसे संसारकी असारताका दिग्दर्शन कराती है, अतः वाणीका महत्त्व वेद वेदान्त उपनिषद् गीता आदिसे कम नहीं माना जाता है, एतदर्थ यह पूजनीय और आदरणीय है। अतः इसको सभी विधिपूर्वक दण्डवत् प्रणाम करते हैं, और नित्य नियमानुसार इसका पाठ करते हैं।

श्रीजी महाराजके द्वारा भी ऐसी ही वाणीका सृजन हुआ जो युग-युगान्तरमें आर्त मानवता व त्रस्त जनताके लिए आत्मकल्याणका पथ

आलोकित करती रहेगी। अतः श्रीजी महाराजकी वाणी भी संत-साहित्य-के अध्यात्मक्षेत्रमें लोकप्रिय वाणियोंमें सर्वोत्तम है, इसलिए भक्त अनुयायी जन वाणीके द्वारा आचार्यचरणोंसे अपना अविच्छिन्न संबंध बनाये रखते हैं।

फल तर तैं तूटां पछै, बधै न विलंगै जाय।
गुर वेमुष नही निपजै, भावै गोविंद गाय॥

जिस प्रकार वृक्षसे फल तोड़ लेनेपर वह फल न तो वृद्धिंगत होता है, और न वह पुनः वृक्षसे संलग्न हो पाता है, इसी प्रकार गुरु-विमुख व्यक्ति ईश्वर-भजन करनेपर भी उन्नति व मोक्ष-प्राप्ति नहीं कर पाता। अतः वाणीके प्रति आकर्षित हो जाना भावुक भक्तके लिए स्वाभाविक है। मेरी भी वाणीके प्रति अटूट श्रद्धा होनेके कारण इसको प्राणवायुवत् जीवनीय मानता हूँ।

मेरे पूज्य गुरुचरण वैद्यकलानिधि श्रीचौकसरामजी म० ने वि० सं० १९८२ से १९९३ तकके चिकित्सा-कालावसानके समयमें आचार्यों-की वाणियोंका संग्रह किया, और अनेक प्रत्यूहोंको पार कर समयानुसार शुद्ध पाठ पुरःसर लघु बृहद् पुस्तकाकारमें उसे सम्पादनमें लाये, जिनमें सर्वोत्कृष्ट सम्पादन सचित्र 'श्रीरामस्नेहधर्मप्रकाश' हैं, जिसके लिये शतशः प्रशंसापत्र प्राप्त हुए। गुरुचरणने भावुक सज्जनों-की सुरुचिका भान करके केवल श्रीजी महाराजकी वाणीका शुद्ध संस्करण निकालनेकी प्रेरणासे प्रेरित होकर अनेक प्रतियोंसे संतोंसे पाठकी संगति बैठाकर समग्र वाणीकी शुद्ध प्रतिलिपि कर ली, कार्य पूर्ण हो ही पाया था कि आपके गुरुदेव परमधाम पधार गये, तब आपको आचार्य-गद्दीपर विशेषानुग्रहसे आसीन होना पड़ा, आचार्यपद प्राप्त होनेके बाद भी वाणी प्रकाशन हेतु पत्राचार मुद्रणालयोंसे होता रहा किन्तु आपने भी दो वर्षकी अवधिमें देहलीलाका संवरण कर लिया। आपके पश्चात् पूर्वरीत्यनुसार आचार्यपदपर श्रीरामनारायणजी महाराज आरूढ़ हुए, आपने भी गुरुमर्यादानुसार सम्प्रदायकी यशवृद्धिके साथ ही चिकित्सा कार्यसे भी आर्तजनोंको आरोग्यता प्रदान की। पूज्य गुरुदेवकृत शुद्ध वाणीकी प्रति आपके हाथमें रही जो सहसा किसीको हस्तगत न हो पायी, सं० २००४ विक्रमके चातुर्मासमें आपने कथा हेतु वह शुद्ध प्रति मुझे सहर्ष दे दी, मैंने इसकी प्रतिलिपि चातुर्मासमें ही पूर्ण लिखकर

अपनेको कृतकृत्य माना । वि० सं० २००५ के भाद्रपद पूर्णिमाको श्रीराम-नारायणजी म० ने आचार्यपद छोड़कर गद्दीपर मुझे बैठा दिया । वाणी प्रकाशनका सतत प्रयत्न करनेपर भी इस कार्यमें सुरसा मुखकी तरह अनेक बाधाएँ आती रहीं, और यह कार्य पूर्ण न हो पाया । हार्दिक इच्छा होनेके कारण चेष्टा कर ही रहा था कि, इसी बीच आचार्य श्रीहरि-दासजी (खैड़ापा) द्वारा मालूम हुआ कि श्रीजी महाराजके हाथसे लिखी हुई (स्वयंकी) वाणीकी एक प्रति दयालु पुस्तकालय खैड़ापेमें सुरक्षित है । वह पुस्तक हस्तगत करनेके बाद सिंहस्थल पुस्तकालयमें खोज की तो यहाँपर स्वयं श्रीजी महाराजकी लिखित २ प्रतियाँ मिलीं, इनके अतिरिक्त अन्य और प्रतियोंकी खोज की जाने लगी, इस अवधिमें श्रीरामनारायणजी म० परमधाम पधार गये, कार्यका रुक जाना स्वाभाविक ही था । कुछ समय बाद, पुनः कार्यारंभ किया ही था कि खैड़ापेके आचार्य श्रीहरिदासजी म० का भी साकेतवास हो गया । दोनों ही विभूतियोंके अदृष्ट हो जानेपर चित्तमें बेचैनी उत्पन्न हो गई और पुनः कार्य अवरुद्ध हो गया ।

कुछ समय बाद अनेक विज्ञ संत महानुभावोंके सहयोगसे 'संत साहित्य संगम' नामक संस्थाका निर्माण किया गया, जिसका अध्यक्षपद मुझे एवं निर्देशकपद गोस्वामी श्रीगोपालजीको दिया गया । अब निर्देशक महोदयने इस वाणीका संगमसे ही प्रकाशन करनेका निर्णय लेकर इन प्रतियोंके अतिरिक्त अन्य प्रतियोंकी पुनः खोज करके पाठ-भेदयुक्त प्रेस कापी देनेकी माँग की । कुछ समय बाद खैड़ापे जानेका अवसर मिला । वहाँ वाणी प्रकाशन सम्बन्धी वार्तालापके सहयोगसे वर्तमान आचार्य श्रीपुरुषोत्तमदासजी (खैड़ापा) म० ने दयालु पुस्त-कालयसे श्रीजी महाराजद्वारा लिपिकृत एक पुस्तक और दे दी । इस प्रकार स्वयं श्रीजी महाराजकी लिपिकृत ४ प्रतियोंके प्राप्त हो जाने-पर भी अन्य प्रतियोंकी यत्र-तत्र खोज करता रहा, यद्यपि इन सभी प्रतियोंमें पाठ प्रायः समान व लिपिकाल भिन्न था, एक प्रति सिंहथलमें अन्यसे लिपिकृत मिली जो इन प्रतियोंके साथ उपादेय रही (इन प्रतियोंका विवरण वाङ्मुखमें देखें) । इन पाँच प्रतियोंकी उपलब्धि हो जानेपर यह विचार पैदा होने लगा, कि क्या गुरुदेवकृत संशोधित पाठ रखा जावे या इन प्रतियोंका ? यदि इन प्रतियोंका पाठ रखा जावे तो किस प्रतिका ? विचार विमर्श एवं पत्राचारसे अनेक परामर्श मिले जिनमें अनुमानतः निम्न परामर्श थे ।

श्रीस्वामी रामसुखदासजी महाराजका संकेत था कि संशोधित पाठ रहे तो अच्छा है। श्रीस्वामी मंगलदासजीका विमर्श था कि लिपि-दोषको हटाकर भाव-सामंजस्यके अनुसार पाठ चयन किया जाय। श्रीपरशुराम चतुर्वेदी, डा० दशरथ शर्मा, डा० पारसनाथ तिवारी आदिकी राय थी कि मूल प्रतिका पाठ ज्योंका त्यों रखना चाहिए, जिसके द्वारा तत्कालीन रहन-सहन आचार-विचार प्रयुक्त भाषाका बोध होता है, जैसे सिष, मुरष, ग्यांन, म्रिघ इत्यादिको शिष्य, मूर्ख, ज्ञान, मृग आदि तत्सम न बनाया जाय। इत्यादि सत्परामर्श मिलनेके पश्चात् एक प्रतिको मूल मानकर अन्य प्रतियोंका पाठभेद देने हेतु 'क' 'ख' 'ग' 'घ' का रूप देकर पाठभेदयुक्त प्रेस कापी बनाकर पूर्ण की गई।

प्रेस कापी हो जानेपर अनेक मुद्रणालयोंसे पत्राचार एवं साक्षात्कार करनेपर भी मुद्रणका संयोग नहीं बन पाया। इसके कुछ समय बाद जब सं० २०२५ वि० में श्री स्वामी रामसुखदासजीका सिंहस्थलमें चातुर्मास सत्संग चल रहा था, तब गोस्वामीजीने चातुर्मास समाप्तिपर वाणी ग्रन्थ विमोचनका भी विचार व्यक्त किया। मैंने शीघ्र प्रकाशन हेतु वाराणसी जानेकी स्वीकृति दे दी, और गोस्वामीजी सारी सामग्री लेकर जानेको कटिबद्ध हो गये। वहाँके प्रेमी लोगोंने निवास व मुद्रण आदिकी सुव्यवस्था करवा दी। कार्य प्रारंभ हुआ, परन्तु प्रेस कापीका रूप ठीक न होनेके कारण मुद्रणमें कठिनाई आने लगी। अतः गोस्वामीजी वापस आ गये; आ जानेपर अवशिष्ट अंशोंकी पुनः प्रेस कापी बनाकर भेजी गई। इसके बाद परिशिष्ट, शब्दार्थ भेजनेमें विलम्ब हुआ जिसका हेतु दुर्भिक्ष कालकी बाधा रही।

अब भूमिकाका कार्य अवशिष्ट था जिसके लिए मैंने डा० पारस-नाथजी तिवारीको स्नेहभाक् मानकर उनसे भूमिका लिखवानेकी स्वीकृति ले ली। डा० साहबने बहुत समय पूर्व ही विस्तृत भूमिका लिखकर भेज दी थी। अतः मैं निश्चिन्त था। किन्तु जब भूमिका एवं अवशिष्ट समर्पणादि सामग्री प्रेसमें भेजनेका समय आया तो भूमिका, समर्पणादिके पत्र गुम पाये गये। संभवतः इधर-उधर प्रकाशन सम्बन्धी सामग्री लाने व लेजानेमें वे पत्र कहीं खो गये हों। ऐसी परिस्थितिमें समर्पणादिका कार्य तो दुबारा कर लिया गया किन्तु तिवारीजीसे पुनः भूमिका लिखवा कर मँगानेका मैं साहस न कर सका। एतदर्थ गोस्वामी श्रीगोपालजीसे कहा गया तो इन्होंने बड़े परिश्रमसे वाणीका आद्योपान्त आलोडन-

अपनेको कृतकृत्य माना। वि० सं० २००५ के भाद्रपद पूर्णिमाको श्रीराम-नारायणजी म० ने आचार्यपद छोड़कर गद्दीपर मुझे बैठा दिया। वाणी प्रकाशनका सतत प्रयत्न करनेपर भी इस कार्यमें सुरसा मुखकी तरह अनेक बाधाएँ आती रहीं, और यह कार्य पूर्ण न हो पाया। हार्दिक इच्छा होनेके कारण चेष्टा कर ही रहा था कि, इसी बीच आचार्य श्रीहरि-दासजी (खैड़ापा) द्वारा मालूम हुआ कि श्रीजी महाराजके हाथसे लिखी हुई (स्वयंकी) वाणीकी एक प्रति दयालु पुस्तकालय खैड़ापेमें सुरक्षित है। वह पुस्तक हस्तगत करनेके बाद सिंहस्थल पुस्तकालयमें खोज की तो यहाँपर स्वयं श्रीजी महाराजकी लिखित २ प्रतियाँ मिलीं, इनके अतिरिक्त अन्य और प्रतियोंकी खोज की जाने लगी, इस अवधिमें श्रीरामनारायणजी म० परमधाम पधार गये, कार्यका रुक जाना स्वाभाविक ही था। कुछ समय बाद, पुनः कार्यारंभ किया ही था कि खैड़ापेके आचार्य श्रीहरिदासजी म० का भी साकेतवास हो गया। दोनों ही विभूतियोंके अदृष्ट हो जानेपर चित्तमें बेचैनी उत्पन्न हो गई और पुनः कार्य अवरुद्ध हो गया।

कुछ समय बाद अनेक विज्ञ संत महानुभावोंके सहयोगसे 'संत साहित्य संगम' नामक संस्थाका निर्माण किया गया, जिसका अध्यक्षपद मुझे एवं निर्देशकपद गोस्वामी श्रीगोपालजीको दिया गया। अब निर्देशक महोदयने इस वाणीका संगमसे ही प्रकाशन करनेका निर्णय लेकर इन प्रतियोंके अतिरिक्त अन्य प्रतियोंकी पुनः खोज करके पाठ-भेदयुक्त प्रेस कापी देनेकी माँग की। कुछ समय बाद खैड़ापे जानेका अवसर मिला। वहाँ वाणी प्रकाशन सम्बन्धी वार्तालापके सहयोगसे वर्तमान आचार्य श्रीपुरुषोत्तमदासजी (खैड़ापा) म० ने दयालु पुस्त-कालयसे श्रीजी महाराजद्वारा लिपिकृत एक पुस्तक और दे दी। इस प्रकार स्वयं श्रीजी महाराजकी लिपिकृत ४ प्रतियोंके प्राप्त हो जाने-पर भी अन्य प्रतियोंकी यत्र-तत्र खोज करता रहा, यद्यपि इन सभी प्रतियोंमें पाठ प्रायः समान व लिपिकाल भिन्न था, एक प्रति सिंहथलमें अन्यसे लिपिकृत मिली जो इन प्रतियोंके साथ उपादेय रही (इन प्रतियोंका विवरण वाङ्मुखमें देखें)। इन पाँच प्रतियोंकी उपलब्धि हो जानेपर यह विचार पैदा होने लगा, कि क्या गुरुदेवकृत संशोधित पाठ रखा जावे या इन प्रतियोंका ? यदि इन प्रतियोंका पाठ रखा जावे तो किस प्रतिका ? विचार विमर्श एवं पत्राचारसे अनेक परामर्श मिले जिनमें अनुमानतः निम्न परामर्श थे।

श्रीस्वामी रामसुखदासजी महाराजका संकेत था कि संशोधित पाठ रहे तो अच्छा है। श्रीस्वामी मंगलदासजीका विमर्श था कि लिपि-दोषको हटाकर भाव-सामंजस्यके अनुसार पाठ चयन किया जाय। श्रीपरशुराम चतुर्वेदी, डा० दशरथ शर्मा, डा० पारसनाथ तिवारी आदिकी राय थी कि मूल प्रतिका पाठ ज्योंका त्यों रखना चाहिए, जिसके द्वारा तत्कालीन रहन-सहन आचार-विचार प्रयुक्त भाषाका बोध होता है, जैसे सिष, मुरष, ग्यांन, म्रिघ इत्यादिको शिष्य, मूर्ख, ज्ञान, मृग आदि तत्सम न बनाया जाय। इत्यादि सत्परामर्श मिलनेके पश्चात् एक प्रतिको मूल मानकर अन्य प्रतियोंका पाठभेद देने हेतु 'क' 'ख' 'ग' 'घ' का रूप देकर पाठभेदयुक्त प्रेस कापी बनाकर पूर्ण की गई।

प्रेस कापी हो जानेपर अनेक मुद्रणालयोंसे पत्राचार एवं साक्षात्कार करनेपर भी मुद्रणका संयोग नहीं बन पाया। इसके कुछ समय बाद जब सं० २०२५ वि० में श्री स्वामी रामसुखदासजीका सिंहस्थलमें चातुर्मास सत्संग चल रहा था, तब गोस्वामीजीने चातुर्मास समाप्तिपर वाणी ग्रन्थ विमोचनका भी विचार व्यक्त किया। मैंने शीघ्र प्रकाशन हेतु वाराणसी जानेकी स्वीकृति दे दी, और गोस्वामीजी सारी सामग्री लेकर जानेको कटिबद्ध हो गये। वहाँके प्रेमी लोगोंने निवास व मुद्रण आदिकी सुव्यवस्था करवा दी। कार्य प्रारंभ हुआ, परन्तु प्रेस कापीका रूप ठीक न होनेके कारण मुद्रणमें कठिनाई आने लगी। अतः गोस्वामीजी वापस आ गये; आ जानेपर अवशिष्ट अंशोंकी पुनः प्रेस कापी बनाकर भेजी गई। इसके बाद परिशिष्ट, शब्दार्थ भेजनेमें विलम्ब हुआ जिसका हेतु दुर्भिक्ष कालकी बाधा रही।

अब भूमिकाका कार्य अवशिष्ट था जिसके लिए मैंने डा० पारस-नाथजी तिवारीको स्नेहभाक् मानकर उनसे भूमिका लिखवानेकी स्वीकृति ले ली। डा० साहबने बहुत समय पूर्व ही विस्तृत भूमिका लिखकर भेज दी थी। अतः मैं निश्चिन्त था। किन्तु जब भूमिका एवं अवशिष्ट समर्पणादि सामग्री प्रेसमें भेजनेका समय आया तो भूमिका, समर्पणादिके पत्र गुम पाये गये। संभवतः इधर-उधर प्रकाशन सम्बन्धी सामग्री लाने व लेजानेमें वे पत्र कहीं खो गये हों। ऐसी परिस्थितिमें समर्पणादिका कार्य तो दुबारा कर लिया गया किन्तु तिवारीजीसे पुनः भूमिका लिखवा कर मँगानेका मैं साहस न कर सका। एतदर्थ गोस्वामी श्रीगोपालजीसे कहा गया तो इन्होंने बड़े परिश्रमसे वाणीका आद्योपान्त आलोडन-

विलोडन करके 'वाङ्मुख' लिखकर प्रस्तुत किया। अतः मैं दोनोंमेंसे एकका अपराधी व दूसरेका आभारी हूँ।

सम्पादन एवं प्रकाशन कार्यमें—संगमके निर्देशक श्री श्रीगोपालजी गोस्वामी; प्रेस कापी करनेमें—अध्यापक रामप्रसादजी स्वामी, केशरारामजी शर्मा, त्रिलोकचंदजी शर्मा; पाठभेद लिखानेमें—आशारामजी आ. रत्न; इधर-उधर परामर्शमें—रामदयाल शास्त्री; शब्दार्थ चयनमें—शिष्य क्षमाराम शास्त्री, नवलराम आयुर्वेदाचार्य आदिका सहयोग रहा है अतः ये सभी धन्यवादार्ह हैं। इनके अतिरिक्त जिन श्रीराम-संतोंका लम्बे समयमें सहयोग रहा उनके प्रति मैं कृतज्ञ हूँ।

अन्तमें उन प्रेमी लोगोंको हृदयपटलसे तिरोहित नहीं कर सकता, जिन्होंने अपनी नैष्ठिक अनुकरणीय आत्मीयता व उदारताका परिचय देते हुए इसके प्रकाशन सम्बन्धी असाधारण कार्योंके भारको वहन करके मुझे सर्वदाके लिए आभारी बना दिया। अतः इनका भगवच्चरणोंमें अनवरत स्नेह बना रहे—यही मेरी मंगल कामना है।

ग्रन्थके प्रूफ-संशोधनमें अपनी ओरसे पूरी सावधानी रखी जानेपर भी कुछ अशुद्धियाँ रह गयी हैं, जिनका 'शुद्धिपत्र' यहाँ आगे दिया जा रहा है। पाठक इसके अनुसार शुद्ध करके पढ़ें एवं और भी जो अशुद्धियाँ ध्यानमें आयें उनको सूचित करनेकी कृपा करें, जिससे अगले संस्करणमें उनको सुधारनेका प्रयत्न किया जा सके। इति शम्।

वसंत-पंचमी
सं० २०२६ विक्रम

हरिगुरु-चरणानुरागी
भगवद्दास

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४	२०	ज्ञान	ग्यांन
७९	८	धौंल हर	धौंलहर
११६	२३	कांमा	कांमी
११६	२४	नांहि । भयाह	नांहि भयाह ।
११७	१३	सूकरि	सूक'रि
१७६	७	हरीय	हरीया
३३९	२०	जू जवा	जूजवा
३४३	११	सहज	सहजन
३४६	१३	उलटिर	उलटि'र
३८६	१३	आदि नको०	आदि सगति नको०
३९८	२	सतगुर की	सतगुर सी
४२७	२३	उ तर	उतर
४३०	९	दावरे	दाव रे
४७१	१६	को सीटा	कोसीटा
५००	१७	के नेरीपाव	केनेरीपाव
५०८	११	जा य	जाय
५०९	८	मांहि ल्ड़ी	मांहिल्ड़ी
५१०	१०	केवेस	के वेस
५१०	११	निता नंद	नितानंद
५३३	३	विसन सांम	विसनसांम
५४८	१७	करनेमें	करानेमें
५५५	१६	......	(गो० तुल्सी०)
५६१	८	......	(संतदासजी)

विषयानुक्रम

(वाङ्मुख)

(वाणी)

प्रसंग

श्री सिंहस्थल राम धाम स्थित वाणी मन्दिर
एंव पाटगादी के पावन दर्शन

श्रीहरिः

वाङ्मुख

स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे ।

भारतीय आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचारधाराकी पृष्ठभूमिपर अवस्थित साधनाके मूल्यवान् तत्त्वोंको सारग्राही स्वभावद्वारा आत्मसात् करनेके उपरान्त स्वानुभवके निकषपर परीक्षित सारभूत साधना-पद्धति एवं विचारविशेष, सबद, साषी, अभंग, पद, वाणी आदिके रूपमें सुदीर्घकालसे सन्तोंद्वारा प्रतिष्ठापित होते रहे हैं। इसी स्थापनाको "सन्त-साहित्य" कहा जाता है।

सन्त-साहित्यमें उपनिषदों, महाभारत एवं पुराणों तथा आगमों आदि समग्र भारतीय वाङ्मयके सारभूत तत्त्व अनुस्यूत हैं। यद्यपि सन्तोंकी वाणीमें वे ही निगमागमविनिःसृत चिन्तन अनूदित हुए हैं. किन्तु उन चिन्ताधाराओंको जिन्हें पूर्वकालमें केवल उपादेय मात्र ही समझा जाता रहा था उन्हें जीवनकी उपयोगी व्यावहारिकतामें प्रतिष्ठापित करनेका श्रेय सन्त-वाणीको ही दिया जा सकता है, इसीलिए सन्त-साहित्यकी आध्यात्मिक विचारधारा शून्यमें न बहकर धरतीपर बहती है, सन्तोंकी उपदेशात्मक कथनी, अनुकरणीय करनी तथा व्यावहारिक रहनीकी प्राण-प्रतिष्ठा इसी मिट्टीपर हुई है। सन्तोंकी अन्तश्चेतना बहिः-प्रज्ञासे शून्य नहीं रही। उन्होंने जो आत्मदर्शन किया, वह आँखें मूँदकर नहीं अपितु आँखें खोलकर किया है।

सन्तोंका जीवन, साधक, सुधारक एवं उपदेशकका रहा है इसी-लिए सन्तोंकी साधना-पद्धति केवल मात्र शास्त्रमूलक नहीं है उसमें अनुभूतिद्वारा असिद्ध या अनुपयोगी ज्ञात होनेपर सिद्धान्त-वाक्योंको आश्रय नहीं दिया गया है। रूढिगत दुराग्रह वा कर्मकाण्डकी दुरूहतासे छुड़ाकर मानव जीवनको भेदभावरहित उच्च आदर्शपर स्थापित करना ही सन्त-साधनाका उद्देश्य प्रतीत होता है।

सामाजिक वर्गवाद, वर्णवाद तथा आश्रमवाद एवं ऊँच-नीच, छुआ-छूत, जाति-पाँति, वेष-भूषा, मत, पन्थ, सम्प्रदाय आदि सभी

प्रकारके भेद-विभेदसे लिप्त न होते हुए मानव मात्रको कर्मक्षेत्रमें ही आत्मसाक्षात्कारकी प्रेरणा देकर तथा जागतिक भोगोंसे स्वाभाविक वैराग्य करवाकर मानव मात्रमें तथा अपने आपमें आत्मदर्शन करना ही इनका ध्येय था, इन्होंने गीताके '*यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति*' को व्यावहारिक रूप प्रदान किया था।

वे भारतीय धार्मिक ग्रन्थोंको प्रामाणिक मानते हुए अवश्य प्रतीत होते हैं किन्तु उनके बन्धनोंसे बँधे हुए नहीं। उनकी मान्यता रही है कि आत्मबोध वैयक्तिक-चिन्तनका विषय है अतः उसकी उपलब्धि निर्बाध रूपसे सभीको समान सम्भव है। आत्मोपलब्धिमें किसी प्रकारका भेद-भाव उन्हें सह्य नहीं रहा और इस विचारको निर्भीक होकर उन्होंने स्पष्ट घोषित किया। इसी आत्मान्वेषणके परिवेषमें साकारोपासनासे विरतिका बीज निहित है और यहीं निर्गुण-धाराका उत्स है।

इसी निर्गुण-धाराको प्रवाहित करनेवाले अनेक निर्गुण-सन्त-सम्प्रदायोंकी परम्परामें 'रामसनेही सम्प्रदाय' भी प्रभावशाली स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है।

रामसनेही सम्प्रदायका प्रवर्तन राजस्थानमें सिंहथल, खैड़ापा, शाहपुरा और रैण इन चार पीठस्थानोंद्वारा माना जाता है। जिनमें खैड़ापा पीठ तो सिंहथल पीठका ही अनुयायी है; क्योंकि वहाँके पीठ-संस्थापक श्रीरामदासजी महाराज सिंहथल पीठ-संस्थापक श्रीहरिरामदासजी महाराजके ही पूर्ण-कृपा-पात्र शिष्य थे[1]।

यहाँ खैड़ापा पीठके विषयमें थोड़ी सी चर्चा कर लेना अप्रासंगिक नहीं होगा।

---

१. सतगुरु है हरिरामजी, मेरा प्राण अधार।
चौरासी का जीव था, शरणे लिया संभार॥

(श्रीब्रह्मजिज्ञास)

खोजत वर्ष पचीस मिले गुरु हरियानन्दा।
नव को वर्ष प्रसिद्ध शुक्ल वैशाष लहन्दा॥
ले इग्यारस अग्या रमता आए देशमज।
गाँव मेलाणै विराजकर सुमरण विध एकंत सज॥

(रामदासजीकी परची)
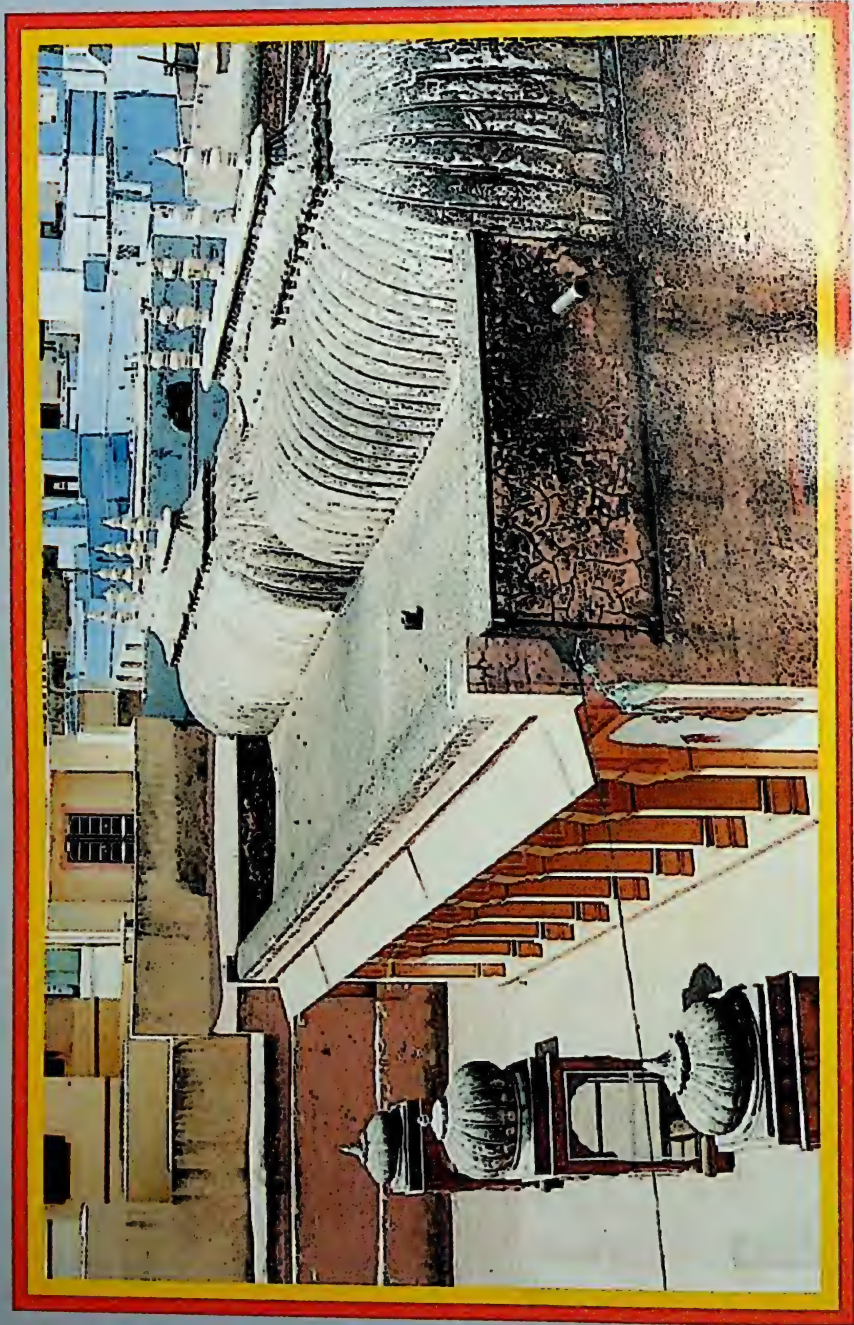
श्री सिंहस्थल राम धाम के देवल - दर्शन
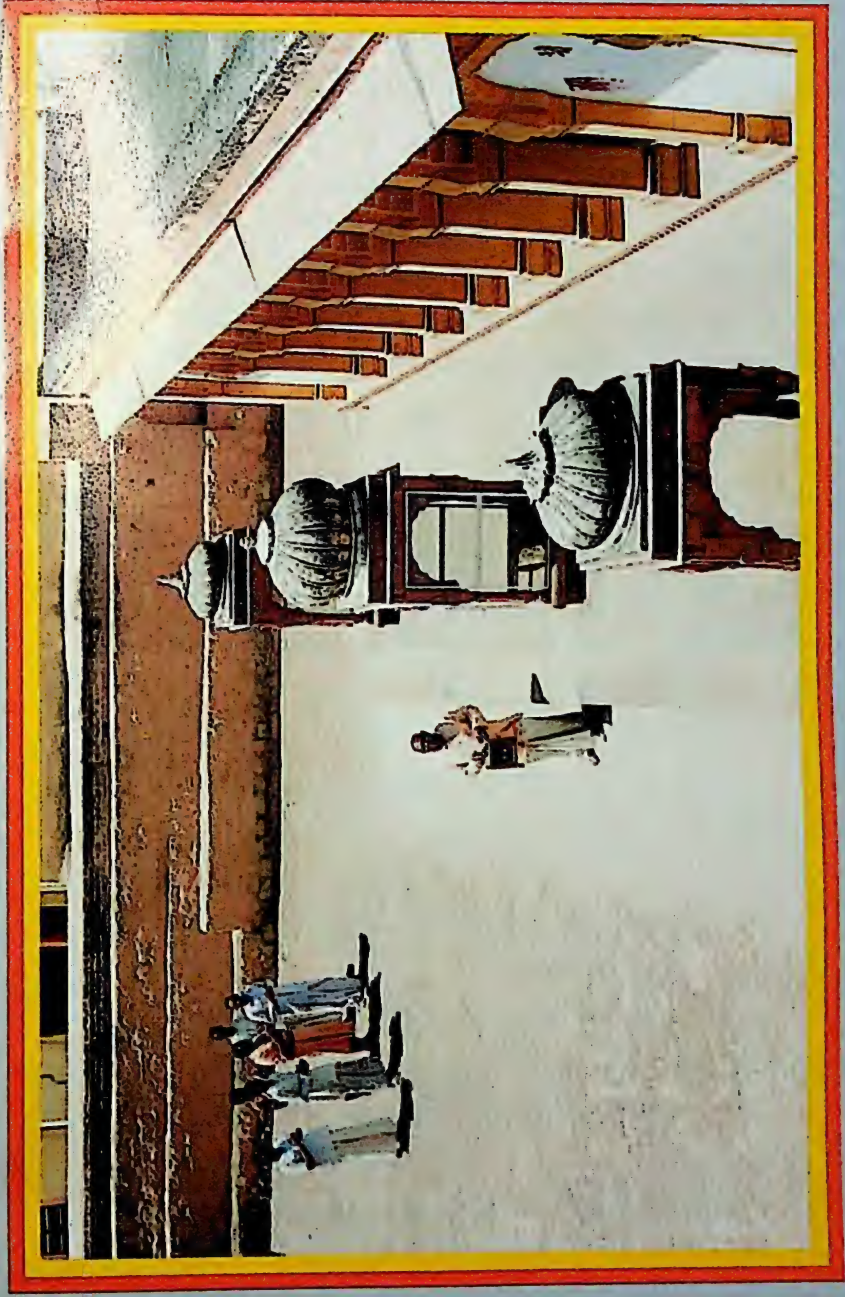
श्री सिंहस्थल राम धाम के देवल - आरती - दर्शन

श्रीहरिरामदासजी महाराजकी वाणी (रेषता) सुनकर[1] अशांत-चित्त श्रीरामदासजी (खैड़ापा) ने सिंहथलमें आकर श्रीहरिरामदासजी महाराजसे शुभ संवत् १८०९ वैशाख शुक्ला ११ को 'राम' मन्त्रकी दीक्षा ग्रहण की[2]। और गुरु-कृपासे दूसरोंको उपदेश देने तथा दीक्षा देनेकी आज्ञा भी इन्हें प्राप्त हुई[3]। गुरुजीने इनके पंथके प्रचार-प्रसार होनेका आशीर्वाद भी दिया[4]। श्रीहरिरामदासजी महाराजकी आज्ञासे तथा उन्हीं द्वारा बताये हुए स्थानपर खैड़ापाके रामधामकी नींव संवत् १८३४ फाल्गुन कृष्णा ४ को डाली गई थी[5]। श्रीरामदासजी महाराजका रामसनेही सम्प्रदायमें अद्वितीय स्थान है। अद्यावधि खैड़ापावाले सिंहथलको अपना गुरुद्वारा उसी प्रकार श्रद्धासे मानते हैं और गुरु-धर्म-मर्यादा-रीति-अनुसार खैड़ापाके महन्त आज दिन पर्यन्त सिंहथलमें सन्मुख ही विराजते हैं[6]।

---

१. अगम अग्याद मैं ग्यांन पोथी पढ्या, भरम अग्यांन कुं दूरि डारथा।
नांव निरधार आधार मेरै भया, गहर गुंमांन मन मोह मारथा॥
तीन चक चूरि चित चौथै गया, नाभ असथांन धुनि घमकारा।
सास उसास में वास त्रिभै कीया, रमि रह्या एक आतम यारा॥
सहज मैं सांम सुष रास अैसैं मिड्या, रूम मैं रूम ररंकार जागे।
दास हरिरांम गुरदेव परताप तैं, हदि कुं जीत बेहद लागे॥
(श्रीहरिरामदासजीकी अनुभव-वाणी, रेषता ३, रामस्नेह धर्मप्रकाश)

२. रामस्नेह धर्मप्रकाश, पृ. ११

३. दो उपदेस जिग्यासी आवै। गुरुपद दरस्यां गुरुपद पावै।
(श्रीरामदास० परची विश्राम १२)
राम भजन को दो उपदेसा। परा-परायण गावत शेसा।
(श्रीरामदासजीकी परची विश्राम १४)
श्रीगुरु आगम यौं मुख वरणै। तिरसी जीव तुम्हारे शरणै।
(श्रीराम० परची वि० १३)

४. रामदास पंथ चलै तुम्हारो। सत्य वचन यह सदा हमारो।
(वही, वि० १७)

५. शुभ संवत अठारहसौ प्रवान। भल वरष तिये चौके निधान॥
फागन वद चौथज नींव दीध। यह राम चौक कोठार कीध॥
(परची)

६. श्रीरामस्नेह धर्मप्रकाश, पृ० ११

अतः सिंहथल वा खैड़ापा ये दोनों पीठ भिन्न होते हुए भी अभिन्न हैं। हमारा विवेचन सिंहथल वा खैड़ापा तक ही सीमित है; क्योंकि इन दोनोंके सिद्धान्तों तथा साधनोंमें कोई वैमत्य नहीं है। शाहपुरा तथा रैण पीठकी चर्चा विषयान्तर है।

गुरु-परिचय

श्रीसम्प्रदायाचार्य श्रीरामानुज स्वामीकी परम्परामें प्रसिद्ध श्रीरामानन्दजीसे ग्यारहवीं पीढीमें कोडमदेसर (बीकानेर) के रामानन्दी वैष्णव महन्त श्रीचरणदासजी महाराजके शिष्य श्रीजैमलदासजी हुए, इनका गृहस्थका नाम जैतराम था। श्रीजैमलदासजी वैष्णव परम्परानुसार सगुण साकारकी उपासनामें बाल्यावस्थासे ही रुचि रखते थे। वे साँवतसर गाँवमें स्थित गोपालजीके मन्दिरमें सदा ही श्रीमद्भगवद्गीताकी कथा किया करते थे। वि० सं० १७६० के चातुर्मास्यके दिनोंमें एक अलौकिक दिव्यमूर्त्ति योगीराजने उपस्थित होकर जैमलदासजीसे पानी माँगा, जैमलदासजीने अत्यन्त विनय एवं श्रद्धापूर्वक जल लाकर महात्माको पिलाया। महात्माने श्रीजैमलदासजीको अगले गाँवका रास्ता बतलानेके लिए साथ ले लिया। कुछ दूर जाकर एक शमी वृक्षकी छायामें योगीने श्रीजैमलदासजीसे साधनाके विषयमें पूछताछ की और साकारोपासना तथा विभिन्न साधनोंमें व्यस्त जानकर फिर पूछा कि तुम किसी निश्चयपर पहुँचे हो? श्रीजैमलदासजीने उन्होंसे निवेदन किया कि आप ही कोई निश्चित मार्ग बतावें, इसपर महात्माने इनका शुद्ध अन्तःकरण देखकर ब्रह्म प्राप्तिके लिए योग-क्रिया सहित मूल तारक मन्त्रका उपदेश दिया और पूजन आदि सब कर्मकाण्ड छुड़ाकर वहीं अन्तर्धान हो गये। श्रीजैमलदासजी महात्माको अन्तर्हित देखकर आश्चर्यचकित हो गये। अनेक संकल्प-विकल्प करने लगे। कहते हैं—उसी समय आकाशवाणी हुई—"हे बालक! तू मेरी खोजमें इतना आतुर क्यों हो रहा है? साक्षात् सच्चिदानन्द अविनाशी पूर्णब्रह्म प्रकाशमान महापुरुष मैंने ही दिव्य रूप धरकर उपदेश और दर्शन दिए हैं और सत्य-सत्य कहता हूँ, आदि-अन्तमें तू मेरा ही जन है। संकल्प-विकल्प छोड़ दे। तेरा अन्तःकरण शुद्ध हो गया है। इसलिए ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिके लिए सगुण उपासनाको छोड़कर ध्यानावस्थित हो और राम राम रटता हुआ निर्गुण भक्ति कर"। इस आकाशवाणीको सुनते ही श्रीजैमलदासजीके चित्तमें शान्ति आ गई और भेष वा पंथका सारा झमेला

छोड़कर योगाभ्यासपूर्वक राम राम रटन करते हुए योगारूढ हो गए। समय-समयपर निर्गुण पद एवं वाणीका वर्णन भी आपने किया। दर्शनार्थियोंकी भीड़से बचनेके लिए आप दुलचासर गाँव चले गए परन्तु यहाँ भी दर्शनार्थी आने लगे तब आप रोड़ा गाँव चले गए। वि० सं० १८१० में रोड़ा गाँवमें ही आपने पाञ्चभौतिक शरीरका त्याग किया। इनके देहावसानके पश्चात् इनके एक रामदासजी नामक शिष्य देशाटन करनेके उपरान्त दुलचासरमें आए और वहाँ मन्दिर बनवाकर पूजामें तत्पर हुए। कुछ दिनों बाद किसीसे बोलचाल हो जानेसे अपने एक शिष्यको वहाँ (दुलचासर) छोड़कर रोड़ामें आ रहे। इन दोनों स्थानोंपर गद्दीधर होनेवाले रामानन्दी वैरागियोंमें (रामावत स्वामी) महन्त कहलाते हैं। गुरु-परम्परासे ये दोनों सिंहथलके गुरुस्थान हैं और सिंहथलमें जब दोनों स्वामीजी महाराजको पधराते हैं तब बधावणा भेट-पूजादि क्रम प्राचीन रीति अनुसार किया जाता है[1]।

श्रीहरिरामदासजी

श्रीजैमलदासजी महाराजसे वि० सं० १८०० आषाढ कृष्णा १३ को श्रीहरिरामदासजी महाराजने दीक्षा प्राप्त की[2]। श्रीजैमलदासजी महाराजका सर्वप्रथम परिचय रामसर गाँवमें उदैराम नामक व्यक्तिद्वारा श्रीजैमलदासजीका पद सुननेपर इन्हें हुआ। उसी समय उदैरामको साथ लेकर ये दुलचासर जा पहुँचे[3]। श्रीस्वामी जैमलदासजी सप्तपुरीके

---

१. रामस्नेह धर्मप्रकाशसे साभार उद्धृत पृ० १–३, तथा श्रीहरिरामदासजीकी परची।

२. हरीया संमत-सतरसै, वरष सईकै जानि।
तिथ तेरस असाढ वदि, सतगुर परी पिछानि॥
(घघर नीसांणी)

३. एक समैं गाम रामसर पधारत भए,
जहाँ मिले हरिके सनेही पद गाये हैं।
सुनि कै शब्द आप कह्यो वे पुरुष कहाँ,
जब वह जन स्वामी जैमल बताये हैं॥
सो तो विराजमान दुलचासर गाम माहिं,
महिमा की वेर वेर बहुत सराये हैं।
आरत तें तबै संग ह्वैके उदराम ही के,
ऐसे ही सुनत धाए जेज न लगाये हैं॥
(श्रीहरिरामदासजीकी परची)

समान उस दुलचासर गाँवमें श्रीमद्भागवतकी कथा कर रहे थे[१]। श्रीहरिरामदासजी महाराजने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया और पाँच प्रदक्षिणा देकर उनके चरण स्पर्श किए[२] और हाथ जोड़कर जिज्ञासु बनकर उनसे अनेक प्रश्न किए[३]। श्रीजैमलदासजीने सभी प्रश्नों और शंकाओंका निराकरण करते हुए अनेक प्रकारसे भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, क्रिया, योग, सुमिरन आदिकी विधियोंका विवेचन किया।

अज्ञानान्धकारका नाश होनेपर श्रीहरिरामदासजीने उनसे दीक्षा देनेका निवेदन किया[४]। शुद्धान्तःकरण शिष्यको देखकर श्रीजैमलदास-जीने वही तारक मन्त्र "राम"—जिसे गिरिजाके प्रति भगवान् शिवने कहा था—प्रदान कर दिया[५]।

---

१. स्वामी जैमल धिन सदन, जहाँ पहूंते जाइ।
पुर दुल्चासर भूमिका, सतपुरी सम ताइ॥
सतपुरी सम ताइ पुरी परसत फल एका।
हरि गुरु सन्त मिलन्त होहिं जिग पेंड अनेका॥
श्रीमुखसे भगवत माहात्म्य कह्यो भागवत गाइ।
स्वामी जैमल धिन सदन, जहाँ पहूंते जाइ॥
(श्रीहरि० परची)

२. दें पुनि पंच प्रदक्षिणा, अष्ट अंग परणाम।
स्वामी जैमलदास के, परसे पद हरिराम॥
(वही)

३. यों पद पंकज परस करि, हस्त जोर करि जास।
मन तन की सब वारता, प्रश्न करी गुरु पास॥
(वही)

४. दया करो गुरुदेव दयालं। मोकों करो तुम्हारो बालं॥
गुरु के गुण उत्तम कहे, सो गुरु मिले जु आप।
जुक्ति सहित अब दीजिये, राम नाम को जाप॥
(वही)

५. देत भये निज दास कों, दीक्षा जैमलदास।
परिक्षित जैसी शुक परम, ऐसी सुनि अरदास॥
जो गिरिजा प्रति शिव कह्यो, मंत्र सजीवन जास।
वह उपदेश जु अप्पियो, श्रीगुरु जैमलदास॥

व्यक्तिगत परिचय

श्रीहरिरामदासजीके पिताका नाम भागचन्द और माताका नाम रामी था। इनका निवासस्थान सिंहथल गाँव था। इनकी जाति अन्तः-साक्ष्यके आधारपर 'गरु' थी[1]। रामस्नेह धर्मप्रकाशमें[2] इनके पिता 'ब्राह्मण भाग्यचंद जोशी' थे—ऐसा उल्लेख है। वहींपर इन्हें अत्युग्र बुद्धि, बाल्यावस्थासे ही वेदान्तादि शास्त्रोंमें पारंगत तथा ज्योतिषके प्रथम श्रेणीके पण्डित तथा छोटी अवस्थामें ही योगांगोंमें योग्यता सम्पादन करनेवाला तथा ब्रह्मनिष्ठ गुरुका अभिलाषी कहा गया है[2]।

इन्होंने स्वयम्‌के विषयमें बहुत ही स्वल्प उल्लेख किया है। यदि कुछ उल्लेख उपलब्ध होते हैं तो वे गुरु एवं साधना आदिके प्रसंगोंके हैं, व्यक्तिगत जन्म-कर्मके नहीं।

स्वयम्‌के शब्दोंमें, गरु जाति, हरिराम नाम, पिता भागचंद, माता रामी, निवासस्थान सिंहथलसे अधिक परिचय प्राप्त नहीं है। गुरुके विषयमें अवश्य कई स्थानोंपर श्रीजैमलदासका नाम प्राप्त होता है[3]। कुछ स्थानोंपर जैमलराम[4] या जैमल भी है।

---

१. जाति पांति है गरू हमारी, नांव दीया हरिरांम।
पिता हमारै भागचंद, ग्रेह सींहथल गांम॥ ('ग' प्रति)
जाति गरू कै जनम हमारा, नांव दीया हरिरांम।
रांमी माता पिता भागचंद, ग्रेह सींहथल गांम॥ ('क' प्रति)
(ग्यांन परिछया, २२)

२. रामस्नेह धर्मप्रकाश, पृ० ४

३. हरीया जैमल्दास गुर, रांम निरंजन देव।
काया देवल देहरो, सहज हमारै सेव॥
(गुर सिष कौ प्रसंग, १८)
चेला जैमलदास का, इष्ट हमारै रांम।
उलटा चित चहोड़िकै, सुनि कीया विसरांम॥
(ग्यांन परिछया, २३)
जैमल्दास गरु परतापे, तोड्या भरम किंवारू।
जन हरीराम कहत है संतो, पद बत्तीस विचारू॥
(पद बत्तीसी, ३२)

४. सदगुरु जैमलरामजी, मेरे मस्तक मोड़।
जनहरीया धारण (वंदण) करे, हस्त कवल दोउ जोड़॥
(घघर नीसांणी की टिप्पणी, पृ० ३६३)

गुरु-परम्परा

श्रीजैमलदासजीसे पूर्वकी गुरु-परम्पराको स्पष्ट करनेके लिए श्रीराम-दासजी (खैड़ापा) का छप्पय बड़ा ही प्रामाणिक है उसमें श्रीरामानन्द—श्रीअनन्तानन्द—श्रीकर्मचन्द—श्रीदेवाकर—श्रीपूरणमालवि—श्रीदामोदरदास—श्रीनारायण—श्रीमोहनदास—श्रीमाधवदास मैदानी—श्रीसुन्दर-दास—श्रीचरणदास—श्रीजैमलदास—श्रीहरिरामदासकी क्रमशः नामावली देकर वन्दना की गई है[1]। इसके अतिरिक्त श्रीहरिरामदासजीकी परचीमें भी 'नाम सहित परनालिका' वर्णन[2] करनेके उद्देश्यसे एक मनहर छन्द मिलता है[3] उसमें भी उपरोक्त गुरु-परम्परा ही प्राप्त होती है।

सम्प्रदायका आविर्भाव

यह स्पष्ट है कि रामानन्दकी वैष्णव परम्परामें होनेके कारण इस सम्प्रदायके पूर्व पुरुषोंका सम्बंध मूलतः रामावत सम्प्रदायके वैरागी साधुओंसे रहा तथा वे सगुणके उपासक रहे; परन्तु श्रीजैमलदासजीको ब्रह्मज्ञान करवानेवाले दिव्य पुरुषद्वारा 'निर्गुण राम' का उपदेश ही

---

१. रामानन्द अनन्तानन्द कर्मचन्द देवाकर।
पूरणमालवि शिष्य दामोदरदास उजागर॥
नारायण मोहनदास माधव मैदानी।
ता सिष सुन्दरदास चरणदास निजज्ञानी॥
जिन जैमल प्रगटे नमो हरिरामदास के सब सुतन।
रामदास वंदन करत पदपंकज अनुचर यतन॥ १॥

२. मति उपजावन परम गुरु, उर प्रेरक निज सार।
नाम सहित परनालिका, वरणौं करि निरधार॥
(श्रीहरि० परची)

३. रामानन्द वन्दि दास वन्दन अनन्तानन्द
वन्दौं कर्मचन्द देवाकर सुखकन्दकों।
पूरण ही माल्वी जू दामोदरदास वन्दौं
नारायण रु मोहन वन्दौं तजि द्वंद्वकों॥
वन्दौं जन माधौदास सुन्दर चरणदास
जैमल हरिराम वन्दि वन्दौं ता नन्दकों।
वन्दौं हरिदेव मोतीराम रघुनाथ वन्दि
वन्दौं गुरुदेव गंग वारू मम जिन्दकों॥
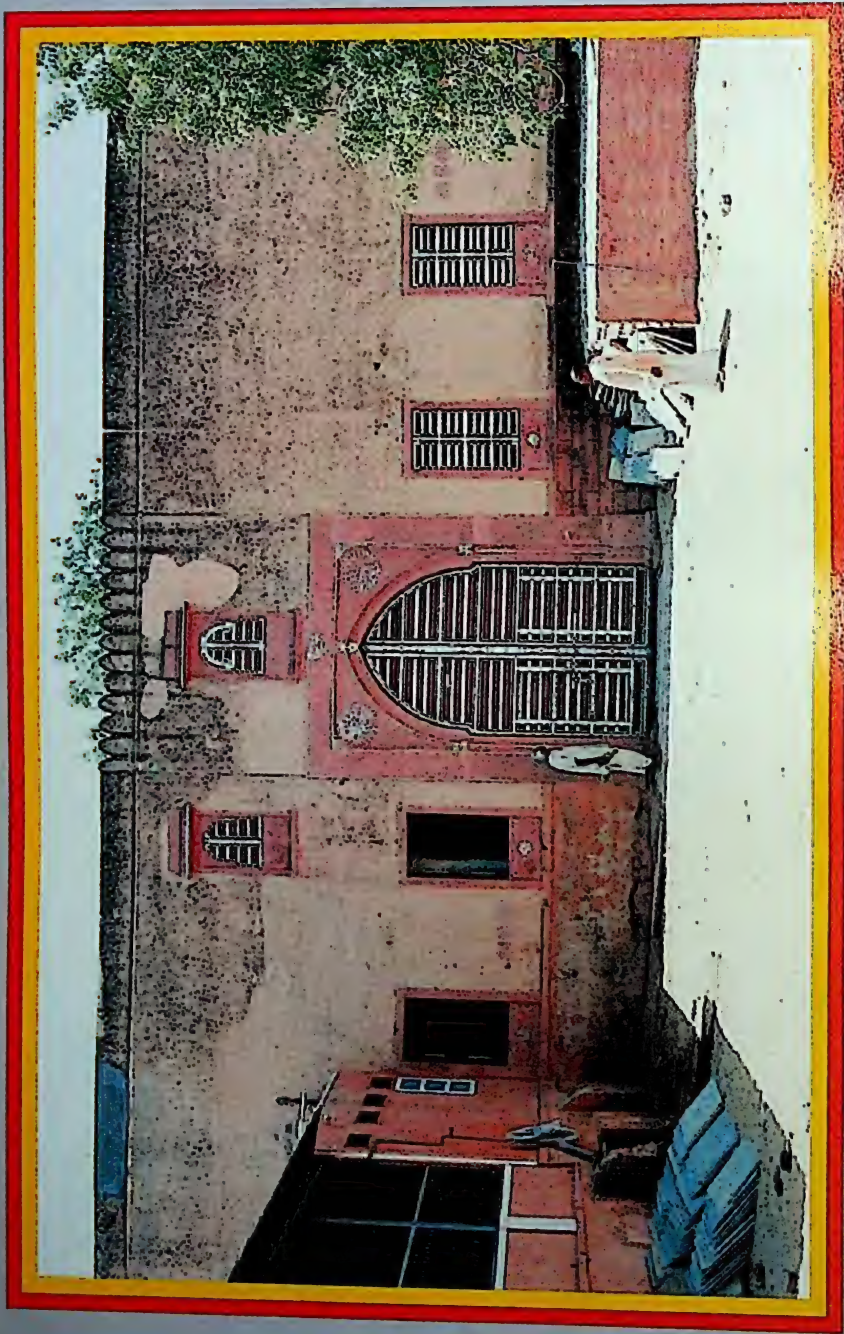
श्री सिंहस्थल रामधाम का मध्यद्वार
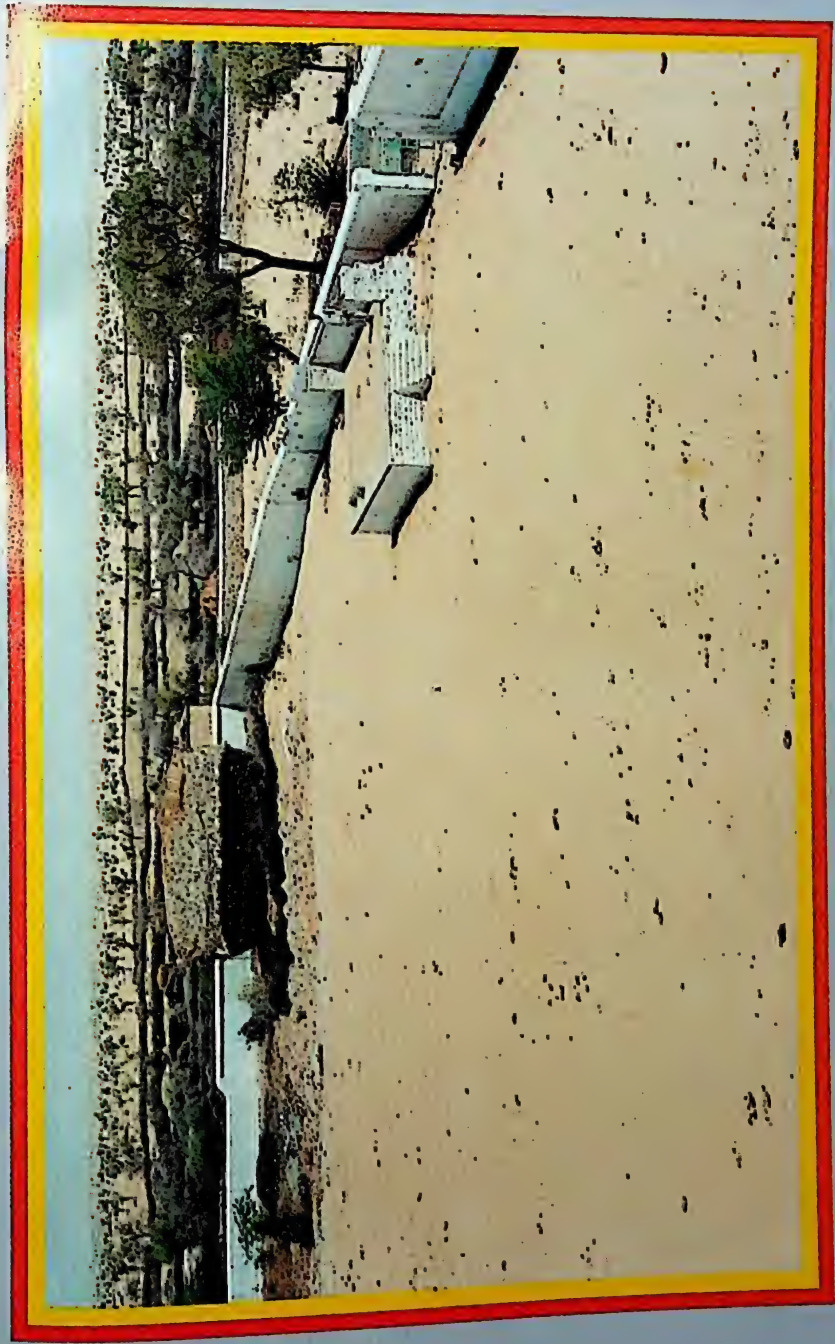
श्री सिंहस्थल रामधाम का विशाल सत्संग स्थल

सगुणोपासनासे निर्गुणकी ओर प्रवृत्त करता हुआ प्रतीत होता है और यही निर्गुणधारावाले रामसनेही सम्प्रदायका बीज है। यद्यपि श्रीजैमल-दासजीद्वारा पूर्वकालीन पद्धतिसे पृथक्करण होकर स्वतन्त्ररूपसे निर्गुणो-पासनाका बीजारोपण श्रीहरिरामदासजीके हृदयस्थलपर कर दिया गया था; किन्तु इसकी औपचारिक प्रतिष्ठा श्रीहरिरामदासजीद्वारा ही हुई, अतः सिंहथल "रामसनेही सम्प्रदाय" का आविर्भाव श्रीहरिरामदासजीसे ही माना जाता है, वैसे गुरु-परम्परामें जैमलदासजीतकका स्मरण प्रायः किया जाता है। इससे पूर्वकी गुरु-परम्परा केवल मात्र मूल पुरुषोंसे सम्बन्ध बतलानेके लिए ही प्रयुक्त की जाती ज्ञात होती है।

नामकरण

ऐसा उल्लेख हमें प्राप्त नहीं हुआ है जिससे यह सिद्ध किया जा सके कि हरिरामदासजीने इस सम्प्रदायका पूर्ण औपचारिकतापूर्वक यह नाम-करण किया हो अथवा इस सम्प्रदायके प्रवर्तनकी कोई घोषणा या प्रतिष्ठा की हो। न इसके प्रवर्तनका कोई दिन ही निश्चित ज्ञात होता है। और ऐसा प्रायः सर्वत्र सभी सम्प्रदायोंके विषयमें है। किसी भी सन्त-सम्प्रदायके प्रवर्तकने ऐसा समारम्भ नहीं किया है, तथापि सभी सम्प्र-दायके लोगोंद्वारा तत् तत् सम्प्रदाय-प्रवर्तकोंके नामसे प्रचलित सम्प्रदायों-को उनके द्वारा प्रवर्त्तित कहा जाता है।

निर्गुण रामकी रटना करनेवाले श्रीजैमलदासजीसे 'निर्गुण राम' की दीक्षा लेकर श्रीहरिरामदासजीने "राम राम" की रटना प्रारम्भ कर दी थी। इन्हीं दिनों उनके पास अनेक जिज्ञासु आते रहे थे। राम रामकी रटना करनी और कथनी दोनों रूपमें प्रकट थी तथा 'इनकी वाणीमें अनेक स्थानोंपर 'रामसनेही' शब्दका प्रयोग भगवदुन्मुख साधकके लिए प्रयुक्त हुआ है इसीसे सम्भवतः इनके अनुयायियोंको 'रामसनेही' कहा जाने लगा होगा। यही स्थिति परिविकसित अवस्थामें 'रामसनेही-सम्प्र-दाय' का रूप धारण करती है।

'रामसनेही' शब्द

श्रीजीकी वणीमें रांम और संनेह शब्द, करण, सम्बन्ध या अधि-करण विभक्तिके[1] वाचक होकर प्रयुक्त होनेके साथ समासयुक्त होकर

---

१. तीन लोक फिर देषीया, घर घर ठांमो ठांम।
हरीया रांम सनेह विन, किधू नही विसरांम॥
(अंग ५३ सा० १७)

संज्ञा 'रांम संनेही' के रूपमें भी प्रयुक्त हुए हैं[1]। इसके अतिरिक्त 'नांव संनेही' का प्रयोग भी कई स्थानोंमें प्राप्त होता है[2]। संनेह शब्दका व्यापक अर्थमें प्रयोग किया गया प्रतीत होता है; क्योंकि कई स्थानोंमें 'रांम' को 'यार' और 'दोसत' करनेवाला[3] भी 'रांम संनेही' का ही द्योतक है। 'रांम नांम' या 'रांम' में अनुरक्त या इनके रंगमें रंगा हुआ *'रांम रता'*

---

१. सबही कुं डर काल का, निडर न दीसै कोय।
हरीया जाकुं डर नहीं, रांम संनेही होय॥
(अंग ५४ सा० ५)

रांम संनेही बाहिरौ, सबै काळ की मार।
जनहरीया तिंह लोक मैं, चुणि चुणि करै सिकार॥
(अंग ५४ सा० ६)

हरीया अैसा को मिलै, रांम संनेही संत।
अपना औगन दूरिकरि, औरन का मेटंत॥
(अंग ५९ सा० १२)

सब जुग बिंध्या जेवरी, निरबंधन नही कोय।
जनहरीया निरबंध है, रांम संनेही होय॥
(अंग १९ सा० ११)

२. दुनीयां रोवै रोवणा, देष विड़ाणी षाल।
नांव संनेही बाहिरौ, हरीया होय विहाल॥
(वही, सा० ८५)

सदा संनेही नांव का, मन अनुरागी होय।
हरीया अैसे संत कुं, ताप न लागै कोय॥
(अंग ३९ सा० ४)

३. हरिरांम हम रांम का, रांम हमारा यार।
(हरिजस, १४३)

नरहरीया सो नर फकर, दोसत कीया रांम।
(कवित कुंडलिया, ३)

भी *'रांम संनेही'* की कोटिमें गिना गया है[1]। 'रांम' से रति, प्रीति, प्रेम, दोस्ती, सनेह, अनुराग करनेवाले, रामनामका सुमिरन करनेवाले, निर्गुण राममें लौ लगानेवाले, भक्ति करनेवाले आदि समस्त, व्यापक अर्थमें 'रांमसंनेही' शब्दसे गृहीत हैं। अनेक स्थानोंमें इस प्रकारके उद्धरणोंकी उपलब्धि होती है।

'रामसनेही' शब्दके इतिहासका भी संक्षेपमें पर्यालोचन यहाँ अपेक्षित है। स्पष्ट रूपमें इस शब्दका प्रयोग श्रीकबीरने सर्वप्रथम किया हुआ ज्ञात होता है। संत कबीर (खास तौरसे) समझाकर कहते हैं कि शून्य, अजपा और अनहद भी मर जाते हैं, किन्तु रामसनेही नहीं मरता है[2]। अर्थात् शून्यका साधक और अजपा-जाप करनेवाला तथा अनहद नाद सुनाई देनेकी स्थितिवाला योगी भी नष्ट-भ्रष्ट हो सकता है, किन्तु 'राम सनेही'का नाश नहीं होता। इसके पश्चात् सन्त भक्त श्रीतुलसीदासजीने 'रामसनेही' शब्दका प्रयोग श्रीरामचरितमानसमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रूपमें किया है। वे कहते हैं—संसार जिस रामको जपता है वह राम उस भरतको जपता है, अतः भरतके समान रामसनेही दूसरा कौन है[3]? यहाँ भी रामका जप करनेवाले, स्मरण करनेवाले, रामसे प्रेम, स्नेह और भक्ति करनेवाले भरतको 'रामसनेही' कहा गया है।

रामसनेही सम्प्रदायके विभिन्न पीठोंके सन्तोंकी वाणीका उपयोग इस शब्दकी प्राचीनता या प्रामाणिकताके लिए हमने जान बूझकर नहीं किया है।

सम्भवतः यह 'रामसनेही' शब्द उपरोक्त स्रोतोंसे ही ग्रहण किया गया है। जहाँ पूर्णतः निर्गुण, निष्कल परब्रह्मका वाचक 'राम' शब्द

---

१. सुरता बकता मन मता, या जुग मांहि अनंत।
रांम रता बेहद वता, हरिरामा कोई संत॥
(हरिजस, १४२)

रांम नांम रातौ नही, मातौ माया मोह।
हरीया का तौं चेड़सी, तातौ करि करि लोह॥
(छुटक, सा० २४६)

२. शून्य मरै अजपा मरै, अनहद हू मरिजाय।
राम सनेही ना मरै, कहँ कबीर समुझाय॥ (कबीर)

३. भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही॥
(अयोध्या० २१७।७)

कबीरद्वारा प्रयुक्त है तथा सगुण, सकल, साकार राम, जिन्हें भरत तत्त्वतः परब्रह्म समझते हैं उसी निर्गुण, निष्कल, परब्रह्म—रामसे सनेह करनेवालेको 'रामसनेही' कहा जाता रहा है। वही शब्द यहाँ गृहीत है।

रामसनेहीके लक्षण

श्रीजी महाराजकी स्वयम्‌की वाणीमें स्पष्टतः रामसनेहीके लक्षणों या कर्तव्य-कर्मोंका उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। वैसे प्रासंगिक रूपमें जो उल्लेख हैं वे एक आत्मसाधकका स्वरूप निर्दिष्ट करते हैं। श्रीहरि-रामदासजीको शिष्य (सिष) शाखा (साषा) का बन्धन या भय भी नहीं है[1]। उन्होंने जो वाणीका सृजन किया है वह कुछ तो 'गुरु-उपदेश' का और कुछ अपनी 'सुधि-बुधि' का प्रभाव है। तदुपरान्त भी उन्होंने किसी दूसरेके लिए नहीं, अपितु अपने मनमें समझते हुए अपने मनको ही उत्तर दिया है[2]। ऐसा स्पष्ट लगता है कि उन्हें किसी पन्थ या मतप्रवर्तक बननेकी इच्छा नहीं थी। वे केवल मात्र 'राम राम' कहनेवालेको ही श्रेष्ठ समझते हैं, इसमें सामान्य संसारी या किसी प्रकारका 'भेष' भेषधारी होना अपेक्षित नहीं है। वे तो दूसरोंकी परवाह किए विना अपने ही दिलको टटोलकर देखनेको महत्त्व देते हैं[3]। वे स्वयम् तत्त्व-विचारमें अनुरक्त थे, 'मत' से उन्हें कोई प्रीति नहीं थी। उनका विचार था कि मत-मतान्तरोंसे अनुबन्ध रखनेवालोंको 'तत्त्व' ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती[4]। वे स्पष्ट कहते हैं कि किसी मतसे लगाव न रखकर तत्त्वका चिन्तन करना चाहिए; क्योंकि 'तत्त्व' से ही अमरत्व प्राप्त होता है, मतसे तो नरकोंका निवास ही हाथ लगता है[5]। इसके

---

१. ग्यांन मगन गलतान जू, अगमी पार अपल।
सिष साषा निरभै भया, पाया गुर जैमल ॥ (छुटक, सा० ६६)

२. कुछीयेक सुधि बुधि आपनी, कुछीयेक गुरउपदेस।
जनहरिया मन समुझिकै, मन कुं उतर देस ॥ (ग्यांन परिछ्या, २१)

३. रांम कहै सेई भला, कहा जगत कहा भेष।
तैं औरां की क्या पड़ी, हरीया दिल मैं देष ॥ (अंग ४३ सा० ४)

४. हरीया रता तत का, मत का रता नांहि।
मत का रता से फिरै, तांह तत पाया नांहि ॥ (प्रसंग ९ सा० १)

५. हरीया तत विचारीयै, क्या मत सेती कांम।
तत वषाया अमरपुर, मत का जमपुर धांम ॥ (वही, सा० २)

अतिरिक्त इन्होंने तत्कालीन प्रचलित अनेक मतों या पन्थों एवं उनके तत्त्व-चिन्तनहीन अनुयायियोंको आडे हाथों भी लिया है जिनमें पण्डित (ब्राह्मण), जोगी, कनफटा, जंगम, संन्यासी, सिक्ख, जैन, जती, तेरहपंथी, समेघी, वैष्णव, मूर्तिपूजक, मुण्डी, जसनाथी-सिद्ध, बिश्नोई आदिके साथ कूण्डापंथीतक आते हैं। काजियों और मुसलमानोंको भी छोड़ा नहीं गया है। इस प्रसंगके लिए 'घट परचौ' नामक श्रीजीका ग्रन्थ द्रष्टव्य है। अतः ऐसे तत्त्व-विचारक सहज साधकसे यह आशा नहीं की जा सकती है कि वे किसी पन्थका प्रवर्तन करेंगे। किन्तु श्रीगुरु जैमलदासजी महाराजका संसारी जीवोंके उद्धारका आदेश[1] पालन करना भी आवश्यक था। सम्भवतः जब श्रीजी महाराज अपनी साधनामें दृढ होकर तल्लीन थे उन्हीं दिनोंमें इनकी सेवामें अनेक जिज्ञासुजन ज्ञानके लिए एवं मार्ग-दर्शनके लिए आने लगे थे। श्रीजी महाराजने जो सत्य उपदेश एवं आज्ञा दी उसे सुनते ही कच्चे-कच्चे साधक तो सब भाग खड़े हुए, किन्तु जो सच्चे थे वे अपने पूर्व संस्कार-वश उनके चरणोंमें गिरकर 'रामसनेही' हो गये[2]। यह उल्लेख परवर्ती सन्त श्रीगंगारामके शिष्य जैरामजी (सिंहथल) द्वारा रचित श्रीहरि-रामदासजीकी परचीमें प्राप्त होता है। श्रीहरिरामदासजी महाराजको

---

१. जग में बहुत जीव चेतावो। घर बैठा हरि के गुन गावो॥
स्वामी ऐसी आज्ञा कीन्ही। जब सेवक मस्तक धर लीन्ही॥
(श्रीहरि० परची)

२. ऐसी बात सुनी नर नारी। सब के भाव ऊपज्यो भारी॥
आज्ञा लैन बहुत शिष आए। स्वामीजीसे वचन सुनाए॥
....
तुम हो जत मत शुकदे जैसा। पुनि बद्रीनारायण तैसा॥
अरु कबीर जैसा जन पूरा। शील सधीर अडिग मति सूरा॥
ऐसे कहत भये जिज्ञासी। दो आज्ञा स्वामी सुखरासी॥
स्वामी बात साच फरमाई। जामें कसर न राखी काई॥
आज्ञा बहुत कठिन है भाई। जो लेसी सो शीश कटाई॥
जब साचा सो चरणां लागा। काचा सुनत दूरि डर भागा॥
पूरब संस्कार तिन देही। सो जन हूवा राम सनेही॥
(वही)

जगत्से कोई आशा नहीं थी। वे शून्य समाधिमें निवास करते हुए निरंजन रामके अंजनसे रंजित रहनेवाले थे, तथापि गुरु-आज्ञासे जीवोंके उद्धारके लिए उपकारी भावसे नामकी दीक्षा देनेका उल्लेख मिलता है[१]। इस प्रकार इन्होंने अनेक जिज्ञासुजनोंको राम नाम प्रदान करके आत्म-स्वरूपका ज्ञान करवाकर निर्भय बनाकर निहाल किया था[२]। परचीमें श्रीरामदासजीके सर्वप्रथम इनकी शरणमें आनेपर नापासरमें उन्हें बहुत-से रामसनेही मिलनेका उल्लेख है[३]। तथा श्रीरामदासजीद्वारा दीक्षार्थ निवेदन करनेपर श्रीजी महाराजद्वारा उनके भेष और आचरण आदिको रामसनेहीके अनुपयुक्त बताया गया है[४]। इन प्रसंगोंसे यह ज्ञात होता है कि श्रीजी महाराजके अनुयायी उनके समयमें ही राम-सनेही कहलाने लगे होंगे अथवा उनके अनुयायियोंका निर्देश उत्तरवर्ती सन्तोंने 'रामसनेही' शब्दसे किया है।

श्रीहरिरामदासजी म० के शिष्य श्रीरामदासजी म० (खेड़ापा) ने स्वकृत ग्रन्थ 'रक्षाबत्तीसी' में अपनेको 'रामसनेही' कहा है[५]। यह विचारणीय है कि श्रीजी म० के उत्तराधिकारी श्रीहरिदेवदासजी म० की बृहन् वाणीमें 'रामसनेही' शब्दका प्रयोग कहीं भी प्राप्त नहीं होता है और न ही श्रीजी म० के शिष्य श्रीनारायणदासजी म० की वाणीमें उपलब्ध है। इनकी वाणीमें प्रासंगिक अस्पष्ट रूपमें एक प्रयोग है[६]।

---

१. स्वामी के जग की नहिँ आसा। सतासमाधि शून्यमें वासा ॥
रामनिरंजन अंजन राता। पर उपकार नाम का दाता ॥
(श्रीहरि० परची)

२. राम राम हरिराम बगसिकै सबको किये पार भंव तीर।
जो मिलिये सो हुये आप सम अभयदान ले रहे न कीर ॥ (वही)

३. रामसनेहिन से जब रामा बोलत भये सु ऐसे वैन। (वही)

४. स्वामी कह्यो वचन जब ऐसे। तुम से दीक्षा पले जु कैसे ॥
तुम तो औघड़ रूप बने हो। जटा जूट बहु तार तने हो ॥
रामसनेही यह नहिँ राखै। राम नाम रसना से भाखै ॥ (वही)

५. रक्षाबत्तीसी राम की, जानत हरि गुरु दास।
रामसनेही रामदास, आनंद अगम विलास ॥ (श्रीरामदास० रक्षाबत्तीसी)

६. दिल्ल की दुर्मति दूर कर बावरे, राम ही राम सों नेह लाई ॥
(नारायणदासजी म० रेखता)

श्रीदयालुजी महाराज (खेड़ापा) की वाणीमें रामसनेहीके लक्षण विस्तारपूर्वक कहे गये हैं। सर्वप्रथम निर्मल चित्त तथा रामसे सनेह होना उसकी पहली पहचान है एवं हृदयका कोमल, मुखसे प्रेममय प्रवाह (वाणी) वाला, दर्शनसे प्रसन्न होनेवाला, श्रद्धापूर्वक नित्य नियममें रहनेवाला, श्रद्धावान् तथा दास्य भावसे युक्त होना रामसनेहीका लक्षण है। सत्यवाक्, गुरुप्रदत्त ज्ञान तथा भक्तिमें तत्पर एवं देह, गेह आदि सम्पत्तिको भगवान्को समर्पण करनेवाला वास्तवमें मन, वचन और कर्मसे 'रामसनेही' होता है[1]।

रामसनेहीके लक्षणोंमें अंतरंग और बहिरंग दोनों ही प्रकारके लक्षण आ गये हैं; किन्तु फिर भी विशेष रूपसे उनके आचार-विचार, रहन-सहन आदिका भी वर्णन उपलब्ध होता है। तदनुसार 'रामसनेही' को अपना खान, पान और पहरान ये तीनों निर्मल (स्वच्छ) रखनेका संकेत है। उसको आहार सात्विक लेना चाहिए तथा किसी प्रकारकी हिंसा नहीं करनी चाहिए; पानीको छानकर पीना चाहिए तथा सभी जीवोंपर दया रखनी चाहिए। ज्ञानपूर्वक विचार प्रकट करना आवश्यक है तथा असत्य भाषण किसी भी दशामें न करे। श्रेष्ठ साधुजनोंकी संगतिमें रहना, अपने प्रण और व्रतोंको दृढतापूर्वक निभाना, प्रेम एवं नेम सहित दास-भावसे तन-मन-धनका उपयोग करना 'रामसनेही' की रहनी है[2]।

---

१. मिलतां पारख प्रसिद्ध विमल चित रामसनेही।
उर कोमल मुख निर्मल प्रेम प्रवाह विदेही॥
दरसण परसण भाव नेम नित श्रद्धा दासा।
साच वाच गुरुज्ञान भक्ति प्रणमत इक आसा॥
देह गेह सम्पति सकल, हरि अर्पण परमानिये।
जनरामा मन वच कर्म, रामसनेही जानिये॥
(श्रीदयालु महाराज)

२. खान पान पहरान निर्मली दशा सदाई।
सात्विक लेत आहार हिंसा करिहै न कदाई॥
नीर छाण तन वरत दया जीवां पर राखै।
बोलै ज्ञान विचार असत कबहू नहि भाखै॥
साधु संगति पण व्रत सुदृढ, नेम प्रेम दासा लियां।
राम सनेही रामदास, तन मन धन लेखै कियां॥ (वही)

श्रद्धासे युक्त होकर राम रामका सुमिरण करना, गुणग्राही एवं स्वयम् गुणवान् होना, अपने देहादिको भगवान्के निमित्त रखना; अफीम, तम्बाकू, भाँग, मद्य, मांस, द्यूतकर्म (जुआ) का त्याग करना तथा पर-स्त्रीको माता समझना रामसनेहीका कर्त्तव्य है। सत्यता, शील, क्षमा को धारण करना तथा रामकी भक्तिमें दृढतापूर्वक लगा रहना और निरंतर राम रामका सुमिरण करना ही 'रामसनेही' का मत है[1]।

एक स्थानपर इसी प्रकारके आचरणोंको 'रामसनेहीकी रीत' कहा गया है—जो रामसनेही हो उसकी रीति यह है कि वह राम और साधु इन दोको ही पूज्य माननेका नियम रखता है। उसे चाहिए कि दया भाव रखे, असत्य न बोले, नित्य नये प्रेमसे राम रसका आस्वादन करे, जलको छानकर पिये, एकाग्रचित्त होकर कथा सुने, किसी भी अभ्यागत-का मोरध्वजकी तरह (सर्वस्व अर्पण करके) स्वागत करे, प्रातः सायम् दोनों काल गुरुको दंडवत् प्रणाम करे तथा चरणामृत लेवे। इन नियमोंको धारण करनेवाला कुशल और क्षेमको प्राप्त करता है तथा भवसागरसे पार हो जाता है[2]।

---

१. श्रद्धा सुमरण राम मीन मन रामसनेही।
गुणग्राही गुणवन्त लाय लेवै हरि देही॥
अमल तंबाखू भांग तजै आमिष मद पानं।
जुआ द्यूतका कर्म नारि पर माता जानं॥
साच शील क्षमा गहै, राम राम सुमरण रता।
रामा भक्ती भाव दृढ, रामसनेही ये मता॥

(श्रीदयालजी म०)

२. राम जो सनेही होय, ताकी रीत कहूँ जोय,
राम साध पूजै दोय, ऐसौ जाकै नेम है।
जीवमें तो दया राखै, झूठ मुख नाहीं भाषै,
राम रस नित चाखै, नित नवौ पेम है।
जल छाण पियै नित, कथा सुणै एक चित,
अभ्यागत देखै मित, मोरधज जेम है।
डंडोतां तो साँझ स्वार, चरणामृत नेम धार,
तेजराम होसी पार, कुशला त्रु पेम है।

(श्रीतेजरामजी रामसनेही, पीपाड़)

आचार एवं मान्यता

"श्रीरामस्नेह धर्मप्रकाश" के प्रारंभमें "नियमपंचदशी" प्रस्तुत की गई है जिसमें "रामस्नेही धर्मके पन्द्रह नियम" बताए गए हैं। जिन्हें 'गुरुवाणीसे उद्धृत' कहा गया है।

---

१. (१) निर्गुण निराकार एक रामजीका ही इष्ट रखना और उन्हीं निर्लेप निरंजन परमेश्वरकी पराभक्तिसे उपासना करनी।

(२) वेद, श्रुति, स्मृति, गुरुवाणी, शास्त्र, आर्षग्रन्थ, पुराण, आप्तवाक्योंको मानना और सद्विद्याका प्रचार करना।

(३) पाठ पूजन संध्यावन्दनादि नित्य कर्मोंका पालन करना और शरीरके सारे सुखोंको छोड़कर निरंतर रामस्मरणपूर्वक योगाभ्यासी होना।

(४) सद्गुरु और संतोंकी आज्ञा मानना, उनको ईश्वररूप जानना और सत्संगको परम लाभ समझना।

(५) अपने सर्व व्यवहारोंको ईश्वराधीन जानना और हिंसारहित सत्यधर्म-युक्त सात्विक उद्यमी होना।

(६) भोजनाच्छादनकी चिन्ता न करना और न किसीसे याचना करना, केवल सर्वशक्तिमान एक ईश्वरका ही आश विश्वास रखना।

(७) ईश्वरके अर्पण किया हुआ प्रसाद ग्रहण करना, आन देवताओंके प्रसादका स्पर्श तक न करना और न आन देवताओंको देवत्वबुद्धि कर मानना।

(८) शील, सन्तोष, त्याग, वैराग्य, क्षमा, सरलता, धृति आदि धारण करना और हित-मित-सत्यभाषी होना।

(९) काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष, अभिमान, ईर्षा, निंदा आदिका त्याग कर अन्तःकरण शुद्ध रखना, संयम नियमसे रहना और स्त्री मात्रको माता-बहिन समझना।

(१०) जल छानकर पीना, रात्रिमें भोजन न करना, जीवरक्षार्थ पाँव देखकर धरना और चतुर्मासमें विहार न करना अर्थात् एक जगह रहना।

(११) दूसरोंके सुख-दुःख हानि-लाभको अपनी ही तरह समझना और सबकी उन्नतिमें अपनी उन्नति मानना।

(१२) मानापमानरहित होकर तन-मन-वचनसे परोपकार करना और सम्पूर्ण प्राणी मात्रको एक ही आत्मरूपसे देखना।

(१३) भाँग, तम्बाकू, अफीम, पोस्त, गाँजा, चरस, सुल्फा आदि नशोंसे तथा मांस, मदिरा, जूआ आदि सर्वव्यसनोंसे रहित होना। और व्यसनी व बुरे पुरुषोंकी संगतिसे बचना।

"रामस्नेह धर्मप्रकाश" से पर्याप्त अर्वाचीन "श्रीरामस्नेही मत दिग्दर्शन" नामक ग्रन्थमें इन्हीं धार्मिक आचरणों वा नियमोंका नौ भागोंमें वर्गीकरण किया गया है। मूलतः एक समान होते हुए भी फेर-वदल एवं भाषा-परिवर्तनद्वारा उपरोक्त पन्द्रह नियमोंको ही नौ वर्गोंमें विभक्त कर दिया गया प्रतीत होता है; किन्तु इन नौ भागोंमें "(क) (ख) (ग)" आदि विभागोंद्वारा वृद्धि होकर ये पन्द्रहसे सोलह हो गये हैं। लेखकके शब्दोंमें, यह मूल आचार्य वाणीमें बताए गए नियमों-का विशदीकरण है'।

---

(१४) बाह्याडंबरमें रत न हो शुक्ल अथवा सात्विकी रंग-रंजित वस्त्र धारण करना और हर समय ईश्वरको याद करते रहना।

(१५) भ्रमात्मक भीरुतामें न फँसकर सद्गुरुद्वारा प्राप्त वेदानुकूल सत्पथका अनुसरण करना। (गुरुवाणीसे उद्धृत)

१. नियम १. (क) सत्-चित्-आनन्दस्वरूप सर्वव्यापी रामका इष्ट रखना।

(ख) श्रद्धाके साथ नित्य-प्रति नियमितरूपसे राममंत्रका स्मरण प्रातःसायं १ या २ घंटा नित्य करना।

(ग) श्रीराम महाराजमें ही पूर्ण विश्वास अटल भक्ति रखें और ऐहिक तथा पारलौकिक सब सुखोंका साधन रामस्मरणको ही समझें।

नियम २. (क) श्रुति, स्मृति, श्रीगुरुवाणी, गीता आदि आर्ष ग्रन्थोंका सदा नियमितरूपसे स्वाध्याय करें और इन्हीं ग्रन्थोंको प्रमाणभूत मानकर तदनुकूल आचरण रखें।

(ख) सदा स्नान, ध्यान और आचार्यवाणीका पाठ तथा वाणीकी पुस्तकको पीठासनपर रखकर प्रातः सायं प्रार्थना, साष्टांग दण्डवत् एवं प्रदक्षिणा और प्रणाम करें।

नियम ३. राम, गुरु, सन्त इन तीनोंकी एकान्त उपासना करें और इनमें अनन्य भक्ति रखना, सदा सत्संगतिमें प्रीति रखना।

नियम ४. शील, संतोष, दयाका पालन करना ब्रह्मचर्यका व्रत रखना। काम, क्रोध, अभिमान, परनिन्दाका सर्वथा परित्याग करना।

नियम ५. (क) सात्विक वेष-भूषा रखना।

(ख) श्रृंगारप्रधान अश्लील साहित्यका नहीं पढ़ना। गाली-गलौज आदि हीन भाषाका प्रयोग नहीं करना।

सारांशतः देखा जाय तो स्पष्ट है कि ये उन्हीं यम[1]—१. अहिंसा, २. सत्य, ३. अस्तेय, ४. ब्रह्मचर्य, ५. अपरिग्रह, तथा नियम[2]—१. शौच, २. संतोष, ३. तप, ४. स्वाध्याय, ५. ईश्वर-प्रणिधानके शब्दभेदसे रूपान्तर हैं अथवा १. अहिंसा, २. सत्य, ३. अस्तेय, ४. ब्रह्मचर्य, ५. अपरिग्रह, ६. अक्रोध, ७. गुरुशुश्रूषा, ८. शौच, ९. संतोष, १०. आर्जव, ११. अमानित्व, १२. अदम्भित्व, १३. आस्तिकत्व, १४. अहिंस्रता आदि सात्विक व्यक्तिके गुणोंकी औपनिषदिक[3] तालिका है। इसके साथ ही कर्तृत्व, भोक्तृत्व एवं वक्तृत्वका अहंकार स्वरूप अभिमान जिसे राजस गुण तथा निद्रा, आलस्य, मोह, राग, मैथुन, चोरी

(ग) स्त्रियोंके साथ बेहूदा हँसी-मजाक आदि हीन वृत्तियोंका त्याग करना।

नियम ६. सप्त व्यसन जैसे—मद्य, मांस, अफीम, भाँग, तम्बाकू, वेश्यागमन, परदार व्यभिचार, चोरी आदिका पूर्ण परित्याग करना।

नियम ७. (क) मजबूत गाढ़े कपड़ेसे छानकर जलका व्यवहार करना।

(ख) बने जहाँतक दिवाभोजी होना। यदि यह सम्भव नहीं हो, तो चातुर्मासमें अवश्य ही चार मास रात्रि-भोजन निषेध करना।

नियम ८. (क) सत्य और मितभाषी होना एवं अनर्गल अर्थात् बिना मतलब अधिक नहीं बोलना।

(ख) अपनी शक्तिके अनुसार परोपकार करते रहना और दीन-हीनको सहायता करना।

नियम ९. अन्य तुच्छ देवोंकी उपासनाका त्याग करना और सब तरहके मन्तव्य एवं वाग्दान (बोलवा) केवल श्रीरामके प्रति ही करना।

१. अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः। (योगदर्शन २। ३०)

२. शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः। (वही २। ३२)

३. अहिंसासत्यमस्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहः ।
अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचं संतोष आर्जवम् ॥ १ ॥
अमानित्वमदम्भित्वमास्तिकत्वमहिंस्रता ।
एते सर्वे गुणा ज्ञेयाः सात्त्विकस्य विशेषतः ॥ २ ॥ (शारीरकोपनिषद्)

आदि तामस गुणोंका त्याग भी इनमें प्रकारान्तरसे या स्पष्टतः निहित है[१]। इसलिए इन नियमोंमें कोई भी ऐसा नियम नहीं है जो इन सन्तोंद्वारा स्वयं निर्मित हो। ये सदाचारीके सामान्य आचरण हैं। इन्हीं शास्त्रीय नियमोंकी आधारशिलापर रामसनेही धर्मके नियमोंका गठन किया गया है। अन्य देवकी उपासना करनेवालेके लिए भी सरलतासे ये ग्राह्य हो हो सकते हैं। इन्हें ग्रहण करनेमें किसी भी साधकके लिए किसी नये प्रयत्न या साधना एवं अभ्यासकी अधिक आवश्यकता नहीं पड़ती है। इन उपरोक्त नियमोंको पालन करनेवाला 'रामसनेही' कहलाता है।

उपरोक्त नियमावली "रामसनेही साधु" के लिए और इस सम्प्रदायके गृहस्थी शिष्य वा अनुयायीके लिए समान रूपसे व्यवहार्य है।

दीक्षा-विधि

वंशानुगत परम्परासे इस सम्प्रदायके अनुयायी चाहे दीक्षित हों या न हों वे उपरोक्त नियमोंका पालन करते हैं और अपनेको 'रामसनेही' अनुभव करते हैं। उनके पूर्वज जिस गद्दी (आचार्य) के शिष्य होते हैं उस आचार्यको या उसके उत्तराधिकारीको वे सदा गुरु-तुल्य समझते हैं। इस प्रकारके हजारों परिवार हैं। इन परिवारोंमेंसे कोई व्यक्ति या इन परिवारोंके अतिरिक्त कोई व्यक्ति इस सम्प्रदायके आचार्यसे दीक्षा लेनेकी इच्छा प्रकट करता है तो उसकी दृढताकी परीक्षा करके उसे दीक्षित किया जाता है।

जो व्यक्ति घरबारका त्याग करके अविवाहित रहकर भिक्षाटन स्वीकार करके शिष्य बनता है वह 'रामसनेही साधु' कहलाता है और जो गृहस्थी होता है वह 'साधु' शब्दसे व्यवहृत नहीं होता।

दोनों ही प्रकारके दीक्षार्थीकी पहले लगभग एक वर्षतक दृढता एवं इच्छाकी परीक्षा की जाती है तथा पहले उसे यों ही अपने घरमें 'राम राम' सुमिरन करनेको कहा जाता है, तत्पश्चात् उसकी प्रवल इच्छा देखकर दीक्षा दी जाती है।

---

१. अहं कर्तास्म्यहं भोक्तास्म्यहं वक्ताभिमानवान्।
एते गुणा राजसस्य प्रोच्यन्ते ब्रह्मवित्तमैः॥
निद्रालस्ये मोहरागौ मैथुनं चौर्यमेव च।
एते गुणास्तामसस्य प्रोच्यन्ते ब्रह्मवादिभिः॥ (वही)

दीक्षार्थी यदि साधु होना चाहता है तो उसे मुण्डित करके चद्दर एवं कौपीन धारण करवाकर देवालयोंकी परिक्रमा करवाकर गुरु-गद्दी या आचार्यश्रीकी वाणीको परिक्रमा दण्डवत् कराकर गुरुके सन्मुख बैठा दिया जाता है। फिर वह गुरु-चरणोंमें पड़कर शरणागत बनता है और गुरुसे दीक्षाकी प्रार्थना करता है तब श्रीआचार्य उसे 'तारक मंत्र' कानमें तीन बार सुनाते हैं और तीन बार ही उससे उच्चारण करवा दिया जाता है और उसकी शिखाका कुछ भाग कैंचीसे कतर कर गुरुवाणीके सामने गुरु रख देते हैं और कहते हैं—"हे प्राणी ! अब तू 'रामजीका' हो गया है, ये ही इष्ट हैं इनके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं हैं"—इसके साथ ही सारे सदाचार बता देते हैं।

गृहस्थ शिष्यके लिए मुण्डन, कौपीन धारण आदिका नियम नहीं है। वह केवल शुद्ध होकर शुद्ध वस्त्रादि पहनकर उसी क्रमसे गुरुके चरणोंमें शरणागत हो जाता है तब उसे भी गुरु 'तारक मंत्र' सुना देते हैं और कंठी गलेमें डाल देते हैं और सुविधानुसार समय-समयपर दर्शनार्थ आनेकी आज्ञा या नियम दे देते हैं।

साधु

गृहस्थी शिष्य अपने गृहस्थ धर्मको सात्विकतासे निभाता है और समय-समयपर गुरुके दर्शनादि करने आता रहता है तथा जो साधु होता है वह गुरुद्वारेमें रहे या अन्यत्र विचरण करे—यह गुरु-आज्ञापर निर्भर है। नियमोंका पालन करना उसके लिए अनिवार्य है। यदि कोई साधु नियमोंको भंग करता है या विवाह कर लेता है तो साधु-समाज एकत्रित होकर उसे सम्प्रदायसे वहिष्कृत कर देता है। उसे फिर किसी भी साधु-समाजमें सम्मान और स्थान नहीं दिया जाता। साधुओंकी पंक्तिमें बैठने-का अधिकारी भी वह नहीं रहता। वैसे वह 'रामसनेही' सम्प्रदायको मानता रहे या गृहस्थी शिष्योंकी तरह रहे तो साधुओंको कोई आपत्ति नहीं होती। जहाँतक देखा गया है—इस प्रकारकी स्थिति तभी आती है जब कोई साधु, स्त्री-संग्रह कर लेता है। शेष नियमोंकी उपेक्षा तो प्रमाणित भी नहीं की जा सकती है। ऐसी स्थिति अपवादस्वरूप ही है।

साधुके लिए सर्वदा राम राम रटना, विशेषतः प्रातः-सायं राम राम रटना, भिक्षाटन करके यथालब्ध भोजन करना, (त्याज्य पदार्थोंका नहीं) सादे सामान्य वस्त्र पहनना, मुण्डित रहना, प्रातः-सायं गुरु-वाणीका पाठ

करना, गुरुको प्रणाम दण्डवत् करना और सत्संगमें कालक्षेप करना विहित है। इसके अतिरिक्त परोपकारके निमित्त निर्लिप्तभावसे लोकसे सम्पर्क रखना भी निषिद्ध नहीं है, परन्तु नियमोंके पालनमें बाधा कारक स्थितिसे सदा बचते रहना आवश्यक है।

साध्वी

सम्प्रदायमें स्त्रियोंको दीक्षित किया जाता है; क्योंकि यहाँ वर्ग, वर्ण, जाति और लिंगमें भेददृष्टि नहीं रखी जाती। सभीको निरंजन निराकार 'राम' की उपासना और आत्मदर्शनका समान अधिकार होना स्वीकृत है।

गृहस्थ स्त्री अपने परिवारवालों (अभिभावकों) की स्वीकृतिसे सम्प्रदायमें दीक्षित हो सकती है उसकी दीक्षाविधि वही गृहस्थी पुरुषों जैसी ही है। किन्तु कन्या या सौभाग्यवती स्त्रीको साध्वी नहीं बनाया जाता है। यदि विधवा है तो अपने अभिभावकोंकी स्वीकृतिपूर्वक दीक्षा लेकर साध्वी बन सकती है। साध्वीके नियम एवं दीक्षाविधि साधुकी ही तरह हैं।

सम्प्रदायमें आचार्योंसे दीक्षा लेना तो सर्वत्र ही है किन्तु दीक्षित साधुओंसे भी दीक्षा ले ली जाती है। सामान्य रामसनेही साधु भी दीक्षा दे सकता है। ऐसे साधुसे दीक्षाप्राप्त व्यक्ति अपनी गुरु-परम्परा उसी क्रमसे मानता है और उस साधु (सामान्य साधुसे दीक्षित) की गिनती भी साधुओंकी पंक्तिमें समान है।

बालकोंका समर्पण

यहाँ एक विशेष परम्परापर भी प्रकाश डालना अप्रासंगिक नहीं है। सम्प्रदायके रामद्वारोंमें भक्त लोग आचार्यको या उस राम द्वारेके साधुको अपने अबोध बच्चे भी भेंट कर देते हैं और स्थानीय साधु उसे स्वीकार करके उसका भरण-पोषण करता है तथा समझदार होनेपर उसे दीक्षित करके साधु बनाता है। वह बच्चा बड़ा होकर गृहस्थी नहीं बन सकता है।

प्रत्यक्षतः व्यवहारमें तो ऐसा सर्वत्र ही देखा जा सकता है किन्तु इस प्रकारकी प्राचीन परम्परा भी प्राप्त होती है। रतलाम निवासी श्रीजसवंतशाहकी धर्मपत्नी सामाके गर्भसे पूरण नामक बालकका

जन्म संवत् १८२८ चैत्र कृष्ण २ को हस्त नक्षत्रमें हुआ था[१]। ये जसवंतशाह, रतलाम रामद्वारेके संत श्रीपीथोदासजी (पीथल) के शिष्य थे। इन्होंने अपने पुत्रको गुरु पीथलको समर्पित किया तब गुरुने कहा कि यह बालक मेरे श्रीगुरुजीके लायक है अतः इसे वहाँ ले चलो। पीथोदासजी सहित जसवंतशाह और सामा अपने पुत्रको लेकर खेड़ापा रामधाममें आए और श्रीरामदासजी महाराजको उस पुत्रको समर्पित कर दिया। श्रीरामदासजी महाराजने अपने प्रधान शिष्य श्रीदयालदासजी-को इस बालकको सम्हलाकर उसे पढ़ाने-लिखाने, भक्ति-ज्ञान आदिमें प्रवृत्त करनेकी आज्ञा दी[२]। तत्पश्चात् संवत् १८३८ के फूलडोलके उत्सव-वाले दिन श्रीदयालदासजी महाराजने उस 'पूरण' नामक बालकको दीक्षा दी[३]। इस तरह बालक भेट करनेकी परम्परा चली आ रही है। इस परम्पराके कई कारण हैं। (१) रामद्वारेके प्रति या वहाँके आचार्य या संतके प्रति श्रद्धावान् सन्तानहीन व्यक्ति मनौती (बोलवाँ) करता है कि यदि मेरे सन्तान हो जाय तो मैं एक पुत्र 'राम' की सेवामें समर्पित करूँगा। (२) किसी बालकमें विशेष त्याग-वैराग्य या उदासीनताके लक्षण देखकर भी श्रद्धालु दम्पति उसे भेंट कर देते हैं। (३) कुछ ऐसे बालक भी भेंट कर दिये जाते हैं जिनके भरण-पोषणका भार उठानेमें उसके अभिभावक असमर्थ होते हैं। (४) कुछ ऐसे बालक होते हैं जो

---

१. जसवंत साह सुजान, ता श्री सामा सुमत चित।
मात पिता धिन मान, जिन गृह पूरण जन्म ले॥ ५३॥
संवत अठारै अठाईसै, चैत वद पख जान।
तिथी बीज नखतर हसत, पूरण जन्म प्रमान॥ ५४॥
(जन प्रभाव परची पृ० ४१)

२. श्री गुरु रामादास कह्यौ सिख द्याल सुनीजै।
यह सिष होय अमोल ज्ञान निज भक्ति दीजै॥
सब गुन विद्या प्रवीन परा संचित सुभ प्रानं।
ग्रंथां उकतिं अनेक उमग चित परम सुजानं॥
आज्ञाकारी दास निज, गुर धरमी सिवरण मनां।
पूरण कमज्या पुन प्रबल, सत संगत हिलमिल जनां॥ ६९॥
(जन प्रभाव परची, पृ० ४३)

३. अड़तीसा सुद पक्ख में, संवत अठारो जान।
द्याल संत सतगुर मिल्या, फूलडोल परमान॥ ७०॥ (वही)

शारीरिक दृष्टिसे घरवालोंके लिए भारस्वरूप हों जैसे अंधे, गूंगे, कुबड़े आदि। (५) सामाजिक दृष्टिसे अवैध बालक भी 'राम' की सेवामें समर्पित कर दिए जाते हैं।

बालकपनसे ही भक्ति, ज्ञान, वैराग्यकी ओर प्रवृत्त होने वा समाज-सेवा और समाज-सुधारकी दृष्टिसे कई अंशोंमें यह बालक भेंट चढ़ानेकी परम्परा बालकके माता-पिताके लिए तो साहसिक कदम है ही, किन्तु उसके भरण-पोषण और जीवनको सुसंस्कृत बनानेकी सन्तोंपर पड़नेवाली जिम्मेवारी उठाना भी हँसी-खेल नहीं है। हमारा उद्देश्य यहाँ परिचय मात्र देनेका है। इस विषयके औचित्य अनौचित्यका विवेचन नहीं।

पीठ, थाम्भा, थाम्भली, खालशाही

प्रमुख पीठ स्थान जैसे सिंहथल और खैड़ापा इन दोनोंके प्रमुख उत्तराधिकारी साधु महन्त या आचार्य कहे जाते हैं। पहले तो ये महन्त ही कहलाते थे किन्तु आधुनिक युगमें लोग इन्हें आचार्य कहने लगे हैं तथा ये स्वयं भी अपनेको 'आचार्य' पदसे व्यवहृत करनेमें सहयोगी हैं। वैसे महन्त शब्द सन्तत्वके अधिक निकट है और वह उपयुक्त भी अधिक है, इसकी अपेक्षा 'आचार्य' शब्द शास्त्रीयता लिए हुए होनेसे सन्तमतसे जरा दूर रहता है। जैसा भी हो इन दो पीठ स्थानोंके प्रधान, महन्त, आचार्य पीठाधीश्वर आदि शब्दोंसे जाने जाते हैं तथा प्रमुख आचार्य श्रीहरिरामदासजी महाराजके प्रधान उत्तराधिकारी श्रीहरिदेवदासजी महाराज सिंहथल पीठके तथा श्रीरामदासजी महाराजके प्रधान उत्तराधिकारी श्रीदयालजी महाराज खैड़ापा पीठके आचार्य कहलाते हैं। और श्रीहरिरामदासजी महाराजके अन्य शिष्य (श्रीरामदासजीके अतिरिक्त) नारायणदासजी आदि थाम्भायत कहलाते हैं, इनके द्वारा स्थापित स्थान या रामद्वारे थाम्भा कहलाते हैं। इसी प्रकार श्रीरामदासजी महाराजके अन्य शिष्य (श्रीदयालजी महाराजके अतिरिक्त) थाम्भायत कहलाते हैं। इनके द्वारा स्थापित स्थान या रामद्वारे थाम्भा कहलाते हैं।

थाम्भेकी परम्परामें कोई साधु यदि समर्थ होकर अलग रामद्वारा या स्थान स्थापित करता है तो वह 'थांभली' कहलाता है।

किसी साध्वीद्वारा स्थापित रामद्वारा "बाइयोंका रामद्वारा" कहलाता है। ऐसे रामद्वारेकी प्रमुख साध्वीकी उत्तराधिकारिणी साध्वी भी हो सकती है। पीठ स्थानका उत्तराधिकार साध्वीको नहीं मिलता।

जो रामद्वारा जिस पीठ स्थानकी गुरु-परम्पराका होता है। उसका कोई नियमतः उत्तराधिकारी नहीं रहनेपर उसकी समग्र सम्पत्ति, मूल पीठ स्थानमें आ मिलती है अर्थात् ऐसी स्थितिमें पीठ स्थानका आचार्य, उसका अधिकारी होता है।

सारांशतः प्रधान आचार्य श्रीहरिरामदासजी महाराजकी परम्पराके प्रधान उत्तराधिकारी शिष्य, "आचार्य या महन्त" अन्य शिष्य "थाम्भायत" कहलाते हैं। श्रीहरिदेवदासजी महाराज प्रधान आचार्यसे लेकर वर्तमान आचार्योंके प्रधान उत्तराधिकारीके अतिरिक्त शिष्य, "खालशाही" कहलाते हैं। यही परम्परा खैड़ापाकी भी है अर्थात् श्रीरामदासजीके प्रधानेतर शिष्य 'थाम्भायत' तथा श्रीदयालजी महाराज आदिके प्रधानेतर शिष्य "खालशाही" कहे जाते हैं।

आचार्य-चयन

सम्प्रदायमें प्रारम्भसे ही आचार्य या महन्त बननेके लिए गुरु-कृपा एवं सम्प्रदायके नियमों, तपस्या, योग्यता आदि ही मुख्य कारण होते हैं। प्रारंभमें तो श्रीहरिरामदासजी महाराजके पश्चात् उनके स्वयंके पौत्र श्रीहरिदेवदासजी महाराज ही इस पीठके आचार्य हुए। श्रीहरिरामदासजी महाराजके पुत्र श्रीविहारीदासजी महाराज अपने पिताके जीवन कालमें ही परमधामकी प्राप्ति कर चुके थे। श्रीहरिरामदासजी महाराजने अपने अन्तकालमें अपने प्रमुख शिष्य श्रीनारायणदासजी महाराजको आज्ञा दी थी कि तुम तो इसी शिष्य रूपमें ही यहाँ रहना[1] और श्रीहरिदेवदासजी जो इस समय बालक हैं किन्तु धैर्य और ध्यानमें श्रेष्ठ तथा प्रकाशस्वरूप होंगे[2] (अतः उन्हें उत्तराधिकारी बनाना)। श्रीनारायणदासजी महाराजको शिष्य स्वरूपमें ही रहनेकी आज्ञा उत्तराधिकारी बननेकी बाधक है। अतः प्रमुख शिष्य होते हुए भी उन्होंने श्रीहरिरामदासजी महाराजके पश्चात् पाट गादीपर श्रीहरिदेवदासजी महाराजको ही बैठाया। यद्यपि श्रीनारायणदासजी महाराज दास-भाव, सेवा, समाधि, भक्ति, प्रेम और सुमिरन आदि सभी गुणोंसे युक्त थे।

---

१. नारायण आज्ञा आदि, इण संज्ञा रहजे यहाँ।
दासा सेव समाधि, भक्ति प्रेम सुमरण सदा॥
(गुरु प्रकरण, परची)

२. मैत्रेय रामादास, सखा एक मेरो यहाँ।
धीरज ध्यान प्रकास, हरदेवो होसी इसो॥ (वही)

इस प्रकार जो पीठका आचार्य होता है वह अपने जीवन कालमें ही किसी अपने योग्य, कृपापात्र शिष्य (साधु) को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर देता है अथवा अपने जीवन कालमें ही उसको अपनी गद्दीपर बैठाकर उसकी सारी रस्म पूरी कर देता है और स्वयम् (उसका गुरु होते हुए भी) उसके प्रति आचार्य दृष्टिसे सम्मान एवं विनम्रता आदि शिष्टाचारका भाव रखता है। इस प्रकार अपने शिष्यको गद्दीपर बैठा देनेके पश्चात् अपनेको सामान्य साधु ही समझता है। यह पद्धति वड़ी ही त्याग और वैराग्य होनेकी परिचायक है।

अपने जीवन कालमें यदि कोई पीठाधीश्वर योग्य शिष्यको उत्तराधिकारी घोषित न करे तो उस आचार्यके परमधाम प्राप्त होनेके सत्रहवें दिन जब कि सत्रहवींका महोत्सव या मेळा होता है जिसमें सम्प्रदायके सभी साधु निमंत्रित होकर एकत्रित होते हैं वे सर्वसम्मतिसे किसी योग्य साधुको (जो पूर्व आचार्यका शिष्य होना आवश्यक…) उस पीठका आचार्य चयन करके गद्दीपर बैठा देते हैं और सब परम्परानुसार उसको भेंट आदि करते हैं, उसी दिनसे समस्त अधिकार उसको प्राप्त हो जाते हैं। परन्तु यह निश्चित है कि गद्दीधर आचार्य 'अविवाहित' ही होता है और अविवाहित ही रहता है। इसका चयन करनेवाले भी अविवाहित साधु ही होते हैं, गृहस्थी शिष्य या अनुयायी भक्त नहीं। तथापि प्रभावशाली अन्य शिष्यों या अनुयायी भक्तोंका परोक्षरूपसे पड़नेवाला प्रभाव नहीं रुकता है।

जिसे आचार्य बनाना होता है उसको क्षौर कर्म शौचस्नान आदिसे निवृत्त करवाकर स्वच्छ श्वेतवस्त्र धारण करवाकर साधुलोग मंदिर (आचार्यचरणकी बैठक) देवालय आदिमें दण्डवत् प्रणाम परिक्रमा करवाते हैं; तत्पश्चात् गुरुद्वारा कण्ठी तथा प्रसाद देकर गद्दीपर विराजमान कर देते हैं। सिंहथलकी पाट गादीपर रोड़े व दुलचासरके स्वामीजी महाराज अपने हाथोंसे महन्त कायम करते हैं। तदनन्तर यथाक्रमसे सभी उनका अभिवादन दण्डवत् प्रणाम भेंट आदि करते हैं। सिंहथलके महन्तको सबसे पहले खेड़ापेके महन्त दण्डवत् करते हैं और निज अपने ठिकानेके १०१) रुपये भेट करके एक दुशाला ओढाते हैं, बादमें सिंहथल वा खेड़ापेके थांभायत वा खालशाही व सती सेवगोंकी भेटें शुरू होती हैं। अभिवादन आदि पहले साधु लोग करते हैं और उनके पश्चात् गृहस्थी शिष्य या अनुयायी भक्त लोगोंका क्रम है।

उत्तर-कर्म

इस सम्प्रदायमें अन्यान्य साधु-संन्यासी वर्गके उत्तर-कर्मसे पर्याप्त भिन्नता है। अन्य रीति-रिवाजोंमें कुछ समानता भी हो किन्तु यहाँकी प्रमुख रीति शवका दाह-संस्कार करना है। प्रायः साधुओंका दाह-संस्कार (अग्नि-संस्कार) नहीं होता है, अधिकांश साधुवर्गमें जमीनमें गाड़नेकी प्रथा है। किन्तु रामस्नेही साधुका शव गाड़ा न जाकर जलाया जाता है।

आचार्यकी शव-यात्रा बड़ी धूमधामसे तथा साधारण साधुकी साधारण रूपसे होती है। देहको पद्मासनसे बैठा देते हैं। उसको पगड़ी, चोला या वगलबन्दी, धोती, दुपट्टा धारण करवा दिया जाता है। चन्दन व तुलसीकी मालाओं व पुष्पमालाओंसे सजाया जाता है और इसे एक डोली जिसे वैकुण्ठी कहते हैं में बैठाकर अग्नि-संस्कारके स्थानतक ले जाते हैं। यह वैकुण्ठी बाँसोंकी बनाई जाती है जिसे दुशालों या श्वेत वस्त्रसे आच्छादित किया जाता है, उसके स्तम्भोंपर रजत कलश लगाये जाते हैं। सुन्दर सजी हुई वैकुण्ठीमें देहको पधराकर गाजे बाजे सहित नगारा, झालर, घंटा, झांझ, ढोलक आदि बजाते हुए एवं रामध्वनि, हरि-कीर्तन, और जय-जयकार करते हुए शव-यात्रा निकाली जाती है। इस जुलूसके आगे-आगे सजाये हुए घोड़े, ऊँट आदि भी चलते हैं। रास्तेमें पुष्प, फूली (लाजा), चाँदीके पत्रोंके टुकड़े तथा पैसे, रुपये आदि उछालते हैं। गुलाल उड़ाते हैं। स्थान-स्थानपर लोग श्रद्धासे उन्हें प्रणाम तथा साष्टांग दण्डवत् करते हैं। शव-यात्रामें सम्मिलित होनेवाले साधु एवं अन्य सभी लोग राम-राम या हरिकीर्त्तन करते हैं।

इस प्रकार बड़ी प्रसन्नता एवं उत्साहसे यह जुलूस निर्धारित स्थान तक जाता है। वहाँ पीपल, चन्दन एवं शमी काष्ठकी चितामें सुगन्धित द्रव्यों, घृत, खोपरा, नारियल, छुहारे आदि डालकर शरीर अग्निको समर्पित कर दिया जाता है।

अग्निसंस्कारके अतिरिक्त और कोई भी लौकिक-वैदिक उत्तर-कर्म करनेकी प्रथा नहीं है। किन्तु अस्थियाँ एवं भस्म गंगा आदि तीर्थमें प्रवाहित की जाती हैं। सोलह दिनतक निरंतर उनके स्थानपर राम-स्मरण होता रहता है। इन दिनोंमें स्थानीय साधुओं या दूरसे आनेवाले लोगोंको चीनी एवं घी सहित खीचड़ी, खीचड़ा सत्कारार्थ भोजन दिया जाता है, परन्तु भोजन विरले ही लोग करते हैं।

सोलहवें दिन रात्रिको जागरण होता है और सत्रहवें दिन उत्तराधिकारीकी चद्दरनशीनी होती है। इस उत्सवको सत्रहवीं, सत्रहवीं-महोत्सव और मेळा कहते हैं, इनकी परिभाषाएं हैं—उत्तराधिकारी शिष्य स्थानीय साधुओं या समीपमें साधुओंके न मिलनेपर स्थानीय भक्त लोगोंके साथ जागरण करके सामान्य प्रसाद (भोजन) आदि करके साधुओं या भक्तजनोंद्वारा समर्पित चद्दर ग्रहण कर लेता है वह 'सत्रहवीं' कहलाती है। तथा आचार्य और महन्तोंको न बुलाकर अन्य सामान्य सन्तोंको निमंत्रित करके उन सबको यात्रा-व्यय एवं चद्दर आदिसे सम्मानित कर प्रसाद (भोजन) करवाता है वह "सत्रहवीं-महोत्सव" कहा जाता है। तथा अपने सम्प्रदायके पीठाधीश्वर आचार्यको अथवा दोनों (सींथल, खेड़ापा) के आचार्योंको तथा सभी रामद्वारों, स्थानों, थांभों, थांभलियोंके साधुओंको निमंत्रित करता है, आचार्य या आचार्योंकी पधरावणी करता है, सभीको यथायोग्य भेंट-पूजा, चद्दर, यात्राव्यय आदि सहित ससम्मान प्रसाद करवाता है तो वह "मेळा" कहलाता है।

इसी सत्रहवें दिन उपर्युक्त उत्तराधिकारीका चयन एवं प्रतिष्ठापन होता है।

दूरदर्शी एवं समयकी गतिको पहचाननेवाले महापुरुष आचार्य श्रीचौकसरामजी म० ने अपने पीठ स्थानके लिए प्राचीन व्ययात्मक रूढियोंको कम करनेकी दृष्टिसे बड़ा ही साहसिक प्रयास किया और अपने उत्तराधिकारियोंके लिए वे एक आज्ञा-पत्र, "परम धाम पधारनेकी उत्तर-क्रिया" लिखकर छोड़ गये जिसमें इस सम्प्रदायके आचार्यवर्यके देहावसानके उपलक्ष्य होनेवाले अनेक व्ययपूर्ण आयोजनों और रूढियों-को अनुपयोगी बताते हुए कुछको अनावश्यक समझकर समाप्त करने वा कुछको संक्षिप्त किया जानेका उल्लेख है। इस लेखको उनकी अन्तिम इच्छा (Will) कहा जा सकता है। उन्होंने इस आज्ञाके विपरीत न चलनेके लिए शपथपूर्वक उल्लेख किया है। इसमें भविष्यमें होनेवाले आचार्यों आदिके लिए अन्य सलाहकारोंकी अपेक्षा अपनेको उनका अधिक आत्मीय सलाहकार कहा है। सामयिक दृष्टिसे उसका अनिवार्य महत्व है; अतः उस अभिलेखकी प्रतिलिपि यहाँ उद्धृत की जाती है। इस अभिलेखसे अनेक अन्य रीति-रिवाजोंपर भी प्रकाश पड़ता है। इसका लेखन काल वि० संवत् १९९६ आश्विन शुक्ला ३ रविवार है।

॥ श्रीरामजी ॥

परमधाम पधारने की उत्तर क्रिया[1]।

(मोहर)

मेरी इच्छा गद्दीपर बैठनेकी बिलकुल नहीं थी परन्तु पूज्य श्री गुरु-चरणों के अत्याग्रह से व भाई गुरुभाइयों के अत्यनुरोध से मुझे स्थानापन्न होना पड़ा और ठिकाने का कार्यक्रम किया। श्री गुरु चरणोंका भंडारा पूज्य पूर्वजों की अनुकम्पा से परम्परानुसार आद्योपान्त श्लाघनीय हुवा उसे मुझे लिखने की जरूरत नहीं।

अब लिखने का केवल सारांश यह है कि समय देखकर गद्दीधरों का भंडारादि कार्य होने चाहिये ताकि निभ जाय। पूर्वजों का उस तरह हुवा और इनका इस तरह क्यों इस शंकाका समाधान वस इतनाही है पहले वो जमाना था अब ऐसा जमाना क्यों काम वो करना जो आखीर तक निभ जाय—इसमें कोई से भी पूछने की या कहने सुनने की कोई जरूरत नहीं सिवाय दो आदमियोंके एक तो ठिकाने का अधिकारी और एक ठिकानेका कार्यकर्त्ता दोनों मिलकर निम्न लिखित कार्य करें।

नई पुरानी वही की पिछली लीक का सारांश लेकर पूर्वापर विचार के मैं इस लेख कूं लिख देता हूँ अब इस लेख में सिवाय जरूरत के रद्दोवदल न करैं करेगा वह अपने इष्टदेव भगवानसे तथा पूज्य चरण श्री हरिराम-दासजी महाराज से लेकर आज तक सब पीढ़ियों से विमुख होगा और वह इस गद्दी का दावनगीर होगा और इस ठिकाने की पुखता नींव को तोड़नेवाला होगा जादा लिखने की जरूरत नही मुझे भरोसा है मेरा पाटवी चेला रामनारायण व उनके चेले पोते-पड़पोते चेले आदि मेरी आज्ञा का कभी भी उल्लंघन नहीं करेंगे।

मेरा शरीर वीकानेरमें यदि पात हो जाय तो मृतक शरीर को सिंहथल धाम में मेरे श्री गुरु महाराज के उत्तर दिशा में पास ही चरणों में अग्नि-संस्कार करदें और अग्निसंस्कार भूमि पर चोंतरा मत वनावै आइंदा

---

१. यह लेख वहीके पत्र सं० २ से सं० ५ तकमें है।—आचार्य श्रीभगवद्दासजी म० की कृपासे प्राप्त।

चौंतरा मत वनावै। यदि अन्य किसी स्थान में देहपात हो जाय तो शरीर को सिंहथल लानेकी आवश्यकता नही न किसी प्रकारकी दोड़ादोड़ करने की जरूरत—

"सबही भूमि गोपाल की"

इस न्यायसे सिर्फ थोड़ीसी भस्मी लाकर पूज्य चरण श्री चेतनदासजी महाराज के देवल के आगे की छतरी मैंने जीतेजी बनादी है उसमें पधराकर ऊपर चरण पधरादें। उक्त वाकी भस्मी श्री कोलायतजी या पास कोई तीर्थ हो उसमें पधरादें और अग्निसंस्कार पर पथर का चौंतरा वनवादें।

शरीर नाशवान है अगाड़ी भी किसीभी गद्दीधर का शरीरपात होने वाद नया देवल मत वनवावे छोटे देवल में पसवाडे की वंगलियोंमें भस्मी पधरादें और अग्निसंस्कार भूमिपर पका चौंतरा मत वनावें यदि मुनासिब समझें तो देवलों में छतरी वनवादें।

(मृतशरीर यात्रा क्रम)

वैकुंठीपर सिवाय नैनसुख कपड़े के तास व दुसाला वगेरेह वैकुंठी के ऊपर न ओढावै शरीर को स्नान कराकर पांचों कपड़े पहिना कर एक सफेद चद्दर ओढादें उस चद्दर पर एक कसूमल रंगकी पोसाकी दुसाले की फड़दी ओढादे वो ओढाया हुवा दुशाला अग्निसंस्कार की जगह थोरी कूं दे देवै चद्दर नही उतारै।

वैकुंठी पर पांच कलसिये सिलवर के लगादै चांदी के नही लगावै ठेट से तो पीतल के कलसियों की रिवाज है। ठिकाने की तरफ से वैकुंठी में रुपये २) अखरे दो रुपये भेट करदें नारेल ४१ खोपर सेर १० घृत सेर १० कठ चंदन सेर १० चंदन असली सेर १ या २ सुगंधी के पुड़ीके नग ४ पीपल की थोड़ी लकड़ी थोड़ी सी लकड़ी तुलसीजी की वाकी सब खेजड़ी की कठफाड़ें उछाल के लिये रुपये १०) की रेजगी टक्के गुलाब ≈) की सोने चांदी के फूलों की कोई जरूरत नही दो वरतन पीतल के— एक अग्निका और एक घृत होमने का वस ये दो वरतन पीतल के वैकुंठी को मंदिर दर्शन कराकर देवलों की परिक्रमा कराकर सीधे धू पीरोल से चौंतरों के स्थान में लेजाय—यदि गांव वाले गांव में वैकुंठी लेजानेकी आग्रह करै तोभी गांव में ले जाने की जरूरत नही कारण यह निभेगा नही इसलिये गांव में ले जाना बंध करदें। वैकुंठी के अगाड़ो घोड़ी खेंचने की कदीमी रीत नही है इसलिये नही खेंचै।

(सतरादिन का कार्य)

सोलह दिन तक राम राम करने आवै उनको भोजन खीचड़ी (बाट-चांवल मूंग की) और प्रमाण मुजब घृत चीणी खांड फुलके दाल साग। वैतों[1]को मामूली नीरा। शरीर शान्त होते ही ठिकाना खैड़ापा को टैलीग्राम द्वारा सूचना करदें वादमें खैड़ापा को पत्रिका जरूर लिखें कि—इस समय पर आप सारे रामपरिवार को साथ में लेकर अवश्य पधारें।

अव वात यह रही यदि खैड़ापा के सब ठिकाने पूर्ववत् शिष्टाचार रखतें हो तब तो सब ठिकानों में नाम परनाम पत्रिका दे देवें नही जब जो शिष्टाचार रखें उनको दे देवै। दूर के रामस्नेही जो आने जाने वाले हैं उनको पत्रिका दे देवैं। आस पास के गांवों के ठाकुर आने जाने वाले हैं उनको भी दे देवैं जो आने जाने वाले नहीं है उन ठाकुरों को वा अन्य को भी न दें। गांवों के चौधरी या सेवग भी होवे तोभी किसी कुं पत्रिका न देवैं सेवगों को जबान से कहला दें या कह दें।

(सतरवै दिन का भोजन, सलाह)

सतरवै दिन शानदार भंडारे में शान वढाने के लिये मिठाई करने की रिवाज अपने विलकुल नही रखने की है। पूज्य श्री गुरुचरणों के शानदार भंडारे में शान गमाने में क्यों क्या किसीने कुछ कमी रखी परन्तु जो त्रिलोकीनाथ श्री परमात्मा रक्षक है तो कौन शान गमा सक्ता है।

परन्तु मिठाई और का हैं सब बखेड़ा इस रिवाज को विलकुल वंध करदें तनू से तनू मिठाई की सलाह देवै और सीरे से सस्तीभी पड़ै नाम और नाक भी मोटा होवै तो भी किसी की मत मानो—सब से अधिक तुम्हारे वास्ते तनू मैं हूं मेरे बराबर वो सलाह देने वाले तनूं नहीं होंगे, उन लोगों को तूटवा जबाव यही दो कि महाराज का हुक्म मिठाई करने का नहीं है मिठाई बंध करने (के) लिये ही महाराजने शपथपूर्वक लेख लिखा है इसलिये मिठाई हम विलकुल नहीं करैं इस वारे में हम से कोई सलाह सूत मत दै।

---

१. ऊँट आदि वाहनोंको चारा।

(भोजन)

बत्तीसा[१] घृत और पौंन दूनी खांडका सीरा जन समाजका निश्चय कर वनावो साथ में खीचड़ी और चिणों का साग बनावो पुड़ी पाड़ी कुछ मत वनावो इतने समुदाय में इस तरह से बनाने की रीति चली आती है कोई बड़े आदमी आ जाय तो अलग कहीं पूड़ी और आलू का साग वनालैं। श्री मंदिर देवलों चूंतरै भोग लगावो और सिद्धि अखूट के लिये ढक कर धरदो। ब्राह्मण भोजनभी सतरवै दिन करदो उक्त घृत खांड का सीरा ब्राह्मण लोग अपना अलग वनालेंगे और आये हुवे दूसरे ब्राह्मण लोग भी उनके साथ ही भोजन करलेंगे इसलिये ब्राह्मणों ब्राह्मणोंकी रसोई उसी दिन अलग वनवादो। गांव वालों से न पूछने की जरूरत न दूहा लेने की जरूरत न जीमने के लिये गांव वाले लोकों को बुलाने की जरूरत सिर्फ प्रसादी दाखिल एक एक थाली घर दीठ सब गांव में भेजदैं—यदि गांव वाले लोग विना दूहा दिये विना हांती लिये सिरदार लोग जीमने के लिये हांमी भरलैं तो अच्छी वात है सब गांव के सिरदारों को वुलाय लैं और प्रसादी दाखल विनां तुली सब के घर थाली भेज दैं घर दीठ प्रसादी के नाम से भेजैं आदमी दीठ नहीं भेजैं न हांती के नाम से भेजैं प्रसादी के नामसे भेजैं, कोई सरदार न लै तो मत लो जादा हठचट मत करो।

सिंहथलके सिवाय कहीं ओर जगह प्रसाद भेजना है तो मखाना: पतासा प्रसाद भेजो जादा से जादा भेजना है तो मिश्री भेजदो। ओसर मोसर में नाई सुथार चमार थोरी को खांड घृत और आटा देने की रिवाज है उनसे कहो यह रिवाज गृहस्थियों के औसर की है यह रिवाज हम नहीं रखैं। आये गये पुरुषों के सत्कार के लिये यह भोजन है या गरीबों के वांटने के लिये हैं नाम व टीका कढाने का भोजन नहीं है।

(इनाम)

नाई को सिर्फ ७) सुथार को १) चमार को २) थोरी को २) ढोली को १) पाघ पेचा किसी कारू कमीन को मत बंधावो यह रिवाज गृहस्थीयों की है अपने नही चाहिये। भेखका भाट आवै उसके लिये कुल सिर्फ १०) रोकड़ी अखरे दस रुपये और एक मामूली दुशाला इसके सिवाय घोड़ा, ऊंट कडा आदि कुछ नहीं भेख सरिसते चद्दर यदि

---

१. एक मन आटेके सीरेमें ३२ सेर घृत।

३ साल से साधारण मेले पर आवै तो ४) रोकड़ी और १ कपडो यदि आये साल आवै तो १) चद्दर १।

(गद्दी नसीनी)

श्रीगुरुद्वारा रोड़ा' व दुलचासर' दोनों जगह पत्रिका में अरज करै कि फलांनी मिति—पधारने की कृपा करावै और दोनों का वधावना करै और दोनूं स्वामीजी महाराज के अलग अलग २१) रोकड़ी ओर एकेक पोसाको दुसाला। अपने आप स्वामीजी महाराज पधार जाय तो १) भेट, और सिंहथल गद्दीधर गुरुद्वारै रोड़ै व दुलचासर पधारै तो रोकड़ी ११) से कमती भेट नहीं करै और १ रसोई करदै। श्री कोडमदेसर स्वामीजी महाराज सिंहथल पधारे तो ५) रोकड़ी और १ चद्दर भेट करै यदि कोडमदेसर सिंहथल गद्दीधर पधारै तो ४) रोकड़ी १ नारेल भेट करै, सिंहथल मेलै पर कोडमदेसर स्वामीजी महाराज पधारने की रीति रिवाज नहीं हैं। संवत १९९६ में श्री महाराज साहबों के मेलै में कोडमदेसर स्वामीजी महाराज पधारे वो विना बुलाये पधारे निरादर न हो जाय इस वास्तै उन दोनों स्वामीजी महाराज के बरावर सत्कार करना पड़ा आयंदा विना बुलाये नही पधारना चाहिये। यदि मेलेपर पधार जाय तो रु० ५) अखरे पांच और १ चद्दर ओढाय देवे, उनके बरावर नहीं और रोड़े व दुलचासर स्वामीजी महाराज के लिये सुख सेज आदि का अड़ंगा कभी मत करैं यह तो गृहस्थियों की रीति हैं।

परम्परा रीति अनुसार खैड़ापा के महन्त सतरादिन में सिंहथल आते हैं और छड़ी बांकिया गादी व पाटिया आदि कुरब सोलह दिन तक बंध रखते हैं। कारण बंध रखने की रीति चली आती है, जब सत्तरवे दिन सिंहथल की पाटगादी पर रोड़े व दुलचासर के स्वामीजी महाराज अपने हाथ से महन्त कायम करते हैं उस वखत सिंहथल नये महन्त को सब से पहले खैड़ापे के महन्त दंडवत करते हैं और निज अपने ठिकाने के १०१) रुपये भेट और १ दुसाला ओढाते हैं वाद में सिंहथल व खैड़ापे के थांभायत व खालसाही व सती सेवगों की भेटैं शुरू होती है।

सतरवे दिन पाटगादी की रीति रिवाज होने के वाद फिर सब कुरब काम में लेने की रिवाज हैं। सिंहथल में खैड़ापै महन्तों वधावना आज दिन तक न हुवा है न होने की रीति है। कारण खैड़ापे की गादी सिंहथल की शिष्य है। बीकानेर वड़ारामद्वारा में खैड़ापे महन्तों की गादी सिंहथल गादी के सम्मुख ही विछाई जाती है और वधावना वडे रामद्वारै में नहीं होता।

सिवाय जोधपुर सूरसागर के सिंहथल की गादी खेड़ापा गादी से जीवणी तरफ ही रहती हैं। सूरसागरके वड़े परमहंसजी की वाघंबर गादी मंदिर से जीवणी तरफ हरदम विछी रहती है उठ नही सकती इसलिये मंदिर से बांई तरफ सिंहथल की गादी विछाई जाती है।

सूरसागर में जो गादीयों का दाहना बायां व्यतिक्रम है उसका खास कारण ऊपर लिखा यही है और कोई कारण नही है, उक्त रिवाजों में कहीं हेर फार हो गया है वो भूल से या लापरवाही से है आयन्दह ऐसी भूल या लापरवाही नही रहनी चाहिये ऐसी भूल में रिवाज जारी हो जाती है। १९९६ मिति आसोज सुद ३ रवीवार

(मोहर उर्दू)
(मोहर श्रीचौकसरामजी) } द. महन्त चौकसराम कलम खुद
सहीकस्य मुद्रिका

नाम

अनेक सम्प्रदायोंमें साधु बनाये जानेपर उसका गृहस्थी नाम जो कि माता-पिताद्वारा रखा हुआ है उसे बदल दिया जाता है और यह विधि दीक्षाके तांत्रिक[1] प्रकरणों और यति-[2]धर्मसे सम्बंधित ग्रन्थोंमें उपलब्ध हैं। गिरि, पुरी, भारती, वन, अरण्य, तीर्थ, आनन्द, नाथ आदि शब्द उन नामोंके पीछे रखे जाते हैं। इससे कुछ साधुओंके वर्गका भी परिचय मिल जाता है। परन्तु रामसनेही सम्प्रदायमें ऐसी परम्परा नहीं है। गुरु अपने शिष्यका कोई नया नामकरण नहीं करता। उसका पूर्वनाम ही चलता रहता है। यहाँ व्यक्तिगत नामका कोई महत्त्व नहीं है, यहाँ तो 'राम नाम' का महत्त्व है। जगतमें ज्योतिषीद्वारा नक्षत्र और समयके आधारपर 'नाम' रखा जाता है; किन्तु 'राम' नाम ही एक ऐसा है जिसके लिए किसी भी नक्षत्र और वेलाकी आवश्यकता नहीं, इसे आठों प्रहर स्मरण किया जा सकता है[3]। जबतक 'राम नाम' को नहीं जाना है तब-तक कलियुगमें कल्पित नामका कोई अस्तित्व नहीं है, नाम करना है तो

---

१. पूर्णाभिषेक पद्धति। (अमुद्रित)
२. यतिधर्मसंग्रह।
३. हरीया जोसी जगतका, नषत बषत का नांम।
नषत बषत विन नांव है, सिवरौ आठु जांम॥ (श्रीहरि० वाणी, २७ प्र०)

पूज्यपाद अनन्त श्री हरिरामदासजी महाराज
श्रीरामस्नेहि सम्प्रदायाद्याचार्य सिंहस्थल
(प्राचीन चित्र से)

'राम नाम' से ही होगा'। सभी लोग चाहते हैं कि हमारा नाम अमर रहे और नामको चिरस्थायी बनानेके लिए अनेक कीर्ति-पुण्य भी करते हैं; किन्तु पुत्रोंसे, परिवारसे और धनसे नाम अमर नहीं होता, नाम तो 'राम नाम' से ही अमर होता है'। वैसे इस प्रदेशके निवासियोंमें रामान्त और दासान्त नामोंकी बहुलता स्वभावतः ही है, इसी कारण रामसनेही साधुओंके नामोंमें 'राम' या 'दास' अन्तमें अवश्य मिलता है। किन्तु उस प्रकारके नामको सुनकर कोई यह निर्णय नहीं कर सकता कि यह किसी 'साधु' का नाम है। सम्प्रदायकी वाणियोंमें जो सहजता, सरलता और आडम्बरके अभावका वर्णन है, यह नाम न बदलना भी उसीका द्योतक है।

वेष-भूषा

सम्प्रदायमें आचार्यों, साधुओं या गृहस्थियों आदि किसीके भी लिए किसी विशेष प्रकारके वेष पहरनेकी परम्परा नहीं है। जिस किसी प्रकारके सादे वस्त्र या सौम्य रंगसे रंगे वस्त्र पहने जा सकते हैं। अपनी स्थितिके अनुकूल सभी संत हर प्रकारके कपड़े पहन सकते हैं। कोई विरक्त या परमहंस त्याग-वैराग्यपूर्वक साधारण कंथा धरण करे या नग्न रहे, एक वस्त्र रखे, दो वस्त्र रखे, भगवाँ, काला या अपनी रुचिके अनुसार रखे तो रख सकता है, कोई प्रतिबन्ध नहीं है। आचार्योंके प्राचीन चित्रोंमें तथा वर्तमानमें सामान्य सद्‌गृहस्थियों-जैसी वेष-भूषा आचार्यसे लेकर सामान्य साधुओंमें देखी जा सकती है। क्योंकि यहाँ किसी प्रकारके भेष या वांना धारण करने तथा स्वांग सजनेका विरोध किया गया है। यद्यपि आजकल मुण्डित रहनेकी प्रथा स्थिर हो गई है किन्तु वाणीमें तो कहा है—छापा, तिलक धारण करनेवाले, केश रखनेवाले, केश मुंडानेवाले, वेष बदलनेवाले, माला-मणिया पहननेवाले बहुत-से लोग भक्त बने फिरते हैं, किन्तु साधुका

---

१. हरीया नांव न जाणियो, कलि मैं नांव न कोय।
   जिन औ जान्यौ नांव कुं, नांव नांव तैं होय ॥ (वही)

२. नांव न सुत परवार तैं, नांव न वित तैं होय।
   नांव रहैगा नांव सुं, हरीया अमर सोय ॥ (वही)

आचरण करना हँसी-खेल नहीं है[१]। तानों-बानों और 'भेष' का आदर करनेका लोगोंका स्वभाव पड़ गया है और सच्चे साधुकी पहिचान उठ गई है इसीसे लोग वेष धारण करते हैं किन्तु वास्तविक हरि-जन और 'भेषधारी' की स्थिति वही है जैसी तराजूमें सोनेके साथ रहनेवाली चिरमीकी। चाहे तोलमें उसका मान वही है किन्तु मोल (मूल्य) उसका अलग ही रहेगा।[२]

हम ऊपर कह आये हैं कि आजकल रामसनेही साधुओंमें मुण्डित रहनेकी परम्परा पड़ गई है। किन्तु वाणीमें तो सिर मुंडानेको महत्व नहीं दिया है। मूंड मुडाने और दाढी मूंछ मुडानेसे कोई सिद्धि होनेवाली नहीं है, सिद्धि तो मनको मूंडनेसे होगी। यदि मूंडना है तो इस मनको मूंडो, यही भला-भूंडा है[३]। समस्त प्रसंगोंका तात्पर्य सादगी, सात्विकतासे रहनेका है, किसी भी प्रकारके बनाव-पहरावका आग्रह नहीं है। साधारणतया स्थानीय वेष ही धारण करनेका प्रचलन है। किन्तु इस प्रसंगका अर्थ यह नहीं लिया जा सकता कि आधुनिक बनाव-शृंगार (मेक-अप) वेष-भूषा आदि जो कि विवेक, त्याग, वैराग्य, तप, ज्ञान और भक्तिके बाधक हैं उन्हें अपनानेकी अनुमति है। साधारणतया श्वेत, शुभ्र नागरिक वस्त्र पहनना मान्य है।

वैसे आजकल भगवाँ (गेरुआ) वस्त्र धारण करना प्रचलित है किन्तु, कहते हैं पहले गेरुआ वस्त्रका ग्रहण नहीं था; क्योंकि श्रीपार्वतीजी 'राम' नामका सर्वप्रथम उपदेश प्राप्त करनेवाली हैं अतः इस सम्प्रदाय-

---

१. जनहरीया सांगी घणा, छाप तिलक सिर केस।
मसतग मूंछा मूंडीयां, तन वदलाया वेस॥
माला मिणका घालिकरि, भगत भया बौह लोय।
जनहरीया चलि साधकी, हासा षेल न होय॥ (श्रीहरि० अंग, ३२)

२. हरीया थोड़ी साध की, जुग मैं जांनि पिछांनि।
तांना बांना भेष्र की, है बोहतेरी मांनि॥
हरीया हरिजन भेष मैं, ज्युं सोनौ चिरमी संग।
घाति तराजू तोलीया, मोल नीयारा मंग॥ (वही)

३. दाड़ी मूंछ न मूंडौ कोई। मन मूंड्यां विन सिध न होई॥ ६५॥
मूंडो तौ इन मन कुं मूंडौ। यो ही भलौ वुरौ है भूंडौ॥
(श्रीहरि० घटपरचौ)

सिंहासन पर विराजमान - अनन्त श्री हरिरामदासजी महाराज
हाथ जोडे हुए सम्मुख विराजमान - श्री नारायणदासजी महाराज

की आदि गुरु हैं और लोकमें गेरुको श्रीपार्वतीका रज माना जाता रहा है अतः उस गेरुसे रञ्जित वस्त्र धारण न करके हिरमिचके द्वारा तत्सम रंगसे रञ्जित वस्त्र धारण किए जाते थे, परन्तु आजकल इतना सूक्ष्म विचार नहीं रहा है।

सम्प्रदायके अन्तर्गत परमहंस और विरक्त साधु भी होते हैं। जिनमें सूरसागर (जोधपुर) के परमहंसजी महाराज श्रीसेवगरामजी नग्न ही रहते थे तथा कुछ साधु राखसे रंगे हुए ईषद्कृष्ण वस्त्र भी धारण करते हैं।

प्रचार-प्रसार

श्रीहरिरामदासजी महाराजके द्वारा निर्गुण रामकी उपासना वि० सं० १८०० में प्रारम्भ होनेके पश्चात् सिंहथल या सींथलमें राम राम रटनेका प्रचलन होने लगा, उसकी चर्चा चारों ओर फैलने लगी। आस-पासके गाँवोंमें तथा समीपवर्त्ती बीकानेर नगरमें भी इसका प्रभाव पड़ा। अनेक जिज्ञासु जन श्रीजी महाराजके दर्शनार्थ एवं उपदेशार्थ आने लगे। जो भी आता था इनके जीवनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता था।

इनके प्रथम एवं कृपाप्राप्त शिष्य श्रीनारायणदासजी महाराज हुए जो इन्हींकी अन्तिम इच्छासे इस पीठके शिष्य स्वरूपमें ही रहे। द्वितीय शिष्य (पुत्र) श्रीविहारीदासजी हुए जिनका देहावसान श्रीजी महाराजके जीवन कालमें ही हो गया। श्रीविहारीदासजी अपने पीछे एक पुत्र छोड़ गए थे वही श्रीहरिदेवदासजी महाराज सींथल पीठके उत्तराधिकारी बने। श्रीहरिदेवदासजी भी श्रीरामके अनन्य साधक और त्यागी महापुरुष थे। इनके बाल्यकालमें ही श्रीजी महाराजने इनके सात्विक गुणोंका अनुभव कर लिया था उसी अनुभवके आधारपर इन्हें उत्तराधिकारी घोषित करके श्रीनारायणदासजी महाराजको सान्निध्यमें रहनेका आदेश दिया था।

इनके उपरान्त श्रीजी महाराजके शिष्योंमें प्रमुख नाम श्रीरामदासजी महाराज खेड़ापा पीठके संस्थापकका आता है। श्रीलक्ष्मणदासजी महाराज जिनका साधनास्थल मुलतान था और जिन्होंने मुलतानमें रामद्वारा भी स्थापित किया, श्रीजी महाराजके शिष्य थे। श्रीजी महाराजके ही शिष्य श्रीआदूरामजी महाराजने लालमदेसरको अपना साधनास्थल

बनाया। तथा दो शिष्य श्रीअमीरामजी महाराज तथा श्रीदईदासजी महाराज सिंहथलमें ही रहे। इस प्रकार श्रीहरिरामदासजी महाराजके सात शिष्य थे। इन सातों शिष्योंमें श्रीलक्ष्मणदासजी श्रीअमीरामजी एवं श्रीदईदासजीकी शिष्य-परम्परा नहीं चली। श्रीआदूरामजी (लालमदेसर) की शिष्य-परम्परामें पीतमदासजी व उनके पश्चात् चतुर्दासजी तथा उनके पश्चात् श्रीतिलोकरामजी हुए, और यह परम्परा यहीं तक रही, इसका कोई विस्तार नहीं हुआ।

श्रीनारायणदासजी महाराजकी शिष्य-परम्परा पर्याप्त रही और वर्तमानमें भी उनकी परम्परा उपलब्ध है। इन्होंने व इनके उत्तरवर्ती संतोंने अनेक स्थानोंमें रामद्वारे स्थापित किए और सम्प्रदायके विस्तारमें उल्लेखनीय योग दिया प्रतीत होता है। इस परम्पराका कार्यक्षेत्र यद्यपि बीकानेर रियासतसे बाहर नहीं निकला किन्तु पर्याप्त भू-भागको आवृत किए हुए था। इस भू-भागमें ऊडसर, बरसीसर, काल्, श्रीडूंगरगढ, सूरतगढ, गुसांईसर, सिनावड़ा, बामटसर, गीगासर, बेलासर, पलाना, सूडसर और जैतपुर मुख्यतः उल्लेखनीय हैं।

प्रधान पीठ सिंहथलकी परम्परा इस प्रकार है—

श्रीहरिरामदासजी महाराज (१८००—१८३५ वि०)
|
(श्रीविहारीदासजी महाराज जो पाट नहीं विराजे)
|
श्रीहरिदेवदासजी महाराज (१८३५—१८६४ वि०)
|
श्रीमोतीरामजी महाराज (१८६४—१८६६ वि०)
|
श्रीरघुनाथदासजी महाराज (१८६६—१९०९ वि०)
|
श्रीचेतनदासजी महाराज (१९०९—१९५० वि०)
|
श्रीरामप्रतापजी महाराज (१९५०—१९९६ वि०)
|
श्रीचौकसरामजी महाराज (१९९६—१९९८ वि०)

पूज्यपाद अनन्तश्री हरिरामदासजी महाराज, सिंहस्थल

श्रीरामस्नेहि सम्प्रदायाचार्य पाट श्री सिंहस्थल

|

श्रीरामनारायणजी महाराज[1] (१६६८–२००५ वि०)

|

श्रीभगवद्दासजी महाराज[2] (वर्तमान)

प्रधानपीठ सिंहथलके कार्यक्षेत्र का विस्तार केवल बीकानेर रियासत में ही सीमित न रहकर दूरके प्रदेशों तक पहुँचा है। यह विस्तार जोधपुर रियासत और बूँदी रियासत तक है। जोधपुर के कुछ गाँवों में तथा बूँदी शहर में इसकी परम्पराएं स्थापित हैं। मुख्यपीठ के कार्यक्षेत्र के कुछ प्रमुख स्थान–सिंहथल, बीकानेर, नापासर, खजवाणा, कोसाणा, संसारदेसर, दासोड़ी, चाखू, भेलू, करणू, देशनोक, गवाल, सवालिया, रतनगढ, रामसर, मैंदसर, फुलेरा, वाजोली, रासीसर, भाणेरा, मेड़ता, डांगास, गुसांईसर, सार्थीण, रतकूडिया, गंगारड़ा एवं बूँदी (रियासत) उल्लेख योग्य है। इन स्थानों पर मुख्यपीठ की परम्परा के प्रमुख शिष्यों या प्रशिष्यों ने साधना एवं उपदेशों द्वारा स्थानीय जन–मानस को प्रेरणा दी है। इन स्थानों के अतिरिक्त अन्तर्वर्त्ती स्थलों में भी रामसनेही सम्प्रदायका प्रभाव अतिशय रूप में उपलब्ध होता है।

खैड़ापा पीठ

यद्यपि यह सर्वमान्य है कि सिंहथल पीठाधीश्वर श्रीहरिरामदासजी महाराज इस सम्प्रदाय के प्रमुख प्रवर्तक हैं और श्रीरामदासजी महाराज (खैड़ापा) इनके शिष्य हैं तथापि यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि खैड़ापा पीठ के द्वारा रामसनेही सम्प्रदाय का प्रचार, प्रसार, सिंहथल की अपेक्षा कहीं अधिक हुआ है और यह स्वाभाविक भी था। क्योंकि

---

१. श्रीरामनारायणजी महाराज ने अपने जीवन काल में ही सं० २००५ भाद्रपद शुक्ला १५ को सिंहथल पीठ का आचार्यत्व श्रीभगवद्दासजी महाराज को दे दिया। श्रीरामनारायणजी महाराजका निर्वाण सं० २०२१ मार्गशीर्ष कृष्णा ११ रविवार को हुआ। श्रीभगवद्दासजी महाराज के आचार्य हो जाने पर श्रीरामनारायणजी महाराज भूतपूर्व आचार्य होते हुए भी सामान्य सन्त की भाँति रहते और श्रीभगवद्दासजी महाराज को दण्डवत प्रणाम करते।

२. वि०सं० २०३८ में श्रीभगवद्दासजी महाराज के परमधाम पधारने के पश्चात् वर्तमान में श्री क्षमारामजी महाराज आचार्य गद्दीपर विराजमान हैं। प्रकाशक

श्रीजी महाराजने श्रीरामदासजी महाराजको जो आदेश और आशीर्वाद दिया था उसका प्रतिफलित होना अवश्यम्भावी था। श्रीजी महाराजके—

> *"रामदास पंथ चलै तुम्हारौ। सत्य वचन यह सदा हमारौ॥"*
> *"श्रीगुरु आगम यों मुख वरणै। तिरसी जीव तुम्हारै सरणै॥"*
> *"दो उपदेस जिग्यासी आवै। गुरुपद दरस्यां गुरुपद पावै॥"*

इस प्रकारके वचनोंका एक तात्पर्य दूसरा भी है। सम्भवतः वे श्रीरामदासजी महाराजके द्वारा ही इस सम्प्रदायका विकास और विस्तार होनेकी आकांक्षा और आशा रखते थे; क्योंकि उस समयमें विशेष प्रतिभा-सम्पन्न एवं ज्ञानवान् तथा तत्त्वज्ञ साधक उनकी दृष्टिमें ये ही रहे होंगे। तथा स्वयं श्रीजी महाराज पंथ और मत आदिसे निर्लिप्त रहना भी अधिक महत्त्वपूर्ण समझते थे। इसी प्रसंगको प्रदर्शित करनेवाली एक लोकोक्ति कालान्तरमें प्रचलित होकर अद्यावधि लोगोंके मुँहपर है। कहते हैं—"सींथल पाट'र खैड़ापे ठाट" अर्थात् पाटगादी यद्यपि सींथल ही है किन्तु ठाटबाट खैड़ापेके अधिक हैं। यह स्पष्ट है कि जहाँ शिष्य-प्रशिष्यों, भक्तों व अनुयायियोंकी बहुलता होगी वहींपर ठाटबाट अधिक होंगे। श्रीरामदासजी महाराजके अनेक शिष्य हुए उनमें प्रमुख शिष्य ५२ हुए जो "बावन थाम्भे" कहलाए। इस पीठका कार्यक्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है जिसमें—जोधपुर, जयपुर, बीकानेर, रतलाम, ईडर, बड़ौदा, अहमदाबाद, उदयपुर आदि बड़े-बड़े शहर और इन शहरोंके प्रमुख कस्बे और सैकड़ों गाँव आते हैं जिनकी नामावली स्थानाभावसे यहाँ नहीं दी जा रही है।

इस प्रकार रामसनेही सम्प्रदायका विस्तार एवं प्रभाव-क्षेत्र बहुत बड़ा है। आजके वर्त्तमान युगमें तो यातायातकी सुविधाके कारण सभी स्थानोंपर रामसनेही-साधु या इस सम्प्रदायके अनुयायी-भक्त उपलब्ध हो सकते हैं।

चिन्तन-सन्दर्भ

भारतमें विविध धर्मोंका जैसा नामकरण किया हुआ उपलब्ध होता है वैसा सन्तोंके मतका कोई नाम उपलब्ध नहीं होता क्योंकि अपरिच्छिन्न वस्तुका परिचय परिच्छिन्न नाम द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता। व्यवहारके लिए ही आधुनिक युगमें सन्तोंकी सहजमूलक विचारधाराको समझने या समझानेके लिए "सन्तमत" नामकरण द्वारा प्रयत्न किया

जाता है। तथापि इस विचारको 'इदमित्थम्' या 'इयत्ता' पूर्वक नहीं कहा जा सकता है। हाँ अर्थ ग्रहणके लिए 'सन्तमत' शब्दसे इतना समझना चाहिए कि "सन्तोंकी प्रकृतिसे अङ्कित विचारधारा"।

सन्तोंकी प्रकृतिमें आत्मलाभ या ब्रह्मप्राप्ति ही मानव जीवनका सम्पूर्ण सत्य एवं लक्ष्य है जो भारतीय परम्पराके सर्वथा अनुकूल है इस सम्पूर्ण सत्यका ज्ञान होनेके कारण इस "सन्तमत" में 'खण्डसत्य' का अनादर नहीं है। खण्डसत्यसे पलायन न करनेका मुख्य कारण अखण्ड-सत्य-स्वरूपमें सुप्रतिष्ठित हो जाना है। महामहोपाध्याय श्रीगोपीनाथ कविराज द्वारा प्रस्तुत 'सन्त' की परिभाषा—"जो सत्यस्वरूप, नित्यसिद्ध वस्तुका साक्षात्कार कर चुके हैं अथवा अपरोक्ष रूपसे उपलब्ध कर चुके हैं और इस उपलब्धिके फलस्वरूप अखण्ड सत्य-स्वरूपमें प्रतिष्ठित हो गए हैं वे ही सन्त हैं"—सटीक है[1]। इसी प्रकारके पहुँचे हुए सन्त अनन्त ब्रह्माण्डके कण-कणको व्यापक आत्मसत्तासे परिपूरित अनुभव करते हैं। जिस आत्मसत्तापर जिस प्रकार स्वयंकी देह अधिष्ठित है उसी प्रकार दृश्यमान पदार्थोंमें व्याप्त उसी सत्तापर ही विभिन्न प्रकारके आवरण परिवेष्टित हैं। अतः उनसे भयभीत होकर भागनेकी आवश्यकताका अनुभव सन्तोंको नहीं हुआ; परन्तु इनके दोषोंके प्रति उनमें अनवधान भी नहीं है, दोषोंको अपने अनुकूल बनानेमें तत्परताका परिचय इस सन्त-साहित्यमें सुलभ है। साधनाका क्षेत्र आध्यात्मिक होनेके कारण लोकसे सम्बन्धित समस्त सन्दर्भोंमें स्वतन्त्र-चिन्तन, समदृष्टि और समवृत्तिकी परिव्याप्ति होती है और इस चिन्तन-धाराका परिवेष आध्यात्मिक भावनाके प्रतिपादनको आवृत किए रहता है।

अभिमत

श्रीहरिरामदासजी महाराजकी समग्र वाणीका व्यापक अध्ययन करनेसे स्पष्टतः व्यक्त होता है कि वे आध्यात्मिक जीवनको ही सच्चा जीवन माननेवाले सन्त हैं किन्तु मानव-मात्रके प्रति सहज सहानुभूति होनेके कारण स्थान-स्थानपर मानवीय मूल्योंकी स्थापनाहेतु लोकमें प्रचलित कुप्रवृत्तियोंका खण्डन एवं सत्प्रवृत्तियोंका व्यापकरूपमें मण्डन करते हुए उन्होंने व्यावहारिक जीवनको अङ्गीकार किया है। व्यावहारिक जीवनकी स्वीकृति व्यक्तिपरक न होकर समाजनिष्ठ हो गई है। आत्मोत्थानके

---

१. कल्याण, सन्त अंक, श्रावण १९९४ पृ० २१।

प्रसंगसे जिन माया आदि सांसारिक प्रपंचोंसे दूर रहनेकी चर्चा है उन्हीं प्रपंचोंको आध्यात्मिक सन्दर्भमें पूर्णतया ग्रहण करते हुए कर्म-प्रवाहसे मुंह नहीं मोड़ा है अपितु इनके भोगोंसे सदा सर्वथा पृथक् रहे हैं।

इन्होंने वेदोपनिषदों, पुराणेतिहासों, स्मृतियों तथा आचार्यों आदिकी विचारधाराओं तथा योगियों, सिद्धों, नाथों, भक्तों और सूफियों आदिकी साधना-पद्धतियोंके उपादेय एवं व्यावहारिक तत्त्वोंको आत्मसात् करके "नाम" की दृढ नींवपर स्थित आध्यात्मिक धरातलपर स्वानुभूति-प्रभव अन्तश्चेतनामें स्फुरित भावात्मक निर्गुण-निष्ठाकी प्रतिष्ठा की है। प्रस्तुत वाणीमें स्थान-स्थानपर इसके उदाहरण उपलब्ध होते हैं।

उपरिविवेचित प्रसंगको श्रीजी महाराजने अपने एक-दो पदोंमें अनेक उपस्थित तथा अनुपस्थित सन्तोंको सम्बोधित करके सन्तोंके मतका निदर्शन एवं सन्तोंका स्वरूप प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं—हे सन्तों ! सन्तोंका मत यही है कि वह अनहदके तारोंकी झंकृत ध्वनिको सुनता है, सुरति और सबदसे नेह करता है, शूरवीरकी तरह दृढनिश्चय होकर अपने शरीर (के सुख-दुख) की आशा छोड़ देता है, ज्ञानका खड्ग लेकर पाँचों इन्द्रियोंसे युद्ध करता है और मनको बाँधकर वशमें कर लेता है। उसे सती स्त्रीकी प्रीति और रीति (व्यवहार) को देखना चाहिए जो प्रिय पतिकी कलारहित मृत देहके साथ अपने जीवित शरीरको जला देती है। निश्चय ही भ्रम और कर्मका नाश नामस्मरणसे ही होता है, उसीसे संसार (भय) नष्ट होता है। इस प्रकार हृदयमें आत्माके प्रति अनुराग उत्पन्न होनेपर घरमें ही परम आनन्दकी प्राप्ति हो जाती है[१]।

---

१. संतो संतन का मत एहा।
अनहद तार गगन धुनि वाकै, सुरति सबद का नेहा ॥ टेर ॥
सूरौ एक मतै रहै साचै, त्यागै तन की आसा।
ग्यांन षड्ग ले लड़ै पंच सुं, पकड़ै निज मन पासा ॥ १ ॥
देषौ प्रीत रीत सतीयन की, जीवत जिंद जलावै।
मृतग देह कला नही वाकै, तासुं मोह मिलावै ॥ २ ॥
लागी निसचै नांव निरंतर, भरम करम भव भागा।
जनहरिरांम आनंद भयौ घर मैं, उर उपज्या अनुरागा ॥ ३ ॥
(हरिजस सं. ६४)

रहनी

इनकी दृष्टिमें इस प्रकारके जीवनके लिए घर और वन दोनों समान हैं, क्योंकि वैरागी-विरक्त तो वही श्रेष्ठ है जिसका मन संसारसे अलग हो और गृहस्थी वही श्रेष्ठ है जो सबके प्रति सेवाभाव रखे[1]। हिरमिचसे रंगे हुए वस्त्रोंको पहनकर विरक्त बन बैठना महत्त्वपूर्ण नहीं है। वस्तुतः विरक्त तो वह होता है जो (घरमें रहते हुए भी और कोई विशिष्ट वेष धारण किए बिना भी) विषयोंसे पृथक् रहता हो[2]। उस साधकके लिए घरमें ही वैराग्य है जो रामनामस्मरणपूर्वक ध्यान करता हुआ आत्मनिरीक्षण करता रहता है, जो योगकी युक्तिद्वारा घर और वनको एक समान कर लेता है एवं द्वैत-भावको त्याग कर तीनों गुणोंसे निर्लिप्त होकर चतुर्थ (निस्त्रैगुण्य) अवस्थामें स्थित होता है। वह त्यागी ही क्या, जो शरीरसे त्यागी हो और मनसे त्यागी न हो। संशयोंसे अभिभूत और राग-द्वेषसे युक्त होकर कुलको तो त्याग देता है पर संसार (रूपी बड़े परिवार) में लीन हो जाता है। दिखावेके लिए मुण्डन करवाता है। अपने-परायेकी भेद-बुद्धि और विषयोंसे विद्ध मनको लिए हुए मानव जन्मको व्यर्थ ही गवाँ देता है। इनका स्पष्ट विचार है कि चाहे घरमें रहो या वनमें वास करो दोनों ही स्थानोंमें इच्छाओं या वासनाओंका परित्याग आवश्यक है। यदि नाममें निरन्तर लौ लगी रहे तो सर्वत्र ही ब्रह्मका विलास दृष्टिगोचर होगा। आत्मज्ञान हो जानेके पश्चात् भी जो आशा और रागसे मुक्त एवं निष्पक्ष होकर परोपकारी होता है उसपर श्रीजी महाराज स्वयं बलिहार हैं, वे उसे अपना सद्गुरु तक स्वीकार

---

१. वैरागी विरकत भलौ, जुग सु न्यारा मंन।
हरिया गिरही सो भलौ, सब सुं दासा तंन॥
(अंग ४७, सा. १२)

२. हरीया हिरमिच लायकै, बैठे विरकत होय।
विरकत सोई जाणीये, विषै विरता सोय॥
(छुटक साषी, १११)

करते हैं और अपनेको उसका दास कहते हुए भी नहीं सकुचाते हैं[1]। उनके विचारमें लोक-लाज, कुल-मर्यादा आदिका त्याग करके भक्तिभावसे पूरित होकर रात-दिन रामको अपने हृदयमें याद रखे, ज्ञान-ध्यानमें गलतान (सराबोर) रहे, सत्य बोले, जो मुँहसे कहे उसे शूरवीरकी तरह स्वयं पूर्ण करे। कलह और कल्पनाको नष्ट कर दे, गुणातीत होकर आनन्दमें मग्न रहे, साथ ही आशा तथा आत्मप्रशंसाकी इच्छा न करे, दम्भ, राग-द्वेष, मैं-तूँ की भेद-बुद्धि मनमें भी न रखे, मान-अभिमान न करे, आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक तीनों तापों और तीनों गुणोंसे परे चतुर्थपद (तीनोंके अभाव) में स्थित हो जाय। ऐसी निस्त्रैगुण्य स्थितिपर आरूढ होनेके पश्चात् भी दुर्बल एवं दीनोंके प्रति दयावान् होकर सामर्थ्यानुसार दान करे और किसी प्रकारका द्वंद्व एवं वाद-विवाद न करे, इस प्रकारकी रहनीसे ही सन्त भवसागरको तैरकर पार करता है और जो स्वयम् तैरकर पार जा सकता है वही दूसरोंको भी तार सकता है।[2]

---

१. संतो घर ही मैं वइरागा,
आपा उलटि आप कुं देषै, रहै रांम लिव लागा ॥ टेर ॥
घरमें जोग जुगति ही घर मैं, घर वन एको कीन्हा।
दोय कुं जीत तीन कुं त्यागै, जब चौथै चित लीन्हा ॥
जौ कोई त्याग भयौ तन जोगी, मन करि त्यागै नांही।
सांसा मिट्या न भया निसंसै, राग षेष घिल मांही ॥
कुल कुं छाडि भयौ जल लीणौ, मसतग मूंछ मूंडाया।
मैं तैं मांन विषै मन विंध्या, मथ्या जनम गमाया ॥
विंछया त्याग रहौ घर मांही, भावैं रहौ वनवासा।
नांव निरंतर ताली लागी, जांह तांह ब्रह्म विलासा ॥
आतम ग्यांन भया उपगारी, निरपष नेह निरासा।
जनहरिरांम ताहि बलि जांउ, सो सतगुर मैं दासा ॥
(हरिजस संख्या १४६)

२. संतो हरिजन ऐसा जांणी।
लोक लाज कुल कांणि न राषै, सिर परि षेल मंडांणी ॥ टेर ॥
निसदिन रांम रिदै नही भूलै, भाव भगति भरपूरा।
ग्यांन ध्यांन तन मन गल्तांनां, बोल वचन का सूरा ॥ १ ॥

इस प्रकार अनेक सात्विक गुणोंकी वृद्धिके उपायोंद्वारा सत्त्वमें स्थित होकर अभ्याससे गुणातीत (निस्त्रैगुण्य) होनेके उपरान्त भी इनके इस आदेशात्मक विचारमें मानवीय मूल्योंकी अवहेलना नहीं है। ऐसी दशामें भी उसे दुर्बल और दीनोंपर दया-भाव रखने और दान करते रहनेकी प्रेरणा इस दर्शनकी विशेषता है।

यह भी ध्यान रखनेका प्रसंग है कि स्वयं तैरकर पार होनेवाला ही अर्थात् भली-भाँति तैरना जाननेवाला और तैरनेका अभ्यासी ही किसी डूबते हुएको डूबनेसे बचा सकता है और तिरा सकता है। यही प्रासंगिक उल्लेख सन्तोंको भक्तकी कोटिसे अलग करता है। भक्त अपनी भक्तिद्वारा स्वयंको ही पार करता है, अपने अनुभवका सम्प्रेषण करके लोकको कल्याणकी ओर प्रवृत्त करना उसके स्वभावमें नहीं है, यद्यपि जनसाधारण भक्तोंके जीवनका अनुसरण भी करता है। किन्तु सन्त आत्मानुभूतिका बहुजनहिताय विशरण भी करता है और अपने जीवनको अनुकरणीय बनानेके प्रयत्नको भी नहीं छोड़ता है—यही तिरने और तिरानेका मन्तव्य है। श्रीजी महाराज ऐसे रामसनेही सन्तसे मिलनेकी सदा अपेक्षा रखते हैं जो सन्त अपने अवगुणोंको दूर करके दूसरोंके अवगुणोंको भी मिटाता हो[1]।

प्रस्तुत वाणीके रचयिता सन्त श्रीहरिरामदासजी महाराज यद्यपि पहले रामानन्दीय वैष्णव मतमें दीक्षित थे किन्तु दिव्य महापुरुषकी कृपासे निर्गुण उपासनाका आदेश और तत्त्वका ज्ञान प्राप्त हो जानेपर वे पूर्ववर्ती निर्गुण-धाराके सन्तोंकी तरह 'मत' की अपेक्षा 'तत' (तत्त्व)

त्रिगुन रूप रहै आनंद मैं, कलह कलपना भांनै।
आसा छाडि रहै निर आसा, डंभ वडाई नांनै॥ २॥
राग दोष मैं तैं नही मनमैं, मांन गुमांना मेटै।
तीन ताप तिरगुन सुं न्यारा, चौथै पद कुं भेटै॥ ३॥
दुरबल दीन दयानिध दाता, दंद वाद कुछ नांही।
जनहरिरांम तिरै सोई तारै, इन भव सागर मांही॥ ४॥

(हरिजस सं. ६५)

१. हरीया असा को मिलै, रांम संनेही संत।
अपना औगन दूरि करि, औरन का मेटंत॥ (अंग ५९, सा० १२)

को अधिक महत्त्व देने लगे। वे स्वयम् तत्त्वमें अनुरक्त थे 'मत' में नहीं; क्योंकि उनका स्पष्ट विचार था कि मतवादियोंको तत्त्वकी प्राप्ति नहीं होती[1]। वे यह भी अनुभव करते हैं कि स्वयंका मान, स्वयंकी महिमा और स्वयंके मतके प्रति आकृष्ट होकर उनकी धारणा करनेवाले उसपार नहीं जा सकते, जबतक उनमें लघुताकी भावना और तत्त्वनिष्ठा न हो[2]। अपने प्रति इनकी तीव्र जागरूकता तब प्रगट होती है जब ये अपनी वाणीरचनाको भी मायाका स्वरूप बतलाते हैं। वे समझते थे कि संसारमें माया नाना प्रकारकी होती है—किसीके लिए वह पुत्र, वित्त और कलत्रके रूपमें होती है तो किसी (सन्त) के लिए अनुभव-वाणीके रूपमें आती है[3]। इससे स्पष्ट है कि सन्तोंको अपनी वाणीके प्रति भी मोह या दुराग्रह नहीं होता, सन्त वाणीका सर्जन भी निर्लिप्त भावसे किया करते हैं। श्रीजी महाराज तो बावन अक्षरों (मातृकाक्षरों) के प्रस्तारों और अनुभव-वाणी तथा वेदों और पुराणोंको भी 'राम' को जाने बिना थोथा समझते थे[4]। वेदोंका पाठ और अनेक सद्विचार तथा अनुभव-ज्ञान (वाणी) चाहे कितना ही सुनो, सुनाओ जबतक आत्माकी खोज नहीं करोगे तब-तक स्वयं भी भूलकर भटकते रहोगे और दूसरोंको भी भुलावेमें भटकाते रहोगे[5]।

---

१. हरीया रता तत का, मत का रता नांहि।
मत का रता से फिरै, तांह तत पाया नांहि ॥ (प्रसंग ९, सा० १)

२. मांन वडाई मत कुं, धारत हैं बौह लोय।
हरीया लघुता तत बिन, पार न पैला होय ॥ (अंग २६, सा० ४)

३. माया नाना भांति की, हरीया जुग मैं जांनि।
काहू सुत वित असतरी, काहू अणभै बांनि ॥
हरीया सुत वित असतरी, अणभै बांणी बोलि।
एता मन सुं दूरि करि, हरि निर अंतर षोलि ॥ (छुटक, सा० ८७-८८)

४. बावन ही अछर पढि जांण्या, जांणी अणभै बांणी।
एकै ररै ममै विण जांण्यां, थोथा वेद पुरांणी ॥ (हरिजस, सं० ९३।५)

५. वेद पाठ बौह करत विचारा, अणभै ग्यांन सुणाय।
जब लग आपौ षोजत नांही, भूलौ और भुलाय ॥
(हरिजस, १०३ । ५)

इस आत्माकी खोज और जीवके निस्तरणके लिए भी घर और वनको कारण नहीं माना है। निस्तरण तो उस रामनामको भजनेसे होता है जिस रामनामको ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शेष, नारद, नर, सुरपति आदिने भजा है। ऋषभदेव-अवतार, ध्रुव, प्रह्लाद, मछंदर, राजा जनक, दुर्वासाऋषि, राजा परीक्षित ये सभी रामनामसे ही सनेह करनेवाले थे। वनोंमें वास करनेवाला बालयति शुकदेव जैसा तो कोई विरला ही होगा परन्तु उसका भी गुरु 'गृहस्थी' जनक ही था। करमां, मीरां, शबरी, कुंती, सीता और गणिका तथा सिरियादे आदि नारियाँ कब घर छोड़कर वनवासिनी बनी थीं। और भी अजामिल, अम्बरीष और उद्धव जैसे महात्मा सभीका तो रामनामसे ही उद्धार हुआ था, और भी अनेक सन्त-महन्त नामसे ही परमपदकी प्राप्ति करनेवाले हो चुके हैं। इसी रामनाम-को अंतरमें भजना चाहिए तथा इसके लिए घर और वन समान हैं[१]। चाहे घरका त्याग करनेवाला हो चाहे कोई गृहस्थी हो, यहाँ तो 'राम' से 'सुरति' लगानेवालेका महत्त्व है, कोई गूदड़ी (गूदड़वेष) धारण करता है या पगड़ी बाँधकर रहता है इसका यहाँ कोई महत्त्व नहीं है[२]।

---

१. संतो घर वंन कारण नांहि,
एक नांव सब कौ निसतारौ, भजीयै अंतर मांहि ॥ टेर ॥
ब्रह्मा विसन सेस सिव नारद, नर सुरपति ले आदि।
गिरही रिषव देव औतारा, और की कौन मुनादि ॥ १ ॥
धू पहीलाद मछंदर जोगी, राजा जनक वदेह।
रिष दरवासा और परीषत, सीधा नांव संनेह ॥ २ ॥
बाल जति नां कोई सुषदे सा, वन षंड वासा कीन।
उल्टा जिन गिरही गुर कीन्हा, जब हरि दरसन दीन ॥ ३ ॥
करमां मीरां और भीलणी, ध्रोवा कूंतां नारि।
सीता अर गिनका सिरीयादे, कब निकली घर बारि ॥ ४ ॥
अजामिल अमरीक उधव से, अैसे और अनन्त।
जनहरिरांम रांम सिंवरन सुं, उधरे संत महन्त ॥ ५ ॥
(हरिजस सं० १०६)

२. हरीया त्यागी अर ग्रिही, सुरति रांम सुं सिंध।
भावै धागागूदड़ी, भावैं पगड़ी विंध ॥
(छुटक, सा० ९७)

निष्कर्ष

सारांशतः इनके मत और मतके स्वरूपके विषयमें निम्नलिखित प्रसंग ध्यान देने योग्य हैं—

राम नामके समान कोई नाम नहीं है[1]। तत्त्वके समान कोई मत नहीं है। निर्गुणसे स्नेह करनेके बराबर कोई स्नेह[2] नहीं है। अपनी देहके तुल्य कोई देव-मन्दिर नहीं है और आत्माके तुल्य कोई देव नहीं है[3]। आत्मपरिचयसे श्रेष्ठ कोई चमत्कार नहीं है[4]। सबदके समान कोई सत्य नहीं है[5]। सहज सुमिरनके सदृश कोई सुमिरन नहीं है[6]। सद्गुरुकी सेवाके बराबर कोई सेवा नहीं है[7]। तन, मन, वचनका त्याग करनेके तुल्य कोई त्याग नहीं है[8]। भावसे श्रेष्ठ भक्ति नहीं है[9]। विश्वासके समान कोई प्रीति नहीं है[10]। साधुके समान कोई सम्बन्धी नहीं[11] और दीनके समान कोई बन्धु नहीं है[12]। तथा रहनीके सदृश कोई कथनी नहीं है[13]। निरंजनके सदृश कोई नूर नहीं है[14]।

दार्शनिक विषय

अधिकांशतः भारतीय आस्तिक दर्शनोंमें विवेचित सिद्धान्तोंका ही विवेचन सन्त-साहित्यमें प्राप्त होता है। हमारे विचारमें दर्शन-ग्रन्थोंमें

---

१. नांव न कोई रांम सा। (ग्यांन परिछया, सा० २)
२. मता न कोई तत्त सा, त्रिगुण सा नही नेह। (,, ,, सा० ११)
३. देवळ ना कोई देह सा, आतम सा नही देव। (,, ,, सा० २)
४. आपै सा परचा नही। (,, ,, सा० ६)
५. साच न कोई सबद सा। (,, ,, सा० ८)
६. सिवरन ना कोई सहज सा। (,, ,, सा० ९)
७. सतगुर सी नही सेव। (,, ,, सा० २)
८. त्याग न तन मन वचन सा। (,, ,, सा० १०)
९. भगति न काई भाव सी। (,, ,, सा० ६)
१०. प्रीत न को परतीत सी। (,, ,, सा० १८)
११. सगपण ना कोई साध सा। (,, ,, सा० ७)
१२. बंधु नां कोई दीन सा। (,, ,, सा० १५)
१३. कहतब नां कोई रहत सा। (,, ,, सा० १६)
१४. निरजन सा नही नूर। (,, ,, सा० १६)

विवेचित दर्शनका अपरोक्ष अनुभव करके उस स्वानुभूत सिद्धान्त एवं साधनाकी प्रक्रियाका अपने ढंगसे निरूपण ही सन्त-साहित्य है। प्रस्तुत वाणीमें वर्णित अनेक विषय-निरूपणोंके सारको दो ही विभागोंमें विभक्त किया जा सकता है—

१. अनेक रूपोंमें दिखाई देनेवाले इन नाना प्रपञ्चोंमें व्याप्त पारमार्थिक एकीभाव।

२. राम-नाम स्मरणपूर्वक सहज योगद्वारा सर्वत्र अनुस्यूत उस एकात्म-भावका साक्षात् अनुभव।

इन्हीं दो सार तत्त्वों, ब्रह्माण्ड और पिण्ड अर्थात् ब्रह्म और आत्माका सर्वथा ऐक्य प्रतिपादन और इस ऐक्यानुभवकी प्रक्रियाके विवेचनामृतसे यह वाणीरूपी सागर भरा पड़ा है। इसमें पूर्णरूपेण अवगाहन करनेका सौभाग्य तो विरले सन्त ही कर सकते हैं; किन्तु इसके घाटोंपर बनी सीढियोंपर बैठकर इस अमृतधाराके स्पर्श-सुख तथा अमृतके किंचित् आचमन करनेकी भाँति इस वाङ्मुख (भूमिका) में उन प्रसंगोंपर सामान्य दृष्टि डालने मात्रका ही यहाँ अवकाश है, अतः कुछ प्रमुख प्रसंगोंको परिचयार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है।

ब्रह्म

प्रायः सभी सन्तोंकी वाणियोंमें ब्रह्म, आत्मा, माया, जीव आदिका विवेचन उपलब्ध होता है उसी प्रकार श्रीहरिरामदासजी महाराजकी इस वाणीमें भी इन विषयोंपर प्रकाश डाला गया है। उपनिषदादि वेदान्त ग्रन्थोंमें जिस ब्रह्मको—

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥
(ईशावास्य० मं० ५)

यो देवोऽग्नौ योऽप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश।
य ओषधिषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः॥
(श्वेता० अ० २ मं० १७)

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत्।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते॥
(श्वेता० अ० ६ मं० ११)

स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट् ।
स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमा ॥
(कैवल्योप० खं० १ मं० ८)

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि ।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते ॥
(रामोत्तरतापिनी०)

न जायते न म्रियते न शुष्यति न क्लिद्यते न दह्यते न कम्पते न भिद्यते न छिद्यते निर्गुणः साक्षिभूतः शुद्धो निरवयवात्मा केवलः सूक्ष्मो निर्ममो निरंजनो निर्विकारः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धवर्जितो निर्विकल्पो निराकांक्षः सर्वव्यापी निर्वर्ण्यश्च पुनात्यशुद्धान्यपूतानि ।
(आत्मोपनिषत्)

—इस प्रकार प्रतिपादित किया है उसी प्रकारसे प्रायः यहाँ भी प्रसंग उपलब्ध होते हैं सर्वप्रथम 'ब्रह्मस्तुति' में ही अपने स्तुत्य स्वरूप को निरगुन, नाथ, देव, निरंजन, समर्थ, स्वामी, आप, अपरंपार, महरम, न्यारा, परमेश्वर, चेतन, तारी, निरासन, आदि-अन्तरहित, प्रकाश-स्वरूप, ब्रह्म, प्रियतम, माधव, नामस्वरूप, कर्ता, राम, निर्मल, निष्कलंक, निकुल, नित्य, नारायण, अमर, अधर, निराकार, अविचल, अनुभव-स्वरूप, अनुपम, साहिब, सहज, कालनिकन्दन, दाता और तमको नाश करनेवाले आदि नाम-रूपोंमें स्मरण किया गया है[1] । इसके अतिरिक्त

---

१. परम वंदन परम सेवा, परम दीन दयाल तुं ।
परम आतम परम यारी, परम स्वरग पयाल तुं ॥ १ ॥
नमो निरगुन नमो नाथुं, नमो देव निरंजनं ।
नमो संमृथ नमो सामी, नमो सकल सिरजनं ॥ २ ॥
नमो अवगति नमो आपुं, नमो पार अपंपरं ।
नमो महरंम नमो न्यारा, नमो पद परमेस्वरं ॥ ३ ॥
नमो चेतन नमो तारी, नमो निज निरासनं ।
नमो आदि न नमो अंता, नमो ब्रह्म प्रकासनं ॥ ४ ॥
नमो पीतंम नमो माधौ, नमो नांव न केवलं ।
नमो कायम नमो करता, नमो रांम निरमलं ॥ ५ ॥
नमो निकलंक नमो निकुला, नमो नित नरायनं ।
नमो अमर नमो अधरा, नमो पीव परायनं ॥ ६ ॥

ब्रह्मके स्वरूपको वर्णन करनेके प्रसंगमें उसके लिए ब्रह्म, आतम, सीव (शिव), हरि, राम, पूरण, परब्रह्म, साईं, साहब आदि अनेक नामोंका प्रयोग मिलता है। ये प्रयोग भारतीय दर्शनों वा पुराणोंमें एवं पूर्वकालीन सन्तों द्वारा भी पूर्व-प्रयुक्त हैं उसी परम्परामें इनका यहाँ ग्रहण है। प्रस्तुत वाणीमें ब्रह्मके स्वरूप-वर्णनका एक स्थल 'नाँव परचौ' ग्रन्थ भी है, उसमें ब्रह्मका स्वरूप इस प्रकार है—

ब्रह्म त्रिपाय गुण ग्रभ गळीया। जुरा नांहि झंपै भै कंप टळीया॥
ब्रह्म भवतार भय रहत होई। ब्रह्म अवगति आणंद सोई॥
ब्रह्म निरवंध निरबांण नितुं। ब्रह्म पी अपी परमान चितुं॥
ब्रह्म अनहद अनवी नवी सा। ब्रह्म अनाथ के नाथ ईसा॥
ब्रह्म वदेह त्रिभेव देवा। ब्रह्म त्रिपाप त्रिपुन लेवा॥
ब्रह्म अडोल भय नांहि डोलै। ब्रह्म अबोल बिन मुष बोलै॥
ब्रह्म अतोल नही मुष माया। ब्रह्म अपार किन पार पाया॥
ब्रह्म निरंजंन निरगुन न्यारौ। ब्रह्म परमातमा आतम प्यारौ॥
ब्रह्म अग्याध कोई साध जांणी। और षुर घींस सिर नाक तांणी॥

जिस ब्रह्मको दर्शनोंमें 'नेति' 'नेति' कहकर स्पष्ट किया गया है उसी प्रकार यहाँ 'नांवपरचौ' ग्रन्थमें भी इसे वर्णित किया गया है वह वहीं द्रष्टव्य है। साथ ही वे जिसे नेति नेति स्वयं कहते हैं उसे और स्पष्ट करके कहते हैं कि जिसे मैं 'नको' 'नको' कहता हूँ वह नहीं है। वह है। जो 'नहीं' है वह भी वही है क्योंकि वह व्यापक है और न्यारा भी है—

नको नको मैं कहत हूं, नही'स है है नांहि।
हरीया न्यारा ब्रहम है, व्यापक सबकै मांहि॥
(टि० पृ० ३८९ 'ग' प्रति)

यह ब्रह्म घट-घटमें उसी प्रकार है जिस प्रकार बादल-बादलमें बिजली होती है किन्तु 'अपने आप' का भेद जाने बिना मूर्खको विश्वास

नमो हरधम निराकारं, नमो निगम निरूपनं।
नमो अवचल नमो अनुभै, नमो एक अनूपनं॥ ७॥
नमो साहिब नमो सहजां, नमो काल निकंदनं।
दासहरीया नमो दाता, नमो तम निरदंदनं॥ ८॥
(ब्रह्मअसतूत, पृ० १)

नहीं होता[१]। जो लोग उस परब्रह्म परमात्माको एक सीमित प्रदेश अर्थात् मन्दिर आदि स्थानोंमें ही स्थित समझ बैठे हैं (सर्वव्यापी नहीं) उनको लक्ष्य करके भी इस वाणीमें विभिन्न स्थलोंपर प्रकारान्तरसे प्रकाश डाला गया है—'जो पड़देमें छिपा रह सके वह साईं नहीं हो सकता, हरि (आत्मतत्त्व) तो वह है जो किसी सम्पुटमें नहीं समाता है।'[२] 'भेष (पंथ और उनकी वेष-भूषा) का पड़दा तान करके (खींचकर) 'भरम' और 'करम' को दूर कर दो और तब, जहाँ-तहाँ घट-घटमें एक ही ब्रह्मको पहचान लोगे[३]।' 'वह साहब दृष्टि और मुष्टिमें नहीं आ सकता क्योंकि उसकी कोई रूप-रेखा नहीं है उसे तो सहज साधनासे दिल ही में देखा और परखा जाता है[४]।' इस प्रकार 'सर्वं ह्येतद्ब्रह्म' का औपनिषदिक सिद्धान्त यहाँ प्रतीत होता है और उसी सच्चिदानन्द ब्रह्मको 'तत्त्वमसीत्येवं संभाष्यते। अयमात्मा ब्रह्मेति वा ब्रह्मैवाह-मस्मीति वा' आदि रूपोंमें 'बह्वृच' में कहा है; इसी तरह यहाँ भी ब्रह्मके साथ-साथ आत्माके स्वरूपका भी विवेचन किया गया है।

आत्मा

"जिससे यह सब विश्व व्याप्त और विस्तृत है अर्थात् जो स्वयं विश्वरूप होकर सर्वत्र फैल रहा है उस आत्माको तू अविनाशी नाश-

---

१. ज्युं घट घट मै ब्रहम है, वादल वादल वीज।
हरीया आपा भेद विन, मूरष कहा पतीज॥
(टि० पृ० ३८९ 'ग')

२. पड़िदा में छिपीयौ रहै, सो सांई नही थाय।
हरीया हरि तिंह लोकं मैं, संपट मांहि न माय॥
(अंग, ४४ सा० १)

३. हरीया जांह तांइ हेक है, भेष पड़दी तांणि।
भरम करम कुं दूरि करि, घट घट ब्रह्म पिछांणि॥
(अंग, ४३ सा० २)

४. साहिब दिष्ट न मुष्ट मै, रूप न रेषा नांहि।
हरीया सांई सहज मैं, देष पाषि दिल मांहि॥
(अंग, ४४ सा० ४)

रहित जान, यह निर्विकार है, इसका नाश कोई नहीं कर सकता[1] ।" इस गीताके विचारको ही प्रस्तुत वाणीमें विस्तारसे कई स्थानोंपर विभिन्न प्रकारोंसे समझाया है । इनके शब्दोंमें आदि, अन्त और मध्यमें अर्थात् सर्वत्र दसों दिशाओंमें एक ही निरंजन राम (आत्मतत्त्व) अपना अधर मठ स्थापित किए हुए स्थित है[2] । तूँ (आत्मा) जहाँ-तहाँ सर्वत्र व्यापक है । ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ तूँ व्याप्त न हो, तुझे किसीका भय नहीं है, तूँ उसी प्रकार मुझमें भी व्याप्त है[3] । जनहरीयाके विचारसे आत्मासे रहित संसारमें कुछ भी नहीं है । कोई इसे एक रूपमें देखता है तो यह एक है और अनेक रूपमें देखता है तो यही आत्मतत्त्व अनेक है[4] । यह आत्मा अपने अन्दर ही है किन्तु दुनिया इसे दूर जाकर खोजती है; पर दोनों ही मार्ग सही हैं । इसे जो दूर (बाहर) कहते हैं तो यह दूर भी है और इसे जो अपने आपमें उपस्थित जानते हैं तो यह उपस्थित भी है ।[5] क्योंकि यह अपार सागर हरि (आत्मतत्त्व) से पूर्णतः भरा हुआ है, यहाँ राई जितनी ठौर भी उससे खाली नहीं है[6] ।

---

१. अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥
(गीता, अ० २, श्लो० १७)

२. आदि अन्त मधि एक है, रांम निरंजन राय ।
जनहरीया दसहुं दिसा, रहै अधरमठ छाय ॥
(अंग, ४३ सा० ५)

३. तुं जांह तांह व्यापक रहै, कठै अव्यापक नांहि ।
तुझि कुं किसका डर नही, जनहरीया मुझि मांहि ॥
(अंग, १८ सा० १९)

४. जनहरीया सांई विनां, षाली षलक न कोय ।
एक धरै तांह एक है, दूज करै तांह दोय ॥
(अंग, ४३ सा० ३)

५. हरीया हरि अन्तर बसै, दुनियां देषै दूरि ।
दूरि कहै तांह दूरि है, हाजरि जांनि हजूरि ॥
(अंग, ७२ सा० ६)

६. हरि दरिया सूभर भर्या, पार अपंपर थाय ।
हरीया राई एतली, हरि विन ठौर न काय ॥
(अंग, ४३ सा० ६)

यद्यपि आत्मा सर्वव्यापी और विभु है किन्तु उसे पहचानने और प्राप्त करनेके लिए कुछ प्रयत्नकी आवश्यकता होती है। हरीयाके विचारसे काष्ठमें व्याप्त अग्निके समान तथा दूधमें व्याप्त घृतके समान शरीरमें आत्माकी व्याप्ति है किन्तु मन्थन किए विना उसकी उपलब्धि नहीं होती[१]। जैसे चकमक-पत्थरमें अग्नि रहती है वैसे ही शरीरमें आत्माका निवास है पर मूर्ख इसका भेद न जाननेके कारण अन्यत्र पूजा करनेको जाते हैं[२]। माया तीन गुणोंके रूपवाली है और ब्रह्म रूपरहित है। कोई-सा ही व्यक्ति इस रूप और अरूपको अलग-अलग करके देख पाता है[३]। एक अनित्य है और एक नित्य है। इसे आदिसे अन्ततक देख लो। अनित्यको धारण करनेसे अनित्यता (जन्म-मरण) ही प्राप्त होगी और नित्यको जाननेसे आवागमन नष्ट हो जायगा[४]। इसको पहचाननेके लिए मन्थन-की आवश्यकता उन्होंने अनुभव की होगी, इसीलिए इसे पत्थरमें बसने-वाली अग्नि तथा काष्ठमें व्याप्त अग्नि तथा दूधमें व्याप्त घीकी उपमा दी है[५]।

---

१. दारक मैं पावक बसै, आतम तन कै मांहि।
हरीया पय मैं ध्रित है, त्रिन मथीयां कुछि नांहि॥
(नांव परचा, ९३ पृष्ठ ३९०)

२. ज्युं पावक पथरी बसै, आतम तन कै मांहि।
हरीया मूरष भेद विन, औरां पूजण जांहि॥
(अंग, १८ सा० ५२)

३. माया त्रिगुण रूप है, ब्रह्म निरूपी होय।
हरीया रूप निरूप कुं, न्यारा निरषै कोय॥
(टि० पृ०, ३८९, 'ग')

४. इक इनता इक नित्य है, आदि अंत तै लाय।
इनता धरि मरि भी धरै, नित न आवै जाय॥
(टि० पृ०, ३९०)

५. जौं पावक पाहण वसै, जौं कासट फुन जांणि।
ज्युं दूधन मैं घ्रत है, जौं आतिम रांम पिछांणि॥ (वही)

जीव

चौरासी लाख योनियोंमें आत्मतत्त्व तो एक ही है किन्तु उनके तन और मन अलग-अलग होनेसे अनेक होनेका भ्रम होता है[1]। क्योंकि इन्द्रियोंके विषयोंमें स्नेहबन्धन होनेसे ही यह 'जीव' कहलाता है किन्तु वह अलष निरंजन परमप्रिय 'अपना आप' (आत्मा) सबसे भिन्न ही है[2]। मोहिनी मायाके आवरणसे बंधा (घिरा) हुआ होनेसे ही यह जीव कहलाता है। अतः इस मायासे सम्बन्ध विच्छेद कर लेने से सहजहीमें इस जीवको 'सीव' मिल जाते हैं। और जब जीव 'सीव' में मिल गया और 'सीव' जीवमें मिल गया तब वृक्ष और वृक्षकी छायाकी भाँति दोनों अन्तररहित हो जाते हैं। जीव और 'सीव' के विषयमें वृक्ष और वृक्षसे उत्पन्न छायाका दृष्टान्त बड़ा ही सरल है। लौकिक दृष्टान्तोंके द्वारा ही जन-मानसको लाभान्वित करना सन्त-साहित्यकी विशेषता है। इनके विचारसे वृक्षकी छाया जिस प्रकार वृक्षके स्थिर और यथावस्थित रहते हुए भी घटती-बढ़ती है और जब छाया वृक्षमें ही समा जाती है तब वह न घटती है और न बढ़ती है, अपचय या उपचय कुछ नहीं होता, उसी प्रकार जीव जब विषयोंके बंधनसे बद्ध है तवतक उसकी उत्पत्ति और प्रलय होती है किन्तु जब मायासे सम्बंध तोड़कर आत्मस्थित हो जाता है तब फिर वह भी आत्माकी ही तरह अजर-अमर हो जाता है और उससे कभी पृथक् नहीं होता[3]।

---

१. लष चौरासी बीच मै, हरीया आतम एक।
तन मन सेती पंतरया, लागा भरम अनेक॥
(छुटक, सा० १९०)

२. बंधे विषै सनेह सुं, तातै कहीयै जीव।
अलष निरंजन आप है, हरीया न्यारौ पीव॥
(छुटक, सा० २१६)

३. हरीया माया मोहनी, जा सुं बंधे जीव।
तासुं तांतो तोड़ि करि, सहज मिलैंगे सीव॥
जीव मिलाना सीव मैं, सीव जीव कै मांहि।
हरीया छाया विरष की, ऐसैं अंतर नांहि॥

आत्मा निर्विकार है, शाश्वत सत्य है अतः उसका न तो कभी जन्म होता है और न कभी नाश ही होता है। "तीनों लोकां और चौदहों भुवनों-की उत्पत्ति भी होती है और नाश भी होता है किन्तु आत्मा अमर है, वह न मरता है न जन्म लेता है"[१]। जो जन्म-मरण-धर्मा है उस नाश-वान्से सनेह क्या किया जाय ? सनेह तो उस आत्मासे करो, जो न कभी नष्ट होता है और न कभी पुनः उत्पन्न"[२]। इनका तात्पर्य है कि व्यष्टि-भावरूप जीव और समष्टि-भावरूप ईश्वर, वस्तुतः सर्वात्मा—परमात्मा अथवा ब्रह्मसे भिन्न नहीं है किन्तु सब ब्रह्मरूप ही हैं[३]। जीवात्मा भी जब अपने व्यक्तित्वके राग-द्वेषादि द्वंद्वोंके आवरण (पड़दे) को हटा देगा तब अपने असली स्वरूप सर्वात्मभावका पुनः अनुभव करनेकी समष्टि-भावकी स्थितिको प्राप्त हो जायगा[४]।

जीवात्मा व्यष्टि-भावको प्राप्त होकर व्यक्तित्वके इच्छा, राग-द्वेष आदि द्वंद्वोंको स्वीकार कर लेता है तो अपने शिवस्वरूप सर्वात्म-भावको भूलकर अपनेको सीमित मान बैठता है[५] किन्तु सहजको प्राप्त करनेका मार्ग सहज ही है। उसी सहज मार्गसे सहजमें स्थिति होती है और जीव और सीव (ब्रह्म या शिव) का एक ही स्वरूप हो जाता है[६]। जीव और सीव दो नहीं हैं एक ही है, जैसे जलमें जल मिल जाने-

---

हरीया छाया विरष की, वधै घटै वहि जाय।
मेला जीव'र सीवका, न्यारा कबू न थाय॥

(प्रसंग, ३२)

१. तीन लोक चवदै भवन, उतपत परलै होय।
हरीया आतम अमर है, मरै न जीवै कोय॥

(अंग, १० सा० ३०)

२. जनहरीया जनमै मरै, जासु किसा संनेह।
आतम षपै न ऊपजै, तासु करीयै नेह॥

(अंग, ६७ सा० ५)

३. गीता अध्याय, १३ श्लो० २२।

४. गीता अध्याय, ४ श्लो० १०।

५. गीता अ० ७, श्लो० २७।

६. सहजां मारग सहज का, सहज कीया विसरांम।
हरीया जीव'र सीव का, भया एक ही ठांम॥

(नांव परचौ, ४२)

पर अल्गा नहीं होता[1]। जब जीव और सीव मिलकर एक हो जाते हैं तो वह आनन्दस्वरूप पूर्ण ब्रह्मकी स्थिति होती है जिसके आदि, मध्य और अन्तमें उसके अतिरिक्त कुछ नहीं होता[2]।

माया

ऊपर कह आये हैं कि जीव और सीव दोनों एक ही हैं अर्थात् जीव और ब्रह्म अभिन्न हैं किन्तु इस जीवात्मा और परमात्मामें अन्तरकी प्रतीतिका कारण माया है। जो अविद्या जीवको इन्द्रियजन्य विषयोंके आनन्दमें फंसाकर उसे अपने मूल आत्मस्वरूपको भुला देती है वही माया है, उसी मायाके वशमें होकर संसारमें भेद-भावका प्रवर्त्तन होता हैं। इसी मायाके द्वारा जीव संसारमें आसक्त होता हैं। केवल जीव ही नहीं ब्रह्म भी मायावच्छिन्न होनेपर ही सगुणस्वरूप होकर संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और पालनमें प्रवृत्त होता है। आचार्य शंकरके मतमें मायाको भ्रमस्वरूप माना है। अज्ञानसे तथाकथित नाम-रूपोंमें अध्यास ही भ्रम है। प्रस्तुत वाणीमें माया शब्दको दो अर्थोंमें लिया गया है। एक तो पूर्वोक्त अर्थ है और दूसरा माया शब्दका अर्थ 'सांसारिक वैभव' आदि है। यहाँ हम पहले अर्थके विषयमें ही विचार कर रहे हैं।

श्रीहरिरामदासजी महाराजके विचारोंमें निर्विकार निर्विकल्प ब्रह्म रूपरहित और गुणातीत है, नित्य है। पर माया तीन गुणोंवाली है[3]। यह माया उसी ब्रह्मकी है, यह बड़ी प्रबल है[4]। समस्त जगत्में

---

१. हरीया हरिजन हेक है, जीव सीव नही दोय।
ज्युं नीर मिलांना नीर मैं, फिर न्यारा नही होय॥

(अंग, १० सा० ४७)

२. जीव अर सीव मिल एक राई। पूरणा ब्रह्म जांह सुषदाई॥
आदि अरु अंत नां मधि कोई। जीव जांह सीव मिल एक होई॥

(नांव परचौ, ४३, ४४)

३. माया त्रिगुण रूप है, ब्रह्म निरूपी होय।

(टि० पृ० ३८९ 'ग')

४. हरीया माया रांम की, बड़ी अपरबल होय। (अंग, २५ सा० १)

छा रही है[१]। जैसे वृक्षमें वृक्षकी छाया लिपटी हुई (अन्तर्भूत) है, उसी प्रकार ब्रह्मसे माया लिपटी हुई है, इसका अलग होना कठिन है[२]। किन्तु यह माया स्थिर नहीं है और इस मायासे रचित काया और यह संसार भी स्थिर (नित्य) नहीं हैं क्योंकि निराकार ब्रह्मके अतिरिक्त सभी आकार अस्थिर (नाशवान्) हैं[३]। इस मायाको ठगनी, मोहनी, पापिन, नागनी, विषवेली आदिके रूपमें देखा गया है।

यह माया बड़ी ठगोरी है और बलवान् है, यह किसीसे नहीं टलती है। इसने सारे संसारको भुलावेमें डाल रखा है[४]। तीनों लोकोंमें इसकी ठगाई चलती है। विशेषता यह है कि अजान लोगोंको तो ठगती ही है पर जाननेवाले ज्ञानियोंको भी ठग लेती है[५]। इस मोहनीने सुर, नर, नाग (तीनों लोकोंके निवासियोंसे अभिप्राय है) सबको मोहित कर लिया है। एक मात्र 'रांम-जन' जिसके चित्तमें वैराग्य उत्पन्न हो चुका है उसे मोहित नहीं कर सकती[६]। माया बड़ी पापिन है, इसने मुनिजनोंको भी मोह लिया है[७]। नागिनकी तरह मुख बाये हुए यह माया तीनों लोकोंमें

---

१. हरीया माया रांम की, रही सकल जुग छाय। (अंग, २५ सा० २)

२. ऐसैं छाया विरष सुं, हरीया रही लपटि।
जैसैं माया ब्रह्म सुं, कैसैं जाय विछटि॥
(रामनाम सि० विचार, सा० ८)

३. काया माया थिर नही, थिर नही यो संसार।
जनहरीया निरकार विन, और इथर आकार॥
(अंग, २५ सा० ४४)

४. वडी ठगारी जांनीयै, हरीया माया जोरि।
और किनी सुं नां टरी, लीया त सब्र जुग भोरि॥
(अंग, २५ सा० ४)

५. जनहरीया तिंह लोक मैं, माया ठगनी जांनि।
केईक ठगीया जांणता, केई ठग्या अजांनि॥
(अंग, २५ सा० ५)

६. हरीया माया मोहनी, मोह्या सुर नर नाग।
एक न मोह्या रांमजन, उर उपज्या वैराग॥
(अंग, २५ सा० ७)

७. हरीया माया पापनी, लीया मुनीजन मोहि।
(अंग, २५ सा० ८)

बस रही है। जहाँ भी जाता हूँ वहीं यह खानेको दौड़ती है[1]। माया विषकी बेल है, इसके फलोंको चखनेवाले सदा निराश हुए हैं[2]। इस व्यापक मायाके अतिरिक्त समझमें न आनेवाली एक सूक्ष्म माया जिसे सन्त-साहित्यमें झींणी माया कहा जाता है उसको उपर्युक्त मायासे भी प्रबल बताया है। मोटी मायाको छोड़नेवाले अनेक हुए हैं लेकिन झींणी माया प्राणोंमें गड़ी हुई रह ही जाती है[3]। चोवा, चंदन, अच्छा निवास, अच्छा भोजन, विषयोंके भोग आदि त्याग देनेसे और खाकमें रहनेसे कुछ नहीं होता क्योंकि इनको त्यागनेकी जो मान-बड़ाई है वह पीछे लग जाती है और मान-बड़ाईको धारण करनेवाले अपने आपमें अकिंचन (लघुता) का भाव हुए विना भव पार नहीं कर सकते[4]।

यहाँ पुत्र, वित्त, कलत्र आदिको तो माया माना ही है, साथ ही मायाके नानात्वमें अनुभव-वाणी कथन करना भी मायाका स्वरूप माना है, यह भी झींणी मायाके अन्तर्गत है[5]। इस मायाका प्रभाव बड़ा ही विचित्र है। जबतक यह माया है तभीतक यह काया खड़ी है और जबतक काया है तबतक ही जीवकी स्थिति है। तो फिर यह प्रश्न उठता है कि 'जीव और सीव' का सामरस्य कैसे हो सकता है? इसका समाधान यह है कि जिस प्रकार ब्रह्मका और मायाका सम्बन्ध है वैसा ही कायाका और जीवका सम्बन्ध है अर्थात् ब्रह्म सत्य है और माया मिथ्या है वैसे ही जीव अजरामर है और काया नाशवान् है। इस प्रकार दोनोंके अन्तरको समझनेपर जीव और सीवका भेद मिट जाता

---

१. हरीया माया नागनी, बैठी मुषा उत्राय।
तीन लोक मैं वस्य रही, जांह जांउं तांह षाय॥
(अंग, २५ सा० १०)

२. माया विसरी बेलड़ी, दोय फल लगा जास।
जनहरीया फल चषीया, सेई गया निरास॥ (अंग, २५ सा० २५)

३. मोटी माया महल कुं, केताई नर छाडि।
हरीया झींणी नां मिटै, रही प्रांण सुं गाडि॥ (अंग, २६ सा० १)

४. चोवा चंदन वास तज्य, वासा षाक मंझारि।
हरीया तजीयां क्या हुवै, मांन वडाई लारि॥ (अंग, २६ सा० ३)

५. माया नाना भांतिकी, हरीया जुग मैं जांनि।
काहू सुत वित असतरी, काहू अणमै वांनि॥
(छुटक, सा० ८७)

हैं[१]। इस संसारमें मायाके जालमें सभी जीव उलझे हुए हैं और जब मायाके वशमें (परवश) हो रहे हैं तो फिर वे कैसे सुलझकर छुटकारा पा सकते हैं[२]? क्योंकि विचार-विवेक करनेवाले मन, बुद्धि, चित्त आदि सभी मायाके वशमें होनेसे मायाके विपरीत सोच ही कैसे सकते हैं? इस प्रकारके प्रश्नोंका उत्तर भी दिया गया है और मायाका प्रभाव किन लोगोंपर नहीं पड़ता? कौन मायासे बचता है? मायाकी बाधा किस प्रकार दूर होती है?—इन सभी विषयोंपर वाणीमें अनेक स्थानोंपर प्रकाश डाला गया है। उनमेंसे कुछ यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं—यद्यपि मायाने बिना उस्तरे ही सारे संसारका सिर मूंडकर अपना (शिष्य) बना लिया है परन्तु 'रांम' के हो जानेवालोंके रुण्ड बिना मूंडे ही रह जाते हैं[३]। मायाकी खुली हुई मोरी (नाली) को मूंदना बड़ा कठिन है पर जो भक्ति और विश्वास करनेवाला है वह इसे बन्द कर सकता है[४]। परन्तु भक्तिमें भी माया आडी आती है (बाधा देती है) इसको छोड़ा नहीं जा सकता। अगर किसीने इस मायाके स्वरूपको समझकर छोड़ दिया है तो फिर यह बाधक नहीं रहती[५]। मायाने

---

१. माया जब काया षड़ी, काया जब लग जीव।
हरीया जीव रु सीव का, मेला कैसे थीव॥
(अंग, ७९ सा० ३)

ज्युं माया सुं ब्रह्म है, ज्युं काया सुं जीव।
जनहरीया जोय अन्तरे, पाया जीव'र सीव॥
(अंग, ७९ सा० १)

२. जुगमें माया जाळ है, जा सुं उलझे जीव।
जनहरीया परवस्य पड़े, सुलझन कैसे थीव ?॥
(छुटक, सा० ३६)

३. माया सब जुग मूडीया, विनां पाछणै मूंड।
जनहरीया विन मूंडीया, रह्या रांम का रूंड॥
(अंग, २५ सा० २७)

४. माया मोरी मोकळी, बूदी कमी न जाय।
जनहरीया सो बूदिसी, भगति भरोसौ थाय॥
(अंग, २५ सा० ३३)

५. माया आडी भगति कै, छाडी कमी न जाय।
हरीया छाडी समझिकै, आडी फिरै न आय॥
(अंग, २५ सा० ५३)

सभीको मोहित किया है पर रांम-जन इससे मोहित नहीं हुआ है[१]। सारे संसारको यह माया खाती है पर एक रांम-जन इससे नहीं खाया जाता[२]। मायाके जालमें उलझे हुए यदि किसी सुलझे हुए साधुके शरणमें चले जायँ और वह साधु इनको राम नामका सुमिरन करवा देवे तो इस मायाके जालसे उद्धार हो जाता है[३]। इस प्रकार अनेक प्रसंगोंमें श्रीमद्भगवद्गीताकी तरह ब्रह्ममें कल्पित सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणोंवाली ब्रह्मकी मायाको दुरतिक्रमणीया बताते हुए 'रांम' (आत्म-तत्त्व) में मन लगानेवालोंद्वारा इसका अतिक्रमण बतलाया गया है[४]। मायाकी ओटमें ब्रह्म उसी प्रकार है जिस प्रकार आकारकी ओटमें निराकार है। जरा-सी 'जुगति' से ढूंढकर दिलमें देखो तो इसका 'न्यारा' ही 'दीदार' होगा[५]। जब मायाकी ओटमें ब्रह्मको माना गया है तो स्पष्ट ही है कि ब्रह्मकी तरह माया भी सर्वत्र व्याप्त है। जिन्होंने इसे 'जुगति' से जान लिया है वे इससे प्रीति नहीं करेंगे[६]। क्योंकि यह माया फैलती

---

१. हरीया माया मोहनी, मोह्या सुर नर नाग।
एक न मोह्या रांमजन, उर उपज्या वैराग॥
(अंग, २५ सा० ७)

२. जनहरीया माया सबै, षाया जुग संसार।
एक न षाया रांमजन, सतगुर कै आधार॥
(अंग, २५ सा० ५४)

३. उलझरि सुलझ्या साध कै, जे कोई सरणै जाय।
जनहरीया जब ऊबरै, रांम नांम सिवराय॥
(छुटक, सा० ३७)

४. दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥
(गीता, अ० ७ श्लोक १४)

५. माया ओलै ब्रह्म है, आकारे निरकार।
जनहरीया जोय जुगति सुं, न्यारा दिल दीदार॥
(अंग, ७९ सा० २)

६. हरीया माया रांम की, रही सकल जुग छाय।
जिन्हां जांणी जुगति सुं, तिन्हां प्रीत न लाय॥
(अंग, २५ सा० २)

हुई आगकी तरह घर-घरमें लगी हुई है; इससे वही नहीं जलता है जो अपना तन और मन दोनों ही हरि (आत्म) में लगा देता है[1]। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि तो मायाके सूक्ष्म रूप हैं परन्तु संसारमें इनका स्थूल रूप इस साहित्यमें दमड़ी (धन-सम्पत्ति) और चमड़ी (स्त्री) को माना है। संसार सारा दमड़ी और चमड़ीको चाहता है पर जिसने भी इसे अपनाया है उसीके गलेमें फांसी (वन्धन) का फंदा लगा है[2]।

सांसारिक वैभव

त्रिगुणात्मिका मायाके प्रसंगमें लिखा जा चुका है कि 'माया' शब्द 'सांसारिक वैभव' का भी पर्याय है। जिसने यह शरीर दिया है उसीने यह धन भी मनुष्यको दिया है। यह धन भी यहींका यहीं रह जानेवाला है। इसमें गुण भी हैं और अवगुण भी। जन्म लेनेवाला इसे न तो अपने साथ लाया है और न साथ ले जायगा; इसलिए यह माया उसीकी है जो इसे खर्च करे और खाये[3]। यह किसीके साथ गई हो ऐसा कभी नहीं सुना गया; इसलिए इस मायाको रामकी समझकर जो बाँटता है उसीको 'रंग' (धन्यवाद) है[4]। कहते हैं कि यदि मायामें लाख गुण हैं तो करोड़ अवगुण हैं। जिसने भी इसे अपना करके माना है उसीके घरमें टोटा हुआ

---

१. माया पसरी आगि ज्युं, घरि घरि लागी जाय।
जनहरीया दाझै नही, मन तन हरि सुं लाय॥
(अंग, २५ सा० २३)

२. जनहरीया संसार कुं, दमड़ी चमड़ी चाहि।
जिन करि जांनी आपनी, ता गळि पासी वाहि॥
(वही, सा० १४)

३. न को ल्यायौ ओथि सुं, नां इत सुं ले जाय।
माया जिसकी जांणीयै, हरीया षरचै षाय॥
(प्रसंग, ३० सा० १)

४. हरीया माया नां सुनी, चली न तन कै संग।
माया करि करि रांम की, वांटै जिस कुं रंग॥
(वही, सा० ६)

हैं[1]। दूसरा विचार है कि मायाको यदि कोई रामको अर्पण करना जानता हो तो इसमें लाख गुण हैं और दोष एक भी नहीं हैं[2]। वस्तुतः यह माया तो हरिकी है, मनुष्य तो 'मोदी' (सामान तोलनेवाला) है। आवश्यकता-वालोंको देने या खिलाने तथा स्वयं खानेका ही उसका कर्तव्य है[3]। प्राप्त धनके विषयमें भी कहा है कि शरीर-रक्षाके लिए मनुष्यको भोजन-छाजन-के अतिरिक्त सारी माया (वैभव) को मनसे भी त्याग देना चाहिए[4]। इस प्रकार धनका सदुपयोग लोक-कल्याणमें करने, धनको संग्रह न करने-की प्रशंसा तथा धन प्राप्त करनेके लिए पच मरनेकी अनेक युक्तिसे निन्दा की गई है।

दमड़ी (धन-सम्पत्ति) और चमड़ी (स्त्री) ये दो हरिके आडी ढाल हैं। इन ढालोंको यदि दूर करके कोई देखनेवाला हो तो वही लालकी लालीको निरखता है[5]। राम और काम ये दोनों घट-घटमें निवास करते हैं इनको अलग-अलग समझ लेना चाहिए क्योंकि काम तो सारे विश्वको

---

१. माया मांहि लष गुन, हरीया औगुन कोटि।
जिन करि जांनी आपनी, तिन घरि आई तोटि ॥
(प्रसंग, ३० सा० १९)

२. माया मांही लष गुन, औगुन एक न कोय।
हरीया अरपन रांम कै, जे करि जांनै कोय ॥
(वही, सा० २०)

३. हरीया मोदी मांनवी, माया हरि की होय।
जा सिर दूवौ भेजीयौ, षाय षुलावै सोय ॥
(वही, सा० २९)

४. हरीया माया महल कुं, त्याग रहै नर दूर।
अंन पांणी तन पंगरन, चहीयै ऊगै सूर ॥
हरीया पांणी पवन सुं, घरीया तेरा तंन।
दूजी माया मन तजै, ले छाजन भोजंन ॥
(प्रसंग, ३१ सा० २, ३)

५. हरीया दमड़ी चंमड़ी, हरि कै आडी ढाल।
जौ कोई देषै पास करि, लाली निरषै लाल ॥
(अंग, २५ सा० २०)

फसाता है और राम सबसे अलग करता है[१]। कामी पुरुष रामको न जानकर अपने बुरे (काम) से जान-पहचान करता है[२]। कामी रामसे तो मन नहीं लगाता है गोरी चमड़ीसे मन लगाता है[३]। प्रायः सभी सन्तोंके साहित्यमें नारीकी निन्दाके प्रसंग उपलब्ध होते हैं। यहाँ भी काम-वासनाके प्रसंगसे नारीकी निन्दा की गई है। प्रत्यक्षतः नारीकी निन्दा करनेका कोई 'अंग' या 'प्रसंग' नहीं है परन्तु 'कामी नर कौ अंग' में नारीकी निन्दा की गई है—नारीसे नेह नहीं करना चाहिए क्योंकि नारी संसारमें बहुत बुरी है। जिनको नारीने वशमें कर लिए वे सब भगवान्से तो भागे हुए ही समझो[४]। इसे धन-सम्पत्ति आदिसे भी अधिक बाधा मानी गई है, सोते हुएको यह सपनेमें लूटती है और जागते हुएको प्रत्यक्ष सदेह अनायास ही लूट लेती है, किसी प्रकारसे यह पार नहीं जाने देती[५]। इसलिए इस कामकी क्यारीको मत सींचो, इसे सींचनेसे यहीं रह जाओगे, फिर तन और मन दोनों ही अशांत रहेंगे[६]। इन सब मायाके प्रपंचोंमें रहते हुए इनसे अलग रहनेका साधन स्पष्ट किया गया है कि निरन्तर 'रांम' का आश्रय लिए हुए रहे और सिरपर आए हुए सांसारिक

---

१. कांम रांम घट घट वसै, जास पटंतर जोय।
कांम विलंबें सकल जुग, रांम नीयारा होय॥
(अंग, ३९ सा० ११)

२. कांमी रांम न जांणीयौ, जाण्यौ आप अकाज।
(अंग, २८ सा० २४)

३. कांमी रांम न राचई, राचै चोळी चांब।
(वही, सा० २२)

४. नारी नेह न कीजीयै, नारि बुरी संसार।
हरीया नारी गंजीया, से भगा करतार॥
(वही, सा० ३)

५. सूता सपनै लूटसी, जागंतां सैंदेह।
जनहरीया तिंह लोक मैं, नारी जांण न देह॥
(वही, सा० ५)

६. नारी क्यारी कांम की, सींच्यां करै विरांम।
जनहरीया तन मन घरै, ताहि नही विसरांम॥
(वही, सा० २९)

जूएका दाव खेलता रहे; क्योंकि जो 'दास' हरि-जन है उसे संसारकी हवा चाहे वह ठंडी बयार हो अथवा गर्म लू , नहीं लगेगी ।[1]

निर्गुण-सगुण

श्रीहरिरामदासजी महाराजने अपनी वाणीमें निर्गुण-सगुणकी विवेचना अपने ढंगसे की है। उनके विचारसे वस्तुतः जो परमतत्त्व है वह निर्गुण निराकार ही है[2]। परन्तु निर्गुणसे गुण उत्पन्न होते हैं, समस्त गुण निर्गुणमें समाहित ही हैं। जिस प्रकार बेलसे फल होता है परन्तु वह फल बेलमें पहलेसे ही सूक्ष्मतः व्याप्त होता है[3]। वे फिर कहते हैं कि निर्गुण मूल है, सगुण शाखा एवं पत्ते आदि हैं, भक्ति इसका बीज है

---

१. रहै रांम कै आसरै, सिर परि षेलै दाव।
हरीया लगै न दास कुं, तत्ता सीळा वाव॥
(अंग, २८ सा० ३०)

२. सोहै चिदानंद अभिनासी। निराकार निरगुन निरवासी॥
पराब्रह्म पार परसोतम। निराधार निरभै निरगोतम॥
निरविकलप निकलंक त्रिवासी। निरालेप त्रिवाण निरासी॥
निहचल अचला चलै न डोलै। अमर अथाह न अरथ अतोलै॥
निरपष निजानंद पद न्यारौ। परमगरू परमेस्वर प्यारौ॥
अजरांमर अषंडी अणभंगी। आप अकल अणभै अणजंगी॥
परमातम परनव परगासा। परोदेव परभव परनासा॥
त्रिव्यापक त्रिदेह निरालौ। नां कोई त्रिध न तरणा बालौ॥
अधर एक अणभग अणजायौ। मात पिता नही गोद षिलायौ॥
नां कुछि हलका नां कुछि भारी। नां कुछि पुरषा नां कुछि नारी॥
नां मुष मौन ग्रहै नही बोलै। नां उ षलक पलक नही षोलै॥
अगमागम अवगति आद्यंता। पावैगा परमांगति मिंता॥
(निजग्यांन चौ० ७ से १२, पृ० ३९२)

३. त्रिगुन तैं गुन ऊंपजै, गुन कै त्रिगुन मांहि।
जनहरीया फल वेल तैं, फल विन वेली नांहि॥
(प्रसंग, २० सा० १)

और मुक्ति फल है[१]। तथापि निर्गुण गुणोंसे पृथक् है इस तत्त्वको कोई प्रियका प्यारा ही प्राप्त करता है[२]।

माता-पिताके विना कोई पुत्र हुआ हो ऐसा हरीयाने कहीं नहीं देखा, इसीलिए सगुणकी उत्पत्ति निर्गुणसे माननेमें उन्हें कोई बाधा नहीं, निर्गुण स्वयं ही ताने और बानेके रूपमें आये हुए सूतकी तरह सगुण हो जाता है[३]। निर्गुण नाम जो कि सबसे न्यारा है उसे सगुणके विना नहीं जाना जा सकता है इसलिए निर्गुण और सगुणमेंसे किसीकी भी प्रशंसा या निन्दा उसी प्रकारसे नहीं की जा सकती जिस प्रकार पिता और मातामेंसे किसकी निन्दा की जाय और किसकी वन्दना या प्रशंसा की जाय[४]। यद्यपि सगुण और निर्गुण दोनोंको समादर है परन्तु कर्तव्य-की दृष्टिसे यहाँ निर्गुणका ही ग्रहण किया गया है। क्योंकि गुणमें (सगुणमें) अनंत अवगुण यह है कि उसका साधक अपने शुभ कर्मोंको भोगनेके लिए पुनः आता है और जो निर्गुणका साधक होता है वह फिर पुनरागमनसे मुक्त हो जाता है[५]। ब्रह्ममें निवास करनेवालेका फिर आवागमन नहीं होता[६]। 'हदि' अर्थात् ससीमको जीत करके वेहदि

---

१. हरीया त्रिगुन मूल है, सरगुन साषा पांत।
भगति बीज फल मुगति है, और सकल भ्रम आंन॥
(प्रसंग, २० सा० २)

२. संतो निरगुन गुन तैं न्यारा, कोई पावै पीतम प्यारा।
(हरिजस, सं० ९५)

३. हरीया कोई न देषीया, पिता मात विन पूत।
त्रिगुण सुरगुण यु भया, ताणै पेटै सूत॥
(छुटक, सा० १०)

४. त्रिगुण न्यारौ नांव है, सुरगुण विना न पाय।
किसकुं नंदीयै वंदीयै, हरीया पिता'र माय॥
(वही, सा० ११)

५. गुण मैं औगुण अनंत है, आपा भुगतै आय।
जनहरीया त्रिगुण वसै, जुग मैं आय न जाय॥
(प्रसंग, २० सा० ७)

६. जनहरिरांम ब्रह्म कीया वासा, फेर न आवा गौणां।
(हरिजस, सं० ९६, पद, ४)

(असीम) में जाकर शून्यमें स्थित होकर तीनों गुणों और तीनों तापोंको जो मिटा देता है वही 'चित्' 'चौथै' में समा जाता है[1]। सम्भवतः 'चौथै' शब्दसे यहाँ चतुष्पाद् ब्रह्मके चतुर्थ-पदका ही ग्रहण है जो अदृश्य, अव्यवहार्य, अग्राह्य, अलक्षण, अचिन्त्य, अव्यपदेश्य, एकात्मप्रत्ययसार, प्रपंचोपशम, शान्त, शिव, अद्वैत आत्मा है[2]।

निराकार-साकार

उपासनाके सम्बन्धमें निराकार और साकार एवं निर्गुण और सगुण ये दोनों युगल सन्त-साहित्यमें कई स्थलोंपर एक ही अर्थमें ग्रहण किए हुए प्रतीत होते हैं। अनेक स्थानोंपर निर्गुण और निराकार दोनों पर्यायके रूपमें ही प्रयुक्त हैं; वैसे ही सगुण और साकार शब्द भी एकार्थवाची ही प्रयुक्त हैं फिर भी मूलतः विशेष अर्थमें ये दोनों भिन्नार्थ हैं। क्योंकि आकार और गुण ये दो भिन्नार्थ हैं अतः सामान्य रूपमें ही इन शब्दोंका एक ही भावार्थ ग्रहण किया जा सकता है पर विशेष अर्थमें नहीं। इस विचारको संभवतः हमारे प्रस्तुत वाणीकार भी समझते हैं यद्यपि उन्होंने स्वयं कुछ स्थलोंपर इनका प्रयोग पर्यायके रूपमें किया है। सम्भवतः इसी कारण उन्होंने 'निर्गुन गुन कौ प्रसंग' (पृ० २८४) लिखनेके पश्चात् भी 'निराकार आकार कौ प्रसंग' लिखा है (पृ० ३०४)।

वे कहते हैं कि निराकार ब्रह्मको भजनेवाले ही भव-पार पहुँचते हैं परन्तु जो साकारकी साधना करनेवाले हैं वे उसी साकारकी आशामें इस पार ही रह गये हैं[3]। क्योंकि निराकारकी साधनाके विना कोई भी पार नहीं पहुँचता है अतः साकारोंमेंसे अपने मनको निकालकर अलग

---

१. हदि कुं जीत जाय वेहद मैं, सुन्य मैं वास वसाया।
जनहरिरांम मिले चित चौथै, त्रिगुण ताप मिटाया॥
(हरिजस, सं० ९५, पद, ५)

२. अदृश्यमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिंत्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं
प्रपंचोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः।
(माण्डूक्योपनिषत्, ७)

३. जनहरीया निरकार कुं, भजि पुंहते भौ पार।
से आसै आकार कै, रहिगै ऊलै वार॥
(प्रसंग, ३५ सा० १)

कर लेनेवाला ही इस तत्त्वको जानेगा[1]। उस ब्रह्मको यदि छोटा कहें तो वह छोटा नहीं है और मोटा कहें तो वह मोटा नहीं है, वह तो जाननेवालेपर ही निर्भर है कि उसके ज्ञानमें वह किस प्रकारका आया है, उसने जैसा उसे अनुभव किया है उसीकी ओटमें रहना उपयुक्त है[2]। उसको जिस रूपमें जाननेकी इच्छा हो वह वैसा ही हो जाता है इस अनुभवको दुनियादारोंको नहीं बताना चाहिए[3]। इस प्रकार साकारको उस निराकारका ही रूप समझते हुए उसका अनादर नहीं है तथापि निर्गुण साधनाके प्रति सहज आग्रह यहाँ उपलब्ध है।

निर्गुण-निराकार सच्चिदानन्दकी साधना ही इनका परम लक्ष्य है। सगुण साकारकी उपासना या साधनाकी पूर्ण अवहेलना करते हुए अनेक स्थानोंपर आत्माकी साधना या पूजा करनेपर ही इन्होंने जोर दिया है, आत्माको छोड़कर अन्य देवी-देवता, मंदिर-मूर्ति आदिकी पूजाका निषेध किया है। आत्माके साधकको 'असली' (औरस) और अतिरिक्तको 'कमसलि' (जारज) कहा है। 'असली' और 'कमसली' में एक ही अन्तर है कि जो असली होता है वह सुमार्गपर चलता है और जो 'कमसली' होता है वह कुमार्गपर चलता है। लोगोंद्वारा स्थापित किए हुए धातु या पाषाणकी पूजा ही कुमार्ग है इन्हें पूजनेवाला 'कुमारगी' है। जिसने सारे संसारको उत्पन्न किया है उस 'रांम' को वह नहीं सुमिरता। और असली वही है जो लोकद्वारा स्थापित देवताओंको धारण न करके 'अधर' को धारण करता है[4]। 'असली' की एक विशेषता भी है कि यदि उससे कोई

---

१. जनहरीया निरकार विन, नर कोई पुंहचै नांहि।
न्यारो निज मन जांणसी, करि आकारां मांहि॥
(प्रसंग, ३५ सा० २)

२. नान्हौ कह्यां न नांनड़ौ, मोटौ कह्यां न मोट।
हरीया हरि जांणै जिसौ, वाकी गहीयै ओट॥
(अंग, १६ सा० १)

३. हरि जैसौ करि जांणीयौ, तैसौ होय तीयार।
जनहरीया नही दाषीयै, दिलकी दुनीयांदार॥
(वही, सा० २)

४. कुण असली कुण कमसली, तास पटंतर एह।
कमसल चलै कुमारगी, असलि सुमारग लेह॥

'कमसली' आकर मिले तो वह भी असली बन जाता है जैसे पारसके स्पर्शद्वारा लोह सुवर्ण बन जाता है[१]। मनुष्य आत्माके अतिरिक्त अन्य साधनाएँ उसी प्रकार करता रहता है जिस प्रकार कुमारी कन्या गुड्डे-गुड्डीसे खेलती है। जब उसे प्रियतम मिल जाता है तो वह उनकी तरफ आँख उठाकर भी नहीं देखती। जप, तप, तीर्थ, व्रत आदि भी गुड़िया-के खेलके तुल्य हैं, ये भी हरि (आत्मा) से प्रेम हो जानेपर छूट जाते हैं[२]।

सर्वशक्तिमान्

हरीयाका 'सांई' एक है और वह सम्पूर्ण सामर्थ्यसे सम्पन्न है। वह जलमें थल और थलमें नदी कर सकता है[३]। उसे कोई भी कार्य करनेमें समय नहीं लगता। मनुष्य किसी और ही प्रकारका विचार करता है और वह कर्त्ता पुरुष कुछ और ही करता है[४]। उसके विषयमें अधिक क्या

घरीया धरै कुमारगी, पूजै धात पषांण।
एक न सिंवरै रांम कुं, जिन सिरज्या जेहांन॥
असली सो अघरा धरै, धरै न घरीया देव।
हरीया घरीया छाडिकै, करूं अधर की सेव॥
(अंग, ५८ सा० ३ से ५)

१. असली सुं कमसलि मिलै, सो असली हुय जाय।
ज्युं लोहा पारस परसिकै, हरीया कंचन थाय॥
(वही, सा० २)

२. हरीया ढूलौ ढूलीयां, रमै कुवारी नित।
सागी पीतम सुं मिलै, रांमति मेल्है चित॥
जप तप तीरथ आंन व्रत, कन्या ढूल्ड़ी जेम।
हरीया हरिजन परहरै, हरि सुं लागै पेम॥
(छुटक, सा० १०१-२)

३. हरीया सांई एक है, सबै समरथा जांन।
ऊ जल मांही थल करै, थल तांह नदी निवांन॥
(अंग, ४८ सा० १)

४. जनहरीया पल एक मैं, करतां कितीयेक वार।
बंदो काई चीतवै, करै और करतार॥
(वही, सा० २)

कहा जाय, उसका कार्य देखना है तो बिना स्तम्भके खड़े हुए इस आकाश-को देख लो[1]। मनुष्यका किया हुआ कुछ नहीं होता है उस कर्त्ताके लिए मेरु पर्वतको राई और राईको मेरु समान बना देना भी आसान है[2]। जहाँपर चींटी भी नहीं चढ़ सकती उसकी इच्छासे वहाँ हाथी चढ़कर मौज मनाते हैं। वह रावको रंक और रंकको निहाल कर सकता है[3]।

साधना एवं साधन

किसी विशिष्ट उद्देश्यसे तन-मन-वचनद्वारा अनवरत किसी क्रिया-को करना सामान्यतः साधना कहा जा सकता है। और इस उद्देश्यकी पूर्त्ति वा प्राप्तिके लिए जितने भी सहायक तत्त्व हैं वे साधन कहलाते हैं। प्रस्तुत वाणीमें साधन दो प्रकारके हैं जिन्हें क्रियात्मक और ध्वंसा-त्मक अथवा शास्त्रीय भाषामें विधि और निषेध कहा जा सकता है। जो 'विधि' हैं उनके प्रति क्रियात्मक प्रवृत्तिकी आवश्यकता है और जो 'निषेध' हैं उनके प्रति ध्वंसात्मक प्रवृत्तिकी।

साधनाका सम्बन्ध आचरणसे है और आचरणमें आनेवाले विहित और अविहित दोनों कर्म हैं। विहित आचरणसे सात्विकताका प्रादुर्भाव होता है और निषिद्ध कर्मका आचरण उद्देश्य-प्राप्तिकी विपरीत दिशामें ले जानेवाला है इसलिए वह बाधक-साधन है। अतः वाणीमें पृथक्-पृथक् रूपसे अथवा संश्लिष्ट रूपसे जहाँ भी अवकाश मिला है विधेय और त्याज्य साधनोंकी चर्चा की गई है। वाणीके अनेक 'अंग' और 'प्रसंग' इन्हीं दोनों साधनोंका स्वतन्त्र रूपसे अथवा संश्लिष्ट रूपसे निरूपण करते हैं; इसी प्रकार विविधि 'ग्रन्थ' भी इसी दिशामें बोध-

---

१. हरीया घटि वधि क्या कहैं, क्या तेरा उनमांन।
हरि का कीया देष लै, विण थंमां असमांन॥
(वही, सा० ८)

२. बंदैती कुछि नां थीयै, हरीया हरि आसांन।
मेरहुं ता राईं करै, राईं मेर समांन॥
(वही, सा० ११)

३. जांह चीटी नही चढ़ि सघै, हसती चढ़ि चढ़ि माल।
ऊ रावां ती रंक करि, रंकां करै निहाल॥
(वही, सा० १६)

प्रद हैं। निदर्शनके रूपमें यहाँ कुछ साधनाओं और साधनोंका विवेचन किया जा रहा है। तन, मन और वचन ये तीन साधक-तत्त्व किसी भी साधनाके साधन हैं किन्तु आध्यात्मिक साधनामें इन तीनोंको प्रेरणा देनेवाला गुरु बताया गया है। सद्गुरुका परिचय एवं कृपा प्राप्त हो जानेपर मन वशमें आ जाता है और मनके वशीभूत होनेपर तनकी सारी क्रियाएँ अनुकूल हो जाती हैं और तनके स्व-तन्त्र हो जानेपर वाक् वशमें होती हैं। इस प्रकार तन, मन और वाक्को वशमें कर लेने-पर 'निर्वाण पद' का ज्ञान हो जाता है और इस 'पद' का ज्ञान होने-पर ही मनुष्य "अणभै" होता है तभी अन्तःस्थित आत्मा और बाह्य जगत्में तादात्म्य स्थापित होता है[1]। इसलिए सर्वप्रथम गुरुकी समीक्षा की जा रही है।

गुरु

भारतीय परम्परामें गुरुका महत्त्व कितना है इस विषयमें अनेक शास्त्रोंके उद्धरणोंको प्रस्तुत करके सुविज्ञ पाठकोंके समक्ष हम पिष्ट-पेषण करना आवश्यक नहीं समझते। सभी लोग इससे परिचित हैं कि गुरुके बिना किसीको भी ज्ञानकी उपलब्धि नहीं होती चाहे वह शास्त्र-ज्ञान हो अथवा अध्यात्म-ज्ञान।

सन्तमतमें सर्वत्र ही गुरुका माहात्म्य-गान प्राप्त होता है। गुरु और 'सतगुरु' की चर्चा अतिशय रूपेण सभी सन्तोंने की है। यहाँ रामसनेही सम्प्रदायमें भी साधनाके क्षेत्रमें गुरुका विशेष महत्त्व है। श्रीजी महाराजने गुरुके विषयमें 'गुरदेव कौ अंग' 'गुर पारष कौ अंग' 'गुर वंदन कौ अंग' 'गुर धरम कौ अंग' नामक चार अंगोंमें गुरु-सम्बन्धी विषयोंपर अत्यन्त सूक्ष्मतासे विचार विवेचन करनेके उपरांत भी स्थान-स्थानपर गुरुके महत्त्वको प्रकट करनेकी तत्परता दिखलाई है। जहाँ भी उन्हें प्रसंग एवं अवकाश प्राप्त हुआ उन्होंने गुरुकी महत्ताका वर्णन किया है। इनके विचारसे संसारमें दो ही दाता हैं। पहला दाता तो हरि है जिसने यह मनुष्य-जन्म दिया और दूसरा दाता गुरु है जिसने

---

१. गुर परचै सुं परचै मनां। मन परचै सुं परचै तनां॥
तन परचै वाचा परचांणी। वाचा परचै पद निरवांणी॥
पद परचै सुं अणभै होई। बाहरि बोलै भीतरि सोई॥
(घट परचो, १-२)

गोविन्दको बताया[१]। इसलिए या तो गुरुकी सेवा करनी चाहिए या रामकी, क्योंकि गुरु तो भ्रमको नष्ट कर देता है और राम मुक्ति प्रदान करता है[२]। क्योंकि जिसे गुरु आदर देता है उसीको भगवान् भी अपने निकट लेते हैं। गुरुद्वारा आदर पाये बिना भगवान् भी उसे कुछ भी निकालके नहीं देते[३]। इसीलिए यहाँ कहा गया है कि सतगुरुकी सेवाके समान कोई सेवा नहीं है[४]।

यदि गुरु बिना कोई ज्ञान प्राप्त किया जाता है तो उस ज्ञानको व्यर्थ बताया गया है क्योंकि गुरु ही नेत्रोंका उन्मीलन करता है। गुरुसे ज्ञान प्राप्त नहीं किया और ज्ञान प्राप्त करके उसपर विचार नहीं किया तो वही स्थिति है जैसे अंधेके हाथमें दीपक आ जानेपर भी उसके लिए अंधेरा ही है[५]। श्रीहरिरामदासजी महाराज बड़े ही गम्भीर विचारक थे, उनके मनमें उपरोक्त विचार प्रकट करते समय यह प्रश्न उपस्थित हुआ होगा कि जब ज्ञान प्राप्त हो गया तो फिर अंधकारका अवशेष कहाँ? उन्होंने इसका समाधान इस प्रकार किया—एक दीपक तो अन्तरमें व्याप्त ज्ञान (चित्) तत्त्वका है और दूसरा दीपक गुरुद्वारा प्रदत्त ज्ञानका है। ये दोनों दीपक मिल करके अज्ञानान्धकार और हृदया-

---

१. पहली दाता हरि भया, तिनतैं पाई जिन्द।
पीछै दाता गुर भया, जिन दाखे गोविंद॥
(अंग, १ सा० ३)

२. गुर सेवा कै रांम की, या तुलि नांही और।
गरू स भांजै भरम कुं, रांम मुगति की ठौर॥
(वही, सा० २)

३. पहली गुर आदर दिवै, तौ हरि आघा लेह।
हरीया गुर आदर विनां, हरि कुछि काढि न देह॥
(वही, सा० ५)

४. सतगुर सी नही सेव।
('ग्यांन परिछया', २)

५. गुर पैं ग्यांन न बूझीया, बूझि न करया विचार।
हरीया कर दीपग दीयां, अंधै कै अंधार॥
(अंग, ४२ सा० ३)

न्धकार इन दोनोंको नष्ट करते हैं[1]। क्योंकि एक दीपक जहाँ होता है वहाँ दीपकके तले अंधेरा अवश्य रहता है परन्तु जब दो दीपक होते हैं तो उनके परस्पर प्रकाशसे सर्वत्र प्रकाश हो जाता है[2]। इसलिए "सतगुर का सौदा" प्रत्येकको करना चाहिए। इस सौदेमें अनंत लाभ हैं। माता-पिता, पुत्र, भाई-बन्धु आदिका स्नेह चौरासी लाखका हेतु है। यदि रामकी भक्ति चाहते हो तो गुरुकी शरण जाना होगा। गुरुके बिना संसारका भ्रम और करोड़ों कर्म नहीं कटेंगे। सारे वेदोंमें कहा है कि गुरु और गोविन्द बिना जीवकी मुक्ति नहीं होती है। गुरुके 'सबद' ही सच्चे श्रेष्ठ बीज हैं, शेष सब 'कूकस'—तुस हैं[3]।

केवल दीपकके उदाहरणसे इन्हें सन्तोष नहीं हुआ अतः इन्होंने अधूरे और अज्ञानी गुरुके प्रसंगमें सूर्यके उदाहरणसे कहा कि गुरु भी ज्ञानरहित है और चेला भी अज्ञानी है तो इस आँखके अन्धेके लिए सूर्यके उदय होनेसे भी प्रकाश नहीं है[4]। गुरुका ज्ञानवान् और समर्थ होना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि समर्थ गुरुका शिष्य भी सामर्थ्यवान होता है, गुरुरूपी स्वामी (सेनापति) के खड़े रहते कोई भी शिष्य-

---

१. एको दीपग ग्यांन का, दूजा गुर गम थाय।
जनहरीया अग्यांन का, उर अंधारा जाय॥
(प्रसंग, १७ सा० ३)

२. जब तैं दीपग एक था, तलि अंधारा होय।
हरीया दोय दीपग धरया, तब सैचंदण होय॥
(वही, सा० २)

३. रे नर सतगुर सौदा कीजै,
इन सौदा मैं लाभ अनंत है, एक मनां हुय लीजै।
मात पिता सुत बंधव नेहा, चौरासी लषईजै॥
जे कोई चाहै रांम भगति कुं, गुर की सरणि गहीजै।
गुर विन भरम न भांजे भव का, करम न कोय कटीजै॥
गुर गोविंद विन मुगति न जीव की, कहीयौ वेद सुनीजै॥
जनहरिरांम और सब कूकस, गरू सबद सत बीजै॥
(हरिजस, सं० १)

४. जाका गुर है ग्यांन विन, चेला भया अजांन।
हरीया अंधै नैंन कुं, कहा उदत है भांन॥
(अंग, २ सा० २)

रूपी शूरवीर भागता नहीं है[१]। गुरुकी पारस पत्थरसे भी विशेषता बताई है। पारस पत्थर तो लोहेको सोना ही बनाता है (पारस नहीं) पर गुरु तो शिष्यको अपने समान बना लेता है[२]। इस प्रकार गुरुकी अनेक दृष्टान्तों, उदाहरणों, उपमाओं, रूपकों आदिद्वारा प्रशंसा की गई है। उसकी अत्यन्तावश्यकता बताई गई है तथा उसके बिना सब व्यर्थ बताया गया है। शिष्यको चाहिए कि गुरुको एक निमिषके लिए भी छोड़े नहीं क्योंकि सतगुरु वृक्षके समान है और शिष्यरूपी फल उसमें लगा हुआ है, यदि उसे आसानीसे परिपक्व होना है तो उस वृक्षसे फल-को पृथक् नहीं होना चाहिए[३]। गुरुसे विमुख (पृथक्) होकर भले ही गोविन्दको भजते रहो सफलता प्राप्त नहीं होगी; क्योंकि जब फल वृक्षसे टूटकर गिर जाता है तब उसकी वृद्धि नहीं होती[४]। अतः रामकी भक्ति-के अतिरिक्त यदि किसीकी मान्यता इस सम्प्रदायमें है तो वह एक गुरु तत्त्वकी ही है क्योंकि रामके प्रति सनेह—प्रेम-भक्तिका उद्भव यहाँ 'गुरु-सबद' से ही माना है[५]।

मन

मनुष्य-जीवनमें तन और मन ये दोनों ही ऐसे विशेष साधन हैं जिनके द्वारा सांसारिक भोगोंकी ओर या आत्मोपलब्धिकी ओर मानव-

---

१. हरीया गुर समृथ मिलै, तौ सिष ही समृथ होय।
सांम षड़ै युं सूरिवां, भाजि न जावै कोय॥
(अंग, २ सा० ४)

२. लोह पलटि कंचन भया, पारस का परताप।
जनहरीया सतगुर करै, आप सरीषा आप॥
(वही, सा० ५३)

३. सतगुर भये समांन त्रिष, सिष फल लगा जांणि।
निमंष एक छाड़ै नही, तौ परपक आसांणि॥
(अंग, ४ सा० ७)

४. फल तर तैं तूटां पछै, वधै न विलगै जाय।
गुर वेमुष नही नीपजै, भावैं गोविंद गाय॥
(वही, सा० ९)

५. हरीया सतगुर रीझ करि, वाह्या सबद सतांण।
लागत ही परगट भया, उदै पेम का भांण॥
(अंग, ५० सा० १३)

जोवनकी प्रवृत्ति होतो है। बाह्य रूपमें तनके द्वारा सांसारिक सुख-दुःख आदि द्वंद्वोंका उपभोग मनुष्य करता है। यदि कोई व्यक्ति शरीरसे विविध द्वंद्वोंको एक समान अनुभव करने लगे या रुचिकर वा अनुकूल लगनेवाले भोगोंसे शरीरको विरत रखनेमें सफल हो जाय तो उसे मनपर अधिकार पाना अवशेष रह जाता है। यदि तन जीत लिया हो और मनसे हारा हुआ हो तो व्यर्थ है क्योंकि मनको जीत लेनेपर ही तन द्वारा पुनः कभी हार नहीं होती[१]। तनको मार लेनेसे क्या हुआ, अन्दर बैठा हुआ जो मन है वह तो जीवित ही है, यह तो वैसी बात हुई जैसे बांबीके अन्दर बैठा हुआ सर्प तो फन उठा-उठाकर फुंकार रहा है और कोई बाहरसे बांबीको पीट रहा हो[२]। इस मनके साथी पाँच (ज्ञानेन्द्रियाँ) पचीस (प्रकृतियाँ) चोर बड़े ही बलवान् हैं इसलिए यह अनेक छल-बल करनेपर भी नहीं मानता है[३]। इस मनके अनेक स्वरूप हैं—यह बाँका भी है और सीधा भी, चंचल भी है और स्थिर भी, अतः इसको वशमें कर लेनेसे सभी प्रकारके सुख हो जाते हैं[४]। मन पानीसे पतला और धुएँसे भी झीना है[५]। यही मोटा भी है और दुबला भी। राजा भी है और रंक भी[६], लेकिन सबके निष्कर्षकी बात यह है कि अपने

---

१. तन जीता तौ क्या भया, जौं मन हारया होय।
जनहरीया मन जीतलै, तन की हारि न जोय॥
(अंग, २० सा० १०)

२. तन कुं मारयां क्या हुवै, हरीया जीवै मंन।
बाहरि कूटै बंबई, मांहि करै अहि फंन॥
(वही, सा० १५)

३. हरीया छल बल नां रहै, रहै न किनकै जोर।
मन का संगी सबल हैं, पांच पचीसुं चोर॥
(वही, सा० ५६)

४. मन बंका मन पधरा, मन चंचल मन थीर।
जनहरीया मन वस्य कीया, सब सुष भया सरीर॥
(वही, सा० २)

५. पांणी सुं मन पतळा, धूवै सुं मन झीन।
(वही, सा० ५९)

६. मन माता मन दूबला, मन राजा मन रंक।
(वही, सा० २५)

मन जैसा अपना कोई मित्र अथवा मन्त्री भी नहीं है[१]। किन्तु यह मन अनेक प्रकारके चरित्र करता रहता है, कभी भी किसीसे टलता नहीं है। इसको तो 'रांम' में लगा दिया जाय तो फिर यह खाली (शून्य) हो जाता है[२]। इसको ठीक करनेका यही उपरोक्त उपाय है। 'रांम' में प्रविष्ट मन फिर कोई भी गड़बड़ नहीं करेगा। मनको 'राम' में लगानेके लिए पहले इसे अपने वशमें करना अपेक्षित है। इसको वशमें करनेके लिए 'ग्यांन गरीबी' की आवश्यकता है। यह मनरूपी मद-मस्त हाथी जो कि अंकुशका जरा भी भय नहीं मान रहा है यदि 'ग्यांन गरीबी'—(ज्ञान और लघुतापूर्वक दासभाव) हो तो यह अपना अंकुश कुछ-कुछ मानने लगता है[३]। आत्मदर्शनके विना समस्त दर्शन व्यर्थ है। संकल्प-विकल्प, जागना-सोना, त्यागी-भोगी, पण्डित-मूर्ख, वेद-पुरान, गीत-गायक, तान, जोग-जुगति, तप, तीरथ, तीर्थवासी, आशा-निराशा और रामको मिलाने-वाला भी मन ही है। मन ही देव है, वही सेवा, आचार-विचार, पाप-पुण्य, भिक्षुक-दाता, बाहर-भीतर, राव-रंक, चंचल-निश्चल, बस्ती-वन-खण्ड है। मनको पकड़कर पाँचों (इन्द्रियों) को एक घर ले आवे तो सबका उल्लंघन करके ब्रह्माण्डमें स्थित हो जाता है। सेवक-गुरु, ज्ञान-विज्ञान, उनमुंनी-ध्यान, पूर्ण अविनाशी पद भी मन ही है। मन ही भक्ति और मन ही विषय है, मन अपार है; यदि मन दयालु हो जाय तो मुक्तिका भण्डार खुल जाता है। इस प्रकार मनको अत्यन्त बलवान्, स्थूल-सूक्ष्म, चंचल आदि माननेके साथ-साथ इसे इतना महत्त्वपूर्ण एवं व्यापक माना है मानो यह ही सब कुछ हो। वास्तवमें विचार करनेपर इस प्रकारका अनुभव प्रत्येक साधकको हो सकता है कि वह यदि मनके चरित्रोंको समझ ले और उसे वशमें कर ले तो अधिकांश सांसारिक प्रपंचोंसे मुक्तिकी प्राप्ति निश्चित है। इसीलिए 'जनहरिरांम' अपने मनको

---

१. निज मन सा मिंत्री नही,।

(ग्यांन परिछया, सा० ४)

२. मन चंचल चाळा करै, टाळौ करै न कोय।
हरीया मेलै रांम कुं, टुक ठंटाळा होय॥

(अंग, २० सा० ३५)

३. मन मैंगल मैमत भयौ, आंकस सहै न कोय।
जनहरीया कुछीएक सहै, जौ ग्यांन गरीबी होय॥

(वही, सा० ४७)

सम्बोधित करके अपने मनको ही, जिसे उन्होंने समझ लिया है, समझा रहे हैं कि—"मन रे मन ही करि आसांनां"[1]। इस तरहसे—

"मनोहं गगनाकारं मनोहं सर्वतोमुखम्।
मनोहं सर्वमात्मा च न मनः केवलः परः॥
मनः कर्माणि जायन्ते मनो लिप्यति पातकैः।
मनश्चेदुन्मनीभूयान्न पुण्यं न च पातकम्॥
मनसा मन आलोक्य मुक्तो भवति योगवित्[2]।"

---

१. मन रे मन ही करि आसांनां।

देष पाप्रि जावै जुग रीता, आपा विन दरसांनां॥ टेर॥
मन संकल्प विकल्प है मन ही, मन जाग्रत मन सूता।
मन ही त्याग चलै बौह माया, मन ही लाग विगूता॥ १॥
मन पिंडत मन ही भयौ मूरष, मन ही वेद पुरांनां।
मन ही गायन गायवै मन ही, मन ही तोड़ै तांनां॥ २॥
मन ही जोग जुगती भयौ मन ही, मन तप तीरथ वासी।
मन ही आस निरासा मन ही, मन ही रांम मिलासी॥ ३॥
मन ही देव सेव भयौ मन ही, मन आचार विचारा।
मन ही पाप पिन भयौ मन ही, मन मंगन दातारा॥ ४॥
मन बाहिर भीतरि भयौ मन ही, मन का सकल पसारा।
मन ही राव रंक भयौ मन ही, मन का मन सिकदारा॥ ५॥
मन चंचल निहचल भयौ मन ही, मन वसती मन षंडा।
मन गहि पंच एक घरि आंणै, डाकि चढ़ै ब्रहमंडा॥ ६॥
मन सेवग सतगुर है मन ही, मन ही ग्यांन विग्यांनां।
मन ही पद पूरण अभिनासी, मन ही उंनमुंन ध्यांना॥ ७॥
मन ही भगति विषै भयौ मन ही, मन का पार अपारा।
जनहरिरांम भयौ मन महरंम, ष्रोलि मुगति भंडारा॥ ८॥

(हरिजस, सं० ६८, पृ० ४७८)

२. योगशिखोपनिषत् (अ०; ६, श्लो० ६०, ६१, ६२)

—आदि औपनिषदिक धारणाएँ ही मनके विषयमें इस सन्तवाणीमें मुखरित हुई हैं और अपनी आत्मामें ही मनको लगानेसे मनका निग्रह होता है[१]।

मनके विषयमें एक विशेष बात और है। वह यह है कि मनको वशमें कर लेने या मनका निग्रह कर लेनेके पश्चात् भी मनके प्रति अत्यन्त सावधान रहनेका आग्रह यहाँ वर्णित है। इनके विचारसे मनका कभी भी विश्वास न करना चाहिए क्योंकि यह मन मरा हुआ भी जी उठता है। मनको मार डाला जाय, श्मशानमें जलाकर पूर्णतः भस्म कर दिया जाय तो भी भूत होकर यह आ लगता है[२]। मनके मर जानेपर भी इसका भरोसा न करे क्योंकि यह मृतक मन जलमें मेंढक-की तरहसे उछल सकता है[३]। अपने मनको मृतक समझकर किसीको भी अभिमान नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह मन पुनः अनेक रूपोंमें आकर तूफान खड़े कर सकता है[४]।

प्रेम, भक्ति

राम और राम नामके प्रति प्रेम और भक्ति होना भी यहाँ आवश्यक माना है और उस प्रेम अथवा भक्तिका उद्भव गुरुके सबदसे माना है और गुरुका सबद गुरुकी कृपापर निर्भर करता है। गुरुकी कृपा तो आवश्यक है ही, साथ ही उस 'रांम' की कृपा भी उपेक्षित है। जनहरिरांम भिक्षुक बनकर 'राम राय' से दान माँगते हैं कि मैं आठो पहर चित्त लगाकर आपका स्मरण करता रहूँ। मुझे 'भगति' का दान

---

१. स्वात्मन्येव सदा स्थित्या मनो नश्यति योगिनः।
युक्त्या श्रुत्या स्वानुभूत्या ज्ञात्वा सर्वात्ममात्मनः॥
(अध्यात्मोपनिषत्, श्लो० ४)

२. मन कुं मारि मसांण करि, भयौ षाक दर जाय।
जनहरीया मन भूत हुय, फेर विलगौ आय॥

३. हरीया मन मिरतग भयौ, तौई भरोसौ नांहि।
ज्युं मन मिरतग डेडरौ, कूदि उठै जल मांहि॥

४. मन कुं मिरतग जानि करि, मत कोई करौ गुमांन।
जनहरीया मन रूप धरि, किता करै तूफांन॥
(अंग, २१ क्रमशः सा० २, ५, ३)

ही दे दीजिये। मैं 'मुगति' नहीं माँगता[1]। क्योंकि भजनके बिना मानव जन्म व्यर्थ चला जाता है। भजनरहित व्यक्ति विषय-वासनाओंमें रत रहता है, उसे 'पेम भगति' नहीं भाती, वह लोक-लज्जा, कुलके कार्य आदिमें व्यस्त रहता है। हरिकी उपासना उसे नहीं सुहाती। अन्य भ्रम और कर्मोंमें लगनेके कारण 'नांव' पर निश्चयात्म नहीं होता। इसीलिए 'जनहरिरांम' उसे भोंदू कहते हैं[2]। उनकी दृष्टिमें हरिकी भक्ति ही सत्य है[3]। विषयोंकी प्यास प्रेमका प्याला पीनेसे ही मिटती है[4]। क्योंकि 'रांम रसांयन' में प्रेम रस भरा हुआ है। इसका स्वाद

---

१. मंगन कुं दांन दिवौ रांम राय।
....
आठ पोहर ओल्ग हरि आगै, करिहुं चित लगाय।
....
जनहरिरांम भगति बगसीजै, मुगति न मांगुं काय॥
(हरिजस, सं० ४७)

एवम्

प्रभु जी पेम भगति मोहि आपौ।
....
आठ पौहर औलगं अणघड़ की, ता सेती निसतारू।
(हरिजस, सं० १७७)

२. भजन बिन अहळ जमारौ जाय।
रातौ रहै सदा विष रस मैं, पेम भगति नही भाय।
लोक लाज काज कुल मांही, हरि पूज्यौ न सुहाय॥
औरां भरम करम सुं लागै, निसचै नांव न पाय।
जनहरिरांम भगति विन भूंदू, कहा कमायौ आय॥
(हरिजस, सं० ४९)

३. दास हरिरांम कहै साच हरि भगति है।
ढील कीजै गती देह साजी॥
(रेषता, सं० ३२)

४. पेम पीयाला पीव करि, विषीया प्यास मिटाय।
(अंग, ५० सा० २७)

अलौकिक है, जो एक बार इसे चख लेता है उसे विषयोंका स्वाद याद ही नहीं आता[1]।

यह प्रेम और भक्ति उसी 'रांम' (आत्मा) से ही करनेका विधान है। कोई अन्य सगुण या साकार स्वरूपके प्रति प्रेम करनेका अवकाश नहीं है क्योंकि सबसे प्रिय आत्मा ही है, आत्माके लिए सब प्रिय होते हैं—यह उपनिषद् स्पष्ट कहती है[2] तथा इसीका उल्लेख श्रीमद्भागवतमें भी हुआ है[3]। एक प्रकारसे हरिजस संख्या १७७ में 'आठ पौहर औलग अणघड़ की' कहकर साकार और सगुण उपासनासे पृथक् होनेका संकेत दे दिया गया है।

राम-नाम

यह स्पष्ट है कि 'रांम' शब्दसे यहाँ रामावतारका ग्रहण नहीं है यहाँ तो उस अवतारीका ग्रहण है जिसने अनेक अवतार धारण किए हैं, उस सच्चिदानन्द ब्रह्मको ही इस वाणीमें 'रांम' शब्दसे व्यवहृत किया गया है 'रांम' शब्दसे अपने आत्माका ही ग्रहण है। यह ज्योतिस्वरूप घट-घटमें रमण करनेके कारण ही 'रांम' कहलाया है। यह दृष्टि और मुष्टिमें आने वाला नहीं है यह तो अपने आप उत्पन्न हुआ है और अपने आप ही सर्वत्र व्याप्त हुआ है[4]। अतः सर्वव्यापक तत्त्वका कोई स्वरूप नहीं हो सकता उसे केवल नाम द्वारा ही जाना जा सकता है और वह नाम यहाँ 'रांम' है। 'रांम' के समान कोई दूसरा नाम नहीं है[5]। रामनामसे मिल-

---

१. रांम रसांयन पेम रस, अैसा और न स्वाद।
जनहरीया जै चषीया, विषै न आवै याद ॥
(अंग, १२ सा० ७)

२. वृहदारण्यकोपनिषत्, अध्या० २ ब्रा० ४ मं० ५ ॥

३. तस्मात् प्रियतमः स्वात्मा सर्वेषामपि देहिनाम्।
तदर्थमेनं सकलं जगच्चैतच्चराचरम् ॥
(श्रीमद्भागवत, स्कं० १० अ० १४, श्लोक ५४)

४. जोति सरूप सकल घट जोती, रमता रांम कहायौ।
दिष्ट न मुष्ट सुन्यौ नही देष्यौ, आप ऊपनौ आयौ ॥
(हरिजस, सं० १७६। १)

५. नांव न कोई रांम सा,। (ग्यांन परिछया, २)

कर ही 'हरिरांम' ने परमधाममें स्थिति प्राप्त की है[1]। तन, मन, वचनसे एक ही प्रकारकी उच्च 'करणी' करो और 'रांम' को हृदयमें बसाकर ध्यान धरो तो माया-मोह सब नष्ट हो जायगा[2]। इस 'रकार' 'मकार' को जाने बिना सारे वेद-पुराणोंका ज्ञान भी थोथा है[3]। इसलिए केवल मात्र 'रांम नांम' का ही सुमिरन करना चाहिए। शेष सारे विधान फंदेकी तरह हैं उन्हें त्याग देना चाहिए[4]। वर्णमातृकाके बावन अक्षरोंमें रकार और मकारसे बना हुआ ही निज (आत्मा) का मंत्र है[5]। यह 'रांम' निरंजन है अलष है 'अजोनी' है इसीका ध्यान लगाना चाहिए ऐसा वेद, विष्णु, शिव, शेष और समस्त मुनिजन कहते हैं[6]। यह एक ही 'राम नाम' ऐसा है जिसे सुमिरन करनेवाला कोई भी हो डूबता नहीं[7]। योग, यज्ञ, दान, तप, नियम, तीर्थ, व्रत आदि कोई भी इस संसारमें 'रांम नांम' की बराबरी नहीं कर सकता[8]। यह नाम ही निराधारका

---

१. रांम मिल हरिरांम कीया, परम धांम मुकांम ॥
(हरिजस, सं० १६७ । ५)

२. करौ करणी धरौ ध्यानां, एक तन मन वाच ।
मोह माया मिटै तेरी, रांम हिरदै राच ॥
(हरिजस, सं० १११ । ७)

३. एकै ररै ममै विण जांण्या, थोथा वेद पुरांणी ॥
(हरिजस, सं० ९३ । ५)

४. रांम नांम कुं सिवरीयै, और नवारौ फंध ।
हेकै सांई बाहिरो, जांन सकल जुग धंध ॥
(हरिजस, सं० १५३ । २)

५. ररौ ममौ बांवन अछर मैं, है निजमंतर सोई ।
(हरिजस, सं० १५६ । १)

६. वेद विसन सिव सेस कहैत है, निगम मुनीजन गाई ।
रांम निरंजन अलष अजोनी, या सुं ध्यांन लगाई ॥
(हरिजस, सं० १५८ । २)

७. एक रांम नांम महबूबै । याकुं सिवरयां कोय न डूबै ॥
(घटपरचौ, ३८)

८. जोग जिग दांन तप नेम तीरथ व्रत,
तुल्य तिह लोक नही नांव जेती ॥ (रेषता, २)

आधार है क्योंकि नामकी कृपासे ही सारा भेद प्राप्त हुआ है[1]। इस मानव जन्मको पाकर जो 'रांम नांम' कहता रहता है वही श्रेष्ठ है चाहे वह संसारी जीव हो या 'भेषधारी' साधु-संन्यासी[2]।

सन्तमतमें ही नहीं, प्रायः सभी सम्प्रदायोंमें नाम-स्मरणका और नामका विशेष महत्त्व है क्योंकि विशेष अक्षरोंसे संगठित शब्दोंको बार-बार उच्चारण करनेसे एक विशेष शक्ति प्रादुर्भूत होती है। यह नाम कहीं 'ओंकार' है कहीं किसी मंत्रके रूपमें है तो कहीं 'नाम' के रूपमें। सभी पुराणोंमें नामका माहात्म्य वर्णित है। प्रत्येक देव-देवताओंके अष्टोत्तर-शत (१०८) नाम वा सहस्रनामके संग्रहोंका पाठ करनेका प्रचलन भी है। सूर एवं तुलसी-जैसे सगुण-साकारोपासक भक्तसे लेकर कबीर-जैसे सभी निर्गुण-निराकारके साधक सन्तोंके साहित्यमें भी नाम-सुमिरनका प्रतिपादन है। वही नाम इस सम्प्रदायमें 'रांम' है। प्रायः कबीर आदि निर्गुण-सन्तोंने भी 'राम' नाम ही ग्रहण किया है। युग-युगोंसे इस नामको लेनेवाले निर्भय हो चुके हैं जिसकी साक्षी सारे संत सदा देते हैं[3]। सच्चा साथी यही है[4]।

गुरु-परम्परा

इस 'राम' नामको इन्होंने कोई यों ही मन ही से स्वीकार नहीं किया है, इसके विषयमें इन्हें पूर्णतः ज्ञान है कि इस 'राम' नामकी महिमा वेद-पुराण, स्मृतियाँ, अन्य अनेक शास्त्र, गीता, भागवत, रामायण आदि ग्रन्थोंने गाई है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शेष आदि देवोंको भी यह प्रिय है अतः इसके तुल्य संसारमें कोई नहीं है। पर यह कहने-सुननेकी बात

---

१. "नांव निरधार आधार तिहु लोक मैं,।"
"नांव परताप भिन भेद पाया।" (रेषता, ५)

२. रांम कहै सेई भला, कहा जगत कहा भेष।
तैं औरां की क्या पड़ी, हरीया दिल मैं देष॥
(अंग, ४३ सा० ४)

३. आदि जुगादि ले नांव त्रिभै भया।
भरैं साष जाकी सदा संत सोई॥ (रेषता, ७)

४. दास हरिरांम तांह नांव सचा संगी।
तुं नांहि किसकौ न को और तेरा॥ (रेषता, १६)

नहीं है, इसका अनुभव गुरु विना नहीं हो सकता[1]। इसी 'राम' नाम (तारक-मंत्र) की गुरु-परम्परा भी इन्होंने बतलाई है, जो निम्नांकित है[2]—

शिव
|
पार्वती
|
नारद
|
सनकादि
|
जनक
|
शुकदेव

इसी परम्परासे प्राप्त इस 'राम' नामको इन्होंने स्वीकार किया है।

सुमिरन

रसनासे राम नामका स्मरण नित्य करते हुए अपने चित्तको स्वस्थ रखो और आप (आत्म) को उलटकर देखते रहो[3]। यही इस सम्प्रदाय-

---

१. रांम वषांनै वेद, रांम कुं दाषि पुरांनै।
रांम साष सिंमृत, रांम सासत्र सु जांनै॥
रांम गीता भागोत, रांम रांमांयन गावै।
रांम विसन सिव सेस, रांम ब्रह्मा मन भावै॥
रांम नांम तिंहु लोक मैं, अैसा और न कोय।
जनहरीया गुरगम विनां, कह्यां सुंन्यां क्या होय॥
(कवति, २ पृ० ३४९)

२. प्रथम गरू सिव जांनि, नांव पारबती दीयौ।
ता सेती नारद, नांव तन मतैं लीयौ॥
दे नारद उपदेस, नांव सिनकादिक जांन्यौ।
गुर तैं जनक वदेह, पीव उर मांहि पिछांन्यौ॥
सतगुर तैं सुषदेव मुनि, कीया भरम सब दूर।
जनहरीया गुरगम अगम, ताहि लहै कोई सूर॥
(वही, सं० ३)

३. हरीया रसनां सिवरीयै, रांम नांम कुं नित।
आपा देषौ उलटि कै, चंगा राषौ चित॥
(प्रसंग, ३ सा० २)

में सुमिरनका अर्थ है, यह सभी सम्प्रदायोंमें नामान्तरोंसे ग्राह्य है। व्यापक रूपमें इसे 'जप' कहा जा सकता है। यह नादानुसन्धानका ही एक रूप है। जप अल्पश्रम-साध्य है, बाह्य साधनों एवं उपकरणोंकी आवश्यकता भी इसमें नहीं है। इसीलिए यह 'सहज' है। किन्तु इसकी वस्तुतः सहजावस्था तब होती है जब यह सुमिरन स्वतः होने लगे अर्थात् कर्त्ताका कर्तृत्वाभिमान न रहे अर्थात् वाचिक, उपांशु और मानसिक इन तीनों प्रकारकी वैखरी वाक् और मध्यमा एवं पश्यन्तीकी अवधिसे अतिक्रमण होनेपर ही यह स्वतः होता है। यहाँपर भी श्रीजी महाराजने अपना स्वयंका अनुभव स्पष्ट किया है, वह भी उपरोक्त कथनसे साम्य रखता है। इन्होंने दो महीनेतक तो निरन्तर रसनासे सुमिरन किया, तत्पश्चात् हृदय और कंठमें 'राम' 'राम' स्मरणकी अनुभूति इनको सात वर्षोंतक होती रही[१]। तत्पश्चात् नाभि-स्थानमें नौ दिनतक स्मरण करनेपर इनकी 'सहज कलाएँ' जग गईं, 'ओउं सोऊं' (हंसः सोऽहम्) का सहज शब्द सुनाई देने लगा[२], और परिणामतः रोम रोम 'रं रं कार' का सहज जप करने लगा। इसकी महिमा कोई नहीं कह सकता। यह 'सहज सुष' भाग्य बिना नहीं मिलता[३]। ऐसा प्रतीत होता है कि यह स्मरण-पद्धति जप-विज्ञानका स्पष्ट स्वरूप है। इसका आरम्भ वैखरीसे अर्थात् रसना एवं कण्ठ तथा हृदयसे तत्पश्चात् वह मध्यमा वाक्की परिधिमें पहुँचकर तत्पश्चात् पश्यन्तीके परिवेषमें प्रविष्ट करता है तत्पश्चात् मूलाधारकी ओर

---

१. रांम रांम रसनां लीया, मास दोय विसरांम।
हरीया हिरदै कंठ मैं, सागर वरस मुकांम॥
(प्रसंग, ३ सा० १)

२. हरीया नाभी वीच मैं, नव दिन कीया मुकांम।
चेतन सेती यारीयां, चित चवथै ठांम॥
सहज कला जागी सबै, तन मन वचनां सास।
जनहरीया इंदर कथा, वेद न जांणै व्यास॥
ओऊं सोऊं सबद की, सहजां सुणी अवाज।
जनहरीया इण ऊपरै, ररंकार का राज॥
(वही, सा० १६, १७, १८)

३. रोम रोम ररंकार की, महमा कही न जाय।
जनहरीया सुष सहज कुं, भाग विना नही पाय॥
(वही, सा० २१)

प्रवृत्त होनेपर ही वह 'सहज' होता है और परिणामतः 'रोम रोम' 'रांम रांम' करने लगता है। इस विषयका वाणीमें अनेक स्थानोंपर विवेचन है। इसे 'अध, मध, उतम, अतिउतम' के भेदसे चार श्रेणियोंमें विभक्त किया है। अतिउत्तम स्मरण वह है जो नाभिस्थानसे नीचे होता है। पश्यन्तीको भी पार कर जानेपर पराकी परिधिमें होनेवाले स्मरणकी स्थिति ही सर्वश्रेष्ठ है।

ऊपर कह आए हैं कि 'रांम रांम' का स्मरण करते-करते केवल 'रंकार' अवशेष रह जाता है तो प्रश्न यह उठता है कि यदि 'रंकार' मात्र शेष रहता है और वही स्थिति उत्तम है तो फिर प्रारम्भसे ही 'रांम' का स्मरण न करके 'रंकार' की ही रटना क्यों न लगाई जावे? इसका उत्तर है कि पहलेसे ही केवल आदि 'रंकार' को स्मरण करनेसे सफलता नहीं मिलती क्योंकि र और म ये दो अक्षर पक्षीके दो पंखोंकी भाँति हैं[1]। रसनासे लेकर नाभिपर्यन्त मकारकी स्थिति बनी रहती है इसके पश्चात् रोम रोममें 'र रंकार' (रं रं रं...) गूँजने लगता है वहाँ मकारके लिए स्थान नहीं है[2]। और यह 'ररंकार' ही ,नाभिसे मूलाधारकी ओर जाकर, उलटकर 'असमांन' (सहस्रार) की ओर चढ़ता है, मकार तो नाभिस्थानके पूर्व ही थक जाता है[3]। इसलिए सदा आठों प्रहर 'रांम रांम' 'अभंग' रूपसे रटता रहे, रटते-रटते कभी सहज स्थितिमें पहुँचने-पर अपने आप पहले अक्षर 'रं' के साथ 'म' नहीं रहेगा[4]।

---

१. आदि एक ररंकार कुं, सिवरयां सिध न होय।
जनहरीया ममंकार मिल, यु पंछी पर दोय॥
(रांम नांम सिवरन विचार, सा० १)

२. हरीया रसनां नाभ लग, ममंकार की दौर।
रोम रोम ररंकार हुय, ममंकार नही ठौर॥
(वही, सा० ५)

३. ररंकार पछिम दिसा, उलटि चढे असमांन।
हरीया नाभी पूरब दिस, ममा थकि रह्या प्रांन॥
(वही, सा० ४)

४. रांम रांम रटता रहै, आठुं पौहर अभंग।
हरीया कबहक सहज मैं, एक न दूजै संग॥
(वही, सा० ९)

सहज

जहाँ आत्मतत्त्वकी साधनाका उपदेश है वहाँ साधन भी बाह्य न होकर आन्तरिक ही होंगे। जिस प्रकारकी साधना होगी उसी प्रकारके उपकरण एवं उपचार भी होने आवश्यक हैं। यहाँपर अन्तरमें निवास करनेवाली आत्मा, जो कि अनादि, अनन्त है उसकी साधनाका प्रसंग है। ऐसे 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' के लिए बाह्य स्थूल उपकरण और उपचारोंका औचित्य भी तो सम्भव नहीं है; अतः यहाँपर बाह्य साधनोंकी उपेक्षा की गई है तथा आन्तरिक 'सहज' साधनोंकी आवश्यकता बताई गई है। सहजका ताला सहजकी चाबीसे ही खुलेगा। सहजको पानेके लिए सहज साधन ही अपेक्षित है[1]। सुमिरन भी सहज सुमिरनके बराबर दूसरा नहीं है[2]। यहाँपर गंगा, यमुना, सरस्वती तीनों ही घट ही में हैं। सहजका ही छापा, तिलक है। स्नान भी घट ही में है और सेवा भी घटमें ही की जाती है, किसी धातु या पाषाणनिर्मितकी नहीं। यहाँ कोई पत्र-पुष्प नहीं चढ़ाया जाता। यहाँ तो घट ही में 'उंनमुंन ध्यांन' लगाते हैं। घट ही में सहज-प्रणाम, दण्डवत् एवं प्राण-पुरुषकी पूजा होती है[3]। 'सतगुर' ने मन-माला 'सुरति' के सूतमें पिरोकर दी है उसे घटके भीतर ही फेरते रहनेसे अजपा जप होता है[4]।

---

१. सहजां ताला षूल्ही, सहजां कूंची लाय।
हरीया अैसैं सहज कुं, सहजां विना न पाय॥
(अंग, २९ सा० ५)

२. सिवरन ना कोई सहज सा,। (ग्यांन परिछया, ९)

३. घट मैं गंग जमुन सुरसती। छापा तिलक सहज गोमती॥
घट मैं सेव करूँ असनांनां। पूजुं मूरत न धात पषांनां॥
पान न पाती फूल चडांउं। घट मैं उंनमुंन ध्यांन लगांउं॥
घट मैं सहज करूं डंडौता। पूजुं प्राण पुरष पंडौता॥
(घट परचौ, १५-१६)

४. मन माला सतगुर दई, सुरति सूत सुं पोय।
हरीया घट मैं फेरीयै, जाप अजपा होय॥
(अंग, ७६ सा० १०)

साधु वही है जो सहज समाधि लगाता हो और किसी प्रकारकी न तो उपाधि रखता हो और न ही हठ-पच करके मरता हो[१]। आरती भी घट ही में करनी चाहिए और सदा 'रांम रसांयन' पीते रहना चाहिए। क्योंकि इस घट ही में मन्दिर है घट ही में देव है अतः घट ही में यह मन सहज सेवा करता है। घट ही में पाँच (इन्द्रियाँ) पचीस (प्रकृति) पंडे हैं और घट ही में अखण्ड ज्योति प्रकाशित है। घट ही में पत्र-पुष्पसे आत्मदेवको मनाया जाता है। शंख आदि वाद्योंके शब्द घट ही में होते हैं और इस घटमें ही निरंजन पूर्ण पुरुषोत्तम स्थित है। हरिका दास घट ही में उसके गुणगान करता है और घट ही में प्रकाश-पदको प्राप्त होता है। यद्यपि घटमें ही रांम बैठे हुए हैं परन्तु खोज किये बिना इनकी प्राप्ति नहीं होती[२]। 'जनहरिरांम' को घटके भीतर सहज ही में 'देव मुरारी' की प्राप्ति हुई थी और इसमें सत्गुरुकी सहायता थी जिसने अपने अन्तरमें ही निरन्तर उसे देखा था उसीने यह भेद बताया था। वेद, पुराण आदि ग्रन्थ भी सहज रूपसे अन्दर ही हैं वहाँ सहज ही अक्षरोंको पढ़ा जाता है। सारे वाद्य भी सहज हैं और नाच करनेवाला भी सहज है। गंगा, यमुना, सरस्वती भी वहाँ सहज हैं और सहज ही स्नान होता है। सहज ही घटमें देवकी सेवा है और सहज ही ब्रह्मज्ञान है। योग और उसकी युक्ति भी सहज है और ऋद्धि-सिद्धि भी सहज रूपसे दासी बनी हुई हैं। सहज-ध्यानकी ध्वनि ब्रह्माण्डमें लगनेसे सहजमें ही 'अविनाशी' की प्राप्ति हुई है। जब राम नामका ज्ञान हो गया तब सारे ही 'सहज' मिलकर एक हो गये। फिर मोक्ष और मुक्तिका भी संशय नहीं रहा। सहजद्वारा ही 'सबद' की पहिचान हुई। सुरति-निरति भी सहज हैं और सहज मन्दिरमें

---

१. साध सोई जाकै सहज समाधि। हठ पचि मरै न और उपाधि।

(हरिजस, सं० ४६)

२. अैसी आरती घट ही मांय कीजे। रांम रसांयन निसदिन पीजै॥
घट ही मैं देवल घट ही मैं देवा। घट ही मैं सहज करै मन सेवा॥
घट ही मैं पांच पचीसुं पंडा। घट ही मैं जागै जोति अषंडा॥
घट ही मैं पाती फूल चढ़ावै। घट ही मैं आतम देव मनावै॥
घट ही मैं संष सबद घन तूरा। घट ही मैं नाथ निरंजन पूरा॥
घट ही मैं गावै हरि का दासा। घट ही मैं पावै पद परगासा॥
जनहरिरांम रांम घट मांही। विन षोज्यां कोई पावै नांही॥

(हरिजस, सं० ८३)

ही निवास हैं। सहजरूपी पतिसे रमण करना और उसके घरमें बस जाना भी सहज ही है। इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नामक नारियाँ (नाड़ियाँ) भी सहजस्वरूपा हैं; अतः जो कुछ भी है 'सहज' है और वह घट ही में है[1]। उसे न तो बाहर खोजना है और न बाह्य साधनोंकी अपेक्षा ही है।

ज्ञान-क्रिया

'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'—ज्ञानके बिना मुक्ति असम्भव बतानेवाले शास्त्रोंकी तरह यहाँ भी स्पष्ट कहा गया है कि मनमें जो 'गिण-तिण' अर्थात् भ्रम, सन्देह एवं संशय हैं वे ज्ञानके बिना नहीं मिटते[2]। उस ज्ञानको उत्पन्न करनेवाले गुरु हैं। अस्मद्-युष्मद्के भेदरूपी अज्ञानको ज्ञानद्वारा गुरु ही मिटाते हैं[3]। गुरुद्वारा प्राप्त ज्ञानसे जबतक 'रांम'

---

१. संतो सतगुर करण सिहाई।
अंतर मांहि निरंतर देष्या, जिन औ भेद बताई ॥
सहजां पुसतग वेद पुरांनां, सहजां अछर बांचै।
सहजां तार तबल घर तूरा, सहज नचईया नाचै ॥
सहजां गंगा जमन सुरसती, सहजां करत सिनांनां।
सहजां देव सेव घट भीतरि, सहजां ब्रह्म गिनांनां ॥
सहजां जोग जुगती भी सहजां, सहजां रिध सिध दासी।
सहजां गिगन ध्यांन धुनि लागी, सहज मिल्या अभिनासी ॥
सहजां सहजां एक भया सब, रांम नांम जब जांण्यां।
मोंष मुगति का ना कोई संसा, सहजां सबद पिछांण्यां ॥
सहजां सुरति निरति भी सहजां, सहज मिंदर मैं वासा।
सहज पीया सुं सेझ रमंती, सहज कीया घर वासा ॥
सहजां इला पिंगला सहजां, सहजां सुषमिण नारी।
जनहरिरांम सहज घट भीतरि, पाया देव मुरारी ॥
(हरिजस, सं० ९७)

२. गिण तिण मिटै न ग्यांन विन, विण धीरज नही ध्यांन।
(प्रसंग, ३३ सा० १९)

३. गुर श्रोता कुं भेद वतावै। मैं तैं मन अग्यांन मिटावै ॥
(निजग्यांन, ५)

(आत्मतत्त्व) को नहीं जाना जाता है तभीतक गलेमें भ्रमकी रस्सी बँधी रहती है और उस रस्सीको पकड़कर यमराज जहाँ-तहाँ खींचते रहते हैं[1]। ज्ञानरूपी सूर्यके उदय होनेपर ही अज्ञानरूपी रात्रिका नाश होता है और उसीके प्रकाशमें हृदयरूपी दर्पणमें आत्मरूपी मुख दिखलाई देता है[2]। इस प्रकार अनेक स्थानोंपर ज्ञानकी प्रमुखता स्वीकार की गई है किन्तु यहाँ एक विशेष बात यह है कि ज्ञानके साथ ध्यानकी आवश्यकता-पर जोर दिया गया है। गुरुके सबदका ज्ञान और हृदयमें ध्यान करने[3] तथा ज्ञान और ध्यानमें 'गलतांन' रहनेसे ही संसारका साथ छूटता है[4]। ध्यानको यहाँ क्रियाके रूपमें स्वीकार किया गया है। 'ग्यांन' ब्रह्मकी दृष्टि है और क्रिया ध्यान-स्वरूप है इन दोनोंके मेलसे ही आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है[5]।

ज्ञान और क्रिया (ध्यान) से ही हरिजन पार उतरते हैं जैसे अंधेके कंधेपर चढ़कर पंगु (अंधेसहित) पार हो जाता है[6]। यहाँ ज्ञानको

---

१. हरीया रांम न जांणीयौ, विना ग्यांन गुरगम।
गले भरम की जेवरी, जहां तहां षांचे जम॥
(छुटक, सा० २३८)

२. उदै भया जब ग्यांन रवि, मुष आतम दरसाय।
हरीया दरपन वीच उर, निस अग्यांन नसाय॥
(वही, सा० १५१)

३. सबद गरू का ग्यांन, ध्यांन उर धारि रे।
आपा निहचै बैस, भरम कुं डारि रे॥
(अंग, ६१ चंद्रा० १२५)

४. सबद गरू का बांण, सहै कोई सुगरा।
ग्यांन ध्यांन गलतांन, न संगी जुग रा॥
(वही, चं० १२३)

५. ग्यांन ब्रह्म की दिष्ट है, किरीया ध्यांन सरूप।
जनहरीया मिल देषीये, आतम तत अनूप॥
(प्रसंग, १८ सा० ५)

६. ग्यांन क्रीया तैं ऊतरे, हरीया हरिजन पारि।
अैसैं अंधै कंध करि, पंगौ आंनि उतारि॥
(प्रसंग, १८ सा० १)

पंगु और क्रिया (ध्यान) को अंधा कहा गया है। ये दोनों जब मिल जाते हैं तब मुक्ति सरलतासे प्राप्त होती है[१]। ज्ञानके बिना क्रिया और क्रियाके बिना ज्ञानको व्यर्थ बताया गया है[२]। परन्तु ज्ञान और क्रिया दोनों साथ हों तो मोक्षरूपी महापदकी प्राप्ति निश्चय जानो और ग्यान वा क्रिया इन दोनोंके अभावमें भक्ति केवल भ्रम है[३]। ज्ञानके विषयमें यही विशेषता यहाँ ध्यान देने योग्य है।

योग

'योग' शब्द एक विशेष दर्शनके लिए प्रयुक्त होता है। इस योगकी क्रिया, साधना एवं उपायको भी योग कहते हैं। यह यम, नियम, आसन प्राणायाम और प्रत्याहार नामक पाँच बहिरङ्ग साधनों एवं ध्यान, धारणा और समाधि नामक तीन अन्तरङ्ग साधनोंसे आठ प्रकारका वर्णित है। तन्त्रोंमें जिसे शक्तिका शिवसे सामरस्य माना है, नाथ-पन्थी जिसे कुण्ड-लिनी शक्तिका सहस्रार-स्थित शिवसे मिलन वा नाद-विन्दुका मिलन मानते हैं, बौद्ध जिसे प्रज्ञा और उपायका मिलाप कहते हैं उसीको संत-साहित्य-में आत्मा और परमात्माका योग माना है तथा श्रीजी महाराजने इसे 'जीव' और 'सीव' (जीव और शिव) का योग माना है। यहाँ 'योग' को सहजरूपमें ग्रहण किया है, 'सहज साधना' 'सहज-समाधि' आदि शब्द उसीके द्योतक हैं। यह सहज साधना वैदिक राजयोग और तान्त्रिक हठयोगका समन्वित सार रूप है। इस सम्प्रदायमें 'सार सबद' (राम) से युक्त होनेसे यह 'नामभक्तियोग' पूर्णतः रहस्यपूर्ण है। इस रहस्यका उद्घाटन श्रीजी महाराज ने स्वयं अनुभव करके 'घघर निसाणी' नामक रचनामें किया है। प्राणायाम, अजपा-जप, कुण्डलिनी-जागरण, षट्चक्र-भेदन आदि सभी कुछ रामस्मरणपूर्वक होनेसे यह साधना सविकल्प प्रतीत होती है किन्तु अन्तमें जाकर पूर्णतः निर्विकल्प होकर असम्प्रज्ञात

---

१. पंगा सोई ग्यांन है, किरीया अंधी जांनि।
जनहरीया मिल एकठा, मुगति भई आसांनि॥
(प्रसंग, १८ सा० ३)

२. ग्यांन विनां किरीया निकुछ, निकुछि क्रिया विन ग्यांन॥
(वही, सा० ३)

३. ग्यांन सहत किरीया भई, मोष महापद जांनि।
हरीया किरीया ग्यांन विन, भगति भरम की ठांनि॥
(वही, सा० ६)

समाधिका रूप धारण कर लेती है। वहाँ ध्याता, ध्यान और ध्येयका एकात्म्य हो जाता हैं, यही इस सम्प्रदायके योगकी विशेषता है। इस विषयके उद्धरण आदि 'परिशिष्ट' भागमें 'घघर निसाणी' सटीक होनेसे यहाँ नहीं दिए गए हैं कृपया पाठक वहीं देखें।

अनन्याश्रय

रामसनेही-सम्प्रदायमें 'राम' (परमात्मा) के अतिरिक्त अन्य किसी भी पौराणिक देव-देवताओंका पूजन, उपासना और साधनाका तो परित्याग बताया ही है, साथ ही लोक-देवताओंके आश्रय और पूजन आदिकी भी भरपूर निन्दा की गई है। मूर्तिपूजाका खण्डन भी अत्यन्त रोचक युक्तियोंसे किया गया है। अन्यान्य धर्मों, आचारों आदिका भी आत्माके परिप्रेक्ष्यमें समादर नहीं है। आत्म-तत्त्वकी प्राप्ति केवल मात्र आत्म-दर्शनसे ही मानी गई है। अन्यानपेक्षापूर्वक पतिव्रता स्त्रीकी भाँति उसी आत्मासे प्रेम करना, उसीका चिन्तन, मनन आदि करना ही स्व-धर्म है। हरीया अपने आत्मको ही अपना 'यार' समझते हैं, उसीसे उन्हें प्रीति है। वे कहते हैं कि अगर तेरे अतिरिक्त दूसरेसे प्रेम करूँ तो मेरे मुँहपर धूल डाल देना[1]। पतिव्रता उसीको जानना चाहिए जो एक ही पतिसे नेह रखती हो। उस 'राम' के विना चाहे अनेकों आओ-जाओ उसे तनिक भी प्रसन्नता नहीं[2]। संसारमें प्रवर्तित रहते हुए आत्म-चिन्तन किस प्रकार सम्भव है इसके लिए एक अतीव सरल उदाहरण देते हुए कहते हैं कि पतिव्रता (आत्म-साधक) संसारमें इस प्रकारसे कार्य करता रहे जैसे भरी हुई गागर लेकर चलनेवाली पनिहारिन रास्ता भी चलती है, बातें भी करती है, भीड़ आदिसे बचती भी है, इस प्रकार सारी सावधानी रखते हुए भी अपना मन गागरकी ओर प्रतिक्षण अनवरत लगाए रहती है उसी प्रकार हरीया अपने पीव (आत्मा) का ध्यान रखते हैं[3]।

---

१. हरीया तोसुं प्रीतड़ी, आतम मेरे यार।
जो दूजै सुं तुझि विन, करूं त मुंहड़ै छार॥
(अंग, १८ सा० १)

२. पतिवरता सो जांणीयै, हरीया पति सुं हेक।
रांम विनां राचै नही, आवौ जाय अनेक॥
(वही, सा० १२)

३. पतिवरता यु पग धरै, छली गागरी नारि।
नारि निहारै गागरी, हरीया पीव निहारि॥
(वही, सा० २९)

इस घट (हृदय) में स्थित देवसे अधिक कोई पूज्य देव नहीं है। जो भी है इस घट ही में है इसलिए 'रांम' रूपी रसायन दिन-रात पीते रहो और आरती, सेवा, दीपक, पत्र-पुष्प, संगीत, वाद्य आदिद्वारा उसी घटमें वास करनेवालेकी सहज पूजा करो। वह 'रांम' इस घट ही में है पर बिना खोजे नहीं मिलता है[१]। यदि कोई इस भेदको जानता हो तो इस देहरूपी मूर्तिमें ही देव है। ईंट और चूनेके बिना चैतन्य पुरुषने इसे बनाकर स्वयंका अंश इसमें स्थापित किया है, इस मूर्तिमें 'अलष' 'अमूरत' (आत्मा) स्थित है मैं उसका ध्यान करता हूँ। मनुष्योंने जो देव स्थापित (कल्पित) किए हैं उन्हें कभी शिर नहीं झुकाता हूँ। जिसने आँखें, मुख, हाथ-पाँव आदि दिए हैं उन साधनोंसे सदा उत्तम कार्य करना चाहिए और इसी घटमें स्थित देव (आत्मा) को सुरति और निरतिसे पूजना चाहिए[२]।

मूर्त्ति-पूजा-निषेध

भूली हुई दुनिया आत्म-रामको छोड़कर दूसरोंको पुकारती है और पत्थर पूजनेको जाती है[३]। वह नहीं समझती है कि पत्थरको तरास करके यह मूर्त्ति बनाई गई है और इसका नाम 'करतार' रख दिया गया है। यदि

---

१. देखिए पृ० १०७ की टिप्पणी।

२. संतो या देवल मैं देवा, जे कोई जांणै भेवा ॥ टेर ॥
माटी ईंट पथर चूनै विन, काया देवल कीन्हो।
चेतन पुरष भयौ चेजारो, अंस आपणो दीन्हो ॥
या देवलमें अलष अमूरत, पेम प्रीत लिव लांउं।
मिनषां मांडि कीयौ परमेसर, ताहि न सीस नवांउं ॥
जिन दोय नैंन दीया निरषन कुं, मुष बोल्न कुं रसनां।
हाथ'र पाव दीया हाल्न कुं, करीयै उतिम कांमां ॥
अैसो देव न कोई देवल, या जुग मांहि न दूजो।
जनहरिरांम कहै निसदिन मैं, सुरति निरति करि पूजो ॥
(हरिजस, सं० ७३)

३. दुनीयां भूली दीन कुं, पांहण पूजण जाय।
अपणो रांम विसारि कै, और पुकारै आय ॥
(अंग, ३१ सा० २)

इसका भरोसा करेगी तो विना पानीके ही डूबनेवाली हैं[1]। यह मूर्त्ति या तो काष्ठकी या धातुकी या पत्थरकी बनाई जाती है पर जो आत्माराम है वह सहज है किसीद्वारा निर्मित नहीं[2]। व्यर्थ ही यह दुनिया विभिन्न देवी-देवताओं और भैरवों, क्षेत्रपालोंकी पूजा करती है, आत्मासे दूर हटकर अन्य जंजालमें लग रही है[3]। देवताओंको 'लापसी' और 'चूरिमों' (नैवेद्य) चढ़ाकर उन अन्य देवोंसे तो दीनता करती है और हरि (आत्मा) से आँख रखती है[4]। महमाई (महामाया, देवी) को नैवेद्य चढ़ानेके लिए 'नव नेवज' (नव प्रकारकी सामग्री) बनाती है। अरे, यह अन्न-पानी आदि तो सारा 'रांम' का (उत्पन्न किया हुआ) है, इसे अन्य देवी-देवताओंके चढ़ाते हुए इसे लज्जा नहीं आती[5]! और यदि यह मूर्त्ति-की देवी सत्य है तो इसे मुँहसे बोलवा दो। यदि बोलानेका प्रयत्न करने-पर भी यह नहीं बोल सकती है तो, समझ लो। मेरेद्वारा इसकी पोल मत खुलवाओ[6]।

---

१. कोरि पथर मूरति करी, नांव धर्‍यौ करतार।
इसैं भरोसै डूबस्यै, विण पांणी संसार॥
(अंग, ३१ सा० ४)

२. हरीया मूरत काठ की, का पथर धात की होय।
ऊ साहिब सहजां हूवा, कीया न किसका जोय॥
(वही, सा० १७)

३. दुनीयां देवी देवता, पूजै खेतरपाळ।
हरीया हरि सुं ऊतरी, लागी और जंजाळ॥
(वही, सा० ९)

४. चाडि लापसी चूरिमौ, चांट कुसल की नांषि।
आंन देव सुं दीनता, हरीया हरि सुं आंषि॥
(अंग, ६६ सा० २)

५. हरीया नव नेवज करै, महमाई कै काज।
अन पांणी सब रांम का, चाडत नावै लाज॥
(वही, सा० ३)

६. हरीया देवी सकल कहैं, मुष सेती बोलाय।
बोलाई बोलै नही, तौ मत पड़दा षोलाय॥
(अंग, ३१ सा० १२)

समस्त नर-नारी मिल करके पूजा करते हैं और कहते हैं कि ये हमारे कुलदेव हैं। बड़े दुःखकी बात है कि जो जड़ है उससे तो एकता स्थापित कर रहे हैं और जो चेतन (आत्मा) है उससे पृथक् हो रहे हैं[1]। इस तरह सर्वव्यापक आत्मतत्त्वको जब मूर्त्ति आदिमें ही केन्द्रित मानकर दुनिया उसे पूजनेमें प्रवृत्त हो जाती है और उसकी सर्वव्यापक सत्ताको भुला देती है तब वस्तुतः जड़द्वारा जड़का ही पूजन होता है। जबतक आत्मतत्त्व, चेतनका ज्ञान नहीं होता है तबतक बाहरके जड़ मूर्त्ति आदि प्रतीकोंमें व्यक्ति फँसा रहता है। उन्हींको प्रेरणा देनेके लिए धातु, पाषाण आदिसे निर्मित मनुष्यकृत मूर्त्ति एवं देवी-देवताओं-की पूजाकी यहाँ निन्दा की गई है। क्योंकि अपने आपमें जो आत्मा है वह 'अणघड़ीया' देव है इसलिए घड़े हुए (निर्मित) प्रतिमा आदिकी पूजा छोड़कर आत्माको ही भजना चाहिए[2]। दूसरे देवी-देवता किये और कराये जानेपर होते हैं परन्तु तनरूपी मन्दिर और हरि (आत्मा) रूपी देव किसीद्वारा निर्मित नहीं हैं[3]। इसलिए देहके भीतर ही 'अणघड़ीया' देव (आत्मा) है उसी 'सहजदेव' की सेवा करनी चाहिए[4]।

इसी प्रसंगमें अन्य धर्माचरण, आचार, व्रत, तप, तीर्थ आदिको भी आत्मदर्शन और आत्मलाभके अभावमें व्यर्थ घोषित किया गया है। अन्य एकादशी आदि व्रत, योग, यज्ञ, आचार आदिके विश्वासपर

---

१. हरीया कुलि का देव है, नर नारी मिल पूज।
अचेतन सुं एकता, चेतन सेती दूज॥
(छुटक, सा० १७८)

२. आतम आपा वीच मैं, सो अणघड़ीया देव।
जनहरीया इन कुं भजौ, तज्य घड़ीया की सेव॥
(अंग, ३१ सा० २३)

३. दूजा देवळ देवता, कीया कराया होय।
तन देवळ हरि देवता, हरीया कीया न होय॥
(छुटक, सा० १४१)

४. हरीया देही भीतरैं, है अणघड़ीया देव।
तन देवळ कूं पूजीयै, सहज देव की सेव॥
(वही, सा० १४४)

भूल करके मत बैठो, बिना आत्मविचारके इनसे कुछ नहीं होना है[१]। शरीरसे फिर-फिरकर अनेक तीर्थोंमें स्नान करनेसे कुछ नहीं बनेगा। सारे तीर्थ तो घट ही में हैं, क्यों बाहर भटकते हो[२]। 'जनहरिरांम' तत्कालीन प्रचलित देवताओंकी पूजा आदिको भी, 'रांम भगति' और अपने आपको देखे बिना व्यर्थ भटकानेवाली कहते हैं। यह लोक 'निपूती' है जो अपने 'सांई' को स्मरण नहीं करता है और दूसरोंको 'सपूती' समझकर घर-घरमें देवताके स्थान बनाता है, स्त्री-पुरुष मिलकर पूजा करते हैं, अपने सांसारिक स्वार्थोंकी कामना करते हैं, परमार्थसे दूर रहते हैं। यह दुनिया ज्ञान विना पगली होकर गोगा और पाबूके पवाड़े गाती है, पाँचों पीरोंके पाखण्डमें रत होकर 'रांम भगति' में रुचि नहीं रखती। चामुण्डाको भैंसेका बलिदान करके अपना भला चाहती है, जीव-दया बिना 'सांई' की राह नहीं मिलेगी। अन्य देवताओंकी 'जाति कबूलै' मनौती मनाती है, मरे हुए व्यक्तिका तो मरण-दिन मनाती है और चैतन्य तत्त्वसे चोरी करती है, 'पालिक' को छोड़कर 'पलक' से लगी हुई गनगौर तथा होली-की भी पूजा करती है, अन्य देवताओंके सामने 'आपा'—अनाज रखकर अपने शुभ-अशुभको पूछती है पर अपने आपको अन्दर नहीं देखती परन्तु इस आत्मतत्त्वके अतिरिक्त उस समय कोई भी काम नहीं आएगा जब यमराज बाँह पकड़ेगा। नवविवाहित दम्पती अन्य देवको राजी करनेके लिए रात-रातभर जागरण करते हैं और गीत गाते हैं। इस प्रकार 'फीटी' दुनिया हरिके ध्यान बिना भटक रही है[३]।

---

१. आंन धरम एकादसी, जोग जिग आचार।
इन आसै भूलै मतै, हरीया विनां विचार॥
(अंग, २७, सा० २६)

२. तन तीरथ फिर फिर कीया, जनहरीया क्या होय।
सब तीरथ घट भीतरैं, भटकि मरौ मत कोय॥
(अंग, ३१ सा० ८)

३. संतौ अैसैं लोक निपूती।
अपनौ सांई याद न आंनै, औरां जांनि सपूती॥ टेर॥
घर घर देवसथांन थापना, नर नारी मिल पूजैं।
आप सुवारथ करैं ईछनां, परमारथ सुं दूजैं॥
गहली दुनियां ग्यांन विहूंणी, गोगा पाबु गावै।
पंच पीर पाषंड सुं राती, रांम भगति नही भावै॥

वाणीमें अनेक स्थानोंपर अनेक प्रकारान्तरोंसे अन्य देव, अन्य साधना, लोक-देवता आदिका निराकरण करते हुए एकमात्र 'रांम' (आत्माराम) के प्रति ही भक्ति, पूजा, ध्यान, स्मरण, दर्शन आदिका मण्डन किया गया है।

मतान्तरोंकी आलोचना

आध्यात्मिक साधनाके क्षेत्रमें भी सामाजिक क्षेत्रकी तरह फैले हुए बाह्य साधनों, आडम्बरों, वेष-भूषाओं एवं विभिन्न सम्प्रदायोंके चिह्नों और रूढ़िगत मान्यताओंकी इन्होंने दृढतासे आलोचना की है। मूल रूपमें यह व्यंग्यात्मक तीव्र आलोचना 'घट परचौ'' नामक इनकी रचनामें दर्शनीय है (पृ० ३६४)। उदाहरणतः यहाँ कुछ प्रसंगोंका परिचय कराया जा रहा है।

कनफड़ा नाथोंको लक्ष्य करके वे कहते हैं कि, देखादेखी कान फड़वाकर दरसन (मुद्रा) पहन लिए गए हैं, कानोंमें तो चीरा लगवा लिया है किन्तु मनको बाँधातक नहीं है। जोगियोंके लिए इनका कथन है कि केवल 'गोपीचन्द भरथरी' के ख्याल गानेसे कुछ नहीं होता, जब तक 'जोग-ध्यान' की प्राप्ति न हो। बाहर भस्म लगानेसे कुछ नहीं होता, जोग और ध्यान तो अन्तरसे सम्बन्धित है। दूसरोंद्वारा 'आदेस' (नमस्कार) करवानेसे आदिपुरुष हृदयमें नहीं आता। सींगी बजाना

चांवड सेती भैंसा चाड़ै, भलौ आपणो चाहै।
जुग मैं जीव दया विन देष्यां, सांई के नही राहै ॥

आंन देव कुं जाति कबूलै, पिता पूत कै नांई।
जुग मैं जीव सकल जिन सिरज्या, सो नही सूझै सांई ॥

मूवै मड़ै कौ दिहसौ राषै, चेतन सेती चोरी।
पालिक छोडि षलक सुं लागा, धोकै गौरा होरी ॥

आंन देव का आषा पूछै, आप न देषै मांही।
या विन और न आवै आडौ, जब जम पकरै बांही ॥

लाडौ लाडी जाय लडांवण, रात्युं ओलग सारै।
जनहरिरांम फिरै मन फीटी, ध्यांन न हरि का धारै ॥

('हरिजस, सं० ६०)

और अन्य नाद, बाजे बजानेसे 'अनहद' नादका स्वाद नहीं आता, यह 'जोग' साधना नहीं अपितु भोग साधना है[1]।

जंगमके विषयमें ये कहते हैं कि, जंगम शिव-शंभुका गान करता है, बड़ा वेष बनाता है, शिरपर मुकुट बाँधता है; घंटे बजाता है, 'लड़-लूंबा' लटकाता है और घर-घरमें भीख माँगता फिरता है, क्या यही 'सतगुर' की शिक्षा है[2] ?

संन्यासी, नागे, अवधूत, जो कि भगवाँ वस्त्र पहनते हैं, अंगमें विभूति लगाते हैं, जटाजूट रखते हैं, लंगोटा पहनते हैं, कोई शस्त्र धारण करते हैं, ये अपने आपको तो नहीं मारते हैं औरोंको मारते हैं, रागद्वेषसे अनेक वेष बनाते हैं, सेनामें भरती होते हैं, तपस्या करते हैं, शरीरको कृश करते हैं। राजस-तामस मायाको धारण किए हुए ये 'दसनामी' शंख, नगारे, तुरही आदि वाजे बजाते हैं पर स्वयंने कभी भी 'अनहद' की आवाज नहीं सुनी है। अपने-अपने वर्गमें अपनी-अपनी दुहाई फेरते हैं पर इन्हें 'तत-मत' की 'षबरि' नहीं है। अपने आपको संन्यासी कहनेसे क्या हो? जबतक अपने आप (अहंकार) का त्याग (न्यास) न करे[3]।

---

१. दरसन देषा देष पहरीया। मन नही वीध्या कांन चहरीया॥
गोपीचंद भरथरी गाया। जोगी जोग ध्यांन नही पाया॥
जोग ध्यांन अंतर मैं भाई। क्या है बाहरि भसम लगाई॥
औरां सुं आदेस कराया। आदि पुरष हिरदै नही आया॥
वावै सीगी पूरै नादा। अनहद की नही जाणैं स्वादा॥
जोग न साझै साझै भोगा। ....॥
(घट परचौ, ४४, ४५, ४६)

२. जंगम सिव सिंभू करि गावै। दसा दिगंबर भेष बनावै॥
सिर मुगटी कर घंट बजावै। लड़ लूंबां नीचै लटकावै॥
घर घर में फिर मांगै भीषा। या सतगुर की नांही सीषा॥
(वही, ४७, ४८)

३. सिन्यासी नागा अवधूता। भगवा बसतर अंग बभूता॥
जटा लंगोटा ससतर धारी। आप न मारै औरां मारी॥
राग धेष बौह भेष बनावै। नायक सेन्या वीच कहावै॥
तपै षपै करि करि अहकारी। राजस तामस माया धारी॥

जैनियोंको भी कुछ खरी-खरी सुनाई गई है। सिरके केश लुञ्चन करवाकर अनेक प्रकारके प्रपंच करते हैं, जादू-टोना करते-फिरते हैं और घर-घर भीख माँगते हैं। लाभका लोभ मनमें रखते हैं, चेले मूँड़ते हैं, कुल ऊँचा होते हुए भी कर्मके नीच हैं। 'नेमनाथ' और 'पारसा' (पार्श्व-नाथ) की सेवा करते हैं पर आत्माकी नहीं; माथा मूँड़ते हैं मनको नहीं मूँड़ते। क्या हुआ, यदि नामसे 'जती' कहलाया, 'रहनी' तो 'एकरती' भी नहीं आई। पोथा बाँचते हैं 'बषांन' करते हैं। अपने हृदयमें अधर्म रखते हैं, दूसरोंको 'धर्म नेम' बतलाते हैं। स्वयम् अंधेरेमें बैठे रहते हैं, दूसरोंको प्रकाश दिखाते हुए दुनियाको 'धरम लाभ' करवाते हैं। यह जैन मायाका बन्धन है। 'जन्तर, मन्तर' का तथा 'ओषद पांणी' का धंधा करते हैं पर 'साधपणे' का मर्म नहीं जानते[1]। इन प्रसंगोंमें जैन धर्मके जती, समेगी, तेरहपंथी, स्थानकवासी आदि सभी प्रकारके आत्मदर्शन-रहित साधुओंको ग्रहण किया प्रतीत होता है।

संष नगारा तुरही वाजा। अनहद की नही जांणै वाजा ॥
दल मां फेरै दत दुहाई। तत मत की षबरि न काई ॥
देही का कहीयै दसनांमी। एक न जांणै अंतरजांमी ॥
सिन्यासी कहीयां क्या होई। जब तैं अपना करम न षोई ॥
(घट परचौ, ४९ से ५२)

१. माथा षोस'रि भया मथेना। चाळा चिरत करै बौतेना ॥
टांणा टूंणा कांमण करि है। घरि घरि भीष मागता फिर है ॥
चेला चांटी साल सुंवारै। दासभाव नही कोय दुवारै ॥
लोभ लाभ राषै मन मांही। दया धरम कुं पालै नांही ॥
ऊंचा कुल नींचा करमन का। भगति बिना भांडा भरमन का ॥
सेवै नेम नाथ पारसा। आतम देव नही वारसा ॥
मन मूंडै नही मूंडै माथा। इनकै भगति ऊतरी हाथा ॥
कहा भयौ जे जती कहाई। रहनी एक रती नही राई ॥
वाचै पोथा करै वषांनां। रहै एक दोय तिह ठांनां ॥
धरम नेम औरां कुं दाषै। आपा अधरम हिरदै राषै ॥
आप अंधारै औरां चंदणा। दुनीयां धरम लाभगुरवंदणा ॥
माया का बंधन है जैनां। तूटै कबू न उपजै चैनां ॥
जंतर मंतर ओषद पांणी। साध पणैं कुं मूल न जांणी ॥
(वही, ५३ से ६१)

केवल अन्य-धर्मियोंकी ही नहीं, अपने आपके पूर्वधर्म—वैष्णव धर्मके अनुयायियोंकी भी खूब हँसी उड़ाई गई है। ये वैष्णव नवधा भक्ति करते हैं पर इन्हें दसवींका पता नहीं है; छापा-तिलक लगाकर विशिष्ट 'वांना' वनाते हैं पर इनसे भी वह 'साहिव' 'छाना' है[1]। मूर्तिके सम्मुख 'षांन पांन' अर्पण करते हैं पर मूर्त्तिने आजतक इसपर ध्यान नहीं दिया परन्तु फिर भी ये मूर्ख समझते नहीं हैं। स्नान करते हैं, पत्थरकी पूजा करते हैं, फूल-पत्ती चढ़ाते हैं। पर इन पत्थर पूजनेवालोंसे भगवान् बहुत दूर मथुरामें रहते हैं, 'आतमराम' को इन वस्तुओंमें कोई रुचि नहीं है। दाढ़ी-मूँछ मूँड़नेसे कुछ नहीं होता, मनको मूँड़े विना सिद्धि नहीं मिलती है। इन्होंने तप किए, तीर्थोंमें स्नान किया, फिर भी इनका मैल नहीं छूटा[2]।

बीकानेर राज्यमें प्रचलित जसनाथी सिद्धों और विश्नोई पंथके थापनों और विश्नोइयोंको भी इन्होंने अपनी व्यंग्य वाणीका लक्ष्य बनाया है। जसनाथी सिद्धोंके विषयमें वे कहते हैं—जबसे कोई जाट जसनाथी सिद्ध बन गया तभीसे सरकारी लगानोंसे मुक्ति मिल गई। दूसरोंका 'सांग' सिरपर धारण कर लिया पर सदा अपने 'आसण' (स्थान) की वृद्धिकी आशा लगी रहती है तो फिर सिद्ध पुरुष होकर क्या उपलब्धि होगी ? कोई भी सिद्ध या साधक हो 'हरि' विना छूटनेका नहीं है[3]।

---

१. भगति वैसना नवध्या करि है। दसधा की कुछि षबरि न परि है ॥
छापा तिलक बनावे वांना। इनतैं साहिब रहीया छांना ॥
(घट परचौ, ६२)

२. ले मूरत मुष आगैं थरपै। षांन पांन इन सेती अरपै ॥
षांन पांन इनकै नही भांनै। मूरष तोई मरम न जांनै ॥
नाहै धोवै सेवै पथरा। इनतैं दूर रह्या हरि मथरा ॥
तोड़ै पाती फूल चड़ावै। युं तौ आतम रांम न भावै ॥
दाढ़ी मूंछ न मूंडौ कोई। मन मूंड्या विन सिध न होई ॥
तप तीरथ फिर कीया सिनांनां। तौइ न मन का मैल धुपांनां ॥
(वही, ६३ से ६६)

३. जाट भया सिध जसनाथांणा। छूट गई तेरै रकमांणा ॥
सिर परि सांग और का धारी। अपना साहिब गयौ विसारी ॥
मन तैं हुय बैठो सिध पुरसा। तन तैं सांग पहरीया दुरसा ॥

विश्नोइयोंको वे कहते हैं कि अरे थापन, तैंने वस्तुतः स्थापना करनेवाले (शाश्वत) को नहीं पहचाना और जो 'उथापन' (नश्वर) है उसीको हृदयमें बसा लिया है। वह 'थापन' माता-पितासे उत्पन्न नहीं हुआ है, वह तो अपने-आप ही उत्पन्न हुआ और व्याप्त हुआ है। अरे थापन, तूँ बड़ा अज्ञानी है जो 'झांभा' को 'सांई' समझ लिया है। अरे, 'झांभे' जैसे तो कलियुगमें और भी होंगे पर 'सांई' के समान कोई कहीं नहीं है। 'रांम' भक्ति बिना तेरी बड़ी 'भांडी' होगी, यह 'भांडी' वैसी ही होगी जैसे कोई रांड होकर विवाह भी करे और वह भी किसी मुर्दे-के साथ[1]।

घट परचौमें इसी प्रकार पंडित, पीर, साधु, भोपा, कांबड़, औघड़, दरवेश, नागा, मौनी, दूधाधारी आदि "छह दरसन छिनवै पाषंडा" सभीको राम-भक्ति और ब्रह्मविचार तथा आत्मदर्शनके बिना व्यर्थ बतलाया गया है।

स्पष्ट ही यह अन्य सम्प्रदायों एवं पंथोंकी व्यर्थतामूलक निन्दा अपने मतकी प्रशंसाके निमित्त है, इनकी निन्दा करनेका मूल उद्देश्य इसमें निहित नहीं है। तदुपरान्त भी बाह्य आडम्बर और पाखण्डको उखाड़ फेंकनेका उद्देश्य तो स्पष्ट प्रतीत होता है। मुख्यतः आत्मसाधनाके प्रसंगमें लगे हुए विभिन्न सम्प्रदायों और पंथोंमें जब रूढ़िवाद एवं बाह्याडम्बरकी प्रमुखता साधकको आत्मसाधनासे च्युत कर देती है तब सभी सन्त इस प्रकारकी आलोचना करते दिखाई पड़ते हैं।

तेरै घर आसा आसण की। सिध पुरस हुय क्या भ्राटण की॥
अब तो सिध भया जसनाथी। अंतकाल तेरा नही साथी॥
जब तैं काळ आय घर लूटै। हरि विण सिध साधिक नही छूटै॥
(घट परचौ, ७० से ७२)

१. थापन तैं थापन नहीं जांन्यौ। उथापन कुं हिरदै आंन्यौ॥
थाप उथापन एक है भाई। सो सब कै घट मांहि समाई॥
थापन मात पिता नही जायौ। आप ऊपनौ आपे आयौ॥
तुं थापन हिरदै कौ यांनौ। तैं झांभौ सांई करि जांन्यौ॥
झांभै सा कोई कलि मैं होई। सांई सा और नही कोई॥
रांम भगति विन ह्वैगी भांडी। मूवै कुं परणायां रांडी॥
(वही, ७३ से ७८)

हिन्दू-मुस्लिम

ऊँच-नीच और भेद-दृष्टिका विरोध सन्तोंकी विचार-धारामें केवल अपने ही समाज या वर्गके बीच हो ऐसी बात नहीं है। उन दिनोंमें प्रचलित इस्लाम-धर्मके प्रति भी उनकी उपेक्षा नहीं रही और उन्होंने सभी अन्य सम्प्रदायोंकी भाँति ही[1] मुसलमानोंसे भी भेद-बुद्धि रखनेकी निन्दा की है और उनकी कट्टरता तथा रूढ़िवादिता एवं उनके बाह्य आडम्बरों एवं आचरणोंपर भी करारी चोट की है। क्योंकि उनके विचारसे—"जाति पांति कारण नही कोई। सब ही मैं हरि हेको होई।"-भगवान्की सर्वव्यापकतामें जाति-पांति व्यवधान नहीं बन सकती है। 'हरीया' के मनमें मक्केमें द्वारिकापुरी है और द्वारिकापुरीमें मक्का है तथा राम और खुदामें कोई दुविधा नहीं है[2]। वे कहते हैं कि किसे मुसलमान कहूँ और किसे हिन्दू, मेरी दृष्टिमें तो हिन्दू और 'तुरक' दोनों एक हैं अतः मैं यदि इनकी आलोचना भी करता हूँ तो इन्हें दो अलग-अलग समझकर नहीं करता[3]। विशेषतः हिन्दू और मुसलमान दोनोंद्वारा की जानेवाली जीवहिंसाका उन्होंने डटकर विरोध किया है। उन्होंने हिंसात्मक विधियों और मांस-भक्षणकी स्पष्ट निन्दा की है। इस प्रसंगमें वे दोनों राहोंको 'हरांमी' बताते हैं। दोनों व्यर्थ ही जीवहिंसा करते हैं। हिन्दू जीव-दया न पालता हुआ अपने स्वादके लिए बकरेको काटता है और भगवान्की आज्ञाका उल्लंघन करता है। किसीका धन हड़पकर या डाका डालकर लाए हुए धनसे गो-सेवा तथा गो-दान करता है और इस पुण्यसे पाप दूर करना चाहता है अर्थात् गो-सेवाद्वारा बकरेकी हत्याका पाप नष्ट हुआ समझता है, यह भी कोई धर्म है ?

---

१. च्यारे वरण च्यार आसरमां, या मैं आतम एको।
(हरिजस, ५५ पं० ६)

२. मकै मांहि दूवारिका, मका द्वारिका मांहि।
हरीया रांम षुदाय मैं, मेरै दुविध्या नांहि॥
(अंग, ४१ सा० १३)

३. कुंन सा मुसलमांन कहीजै, कुंन सा कहीयै हींदू।
हींदू तुरक एक हैं भाई, मैं दोय देष न नींदू॥
(हरिजस, ५६। ९)

इसके अतिरिक्त मुस्लिम-धर्मके बाह्य आडम्बरोंकी भी आलोचना की गई है—काजीने मनका मरम न पाकर ही शरीरको 'सुन्नत' किया है। रोजे रखता है, पाँच नमाज पढ़ता है। अपने मनको तो नहीं मारता, मुरगीको मारता है। गायको बिस्मिल करके स्वर्ग पहुँचाता है और यदि तेरे हाथमें ही बहिश्त है तो तेरा परिवार क्यों दोजखमें जा रहा है? जीवोंको सतानेका गुनाह खुदा नहीं बख्शेगा, खुदा तो महरवान है। फिर तूँ गायका गला क्यों काटता है? यदि तेरे लिए स्वर्ग हक है तो फिर नाहक जीवोंको क्यों मारता है? यदि तूँ ही हकको पहचानता तो किसी-की घात न करता। ......रे काजी, तूँ कलमा, कुरान पढ़ता है और 'मक्का-मदीना' जाता है पर जिसके लिए 'वांग' देता है वह इनमें नहीं है, वह तो घटमें है जिसे तैने नहीं पहिचाना। हिन्दू वेद-पुराणोंमें भ्रमित हैं उसी प्रकार मुसलमान कुरानमें भरमाये हुए हैं पर सन्त किसीमें नहीं भरमाते हैं वे 'रांम' में लगे रहते हैं[1]।

---

१. काजी मन का मरम न पाया। तातैं सूंनत कीन्ही काया॥
रोजा तीस दिनां कुं रापै, सारै पंच निवाजा।
मन अपना कुं मारै नांही, मारै मुरगी ताजा॥
अपनै काज करै गऊ विसमल, जीव सरै पुंहचावै।
काजी विसत हाथि है तेरै, तो कुल दोजष क्युं जावै॥
जोरा करै जीव संतावै, मनकै संक्या नांही।
काजी गुना न बगसै करता, जब जम पकरै बांही॥
तम तौ महरवांन हो मबले, गला गऊ क्युं काटैं।
काजी जीव दया नही तेरै, भव अगलै नुं षाटैं॥
काजी सरै हक है तेरै, तौ अनहक जीव क्युं मारैं।
कुछीएक दीन तणो डर दुनीयां, सिर अपनै सुं टारैं॥
आपा असुर सरो नही तेरै, वे फरवांणी हालैं।
जो तुं काजी हक पिछाणै, घात न किस कुं घालैं॥
मुंई मिटीया मुरदार कहत हैं, हाथे हक हलाला।
काजी धणी'र और घलाली, सब स्वारथ का चाला॥
काजी कलमां पढै कुरांनां, ना है मका मदीना।
जिसकै काज भरै तुं बांगां, सो घट मांहि न चीना॥
कुंन सा मुसलमांन कहीजै, कुंन सा कहीये हींदू।
हींदू तुरक एक हैं भाई, मैं दोय देप न नींदू॥

रे काजी, रे मुसलमान, सुन, क्यों जरा-सी खाल काटकर (सुन्नत करके) हैरान करते हो। बिना आज्ञा क्यों गला काटते हो, क्यों बिना हकके कार्य करके 'हक' को नष्ट करते हो। अपने हाथ मनमानी करते हो इसका मतलब है कि 'हरि' का किया हुआ तुम्हें पसन्द नहीं। गायको तो मारते हो और कहते हो 'बिस्मिल्लाह'; इस कार्यसे न खुदा प्रसन्न है और न अल्लाह। पाँचों वक्त नमाज पढ़ना, मस्जिदपर पुकारना और कुरानका पाठ करना—इससे रहमान-रहीम प्रसन्न नहीं होंगे[1]।

जिसने पशु, पक्षी आदि अनेक जीव-जन्तु बनाए उनके सबके भिन्न-भिन्न प्रकारके अंग-उपांग बनाए, क्या वह चाहता तो सुन्नत नहीं कर सकता था[2]? तैने ही तो 'सुन्नत' की और तैने ही 'बिस्मिल' किया। यह जरा-सी चमड़ी काटकर और गला काटकर अरे बेअकल मुल्ला, तैने यह क्या किया[3]? यदि बिस्मिल ही करना है तो कायाको बिस्मिल न करके मनको बिस्मिल कर। मनको बिस्मिल किये बिना आत्माका ज्ञान नहीं होगा[4]।

हींदू वेद पुरांनां भरिम्या, मुसलमांन कतेबां।
जनहरिरांम संत क्युं भरमै, लागा रांम रकेबां॥
(हरिजस, सं० ५६)

१. सुनि वे काजी मुसलमांना। षलड़ी काटि कीया हैरांनां॥
विना हुकम क्युं गला कटावैं। अनहक करि करि हक मिटावैं॥
अपनै हाथि कीया मन मांनी। हरि का कीया दाय न आंनी॥
मारै गऊ कहैं बिसमला। युं तौ षुसी षुदाय न अला॥
पंचै वषत निवाज गुदारैं। मूंवा मडा मसीत पुकारैं॥
काढ कतेब कुरांनां वाचैं। यु रहमांन रहीम न राचैं॥
(घट परचौ, ९६ से ९८)

२. पसु पंषेरुं जिन कीया, कीया जीव अर जंत।
हरीया नष चष जिन कीया, सूंनित क्यूं न करंत॥
(अंग, ३०। १९)

३. मुलां सूंनित तैं करी, तैं कीया विसमल।
षलड़ी गला कटाय कै, क्या कीया वे'कल॥
(वही, सा० १८)

४. काया विसमल क्या करै, मन कुं विसमल कींन।
हरीया मन विसमल विनां, आतम सधै न चींन॥
(वही सा०, २१)

इधर मुसलमान काजी जो पशु अपनी स्वाभाविक मृत्युसे मरा हो उसे तो हराम कहता है और निर्दोष गायके गलेमें छुरी चलाता है। मरी हुई को 'हरांम' और मारी हुई को 'हक' बताता है, वह सांईके दरबारमें क्या जवाब देगा ? अरे, 'मुहम्मद पीर' ने 'गऊ' को जिबह किया था तो उन्होंने उसे पुनः जिला भी दिया था। जो होना है वह होगा पर तूँ ये पाप अपने सिर क्यों लेता है ? अरे, मरी हुईका मांस 'मुरदार' बतलाता है और मारीका 'निवाला' हक ! रे काजी, तेरा क्या हाल होगा ? पर क्या करें, हिन्दूने तो एक गायको छोड़नेका और मुसलमानने सूअरको न खानेका प्रण ले रखा है, शेष सब पशुओंको दोनों ही मार-मारकर मांस खाते हैं। इसमें किसको घटाकर कहूँ और किसको बढ़ाकर कहूँ ? दोनों विषय-वासनामें तो आगे बढ़ रहे हैं और 'हरिभ्रम' से दूर होते जा रहे हैं। दोनोंको चाहिए कि सूअर और गऊ-बाछे दोनोंपर कृपा करें और केवल 'रांम रस' पियें।

---

१. संतो दूने राह हरांमी। पूंन करै विण षांमी ॥
हींदू षाव करै अजीया सिर, हरि सुं वे फरवांणी।
षावै स्वाद करै मुष सेती, जीव दया नही जांणी ॥
हींदू तरपण करै गऊ कौ, पुंन दे पाप नसाई।
धन मारै धाड़ौ करि ल्यावै, धरम कहां गयौ भाई ॥

सहजे जीव जिंद कुं छाडै, ताकुं कहत हरांमां।
काजी करद गऊ सिर सारै, विनां दोस वेकांमां ॥
मुई हरांम कहै हक मारी, पसुवौ करत पुकारा।
काजी जाब कौंणसा देसी, सांई कै घरबारा ॥

मौहमंद पीर जिबै गउ कीन्ही, वा फिर मारि जीवाई।
होवनहार मिटै नही जीव का, तुं सिर ल्यैं क्युं भाई ॥
मुई मटीया मुरदार कहत है, मारी हक निवाला।
देषा देष दुनी करि भूली, काजी कौंण हवाला ॥

हींदू कै पण जांणि गऊ कौ, सूवर कौ तुरकांणै।
दोउं मार भषै मुष मांसां, घटि वधि कौंण वषांणै ॥
विषै करम कुं सब कोई आघा, हरिभ्रम सेती पाछा।
जनहरिरांम रांम रस पीजै, छाडि सूवर गऊ वाछा ॥

(हरिजस, सं० ५७)

साधुके लक्षण

ऊपर अनेक प्रकारके मतानुयायियोंकी आलोचना बाह्याडंबरके कारण की गई है। इनके मनमें उन मतोंके प्रति या अनुयायियोंके प्रति कोई दुर्भावना नहीं है; क्योंकि इनके विचारसे साधु वही है जिसके मनमें किसी प्रकार भी काम (कामना) की उत्पत्ति नहीं और कोई कल्पना न उठे तथा किसीसे भी राग-द्वेष न रखता हो, उसीको जीवित-मोक्षप्राप्त समझो[1]। एकमात्र आत्मतत्त्वके प्रति ही निश्चय निष्ठा रखनेवालेको ही साधु कहा जा सकता है। अन्य लोग जो 'भेष' धारी हैं वे तो सब भ्रममें भटके हुए हैं[2]। जो लोग देखा-देखी 'भेष' धारण करके 'हरिदास' बनकर बैठ गए हैं वे उड़े तो आसमानमें जानेके लिए थे पर धरतीपर आ गिरे हैं[3]। यदि वस्तुतः 'दास' कहाना है तो अपना अहंकार त्याग दो, हरिका भजन करो और अन्य किसीकी आशा मत रखो[4]। इनके विचारमें यह स्पष्ट है कि भक्ति-ज्ञान-वैराग्यकी कथाएँ सुननेवाले, इसी त्रिकके विषयमें उपदेश देनेवाले और अपने मनके अनुसार आचरण करनेवाले (स्वतन्त्र-विचारक) तो इस संसारमें अनेक उपलब्ध हैं किन्तु राममें निरत और 'वेहद' (अप्रमेय) से प्रेम करनेवाले संत यहाँ विरले ही हैं[5]। इनके विचारसे ऐसा 'रांमसनेही' संत बड़ा दुर्लभ है जो अपने

---

१. कांम न उठै कलपना, राग न किन सुं दोष।
जनहरीया उन संत कुं, जीवत कहीयै मोष॥
(अंग, ३९ सा० ६)

२. साध सोई कर जांणीयै, आतम निसचै एक।
हरीया दूजा देषीयै, भरम्या भेष अनेक॥
(वही, सा० २२)

३. देषी-देषी भेष धरि, हुय बैठे हरिदास।
ऊडे थे असमांन कुं, आय पड़े धर पास॥
(अंग, ३७ सा० ७)

४. आपौ मेटौ हरि भजौ, तजौ विड़ांणी आस।
हरीया ऐसा होय कै, जबै कहावौ दास॥
(अंग, ६२ सा० ९)

५. सुरता बकता मन मता, या जुग मांहि अनंत।
रांम रता वेहद वता, हरिरांमा कोई संत॥
(हरिजस, सं० १४२। ४)

अवगुणोंको भी दूर करता है और दूसरोंके अवगुणोंको भी दूर करता है[1]। वास्तवमें कामनाका अभाव, अहंकार-त्याग तथा राग-द्वेषसे रहित होकर अनन्य भावसे हरि-भजन करना ही साधुत्व है, वाह्या-डंबर तो भ्रम है। अतः जो राग-द्वेषसे रहित होना ही साधुका लक्षण बताते हों वे अन्यान्य मत एवं पन्थकी निन्दा करेंगे ऐसा नहीं माना जा सकता। आत्मसाधनासे विमुख वर्गको चाहे वह लौकिक हो अथवा भेषधारी हो सभी सन्तोंने आडे हाथों लिया है।

ऊँच-नीच

घट-घटमें वह एक ही आत्मा एक ही रूपसे व्याप्त है अतः उसे दो रूपों (ऊँच-नीच) में देखनेवालेको ही यहाँ 'नींच' बताया है[2]। इस मनुष्य-देहमें कौन ऊँचा और कौन नीचा ? क्योंकि सबका जन्म और मरण समान है। केवल मनुष्यतक ही यह विचार सीमित नहीं है, यह ऊँच-नीचकी अभेद भावना चौरासी लाख योनि मात्रके प्रति समान है, मनुष्य-देहका प्रयोग तो प्रतीकात्मक है[3]। एक ही कुम्हारने एक ही मिट्टीसे एक ही चाकपर घड़ा, कुल्हड़ और तांवणी आदि अनेक पात्र बनाए हैं इसमें कोई अन्तर नहीं है। हाँ, इनके कुल और कर्मोंका विवरण अलग-अलग किया है इसलिए एक ही मिट्टीके पात्रोंमें ऊँच-नीचका मूलतः कोई भेद नहीं है[4]। वस्त्र वस्त्र ही हैं यदि भाँति-भाँतिका

---

१. हरीया अैसा को मिलै, रांम संनेही संत।
अपना औगन दूरि करि, औरन का मेटंत॥
(अंग, ५९ सा० १२)

२. हरीया आतम एक है, सब ही घट घट वीच।
वाकुं देषै दोय करि, सोई मिनषा नीच॥
(प्रसंग, ३३ सा० २५)

३. पसु पंखेरुं जोनि तैं, दुबध्या धरै न कोय।
हरीया नर नरदेह तैं, अंतर धरि है दोय॥
(वही, सा० ३०)

४. घड़ौ कूलड़ौ तांवणी, घड़ीया घाट अनेक।
कुल करमा विवरौ कीयौ, हरीया माटी हेक॥
(वही, सा० २७)

है तो क्या हुआ। इसमें ऊँच-नीच और जाति-पाँतिका कोई भेद नहीं[1]। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और चांडाल ये सब ही हरि-भक्ति (आत्म-दर्शन) के विना कालके गालमें जानेवाले हैं[2]। मैं ब्राह्मण हूँ, मैं क्षत्रिय हूँ, मैं वैश्य हूँ और मैं शूद्र हूँ यह भेद-भाव 'नाम' के अभावसे ही होता है[3]। जब आत्मा एक है दूसरा कोई तत्त्व ही नहीं तो फिर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, शूद्र यह भेद क्यों[4]? वास्तवमें नीची करणीसे मनुष्य नीच होता है और ऊँची करणीसे ऊँचा[5]। हरि-भक्तिका कोई कुल नहीं है, वह तो हरि-जनके कुलमें उत्पन्न होती है। नीच कुल वही है जिसमें हरि-भक्ति न हो।[6] यद्यपि ऊँच-नीच आदिका भेद-भाव मूलतः यहाँ अस्वीकृत है किन्तु यहाँ एक सूक्ष्म विचार भी दिया गया है; क्योंकि लोकमें जो (वर्णाश्रमके) व्यवहार हैं उनका पालन किए विना समाजमें निर्वाह नहीं हो सकता है अतः समाजमें रहनेके लिए इन्होंने एक मध्यममार्ग निकाला है। इनका कहना है कि—मनमें ऊँच-

---

१. कुंण ऊंचा कुंण नीच है, कौंण जाति कुंण पांति।
हरीया कपड़ो एक है, न्यारी न्यारी भांति॥
(प्रसंग, ३३ सा० ३२)

२. बांभण षत्री वईस क्या, क्या सुदर चंडाळ।
हरीया हरि की भगति विन, सब ही परलै काळ॥
(वही, सा० ३५)

३. बांभण षत्री मैं भया, मैं सुदर मैं वईस।
हरीया हेकै नांव विन, दूज रही जगदीस॥
(वही, सा० ३६)

४. बांभन षत्री कौंन है, कुंन सुदर कुंन वैईस।
हरीया आतम हेक है, दूजा कोय न दीस॥
(वही, सा० ३९)

५. नीची करणी नीच नर, ऊंची करणी ऊंच।
हरीया ऊंचा नीच कुंण, करै स करणी ऊंच॥
(प्रसंग, २१ सा० २)

६. हरीया निकुली हरि भगति, हरिजन कै कुल होय।
सो कुल कुल मैं हीन है, हरि की भगति न होय॥
(वही, सा० ४)

नीचका भाव रखे बिना केवल शरीरसे लोकाचारका निर्वाह करो और इस आंतरिक अभ्यासद्वारा जब मनसे ऊँच-नीचका भाव मिट जायगा तो तनसे भी मिट जायगा और तभी सर्वत्र ब्रह्मकी व्याप्तिका विचार दृढ हो जायगा[1]। इसका तात्पर्य यह भी निकाला जा सकता है कि यह तो प्रतारणा है परन्तु उन्होंने इसी विचारको और स्पष्ट करते हुए भी कहा है कि—लोकाचारवश जो व्यावहारिक 'दूज' अर्थात् दुराँत या भेद-भाव बरता जाता है वह वस्तुतः दुराँत नहीं है, 'दूज' तो वह है जो दिलसे या दिलमें रखी जाती है और इसी दिलकी 'दूज' से भावकी हानि होती है[2]। जैसे हाथ-पाँव पंडितके हैं, वैसे ही अन्य सबके हैं इसलिए इस जगत्में ऊँचा-नीचा कौन हो सकता है, यहाँ तो एक ब्रह्म ही है और कोई नहीं[3]।

साहित्यिक पक्ष

वाणीके विषयसे स्पष्ट है कि संतोंको सरल रूपसे अपने विचारोंका स्पष्टीकरण और सम्प्रेषण सर्वसाधारणतक करनेका ही प्रयोजन था। संतोंने कोई भी रचना पाण्डित्य-प्रदर्शन करने वा साहित्यिक छटा बिखेरनेके उद्देश्यसे नहीं की। सर्वसाधारणके हितके उद्देश्यके साथ-साथ इस प्रसंगसे राम नामकी चर्चा और तत्त्व-विचार ही उनका लक्ष्य रहा है किन्तु आध्यात्मिक विषयकी इतनी बड़ी रचना हो और उसमें साहित्यिकता न हो तो वह जनसमुदायके लिए रुचिकर एवं ग्राह्य नहीं होती, तथा इतनी बड़ी रचनाको कई छन्दोंमें निबद्ध करनेवाला साहित्यिक ज्ञानसे शून्य हो ऐसी कल्पना नहीं की जा सकती। यहाँ वाणीके विभिन्न साहित्यिक तत्त्वोंकी उपस्थापना एवं विवेचन करनेका

---

१. मन तैं ऊंच न नींच गिन, तन तैं लोकाचार।
हरीया तन मन मिटगई, पाया ब्रम विचार॥
(छुटक, सा० १३१)

२. हरीया लोकाचार की, या तौ दूज न जांनि।
दूज धरै दिल भीतरै, होय भाव की हांनि॥
(छुटक, सा० ७१)

३. पांडे हाथ पांव सो तेरै। सोई हाथ पांव सब केरै॥
यामैं ऊंच नींच कुंण होई। एको ब्रह्म न दूजा कोई॥
(घट परचौ, ४३)

अवकाश नहीं है तथापि पाठक यदि इस रचनामें रस, अलंकार, ध्वनि, व्यंग्य आदि आलंकारिक गुणोंका समीक्षण करना चाहें तो उन्हें यह सामग्री पदे पदे उपलब्ध हो जायगी ऐसी मेरी मान्यता है।

वाणीमें शान्त रसकी बहुलता अवश्य है किन्तु अन्य रस भी प्राप्त हैं जिनमें वीर, वियोग-शृङ्गार, अद्‌भुत आदिके उदाहरण भी पर्याप्त मात्रामें प्राप्त हैं।

अलंकारोंके विषयमें, जितना शब्दालंकारोंका अभाव है उतना ही अर्थालंकारोंका आधिक्य इस वाणीमें विना प्रयासके प्राप्त है। स्थान-स्थानपर अप्रस्तुतका प्रस्तुतीकरण है। विविध, विचित्र उक्तियाँ बड़े ही कौशलसे सहज रूपमें सालंकार हो गई हैं।

उपमा, रूपक, तुल्ययोगिता, परिणाम, अतिशयोक्ति, स्वभावोक्ति, उल्लेख, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, उदाहरण आदि अलंकारोंकी उपलब्धि स्थान-स्थानपर प्राप्त की जा सकती है। ये अलंकार लोक-परिचित सामग्री-से निर्मित हैं अतः सर्वसाधारणके लिए वाणीके विषयका प्रतिपादन और सम्प्रेषण करनेमें सहायक हुए हैं। अनेक स्थानोंपर विषम और दुर्गम्य तथा शुष्क विषयको समझानेके लिए ये उपयोगी बन पड़े हैं। अधिकांशतः इस संत-साहित्यमें दृष्टान्त, उदाहरण और रूपकोंकी उपलब्धि होती है। वाणीके रचयिताकी शक्ति और निपुणता दोनों ही इन अलंकारोंको देखनेसे प्रकट हैं किन्तु इनका प्रयोग सहज रूपमें सार्वजनीन लाभके लिए हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि रूपकके निर्माणमें तो रचयिता सिद्ध-हस्त है। ये रूपक सामान्य-जीवनसे सम्बद्ध हैं। आध्यात्मिक जीवनको सामान्य-जीवनोपयोगी सामग्रीपर आरोपित करके सर्व-सुलभ एवं अनायास-ग्राह्य बना दिया गया है।

रस एवं आलंकारिक प्रसंगोंको विवेचित न करके विज्ञ पाठकोंके परिचयार्थ यहाँ मूल रूपमें प्रस्तुत किया जा रहा है।

हरीया हरि का अनंत गुण, लिष लिष हिरदै मेल।
नीर न पीयुं डरपती, मत औ देत उगेल॥
(अंग, ७१। १०)

सिवरन मेरे रांम का, सब ही तैं सिरताज।
जिन अछर तैं बंधई, हरीया जल सिर पाज॥
(अंग, ५। २९)

जनहरीया निसदिन भजौ, रसनां सेती रांम।
नांव विना नर निफल है, ज्युं वसती विन गांम॥
(अंग, ७ । १७)

विरहा जे तुं आवीयो, मो विरहन की चाड।
हरीया हरि विन देषीयां, हिये षटूकै हाड॥
(अंग, ८ । ४)

जीवन मेलौ सजनां, मूवां न दीजौ दोस।
जनहरीया विरषा विनां, रहै किती लग ओस॥
(वही, ४६)

चंगा थका न चेतीया, मंदा क्या पछताय।
हरीयां लागी लाय मैं, भार न काढ्या जाय॥
(अंग, १९ । ४७)

नीर न पीयै चांबती, बैठौ चबड़ी मांहि।
मन की मैं तैं नां मिटै, अंतर षोजै नांहि॥
(अंग, २७ । ४०)

सूता सपनै लूटसी, जागंतां सैंदेह।
जनहरीया तिंह लोक मैं, नारी जांण न देह॥
(अंग, २८ । ५)

देष कबाड़ी आवतौ, तरवर डोलण लग।
मो पड़ीयां का डर नही, पंछी का घर भग॥
(अंग, ३४ ।२१)

जनहरीया ऊभै धणी, षेत न षंडै कोय।
जांह रुषवाळा रांमजी, माळ न बंकौ होय॥
(अंग, ४५ । २२)

भरम भूत भागां विना, करम कटैं नही कांहि।
हरीया पडल आंषि मैं, ताका तिवर न जांहि॥
(प्रसंग, १६ । ६)

जनहरीया सतगुर इसा, जिसा सरगरा होय।
मन तरगस का तीर ज्युं, बांक न राषै कोय॥
(अंग, १ । ४९)

निज मन विस घर विरह विस, उर विच लगा आंनि।
पेम लहरि पल पल उठै, हरीया निरभै जांनि॥
(अंग, २०। ८)

जौंरौ गोसी कूंप जग, वारौ आवै जाय।
हरीया गुर बांही गहै, कुड़ सेती अटकाय॥
(अंग, १। ३०)

करम करै तो धरम कर, नही तो करम न षटि।
जनहरीया जुग जेवड़ी, ज्युं ऊबट ज्युं बटि॥
(अंग, ५३। १४)

दीया दे दे पौढती, रहती पीया रति।
जनहरीया जम आयकै, लेग्यौ आगैं घति॥
(अंग, ५४। ३८)

सूर धसे घमसांण घण, कायर लहै न ठौड़।
हरीया सूरै मरण का, माथै विंध्या मौड़॥
(अंग, ६१। २५)

साथे सील संतोषड़ौ, वेली ग्यांन विग्यांन।
जनहरीया दळ मां फिरी, नांव निरप की आंन॥
(वही, ३०)

जोध जुड़ै माथा मुड़ै, मारै मदवा मांण।
सूर भलां गाहड़ि करै, हरीया हरि कै तांण॥
(वही, ४४)

सूर सती अर साध की, हरीया हेको रीत।
ऊ त्यागै तन सांम कजि, हरिजन हरि की प्रीत॥
(वही, ४६)

सबद गरू का षाग, लाग कड़ि कस्य रे।
जरणा जरकस पहरि, धार मैं धस्य रे।
डावा डिग मिग छाडि, आडि दे सीस कुं।
हरिहां दास कहै हरिरांम, जपौ जगदीस कुं॥
(वही, १२७)

हरीया लाठी ग्यांन की, गुर वाही उवरांगि ।
लागी दसवै द्वार की, दूजी परितन मांगि ॥
(प्रसंग, ४५ । १)

दीपग बाती तेल मिल, मिंदर भया उजास ।
हरीया गुर सिष सबद मिल, पाया पेम प्रगास ॥
(छुटक, सा० १४)

जनहरीया मारेल मन, सारेला निज तत ।
न्यारेला दुनीयांन सुं, यारेला अवगत ॥
घारेला गुर धरम कुं, डारेला दुरमति ।
टारेला जम चोट कुं, लारेला रहमति ॥
गारेला गुण गरब कुं, हारेला हालेस ।
जनहरीया षारेल जुग, प्यारेला परमेस ॥
(छुटक, सा० ५३–५५)

चित चकमक अर ग्यांन गुल, वचन कड़ै सुं झाड़ि ।
जनहरीया मिल एकठा, पावक हरि कुं पाड़ि ॥
(वही, १४६)

उर अहरिन गुर वचन घन, चोट सहै निरधार ।
हरीया अैसा हुय रहै, तौ पावै करतार ॥
(वही, २५१)

हरि तरवर अर मुगति फल, सुन्य सरवर की पाळि ।
जनहरीया मन पंछीया, लीजो सारि विसारि ॥
(अंग, २४ । ६)

रांम नांम रातौ नही, मातौ माया मोह ।
हरीया का तौ चेड़सी, तातौ करि करि लोह ॥
(छुटक, सा० २४६)

खेतीका रूपक—

तन मन मांहिले ष्यांत षेती करौ, पहल सांसै तणा सूड़ कीजै ।
वाहि सुधि भोमि कुं भाव मलबा भरौ, सांम सुं मिल दिल हाथ लीजै ॥
पांच किलोड़ीया हक हाळीपणौ, सील संतोष की रासि बंधौ ।
साज अर बाज सब सूत करि सांतरा, निरत की सीव सुं सुरति संधौ ॥
आदि आसाढ की बाह नही आवसी, वाहता वैग मत ढील कीजो ।
साच किरसांण करि षाघ तोटा नही, रज अर तज करि बीज बीजो ॥

क्रम नेदांण करि राषि भ्रम आपणौ, और उजाड़ कुण करत तेरौ ।
गोफणी ग्यांन अग्यांन गेरा उड़ैं, सत की वाड़ि गुर सवद फेरौ ॥
आय अनेक जुग मांहि जन नीपनां, नांव लिव लांवणी सौंज लागा ।
दास हरिरांम गुण गाहि गाडा भरौ, भूष भै दुष ग्या दूरि भागा ॥
(रेषता, १२)

नाईका रूपक—

रे नर तन कहा जांणै आछा, कूड़ करम का राछा ॥
आहत एक करत मन नाई, मैं तैं घसै पलारै ।
सब ही दुनीयांदार आहतु, विण कर मूंड सुंवारै ॥
कुबधि कतरणी विषै पाछणा, कांम कली जांह तांही ।
सांसौ सीली चमोठौ लालच, मोह नहरणी मांही ॥
मनसा मांन आतम आरीसौ, माया भई रछांदी ।
आडा और भरम का पड़दा, ताहि न दरसै वांदी ॥
चंगा रूप देष मत विगसौ, मल मंतर की देहा ।
जनहरिरांम भसम हुय जासी, नांव विना सब नेहा ॥
(हरिजस, सं० ८९)

युद्धका रूपक—

मंन की मूठ पहलूण गाढी गहौ, तत का तीर ले हाथि साहौ ।
ग्यांन कवांण करि ध्यांन धोरा धरौ, आंन अग्यांन का ढिग ढाहौ ॥
अरस का अस्व परि त्रिप नीकां चढ़ौ, नांव निसांण सिरडंक लावौ ।
एक असवार अर पंच प्यादा पुळैं, लारि लै कार हरि वेग ध्यावौ ॥
तन की नाळि करि चित दारु भरौ, सुरति की जांमगी सबद गोळा ।
भोमीया भ्रम कुं मारि मुजरा करौ, पांच प्रधान कुं पालि प्रोळा ॥
सत का सेल करि षाग षिम्या तणी, दोय दल मोड़ि गड तीन तोड़ौ ।
दास हरिरांम सभ राज एको भया, सांम मैं मौह मिल हाथ जोड़ौ ॥
(रेषता, ८)

कूण्डापंथका रूपक—

रांम रस पीयौ रे भर कूंडौ, अंत न आवै ऊंडौ ॥
पांच पचीस मिल्या पंथ पैलै, पेम की पायल पीनी ।
पाटि पूजारा सिव सगती मिल, करणी निरमल कीनी ॥
काया कलस पूर मन पवना, जोति निरंजण जागै ।
ध्यांन का धूप धरया दिल दीपक, भरम करम भव भागै ॥

चेतत सिवरित भया चित चेतन, हर गुर धरम हलाया।
जनहरिरांमा महल त्रवेणी, प्याला अजर पीलाया॥
(हरिजस, सं० १५९)

विवाहका रूपक—

मंन कै मंडहै तत बांधी तणी, पेम परतीत की लाय पीठी।
सुधि और वुधि का वैस विनायका, रस कै डोरड़ै गांठि गीठी॥
जुगति की जांनि करि जोग दुलहौ चड़्यौ, परिणवा प्रमला लाछि लाडी।
हदि कु लोपि वेहद सूधौ चल्यौ, गांव सुनि गोरिवै निजर गाडी॥
सुरति करि आरती निरत नेता लीयां, सांम समेहळे मिलै सारा।
व्रह्म वर वींदणी षैरवंटी षरी, इंद ज्युं ओवड़े इमी धारा॥
पांच पचीस औछाह धौंलेरड़ैं, ग्यांन गुण मंगळा धवल गावैं।
राग अणभै तणी नित ओलग करैं, एक एको सिरै मौज पावैं॥
नाद अनहद वजे भै दुष दूजा भजे, गिगन तोरण जांह जाय वंदे।
भाव भोजन रचे वाच अवचल वचे, ग्यांन गाळी दिवैं चिदानंदे॥
च्यार चक चमरी वेद छुछम पढ़ैं, अरध अर उरध कै वीच फेरा।
दास हरिरांम कहै व्याह असा रच्या, आय नही जाय वळ फेर घेरा॥
(रेषता, १४)

फाग (होली) का रूपक—

अजोनी आये आंगनै, सषी मिल मंगल गाय॥
ग्यांन गुलाल गहुं मन मूठी, गुर गम षेलुं फाग।
साधु संगति अगर कम कमी, आज महा धिन भाग॥
सुरति निरति की सौंज विनाउं, पिंड करूं पिचकार।
प्रेम प्रीत सुं भरि भरि डारूं, हरि हुं षेलणहार॥
लिव सुधि बुधि का सूंधा लांउं, चित चंदन चरचाय।
असैं रांम वदेही दुलहौ, ल्युं अंतर लपटाय॥
रांम निरंजन सब सुं न्यारा, घट घट लील विलास।
जंनहरिरांम तमासा तन मैं, देषत है हरि का दास॥
(हरिजस, सं० १३)

भाषा

अनेक विद्वानोंका विचार है कि आध्यात्मिक जीवनकी अनुभूतिको अभिव्यक्त करनेके लिए भाषा अपर्याप्त होती है, फिर भी संतोंने अपने

अनुभवको जिस भाषामें अभिव्यक्ति दी है वह उनकी प्रतिभाका ज्वलन्त प्रमाण है। इनकी भाषामें भाषाशास्त्रीय सीमा-रेखाओंका अतिक्रमण नहीं हुआ हो ऐसा नहीं कहा जा सकता तथापि शैली और संघटनके परीक्षण तथा शब्दों, शब्द-रूपों, क्रियापदों, सर्वनामों तथा अव्ययों आदिके अधिकांश प्रयोगोंसे स्पष्ट है कि प्रस्तुत वाणीकी भाषा 'राजस्थानी' है।

संत-साहित्यमें भावनाका ही विशेष मूल्य है भाषाका नहीं, इस दृष्टिकोणसे भाषासम्बन्धी अधिक विवेचनके लिए यहाँ अवसर नहीं है तथापि सूक्ष्मतः पर्यालोचनसे प्रतीत होता है कि समग्र वाणीमें राजस्थानी भाषाका प्राचुर्य होनेपर भी खड़ी बोली—हिन्दी एवं सधुक्कड़ीके उदाहरण खोजनेपर प्राप्त हो सकते हैं। संक्षेपमें अंगों एवं प्रसंगोंकी सभी साषियाँ, कवित्त, घघर निसानी, घट परचौ, नांव परचौ, निज-ग्यांन, पद बत्तीसी, रेषता एवं हरिजस ये सभी स्पष्टतः राजस्थानी भाषामें निबद्ध हैं। चौपई, सवीया, ग्यांन परिछया, द्वतीय प्रसनोतरमें कुछ खड़ी बोली—हिन्दीकी झलक दिखाई पड़ती है। अनेक स्थानोंपर 'सधुक्कड़ी' भाषाके प्रयोग भी उपलब्ध हैं। घघर निसाणीके सभी पदोंमें पंजाबी भाषाके प्रयोग हैं। हरिजस संख्या १५२ में भी पंजाबी भाषाके 'दिवांनांदी' गलतांनांदी' 'वचनांदी' 'वसावनांदी' आदि प्रयोग हुए हैं। अरबी, फारसी और उर्दूके भी कुछ शब्दोंका प्रचलित (विकृत) रूपमें प्रयोग हुआ है। किन्तु जब भी इस वाणीका भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन होगा तब स्पष्टतः यह वाणी राजस्थानी भाषाकी एक अमूल्य-निधि और राजस्थानी भाषाके इतिहासकी प्रमुख कड़ी प्रमाणित होगी।

वाणीमें भाषासम्बन्धी आगम, लोप, विपर्यय, ह्रस्व-दीर्घके भेद, विकृतियाँ, महाप्राणीकरण, अल्पप्राणीकरण, घोषीकरण, अघोषीकरण आदि, तथा तत्सम और तद्भव शब्दोंका जिस प्रकार गठन हुआ है उनके कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त लिपिकालमें जिस प्रकार राजस्थानी भाषाको लिखा जाता था अथवा इसमें लिखा गया है उनकी ओर भी संकेत कर देना आवश्यक है। वाणीकी प्रतियोंमें—ज्ञ को ग्य, ख को ष, निर्गुणको न्रिगुण, ब्रह्मको ब्रह्म, समर्थको संमृथ, मृतकको म्रितग, समाधिको संमाधि, क्ष को ष, प्रसंगको परसंग, मृगको म्रिघ, विरक्तको ब्रिकत, विश्वासको वसवास और विरहको ब्रिह—लिखा गया है। इनमें कुछ स्थानीय-उच्चारणानुरूप एवं कुछ लिपिदोष हैं।

विपर्यय—

स्वर-विपर्यय

आधार=अधारा
अनुहार=उनहार
बाजार=बजारा
कुम्हार=कुम्हरा
कुछ=कछु
बिन्दु=बून्द
रवि=रिव
गणिका=गिनका
पहुंचा=पुंहचा
लघुता=लुघता

व्यंजन-विपर्यय

डूबा=बूडा
हमारा=म्हारा
निर्गुण=त्रिगुण
विरह=ब्रिह
समर्थ=समृथ

लोप—

आदि-स्वर-लोप

अहंकार=हंकार
अमावस=मावस
अभ्यंतर=भीतर
अरु=रु
इलायची=लायची

मध्य-स्वर-लोप

निमिष=निमष
मंदिर=मंदर
विदेह=वदेह
गुरु=गरु

अन्त्य-स्वर-लोप

जहां=जहं
तहां=तहं
आत्मा=आतम
गुरु=गुर
रिपु=रिप

आदि-व्यंजन-लोप

स्कंध=कंधा
स्थिर=थिर
स्थान=थान
स्पर्श=परस
स्वामी=सांमी

मध्य-व्यंजन-लोप

उच्चार=उचार
प्रियतम=प्रीतम
अहर्निश=अहनिस

अन्त्य-व्यंजन-लोप

अन्न=अन
असंख्य=असंख
पुण्य=पुन्न
तत्व=तत
और=औ
बादशाह=बादसा

आगम—

आदि-स्वरागम

स्तुति=असतूत
स्थान=अस्थान
स्थूल=अस्थूल
स्थल=अस्थल
स्त्री=असतरी

स्नान=असनान
सवार=असवार
स्थिर=इस्थिर, इथिर
मिथ्या=अमंथ्या

मध्य-स्वरागम

शब्द=सबद
विष्णु=विसन
गायत्री=गाइत्री
उत्तम=उतिम
प्याला=पीयाला
पुस्तक=पुसतग
पिंगला=प्यंगुला
मृतक=मिरतक
भक्ति=भगति

अन्त्य-स्वरागम

अंतर=अंतरा
स्वाद=स्वादा
संशय=संसा
भ्रमर=भंवरा
निस्तार=निस्तारा
मल=मलु
नाथ=नाथुं

अनुस्वार-आगम

राम=रांम
काम=कांम
नाम=नांम
ज्ञान=ग्यांन
मुकाम=मुकांम
विना=विनां

आदि-व्यंजनागम

फालतू=वेफालतू

मध्य-व्यंजनागम

उत्तम=उत्यम
सुख=सुक्ष
सवन=सबहन
होनी=होयनी
और=अवरा
अजब=अज्जब
विभ्रम=विभ्रम्म
अमर=अम्मर
प्रह्लाद=प्रहल्लाद

अन्त्य-व्यंजनागम

आज=आजक
काल=कालिक
सनकादि=सनकादिक
हारा=हार्‍या
ठाना=ठान्या
क्षुधा=षुध्या
दुविधा=दुबिध्या
वस=वस्य

मात्रा-विकार—

अ से आ

अपना=आपना
नारद=नारदा
स्वाद=स्वादा
पंथ=पंथा
उपदेस=उपदेसा
अधर=अधरा
तूर=तूरा
दया=दाया
कबांण=कबांणां

आ से अ

नादान=नदान
पाटंवर=पटंवर
आकास=अकास

अ से इ

गगन=गिगन
सनकादि=सिनकादि
लव=लिव
अमृत=इमृत

इ से ई

हरिया=हरीया
बिजली=बीजली
निवास=नीवास
चित=चीत
शिव—सीव
हिन्दु=हींदू

ई से इ

पीतांबर=पितंबर
धरती=धरति
जीवन=जिवन
धरणी=धरनि

उ से ऊ

अनुपम=अनूपम
सिंधु=सिंधू
अरु=अरू
पहुंचा=पहूंचा
नांउ=नांऊ

ऊ से उ

शून्य=सुन्य
हिन्दू=हिंदु
बूंद=बुंद
सूक्ष्म=सुषम

महाप्राणीकरण—

आव=आभ
केवट=खेवट
तैं=थैं
फंद=फंध
वेष=भेष
सब=सभे

अल्पप्राणीकरण—

गृहस्थ=गृहस्त,
प्रभु=प्रव
सफेद=सपेद
सुखी=सुकी

घोषीकरण—

अनाहत=अनहद
अनेक=अनेग
आकर=आगर
चातक=चातग
प्रकट=प्रगट
प्रकाश=प्रगास
सात्विक=सातिगी
शोक=सोग

अघोषीकरण—

अक्षर=अछर
पैगंबर=पैकंबर
रक्षक=रिछक
रुद्राक्ष=रुद्राच्छ

आदेश–

सकें = सघैं
एक = हेक
गाँव = गांय
दिल = धिल
द्वेष = धेष
वह = ऊ
ब्राह्मण = बांभन

भावुकतासे विकृत शब्दोंका रूप-

आनंद = अनंदा
अटारी = अटरिया
गगरी = गगरीया
अक्षर = अखरा
केशव = केशवा
जिय = जियरा
जोगी = जोगिया
मुष = मुषड़ा

सादृश्यमूलक युग्म शब्द–

अजर-अमर
तिरण-तारण
वेद-कितेब
पुरांन-कुरांन
तीरथ-वरत
मैल-कुचैल
तन-मन
ग्वाल-बाल
माया-मोह
जोग-जुगति
घाट-वाट
कनक-कामिनी
सूरज-चंद
निसि-वासर

विरोधमूलक युग्म शब्द–

पाप-पुण्य
सुरज-चंद
निशि-वासर
इला-पिंगला
खट्टा-मीठा
भच्छ-अभच्छ
आदि-अंत
सरग-पयाल
मरना-जीना
अमृत-विष
उरध-अरध

कुछ विकृत रूप–

अंकुश = आंकुस
अचरज = इचरज
अस्थिर = इथर
अन्दर = इंदर
अमृत = इंम्रित
कुबोल = कबोल
कुम्भ = कंभ
कुशोभा = कसोभ्या
कनक = किनक
गणिका = गिनका
गया = ग्या
ज्ञान = ग्यांन
चंवरी = चौंरी
छवि = छिब
जिज्ञासा = जिगासा
जहान = जेहान
यमराज = जौंरो

तुम=तम
दृष्टि=दि्ष्ट
दम=धम
दिल=धिल
द्वेष=धेष
धर्म = ध्रम
न कुछ=निकुछि
निदान = निद्यांन
पथ्य=पछि
पश्चिम=पछिम, पछंमि
प्रसाद=परसाद
पंडित=पिंडत
पुण्य=पिन
पहुंच=पुंहच
प्रेम=पेम
वंध=विंध
ब्रह्म = ब्रम
भुजंगम=भयंगम
भुवंग—भवंग
भानु=भांण
मणिका=मिणका
मृतक=म्रितग
मणि=मिवन
में = मैं (अधिकरण)
हृदय = रिदा, रिदै
रवि=रिव
ऋतु=रुत
लघु=लुघ
वश=वस्य
विश्वास=वसवास
वासुकि = वासिग
व्यथा=विथा
वृद्ध=विधउ
व्यभिचारिणी=विभचारिणी
विवेक=विमेष, वमेष
वृक्ष=विरष, व्रिष
वर्षा=विरषा
व्यापी=वीयापी
वैष्णव=वैसनौ
व्यापारी=वौपारी
संपुट=संपट
संशय=सांसौ
सृष्टि=सिसट
सिंधु=संध, सिंध
स्वार्थ=सुवारथ
एक=हेक
हुताशन=होतासण

इस प्रकार शब्दों तथा अक्षरोंमें आनेवाली विकृतियों एवं कुछ स्थानीय प्रयोगों, क्षेत्रीय वा पारिभाषिक शब्दों आदिके होते हुए भी वाणीकी भाषा साधारणजन-ग्राह्य है। क्योंकि संत-साहित्यका दार्शनिक-चिन्तनसे घनिष्ठ सम्बन्ध है अतः जहाँ कहीं भी कुछ गम्भीरता एवं पारिभाषिक क्लिष्टता वा दुरूहता प्रतीत होती है उसका कारण उनके समुपस्थित जिज्ञासु-जनकी योग्यता तथा वर्तमानमें पाठकका तत्तद्-विषयशून्य होना ही कारण है। अथवा ऐसी स्थिति वहीं है जहाँ उस विषयको व्यक्त करनेका उससे सरल कोई साधन ही न हो।

गेय हरिजस

संत-साहित्यमें गीतात्मक रचनाको 'हरिजस' कहते हैं। इस 'हरिजस' को 'पद' भी कहा जाता है। प्रस्तुत वाणीमें इसी प्रकारके गेय 'पद' हैं। यहाँ 'पद' शब्द पूरे गीतके अर्थमें प्रयुक्त हैं। गीतोंके विभिन्न छोटे-वड़े कलेवरोंसे प्रतीत होता है कि उनमें न्यून एवं अधिक पदोंका होना छन्दोविधान या साहित्यिक तत्त्वोंके कारणसे न होकर संगीत-तत्त्वके कारण हैं। सामान्यतः लोकके लिए संगीत अधिक रुचिकर होता है इसी दृष्टिसे संतोंने प्रायः अपनी वाणीमें रागोंमें निबद्ध गीतोंको स्थान दिया है। ये हरिजस आज भी साधुमण्डलियोंद्वारा या भक्तोंद्वारा समय-समयपर गाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंमें संगीतात्मक भजन, पद, हरिजस आदिके प्रति अधिक झुकाव होता हैं। स्वभावतः ही नारीसमाजमें संगीतके प्रति रुचि है। स्त्रियोंके लिए किसी अन्य छन्दको याद रखना कठिन होता है जब कि संगीतात्मक रचनाको स्त्रियाँ अनायास ही याद कर लेती हैं। इन्हीं कारणोंसे वहुजन-हिताय रचित वाणीमें गेय भागका होना आवश्यक समझा गया होगा।

परिशिष्ट भागमें अकारादि क्रमसे सभी हरिजसोंकी स्थायीकी सूची दी गई है। यहाँ हम जिन-जिन रागोंमें निवद्ध जो-जो हरिजस हैं उनकी संख्यायुक्त तालिका पाठकोंकी सुविधार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं—

राग	हरिजस-संख्या	कुल संख्या
१ मल्हार	१ से ४ तक व १२९	५
२ भैरूं	५ व १७५ से १७७ तक	४
३ वसंत	६ से ९ तक	४
४ काफी	१० से २६ तक व ७६, ७७	१९
५ कनड़ौ	२७ से ३७ तक व ७८, १३० से १३२ तक	१५
६ दरवारी कनड़ौ	३८, ३९	२
७ बिलावल	४० से ४२ तक व १३३ से १३५ तक	६
८ अलइयौ बिलावल	४३, ४४	२
९ गुड़ बिलावल	४५, ४६ व १३६ से १३९ तक	६
१० धनाश्री	४७ से ५० तक व १४०	५
११ पछुरी धनाश्री	५१	१
१२ आसा	५२ से ५६ तक	५
१३ ढाड़ी आसा	१४२ से १४४ तक	३

१४ गवड़ी	५७ से ७५ तक व १४५ से १५३ तक	२८
१५ मारू	७९ से ८१ तक	३
१६ कल्याण	८२, ८३	२
१७ कालेरौ	८४, १५४, १५५	३
१८ विहागड़ौ	८५ से १०८ तक व १५६ से १६६ तक	३५
१९ पंजाबी	१०९, ११०	२
२० केदारौ	१११, १६७, १६८, १६९	४
२१ सोरठ	११२ से १२० तक व १७० से १७३ तक	१३
२२ जैतश्री	१२१ से १२७ तक व १७४	८
२३ जैजैवंती	१२८, १७८	२
२४ गौढा वाड़ा धनाश्री	१४१	१
२५ रामग्री	१७९	१
		१७९

सम्पादनके विषयमें

यद्यपि श्रीहरिरामदासजी महाराजकी प्रस्तुत वाणीको प्रकाशमें लानेके विचार और प्रयत्न पर्याप्त समय पहलेसे ही चल रहे थे किन्तु जब 'सन्त साहित्य संगम' की योजनामें इसके प्रकाशनको भी प्राथमिकता दी गई तब इसको आधुनिक ढंगसे वैज्ञानिक सम्पादन करके प्रकाशित करने-का निर्णय लिया गया। विचार करनेपर यह निश्चय हुआ कि सम्प्रदाय-गत विभिन्न परम्पराओं एवं वाणीके रहस्यके मर्मज्ञ विद्वान् होनेके साथ-साथ सम्प्रदायके आप्त महात्मा श्रीभगवद्दासजी महाराजपर ही यह भार डाला जाय और यह हमारा परम सौभाग्य था कि श्रीभगवद्दासजी महा-राजने इसे स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् पूर्ण लगन एवं मनोयोगसे इस वाणीपर कार्य होने लगा।

सम्पादकके समक्ष वाणीकी पाँच प्रतियाँ थीं जिनमें चार प्रतियाँ श्रीहरिरामदासजी महाराजके स्वयंके हस्तलेखकी थीं।

ये पाँचों प्रतियाँ क्रमशः वि० सं० १८२२, १८१७, १८१५-१६, १८१३ तथा १८९५ की थीं। इनमें १८९५ की प्रति अर्वाचीन थी तथा शेष चारों प्रतियाँ श्रीजी महाराजद्वारा स्वयं लिखी हुई थीं। किन्तु स्वयंके द्वारा लिखी हुई होनेपर भी उनमें परस्पर पाठ-भेद प्राप्त होता था।

निश्चय ही यह पाठ-परिवर्तन स्वयंद्वारा जान-बूझकर किया हुआ था। सम्भवतः पूर्वलिखित पाठ उचित प्रतीत न होनेपर उन्होंने इसमें परिवर्तन किया था। क्योंकि प्रतियोंमें कई स्थानोंपर प्रवाहवश पूर्व-पाठ लिखा गया है और फिर उसपर हरताल फेरकर परिवर्तित पाठ अंकित किया गया है। ऐसी स्थितिमें समस्या यह थी कि कौन-सी प्रतिको मूल प्रति स्वीकार किया जाय। क्योंकि शोधकी दृष्टिसे सबसे प्राचीन प्रति ही मूल प्रति होनी चाहिये किन्तु यहाँ लेखकद्वारा स्वयं परिवर्तित पाठोंको देखकर लेखकद्वारा स्वीकृत पाठकी प्रति प्राचीन न होकर अर्वाचीन सिद्ध हुई और मूल प्रतिके रूपमें सं० १८२२ की प्रतिको लिया गया। मूल प्रतिमें जो सामग्री नहीं थी उसे उत्तरोत्तर क्रमशः प्राचीन प्रतियोंसे ग्रहण किया गया और शेष प्रतियोंका पाठभेद दिया गया। 'घ' प्रतिको आधुनिक समझकर उसका भी पाठभेद दिया गया क्योंकि प्रचलनकी दृष्टिसे यह पाठ महत्त्वपूर्ण था। इस प्रकार १८२२ की मूल प्रति, १८१७ की 'क' प्रति, १८१५-१६ (संयुक्त) की 'ख' प्रति, १८१३ की 'ग' प्रति तथा १८९५ की 'घ' प्रति मानी गई।

सं० १८२२ की मूल प्रतिमें गुरदेव कौ अंग, गुर पारष कौ अंग, गुर-वंदन कौ अंग, गुर धरम कौ अंग, सिवरन कौ अंग, अकल कौ अंग, उपदेस कौ अंग, ब्रिह कौ अंग, ग्यांन संजोग ब्रिह कौ अंग तथा हेरत कौ अंग नहीं थे अतः ये अंग 'क' प्रतिसे लिए गए हैं तथा नाम परचौ, निज ग्यांन, पदबत्तीसी, रेषता भी 'क' प्रतिसे लिए गए हैं।

हरिजस सं० १ से १२८ तक 'क' प्रतिसे तथा सं० ९४ और सं० १७९ 'ग' से लिए गए हैं, शेष समस्त हरिजस 'घ' प्रतिसे लिए गए हैं जिनका उल्लेख यथास्थान कर दिया गया है।

जो सामग्री किसी प्रतिमें अतिरिक्त उपलब्ध हुई उसे भी मूलमें ले लिया गया है तथा उसका उल्लेख यथास्थान कर दिया गया है। संक्षेपमें जो पाठ मूलमें जिस प्रतिसे लिया गया उसकी मूल प्रति वही है। प्रतियों-का परिचय निम्न है।

प्रतियोंका परिचय

मूल प्रति—

यह प्रति रामधाम सींहथल (संत साहित्य संगम) की है। आकार ६½×६½ इञ्च। गुटकाकार। जिल्द सादी छोंटकी। समस्त पत्र सं० १६४।

पत्र सं० १ से १३ तक अष्ट पदवी, त्रिथ त्रिह कौ अंग, ग्यांन संजोग त्रिह कौ अंग, कवत नारायणदासजी रा कह्या, अच्छी लिपिमें तथा इसके आगे दुर्वाच्य लिपिमें किसी विना पढ़े-लिखे व्यक्तिद्वारा कुछ रचनाएँ हैं।

तत्पश्चात् श्रीहरिरामदासजी महाराजकी वाणी प्रारंभ होती है, यहाँ-से पत्र संख्या १ लगी हुई है। यह वाणी पत्र सं० १३९ तक चलती है।

श्रीहरिरामदासजीकी वाणी तो पत्र सं० १३२ में ही समाप्त हो जाती है, पर वहींसे कबीरजीकी वाणी प्रारंभ होती है जो १३९ पर समाप्त होती है।

इसके आगे १२ पत्रोंपर विभिन्न लिपियोंमें हरिरामदासजीकी ही विभिन्न रचनाएँ हैं।

प्रारंभ—

श्रीगुरभ्यो नम ॥ श्री रांमाय नम ॥ अथ परसंग लिष्यते ॥
अथ गुर सिष कौ प्रसंग ॥ अथ साषी ॥
सिष सत गुर पै जाय कैः चरण नवाये सीस।
जन हरीया सत गुर कीयाः चेला रांम वरीस ॥ १ ॥

समाप्ति (पत्र सं० १३९ पर)—

कबीर विलब न कीजीयै लेतां हरि कौ नांम।
देह कीसी की वापड़ीः ज्युं होय उतारू गांम ॥ १३ ॥

इति अंग सपूरण समापताः संवत १८२२ वरषे मती आसौज सुदि ८ वार अदीत वार ॥ गांव सीहथल मध्ये लिषतु साध हरि-रांमदास ॥ भाट सूजा तत् पुत्र रतनदास पठनारथं ॥ श्री श्री।

'क' प्रति—

यह प्रति रामधाम, खेड़ापा, दयालु पुस्तकालयकी है। आकार ६×६½ इञ्च। गुटकाकार, जिल्द जीर्ण है।

मूल प्रति का अन्तिम पत्र सं० १३९

लिपिकाल—संवत् १८२२ आश्विन शुक्ला ८ रविवार

लिपिस्थान—सिंहस्थल (सींथळ)

लिपिकार—आचार्य श्रीहरिरामदासजी महाराज

पठनार्थ—भाट सूजा तत्पुत्र रतनदास

प्रति 'क' पत्र सं० २१४

लिपिकाल—संवत् १८१७ फाल्गुन शुक्ला १ शनिवार

लिपिस्थान—सिंहस्थल (सींथल)

लिपिकार—आचार्य श्रीहरिरामदासजी महाराज

पठनार्थ—शिष्य रामदास

समस्त पत्र सं० २८१ जिनमें प्रारम्भके २ पत्र रिक्त हैं तथा पत्र सं० २४६ से २८१ तकके पत्र भी रिक्त हैं।

पत्र सं० २ पर "श्री श्री १०८ श्री हरीरामदासजी म्हाराजीरा षुद्रा अषरांरी पोथी" किसी अन्य व्यक्तिद्वारा अंकित हैं। पत्र सं० ३ से वाणी प्रारंभ होती हैं, यहींसे पत्र सं० १ डाली हुई हैं। पत्र सं० २१४ तक श्रीजी महाराजकी वाणी है। इसी पत्रपर पुष्पिका भी है (संलग्न चित्र इसी पत्रका हैं)। तदनन्तर श्रीरामदासजी (खेड़ापा) की वाणी तथा स्वयंकी छुटक साषियाँ हैं, इनका हस्तलेख भी स्वयम् श्रीजी महाराजका ही हैं।

प्रत्येक पत्रके दोनों पृष्ठोंपर लाल रेखा डालकर हासिया दोनों ओर छोड़ा हुआ हैं। प्रत्येक पृष्ठपर १५ से १७ तक पंक्तियाँ हैं।

प्रारम्भ—

श्री रामाय न्मः श्री गुरभ्यो न्म ॥ अथ प्रसंग लिष्यते ॥ ꣼। अथ गुर सिष कौ प्रसंग लिष्यते ॥ अथ साषी हरिरांमदासजीरी कही

सिष सत गुर पै जाय कैः चरण नवाए सीस ॥
जन हरीया सतगुर कीयाः चेला रांम वरीस ॥ १ ॥

समाप्ति—पत्र सं० २१४—

वेहद कुं पुहचे नहीः हरीया हदि के लोक ॥
तन तौ माटी मैं मिल्यौः मन ग्यौ सांसै सोक ॥ २२ ॥ ८१ ॥

इती अंग सपूरण समापता हरिरांमदासजीरा कह्या वाचै सुणै तैनु रांम रांम समंत १८१७ वरषे मती फागण सुदि १ वार सनीसर वार गांव सींहथल मध्ये लिषतु साध हरिरांमदास पठनारथं सिष रांमदास ॥

'ख' प्रति—

यह प्रति रामधाम, खेड़ापा, दयालु पुस्तकालयकी है। आकार ९×६ इञ्च। गुटकाकार, गुटकाजिल्द सादी हैं, कागजोंमें सील पहुँची हुई है।

समस्त पत्र सं० २०० हैं। पत्र सं० ३ से वाणी प्रारंभ होती है, वहींसे पत्र सं० १ डाली हुई हैं। मध्यमें पत्र सं० १४५ से १४७ तक पत्र रिक्त हैं।

पत्र सं० २ पर "श्री श्री १०८ श्री हरीरांमदासजी म्हाराजरी लीषा-योड़ी षुदरा दसषतारी पोथी हैं" अन्य व्यक्तिद्वारा अंकित है। पत्र सं० १ से सं० ८३ तक वाणी चलती है, वहाँकी पुष्पिका इस प्रकार हैं—

"इति अंग साष हरिरांमदासरी कही सपूरण समापता
समंत १८१५ वरषे मती पोह वदि २ वार शनसर वार"

इसके पश्चात् वहींसे फिर वाणी शुरू होती हैं जो पत्र सं० १२३ पर समाप्त होती हैं, वहाँ पुष्पिका इस प्रकार हैं—

"इति हरिरांम दास री बांणी सपूरण समाप्ताः समंत १८१६ वरषे मती वैसाष सुदि ९ दिने वार शनीसर वार लिषतु हरिरांमदास गांव सींहथल मध्ये पहोड़ अजबसिंघजी तत् पुत्र पेमदास पठनार्थं ॥"

इसके पश्चात् पत्र सं० १२४ से रामदासजीकी भगतमाल आदि वाणी प्रारंभ होती हैं। फिर आगे पत्र २३४ से स्वयंकी वाणी शुरू होती है जो पत्र सं० २४४ तक हैं। इससे आगे अन्य संतोंकी वाणियाँ अन्य लेखकोंद्वारा लिखी हुई हैं।

प्रारंभ—

श्री रामाय्नय नमः श्री गुरभ्यो नमः अथ प्रसंग की साषी लिष्यते हरिरांमदासजी री कही ॥ अथ गुर सिषको परसंग।

सिष सत गुर पै जाय कैः चरण नवाए सीस।
जन हरीया सतगुर कीयाः चेला रांम वरीस ॥

<u>'ग' प्रति—</u>

यह प्रति रामधाम, सींहथल (संत साहित्य संगम) की है। आकार ६×४½ इञ्च। गुटकाकार, जिल्द रेशमी फटी हुई है। पत्र २०८ हैं। अन्त त्रुटित है।

प्रति "ख"
पत्र सं० १२३
लिपिकाल-संवत्
(१८१५) १८१६
वैशाख शुक्ला ९ शनिवार
लिपिकार—
आचार्य श्रीहरिरामदासजी
महाराज ।
लिपिस्थान—
गाँव सिंहस्थल
(सींथल)
पठनार्थ—
पहोड़ अजबसिंहजी
तत्पुत्र पेमदास ।

प्रति 'ग'। पत्र सं० १०५। लिपिकाल—सं० १८१३ मृगशिर कृ० ३० सोमवार। लिपिस्थान—सिंहस्थल (सींथल)। लिपिकार—

प्रारंभसे पत्र सं० १०५ तक वाणी है, इस पत्रपर पुष्पिका निम्न प्रकारसे हैं—

"इति वेहद कौ अंग ॥ ८१ ॥ इति साषी हरिरांम दासरी कही सपूरण समापता समंत १८१३ वरषे मती मिगसर वदि अमाविस्या वार सोम लिषतु हरिरांमदास ॥...पठनारथं वाचै सीषै तैनु राम राम ॥ १५९३ साषी २ चौपइ ॥ ९ चंद्रायणा । सरव संध्या १६०४"

पत्र सं० १०६ से १११ तक कबीरजीकी वाणी है, पत्र ११२ से पुनः स्वयंकी वाणी है। हस्ताक्षर स्वयंके हैं।

'घ' प्रति—

यह प्रति रामधाम, सींहथल (संत साहित्य संगम) की है। आकार ९×५ इञ्च। गुटकाकार, रंगीन कपड़ेकी जिल्द, समस्त पत्र ९२८।

प्रारम्भमें पत्र सं० १ से श्रीरामानन्दजी महाराजकी वाणी है।
पत्र सं० १९ से पत्र सं० ३०७ तक श्री हरिरामदासजीकी वाणी है।

प्रारंभ—

अथ श्री साधां माहाराज हरिरांम दास जी री कही अनुभव गिरा प्रकास उद्योतकार ॥ प्रथम ब्रह्म सस्तूति लिष्यंते ॥

परा ब्रह्म सत गुर प्रणम्य ॥ पुन्य सब संत नमोः ॥ १ ॥
हरिरांमा मुर भवन में ॥ यापद समो न कोः ॥ १ ॥

समाप्ति—

इति श्री साधा माहाराज श्री श्री हरिरांमदासजी की अनभै बांणी सपूरण ॥ साधांमाहाराज श्री श्री महाराज रुघनाथदासजी के सिष छोरू षानाजाद चैना लिष्यतु ॥ वाचै विचारै जानै सुण जानै राम राम छै राम राम....

गुटकेकी समाप्तिपर पुष्पिका—

इति श्री रैदासजी का पद साषी समसत सपूरण । राग ॥ १३ ॥ पद ॥ ८० ॥ साषी ॥ ४ ॥ श्री इति श्री पुसतग सपूरण समत ॥ १८९५ ॥

वरषे मीती काती सुधि । ३ ॥ वार अदीतवार सिहथल राम महोला श्री साधां माहाराज श्री रुघनाथ दास जी के सिष छोरू षांनाजाद चना लिषतु वाच विचार सुण जानै रांम रांम छ रांम रांम......

पाठ-भेद

स्मृति-दोष या लिपि-दोषके कारण अथवा जान-बूझकर किए गए सामान्य पाठान्तरको तबतक नहीं दिया गया है जबतक कि उस पाठान्तर-से अर्थ वा भाव सम्बन्धी नवीनता या विशेषता उत्पन्न न होती हो। प्रतिलिपिके कारण उत्पन्न पाठभेद या लिपिकारके कारण उत्पन्न हुए पाठभेद नहीं दिए गए हैं और वहाँ मूलपाठ ही रखा गया है, जैसे—

जांनि, जांन। जांणि, जांण। कांनि, कांन। कांणि, कांण। उतारि, उतार। विचारि, विचार। तोल, तोलि। मोल, मोलि। सुरतिं, सूरित। गुर, गुरु। मूंठ, मूंठि। सूरवां, सूरिवां। प्रांन, प्रांण। वांन, वांण। पांहन, पांहण। चाकुर, चाकर। दीपक, दीपग। वहां, वांह, ह्वां। नही, नहि, न, नहं। जौ, जो, जे, जै। सें, सुं, सु, सूं। जांनीयै, जांणीयै। गये, गए। गया, ग्या। एक, हेक। विनां, विन। आदि। इन उपरोक्त पाठान्तरोंको टिप्पणीमें नहीं दिया है और मूलका पाठ स्वीकार कर लिया गया है।

राजस्थानीमें वर्गान्त अक्षरसे पूर्ववाले वर्णपर अनुस्वारकी ध्वनिका उच्चारण होता है अतः यहाँ भी राम, काम, ज्ञान आदि या इस प्रकारके शब्दोंके स्वरूप मूलप्रतिके अनुसार रांम, कांम, ग्यांन, ध्यांन, संमाधि, मुकांम आदि सानुस्वार ही रखे गए हैं।

यत् और तत् शब्दका प्रायः सम्बन्ध होता है और नियमतः पहले यत्–जो, जैसे, जहाँ आते हैं और पश्चात् सो, वैसे, वहाँ आते हैं किन्तु रचनाकारने इसका ध्यान नहीं रखा है। इनका प्रयोग-विपर्यय यहाँ प्रायः उपलब्ध है किन्तु हमने मूलको स्वीकार किया है और एतदर्थ भी पाठान्तर नहीं दिया है।

लिपिके विषयमें उल्लेखनीय है कि 'ख' का कार्य यहाँ 'ष' से लिया गया है और 'श' तथा 'ष' का कार्य 'स' से लिया गया है अतः हमने इसमें कोई परिवर्तन नहीं किया है। कई स्थानोंपर 'ल' को 'ळ' (मूर्धन्य 'ळ') राजस्थानी भाषाके उच्चारणको ध्यानमें रखते हुए हमने अपनी

ओरसे किया है। 'ड' और 'ड़' के विषयमें लेखकने बड़ी ही सावधानी बरती है। इन दोनों अक्षरोंको लेखकने उच्चारणकी आवश्यकताके अनुसार अपने लेखमें दो प्रकारसे लिखा है अतः हमें उसमें सुधार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं पड़ी।

'ब्रह्म' शब्दको प्रायः सर्वत्र ही 'ब्रह्म' लिखा है। इसे हमने शुद्ध करके देना ही उचित समझा है और सर्वत्र 'ब्रह्म' कर दिया है।

'ज्ञ' को सर्वत्र 'ग्य' लिखा गया है यद्यपि यह लिपिदोष है तथापि उच्चारणके प्रचलनवश हमने 'ग्य' ही रखा है।

जो-जो रचनाएँ जिस-जिस प्रतिसे ली गई हैं उनका उल्लेख वहींपर कर दिया है। रचनाओंका क्रम विभिन्न प्रतियोंके पाठोंको देखकर बहुमतके आधारपर और सम्प्रदाय-परम्पराके आधारपर रखा गया है।

वाणीकी प्रतियोंमें जहाँ छन्द बदलनेका उल्लेख है वहाँ तो उस छन्दका नाम दिया ही गया है किन्तु उसके बादमें यदि छन्द बदलनेका उल्लेख प्रतिमें नहीं है और छन्द बदलता है तो हमने अपनी ओरसे आगामी छन्दका उल्लेख कर दिया है।

इस तरहसे सम्पादनको पूर्ण वैज्ञानिक रूप देनेका प्रयत्न किया गया है। इसके अतिरिक्त परिशिष्ट भागमें 'घघर निसाणी' नामक रचना जिसपर परमपदस्थ आचार्य श्रीचौकसरामजी महाराजने बड़ी ही मर्मभेदी टीका की थी उस सटीक रचनाको दिया गया है जिसका टीकारहित रूप मूलमें भी है।

पाठकोंकी सुविधार्थ हरिजसोंकी स्थायीका अकारादिक्रम एवं वाणीमें आए हुए अनेक शब्दोंका भावार्थ (शब्द-कोश) भी परिशिष्टका महत्त्वपूर्ण अंग है।

सम्पादन कार्यकी वैज्ञानिकता और इस प्रकाशनके महत्त्वकी प्रशंसा प्राप्त करनेके प्रति मैं आशावान् हूँ और सम्भवतः मेरी यह आशा फलवती भी होगी किन्तु 'संत साहित्य संगम' के सान्निध्यमें यह सम्पादन कार्य होनेसे इसमें सम्पादक महोदयके श्रम, लगन और पाण्डित्य तथा सूझ-बूझकी चर्चा किए बिना नहीं रहा जा सकता है। पीठस्थान और

सम्प्रदायके अनेक कार्य होते हुए भी सम्पादक महोदयने अहर्निश परि-श्रम करके जो परिणति आपके सम्मुख रखी है वह अद्वितीय है। सम्पादक महोदयने जो कठिन परिश्रम इस वाणीके सम्पादनमें किया है उसे हम आँखोंसे देखनेवाले ही जानते हैं। सम्पादक महोदय निश्चय ही साधुवादके पात्र हैं।

माघ कृष्ण १४, २०२६

श्रीगोपाल गोस्वामी
निर्देशक—संत साहित्य संगम, बीकानेर

* राम *

श्रीहरिरामदासजी महाराजकी अनुभव-वाणी

पूर्वार्ध

पूज्यपाद अनन्त श्री विभूषित श्री हरिरामदासजी महाराज
श्री रामस्नेहि सम्प्रदायाद्याचार्य सिंहस्थल

॥ श्रीरामाय नमः ॥

अथ ब्रह्म असतूति*

परम वंदन परम सेवा, परम दीनदयाल तुं।
परम आतम[1] परम यारी, परम स्वरग[2] पयाल तुं ॥ १ ॥
नमो निरगुन[1] नमो [2]नाथुं, नमो देव निरंजनं।
नमो संम्रथ नमो सामी, नमो सकल [3]सिरजनं ॥ २ ॥
नमो अवगति नमो आपुं, नमो पार अपंपरं।
नमो महरंम[1] नमो न्यारा, नमो पद परमेस्वरं ॥ ३ ॥
नमो चेतन नमो तारी, नमो निज निरासनं।
नमो आदि न नमो अंता, नमो ब्रह्म [1]प्रकासनं ॥ ४ ॥
नमो पीतंम[1] नमो [2]माधौ, नमो नांव न केवलं।
नमो कायम नमो करता, नमो रांम निरमलं ॥ ५ ॥
नमो निकलंक नमो [1]निकुला, नमो नित नरायनं।
नमो अमर नमो अधरा, नमो पीव परायनं ॥ ६ ॥
नमो हरधम निराकारं, नमो निगम[1] निरूपनं।
नमो अवचल नमो [2]अनुभै, नमो एक अनूपनं ॥ ७ ॥

---

* (ग) असतूत, (घ) सस्तुति।
(१) १. (ग) आतिम (घ) आत्म। २. (घ) सरग।
(२) १. निरगुण। २. (ग) नाथु, (घ) नाथूं। ३. (घ) सिरंजनं।
(३) १. (ख, ग) नरहर।
(४) १. (ग) निवासनं।
(५) १. (ख, ग) महरम। २. (खं) माधव, (घ) प्यारा।
(६) १. निकला।
(७) १. (घ) निगिम। २. (ख, ग, घ) अनभै।

नमो साहिब[1] नमो सहजां, नमो काल निकंदनं।
दासहरीया[2] नमो दाता, नमो तम निरदंदनं॥ ८॥

अथ गुरदेव कौ अंग १

पराब्रह्म सतगुर प्रणम्य, पुन्य सब संत नमोः।
हरिरांमा मुर भवन में, या पद समो न कोः॥*

प्रथम सेव गुरुदेव की, पीछै हरि की सेव।
जनहरीया[1] गुरुदेव विन, भगति न उपजै भेव॥ १॥

गुर सेवा कै रांम की, या तुलि[1] नांही और।
गरू स[2] भांजे भरम कुं, रांम मुगति की ठौर॥ २॥

पहली दाता हरि भया, तिनतैं[1] पाई जिंद।
पीछैं दाता गुर भया, जिन दाषे गोविंद॥ ३॥

हरि हैं दाता जिंद का, तातैं उपजै[1] और।
गुर सा दाता को नही, निज पकरावैं[2] ठौर॥ ४॥

पहली गुर आदर दिवै, तौ हरि आघा [1]लेह।
हरीया गुर आदर विनां, हरि[2] कुछि[3] काढ़ि न[4] [5]देह॥ ५॥

---

(८) १. (ग) साहवि, (घ) साहब। २. (ग) निमो निरदुष।

* प्रति 'घ' में ब्रह्म अस्तूतिके पूर्व यह साषी अधिक है—(क ख ग) में प्राप्त नहीं होती है—यही साषी कई अन्य प्रतियोंमें गुरदेवके अंगकी प्रथम साषी है।

(१) १. (ग) हरिरांमा।
(२) १. (ख, घ) तुल, (ग) तुल्य। २. (ख) गरू त, (ग) गरू मिलावै रांमकू, (घ) गुर तौ।
(३) १. (ख) जिन्हांउपाई, (ग) जिनतैं।
(४) १. (ग) उपजी। २. (ग) पकराई। (घ) यह साषी नहीं है।
(५) १. (ग) लेत। २. (ग) निज। ३. सुष (घ) ही। ४. (घ) मान न। ५. (घ) लेह।

हितू न सतगुर सारिषा , ताहि[1] दीया गुझि[2] ग्यांन ।
मन की मैं तैं मेट करि , अधर धराया ध्यांन ॥ ६ ॥

हितू न सतगुर सारिपा , अरथ वताया एक ।
हरीया तन[1] मन वचन का , मेट्या[2] भरम अनेक ॥ ७ ॥

हरि है दाता देह का , तातैं भया सकांम ।
गुर हैं दाता ग्यांन का , मन का मेट[1] विरांम ॥ ८ ॥

जब[1] तैं उर[2] अग्यानता , हरि सुष उपजै नांहि ।
जनहरीया[3] गुर ग्यांन दे , कीया निदुष मन मांहि ॥ ९ ॥

सतगुर जौ मिलता नही , हरीया[1] रहते रीछ ।
आपनपौ नही [2]ओळषत , औरां ईछ पलीछ ॥ १० ॥

सतगुर जौ मिलता नही , आती नांहि सुमति ।
हरीया[1] हरि अंतर [2]रहत , करते काय[3] कुमति ॥ ११ ॥

सतगुर जौ मिलता नही , होती तन[1] मन हांनि ।
ज्युं पासौ चौपड़ि तणौ , हरीया[2] हाथि न जांनि ॥ १२ ॥

हरीया पासौ हाथ कौ , तौई[1] न अपनै हाथि ।
सतगुर केरै सबद विन , मन किनकै[2] नही [3]हाथि ॥ १३ ॥

---

(६) १. (ख, ग) जिन्हां, (घ) मुझि । २. (ग) गुझ ।
(७) १. (ग) हरिरांमा । २. (घ) अनरथ मिट्या ।
(८) १. (घ) मेटि ।
(९) १. (ग) जब लग । २. (ख, ग) तन । ३. (ग) हरिरांमा ।
(१०) १. (ख, ग) रहते मिनषा, (घ) हरीया होते । २. (ख) हरीया आप न ओळषत, (ग) आपनपौ उळषत नहीं, (घ) आपौ आपन औळैषै ।
(११) १. (ग) आपा । २. (घ) हरि सूं अंतरो । ३. (ग) और, (घ) काइ ।
(१२) १. (ग) अन्तर (घ) तनकी । २. (ग) हाथि थकौ नहिं ।
(१३) १. (घ) होय । २. (घ) आवै । ३. (ख, घ) साथि ।

जनहरीया[1] चौपड़ि तणा, आवैं दाव अनेक।
सतगुर[2] केरै सबद सौ, औसर मिलै न एक॥ १४॥

सुरति[1] सारी निरत चौपड़ि, गरू[2] दाव दिषाय।
हरिरामीयां करि पेम[3] पासा, षेल[4] हरिं सुं लाय॥ १५॥

अैसैं दिनकर भेटीयां, निसकर जाहि[1] नसाय।
यु हरीया[2] गुर भेटीयां, अग्य[3] अंधारा जाय॥ १६॥

हरीया[1] सतगुर[2] भेटीया, मेट्या अग्य[3] अंधार।
ग्यांन रिदैं[4] परकासीया, देष्या हरि[5] दीदार॥ १७॥*

सतगुर साहूकार हैं, सिष सौदागर जांनि।
जनहरीया राषैं[1] नही, काय[2] न अंतर कांनि॥ १८॥

---

(१४) १. (ग) हरिरांमा। २. (ग) सांई सतगुर दाव सा, (ख) सतगुर का सत सबद सौ।

(१५) १. (ख) सुरित। २. (घ) सतगुर। ३. (घ) हरिया पासा पेमका। ४. (घ) षेल ज।

(१६) १. (ग, घ) गये। २. (ख) हरीया सतगुर (ग) हरीया यौं सत गुर मिल्यां (घ) जनहरीया। ३. (ग) अगि, (घ) अघ।

(१७) १. (ग) हरिरांमा (घ) जनहरिया। २. (ग) मिल्या। ३. (ग) अगि। ४. (ख, ग) अंतर ज्ञान, (घ) ज्ञान गुरु। ५. (घ) दिल।

* ग, प्रतिमें इसके बाद निम्न दो साषी हैं—

घरि घरि मै दीपग जगै दुनीयां देषै नांहि।
सतगुर विन भाजै नही पड़िदा अंतर मांहि॥
लष चौरासी नगर मै कोड़ीधज कोई साह।
लषी हजारी एक सौ जुग मांही बौहताह॥

(१८) १. (ख) किन सूं। २. (ग, घ) रती न। ग, प्रतिमें यह साषी यहाँ नहीं है, तृतीय चरणमें—'हरीया सो घटि वधिकी' पाठ है।

हरीया[1] सौदौ साह [2]कौ, लै[3] सिर[4] साटै [5]मोलि।
विण तोलां[6] विण ताकड़ी, तत तराजै [7]तोलि॥ १९॥

सौदा सतगुर सुं कीया, रांम नांम धन काज।
लाभ[1] न कोई छेहड़ौ, तोटा सब ही [2]भाज॥ २०॥

सतगुर विन सौदा कीया, जनहरीया [1]वेकाम।
साकट ज्युंई[2] सूकरा, हांढै[3] घर[4] घर जांम॥ २१॥

सतगुर संग सौदा किया, गाहक ग्यांन विचारि।
जनहरीया[1] जब[2] जांणीयै, पूंजी पारि उतारि॥ २२॥

रांम नांम सौदागरी, करि करि लीजै[1] लाह।
जनहरीया[2] हक साह कै, नां कोई अनहक्क राह॥ २३॥

हरीया सौदा सब्बद[1] का, दूजा सौदा नांहि।
दूजा सौदा सो करै, षांड परै मुष मांहि॥ २४॥

रांम नांम सौदा किया, दूजा दांण चुकाय।
जनहरीया[1] गुर ग्यांन का, तांडा देह लदाय॥ २५॥

तांडै नायक नांव निज, गुण की गूण भराय।
लदै, पलाणै सुरति मन, ग्यांन बळधीया [1]गाय॥ २६॥

---

(१९) १. (ग) एकज सौदा साहकौ। २. (ख) जी। ३. (ख) द्यै। ४. (घ) लेसी सिर दे मोल। (ग) द्यै बौहौ मुहगै मोल। ५. (ख) मोल। ६. (ख) तोलै। ७. (ख, ग, घ) तोल।

(२०) १. (ग) लाहै नां। २. (ग) तन मन सुं ले ताज।

(२१) १. (ग) सो सौदा कुण काम। २. (ग) है ज्युं, (घ) अैसैं। ३. (ख, ग) हांडै। ४. (ख) आठुं।

(२२) १. (ग) हरिरांमा। २. (ख) इन सिषकी, (ग) जिन सिष की।

(२३) १. (ग) सो विणजै सो। २. हरिरांमा।

(२४) १. (ख) नांव का, (ग) राम का।

(२५) १. (ग) हरिरांमा।

(२६) १. (घं) थाय।

आडा पड़िदा दूरि करि, अगम[1] दिषाई वाट।
जनहरीया[2] गुर महिर[3] तैं, लंघीया औघट घाट ॥ २७ ॥

औघट-घाटी नीसर्‌या, देष्या देव अपार।
जनहरीया सिर ऊपरैं, सतगुर सिरजन [1]हार ॥ २८ ॥

सतगुर मिलीयां बाहिरौ, होती हासा पेल।
कूवै गोसी कोस ज्युं, हरीया[1] पाछौ[2] ठेल ॥ २९ ॥

जौरौ गोसी, कूंप जुग, वारौ आवै जाय।
हरीया गुर बांही गहै, कुड़[1] सेती अटकाय ॥ ३० ॥

सतगुर मोकुं धीर दे, एक[1] दाषवी[2] सीष।
जनहरीया[3] गुर सीष विन, भरू न दूजी [4]ग्रीष ॥ ३१ ॥

सीप सुनत[1] ही सुधि[2] भई, तन[3] आपौ विसराय।
जनहरीया मन गरक [4]हुय, तरक फरक नही [5]थाय ॥ ३२ ॥

सतगुर वाह्या सबद-सर, मूंक्या रिदै मंझारि।
हरीया[1] भूदुं भाजिगे[2], भेदी रह्या विचारि ॥ ३३ ॥

---

(२७) १. (ख) ब्रह्म। २. (ग) हरिरांमा। ३. (ख) महरि तैं, (ग) महरिकरि, (घ) महरतैं।

(२८) १. (ग) हरिरांमा मन मिल रह्या सत गुर कै आधार।

(२९) १. (ग) पगटे। २. (ख) हरि सूं।

(३०) १. (ख) कुड़तैंग्रै, (ग) कुड़लीग्रै। (घ) आत जात।

(३१) १. (ग) साच, (घ) ऐकज। २. (ख, ग) बताई, (घ) दापी। ३. (ग) हरिरांमा। ४. (ग) झूंठ भरूं नहीं ग्रीष।

(३२) १. (ख, घ) सुनाई, (ग) विचारी। २. (ग) सुष भया। ३. (ख) आपौ तन। ४. (ख) हरीया इनमैं गरक हुय। ५. (ग) हरिरांमा गुर सीषतैं दूजा दुष विलाय।

(३३) १. (ग, घ) भूंदू था से। २. (ख, घ) भाजिग्या।

सतगुर वाह्या सबद-सर, सनमुष[1] लगा[2] आय।
हरीया[3] सुगरा चेतसी, निगुरां गम न काय॥ ३४॥

हरीया[1] सतगुर सबद की, मुष भरि वाहै मूंठि।
आगैं सिष सांमा[2] षड़ा, दीयां जगत कुं पूठि॥ ३५॥

जनहरीया[1] गुर [2]सूंरवा, करै सबद की चोट।
सिष सूरा तन जौ लहै, आंन धरै नही ओट॥ ३६॥

सतगुर का सिष सूंरिवा, त्यागै तन मन प्रांन।
हरीया सालै रैंन-दिन, सबद लगाया [1]बांन॥ ३७॥

भागां सूर न भजई, भागां गुरनैं गाळि।
इणीयां[1] एकल मलड़ौ, दोउ दळां विचाळि॥ ३८॥

सतगुर वाह्या मूंठि भरि, सबद सताणां एक।
जनहरीया[1] उर बीच मैं, करिग्या[2] छेक अनेक॥ ३९॥

पर उपगारी गुर मिल्या, भगति[1] वताया भेव।
यौ[2] ही सिवरन हरि कथा, यौ ही सहजां [3]सेव॥ ४०॥

जनम-जनम[1] के बीछरे, अब क्युं आवैं ठांय।
जनहरीया[2] गुर आपना, पल मांहि[3] समझांय॥ ४१॥

---

(३४) १. (ग) उर विच। २. (ख) लागा, (घ) ल्ग्या। ३. (ग) सुगरा है सो, (घ) सुगुरा सोई।

(३५) १. (ग) हरिरांमा गुर। २. (ग) सांम्हा।

(३६) १. (ग) हरिरांमा। २. (ख) सूरिवा।

(३७) १. (ग) सिर पडीयाँ धड़ साल लै ल्गा सबद के वांण।

(३८) १. (ख) हरीया।

(३९) १. (ग) हरिरांमा। २. (ख, ग) करिगे।

(४०) १. (ग) नांव। २. (ख) हरीया। ३. (ग) यौ सिवरन यौ हरिकथा यौ सहजां यौ सेव।

(४१) १. (ग) बौहौ जनमां के वीसरे, सो क्यों। २. (ख) हरीया गुर बांही गहै, (ग) हरिरांमा सत गुर मिलै। ३. (ग) पल मैं ल्यै।

जनहरीया गुर [1]आपनां, ले पुंहचै[2] सुन्य[3] गांय।
जिन गुर सबद न [4]जांणीया, धका काल[5] का खांय॥ ४२॥
कीड़ै षाई[1] लकड़ी, ज्युं काया कुं काल।
गुर विन कोय न [2]उबरै, मध्य सरग पाताल॥ ४३॥
ब्रह्म अगनि तन वीच [1]मैं, मध्य[2] करि काढै [3]कोय।
उलटि काल कुं षात है, हरीया गुर गम होय॥ ४४॥
सतगुर तीं संसा मिट्या, भया निसंसै जीव।
जनहरीया[1] मैं[2] प्रांमीया, आदि अंत का पीव॥ ४५॥
सतगुर जौ मिलता नही; तौ लेते कुल षोज।
जनहरीया[1] सतगुर मिल्या, हसै न आवै रोज॥ ४६॥
जनहरीया[1] सतगुर इसा, जिसा कमागर होय।
सबद मसकला फेर [2]करि, दाग न रषै कोय॥ ४७॥
जनहरीया[1] सतगुर इसा, जैसा[2] है[3] लोहार।
तन लोहा कु[4] ताव दे, काट न रषणहार॥ ४८॥
जनहरीया[1] सतगुर इसा, जिसा सरगरा होय।
मन तरगस का तीर ज्युं, बांक न रषै कोय॥ ४९॥

---

(४२) १. (ख) आपनौ। २. (ख) पहुँचावै। ३. (घ) परि। ४. (ख) जाणीयौ। ५. (घ) वीचमैं। (ग) यह साषी नहीं है।
(४३) १. (ग) षाधी। २. (ग) सत गुर विन बंचै नहीं।
(४४) १. (ग) काया विच ब्रह्म अगनि है। २. (ख, ग, घ,) मथि। ३. (ग) सोय।
(४५) १. (ग) हरिरांमा। २. (ख, ग) जदि, (घ) मुझि।
(४६) १. (ग) हरिरांमा।
(४७) १. (ग) हरिरांमा। २. (ख, ग) लाय कै।
(४८) १. (ग) हरिरांमा। २. (ख) है जैसा। ३. (घ) होय। ४. (ग, घ) ज्युं, ज्यू।
(४९) १. (ग) हरिरांमा।

जनहरीया[1] सतगुर इसा, जैसा होय भिरंग।
कीट परां सुं पोष दै, करै आप सै रंग॥ ५० ॥

जिन गुर ती हरि प्रांमीया, भरम न रष्या कोय।
वा गुर[1] कुं क्या अरपीयै, दीजै तन मन दोय॥ ५१ ॥

जनहरीया[1] भव जगन मैं, सतगुर करी सिहाय।
आदु अपना[2] जांन करि, हाथि लीया [3]विलबाय॥ ५२ ॥

लोह पलटि कंचन भया, पारस का परताप।
जनहरीया[1] सतगुर करै, आप सरीषा आप॥ ५३ ॥

सिष सेती सतगुर करै, अैसा है इक तार।
जैसै कुं तैसा करै, ज्युं दरपन दीदार॥ ५४ ॥

अथ गुर पारिष कौ अंग २

ग्यांन विहूंणा गुर [1]मिल्या, सुरति[2] विहूंणा सिष।
जनहरीया[3] गुर सिष का, संसा मिट्या न चिष॥ १ ॥

जाका गुर है ग्यांन विन, चेला भया[1] [2]अजांन।
हरीया[3] अंधै नैंन कुं, कहा उदत है भांन॥ २ ॥

---

(५०) १. (ग) हरिरांमा।
(५१) १. (घ) जनहरीया।
(५२) १. (ग) हरिरांमा। २. (ख, ग, घ) अपना। ३. (घ) विलमाय।
(५३) १. (ग) हरिरांमा।

---

(१) १. (ख, घ) कीया। २. (ख) सुरत। ३. (ग) हरिरांमा। ४. (ख, ग, घ) सांसा।
(२) १. (ग) होय। २. (ख) अग्यांन। ३. (ग) ज्युं।

सतगुर मिलीया[1] बाहिरौ, सुधि बुधि उपजै नांहि।
जनहरीया[2] सो[3] ले चले, धिलका थोषा मांहि॥ ३॥

हरीया गुर[1] सम्रथ[2] मिलै, तौ[3] सिष ही सम्रथ होय।
सांम षड़ै युं[4] [5]सूंरिवा, भाजि न जावै कोय॥ ४॥

जाका[1] गुर भरम्या फिरै, सिष निसचै नही थाय।
हरीया पांहण[2] न्याव चड़ि, सायर तिख्या[3] न जाय॥ ५॥

काचा गुर काची कहै, मांन बड़ाई डंभ।
ज्युं[1] काचा किस कांम का, जल सुं भरीया कुंभ॥ ६॥

पाका गुर पाकी कहै, मना बंधावै धीर।
हरीया पाहर[1] सौधि [2]कै, मेटै पीर [3]सरीर॥ ७॥

हरीया पूरा गुर मिलै, अगम दाषवै[1] ग्यांन।
पढीयां गुणीयां बाहिरौ, सहज धराया[2] ध्यांन॥ ८॥*

गुर सिष मिलीयां क्या हुवै, मिल अर[1]पाड़ी वाटि।
हरीया षोटा विणज कै, ठग मिल ल्यावै षाटि॥ ९॥

---

(३) १. (ग) मिलीयां। २. (ग) हरिरांमा। ३. (घ) जब।
(४) १. (ग) सतगुर कै। २. (ग) सम्रथ जौ (घ) समरथ। ३. (घ) तौ नहीं है। ४. (घ) जब। ५. (ग) हरिरांमा औसर समै।
(५) १. (ख) हरीया। २. (ख, घ) पांहण केरी। ३. (घ) तिन्यौ।
(६) १. (घ) ज्यू।
(७) १. (ख) पंचे, (घ) पांचू। २. (ग) सोझ करि, (ख) सोझि कै, (घ) करि। ३. (ख, घ) हरीया मेटै पीर, (ग) मेटै तनकी पीर।
(८) १. (क) दिषावै, (ख) वतावै। २. (घ) धरावै। * (ग) पूरा सतगुर जौ मिलै, अगम पढावै पाठ। वेद पूरांनां नां लहै, हरीया घट वैराठ। यह पाठ है।
(९) १. (ख, घ) करि।

सिष गुर कुं[1] सिर धरत है, हरीया[2] हरि कै हेत।
विण बूझ्यां गुर ग्यांन[3] कुं, सो काहे कुं देत ॥ १० ॥

विण बूझ्यां गुर देत है, हरीया[1] ग्यांन विचार।
तन मन सेती[2] जांणीयै, सो माया के यार ॥ ११ ॥

हरीया साहूकार है, सो कोड़ीधज होय।
सतगुर सोई जांणीयै, भरम करम नही कोय ॥ १२ ॥*

अथ गुर वंदन कौ अंग ३

सतगुर सेती बंदीयै, धरीयै हरि कौ ध्यांन।
हरीया जब तैं[1] पाईयै, परापरी कौ ग्यांन ॥ १ ॥

गुर कुं देष न[1] [2]नींदीयै, जौ लुघ[3] दीरघ होय।
जनहरीया[4] गुर नींदीयां, भला न किसका होय ॥ २ ॥

हरीया कर[1] दीपग दीयां, मिंदर भया उजास।
यु गुर दीपग[2] नंदीयां, उर अंधारा[3] जास ॥ ३ ॥

हरीया[1] दीपग ग्यांन का, सतगुर दीया संजोय।
भया चहु दिस [2]चंदणा, भरम अंधारा[3] षोय ॥ ४ ॥

---

(१०) १. (ग) हरीया गुर। २. (ग) सो सिष। ३. (ग) सबद।
(११) १. (ग) सिषकुं। २. (ग) हरिरांमा गुर।
* (ग) यह साषी नहीं है।

---

(१) १. (घ) ही।
(२) १. (ख, ग) गुर वंदन नही। २. (घ) नदीयै। ३. (ख, ग) सिष। ४. (ग) हरिरांमा।
(३) १. (घ) करि। २. (ग) गुर दीपग ज्युं। ३. (ग) अंधारौ।
(४) १. (ख, ग) अैसैं। २. (ख) यासुं तिवर अग्यांन का, (ग) हरिरांमा उर वीच धरि। ३. (ख) हरीया सबही।

सतगुर जौ क्रोधी भया, तौ नरसंघी[1] रूप।
जनहरीया[2] पहलाद कुं, यु[3] राष्या अध कूंप ॥ ५ ॥
सतगुर जौ लोभी भया, तौ[1] बावन[2] सा [3]जोय।
जनहरीया[4] बलि राज कुं, मारि[5] निवाज्या[6] सोय ॥ ६ ॥
सतगुर जौ कांमी भया, तौ जोय क्रिसन समांन।
जनहरीया[1] निरअंजनी, अंजन कबू न जांन ॥ ७ ॥
सतगुर का गुण सबद है, उसमैं[1] औगुण नांहि।
जनहरीया[2] औगुण गिणै, तौ औगण सिष मांहि ॥ ८ ॥
सतगुर का गुण लीजीयै, औगण दीठ म[1] दीठ।
हरीया सतगुर[2] तास द्यै, तौई करि देषौ[3] तीठ ॥ ९ ॥
सतगुर का गुण अनंत है, पारस की परि जांणि।
लोहाती कंचन करै, तन मन[1] अरपै आंणि ॥ १० ॥
लोहाती कंचन करै, पारस का गुण एह।
जनहरीया[1] सतगुर इसा, आप जिसा करि लेह ॥ ११ ॥

---

(५) १. (ग) नरसिंघ जेहै, (घ) नर सिंघी। २. (ग) हरीया ज्युं। ३. (ख, ग, घ) राषि लीया। (घ) अंधकूंप।
(६) १. (ग) जैसैं। २. (घ) तुलि। ३. (ख) होय। ४. (ग) हरीया ज्युं। ५. (ख) मांगि। ६. (ख, ग) निवाजै।
(७) १. (ग) हरिरांमा।
(८) १. (ख) इनमैं, (ग) जामै, (घ) या मैं। २. (ग) हरिरांमा।
(९) १. (ख, घ) करौ अदीठ। २. (ग) हरिरांमा। (ख, घ) जनहरीया। ३. (ग) जांणौ।
(१०) १. (ख, घ) जो तन, (ग) आपौ।
(११) १. (ग) हरिरांमा।

अथ गुर धरम कौ अंग ४

सतगुर सेती[1] विमुष[2] नर, सो सिष नंदक जांणि।
जनहरीया[3] सिष[4] तास गुर, ता कुं बंध्यां हांणि॥ १॥

आपा गुर ध्रम छाडि[1] कै, औरां कुं[2] उपदेस।
हरीया सो गुर जांणीयै, जाके रिदै[3] कलेस॥ २॥

सो सिष सुध्रम जांणियै, गुर ध्रम सुं आधीन।
हरीया गुर ध्रम बाहिरौ, सो सिष[1] तेरैतीन॥ ३॥

गुर ध्रम षोया गांठि सुं, तन सुं रषै सांठि।
हरीया अैसै पतित[1] की, मिटै न मन की बांठि॥ ४॥

रांम भजै तज्य गुर धरम, चलै न गुर की गैल।
जनहरीया[1] तन धोईया, मिट्या न मन का मैल॥ ५॥

तन धोया तौ क्या भया, मैल रह्या मन मांहि।
हरीया धागा, नील का, धोया निकसै[1] नांहि॥ ६॥

सतगुर भये समांन त्रिष, सिष फल लगा जांणि।
निमंष एक छाड़ै नही, तौ परपक[1] आसांणि॥ ७॥

---

(१) १. (ग) सुं सिष। २. (ख, ग) है। ३. (ग) हरीया सो, (ख) सो।

(२) १. (ख) करि। २. (ग) द्यै। ३. (घ) जनहरीया जाकै रिदै मैं तैं काम क्लेस।

(३) १. (ख) ई।

(४) १. (घ) जनहरीया उन पतति की।

(५) १. (ग) हरीया क्या।

(६) १. (ख) उजल।

(७) १. (ख) तौ पर फल पक, (घ) हरीया परि पकानि।

सतगुर बिन सिष नां सुखी, कोटेक[1] करै[2] उपाव।
हरीया ज्यु[3] फल तर बिनां, काचै[4] वाव दुवाव ॥ ८ ॥
फल तर तैं तूटां पछै, वधै न विलगै [1]जाय।
गुर वेमुष नही[2] नीपजै, भावै गोविंद गाय ॥ ९ ॥
गुर भ्रम तौ सिषका कीया, गुरका कीया न [1]मांनि।
जनहरीया[2] गुर धरम कुं, इसे आरषे[3] [4]जांनि ॥ १० ॥

अथ सिवरन कौ अंग ५

सब सुषदाई रांम है, परा भरोसा मुझि।
हरीया[1] निस दिन सिवरता, तार न तोड़ू तुझि ॥ १ ॥
जनहरीया है मुगति कुं, नीसरणी निज नांम।
चढ़ि चापरि सुं सीवरीयै[1], जौ चाहै विसरांम ॥ २ ॥
एक रांम कुं सिवरतां, होय सकल पर [1]ध्यांन।
हरिया[2] सुष पुरसाद [3]ज्युं, पोष्या इंद्री प्रांन ॥ ३ ॥

---

(८) १. (ख, घ) कोटिक। २. (घ) करौ। ३. (घ) जनहरीया।
४. (ख, ग) काछै।

(९) १. (ख, ग) हरीया सिप सतगुर विनां, ग्यांन न उपजै काय।
२. (ग) गुर भ्रम विनां न०।

(१०) १. (ख, ग) होय। २. (ग) हरिरांमा। ३. (ख, ग) आरिखे।
४. (ख, ग) जोय।

---

(१) १. (ग) हरिरांमा मै, (घ) जनहरीया मैं।

(२) १. (ग) वैगलै (छुटकरमें)।

(३) १. (ख) होय सबै सुष ध्यांन, (ग) भया सकल ही ध्यांन, (घ) होय सकल आसान। २. (ग) सुष पाया परसाद ज्यु। ३. (घ) सुं।

मैं मन कुं नही जांणीया, मन का बौहत विराम।
हरीया[1] इनकुं उलटि कै, सदा[2] सिवरीयै रांम ॥ ४ ॥

हरीया लीजै नांव कुं, बोल फटकै मांहि।
या[1] जुग मांही दूसरा, हरि सा सौदा नांहि ॥ ५ ॥

हरीया[1] जौ [2]सतगुर मिलै, जो चाहै सो [3]देत।
सिवरण सौदा सहज का, विण[4] समझ्या नही लेत ॥ ६ ॥

जनहरीया[1] हरि नांव की, वणी वणाई साट।
बूठै ऊपरि कंबली, लेतां कितीयेक[2] नाट ॥ ७ ॥

बूठै ऊपरि कंबली, अंधै रही अदीठ।
हरीया[1] हरि[2] हिरदै वसै, पापी कै मुंह पीठ ॥ ८ ॥*

कांही[1] सिवरन सास का, कांही[2] साधन ध्यांन।
रांम नांम सबतैं[3] परै, हरीया[4] केवल ग्यांन ॥ ९ ॥

---

(४) १. (ख, घ) जनहरीया मन, (ग) हरिरांमा मन। २. (ख) रांम सिवरीयै नांम, (ग, घ) एक सिवरीया रांम।

(५) १. (ख,घ) है, (ग) इस जगह निम्न साखी है—हरिरांमा हरिनांवकुं लीया अबोलै बोल। तन मन साटै देतहुं अणतोल्या अणमोल।

(६) १. (घ) जनहरीया। २. (ख) सतगुर जौ, (ग) पूरागुर मिल्या। ३. (ख) तौ सब कुछकुं देत, (ग) सो अणतोल्या देत। ४. (ग) समझै सोई लेत।

(७) १. (ग) हरिरांमा। २. (ग) एक, (घ) इक।

(८) १. (ग) साचा सिवरण रांम है झूठा दूजी दीठ। २. (ख) भेदन भजन कौ हरि हिरदै नही दीठ।

* इसके पश्चात् (ग) प्रतिमें निम्न साषी प्राप्त है—

रांम नांम सो साच है दूजा सब जंजार।
हरिरांमा जन साच गहि झूठ झखौ संसार ॥

(९) १. (ग) कातौ। २. (ग) कातौ। ३. (घ) कै। ४. (ग) उपजै।

सासा सोहूं[1] सबद है, लष चौरासी मांहि।
रांम नांम नर देह विन, हरीया सिवरण [2]नांहि ॥ १० ॥

ओं[1] सोहूं सास[2] लग, हरीया[3] आवै जाय।
एक[4] अषंडी सबद[5] मैं, रही सुरति [6]ठहराय ॥ ११ ॥

जिन्हां सिवऱ्या रांम कुं, तिन्हां पाया ब्रह्म।
जिन्हां रांम न सिवरियां, तिन्हां औंर भरम ॥ १२ ॥

हीमत मत छाडौ नरां, मुष तैं[1] कहता रांम।
हरीया हींमत सुं कीया, धू का अटल धांम ॥ १३ ॥*

जनहरीया मैं[1] रांम का, चाकर कुरसी बंध।
अब तोड़ी तूटै नही, सतगुर देग्या[2] संध ॥ १४ ॥

रांम नांम सुणि सीष कै, गुर वेमुष[1] [2]सिवरेह।
हरीया[3] अैसै पेम कौ, जिसौ ओस कौ तेह ॥ १५ ॥

सतगुर विन सुधि नां लहै, सुष सागर की [1]सीर।
जनहरीया[2] मन कौ मतौ, विनां पाळि ज्युं नीर ॥ १६ ॥

---

(१०) १. (घ) सास उसासा। २. (ख, ग) सासा सोहूं जाप है यूं तो अजपा नांहि। हरीया अजपा जाप है सोई सहजां मांहि।

(११) १. (ख) ओंऊँ सोहूं। २. (घ) देह। ३. (ग) सिवरण, (घ) निसदिन। ४. (ग) रांम। ५. (ख, ग) नांव है। ६. (ख) तामै सुरति समाय, (ग, घ) हरीया सुरति समाय।

(१३) १. (ग) रसना सिवरत, (ख) मुष सुं। * (ख, ग) प्रतियोंमें इस साषीके बाद सामान्य पाठभेदसे निम्न साषी है—

हीमत सुं हरि पाईयै बे हीमत सुं दूरि।
जनहरीया हीमत कीयां होते राम हजूर॥

(१४) १. (ग) हरिरांमा है, (ख) है। २. (घ) देग्यां।

(१५) १. (घ) विन गुरगम। २. (ख, ग) ता लेह। ३. (ख) हरीया वाकै, (ग) हरिरांमा वै, (घ) जनहरीया इन।

(१६) १. (ग) तीर। २. (घ) हरीया ईन, (ग) हरीया वाकौ।

वेद पुरांनां पारसी, क्या पढणै सुं कांम।
दूजा[1] तजीये भरम [2]कुं, भजीये[3] एको रांम॥ १७॥

जप तप तीरथ बौह[1] [2]कीया, वन वन डोल्या तंन।
जनहरीया[3] मन थिर भया, जब सिवऱ्या सिरजंन॥ १८॥

जनहरीया[1] हरि भजन का, करि करि आया सुष।
विन सिवऱ्यां सेती सहै, दुनीयां केता दुष॥ १९॥

रांम नांम कुं सिवरतां, और भरम ग्या[1] छूटि।
उर अंतर[2] जागी कला, तार कबु नही तूटि॥ २०॥

रांम नांम कुं सिवरतां, पाया मन [1]विसरांम।
जनहरीया[2] तै[3] नांव का, मैं हूं सदा गुलांम॥ २१॥

एकर [1]आठुं पौहर मैं, मुषा न बोलै[2] रांम।
जनहरीया[3] सो जगन मैं, बौह[4] करमन ठांम॥ २२॥

ऊठत ही बैठत[1] कहै, जागत ही कहै सोय।
जनहरीया[2] जब[3] रामजी, जा घट परगट [4]होय॥ २३॥

---

(१७) १. (ग) हरीया। २. (घ) हरीया दूजा भरम तजि। ३. (घ) भजि एको निज नांम।

(१८) १. (ग) ब्रौहौ। २. (घ) कऱ्या। ३. (ग) हरिरांमा।

(१९) १. (ग) हरिरांमा।

(२०) १. (ख, ग, घ) गे। २. (ख) भीतरि, (ग) आतिम, (घ) आत्म।

(२१) १. (ग) सहज सऱ्या सब कांम। २. (ग) हरिरांमा। ३. (ग) जिन, (घ) निज।

(२२) १. (ख, ग) आठ पौहर में एक सुं, (घ) एकर ही आठु पौहर। २. (ख) उच्चरै। ३. (ग) हरिरांमा। ४. (ख, ग) बौहौ।

(२३) १. (ग) बैसत। २. (ग) हरिरांमा तै संत कै रांम रिदै मौ जोय॥ ३. (ख) तै संत कै राम मधारा जोय॥ ४. (घ) हरीया जा घट रामजी कबहुंक परगट होय॥

सो [1]सबद सतगुर कह्या, सोई साची बाच।
जनहरीया[2] लीजै [3]नही, कंचन बदलै काच ॥ २४ ॥

पुसी पुसी भरि पीसतां, कै मुन आटा होय।
टोपै टोपै सर भरै, हरीया कुदरित [1]जोय ॥ २५ ॥

जनहरीया[1] निज पंथ कुं, निसदिन ध्यावै[2] कोय।
ज्युं ज्युं चालै पंथीया, त्युं त्युं नेड़ा [3]होय ॥ २६ ॥

पग पग चालै [1]पंथीया, ज्युं[2] रसनां सुं रांम।
हरीया [3]जब तैं[4] [5]पाईयै, परापरी कौ धांम ॥ २७ ॥

रांम कहत रांडी भली, नीकौ [1]जिनकौ भाग।
रांम[2] विमुष सो जांणीयै, हरीया सूंन[3] सुहाग ॥ २८ ॥

सिवरन मेरे रांम का, सब ही तैं सिरताज।
जिन[1] अछर तैं[2] बंधई, हरीया जल सिर पाज ॥ २९ ॥

सो अछर परबत [1]लिष्यो, सोई[2] हमारे अंक।
अब डूबणती नां डरूं, हरीया होय निसंक ॥ ३० ॥

---

(२४) १. (ग) सो सिवरन, (घ) जनहरीया सत सबद कुं सतगुर कहीया साच। २. (ग) हरिरांमा। ३. (घ) अब लीजै नहीं दूसरा।

(२५) १. (ख) यु हरि सिवरन होय।

(२६) १. (ग) हरिरांमा। २. (घ) ध्यावंतांह। ३. (ख) पग पग चालै पंथीया गांव पुंह्चता होय, (ग) पग पग पंथी चाल्तां गांय पहूंता जोय, (घ) पग पग चालै पंथीयौ सोई पौहचै तांह।

(२७) १. (ख, ग) पंथ कुं, (घ) पंथीयौ। २. (घ) युं। ३. (ग) हरि-रांमा जन। ४. (ख) ही। ५. (घ) जनहरीया जब पाइयै।

(२८) १. (घ) जिसकौ। २. (घ) हरिवेमुष। ३. (ख, ग) सूनौ सरव सुहाग, (घ) हरीया सून्य सुहाग।

(२९) १. (ख) एक, (ग) या। २. (गं) ती।

(३०) १. (ख) लिष्यौ। २. (ख) लिष्यौ, (ग) लिष्या।

रांम नांम कुं सिवरतां, भया[1] परम आनंद।
जनहरीया[2] सुष संपज्या, और मिथ्या दुप दंद ॥ ३१ ॥

धिन जीतव जिन्हां कह्या, रसनां सेती रांम।
रह्या विमुष से रांम सुं, सो जीतव कुंन [1]कांम ॥ ३२ ॥

रसनां रग रग वीच में, सहजां सिवरन होय।
जनहरीया[1] जव जीव का, संसा रह्या न कोय ॥ ३३ ॥

राम सिवरीयां बाहिरौ, पाली[1] नर [2]षुंसयाल।
हरीया [3]जव तैं [4]जांणीयै, वेमारग वेहाल ॥ ३४ ॥

ज्युं प्रथरोमा नीर [1]तैं, रहै नही पल दूर।
जनहरीया[2] हरि नांव कुं, निसा न विसरौ[3] सूर ॥ ३५ ॥

---

(३१) १. (ख) उपज्या डर, (ग) उपज्या मन, (घ) एक भया।
२. (ग) हरिरांमा।

(३२) १. (घ) जनहरीया वेकाम।

(३३) १. (घ) हरीया तन मन वचन का।
(ख) रोम रोम रग रग विचैं, सहजां सिवरन होय।
जनहरीया इन भेद कुं, बूझै विरला कोय ॥
(ग) रसनां सिवरन सहज का, रोम रोम धुन होय।
हरिरांमा इन भेद कुं, बूझै विरला कोय ॥

(३४) १. (ग) षलक फिरै, (घ) ष्याली। २. (ख) षुसीयाल। ३. (ख) जनहरीया सो, (घ) हरीया जव तव। ४. (ग) हरीया हरि सिवरन विनां।

(३५) १. (ख, ग, घ) सुं। २. (ग) हरिरांमा। ३. (ख, घ) विसरै, (ग) विसरूं।

अथ अकलि कौ अंग ६

जनहरीया[1] सुधि बुधि नही, जाका रिदा कठोर।
अकलि विहूंणौ आदमी, सीग पूछ विन ढोर ॥ १ ॥

सोरठौ

दई न दीन्ही वांटि, आदमगीरी अकलि [1]कुं।
लाहाछेवा[2] गांठि, हरीया अैसें[3] आप सिर ॥ २ ॥*

चौपई

अकलि सोई अकल[1] अराधै, मन पवनां इन्द्री कुं साधै।
सकलप विकलप तजै सरीरा, जनहरीया[1] अकलि का पीरा ॥ ३ ॥

अथ उपदेस कौ अंग ७

तन मन का अरपन करै, वाचा सूर नरेस।
जनहरीया[1] हरि[2] नांव का, अैसा ई[3] उपदेस ॥ १ ॥
ज्युं तरणापौ तरिन[1] कौ, आपा[2] प्रगटै [3]आंनि।
हरीया[4] अैसे[5] ब्रह्म [6]कुं, सही रिदै करि जांनि ॥ २ ॥

---

(१) १. (ख) जा घट मैं, (ग) जा के घट।
(२) १. (ख, ग) विण। २. (घ) छेहा। ३. (ख, ग) भुगतौ।
* (ग) यह सोरठा अधिक है—
विधना लिषीया लेष, सो भुगतैं सिर आपणैं।
हरीया विनां अलेष, भाग विनां भरम्या फिरै ॥
(३) १. (घ) अकलि। २. (ख) सो कहियै, (ग) हरीया सो, (घ) हरीया सोई।

---

(१) १. (ग) हरिरांमा। २. (ख) हरीया हरिकै। ३. (ख, ग, घ) है।
(२) १. (ख) तरिण, (ग) तरणि। २. (ख) अंतर, (ग) तन मन। ३. (घ) कारन कारनवंत कै उर आपस मैं आंनि। ४. (घ) जनहरीया यु ब्रह्म है। ५. (ग) घट मैं राम है। ६. (ख) है।

तेरु जल तिर नीसरै, का बेरै[1] सिर बैठ।
जनहरीया[2] जुग क्युं[3] तिरै, विनां ग्यांन गुर पैठ ॥ ३ ॥

रांम नांम कुं छाडि कै, हरीया धरौ न और।
जे कोई धारै दूसरा, हरि दरगै नही [1]ठौर ॥ ४ ॥

अविनासी[1] कुं याद करि, परिहरि दूजी [2]आस।
हरीया गुर[3] समझाय कै, कहीया नांव [4]निरास ॥ ५ ॥

पतड़ा[1] पुसतग पोथीयां[2], जग पिंडत का काम।
हरीया हिरदै[3] संत कै, वस्या रांम का [4]नांम ॥ ६ ॥

हरीया[1] भोजन जीमीयै, अैसा[2] आवै स्वाद।
इन तन का[3] सारा नही, मनसा इसी मुराद ॥ ७ ॥

---

(३) १. (ग) कै बैरैमि। २. (ग) हरिरांमा। ३. (ग) क्यौं।
* (ख, ग) में यह अधिक है—

तेरू है तौ जल तिरै, का तौ बैठि जि (जे) हाज।
हरीया लोपिन चलई (चलि सघै), लोक लाज कुल पाज ॥ १ ॥
लोक लाज कुल पाज कुं, लोप चलै कोई (जन) सूर।
जनहरीया (हरिरांमा) सत (गुर) सबद ले,
पारि भया (करै) भव (जल) पूर ॥ २ ॥
रांम नांम अंतर धरौ (रै), और न किन सुं चित।
जनहरीया (हरिरांमा) जा सुं मिलै,
पर उपगारी (हे हितकारी) नित ॥ ३ ॥

(४) १. यह साषी (ख, ग) में नहीं है।

(५) १. (ख, ग) अभिनासी, (घ) अबनासी। २. (ख, ग) दौर। ३. (ग) सब। ४. (ख) एक वताई ठौर, (ग) कहूं एक निज ठौर।

(६) १. (घ) पोथी। २. (घ) टीपणौ। ३. (ख) जनहरीया है, (ग) हरिरांमा मन। ४. (ख) रांम रिदै विसराम, (ग, घ) रांम नांम विसरांम।

(७) १. (ख, घ) जैसा, (ग) अैसा,। २. (घ) अैसे। ३. (ख) तन का कुछि, (ग, घ) या तन का।

जाकै मन जैसी वसै, तैसी[1] तन वरताय।
जनहरीया[2] जो आदि है, अंत षड़ी है[3] आय॥ ८॥

रांम नांम विन मुगति की, जुगति न अैसी और।
जनहरीया निसदिन[1] भजौ, तजौ दूसरी दौर॥ ९॥

जनहरीया[1] समझाय कै, गरू[2] वताया [3]भेव।
रांम नांम तुल्य [4]दूसरा, देव न कोई [5]सेव॥ १०॥

रांम नांम जपता रहै, तजै न आसा [1]आंन।
जनहरीया उंन जीव की[2], मिटै न षांचौ [3]तांन॥ ११॥

रांम नांम ज्युं ज्युं भजै, त्युं त्युं तजै सकांम।
जनहरीया[1] सुन[2] सेझ मैं, मनवौ[3] करै मुकांम॥ १२॥

[1]जूंजर वेरै वैसतां, जल मैं जोषा होय।
हरीया हरि सिवरन विनां, पारि न[2] पुंहता[3] कोय॥ १३॥

जांणीतल कुं जाय[1] कै, मारग बूझ्या नांहि।
हरीया अैसै वहि गया[2], अंधा ऊझर मांहि॥ १४॥*

---

(८) १. (ग) अैसी। २. (ग) हरिरांमा। ३. (ग) फलैगी।
(९) १. (ख) इन कुं, (ग) हरिरांमा इन कुं।
(१०) १. (ख, ग) हरीया गुर। २. (ख, ग) अरथ। ३. (ख, ग) एक। ४. (ख, ग) तुल्य को नही। ५. (ख, ग) क्या गुण पढौ अनेक।
(११) १. (ख, ग) आंन विकार। २. (ग) हरीया ज्युं विभचार की, ३. (ख, ग) पीव न सुणै पुकार।
(१२) १. (ग) हरिरांमा। २. (ख) सुष। ३. (ख) निज मन, (ग) मन पावै विसरांम।
(१३) १. (ख) ज्युं। २. (घ) भव जल तिरै न कोय। ३. (ग) पुहचै।
(१४) १. (घ) जानिकै। २. (घ) जनहरीया विन बूझीयां, आंधा ऊजर जांहि।

* (ख, ग) में नहीं है, इस स्थानपर यह है—

रांम नांम कुं सिवरीयै, आपौ तन मन सोधि।
हरीया मारग मुगति का, या गुर की[1] परमोधि ॥ १५ ॥*

रांम नांम निज मूल[1] है, और[2] सकल विसतार।
जनहरीया फल मुगति[3] कु, लीजै सार[4] संभार[5] ॥ १६ ॥

जनहरीया[1] निसदिन भजौ, रसनां[2] सेती रांम।
नांव[3] विनां नर निफल है, ज्युं वसती[4] विन[5] गांम ॥ १७ ॥

हरीया[1] जब लग जीवीयै, तब लग भजीयै[2] रांम।
पीछै[3] पड़सी अंतरौ, देह[4] न आवै कांम ॥ १८ ॥*

(ख) जुग जांणेऊ पूछिकै, मारग लीया नांहि।
हरीया गुर विन गया, भ्रम कै गैलै मांहि ॥
पहली सतगुर बूझिकै, पीछै आपौ देष।
हरीया मारग मुगति का, वामै मीन न मेष ॥

(ग) सतगुर बूझ्यां वाहिरौ, है निज मारग दूर।
हरिरांमा जुग वहि गया, रांम न लह्या हजूर ॥
पहली सतगुर बूझिकै, देषा छुछम ग्रंथ।
हरिरांमा तज्य भरम कुं ले पहुच्या निज पंथ ॥

(१५) १. (घ) याही गुर।
* (ख, ग) में यह साषी नहीं है।

(१६) १. (ख, ग) गहौ एक निज मूल कुं। २. (ख, ग) छांडि। ३. (ख) है। ४. (ख) विसार। ५. (ग) हरिरांमा फल भगति है, जे कोइ लहै विचार।

(१७) १. (ग) हरिरांमा। २. (ग) उंनमुन, (ख) उंनमुन एको। ३. (ग) रांम। ४. (ग) ठाकुर। ५. (घ) नांव विनां जी तब किसौ, आय जाय वेकाम।

(१८) १. (ग) या मिनषा तन पायकै, हरीया भजीयै रांम। २. (घ) नांव उचार। ३. (ख, ग) पड्यै पसु की पानही, मिनष देह कुण कांम ॥ (घ) तन सुं। ४. (घ) पीछै कौन विचार!
* इस साषीके बाद (ग) में निम्न साषी अधिक है—
निगम कहत हैं नांव कुं, हरीया सब कहैं संत।
सिव ब्रह्मा विसनर कह्या, रांम नांम निज मंत ॥

जनहरीया[1] पहली करौ, गुर गोविन्द सुं प्रीत।
ता पीछै तन[2] मन [3]तजौ, लोका[4] मारग रीत ॥ १९ ॥*

रांम नांम निसदिन भजौ, तजौ विडांणी तात।
जनहरीया[1] नर देह [2]कौ, औसर बीतौ जात ॥ २० ॥

रांम भजौ रे प्रांणीया, मन परतीत लगाय।
जनहरीया[1] परतीत विन, जनम इक्यारथ जाय ॥ २१ ॥

इन औसर भज रांम कुं, करि करि मन मैं[1] ध्यांत।
हरीया[2] ऐसै[3] पास विन, चडै[4] न चोळी भांत ॥ २२ ॥

वंदा करीयै वंदगी, आतम[1] तैं[2] आधीन।
जनहरीया धम धम घटै, यौं तन होसी [3]छीन ॥ २३ ॥

सहजां सांई सिवरीयै, आलस[1] ऊंघ न आंनि।
जनहरीया[2] तन पेषणौ, ज्यु जल पंडर जांनि ॥ २४ ॥

---

(१९) १. (ग) हरीया पहली कीजीयै, रांम नांम सुं प्रीत। २. (घ) मन सुं। ३. (ग) सुं। ४. (ख) कुल मारग की, (ग) तजीयै दूजी, (घ) लोक लाज कुल रीत।

* यहाँसे आगे (ख, ग) में निम्न साषी अधिक है—

(ख) हरीया जब तैं पूछीया, जांणीतल कुं जाय।
मारग एको मुगति का, सब कुं दीया वताय ॥

(ग) सतगुर बूझ्या वाहिरौ, सुधि बुधि उपजै नांहि।
हरीया ऐसै (ज्यु जुग) पंथीया, कहि किस गैलै जांहि ॥

(२०) १. (ग) हरिरांमा। २. (ख, घ) सौ।

(२१) १. (ग) हरीया मन।

(२२) १. (ग) की। २. (ग) हरिरांमा ज्युं कपडै लगै न दूजी भांत। ३. (घ) प्रेम पियास। ४. (ख) लगै।

(२३) १. (ख) नांव रहौ। २. (घ) सु। ३. (ग) वंदा करि हरि विंदगी आल्स ऊंघ निवारि। हरिरांमा धम धम घटै ढीलौ कांयि गिवार।

(२४) १. (ग) मन आतुरता आंनि। २. (ग) हरिरांमा।

हरीया[1] रांम संभारीयै, दूजी चिंत निवारि।
दूजी चितवन[2] जौ करैं, तौ तन[3] जावैं[4] हारि॥ २५॥

अथ विरह कौ अंग ८

दिन की जाग्रत हुय रही, निसा नही भरि सोय।
रांम विसरै विरहनी, आंसु कर सुं धोय॥ १॥

विरह पीर तन[1] [2]भीतरै, पलक न विसरी जाय।
जनहरीया[3] हरी कारणै, नैणां नीझर लाय॥ २॥

नैणां नीझर [1]लावीया, छह रुत[2] बारै मास।
हरीया विरहन रांम [3]कुं, एक[4] न विसरै सास॥ ३॥

विरहा जे तुं आवीयौ, मो विरहन की चाड।
हरीया हरि विन देषीयां, हीयै षटूकै हाड॥ ४॥

का तौ पाळौ प्रीतडी, नही तौ जाळौ[1] जिंद।
जनहरीया तौ [2]बाहिरौ, जीवां[3] किम[4] गोविंद॥ ५॥

विरह की मारी विरहनी, ए मन बैठी धारि।
का तौ तन सीतल करौ, का तौ द्यौ[1] तन जारि॥ ६॥

---

(२५) १. (ग) हरिरांमा हरि सिवरीयै। २. (घ) चिंता। ३. (ग) जुग। ४. (ख) मन की, (घ) जासी।

---

(२) १. (ख, घ) अंतर, (ग) जाकै। २. (ख, ग) लगी, (घ) वसै। ३. (ग) हरिरांमा।

(३) १. (ख, घ) लाईया। २. (ख, घ) रुति, (ग) रित। ३. (ग) हरिरांमा यु विरहनी। ४. (ग) रांम।

(५) १. (घ) जाळु। २. (ग) हरिरांमा दोय दुषड़ां। ३. (ख) जीवुं, (ग) जीयु, (घ) जीवां। ४. (ख) क्युं, (ग, घ) किम।

(६) १. (घ) द्यु।

आंउं आंउं करि रहे, आज कालि मैं पीव।
जनहरीया[1] निस विरहनी, परी[2] जंजाळां जीव ॥ ७ ॥

काळांती पंडर भया, तो विन मेरा[1] [2]रांम।
वेह विरहन की वहिं गई, पछे मिलौ किन[3] कांम ॥ ८ ॥

विरहन सेती सजनां, कबह मिलौगे आय।
जनहरीया तो [1]वाहिरौ, जो दिन अहळा जाय ॥ ९ ॥

सूती ही सपनै मिलुं, जागंती जक नांहिं।
जनहरीया विरहन [1]कहै, इसौ[2] अनेसौ[3] मांहि ॥ १० ॥*

पीव विनां जीउं[1] नही, जीव विन सारूं जिंद।
जनहरीया[2] ज्युं मीन जल, विरहन कै [3]जोगिंद ॥ ११ ॥

जल जूवा मछी मूवां, जल कै[1] प्रीत न काय।
जनहरीया[2] पीव[3] विछड़ीयां, विरहन काळी थाय ॥ १२ ॥

काळी तौ कोयल भई, काळा जिसका रंग।
हरीया हरि विन [1]विरहनी, वदन विलषै अंग ॥ १३ ॥

---

(७) १. (ग) हरिरांमा। २. (ख) पड़ी।

(८) १. (ख) मेरै। २. (ग) रैंण जंजाळां वहि गई दिनकी तेरै नांम।
३. (ख, ग, घ) किस।

(९) १. (ख) विन दुषी, (ग) हरिरांमा सोई दुषी, रांम विनां दिन जाय।

(१०) १. (ख) कै। २. (घ) अनसौ। ३. (घ) मुझि।

* (ग) प्रतिमें यह साषी नहीं है, निम्न साषी है—

जागत जोऊं नैण भरि, सूती सपनै यार।
हरीयै सुं सैदेह मिल, वदेहो भरतार ॥

(११) १. (ग) जीयु। २. (ग) हरिरांमा जुं। ३. (ख, घ) गोविंद।

(१२) १. (ख, ग) पीछै। २. (ग) हरिरांमा। ३. (ग, घ) हरि।

(१३) १. (ख) जनहरीया है विरहनी, (ग) हरिरांमा है विरहनी।

पीरी पंजर हुय रही, विरहन हरि कै काज।
जनहरीया[1] चढि चौतरै, निसदिन पढै[2] निवाज ॥ १४ ॥

हरीया[1] चढि ऊँचे रड़ी, गावैं हरि का गीत।
विरहन[2] सुं जीवत मिलौ, मूवां मिरतग प्रीत ॥ १५ ॥

विरह[1] विरोगिण[2] हुय रही, रोग न जांणै कोय।
जनहरीया[3] हरि कारणै, झुरि झुरि[4] पंजर होय ॥ १६ ॥

मूवां पहली मत मरौ, विरहा तुं वैराग।
जनहरीया[1] हरि मिलन कै, रही अनैसे लाग ॥ १७ ॥

व्रिह की मारी [1]विरहनी, देह सुं भई वदेह।
जनहरीया[2] किन सुं करै, सांई विना संनेह ॥ १८ ॥*

आवौ सैंन सुहावना, हसि करि बूझुं बात।
तो विन झूरै विरहनी, जनहरीया[1] दिन [2]रात ॥ १९ ॥*

---

(१४) १. (ग) हरिरांमा। २. (ग) पढुं।
(१५) १. (ग) विरहन। २. (ग) हरीयै।
(१६) १. (घ) विरहन। २. (घ) रौगनि। ३. (ग) हरिरांमा। ४. (ग) पीरा, (घ) पीरी।
(१७) १. (ग) हरिरांमा।
(१८) १. (घ) विरहन मारी विरह की। २. (ग) हरिरांमा।

* (ग) प्रतिमें इस साषीके पहले एक निम्न साषी और है—
पीतब सेती विरहनी, निसदिन करै पुकार।
हरिरांमा कब मिलैंहगे, सब सुष्के साधार ॥ १ ॥

(१९) १. (ग) हरिरांमा। २. (ख) निस प्रात।

* (ग) प्रतिमें इस साषीके बाद निम्न दो साषियाँ अधिक हैं—
सपनै मै सांई मिल्या, आघी बांह पसारि।
हरिरांमा जागी जबै, बैठी दूरि विसारि ॥ १ ॥
विरह पुकारु मैं गई, हरिजन का घर देष।
हरिरांमा इंनतैं मिलै, आतिम रांम अलेष ॥ २ ॥

जिंद निजोरी मैं [1]भई, विरह सजोरा मांहिं।
हरीया हरि विन परसीया, से मूंवां दिन जांहि ॥ २० ॥

विरहन वैसै भी उठै, नैंणां भरि भरि [1]जोय।
जनहरीया दिन बाहड़ै, सांई सनमुष [2]होय ॥ २१ ॥

विरहन वैसै भी उठै, जोवन[1] हरि का पंथ।
कहि जोसी कदि आवसी, देष तम्हारा[2] ग्रंथ ॥ २२ ॥

गहली हुई क वावळी, हरि का पंथ न कोय।
आय मिलै सुष[1] सहज मैं, जनहरीया गुन जोय ॥ २३ ॥

गेहली हुई न वावळी, विरहा मो[1] संताय।
जनहरीया मैं रांम सुं, मिलूंत आवै [2]दाय ॥ २४ ॥

विरहा तुं संताय नां, मना बंधावौ धीर।
हरीया सांई कारणै, मैं दुष सहुं सरीर ॥ २५ ॥

---

(२०) १. (ख) विरहनी।

(२१) १. (ख, ग, घ) रोय। २. (ख, ग, घ) जोय। (ग) प्रतिमें पहले २२ संख्याकी साषी है उसके बाद यह है।

(२२) १. (घ) जोवै। २. (ख, घ) तुहारा।

(२३) १. (ख) मिलैगो सहज।

(२४) १. (घ) मोय। २. (ख) मिलीयांई विन आय। (ग) प्रतिमें २३, २४, २५ वीं साषियाँ यहाँपर नहीं हैं, वे ४८ वीं साषीके बाद निम्न पाठभेदसे आती हैं—

गहली हुईक वावरी, पीवका पारन कोय।
आय मिलैगा सहज मै, विरहन का गुण जोय ॥ ५० ॥

गहली हुई न वावरी, विरहा मो संताय।
मिलूंत जीउं रांम सुं, विन आई मरि जाय ॥ ५१ ॥

विरहा तुं संताय नां, मना वंधावौ धीर।
तन तौ कसी कबांण ज्युं, मन तरमस का तीर ॥ ५२ ॥

विरहन चाली पूछिबा, कहौ वटाउ[1] वात।
जनहरीया सांई [2]मिलै, तै[3] दिस जांउं जात॥ २६॥

जनहरीया[1] विरहन कहै, मेरै और न लेस।
जिन[2] वेसे सांई मिलै, सोई वेस [3]करेस॥ २७॥

विरहन पीया बाहिरौ, मन पवनां ज्युं [1]डोलि
जनहरीया मैं तुझ विन, आपौ किन सुं [2]षोलि॥ २८॥

विरहन काचै कुंभ[1] ज्युं, अंग गळे गळि जांहि।
जनहरीया[2] हरि आय [3]कै, अंतर षोलौ[4] मांहि॥ २९॥

विरहन जोगिणि[1] हुय [2]रही, इन जोगीया कै काज।
जनहरीया[3] ता[4] संग [5]चलुं, नगर अजोनी राज॥ ३०॥

रोम रोम मैं विरह की, विथा वीयापी एक।
जनहरीया[1] कैसै कटै[2], ओषदहार[3] अनेक॥ ३१॥

एक ओषदी बाहिरौ, विरह विथा नही [1]जाय।
जनहरीया[2] जुग रोगीया, अनंत ओषदी षाय॥ ३२॥

---

(२६) १. (ख) वटावु। २. (ग) मो सांई जै दिस मिलै। ३. (घ) जै।
(२७) १. (ग) हरिरांमा। २. (ख) जांह, (ग) जहां, (घ) जै। ३. (ग) धरेस।
(२८) १. (ख) षरी दुहेली होय, (ग) जीवै किन आधार। हरिरांमा तम सुं कहै, अरज हमारी यार॥ २. (ख) षोय।
(२९) १. (घ) कुंभ। २. (ग) हरिरांमा। ३. (ग) ओग दे, (ख) हरि उर सेती लायकै। ४. (ख) आपौ मेटौ, (ग) जीव जगावौ।
(३०) १. (ख) जोगिण, (घ) जोगन। २. (ग) विरह विजोगणि मै भई। ३. (ग) हरिरांमा। ४. (घ) ताकै। ५. (ख) रहुं।
(३१) १. (ग) हरिरांमा। २. (ख, ग) मिटै। ३. (ख) षाय।
(३२) १. (ग) विथा न वेदन जाय। २. (ग) हरिरांमा।

विरहन[1] तळफै पीव [2]विन , ज्युं जल विन तळफै[3] जीव ।
जनहरीया उ[4] कदि मिलै , मिलीयांई[5] सुष थीव ॥ ३३ ॥

पल जागै पल भी [1]सुवै , पल मन धरै न धीर ।
हरीया वेदन[2] विरह की , निसदिन[3] भई[4] सरीर ॥ ३४ ॥

जा[1] घट वेदन विरह की , लोहू चढ़ै न मास ।
हरीया मिलबौ[2] पीव सुं[3] , वसिबौ धीगां [4]पास ॥ ३५ ॥

जाकै घट[1] विरहा वसै , जा[2] घट प्रगटै रांम ।
जनहरीया[3] घट विरह विन , सोई घट [4]वेकांम ॥ ३६ ॥

जा[1] घट विरह न व्यापही , भये[2] अव्यापक तंन ।
जनहरीया[3] घट विरह विन , जांणि अलूंणौ अंन ॥ ३७ ॥*

हींयै षटूकौ [1]लायगौ , विरहन सेती आय ।
का घरि आवौ सजनां , का मोकूं ले जाय ॥ ३८ ॥

---

(३३) १. (ख) पीव विन । २. (ख) विरहनी, (ग) विरहन कहा उतावळी, क्युं तन तळफै । ३. (ख) है । ४. (ग) हरिरांमा मो । ५. (ख) वा मिलीयां, (ग) परम सनेही पीव ।

(३४) १. (ग) उठै । २. (ख) हरीया निसदिन, (ग) हरिरांमा मो । ३. (ग) वेदन, (घ) हरि विन । ४. (ख) वेदन मांहि ।

(३५) १. (ख) वा । २. (ख) मिलबा । ३. (ग) हरीया पतिव्रत पीव कौ । ४. (ख) विरहन घरी उदास ।

(३६) १. (ख) वाकै घट मैं । २. (ख) वा । ३. (ग) हरिरांमा । ४. (ग) सो घट किनीहन कांम ।

(३७) १. (ख) वा । २. (ग) भए । ३. (ग) हरिरांमा ।

* (ग) प्रतिमें निम्न साषी अधिक है—

और विरह किस कांम का, विनां विचार्‌यां ग्यांन ।
हरिरांमा व्रिह जांणीयै, अंतर हरि कौ ध्यांन ॥ १ ॥

(३८) १. (ख, ग, घ) लायग्यौ ।

विरह[1] षटूकौ रैंण दिन, हरीया[2] सालै मोहिं।
का तुझि मिलीया भाजिसी, का मुझि मिलीयां तोहि ॥ ३९ ॥

मुझि मिलवौ तुझि हाथि है, तुझि मुझि कै नही हाथि।
हरीयैसा तेरैं किता, तेरी[1] मुझै अनाथि ॥ ४० ॥

व्रिरह षटूकौ भाजिसी, हरीया हरि[1] मिलीयांह।
नही त मूवां[2] जीवतां, भव पैलै पड़ीयांह ॥ ४१ ॥

हरीया लोक [1]संदेसड़ौ, दे दे जांहि[2] अनेक।
अनेसौ भाजै [3]नही, हरि विन मिलीयां हेक ॥ ४२ ॥

ज़नहरीया[1] नही भाजिसी, संदेसै[2] डिगमिग।
पीव[3] मिलै परमातमा, अनेसौ नही लिग ॥ ४३ ॥

पपीहरौ पीव पीव करै, ज्युं घन चाहै चित।
जनहरीया[1] यु विरहनी, रांम पुकारै[2] नित ॥ ४४ ॥

रांम हमारै आव घरि, विरहन[1] करै पुकार।
तो बिन सालैं दीहड़ा, जीउं[2] किन आधार ॥ ४५ ॥

जीवत मेलौ[1] सजनां, मूवां न दीजौ[2] दोस।
जनहरीया[3] विरषा विनां, रहै किती लग [4]ओस ॥ ४६ ॥

---

(३९) १. (ग) हींयै। २. (ख) हरि विण, (ग) अंतर।
(४०) १. (ग) तुझिसा।
(४१) १. (ग) पीव सेती। २. (ख) नही तौ मूवांक, (ग) नही तर मुवांक।
(४२) १. (ख) सजन तणौ संनेसड़ौ, (ग) संनेसौ ओळग तणौ। २. (ख, घ) जांय। ३. (घ) अनेसौ नही भाजसी।
(४३) १. (ग) हरिरांमा। २. (ख, ग) संनेसै। ३. (ख, ग) एक।
(४४) १. (ग) हरिरांमा। २. (ग) संभारै, (घ) चितारै।
(४५) १. (ग) हरीयो। २. (ग) जीवु।
(४६) १. (ग) नावौ। २. (ग) दीजै। ३. (ख) हरीया ज्युं। ४. (ग) हरिरांमा हरि बाहिरौ पलक विहावै पोस।

जीवत मेलौ सजनां, द्यौ विरहन कुं आय।
जनहरीया[1] म्रवां पछै, यौ दुष लीयां [2]जाय ॥ ४७ ॥

ऊम्हावौ[1] मिलवा तणौ, लागि रह्यौ मन[2] मांहि।
जनहरीया[3] मैं रांम [4]कुं, मिलूं त छाडुं नांहि ॥ ४८ ॥

विरहा आया विरहनी, कासुं करीयै भेट।
आपा तन मन [1]अरपीयै, हरीया[2] अंतर मेट ॥ ४९ ॥

विरहा जौ[1] आवत नही, तौ जाते जुग संग।
हरीया दिल दूजा [2]धरत, होते हरि सुं भंग ॥ ५० ॥*

विरह भालि सुं मरि गई, हिवड़ै रही षटक।
हरीया रांम संनेह [1]कुं, जीवड़ौ रह्यौ अटक ॥ ५१ ॥

दुय की दाधी लकड़ी, रुति आई फूलाय।
विरहन[1] मारी[2] विरह [3]की, लोही मांस न थाय ॥ ५२ ॥

प्राण छडंतै[1] तन [2]छडै, तन छाडंतै[3] जीव।
जनहरीया[4] मत [5]छाडिजो, परम सनेही पीव ॥ ५३ ॥

---

(४७) १. (ग) हरिरांमा। २. (ग, घ) जुग सपनौ हुय जाय।

(४८) १. (ख, ग, घ) ऊंमाहौ। २. (ग) दिल। ३. (ग) हरिरांमा। ४. (ख, ग, घ) सुं।

(४९) १. (ख, ग) तन मन दीजै बैसणौ, (घ) दीजै तन मन वैसणौ। २. (ख, ग, घ) आपा।

(५०) १. (ख) तुं। २. (ग) हरिरांमा जांमत मरत, (घ) जनहरीया दिल दूसरा। * (ग) प्रति में यह यहाँ अधिक है :—

विरहा तु आयौ भलां मेरै मन की चाड।
हरिरांमा हरि बाहिरौ हींयै षट्कै हाड ॥

(५१) १. (ख, ग, घ) सुं।

(५२) १. (घ) हरीया, (ख, ग) व्रिह कीं। २. (ग) दाघी। ३. (ख, ग) विरहनी।

(५३) १. (ग) चलंतै। २. (ख, ग) जल्या। ३. (ग) दाझातै। ४. (घ) हरीया कुं, (ख) जनहरीया तुं। ५. (ख) छडै, (ग) हरिरांमा कहै मत जलै।

विरह मनाऊ मैं [1]गई, हरीया[2] सरवर पाळि।
क्या तौ विरहा आव घरि, नहीत[3] द्यु तन जाळि ॥ ५४ ॥
तन कुं जाळ्यां पति रहै, व्रिह छाड्यां[1] पति जाय।
जनहरीया[2] तन जाळकरि, लारि वभूत रहाय ॥ ५५ ॥
तन जाळ्या चंचल मूवा, विरहा आया ऊठि।
हरीया[1] सब[2] ही वात की, भलि करी परपूठि ॥ ५६ ॥
सूर चहै चित्रामणी, चहै कमोदिन चंद।
हरीया चाहै विरहनी, पूरन परमानंद ॥ ५७ ॥
अन्धै कुं लोयन दीयां, असैं मन फूलाय।
जनहरीया ज्युं[1] [2]विरहनी, रांम मिल्या सुष थाय ॥ ५८ ॥*

अथ ग्यांन संजोग व्रिह कौ अंग ९

दीपग पावक तेल भरि, विच वाती संजोय।
जनहरीया[1] जब[2] एकठा, पड़ै पतंगा जोय ॥ १ ॥
तन दीपग मन तेल [1]भरि, जीव पतंगा जेम।
पावक रूपी रांम हैं, हरीयै लाया पेम ॥ २ ॥

---

(५४) १. (घ) विरहनी। २. (ख, ग) इन (इण)। ३. (ख, ग, घ) तौ।
(५५) १. (ग) जाळ्यां। २. (ग) हरिरांमा।
(५६) १. (ख, घ) जनहरीया सब वात की। २. (ग) निह्चै।
(५८) १. (घ) यु। २. (ख) जनहरीया विरहन कै, (ग) हरिरांमा विरहन कुं। * (ग) प्रतिमें निम्न साषी विशेष है—
नैन अंधारा मिट गया, तन मन पाया पोष।
हरिरांमा विरहन कै, रांम न विनां संतोष ॥

---

(१) १. (ग) हरिरांमा। २. (ख) सब।
(२) १. (ग) ज्युं।

विरहा आया ग्यांन का, आपौ अंतर[1] मेट।
हरीया जब तैं[2] विरहनी, पीव परमानंद [3]भेट॥ ३ ॥

विरह संजोगा[1] ग्यांन का, सुधि बुधि गुणां गंभीर।
जनहरीया[2] अग्यांन कुं, काढि निकासै तीर॥ ४ ॥

और विरह किस कांम का, विनां विचार्यां ग्यांन।
जनहरीया व्रिह जांणीयै, अंतर उपजै ध्यांन॥ ५ ॥*

विरहा मेरै सिर धणी, छडै त छाडुं नांहि।
जनहरीया[1] व्रिह[2] ले चल्या[3], सुष सागर कै[4] मांहि॥ ६ ॥

हरीया[1] प्यांणौ दुलभ है, ज्युं षांडै की [2]धार।
इन सरवर कै[3] नीर कुं, विरही पीवन हार॥ ७ ॥

जनहरीया वन वन[1] फिरी, सांई कारण[2] [3]तुझि।
विरहा ग्यांन प्रकासीया, पाया[4] इंदर[5] [6]मुझि॥ ८ ॥

हरीया[1] मेरै कौ नही, तमसा[2] आतम[3] रांम।
तुं घट घट मैं एकठा, सारत सब ही[4] कांम॥ ९ ॥

---

(३) १. (ग) अंतर आपौ। २. (ख, घ) जनहरीया जब। ३. (ग) हरिरांमा हरि प्रामसी, पूरा सतगुर भेट।

(४) १. (ख, घ) संजोड़ा। २. (ग) हरिरांमा।
* यह साषी (ग) प्रतिमें यहाँ नहीं है।

(६) १. (ग) हरिरांमा। २. (ख) मुझि। ३. (ग, घ) चले। ४. (ग) सरोवर।

(७) १. (ख, घ) इन कौ। २. (ग) सुषम सरोवर घाट की बाटि विषम है धार। ३. (ख) जनहरीया इन, (ग) हरिरांमा इन, (घ) हरीया सरवर।

(८) १. (ग) हरीया दौरत मै। २. (ख, ग) मिलवां। ३. (ग) मुझि। ४. (घ) अंतर। ५. (घ) पाया। ६. (ख) तनही भीतरि मुझि। (ग) जहां देषु तहां तुझि।

(९) (ख) तमसा, १. (ग) तुझिसा। २. (ख) हरीया। ३. (ग) हरीया अवगति। ४. (ख) सब का सारत कांम, (ग) तुं सारत सब कांम, (घ) सारत है सब कांम।

विरह सतीरा[1] तन वहै, सो तन जाणै[2] पीर।
जनहरीया[3] तन पीर विन, क्या जांणै वेपीर ॥ १० ॥

पीर पराई सो लहै, ता तन[1] पीरा होय।
जनहरीया[2] वेपीर तन, पीर न बूझै[3] कोय ॥ ११ ॥

विरह सतीरा वहि गया, हरीया[1] अंतर मांहि।
लागत ही सुं गिर पख्या, ऊठण[2] की सुधि नांहि ॥ १२ ॥

विरह भालि जाकै लगी, अंग अंग में एक।
जनहरीया[1] तन वीच मैं, करिगी[2] छेक अनेक ॥ १३ ॥

विरह भलका वहि गया, करिग्या देह दुसार।
का लागी सो[1] जांणिसी, का ऊ वांहण[2] हार ॥ १४ ॥

विरह भालि सुं मरि गया, सूरा[1] संत[2] सुजांन।
जनहरीया[3] से जीवतां, पड्या तळफै प्रान ॥ १५ ॥

भली करी तैं आवतै, विरहा मेरै [1]अंग।
एक रमीईयौ[2] रमि रह्यौ, लगै[3] न दूजा[4] रंग ॥ १६ ॥

---

(१०) १. (ग) सपीरा। २. (ख) सोई जाणै, (ग) सो जांणै पर, (घ) सो जानै तन। ३. (ग) हरिरांमा।

(११) १. (ग) जा तन। २. (ग) हरिरांमा। ३. (ख) जांणै।
(१२) १. (ख, ग) आपा। २. (ग) उठिवा।
(१३) १. (ग) हरिरांमा, (ख) हरीया तन मन। २. (घ) करग्या।
(१४) १. (ग) का बीधा उ, (घ) लागी सोई। २. (ख) लांवण।
(१५) १. (ग) केता। २. (ख, ग) चतर। ३. (ग) हरिरांमा, (ख) हरीया सेई।

(१६) १. (ख) संग। २. (ख) एक अंग मैं, (ग) राम अंग में रमि रह्या। ३. (ख, ग) दूजा। ४. (ख, ग) लगै न।

विरहा तुं आयो भलां, हरीया[1] अंतर मांहि ।
रांम दिवांनी करि गयौ, और किसी की नांहि ॥ १७ ॥

विरहन मारी विरह की[1], सुधि बुधि विसरी सार ।
हरीया[2] सिर सुं डारीया[3], हीर चीर सिणगार ॥ १८ ॥

हरीया तन[1] जोबन गयौ[2], बैठी[3] जरजर होय ।
मारी मरू न विरह[4] की, रांम निजर भरि जोय ॥ १९ ॥

पावां सेती पंगळी, कर सुं कांम न होय ।
वांहण वहि ग्यौ विरह [1]कौ, हरीया[2] अंग थकोय ॥ २० ॥

जनहरीया[1] व्रिह परजळ्या, धूंवा निकसै नांहि ।
का झळलाई सो [2]लषै, का जिसकै[3] घट मांहि ॥ २१ ॥

विरहा मोकुं ले [1]चल्या, गंग जमन की[2] तीर ।
जनहरीया जल विच[3] अगनि, अब कहां जांऊँ[4] वीर ॥ २२ ॥

व्रह्म अगनि जल मैं जगै, जांह विरहै[1] का षेल ।
जनहरीया[2] जांह[3] विलंबीया, जाळ न मछी झेल ॥ २३ ॥

---

(१७) १. (ग) मेरै अंदर ।

(१८) १. (ग) व्रिह की मारी विरहनी । २. (ग) हरिरांमा । ३. (ख, ग) डारीयौ ।

(१९) १. (ख, घ) जनहरीया । २. (ग) विरहन मारी विरह की । ३. (ख, ग, घ) तनतैं । ४. (ग) काल ।

(२०) १. (ग) विरहन मारी विरह की । २. (ख, ग) बैठी ।

(२१) १. (ग) हरिरांमा । २. (ग) का लाई सो जांणसी । ३. (ग) जाकै ।

(२२) १. (ख) चलै । २. (ग) कै । ३. (ग) हरिरांमा जल मै । ४. (ग) जांवु ।

(२३) १. (ख) निरमै, (ग) त्रिभै । २. (ग) हरिरांमा । ३. (ख, ग) व्रिह ।

जांह[1] झीवर का जाळ है, विरहा कदे न जाय।
हरीया[2] घट विरहा वसै, जाकुं[3] काळ न षाय॥ २४॥

मुंहरेडी आया [1]भला, विरहा ग्यांन विचार।
जनहरीया[2] अब आवसी, सुष सागर भरतार॥ २५॥

अथ परचै कौ अंग १०

प्रथम ध्यांन पूरब दिसा, गिगन गरजीया जाय।
ठांम ठांम पाताल कुं, पछै[1] पछमि कुं [2]थाय॥ १॥

सुरति[1] चली आकास कुं, दे जालंधर बंध।
जनहरीया जांह[2] [3]जांणीये, हदि वेहद की [4]संध॥ २॥

वीच मेरतैं गिर पख्या, धरनी धरै न पाव।
जनहरीया जब सूर [1]कुं, षरै षेत का दाव॥ ३॥

लगी चोट सत[1]सबद की, षूल्हा ब्रह्म कपाट।
मेवासा सब जीत कै, वस्या नगर वैराट॥ ४॥

वाटि विगट वैराट की, पुंहचैगा कोई सूर।
हरीया कायर थकि रह्या, दरगह रहीया [1]दूर॥ ५॥

---

(२४) १. (ख) जांह। २. (ख) वाकै। ३. (ख) हरीया।
(२५) १. (ग) भली करी तैं आवतै। २. (ग) हरिरांमा।

---

(१) १. (क, ख, ग) उलटि। २. (ख) आय।
(२) १. (ख) सुरित। २. (ख) जब। ३. (ख) सहजमै, (ग) हरिरांमा जब सहजमै। ४. (ख, ग) उरध भये सिर कंध।
(३) १. (ख) हरीया आगै०, (ग) हरिरांमा अब सूरका।
(४) १. (क, ख, ग, घ) मन मरम की।
(५) १. (ख) हरि दरगै सुं दूर, (ग) दे आडी भुय दूर।

दि्ष्ट[1] देष सब्र कोई[2] कहैं, सपनैउ कहै सोय ।
जनहरीया[3] गम[4] अगम[5] कुं, ताहि वतावैं कोय ॥ ६ ॥

सुरति वतावें ब्रह्म कुं, कहै अगम की वात ।
जनहरीया[1] जांह[2] की कहैं, तांह[3] नहीं दिन न[4] रात ॥ ७ ॥

सुरति वसी अमरापुरी, वरति[1] ब्रह्म की आंण ।
त्रिण बांणी हरीया[2] पढैं, तांह[3] नही वेद[4] पुरांण ॥ ८ ॥

तीन पौलि तकीया[1] परै, मंडे वीच[2] मैंदांन ।
जनहरीया[3] घर सुन्य[4] में, सहज घुरैं नीसांन ॥ ९ ॥

जीव सीव की सिंध में, लगे पात[1] उतांन ।
जनहरीया[2] तांह[3] होत है, केती विध का तांन ॥ १० ॥

झालरि[1] ताल मृदंग[2] दफ, घन अनहद की घोर ।
हरीया एक अषंड है, ररंकार की टोर ॥ ११ ॥

सबद एक ररंकार की, महमा कही न जाय ।
जनहरीया विन[1] देषीयां, ताहि न[2] को[3] पतिआय ॥ १२ ॥

---

(६) १. (ग) दिसट । २. (क) सबको, (ग) सबोको । ३. (ग) हरिरांमा । ४ (ख, ग) हरि । ५. (क, ख, ग) है ।

(७) १. (ग) हरिरांमा । २. (ख, ग) वांहां । ३. (ग) जहां । ४. (ख, घ) प्रतिमें 'न' नहीं है ।

(८) १. (घ) वरत । २. (घ) हरीयौ । ३. (क, ख, घ) जहां । ४. (ग) पुसतग वेद पूरांण ।

(९) १. (क, ख, ग, घ) सिरैं । २. (क, ख, ग, घ) वीच मंडे । ३. (ग) हरिरांमा । ४. (ख, ग, घ) सुनि ।

(१०) १. (ख) पात लगे, (ग) उलटि पात । २. (ग) हरिरांमा । ३. (ग, घ) जहां, (क) जांह ।

(११) १. (क) जहां झालरि मरदंग । २. (ग) धुन ।

(१२) १. (ख) हरीया कोयन मांनही, (ग) कहीयां को मांनै नही । २. (घ) औरन । ३. (ख, ग) देष्यांई पति ।

सबद एक ररंकार की, महमा कोटि अनंत।
कहि कहि थाके [1]मुनजनां, हरीया आदि न अंत ॥ १३ ॥

अषंड एक[1] ररंकार की, रोम रोम[2] धुनि होय।
जनहरीया[3] जा तन[4] लगी, ता तन[5] जांणै सोय ॥ १४ ॥

देषत ही दिल[1] परचीया, मिथ्या अपरचा [2]मंन।
जनहरीया[3] विन [4]देषीया, ताहि न परचै [5]तंन ॥ १५ ॥

विन पावां जांह[1] नाचिबौ, विण कर ताल वजाय।
विनां राग रीझायबौ, विनां कंठ सुर गाय ॥ १६ ॥

विनां ग्यांन गुन[1] बूझिबौ, विनां सीष [2]समझाय।
विनां दिष्ट जांह[3] देषबौ, हरीया ध्यांन लगाय ॥ १७ ॥

विनां नीव जांह [1]देहरौ, विन[2] पूजा[3] जांह देव।
विन वाती दीपग जगै, विन मूरत तांह[4] सेव ॥ १८ ॥

विनां पेड़ जांह विरष है, विन फूलां[1] फल लाय।
विनां पंष जांह भवर है, अधर विलंबे आय ॥ १९ ॥

---

(१३) १. (ख) जने।

(१४) १. (क, ख, ग) रोम रोम। २. (क, ख, ग) अषंड एक। ३. (ग) हरिरांमा, (ख) जन हरी। ४. (क, ख) जाकै, (ग) जा घट, (घ) जा विच। ५. (ग) घट।

(१५) १. (ख, ग) दिल देषत ही। २. (ग) मांहि। ३. (ग) हरिरांमा। ४. (क, ख, ग) देषीयां। ५. (ग) तन मन परचै नांहि।

(१६) १. (ग, घ) जहां।

(१७) १. (क) जांह, (ख, ग) गुण। २. (ग) विनां गरथ अरथाय। ३. (ग) प्रतिमें 'जांह' की जगह सर्वत्र, जहां ही है, (क, ख) प्रतिमें सर्वत्र 'जहां' को जांह ही लिखा है।

(१८) १. (ख, ग) देहरा। २. (क, ख, ग, घ) विनां। ३. (क, ख, ग, घ) पूज। ४. (क, ख) जांह, (ग, घ) जहां।

(१९) १. (क, ख, ग, घ) विनां फूल।

विनां नीर जांह कवल है, विन विरषा वरसाळ।
विनां मास जांह [1]रुत है, मात पिता विन बाळ ॥ २० ॥

विनां जाति विन वरन है, विनां भ्रात विन भैंन।
हरीया अैसा ब्रह्म [1]है, सुन्या न देष्या नैंन ॥ २१ ॥

हरीया बाल न [1]व्रिधउं, नां तरणापौं[2] तंन।
निरालंब सुन्य मैं [3]रमै, निराकार निरजंन ॥ २२ ॥

विन तीरथ जांह [1]नाहबौ, विनां वाटि विन घाट।
जांह कोई सहर न सोबती, हरीया विणज न हाट ॥ २३ ॥

वांह कोई भरम न करम है, वांह कोई लिपै न लेस।
जनहरीया[1] जांह[2] की कहै, तांह नही देस न वेस ॥ २४ ॥

जांह[1] कोई जोग न जुगति है, जांह[2] नही धेग न तेग।
हरीया[3] दवा न वेदवा, जांह[4] कोई पौंण[5] न वेग ॥ २५ ॥

वांह कोई[1] राग न दोष है, वांह कोई राज न तेज।
वांह कोई नारि न पुरष है, हरीया लेज न देज ॥ २६ ॥

---

(२०) १. (क, ख, ग, घ) रुति।
(२१) १. (ग) हरिरांमा त्रिब्रह्म कुं।
(२२) १. (ख) है, (ग) नां बालक नही व्रिध है। २. (ग) नही।
३. (ख) ...जांह रहत है।
(२३) १. (क, ख, ग, घ) नाहिबौ।
(२४) १. (ग) हरिरांमा। २. (ग) वांहां।
(२५) १. (ख, ग) वांह, वांहां। २. (ख, ग, घ) वांह वांहां। ३. (ग) वांहां कोई। ४. (ख, ग, घ) वांह वांहां। ५. (ख) पवण, (घ) पैंन।
(२६) १. (घ) नही।

वांह कोई[1] रिध न सिध है, वांह कोई[2] पुन्य[3] न पाप।
हरीया[4] विषै[5] न वासना, वांह ऊथप नहीं [6]थाप ॥ २७ ॥

हदि[1] न वांह[2] वेहद [3]है, वांहां नाद नही [4]बिंदि।
जनहरीया जांह ब्रह्म [5]है, जुरा न व्यापै जिंद ॥ २८ ॥

वांह कोई चंद न सूर है, वांह नही धर[1] आकास।
हरीया एको[2] अधर है, ब्रह्मानंद विलास ॥ २९ ॥

तीन लोक[1] चवदै भवन, उतपत[2] परळै होय।
हरीया आतम[3] अमर है, मरै न जीवै कोय ॥ ३० ॥

वांह कोई ऊंच न नीच है, नांम न कोई [1]ठांम।
हरीया हेको ब्रह्म [2]है, सबहन के[3] विसरांम ॥ ३१ ॥

बंधन तैं[1] त्रिबंध[2] भया, मिल्या सुन्य[3] घरि जाय।
हरीया सुरति'र सबद [4]का, त्रिभै[5] ध्यांन लगाय ॥ ३२ ॥

---

(२७) १. (घ) काई। २. (ख) हरीया। ३. (क, ख, ग) पुन। ४. (ख) वांहां। ५. (ग) वांहां कोई सास। ६. (ख, ग) उथप नां कोई थाप।

(२८) १. (क) वांह नही हदि। २. (ख) ह्वां। ३. (ग, घ) वाहां न हदि (द) वेहदि (द) है। ४. (ख) नाद न कोई विंद (ग) वाहां नहीं नाद न विंद। ५. (ग) हरिरांमा निरतत है।

(२९) १. (ग) धरणि। २. (क) जनहरीया।

(३०) १. (ग) चार चक। २. (क, ख, ग, घ) उतपति। ३. (क) सांई; (ख) जनहरीया हरि, (ग) रांम, (घ) एको।

(३१) १. (क, ख, ग) वहां कोई नांम न ठांम, (घ) वहां नही। २. (क, घ) हरीया आपो आप है, (ख) हरीया अैसा अगम है, (ग) हरीया एक अनंत है। ३. (क) सबही का, (ख, घ) संतन का, (ग) परमधाम।

(३२) १. (क, ख, ग) ती। २. (क, ख, ग, घ) निरवंध। ३ (ख, ग) सुनि। ४. (ख) जनहरीया मन सुरित सुं, (ग) हरिरांमा मन सुरति सुं, (घ) हरीया सुरति निरत का। ५. (क, ख, ग, घ) निरभै।

लगी सुरति सतसबद सुं, कबहूं षंडै नांहि।
जनहरीया मन[1] मिल रह्या, आर पार पद मांहि॥ ३३॥
अरध उरध कै बीच मैं, हरीया झिलमिल [1]जोत।
सुरति सबद[2] परचा भया, मिले ओत अर पोत॥ ३४॥
सुरति समांणी ब्रह्म मैं, ब्रह्म निरंतर [1]वास।
जनहरीया जांह काल [2]का, जोर जरब नही [3]जास॥ ३५॥
जनहरीया दिल [1]भीतरैं, दोसत अपना [2]जांनि।
करूं न दूजा[3] दोसती, या जुग मांही[4] [5]आंनि॥ ३६॥
आतम[1] का सुष जांणीया, भया परम संतोष।
जनहरीया जब[2] जांणीयै, याही जीवत मोष॥ ३७॥
पार ब्रह्म कै देस का, दोय राहां विच राह।
जनहरीया मंन[1] संचरै, भेटै दिल[2] दरगाह॥ ३८॥
पार ब्रह्म कै देसडै, अदल न को फदलाह।
हरीया जांमण मरण का, मेट्या दोय वदलाह॥ ३९॥

---

(३३) १. (ख) जहां, (ग) हरिरांमा मन।
(३४) १. (ग) झिलमिल सहजां जोत। २. (ग) ब्रह्म, (घ) निरत।
(३५) १. (ख, ग) धांम। २. (ख) हरीया सुरित'र सबद का, (ग) हरिरांमा मन सुगति का। ३. (क) तास, (ख) एकमेक विसरांम, (ग) पाया सुष विस०।
(३६) १. (ख) हरीया दिल भीतरि कीया। २. (घ) रांम। ३. (ख) अब और करूं नही। ४. (घ) जाया जाम। ५. (ग) दिल भीतरि दोसत मिल्या, भया परम सुष एह। हरिरांमा फिर ना धरै, जामण मरण सनेह॥
(३७) १. (ग) आतिम, (घ) आतम। २. (क, ख) अैसैं, (ग) हरि-रांमा अैसै।
(३८) १. (क, ख) जांह, (ग) वहां कोई साधु। २. (ग) हरीया हरि।

जनहरीया[1] उंन देसड़ै, बारैं मास वसंत ।
सदा फलैगी [2]विनसती, विलब्या जीव [3]निचंत ॥ ४० ॥

जनहरीया[1] उंन देसड़ै, बारैं मास सुकाळ ।
भूष त्रिषा लागै[2] [3]नही, दुरभष पड़ै न काळ ॥ ४१ ॥

जनहरीया उंन देसड़ै, मास दिवस नही [2]रित ।
है जांह गाज न वीजरी, सरवर भरीया नित ॥ ४२ ॥

जनहरीया[1] उंन देसड़ै, अभिनासी[2] की आंन ।
और किसी का डर नही, हिंदू न [3]मुसलमांन ॥ ४३ ॥

जनहरीया[1] उंन देसड़ै, आतम[2] एक्रो यार ।
देव न दांणु [3]देवता, निरदावै संसार ॥ ४४ ॥

लष चौरासी नगर का, (हरीया)[1] नायक ब्रह्म नरेस ।
है जांह[2] चूक न चाकरी, पटा न[3] पलटै देस ॥ ४५ ॥

---

(४०) १. (ग) प्रतिमें यह साषी कुछ आगे निम्न पाठभेदसे आती है ।
१. (ग) हरिरांमा । २. (घ) वनसती । ३. (ग) अनंत ।

(४१) १. (ग) हरिरांमा । २. (क, ख, ग, घ) नही । ३. (क, ख, ग) व्यापही, (घ) व्यापई ।

(४२) १. (ग) हरिरांमा । २. (क) विन पावस छह रित, (ख, ग) है पावस छह रित । ३. (ख) सहजां गाजर वीजरी, (ग) चहुं दिस गाजर वीजरी ।

(४३) १. (ग) हरिरांमा उंण । २. (घ) अविनासी । ३. (ग) दरगै लगै न दांण ।

(४४) १. (ग) हरिरांमा । २. (ख) दाव न दूजा दोसती, (ग) और न किन सुं दोसती, (घ) दांणुं कोय न देवता ।

(४५) १. (ख) एको । २. (क) जहां कोई, (ख) हरीया, (ग) वहां कोई । ३. (क, ख) पलटि नही ।

हरीया[1] पाटनपुर नगर, राव रंक नही भूप।
अलष[2] अभंगी आप[3] है, नारि न पुरषा रूप ॥ ४६ ॥

हरीया हरिजन हेक[1] है, जीव सीव नही दोय।
ज्युं नीर मिलांना नीर मैं, फिर न्यारा नही होय ॥ ४७ ॥

जनहरीया[1] मन मेर[2] करि, चढ्या त्रिवेणी संग।
गंगा जमना गोमती, नाहत हैं अणभंग ॥ ४८ ॥

उलटा[1] मन[2] असमांण कुं, मिले त्रिवेणी तट।
जनहरीयै[3] जांह मंडीया, सुरति सबद का मट ॥ ४९ ॥

सुरति सबद कै मट की, है अजरायल वाटि।
जनहरीयै[1] जांह घर कीया, लोक वेद सु फाटि ॥ ५० ॥

सुरति सबद मिल[1] एकठा, ता विच रही न कांणि।
जनहरीयै[2] सुन्य[3] [4]सेझ का, सहजां[5] सुष [6]मांणि ॥ ५१ ॥

तट त्रिवेणी नीर की, चलै सीर चहुँ ओर।
जनहरीयै[1] सो[2] चषीया, चष्य न रषी[3] कोर ॥ ५२ ॥

---

(४६) १. (ग) वहां कोई। २. (क, ख, ग) एक। ३. (क, ख, ग) ब्रह्म है।

(४७) १. (क, ख, घ) एक, (ग) एकता।
(४८) १. (ग) हरिरांमा। २. (ख) तैं।
(४९) १. (ख, ग) उलटे। २. (घ) चढ। ३. (ग) हरिरांमा।
(५०) १. (ग) हरिरांमै।

(५१) १. (क) सुं, (ख) है। २. (क, ख, घ) हरीया, (ग) हरिरांमै। ३. (ख, ग, घ) सुनि। ४. (ग) सुष। ५. (क, ख) सहजांई। ६. लीया त सहजां०।

(५२) १. (ग) हरिरांमै। २. (क) जांह। ३. (ग) रष्या रोर।

पड़ैं पुड़ग तांह पेम [1]की, एक अषंडी धार।
हरीया हरि[2]जन पीवसी, दुनीयां सुधि न [3]सार ॥ ५३ ॥

वादल वूठा पेम का, नप चष भीना रोम।
जनहरीया[1] सुष जांणिसी, जिन[2] पाई पर [3]भोम ॥ ५४ ॥

अधर कळी में बैस करि, भवरौ रह्यौ लपटि।
जनहरीया जब[1] जीव [2]कौ, सांसौ गयौ संमटि ॥ ५५ ॥

भवरौ वास न [1]बिलबही, फूल न आपौ गडि।
हरीया आसा छाडि [2]कै, रह्यौ निरासा मडि ॥ ५६ ॥

अथ पीव परचै कौ अंग ११

हरीया अपनै[1] अंग मैं, षरौ अनेसौ [2]एह।
पीया कुं विन [3]परसीयां, भाजै नही [4]सनेह ॥ १ ॥

---

(५३) १. (क, ख) पेम फुहारां परत है, (ग) अमी फुहा०। २. (ख) सो। ३. (ग) हरिरांमा वा कुं पीयै दूजा तजै विकार।

(५४) १. (क) हरीया सो। २. (घ) उन। ३. (ख) हरीया अंतर जांणसी, सुधि बुधि सारी भोम, (ग) हरिरांमा सुष एक है, वहां कोई सीत न घोम।

(५५) १. (क, ख) जांह। २. (ख) प्रांण कौ, (ग) हरिरांमै जहां प्रांण कौ।

(५६) १. (ख, ग) भवरौ कळी न छाडही। २. (ख, ग) करि।

---

(१) १. (ख) अपना। २. (क) एक, (ख) होय, (ग) आज हमारे अंग मैं, भयो अनेसौ एक। ३. (ग) हरिरांमा पीव बाहिरौ। ४. (क) काज न सरै अनेक, (ख) काज सरै नही कोय, (ग)⋯अनेक।

मना[1] अनेसौ[2] नां मिटै, जनहरीया[3] विन [4]पीव।
पूछौ जाय [5]दुहागिन्यां, थां जीवन किम [6]थीव॥ २ ॥

एक दिहाड़ौ पीव विन, सोई वरस पचास।
हरीया अपनै पीव [1]विन, कौन पूरवै [2]आस॥ ३ ॥

तन का तुरी [1]पलांणिकै, मन की[2] करु[3] मजल।
चित का चाबष हाथि ले, हरीया[4] लाय न[5] पल॥ ४ ॥

पेम प्रीत का पागड़ा, लिव की करु[1] लगांम।
हरीया साषित सुरति की, कीया निरत [2]मुकांम॥ ५ ॥

दया मया कौ [1]मांडहौ, जीव जनेती साथि।
हरीया तोरण तत का, हित ले वंदुं हाथि॥ ६ ॥

हरीया[1] चौंरी चहुं दिसां, सत व्रत रोप्या थंभ।
हरि हथलेवौ हरष [2]सुं, किरत कमाई कंभ॥ ७ ॥

---

(२) १. (ख, ग) अंग। २. (क) हरीया निसदिन। ३. (क) अनेसौ। ४. (ग) पीव विनां नित नेम। ५. (ग) हरीया पूछि दुहागिनां, (घ) दुहागन्यां। ६. (क, घ) जीवन कैसै थीव, (ग) थे जीवौ कहि केम।

(३) १. (ग) हरिरांमा हरि बाहिरौ, (घ) हरीया हरि विन दूसरा। २. (क) विष्रै विडांणौ वास, (ग) कुंण पूरै नित आस।

(४) १. (क, ख) पलांणीया, (ग) हरीया तुरी पलांण तन। २. (ग) जोबन। ३. (क, ख, ग, घ) करुं। ४. (ख, ग) एक लगाउं। ५. (क) लांऊं।

(५) १. (क, ख, ग, घ) करुं। २. (ग) मनछा करूं मुकांम।
(६) १. (ग) मंडहौ।
(७) १. (ग) चेतन। २. (ख, ग) हथलेवौ हरषां (से) लीयौ।

पीया सु[1] परचौ [2]भयौ, हरीया[3] रळिमळि[4] षेल।
मेरै[5] सांम सुहाग की, है अजरांमर[6] बेल॥ ८ ॥

मेरै[1] सांम सुहाग का, छांना न रहै नूर।
विलषै[2] वदन दुहागिनी, हरीया[3] [4]ऊगै सूर॥ ९ ॥

हरीया नूर सुहाग [1]कौ, दिन दिन अधिकौ[2] जांनि।
सांम सुहागिन[3] निरषतां, संतो[4] करौ पिछांनि॥ १० ॥

जनहरीया पीव[1] परसीया, जागी अंदर[2] जोति।
जिन घरि रळी वधांवणां, तिंन[3] घरि भागि छोति॥ ११ ॥

जुग मैं जीवण [1]कारिकौ, मरणौ[2] दैंण निदांन।
जनहरीया मरि [3]जांणीयौ, से जीया परवांण॥ १२ ॥

जुग मैं जीवण सब करै, मरण करै नही कोय।
हरीया एकर मरि रहै, कलि अजरांमर होय॥ १३ ॥

---

(८) १. (क, ख) कौ, (घ) तणौ। २. (ग) पीव परचौ जब जांणीयै। ३. (ग) पीव सुं। ४. (क) निसदिन, (ख) हरि सुं। ५. (ग) हरीया सांम सुहागनी। ६. (ग) एको अंमर।

(९) १. (ग, घ) हरीया। २. (ग) विलषी जांणि। ३. (घ) निसदिन, (ख) हरि सुं दूर, (ग) रहै पीव सुं दूर।

(१०) १. (क, ख, ग) का। २. (घ) ईंधकौ नित नित। ३. (ग) सनेही। ४. (ख, घ) संतौ।

(११) १. (ख) हरीया पीतव, (ग) हरीया पीव मिल, (घ) हरि। २. (क, घ) ईंदर। ३. (घ) ता।

(१२) १. (क, ख, ग, घ) कारिवौ। २. (क) दैंणौ मरण, (ख, ग) है मरणौ आसांण। ३. (ग) हरीया जीव मरि जांणीया।

अैसैं[1] कपड़[2] पास विन, लगै न चोळी[3] रंग ।
हरीया सांम[4] सुहाग विन, होई[5] सदा मन भंग ।। १४ ।।*

वतीयां[1] कारण नां रहै, रहसी तन मंन [2]देह ।
हरीया अैसैं[3] सबद कुं, जोग जुगति सुं[4] [5]लेह ।। १५ ।।

जोग जुगति[1] विन नां रहै, सत सबद अर[2] बीज ।
जनहरीया जुग[3] तीजणी, षेलण निकसी तीज ।। १६ ।।

सब ही काजळ सारीया, करि करि मन की [1]हौंस ।
मिली पियारी पींव सुं, हरीया[2] न्यारी रौंस ।। १७ ।।

---

(१४) १. (ख, ग) जैसैं । २. (घ) कपड़ौ । ३. (ग) वाकै । ४. (क) हरीया अपनै पीव विन, (ख) जनहरीया ज्युं पीव०, (ग) हरीया सोई । ५. (क, ख, ग) रहै, (घ) सोई ।

* इसके बाद क, ख, ग प्रतिमें निम्न सोरठा पाठभेदसे है—

(क) ज्युं विभचारी नारि, अैसै आतम नांव विन ।
हरीया टाकर मारि, पीतम सुं परचौ नही ।

(ख) ⋯नारि, जनहरीया ज्युं नां०, (ग) ⋯नारि, हरीया सो हरि नां० । वा कुं टाकर० ।

(१५) १. (क) वातां, (घ) वाते । २. (ग) देत । ३. (क, ख, घ) जनहरीया, (ग) हरीया ज्युं निज बीज कुं । ४. (क) करि, (ख, ग) जांणि जतन करि । ५. (ग) लेत ।

(१६) १. (ख, ग) जतन कीयां । २. (क, ख, ग) सबद सरीषा, (घ) नांव सरीषा । ३. (ग) हरीया सबही ।

(१७) १. (क, ख, ग, घ) हौंस । २. (ख, ग) उनकी ।

अथ रस कौ अंग* १२

पेम पीयाला भरि पीया, अंतर[1] अति[2] घूमार ।
जनहरीया[3] इन पेम कुं, विरला[4] पीवणहार ॥ १ ॥
पेम पीयाला पीवसी, जाकै सिर नही केस ।
केस कटाया फेर [1]हुय, सीस करीजै[2] पेस ॥ २ ॥
यौ सिर[1] सौंहगौ सीत कौ, पेम अमोलिक थाय ।
हरीया पीजै पेम [2]कुं, जौ सिर साटै [3]पाय ॥ ३ ॥
भाठी पेम प्रगास की, अंद्र[1] दई जगाय ।
पहल कलाळी सीस[2] लै, पीछै पेम पिलाय ॥ ४ ॥
पेम ज पीणा[1] दुलभ है, सुलभ न पीया जाय ।
जनहरीया[2] सो पीवसी, देसी सीस कटाय ॥ ५ ॥
ज्युं लाभै ज्युं [1]लीजीयै, हरीया हरिरस [2]जांनि ।
तन मन देतां सीस कु, मत पछतावौ[3] आंनि ॥ ६ ॥

---

* (घ) प्रतिमें इस अंगका नाम 'पेम रस कौ अंग' है ।

(१) १. (ख, ग) याकी । २. (ग) नित । ३. (ग) हरिरांमा । ४. (ख) हरिजन ।

(२) १. (ख) हुवै, (ग) हरीया केस कवाड़ियै । २. (क) करौ सीस कुं, (ख) करूं सीस, (ग) सीस करूं सौहौ ।

(३) १. (क, ख) सिर तौ सुंहगौ, (ग) सिर तौ सौं० । २. (ख, ग) जौ सिर साटै देत है । ३. (क) दीजै सीस कटाय, (ख, ग) पेम (मुझि) कलाळी पाय, (घ) नेम नित प्रित लाय ।

(४) १. (क, ख) इंदर, (घ) अंतर । २. (ख, ग) पहली सीस कटाय (उतारि) ।

(५) १. (क, ख, ग) पेम पीवणा । २. (ग) हरिरांमा ।

(६) १. (ख, ग) ज्युं पावै ज्युं (त्युं) पीजीयै । २. (क) हरिरस मुहगौ० । ३. (क, ख, ग, घ) पछतावौ नही ।

रांम रसांयन पेम रस, अैसा और[1] न स्वाद।
जनहरीया जै[2] चषीया, विषै[3] न आवै याद॥ ७॥

रोम रोम हरि रस पीया, एक अषंडी धार।
जनहरीया[1] पी छकीया, अैसा[2] अमल अपार॥ ८॥

पेम पीयाला[1] पीजीयै, मावा करि भरिपूर।
जनहरीया पीयां[2] पछै, विषै विलासा[3] दूर॥ ९॥

मद का माता मद पीयै, सो मद्वा नही जांनि।
हरीया राता [1]रांमरस, मन[2] मतवाळा[3] मांनि॥ १०॥*

हरि रस पीया जांनीयै, सो मतवाळा[1] होय।
मद रस का माता[2] [3]फिरै, हरीया चित न [4]कोय॥ ११॥

---

(७) १. (ख, ग) नां कोई। २. (क, घ) कह, (ख) हरीया तन मन च०, (ग) हरीया हरिरस च०। ३. (ख) और न।

(८) १. (क, ख) हरीया पी पी, (ग) पीवनवाला छकि रह्या। २. (ग) हरीया, (ख) घट मैं पेम अ०।

(९) १. (ख, ग) रांम रसांयन। २. (ख) हरिरस पीया, (ग) हरि-रांमै हरि०। ३. (क) देह विकारा, (ख) और विषै रस, (ग) और सवै रस।

(१०) १. (क) का, (ख, ग) हरिरस राता रस पीयै। २. (क, ख) सो, (ग) सोई। ३. (ग) मदवा।

* (क, ग) प्रतिमें इसके बाद निम्न साषी अधिक है—

मद कै भांडै मद परै, सो भांडा किन काज।
हरीया जामैं (वामैं) रामरस, सो भांडा सिरताज॥

(११) १. (ग) मतिवाळा। २. (घ) मदवा। ३. (क, ख,) मद मतवाला(रा)दूसरा, (ग) हरीया मदवा दूसरा। ४. (ख, ग) चित न आवै कोय।

जनहरीया चित [1]चाल करि, वसे अपूरब देस।
तांह मतवाळा[2] रांम का, सुर नर नही[3] नगेस॥ १२॥
मैं मतवाळा रांम का, मद मतवाळा नांहि।
हरीया हरि रस पीव करि, मगन भया मन [1]मांहि॥ १३॥
हरीया[1] दिल साबति [2]भया, चितवा निहचल[3] होय।
रसीया सोई [4]जांणीयै, निज मनवसीया [5]सोय॥ १४॥
हरीयै पीया [1]रांमरस, पी पी भया अघाय।
रांम विनां रस [2]दूसरा, विषै रह्या [3]विलवाय॥ १५॥
रांम रसांयन[1] पीव करि, मिले[2] निरासा पास।
जनहरीया जब[3] वीसरे, देह दूसरी आस॥ १६॥
भवर वस्यौ[1] पर वाड़ीयां, आपौ गयौ[2] विछूटि।
जनहरीया[3] कैसैं घिरै, तरवर तैं फल तूटि॥ १७॥
इण सरवर मैं डोहती, विण पांणी घड़ नाव।
जनहरीया[1] अब थकि रही, पैंड न चलै पाव॥ १८॥

---

(१२) १. (ग) हरीया चित जहां। २. (ग) मतिवारा। ३. (ख, ग)··· असुर न सेस।

(१३) १. (ग) हरीया रत्ता रांम का, अन्न अंनरता नांहि।
रांम रसांयन पीव करि, वास निरंतर मांहि॥

(१४) १. (ग) जाकी। २. (ग) भई। ३. (ख, ग) चंचल नांहि। ४. (ख) वाका मनवा वसि रह्या, (ग) हरीया मन०। ५. (ख) रांम रसांयन मांहि, (ग) हरिरस प्याला मांहि।

(१५) १. (ख, ग) रांम रसांयन रुचि पीया। २. (ख) जनहरीया हरि रस विनां, (ग) हरिया सो हरि०। ३. (घ) विलमाय, (ग) विच ही रह्या थकाय।

(१६) १. (ग) प्रेम पीयाला। २. (ग) मिल्या। ३. (क) हरीया जब ही, (ख) मन, (ग) हरिरांमा मन।

(१७) १. (ख, ग) गयौ। २. (ख) जाय। ३. (ग) हरिरांमा।

(१८) १. (ग) हरिरांमा।

जनहरीयै[1] हरिरस पीया, ऊंडै सरवर आय।
और विषै रस अंजली, पीयै स मरि मरि जाय ॥ १९ ॥

मरणै[1] कौ डर को नही, मरणौ दैणौ साच।
जनहरीया[2] क्या जांणीयै, कोय[3] नचावै नाच ॥ २० ॥

नांव नाचिबौ षूब है, जे[1] कोई जांणै नाच।
हरीया मन कौ [2]दीजीयै, सांई आगै साच ॥ २१ ॥

हरीयौ आगै रांम [1]कै, नाचै नांव निरत।
आठ पौहर[2] घूमत रहै, सांई मांहि सुरित ॥ २२ ॥

अथ लोभ कौ अंग १३

हरीया सरवर[1] पैस करि, सबै[2] पषाळे तंन।
पुसी[3] पुसी भरि [4]पीलीया, मांहि[5]न धाया[6] मंन ॥ १ ॥

घट मैं गंगा [1]गोमती, ता विच[2] कीया सीनांन।
जनहरीया[3] मन रिगसीया, ऊंचा घर असमांन ॥ २ ॥

---

(१९) १. (क, ख) हरीया, (ग) हरिरांमा।
(२०) १. (ग) मरिबै। २. (ग) हरिरांमा। ३. (क, ख, ग, घ) कोई।
(२१) १. (क) हरीया तन मन वाच, (ख) तन मन सेती वाच, (ग) नाचै तन मन वाच। २. (क) साचौ सोई नाचिबौ, (ख) हरीया सोई नाचिबौ, (ग) हरिरांमा हक ना०।
(२२) १. (क, ख, घ) कै, (ग) मैं मतिवारा रांम का, नाचूँ०। २. (ग) हरिरांमा।

---

(१) १. (ग) सेझै पांणी। २. (ख) पाव। ३. (ग) नीर। ४. (ग) ना पीया। ५. (क, ख) तौईन। ६. (ग) त्रिषा न भागी।
(२) १. (ख) सुरसती, (ग) गंग जमुन विच सुषमना। २. (ख, ग) तहां मिल। ३. (ग) हरिरांमा।

अथ हैरांन कौ अंग १४

हरीया सांई एक है, सब का सिरजणहार।
मं पिंडत कुं कहि[1] रह्या, सुधि[2] न जांणै सार ॥ १ ॥

हरीया धरीया रूप [1]कुं, करता जांणै सोय।
आप न भीतरि[2] [3]औळखै, वाका[4] इचरज होय ॥ २ ॥

जनहरीया तन भीतरैं, आतम तत अनूप।
ताकूं नर चींनत [1]नहीं, धारै सांग[2] सरूप ॥ ३ ॥*

कहैं सुणावैं और कुं, वाचै वेद पुरांन।
हरीया[1] पिंडत की कथा, नांव[2] विनां हैरांन ॥ ४ ॥

अथ हेरत कौ अंग १५

हरीया हेरत हेरतौ, हेरत ही रह्यौ हेर।
बूंद समांणी समंद में, हेरी जाहि न फेर ॥ १ ॥

---

(१) १. (ख) क्या कहुं। २. (ख) ताहि नि जांणै।
(२) १. (ख) मलधारी मल देह कुं। २. (घ) करता। ३ (क) आपा भीतरि आप है, (ख) या तन भीतरि तत है। ४. (ख) हरीया।
(३) १. (क, ख) वाकुं कोय न ओळखै, (घ) या कुं नर चीनै०। २. (ख) और। * (ग) प्रतिमें ये तीनों साषियाँ नहीं हैं उसमें निम्न दो साषी हैं।

ब्रह्म आदि अनादि है, ऐसा किधूं न और।
हरिरांमा या विन गिनै, ताकुं ठाह न ठौर॥
वसै वदेही देह मै, हरीया लहै न कोय।
कहि सुणि हस्यबौ देषबौ, मन ही मन मै होय॥

(४) १. (ग) हरिरांमा पिंडत कथा। २. (क) भगति, (ख) भजन, (ग) हरि विन सब।

हरीया हेरत हेरतौ, हेरत ही रह्यौ हेर।
समंद बूंद मैं मिल गयौ, हेर्‌यौ जाहि न फेर॥ २ ॥*

अथ जरणा कौ अंग १६

नांन्हौ कह्यां न [1]नांनड़ौ, मोटौ कह्यां न मोट।
हरीया हरि जांणै [2]जिसौ, वाकी[3] गहीयै ओट॥ १ ॥
हरि जैसौ[1] करि[2] [3]जांणीयौ, तैसौ होय [4]तीयार।
जनहरीया नही [5]दाषीयै, दिल की दुनीयांदार॥ २ ॥
साची[1] कह्यां न [2]सांभळै, झूठ कह्या नही जाय।
हरीया अपती[3] लोक सैं, कहि कैसैं सरि पाय॥ ३ ॥*

---

* मूल प्रतिमें तथा (घ) प्रतिमें यह अंग नहीं है एवं (ग) प्रतिमें निम्न रूपसे पाठ है—

(ग) हरि कुं हेरत मै फिरूं, हरि हैं तेरै मांहि।
हरिरांमा मैं किम लहुं, अैसी उपजै नांहि॥ १ ॥
हरि तेरै तन वीच मै, हरि ही जहां तहां जोय।
हरिरांमा जित तित लहुं, हेरत हुवै स होय॥ २ ॥

---

(१) १. (ग, घ) नान्हड़ौ। २. (ख) जनहरीया हरि हैं इसा, (ग) हरीया हरि अैसा जिसा। ३. (क, ग) वा (या) गहि रहीयै ओट।

(२) १. (ख) जैसा। २. (ख) जांणीया। ३. (ग) तैं हरि अैसा जांणीया। ४. (ख, ग) अैसा ई दीदार। ५. (ख, ग) जन-हरीया (हरीया कुछि) कहीयै नहीं।

(३) १. (ख) सांच न कोई सांभळै। २. (क) को सुणै। ३. (क) असुर अबूझ सुं।

* (ग) में इस स्थानपर यह साषी है—

विन कहीयां साचा नही, कहीयां मानै झूठ।
हरीया अपती लोक मै, मांडि रहीजै पूठ॥

(ख) प्रतिमें उपर्युक्त साषीपर हरताल फेरी हुई है।

जनहरीया संसार सुं, बौह बोल्यां बौह दुष।
चुप रहींयै हरि सिवरीयै, जौ मन[1] चाहै सुष॥ ४ ॥*

जनहरीया किस कुं कहैं, अकबक बांणी बोलि।
विन कूंची कर बाहिरौ, धिल[1] का ताला षोलि[2]॥ ५ ॥

सोरठौ

अरसतणा घर दूरि, हरीया[1] पहली क्या कहैं।
वेड़ौ जल[2] सिर पूरि, पौहतां[3] पीछै जांणीयै॥ ६ ॥

साषी

जांणत तन[1] गहलो[2] थीयो, मन कौ करै न मांण[3]।
हरीया[4] अैसै संत कौ, पलौ न कोई तांण[5]॥ ७ ॥

रांम[1] निरंजन देव की, हरीया[2] करि असतूति।
धीरां[3] धीरां ब्रीष भरि, त्युं[4] पावैं करतूति॥ ८ ॥

---

(४) १. (घ) जिव।
*. (ख, ग)

हरीया इन संसार सुं, विन बोल्यांई सारि।
मौनि गहौ अर (का) हरि भजौ, विषीया वाद निवारि॥

(५) १. (घ) दिल। २. (ग) यह साषी नहीं है।

(६) १. (क) जनहरीया अब्र। २. (ख) समदर। ३. (क) पुंहचैगा जब जाणीयै, (ख) पुहचैं क्या जांणु पछै, (ग) पारि पुहुंचबौ दुलभ है।

(७) १. (ख, घ) ही। २. (क) जांणंत गहलौ हुय रहै, (ख) हुवै, (घ) थीयै। ३. (ख) हारि जीत ही होय। ४. (क, ख) जनहरीया उन (वै) संत कौ। ५. (ग) जांणंत गहलौ हुय रहै, जीवत मिरतग होय। हरीया अैसै संत कौ, (ख, ग) पलौ न पकड़ै कौय॥

(८) १. (ख) आप, (ग) अलष। २. (ख, ग) करि बंदा। ३. (ग) पग पग पैंडै। ४. (क, ख, ग, घ) ज्युं।

देस[1] पीयांणा दूरि घर, अगम भये असथांन।
जनहरीया[2] धीरी धरौ, ज्युं[3] पौहचैं [4]आसांन॥ ९॥

अथ लिव कौ अंग १७

पंच न डोल अबोल मुष, चंचल होय न [1]चित।
जनहरीया मन[2] थिर भया, लिव लागी नित [3]प्रित॥ १॥

जनम मरन[1] का डर नही, सोग न संसै[2] [3]थाय।
जनहरीया[4] लिव जांह लगी, सुर[5] नर सघैं न[6] जाय॥ २॥

लिव लागी तूटै नही, लिव अंतर की[1] तार।
लागत ही सुं वीसरी, हरीया तन की[2] सार॥ ३॥

हरीया लिव[1] तूटै नही, सहज रही घर[2] छाय।
जांह सहजां सांई रहै, लिव ता मांहि समाय॥ ४॥

---

(९) १. (ख, ग) अगम अगोचर दूरि है, दूरि भए असमांन। २. (ग) हरिरांमा। ३. (क) पहुंचैगो। ४. (ख) ज्युं पावैं रहमांन, (घ) हरि करता आसांन।

---

(१) १. (क, ख) मन चंचल नही थाय। २. (क) जांह अधर घर, (ख) घर अधर मैं। ३. (ग) पांच पचीसुं उलटि कै, मन इकतारी लाय। हरिरांमा घर अधर का, (क, ख, ग) तांह बैठे लिव लाय॥

(२) १. (क, ख, ग) (है) जांह दूजै का। २. (क, ख, ग, घ) संसा। ३. (क) होय, (ख) नांहि। ४. (ग) हरिरांमा। ५. (ग) सुरपति। ६. (क) जाय न कोय।

(३) १. (ग) एक निरंतर, (ख) हरीया अंतर। २. (ख) तन बाहिरिली।

(४) १. (ख, ग) लिव लागी तू (छू) टै। २. (ग) उर लाय।

श्री १००८ श्री हरिदेवदासजी महाराज
रामस्नेहि सम्प्रदायाचार्य सिंहस्थल (२)

हरीया कथणी जब[1] कथी, मरम न पाया [2]मुझि।
अब लिव लागी तुझि सुं, कहन सुनन नहीं[3] [4]कुझि॥ ५ ॥
लिव लागी रहमांन[1] सुं, हरीया एक [2]अभंग।
जीवत ही[3] रहै जिंद सुं, मूंवां हरि[4] कै संग॥ ६ ॥

अथ पतिवरता कौ अंग १८

हरीया तोसुं[1] प्रीतड़ी, आतम[2] मेरे यार।
जौ दूजै सुं तुझि विन[3], करूं त मुंहड़ै[4] छार॥ १ ॥
हरीया अपनै[1] यार कुं, हंसि[2] करि बूझुं वात।
यार हमारै बाहिरौ, वात न काई[3] तात॥ २ ॥
वात हमारै यार सुं, करूं नैंन कर[1] जोड़ि।
हरीया मेरै[2] यार विन, चलुं नैंन मुह मोड़ि॥ ३ ॥

---

(५) १. (क) बौह। २. (क) जब घर पाया नांहि। ३. (क) मुझि मांहि।
४. (ख) तब तैं कथणी बौह कथी, जब कुछि जाण्यौ नांहि।
जनहरीया अब क्या कथुं, लिव लागी मुझि मांहि॥
(ग) कथि कथि कथणी कथि गए, मै भी ग्या उस्य वंग।
हरिरांमा अब क्या कथै, लिव लागी हरि संग॥

(६) १. (ख) महमांन। २. (क) होय न कबहु भंग, (ख, ग) कबहु षंडै नांहि। ३. (क, ख) हरीया जीवत जिंद। ४. (क, ख) आतम संग (मांहि), (ग) अषंडी मांहि।

---

(१) १. (ग) हरिरांमा मुझि। २. (ग) तुझि सुं। ३. (क, ग) जौ दूजै तुझि विन करूं। ४. (क, ख, ग) तौ मेरै मुंह (षार)।
(२) १. (ख) आतम, (ग) हरिरांमा मुझि। २. (ग) हस्य। ३. (ग) दूजी।
(३) १. (ग) मुंह। २. (ग) हरिरांमा मुझि।

नैंन हमारै यार[१] सुं, रहीया उलिझि उलिझि ।
हरीया न्यारा नां[२] हुवै, सुलझाया न [३]सुलिझि ।। ४ ।।

परत बूंद आकास की, ज्युं चाहै[१] चात्रिग ।
पतिवरता कै[२] पीव विन, जो दिन जाहि स ध्रिग ।। ५ ।।

स्वांति[१] बूंद आकास की, रुति सिर चाहै सीप ।
पतिवरता नित चींतवै, हरीया पीव[२] पर दीप ।। ६ ।।

हरीया सीप समंद [१]मैं, हेको बूंद[२] संनेह ।
पतिवरता सो[३] पीव विन, करै नि[४] किन सुं नेह ।। ७ ।।

पतिवरता छाडै नही, पीवतणौ इकतार ।
जनहरीया[१] विभचारणी, जाकै षसम हजार ।। ८ ।।

पतिवरता सो[१] जांणीयैं, हेक[२] धणी सु हेत ।
जनहरीया[३] विभचारणी, दिल दूजा[४] कुं देत ।। ९ ।।

पतिवरता सो पीव विन, मुख्कि न बोलै वैंन ।
जनहरीया[१] मन उंनमुंनी, अंग उतरीया नैंन ।। १० ।।

---

(४) १. (ग) सैंन । २. (ग) क्युं, (क, ख) जनहरीया कैसैं टरै (दुरै) ।

(५) १. (ख) चाहत है । २. (ख, ग) थु, (घ) सो । ३. (घ) हरीया जो दिन ध्रिग ।

(६) १. (ग) एक बूंदि, (घ) स्वांयत । २. (ख, ग) पीव वसै ।

(७) १. (ख, ग) सीप समंदां वीच मैं । २. (ख, ग) इन (जिन) सुं । ३. (क, ख, ग, घ) यु । ४. (क, ख, ग, घ) करै न ।

(८) १. (ग) हरिरांमा ।

(९) १. (ग) जब । २. (ख) होय, (ग) एक । ३. (ग) हरीया सो । ४. (ख) और न ।

(१०) १. (ग) हरिरांमा ।

जनहरीया[1] विभचारणी, मन आवै ज्युं[2] बोलि।
सांम धणी सुं रोसणै, औरां सुं षिल षोलि॥ ११॥

पतिवरता सो[1] जांणीये, हरीया पति[2] सुं हेक।
रांम विनां राचै नही, आवौ जाय अनेक॥ १२॥

प्रीत पीयारै[1] पीव सुं, तन मन[2] संसै नांहि।
जनहरीया अब क्युं[3] डरै, मिल्या निराला मांहि॥ १३॥

मिल्या निराला मुझि[1] मैं, पतिवरता कुं[2] पीव।
जनहरीया मन की मिटी, भया [3]नसंसै [4]जीव॥ १४॥

षालिक मिलीयां षिल षुसी, हरीया होय[1] निहाल।
पांनै पड़ीया[2] रंक कै, कौडी वद्लै लाल॥ १५॥

कौडी वद्लै लाल कुं, देत न देष्या[1] मोलि।
हरीया पैलै[2] भाग सुं, षालिक द्यै[3] षिल षोलि॥ १६॥

भाग विनां नही पाईये, मांणिक[1] मोती[2] लाल।
दुनीयां[3] कौडी हाथि ले, हरीया[4] भई विहाल॥ १७॥

---

(११) १. (ग) हरिरांमा। २. (ख) तड़िक भड़िकै, (ग) हसै मुळकै।
(१२) १. (ख, ग) जब। २. (क, ग) हरीया अंतर एक, (ख) वाकै अंतर एक।
(१३) १. (ख, ग) हमारै। २. (ख, ग) सुष दुष। ३. (क, ख, ग) क्या।
(१४) १. (क) सुं, (ख) देह सुं, (ग) नांव सुं, भया निसंसै एक। २. (घ) सुं। ३. (ख, घ) निसंसै। ४. (ग) हरीया अब निहचै थीया, मेट्या भरम अनेक।
(१५) १. (ग) नष चष भया। २. (ग) हरिरांमा ज्युं।
(१६) १. (क) कोई। २. (ख, ग) पूरब। ३. (घ) दै।
(१७) १. (ग) हरीया मांणंक लाल। २. (क, ख) हीरा। ३. (क, ख) हरीया। ४. (क) दुनियां, (ग) ले ले भई षुस्याल।

तुं मेरै संम्रथ धणी, ऐसी करि धणीयाप।
तैं करतां क्या नां हुवै, जल मैं थल नई याप ॥ १८ ॥

तुं जांह तांह व्यापक रहे, कठै[1] अव्यापक नांहि।
तुझि कुं किसका डर नही, जनहरीया[2] मुझि मांहि ॥ १९ ॥

जौ तु दुष दोजष दिवैं, तौ मैं आसिंग[1] लेह।
तो विन मुगति न चाहीयै, हरीया नांव[2] संनेह ॥ २० ॥

पतिवरता कै पीव की, आसा वरतै एक।
जनहरीया[1] विभचारणी, वाकै आस अनेक ॥ २१ ॥

हरीया आसा एक की, वाकै पासि अनेक।
जाकै आस अनेक है, ताकै एक न फेक ॥ २२ ॥

आसा तौ एको भली, दूजी भली न [1]काय।
दूजी आसा मारिसी, हरीया जुग मैं [2]आय ॥ २३ ॥

पतिवरता सो पीव विन, नींद न सुवै नचीत।
जनहरीया कोई[1] आय कै, जौ[2] करि जाय अनीत ॥ २४ ॥

जनहरीया विभचारणी, सोवै नींद अघाय।
अंतर किसका[1] डर नही, लष आवौ लष जाय ॥ २५ ॥

---

(१९) १. (ख) है, (घ) कहां। २. (ख, ग) तुं बैठे मुझि मांहि, (घ) हरीया सो।

(२०) १. (ख, ग) मांग'रि। २. (क) हरि सुष देह, (ख, ग) रांम, (घ) भगति।

(२१) १. (ग) हरिरांमा।

(२३) १. (क, ख, ग, घ) कोय। २. (क, ख, घ) जोय, (ग) जांहां तहां लेसी जोय।

(२४) १. (क) हरीया मुझि मैं, (ख) हरीया जै कोई, (ग) क्या जांणुं को आय करि। २. हरीया करै, (क) को, (ख) मुझि।

(२५) १. (ख, ग) वाकै।

पतिव्रता कै पीव सुं, अंतर एक[1] संनेह।
जनहरीया[2] विभचारणी, बौह सु बौहता [3]नेह ॥ २६ ॥

पालिक विन षाली [1]रह्या, ज्युं व्रिभचारी नारि।
पीतव[2] सुं परचौ नही, फिरै घराघर [3]बारि ॥ २७ ॥

कुंभ कलस भरि [1]नीसरी, ब्रीष भरै मघ[2] जोय।
पतिव्रता दूजा धका, हरीया सहै न [3]कोय ॥ २८ ॥

पतिव्रता यु पग धरै, छली गागरी नारि।
नारि निहारै गागरी, हरीया[1] पीव निहारि ॥ २९ ॥

हरीया यारी एक सुं, असी अनंत न होय।
जैसैं गिनका जांणीयै, कहौ कौंण की जोय ॥ ३० ॥

के वांवा के दांहिणा, जुग बौह मारग जोय।
एको मारग मुगति[1] का, संत लहैगा सोय ॥ ३१ ॥*

---

(२६) १. (क) एको नेह, (ख) इन सुं नेह, (ग) आखिर एको नेह। २. (ग) हरीया सो। ३. (क, ख) सब सुं करै सनेह, (ग) जण तण करै०, (घ) सब काहु सुं नेह।

(२७) १. (ख, ग, घ) रही (है)। २. (घ) पीया।
३. (क) हरीया ठालै नीसरी, ज्युं घर सुं पिणहारि।
(ख) घर सुं ठालै नीसरी, ज्युं हरीया पिणहारि।
(ग) निकसी ठालै कंभ सिर, हरीया जुग पिणहारि।

(२८) १. (ग) बाहुड़ी। २. (ख, ग) दूजा धका न तन सहै, यु पतिवरता जोय।

(२९) १. (ग) पतनी।

(३१) १. (ग) आदि। * अतिरिक्त प्राप्त—
(ग) हरीया मारग एक है, जिन्हां वौहो पाया।
तिन्हां मारग बौहत है, कुछि हाथि न आया ॥
(ख) सोरठौ—हरीया मारग एक, जिन बौह पाया जांनीयै।
तिन्हां राह अनेक, वाकुं षबरि न एकही ॥

दह दिस दौख्यां क्या हुवै, जब तैं एक न जांणि।
हरीया हेको[१] जांणीया, आपापरी[२] [३]पिछांणि ॥ ३२ ॥*

एको तन अर मन वचन, एको आतम [१]जोय।
हरीया यारी एक सुं, अैसी अनंत न [२]होय ॥ ३३ ॥

एको इसक अल्हा का, दूजा धरूं न दिल।
हरीया आपौ[१] उलटि कै, अवगति सेती मिल ॥ ३४ ॥*

ऊ आगै पूठै षड़ा, ऊ है दसु दिसाह।
हरीयै कीया दोसती, अतम यार[१] जिसाह ॥ ३५ ॥

---

(३२) १. (क) सबही, (ख) जनहरीया सब, (घ) एक सकल मै जानीयै। २. (क, ख) तबतैं, (घ) हरीया परी। ३. (ग) विन एकै जाण्यां। हरिरांमा जिन जांणीया, सत सबद पछांण्यां।

* अन्य प्रतियोंमें इसके बाद निम्न साषियाँ हैं—

(ग, घ) एक सकल मैं ब्रह्म है, मूरष देषै दोय।
हरीया जैसा जांणिया, तैसाई फल होय ॥ १ ॥

(ग) एको आतिम रांम है, सब घट व्यापक होय।
अैसा जुगमै जीव हैं, ता करि जांणै दोय ॥ २ ॥

(ग) एको तन मन वचन करि, एक सकल मै मुझि।
हरीया भजीयै रांम कुं, और न कहणा कुझि ॥ ३ ॥

(ग) एक रांम विण जांणीयां, सबै अरथ की हांणि।
हरीया सो विभचारणी, जुग सुं जांण पिछांणि ॥ ४ ॥

(३३) १. (क, ख, घ) जांनि। २. (क, घ) अैसी अनत न जा (मा) नि, (ख) कीजै जांनि पिछांनि, (ग) में नहीं है।

(३४) १. (ग) तन मन। * (ग) में अधिक प्राप्त—
(ग) जाका दिल है दुसरा, हरीया सो विभचार।
पीतम सु परचौ नही, ताहि तजै भरतार ॥

(३५) १. (क) एक। (ग) में यह साषी नहीं है।

सांई सुं दिल दूसरा, सो सतमिणसी नारि।
हरीया उर इकतार विन, वाकुं टाकुर[1] मांरि ॥ ३६ ॥

आपनपौ परषै नही, करै और कुं यादि।
जनहरीया सुत जार [1]का, परति न पावै दादि ॥ ३७ ॥

जनहरीयै[1] कर जांणीया, सकल आतमा एक।
भेद विनां भूला फिरैं, दुनीयांदार अनेक ॥ ३८ ॥

सब ही धरीया अधर [1]का, जासुं तन मन जोरि।
जनहरीया[2] धरीया धरै, ताहि न रहीयै औरि ॥ ३९ ॥

हरीया चाकर अधर का, धरीया सेवै नांहि।
धरीयै धरीया [1]सेवीया, चूक चाकरी मांहि ॥ ४० ॥

सब धरीया धारै मरै, सरै न एको कांम।
हरीया धरीयै अधर कुं, एक सकल[1] विसरांम ॥ ४१ ॥

जब लग आसा और [1]की, तब लग दास न [2]होय।
हरीया आप[3] निरास हुय, दास कहावै सोय ॥ ४२ ॥

मन मैं तैं मेट्यां विनां, उर इकतार न जांनि।
हरीया उर[1] इकतार विन, अपनौ पीव न मांनि ॥ ४३ ॥

---

(३६) १. (क) जिन कुं, (ख) जिस कुं माथै। (ग) में यह साषी नहीं है।
(३७) १. (ग) ज्युं कोई सुत है जारकौ, परित न।
(३८) १. (क, ख, ग) हरीया (हरिरांमा) जिन।
(३९) १. (क, ख, ग) सब धरीया इक अधर है, ता (या) सु। २. (ग) हरीया सो।
(४०) १. (ख, ग) सेवतां।
(४१) १. (क) सबै, (ग) हरिरांमा सब आस तज्य, भजो निरासा रांम।
(४२) १. (ग) सकल। २. (ख) कोय। ३. (क, ख) नांव, (ग) एक, (घ) आस।
(४३) १. (ख) जनहरीया, (ग) हरिरांमा।

मन भीतरि[1] नही एकता, दुविध्या मिटै न देह।
जनहरीया[2] जनमै मरै, नाना धरत संनेह ॥ ४४ ॥

एक[1] अमोलिक वसत का, विरला विणजणहार।
जनहरीया सो [2]विणजसी, लाहै[3] अंत न पार ॥ ४५ ॥

एक[1] अमोलिक वसत का, तोल न कोई मोल।
हरीया जिस कुं दीजीयै, साचा तन मन [2]बोल ॥ ४६ ॥

दासभाव कुं दीजीयै, नांव सरीषा धन।
हरीया [1]दासाभाव विन, जांणि अलूणौ अंन ॥ ४७ ॥

अंन षाया षुध्या मिटै, लगै अलूणा अंन।
भाव मूवां जीवै नही, जनहरीया [1]दासंन ॥ ४८ ॥

आपज मांनै और कुं, कहै अनाथां नाथ।
हरीया कंचन छाडिकै, गहै कथीरुं हाथ ॥ ४९ ॥

---

(४४) १. (ख) है मन कै, (ग) जौ मन की। २. (ग) हरीया जुग।
(४५) १. (ख) नांव। २. (ख, ग) हरीया सोई विणजीया। ३. (ग) पूँजी।

(४६) १. (ख) नांव, (ग) हरीया तन मन वचन विन, ताहि न दीजै बोल।

(४७) १. (ग) हरिरांमा निज।

(४८) १. (ख) ज्युं तिरीया जोबंन, (ग) जो देवै नही मंन। (ग) प्रतिमें इसके बाद २ साषी हैं—

लष चौरासी हाट मै, वसत अमोलिक एक।
जांहां जांण्यां तहां विणजीया, लीया लाभ अनेक ॥ १ ॥
एको आतिम जांणीया, से सरबंगी साध।
हरीया आतिम बाहिरो, दूजी आंन उपाध ॥ २ ॥

नांवज षोया[1] नांव विन, हरीया[2] तन विन जीव।
जोगज षोया[3] जुगति विन, ज्युं नारी विन पीव ॥ ५० ॥

अधर देव की सेव युं, पावक[1] पथरी मांहि।
जनहरीया[2] जल मैं रहै, आगि हु[3] पंडै नांहि ॥ ५१ ॥

ज्युं पावक पथरी वसै, आतम[1] तन[2] कै मांहि।
हरीया मूरष भेद विन, औरां पूजण [3]जांहि ॥ ५२ ॥

धरचा देव की सेव यु, ज्यु जलता अंगार।
जनहरीया[1] जळि बळि बुझै, लागत है नही [2]वार ॥ ५३ ॥

अधर देव कुं छाडि कै, धरू न धरीया देव।
हरीयै जब धरीया [1]धरचा, अधर न पाया [2]भेव ॥ ५४ ॥

एक अधर की सेव मैं, धरीया सबै समाय।
हरीयै धरीया[1] अधर कुं, धरीया धरै [2]बलाय ॥ ५५ ॥

---

(५०) १. (ख, ग) नांव विगोया। २. (ख, ग) ज्युं काया। ३. (ख, ग) विगोया।

(५१) १. (ग) ज्युं अग्य। २. (ग) हरीया जौ जल संग। ३. (क, ख, ग, घ) आगि न।

(५२) १. (ग) त्युं आतिम। २. (क, घ) आपा। ३. (ख, घ) आपो षोजै नांहि, (ग) आपा की सुधि नांहि।

(५३) १. (ग) हरिरांमा। २. (क) सो सेवत संसार, (ख) उ लावत नही वार, (ग) तौ लावत नही वार, (घ) कितीक लावै वार।

(५४) १. (क, ख, घ) जनहरीया धरीया धरै। २. (ख) सो पड पंचम सेव, (ग) जाकै उली सेव।

(५५) १. (क) जनहरीया धर, (ख) जनहरीया अधरा धरौ, (ग) हरिरांमा धरि, (घ) हरीया धरीयै। २. (ग) तन मन ताली लाय।

सात दीप नंव षंड फिरै, कारिज सरै न कोय।
जनहरीया कारिज सरै, उलटि आप मैं जोय ॥ ५६ ॥

उलटि आप मैं[1] देषीया, जब आपौ पतिआय।
हरीया आपै[2] पति विन, धका[3] धीग सुं षाय ॥ ५७ ॥

दुबिध्या सेती[1] दूरि है, निकट एक सु[2] आप।
हरीया हरि जांह एकता, दुबिध्या दोजष ताप ॥ ५८ ॥

तब[1] तैं दोय दिसंतरी, एक सरै नही[2] कांम।
हरीया दुबिध्या दूरि [3]करि, जब[4] तैं पाया रांम ॥ ५९ ॥

दोय दिसावर एक [1]वर, कहौ कौंण दिस जाय।
जनहरीया विभचारणी, पति विन गोता[2] षाय ॥ ६० ॥

जीव[1] एक अर जार बौह, कहौ कौंण सुं [2]जोरि।
जनहरीया विभचारणी, पति[3] अपनै सु तोरि ॥ ६१ ॥

पतिवरता सो जांणीयै, अंतर[1] एक अटक।
जनहरीया विभचारणी, बौह सुं बौहत षटक ॥ ६२ ॥

---

(५७) १. (क, ग) कुं। २. (क, ख, ग) आपै (पा)। ३. (ख) औरां राजी थाय, (ग) दुनियां गोता षाय।

(५८) १. (ख) सुं हरि और, (ग) सुं हरि। २. (क) एकै भीतरि, (ख) एकै मांहि, (ग) एक मता जहां।

(५९) १. (ख) जब तैं, (ग) जाकै। २. (क) एक न को सिध, (ख) एक न सरसी, (घ) सिध न एको,। ३. (क, ख, ग) मिट गई। ४. (ख) तब तैं।

(६०) १. (क, ख) जीव एक। २. (क, ख) धका धणी विन, (ग) अनुपलब्ध।

(६१) १. (क, ख) पीव। २. (क, ख) प्रीत कुंणी (कौंण) सुं पाळि। ३. (क, ख) जनम गमायौ आळि, (घ) बैठी पति सुं तोरि, (ग) अनुपलब्ध।

(६२) १. (ख) एको।

पतिवरता सो [1]जांणीयै, हरि सुं नित[2] हजूरि ।
जनहरीया विभचारणी, तन नैड़ी मन दूरि ॥ ६३ ॥

हंसा जिन सरवर वसै, जिनही सरवर बुग ।
हंसैं मोती चुणि लीया, वगलै मछली चुग ॥ ६४ ॥

हरीया[1] मोती कारणै, हंसौ[2] वस्यो समंद ।
सायर हंसां विन सरै, हंस न सरै समंद ॥ ६५ ॥

चाहै जो कुछि[1] देत है, हरीया हंसां चूंण ।
तुझि सरोवर बाहिरौ, मुझि है दाता कूंण ॥ ६६ ॥

हंसा बुगां पटंतरौ, वीछड़ीयां परवांण ।
बुग छीलरीयां रय करै, हरीया[1] हंस विलषांण ॥ ६७ ॥

हंस सुषाळौ मांनसर, चुगि मोताहळ षाय ।
हरीया दूजा ना भषै, लांघणीयौ रहि जाय ॥ ६८ ॥

बगलै[1] मरम न जांणीयौ, सायर का गुण एह ।
हरीया[2] उदर कारणै, छीलर चित धरेह ॥ ६९ ॥

हरीया हंसौ जीव [1]है, सुन्य[2] सागर विसरांम ।
सुरति हमारी सीपड़ी, निज कण[3] मोती [4]नांम ॥ ७० ॥

---

(६३) १. (ख, ग) पीव सुं । २. (क) रहै, (ख) मन सुं रहै, (ग) तन मन रहै, (घ) चित ।

(६५) १. (ख, ग) हंसै । २. (ख, ग) वासौ ।

(६६) १. (ख, ग) ज्युं चाहै त्युं । २. (ग) हंसा मोती ।

(६७) १. (क, ख) हंसा मन ।

(६९) १. (ख, ग, घ) बुगलै । २. (ख, ग) उदर भरण कै ।

(७०) १. (ख) हरीया यौ मंन रांम है, (ग) यौ मन मेरा रांम है । २. (ख, ग) सुन्न । ३. (क, घ) मन । ४. (ख) है मोती निज नांम, (ग) हरीया मोती नांम ।

हरीया हंसौ जांह[1] गयौ, सुन्य सरोवर[2] तीर।
पंछी कोय न[3] पी सधै, सो हंसौ पीयै[4] नीर॥ ७१॥

अथ चित्रावन कौ अंग १९

भेर नगारा आरबी, केते[1] गये वजाय।
जनहरीया[2] किन बौहरि कै, वात न बूझी [3]काय॥ १॥

वात वटाउ[1] देस की, कहै सुनै सब [2]कोय।
जनहरीया[3] उंन [4]देसती, आय कहै नही [5]कोय॥ २॥

नैणां नेह निहारती, न्यारी निमष न[1] होय।
जनहरीया[2] तन [3]भीतरैं, पड़्या दिनंतर कोय॥ ३॥

पान तंबोळी चावते, मसी क़बाड़्या दंत।
जनहरीया दिन[1] एक मैं, मुष धूड़ी [2]बूकंत॥ ४॥

---

(७१) १. (ख, ग) मन हंसौ फिर वांहा। २. (ख, ग) सुष सागर की। ३. (ख, ग) को नही। ४. (ग) हंस पीयै सो नीर।

---

(१) १. (क) सबही, (ख) आए गए। २. (ग) हरिरांमा। ३. (क, ग, घ) आय।

(२) १. (ख) विड़ांणै। २. (क) कहै अठा सुं, (ख ग,) कहै वटाउ आय। ३. (क) हरिरांमा। ४. (क, घ) देस की। ५. (ख, ग) जाय।

(३) १. (ग) पलक न। २. (ग) हरिरांमा। ३. (क, ख, ग, घ) वीचमैं।

(४) १. (क) फिर देषीया, (ख) तन धूरि हुय, (ग) हरीया तन माटी मिल्या। २. (ख, ग) ऊपरि घड़ उगंत।

जनहरीया कर [1]कंपीया, डोलण लागा सीस।
तौई न अंधा चेतई, आपणपौ जगदीस ॥ ५ ॥

धौड़ै धावैं[1] धन करै, सहै घांम सिर सीत।
जनहरीया नर[2] छाडिग्यौ, षाटि षटाउ मीत ॥ ६ ॥

षाटी दाटी रहि गई, कुछी न चली [1]साथि।
जनहरीया नर[2] दीन विन, हाल्यौ[3] रीतै हाथि ॥ ७ ॥

औछै पांणी मछली, किसी जिंद की आस।
हरीया सास सरीर मैं, वसै किता दिन वास ॥ ८ ॥

ऊंचा नीची सकल मैं, एक किसी मैं नांहि।
जनहरीया जांमण मरण, लषचौरासी मांहि ॥ ९ ॥

लषचौरासी जीवड़ा, सबै काळ की चारि।
जनहरीया[1] जौ उबरैं, सत का सबद [2]संभारि ॥ १० ॥

सब जुग बिंध्या जेवरी, निरबंधन नही कोय।
जनहरीया[1] निरबंध है, रांमसंनेही होय ॥ ११ ॥

जुग मांही केता धका, टारचा केम टरंत।
जनहरीया गहि रांम [1]कुं, पड़ि पड़ि भी ऊठंत ॥ १२ ॥

---

(५) १. (ख) हरीया हाथर पावतैं, (ग) हाथ पाव तन०।
(६) १. (क, ख, ग, घ) निसदिन धौड़ै (रै)। २. (ख, ग) हरीया सबही।
(७) १. (ग) पाय। २. (क, ख, घ) जुग, (ग) हरिरांमा जुग। ३. (ख) गयौज, (ग) रीतां हाथां जाय।
(१०) १. (ग) हरिरांमा। २. (ख, ग) उ (वि) चारि।
(११) १. (क, ख, घ) हरीया सो, (ग) हरिरांमा निरबंध भया।
(१२) १. (क, ख) हरीया हरि कुं गहि रहौ, (ग) रांम सबद कुं।

पांच सात पचीस मं, वरस एकसौवीस ।
हरीया घरटी[1] अंन ज्युं, के पीस्या के पीस ॥ १३ ॥

पछताअैगौ प्रांणीया, हरि सुं पड़सैं[1] दूरि ।
हरीया पहली[2] चेत ले, तन मन थकैं[3] हजूरि ॥ १४ ॥

कुल कै मारग जुग चलै, ज्युं कीड़ी कुल नाळ ।
हरीया टळै त ऊबरैं, नही तौ लूटै[1] काळ ॥ १५ ॥

पांन पड़ंतै यु कह्यौ, सुणि तरवर की टाळ ।
मेरौ तो दिन [1]षूटिग्यौ, तेरौ आयौ काळ ॥ १६ ॥

टाळ पुकारैं[1] डाळ कुं, सुणौ हमारी वात ।
मेरी ऊमर[2] षूटिगी, तेरी आई घात ॥ १७ ॥

डाळ पुकारैं मूळ कुं, वारी आई तुझि ।
जनहरीया अब चेतलै, जुग मैं मरणौ [1]मुझि ॥ १८ ॥

वारोवारी ऊठिगे, कली काल के लोग ।
हरीया पूठै[1] पंगड़ा, उंनका आया जोग ॥ १९ ॥

---

(१३) १. (क) ऊरया, (ग) में यह साषी ५ संख्याके बाद आती है ।

(१४) १. (ख) घर सुं, (ग) जबै पडौगे, (घ) पड़सी । २. (क, ख, घ) जनहरीया अब (मन), (ग) चेतैं तौ अब । ३. (क) या तन थकै, (घ) है तन सास ।

(१५) १. (ग) चीलै तौ सब जुग चलै, राव रंक सुल्तांन ।
हरीया चीलै चालतां, चाक पड़ै निदांन ॥ १ ॥

(१६) १. (क, ख, ग, घ) पूजिग्यौ ।

(१७) १. (क, ख, ग) कहै अब (इक) । २. (ख, ग) मेरा तौ दिन (दम) षूटिग्या ।

(१८) १. (ग) हरीया मरणौ सकल मै, किसौ और तौ मुझि ।

(१९) १. (ख) पीछै, (ग) लारि रह्या से ।

हरीया राग न[1] रीझबौं, वेद न विद्या पाठ।
काया जासी एकली, साथे षफण [2]काठ ॥ २० ॥

पिलंग पथरणै पौढते, ले ले सीरष सौड़ि।
सोवै[1] सीड़ी साथरै, दौड़ि सबै तौ [2]दौड़ि ॥ २१ ॥

मीठा मेवा जीमते, बौह भोजन बौह भांति।
ता सुं तन छैती पड़ै, जनहरीया करि [1]षांति ॥ २२ ॥

अमल कटोरां [1]गाळते, मावा भरि[2] भरि लेस।
जनहरीया दिन दस का, का कोई वरस करेस ॥ २३ ॥

प्याला भरि भरि पदमणी, पीवैं पीलावै पीव।
जनहरीया[1] जब क्या करै, जम लेजासी[2] जीव ॥ २४ ॥

पैड़ी पैड़ी पाव [1]दे, सूते[2] मिंदर मांहि।
जनहरीया तोई जीव [3]की, घात टरैगी नांहि ॥ २५ ॥

किनक महल ता वीच मैं, ढोळे अंगण काच।
हरीया हेकै[1] नांव विन, नाच गये बौह नाच ॥ २६ ॥

षासा कपड़ पहरते, सूंधौ अंग लगाय।
जनहरीया वे[1] मांनवी, मिले षाक दर जाय ॥ २७ ॥

---

(२०) १. (ख, ग) राग रंग नही। २. (ग) चले एक न साथ ले, काया षफण।
(२१) १. (क) सूता। २. (क) काढैं घरती टोरि।
(२२) १. (ख, ग) सोई मुष माटी भषै (गिलै) हरीया करि कुछि पांति, (क, घ) ष्यांत।
(२३) १. (ख, ग) करि। २. (क) करिकरि।
(२४) १. (ग) हरिरांमा। २. (क, ग) ले जावै।
(२५) १. (ख, ग) धरि। २. (ख, ग) सूवै सोवै। ३. (ख, ग) हरीया (हरिरांमा) तोई (जोय) काळ की।
(२६) १. (क, ख, ग) एकै।
(२७) १. (ख, ग) हरीया सेई (सी)।

आडे तेडे [1]चालते, षांघी पाघ झुकाय।
अपनी[2] छाया निरषते, हरीया[3] गये विलाय॥ २८॥

ऊंचा मिंदर वीच घर, जांह करते [1]घरवास।
होसी[2] घोरां वीच घर, लैंण न द्यै एक [3]सास॥ २९॥

सूंदरि विनां न सारते, निसदिन करते नेह।
से जंगल में पौढीया, हरीया इकल [1]देह॥ ३०॥

कुल मरजाद न लोपते[1], मरते लोका लाज।
नागा करि करि [2]काढिसी, घर सुं[3] कालिक [4]आज॥ ३१॥

माटी का देवळ कीया, काची कळी लगाय।
नही भरोसा रहन [1]का, हरीया[2] वार न लाय॥ ३२॥

मांड्या सो ढहि जावसी, माटी तणा मंडांण।
जनहरीया[1] जमराय का, आवैगा[2] फरवांण॥ ३३॥

पाटिण मंडप पुर नगर, ढहि ढहि होसी ढेर।
जनहरीया जुग[1] जावसी, जे कोई ल्यावैं घेर॥ ३४॥

---

(२८) १. (ख) हरीया कपड़ पहरि करि, (ग) षासा कपड़ पहरते।
२. (क, घ) हरीया। ३. (क, ख, घ) से भी, (ग) पलमै।

(२९) १. (ग) सुषवास। २. (ख, ग) हरीया। ३. (ख, ग) जंगल कीन्हा वास।

(३०) १. (ख, ग)
पिलंग विना नही पौढ़ते, सूत सिरांणै देह।
हरीया जंगल पौढीया, पगां सिरांणै षेह।

(३१) १. (ख, ग) छाडते। २. (ख) छोडिसी। ३. (ख) जौंरो, (घ) हरीया। ४. (ग) हरीया हरि कै नांव विन, सब करि गये अकाज।

(३२) १. (ख, ग) किसा भरोसा देह का। २. (क, ख, ग) ढहता।

(३३) १. (ग) हरिरांमा। २. (क, ख, ग) जब आया।

(३४) १. (क) नर, (ग) हरीया सब जुग जाहिगौ।

देवळ ढहता [1]देषीया, देष[2] न भया उदास।
जनहरीया उंन[3] मूंढ कौ, रिदौ न पूल्है जास॥ ३५॥

नही गरीबी दीनता, साहिब कौ डर नांहि।
जनहरीया तन[1] लूटसी, गांव गळी कै मांहि॥ ३६॥

हरीया सांई सिवरीयै, परहरीयै परनिंद।
साचै सांई बाहिरौ, झूठी[1] तेरी [2]जिंद॥ ३७॥

जब लग सांई याद करि, तब लग पिंजर[1] सास।
हरीया पांणी[2] ओस का, अैसी तन की[3] आस॥ ३८॥

बालपणै नही[1] चेतीयौ, तन तरणापौ थाय।
जनहरीया विरधा भयौ, अजूं न गोविंद [2]गाय॥ ३९॥

हाथ पाव सिर [1]कंपीया, आंष्यां भयौ अंधार।
काळांती पंडर भया, हरीया[2] चेत गिवार॥ ४०॥

---

(३५) १. (ख, ग) देष करि। २. (ख) आप। ३. (ख) तै, (ग) हरीया अैसै।

(३६) १. (ख) जम, (ग) हरीया सेई लूटीया।

(३७) १. (क) जीवन। २. (ख, ग)

सांई सेती सिवरीयै, परहरीयै परतात।
हरीया हरि कै नांव विन, सब ही दोझष जात॥

(३८) १. (ख, ग) तनमें (तेरा)। २. (ख) हरीया ज्युं जल, (ग) हरीया यौ तन कारिवौ। ३. (ख) किसी सास की, (ग) जिसी ओस की।

(३९) १. (ख, ग) बालक थकौ न। २. (क) तौई न चेत्यौ जाय, (ख) जब पछतांणौ जाय, (ग) छांह बलंदी देष करि, ज्युं जुग जाय विलाय।

(४०) १. (ग) वड वूढ़ापौ आवीयौ। २. (क, ख) अबही, (ग) चेतै नही।

मात न तात न भ्रात सुत, सगा न सूंदरि[1] साथि।
हरीया[2] जासैं हेकलौ, करि[3] वोलाऊ हाथि ॥ ४१ ॥
वाटि[1] वटाऊ सब चले, विड़ मैं वासा होय।
जनहरीया सांई [2]विनां, यार न अपणा[3] कोय ॥ ४२ ॥
जनहरीया संसार [1]मैं, देष पाषि मत भूल।
तेरा सजन[2] को नही, रांम नांम[3] सैं तूल ॥ ४३ ॥
वाट विड़ांणी लोक विड़, विड़ ही विड़ मैं वास।
हरीया हरि विन [1]दूसरा, ताहि किसौ [2]वेसास ॥ ४४ ॥
हरीया[1] संगी रांम विन, या कलि मांहि[2] न कोय।
काळ[3] पकड़ि ले जावसी, ऊभा देषैं [4]लोय ॥ ४५ ॥
हरीया संगी रांम है, का सतगुर की सीष।
जै[1] पैंडै दुनीयां चलै, भरू[2] न एको[3] वीष ॥ ४६ ॥

---

(४१) १. (ग) ना कोई सगा न। २. (क) सब को जासी, (ख, ग) चलै वटाउ एकलौ। ३. (क) विन, (ख) हरि।

(४२) १. (ख) वीर। २. (ग) हरीया हरि विन दूसरा। ३. (ग, घ) तेरा।

(४३) १. (क) कुं, (ख) हरीया सब संसार कुं, (ग) झूठा सुष संसार मै, हरीया देष न। २. (ख) तेरा इन मैं, (ग) तेरै तन का। ३. (ख) सजन हरि, (ग, घ) नारायन।

(४४) १. (क) को नही, (ख, ग) तेरा को नही। २. (क, ग) छाडि विड़ांणी आस, (ख) छाडि सकल की आस।

(४५) १. (ग) तेरा। २. (क, ख) कलि मैं और, (ग) हरीया और। ३. (क) जीव, (ग) बांह। ४. (क) देषै सबही, (ग) वात न बूझै कोय।

(४६) १. (क, ख, घ) जिन। २. (ख, ग) भरौ। ३. (क, ख, घ) कोई (काई)।

चंगा थका न चेतीया, मंदा क्या पछताय।
हरीया लागी लाय [1]मैं, भार न कढ्या जाय ॥ ४७ ॥*

राव रंक वड भूपती, वासौ वसे सराय।
हरीया आये [1]ऊठगे, थिर नही कोयं [2]रहाय ॥ ४८ ॥

षंड षंड हुय जांहिगे, नाना भव परकार।
जनहरीया निरकार[1] थिर, और इथिर आकार ॥ ४९ ॥

रांम नांम चेत्यौ नही, गाफिलपणै गिवार।
हरीया रहिसैं [1]पारकै, हाळी घर घर बार ॥ ५० ॥

रांम नांम नही चेतीयौ, करि-करि मन की ढील।
जनहरीया सर जल भख्या, प्यासा मरै पपील ॥ ५१ ॥

रांम नांम नही [1]चेतीयौ, करी विड़ांणी[2] आस।
जनहरीया घर गोरिवै, सरिक्यां सेती वास ॥ ५२ ॥

रांम नांम नही [1]चेतीयौ, आलस करि करि[2] अंग।
हरीया से रीता रह्या, सूरां कूकर संग ॥ ५३ ॥

---

(४७) १. (ख) लगी अगोकड लाय ज्युं, (ग) अगवा की लाय ज्युं, लगी पछोकड जाय। (घ) ज्युं, * (ख, ग) में यह विशेष है—
देह विड़ांणी नेह विड़, विड़ ही विड़ घर (मै) वास।
हरीया संगी को नही, जाहि (चले) एकलौ (एक निरास) सास ॥

(४८) १. (क, ख) हरीया निसदिन वीच मैं, (ग) हरीया देह सराय मै, (घ) आये ज्युं सब ऊठिगे। २. (क, ख, ग) आये ज्युं उठि जाय, (घ) हरीया थिर नही थाय।

(४९) १. (क, ख) थिर नांव है, (ग) रांम नांम थिर एक है।
(५०) १. (क) हरीया से नर होयसै।
(५२) १. (ख) गायौ नही। २. (क) और की।
(५३) १. (ख) गायौ नही। २. (क) आण्यौ।

रांम नांम नही[1] जांणीयौ, कीया और कळाप।
हरीया जै[2] घरि संपदा, होसी[3] सांडा साप ॥ ५४ ॥
रांम नांम नही[1] जांणीयौ, हाल्यौ अवसर[2] हारि।
बिंध्यौ बारि नरेस [3]कै, गज सिर धूरी डारि ॥ ५५ ॥
गज पावां सिर[1] चंपीयौ, करि[2] आंकस की [3]मार।
उर आंकस मान्यौ नही, हरीया सहिसी [4]भार ॥ ५६ ॥
रांम नांम विण जांणीयां, वासौ वस्यौ[1] बंबूल।
जै पागोथै पग [2]धरु, हरीया[3] भाजै सूल ॥ ५७ ॥
रांम नांम विण जाणीयां, वात विणंठी मूल।
हरीया जब होसी [1]कहा, अंत भयौ असथूल ॥ ५८ ॥
या जुग मांही [1]जीवणा, त्युं तरवर का फूल।
जनहरीया[2] इन जीव का, तन करि पहली सूल ॥ ५९ ॥
रूप रंग बौह[1] फूलड़ा, तन तरवर का[2] पांन।
हरीया झोलौ काळ कौ, झड़ि झड़ि ह्वै[3] झफांन ॥ ६० ॥

---

(५४) १. (ख) गायौ नही, (ग) चेत्यौ नही, करि करि कोट कळाप। २. (क) हरीया होसी, (ख) जनहरीया घर, (ग) हरीया जाकै। ३. (क, ख, ग) कै सांडा कै साप।

(५५) १. (ख, ग) विन। २. (ख, ग) जाय (गए) जमारौ। ३. (ख, ग) जनहरीया (हरिरांमा) ज्युं (तैं) राज दर।

(५६) १. (क) सुं। २. (क) सिर। ३. (ख, ग) आंकस दे घधकारि। ४. (क) हरीया हरि आंकस विनां, पूठि पड़ैगौ भार। (ख, ग) हरि (मन) आंकस नही मांनीयौ, फिर फिर फेटां मारि।

(५७) १. (ग) लीयौ। २. (क, ख, ग, घ) धरूं। ३. (क, ख, ग) तै तै।

(५८) १. (क, ख) जनहरीया जब क्या हुवै (सी), (ग) हरिरांमा अब क्या हुवै।

(५९) १. (क, ख, ग, घ) जीवणौ। २. (ग) हरिरांमा।

(६०) १. (क, ख, घ) ज्युं। २. (ख) तन ज्युं डाळी, (ग) जै जै डाळी फूल है, तौ तैं डाळी पान। ३. (ख, ग) पड़ै धरांन।

हरीया झोलौ काळ कौ, सब जुग[1] निकसै मांहि।
कोइक हरिजन ऊबरै, जाकै दिसौ न जांहि॥ ६१ ॥*
हरीया कलि मैं आय कै, कहा करैं नर कूर।
आसी वरीयां अंत की, मुषा परैगी धूर॥ ६२ ॥
धकाधकी मैं दिन गया, सूतां रैन विहाय।
हरीया हरि की भगति विन, कहा[1] कीयौ नर [2]आय॥ ६३ ॥
सूती सपनै रैंन कै, पाय विलंबी सैंन।
हरीया जाणुं उठि [1]मिलुं, ऊघरि आये नैंन॥ ६४ ॥
सूती सपनै औदकी, बोली अटपट वैंन।
जनहरीया घरि[1] अंगनै, सही पधारे सैंन॥ ६५ ॥
जे तुं सपना साच हैं, साचा सैंन मिलाय।
जब नही देषु नैंन भरि, तब कैसैं पतिआय॥ ६६ ॥
सपनैई सांई मिलै, सो सांई का मिंत।
जनहरीया[1] सो चिंतवै, अंतर[2] आय मिलंत॥ ६७ ॥

---

(६१) १. (क, ग) ही। * (ख, ग) मैं सं० ६१ के आगे अधिक प्राप्त हैं।

रांम नांम विण जांणीयां, कहा कीयौ नर आय।
या भरीया संसार मैं, रीता आवै जाय॥

(ख, ग) हरीया कलि मैं (कहा कीयौ वांहां) आय करि, मिनष जमारौ पाय। रांम भगति जांनी नही, गुळ साटै षळ षाय॥

(६३) १. (क) क्या कीधौ। २. (ख, ग) आए मिल्बा रांम कुं (सुं) पलै और ल्गाय।

(६४) १. (ख, ग) ज्युं देषुं त्युं उठि मिलु।
(६५) १. (क, ख) मुझि आंगणै, (ग) हरिरांमा मुझि०।
(६७) १. (ख) हरीया ऐसा, (ग) हरिरांमा हरि चिंत विन। २. (क, घ) सोई, (ख) सपनै, (ग) सपनैउ न।

जा दिन[1] रांम न जांणीयौ, ता दिन[2] भयौ अकाज।
जनहरीया[3] संसार मैं, आय मूवौ नही लाज ॥ ६८ ॥

जनहरीया कायम [1]कीया, मांनव तेरा मुष।
मुष तैं करता नां [2]भजैं, कैसैं होय निदुष ॥ ६९ ॥

साचा मुष मांनव तणा, जा मुष निकसै रांम।
जनहरीया[1] मुष रांम विन, सोई मुष वेकांम ॥ ७० ॥

सोई मुष पसूवै दीया, सोई मुष नर देह।
गुरमुष सिवरै रांम कुं, पसूवा[1] षाय मरेह ॥ ७१ ॥

चरन पीयन कुं मुष दीया, उदर भरन कै काज।
हरीया रांम न संचरै, सो मुष जांणि[1] अकाज ॥ ७२ ॥

अधम-उधारन याद करि, नर तेरा निसतार।
हरीया अधम-उधार [1]विन, और न को [2]आधार ॥ ७३ ॥

अधम-उधारन याद करि, तन मन राषि[1] नचिंत।
जनहरीया कुंण मेटसी, सांई विनां सचिंत ॥ ७४ ॥

अधम-उधारन एक है, दूजा ऊथपथाप।
हरीया थापी [1]थापना, जाका जपीयै जाप ॥ ७५ ॥

---

(६८) १. (क, ख,) जब तैं, (ग) जब तैं रांम विसारीयौ। २. (क, ख, ग) तब तैं। ३. (क) हरीया इन, (ख, ग) हरीया से।

(६९) १. (ग) कायम जौ करता नही। २. (क, ख, ग) मुप करता कुं नां भजै।

(७०) १. (ग) हरिरांमा।

(७१) १. (क) वेमुष, (ख) दूजा।

(७२) १. (ग) भये।

(७३) १. (ग) हरीया हरिकै नांव विण। २. (ख, ग) कौंण उधारणहार।

(७४) १. (क) रहो, (ख, ग) करि करि रहौ।

(७५) १. (ग) हरिरांमा सोई सदा।

एक रांम कुं[1] सिवरीयै, दूजा धरौ न चित।
जनहरीया नही रांम [2]विन, तो रुषवाळा नित ॥ ७६ ॥

रांम विनां कुंण राखसी, कण[1] षेती किरसांण।
नही तौ चिडैं विगाड़िसैं, हरीया[2] चेत अजांण ॥ ७७ ॥

हरीया निज[1] मन चेत लै, जौ पर[2] वंछै ठौर।
एकै सांई[3] [4]बाहिरौ, धणी न दूजा और ॥ ७८ ॥

धणी विहूंणा धौंल हर, ढहि ढहि ढेर थीयाह।
हरीया पाछा आय कै, वास न को वसीयाह ॥ ७९ ॥

हरीया तन कौ[1] गीरबौ, कहा करैं नर[2] देष।
वेहमाता दांणौ दळै, औरां[3] लिषती लेष ॥ ८० ॥

इन काया कौ गीरबौ, मूढ करौ मत कोय।
जनहरीया रांवण घरां, जिका हुई नर जोय ॥ ८१ ॥

हकां बेली[1] हक है, वेहकां वेहक।
हरीया हेकै हक विन, सब दिन जांहि अन्हक ॥ ८२ ॥

एता सुष संसार का, एता[1] सुष न [2]जांनि।
जनहरीया सो[3] सुष है, मूरष ताहि न [4]मांनि ॥ ८३ ॥

---

(७६) १. (क, ख) एको रांम, (ग) सांई सदा संभारीयै। २. (ख) सा, (ग) हरीया हरि सा को नही।

(७७) १. (क) ज्युं ह्वाळी, (ख, ग, घ) ज्युं। २. (ख) बंदा।

(७८) १. (क) अंतर चे०, (ग) आपा आतिम। २. (क) निज, (ख, ग) मन। ३. (ख) आतम। ४. (ग) हरीया आतिम एक विन।

(८०) १. (क, ख) जनहरीया तन। २. (ग) जुग। ३. (क, ग) सो भी।

(८२) १. (ख, ग) साहिब।

(८३) १. (क, ख) जेता। २. (ग) जेता सब ही दुष। ३. (क, ख, ग) हरीया सोई। ४. (क) जे कोई विरला जांनि, (ग) ता सुं रहे विमुष।

सब ही चाहैं सुष कुं, दुष न कोई [1]चाहि।
हरीया सुष दुष सिरजीया, टरैं न टारयो [2]जाहि ॥ ८४ ॥

दुनीयां रोवै रोवणा, देष विड़ांणी षाल।
नांवसंनेही [1]बाहिरौ, हरीया होय[2] विहाल ॥ ८५ ॥

किसका रोयजै[1] रोवणा, किसकै आगैं जाय।
मात पिता सुत बंधवा, हरीया[2] जाहि विलाय ॥ ८६ ॥

दुनीया रोवै रोवणा, रोय रोय करै पुकार।
जनहरीया भांजे[1] घड़ै, ज्युं भांडा कुंभार ॥ ८७ ॥

आंवण जांवण आदि का, आज कालि का नांहि।
हरीया क्या [1]पछताईयै, मौत सकल कै मांहि ॥ ८८ ॥

घर घर लगौ लांयणौ, घर घर धाह पुकार।
जनहरीया[1] घर आपणौ, रषै सो हुसीयार ॥ ८९ ॥

या नर देही[1] पायकै, भज्यौ नही [2]करतार।
अैसो[3] औसर बौहरि कै, मिलै न वारुंवार ॥ ९० ॥

---

(८४) १. (ख, ग) चाहै कोय। २. (क, घ) सोई लेह निरवाहि, (ख) टाख्यां टरै न कोय, (ग) न्यारा किस विध होय।

(८५) १. (क) हरीया नांव संनेह विन, (ख, ग) नांव (रांम) संनेह न जांणीयौ। २. (ख, ग) रोय रोय भई, (घ) यो तन।

(८६) १. (क) हरीया रोऊं, (घ) हरीया रोयजै। २. (क, ग, घ) सबही।

(८७) १. (क, ग) हरीया भांजे सो।

(८८) १. (ख, ग) क्या पछतावै प्रांणीया।

(८९) १. (ग) हरिरांमा।

(९०) १. (ख) जनहरीया नर देह मैं, (ग) हरीया नर तन, (घ) यो मिनषा तन। २. (घ) भगवान। ३. (क) हरीया, (घ) जनहरीया तन मानषौ, मिलै नही आसांनि।

नर तन जोबन देष [1]कै, क्या परफूलत होय।
हरीया ज्युं[2] जल वाहळा, वहतां वार न कोय ॥ ९१ ॥

हरीया[1] सूतौ नींद भरि, कहा नचीतौ [2]रैंन।
या जुग मांही[3] जीव का, साथी कोय न [4]सैंन ॥ ९२ ॥

कुण वेली संसार में, जीय एकलौ जाय।
हरीया हरि विंन [1]दूसरा, संग न कोई[2] थाय ॥ ९३ ॥

संगी एको[1] रांम है, दूजा संग न[2] ग्रंग।
हरीया तन जोबन थकै, करि[3] कोई जीव का ढंग ॥ ९४ ॥

सब ही स्यांणा हुय रह्या, नही ईयांणौ कोय।
स्यांणौ सोई जांणीयै, अलष ओळखै सोय ॥ ९५ ॥

राज पाट सुत वित सबै, सुंदरि महल विलास।
हरीया हरि सुष[1] बाहिरौ, ज्युं जंगल का घास ॥ ९६ ॥

हरीया जंगल घास कुं, हरया देष मत भूलि।
दिसटंग[1] है दिन च्यार कौ, जाहि जड़ां सुं षूलि ॥ ९७ ॥

---

(९१) १. (क, ग) तन जोबन कुं देष करि, (घ) यौ तन जोबन देष नर। २. (क, घ) जनहरीया, (ग) हरीया युं वहि जावसी, ज्युं जुग जाता जोय।

(९२) १. (क, घ) तुं क्युं। २. (घ) होय। ३. (ग) तेरै जुग मै को नही, (घ) हरीया जुग मैं। ४. (ग) रांम सरीषा सैंन, (घ) सैंन न कोय।

(९३) १. (ग) हरीया एको रांम विन। २. (क, घ) स्वारथ केरा।

(९४) १. (ग) तेरा संगी, (घ) रांम नांम विन दूसरा। २. (घ) संग न कोई। ३. (घ) करौ जीव का ढंग।

(९६) १. (घ) जनहरीया हरि सुख विनां। इस अंगमें यहाँसे लेकर आगेकी साषियाँ 'ग' में नहीं हैं।

(९७) १. (घ) दिष्ट।

हरीया सब जुग जात [1]है, थिर नही दीसै [2]कोय
रांम नांम थिर हेक [3]है, का कोई हरिजन [4]होय ॥ ९८ ॥

हरि थोरौ करि जांणीयौ, इन औसर नर आय ।
हरीया घणौ चितारिसी, परहथ पड़सी जाय ॥ ९९ ॥

हाथि पड़ै जब और कै, वीचैगी तन मांहि ।
हरीया दोळी पाळि जल, पहली बंधी नांहि ॥ १०० ॥

हरीया पाळि तळाव की, फाटी जब क्या होय ।
यौ तन धन परहथ [1]पड्यौ, दाव न लगै [2]कोय ॥ १०१ ॥

हरीया तन जोबन थकै, कीया दीया जो जाय ।
कीजै सिवरन रांम कौ, दीजै हाथि[1] उठाय ॥ १०२ ॥

हरीया दीया हाथ का, आडा आसी तोय ।
रांम नांम कुं [1]सिवरतां, सबै कांम सिध [2]होय ॥ १०३ ॥

हरीया रांम संभारीयै, ढील करौ मत कोय ।
सभां सांझि सवेर [1]मैं, क्या जाणुं क्या होय ॥ १०४ ॥

---

(९८) १. (क, ख) जावसी। २. (क) रहसी हरि का नांम, (घ) रहता कोउ नांहि। ३. (क) नांम विनां से रहि गया, (घ) रहता एको रांम है। ४. (क) ठौर न वाकुं ठांम, (घ) न्यारा सब घट मांहि।

(१०१) १. (क) तन जोबन परिहथ पड्यौ, (घ) पहल कीया सो खुब है, २. (घ) पीछै दाव न कोय।

(१०२) १. (ख) धन कुं देह।

(१०३) १. (क, ख) सिवरीयां। २. (क) चौरासी सिध होय, (ख) सिधी कांमना होय, (घं) पार उतारै सोय।

(१०४) १. (घ) संझां वीच सुवार मै।

हरीया रांम संभारीयै, जब लग पिंजर सास ।
सास सदा नही [1]प्रांहणौ, ज्युं सांवण का घास ॥ १०५ ॥

जनहरीया षड़ सांवणु, सदा न हरीयौ होय ।
अैसैं सास सरीर मैं, थिर नही दीसै कोय ॥ १०६ ॥

हरीया हरि सौ को नही, सजन मेरै[1] और ।
मेटै जांमण मरण कुं, द्यै अमरापुर ठौर ॥ १०७ ॥

हरीया जांह अमरापुरी, भगति रांम की[1] भाय ।
विना भगति से [2]बापड़ा, धौड़्या जमपुर जाय ॥ १०८ ॥

हरीया हरि सिवरत रहौ, हालौ अपणै हक्कि ।
पहली तन का बल थकै, पीछै रसनां थक्कि ॥ १०९ ॥

हरीया जब रसनां [1]थकी, जासी सिवरन छूटि ।
कीया जाहि जो कीजीयै, लेसी तन धन लूटि ॥ ११० ॥

तन कुं जौरौ लूटसी, धन कुं लूटैं लोक ।
नांन्हौ करि करि बाळिसैं, हरीया हाड ठंठोक ॥ १११ ॥

षांवण पीवण छोडीया, छोड्या घर घरवास ।
हरीया वसती छाड कै, कीन्हा ज़ंगल वास ॥ ११२ ॥

हरीया सास सरीर मैं, वास किता दिन होय ।
सासोसासा[1] घटत है, कहा नचीतौ सोय ॥ ११३ ॥

---

(१०५) १. (घ) पाहणा ।

(१०७) १. (क, घ) तेरै ।

(१०८) १. (क, घ) तहां हरि भगति सुहाय । २. (क, ख) से नर हरि की भगति विन ।

(११०) १. (क, घ) हरीया थाकी (कै) जीभड़ी ।

(११३) १. (क) उसासा ।

हरीया दोळी कीजीयै, रांम नांम की वाड़ि ।
नही तौ जौंरौ आय कै, वाड़ी जाहि विगाड़ि ॥ ११४ ॥

हरीया वाड़ी वीगड़ै, सिर परि धणी न होय ।
युं चिड़ीयां षाया षेतड़ा, हाकळ करै न [1]कोय ॥ ११५ ॥

जनहरीया सिर परि धणी, षड़ा षेत कै मांहि ।
टोहाळी[1] करि नांव की, विगड़न कुं कुछि नांहि ॥ ११६ ॥

अथ मन कौ अंग २०

यौं मन मुसदी सकल का, आपा अंतर जांणि ।
हरीया पांच पचीस[1] कु, उलटि एकठा[2] आंणि ॥ १ ॥

मन वंका मन पधरा, मन चंचल मन थीर ।
जनहरीया मन वस्य कीया, सब सुष भया सरीर ॥ २ ॥

जनहरीया[1] मन थिर नही, फिरै चहु दिस फेर ।
गुर सबदां सुं पाईयै, जासुं जंम ही जेर ॥ ३ ॥

मन[1] ही चाळा चिरत बौह, मन ही ग्यांन अग्यांन ।
मन ही आपा उलटि कै, धरै उंनमुंनी ध्यांन ॥ ४ ॥

---

(११५) १. (क) नां राषवाळा कोय ।
(११६) १. (क) करौ टोहाळी ।

---

(१) १. (क, ख) जनहरीया मन पंच कुं, (घ) जनहरीया मन पवन कुं । २. (ग, घ) एक घर ।
(३) १. (ग) हरीया यौ ।
(४) १. (ग) मन चंचल चाळा करै, मन गाफिल अग्यांन । मन ही ग्यांनी ग्यांन करि ।

मन ही[1] झगरा जोरि कै, मन ही न्याव निछोरि ।
जनहरीया[2] पड़पंच सुं, मन तिनका ज्युं तोरि ॥ ५ ॥

मन विसहर तन वंबही, ऊठि[1] विलगे पाय ।
जनहरीया तिह लोक[2] मैं, जांह जांउं तांह षाय ॥ ६ ॥

मन विसहर तन वंबही, गुर गम[1] झेलौ आय ।
जोग जुगति सुं[2] राषीयें, हरीया डस्य न जाय ॥ ७ ॥

निजमन विसहर विरह विष, उर विच लगा[1] आंनि ।
पेम लहरि पल पल उठै, हरीया निरभै[2] जांनि ॥ ८ ॥

मन कुं मैं[1] डरपावते, मन मोकुं डरपाय ।
जनहरीया मन सबल[2] है, करैस आवै[3] दाय ॥ ९ ॥

तन जीता तौ क्या भया, जौ मन हारचा होय ।
जनहरीया मन जीतलै, तन की हारि न जोय ॥ १० ॥

मन कुं मार्यां तन थकै, तन मार्यां मन जाय ।
मन तन पहली[1] मारिलै, पीछै काळ न षाय ॥ ११ ॥

भावै तौ मन रांम कहि, भावै कहि कुछि और ।
जनहरीया मन दौरता, रहै नही पल ठौर ॥ १२ ॥

---

(५) १. (ख, ग) सुं । २. (ग) हरिरांमा ।
(६) १. (ग) लारि । २. (ग) हरीया जुग भय लहरीयां ।
(७) १. (क, घ) मुष । २. (ग) हरीया युं जीव जतन करि, ज्युं डस्य कबू न ।
(८) १. (क, ग) आय । २. (क) हरीया विघन न काय, (ग) सो जीवत मरि जाय ।
(९) १. (क, ख) पावति (ती) । २. (क, घ) हरीया मन बलवंत है (बौह) । ३. (ग) मैं डरपावत मनन कुं, मो मन रह्यो डराय ।
हरीया है मन मसकरा, डारयौ नांहि डराय ॥
(११) १. (घ) जनहरीया मन मारीया ।

मन मेरा मकरी भया, पंचे चेला साथि।
जनहरीया गुर ग्यांन [1]दे, जब कुछि आया हाथि ॥ १३ ॥
रंच[1] एक सुष कारनै, मूरष[2] भये मगंन।
जनहरीया तन बल थक्या, मारि न सघ्या मंन ॥ १४ ॥
तन कुं मार्‌यां क्या हुवै, हरीया जीवै मंन।
बाहरि कूटै बंबई, मांहि करै अहि फंन ॥ १५ ॥
तन जीया तौ[1] क्या भया, जौ मन मूंवा[2] नांहि।
जनहरीया मन मारीया, से जीता[3] जुग मांहि ॥ १६ ॥*
मन का सोषी मन है, मन का दोषी मंन।
हरीया सोषी[1] सकल का, एको[2] रांम भजंन ॥ १७ ॥
तन सुं आघा उठि[1] मिलै, मन सुं पूठा होय।
जनहरीया मन बाहिरौ, कांम सरै नही [2]कोय ॥ १८ ॥
मन करि मन सुं नां मिलै, तन सुं[1] तन मिल जाय।
हरीया तन मन बाहिरौ, सो मिलबौ न [2]सुहाय ॥ १९ ॥

---

(१३) १. (क, ख, घ) तैं, (ग) लैं।
(१४) १. (घ) रंचक सुष कै। २. (ख) तन मन।
(१५) (ग) प्रतिमें नहीं है, इस जगह यह साषी है।
मनकुं मार्‌यां तन थकै, तन मार्‌यां क्या होय।
हरीया मन कुं मारिलै, तन सारा नही कोय ॥
(१६) १. (क) तन तैं जीया, (ख) तन सुं जीया। २. (क, ख) मार्‌या, (घ) मार्‌या जांनि। ३. (ख) जीव चल्या, (घ) तौ जीया परवांन। * (ग) में यह साषी नहीं है।
(१७) १. (ख) एकोसोषी, (ग) हरिरांमा है, (घ) जनहरीया है सबन का। २. (ख) हरीया, (ग, घ) सोषी।
(१८) १. (क, ख) हुय।
२. (ग) मन कौ मिलबौ सांच है, मन विन मिलबौ झूठ।
हरीया तन मिल क्या करै, जौ मन होय अपूठ ॥
(१९) १. (क, घ) तैं। २. (क, ग, घ) कहाय।

तन मिलतासुं तन मिलै, मन मिलतासुं नैंन।
नैंन मिलतां सब मिलै, हरीया तन मन [1]वैंन ॥ २० ॥

जीता जीत न [1]सघीयै, हारुं तौ न हराय।
हरीया मन बलिवंत सु, कहि[2] कैसैं सारि पाय ॥ २१ ॥

हार जीत मन [1]आपनी, और[2] किसी की नांहि।
जनहरीया मन हेकलौ, सारी[3] वातां मांहि ॥ २२ ॥

मन ही राता रांम सुं, मन ही विरता रांम।
हरीया हेको[1] मन करै, भला बुरा सब कांम ॥ २३ ॥

मन चंचल मन पंगला, मन बल त्रिबल [1]होय।
जनहरीया मन मांहिली, वात न जांणै [2]कोय ॥ २४ ॥

मन माता मन [1]दूबला, मन राजा[2] मन रंक।
मन तोलौ मन ताकड़ी, मन झुकता मन संक ॥ २५ ॥

मैं जांण्यौ मन एक था, मन का बौहत [1]विनांन।
हरीया मन छिनछिन [2]फिरै, डाळी डाळी [3]पांन ॥ २६ ॥

---

(२०) १. (घ) मन मिल्ता सुं नैन मिल, नैंन मिल्तां तंन।
हरीया पीछै सब मिल्या, तन मन नैन वचंन ॥

(२१) १. (क, ख, घ) जीतुं (जीपु) तौ नही (ईन) जीपीयै, (ग) मारूं तौ मन ना मरै। २. (ग) मैं।

(२२) १. (क) माहिली, (ग) हार जीत या मनकी, (घ) हारि जीती मांहि मन। २. (घ) मन विन। ३. (क, ख, घ) सबही, (ग) हारी जीती मांहि।

(२३) १. (क, ख, ग, घ) एको, (ऐकौ)।

(२४) १. (घ) मन निरबल बलिवंत। २. (ग) हरीया यौ मन एकता, अंतर मिटगी दोय, (घ) मनहीमन जानंत।

(२५) १. (ख) ऊंमता। २. (क, ख, ग) राई।

(२६) १. (ग) सरूप। २. (ग) करै। ३. (ग) केता रंग निरूप।

छिन चाढै छिन ऊतरै, छिन में धरै धीयांन।
हरीया हेकै पलक मैं, केता करै पीयांन ॥ २७ ॥

मन सोनौ मन सोहगी, मन ही काच कथीर।
हरीया रषै हेकठौ, सब रस पावै सीर ॥ २८ ॥

यौं मन हीरौ[1] लाल थौं, भयौ[2] अमोलिक मोल।
जनहरीया चड़ि उतरै, लहै न कौडी मोल ॥ २९ ॥

मन उतरीया नां चड़ै, करिहौ कोड़ि[1] विचार।
ज्युं तरवर फल उतर्यौ, फेर न विलगै [2]डार ॥ ३० ॥

जनहरीया मन हेक दिन, गयौ कुसंगी [1]साथि।
यौं मन फाटा दूध ज्युं, बौहरि न आवै [2]हाथि ॥ ३१ ॥

मन कुं जांणि न दीजीयै, लीजै घेर बहोरि।
जनहरीया मन [1]फेरीयै, ज्युं हाळी की ओरि ॥ ३२ ॥

काया कसी कबांण ज्युं, मन तरगस का तीर।
हरीया ज्युं ज्युं[1] फैंकीयौ, जाय पड़्यौ [2]तलसीर ॥ ३३ ॥

मन तलसीरां[1] वहि गयौ, ज्युं पांणी पड़नाळ।
जनहरीया तन लूटसी, भारी पड़िसी काळ ॥ ३४ ॥

मन चंचल चाळा करै, टाळौ करै न कोय।
हरीया मेलै रांम कुं, टुक ठंटाळा होय ॥ ३५ ॥

---

(२९) १. (ग) मोती। २. (घ) हुतौ।
(३०) १. (ख) भावै करौ, (ग) करिहौ कोटि उपाय। २. (ग) विले न विलै जाय। (क, घ) में यह नहीं है।
(३१) १. (घ) संग। २. (घ) करै घिरत कुं भंग।
(३२) १. (ग) हरीया यौ मन फेर लै।
(३३) १. (ख) जनहरीया मन। २. (घ) त्युं त्युं ग्यौ पर तीर।
(३४) १. (घ) परतीरां।

टूक टूक मन हुय पड़्यो, भाजि भयौ [1]भंगार।
जनहरीया मन रांम विन, कौंण घड़ावणहार ॥ ३६ ॥

मन मेरौ[1] चलि जांह गयौ, दूरि दिसंतर [2]देस।
जनहरीया[3] उंन देस की, आय न कोय [4]कहेस ॥ ३७ ॥

मन अैसौ जैसौ भयौ, तैसौ भयौ न कोय।
जनहरीया पल एक में, कहै दूरि की सोय ॥ ३८ ॥

अणदीठी अणसांभळी, आपा धरै[1] उठाय।
हरीया यौ मन अलष है, मोपैं लष्यौ न जाय ॥ ३९ ॥

जांणु जांह जावै नही, आप मतौ तांह जाय।
जनहरीया मंन मसकरौ, काय न आवै [1]दाय ॥ ४० ॥

मन वरज्यौ लागै नही, जागै विषीया [1]स्वाद।
हरीया मन की कीजीयै, मन ही सुं [2]फरीयाद ॥ ४१ ॥

तन जल मल की कोथली, मन पवनां की सांब।
जतन करौ षुलि जावसी, मांस पळेव्या चांब ॥ ४२ ॥

हरीया मन परमोधिल्यै, ज्युं सारै सब [1]काज।
पांचे पालै पसरता, देसी अणभै [1]राज ॥ ४३ ॥

---

(३६) १. (ग) कण कण भयौ षुहार, (क, घ) में यह नहीं है।
(३७) १. (ग) यौ मनवौ। २. (ग) जोय। ३. (ग) हरिरांमा।
४. (ग) वात न मांनै कोय।

(३९) १. (ग, घ) कहै।
(४०) १. (ख) कहि कैसैं पतिआय, (ग) हरीया यौ मन मसकरौ क्या जांणुं कब आय, (घ) कैसी आवै दाय।

(४१) १. (घ) काज। २. (घ) मन की मन कुं लाज।
(४३) १. (क, ख, ग, घ) कांम। २. (क, ख, ग, घ) मेलै आतम (आतिम) रांम।

मन परमोध्यां क्या हुवै, क्या पांचे पालंत ।
जनहरीया[1] मन कांमना, अंतर मैं सालंत ॥ ४४ ॥

मन ही[1] पारस लोह मंन, मन पावक मन दार ।
पारस मिल कंचन [2]भया, पावक करिग्यौ छार ॥ ४५ ॥

पारस रूपी रांम है, घट घट रह्यौ समाय ।
पावक रूपी काळ है, हरीया सब कुं[1] षाय ॥ ४६ ॥

मन मैंगल मैमत भयौ, आंकस सहै न कोय ।
जनहरीया कुछीएक [1]सहै, जौ[2] ग्यांन गरीबी होय ॥ ४७ ॥

मन कुं काठा गहि रहौ, किधू न दीजै जांनि ।
जनहरीया[1] जौ मन गयौ, तौ सब रस की हांनि ॥ ४८ ॥

जनहरीया मन मिरघ [1]ज्युं, वरज्यौ केती वार ।
काया वारी वीच मैं, करि करि जाहि [2]विगार ॥ ४९ ॥

जनहरीया मन मिरघ कै, पांच पचीसुं नारि ।
न्यारी न्यारी फिर चरै, हाकळ गिनै न वारि ॥ ५० ॥

आड अटक मांनै नही, मन भावै तांह जाय ।
जनहरीया मन[1] मारिकौ, हाथि किसी विध आय ॥ ५१ ॥

---

(४४) १. (ख, ग) हरीया जौ ।
(४५) १. (क, घ) हरीया । २. (ग) थीयै ।
(४६) १. (ग) जुग ।
(४७) १. (क, घ) आंकस सहै, (ख) हरीया कुछि आंकस सहै, (ग) हरीया मन आंकस सहै । २. (क, ख, ग, घ) में जौ नहीं है ।
(४८) १. (ग) हरीया जौ जब मन गया ।
(४९) १. (ख, ग) कुं । २. (ग) साषी ४९ से ५७ तक छुटकरमें है ।
(५१) १. (ग) हरीया ऐसौ ।

यौ मन माटी ईट विन, मारै ऊंडी नीव।
हरीया हेकै पलक मैं, चहुं दिस चांपै सीव ॥ ५२ ॥

जनहरीया मन मोकल्यौ, तीन लोक फिर षाय।
जै कोई पकड़ै[1] सूरवौ, सत का बांण संभाय ॥ ५३ ॥

मन ही डरपै काळती, मन ही होय [1]अबीह।
हरीया यौ मन[2] स्याळ[3] हुय, मन फिर होवै [4]सीह ॥ ५४ ॥

हरीया यौ मन हटकीयौ, रहै नही छिन एक।
मन मेवासी वस्य नही, इनका चिरत[1] अनेक ॥ ५५ ॥

हरीया छल बल नां रहै, रहै न किनकै जोर।
मन का संगी सबल हैं, पांच पचीसुं चोर ॥ ५६ ॥

हरीया पांच पचीस कुं, हटिक्या रहै न राषि।
जिन राष्या जिन सहज सुं, रांम नांम कुं आषि ॥ ५७ ॥

मन सुं मन मिलता नही, औगण धरत अनेक।
बौह गुणवंता मन मिल्या, भया एक का[1] एक ॥ ५८ ॥

पांणी सुं मन पतळा, धूवैं सुं मन झीन।
जनहरीया[1] इन[2] मन का, मन ही दोसत कीन ॥ ५९ ॥

---

(५३) १. (क, ख, घ) मारै, (ग) जो कुछिएक हटिक्यौ रहै।
(५४) १. (ग) अबीव। २. (क, घ) मन ही। ३. (ग) जीव।
४. (ग) उलटि मिल्यै मन सीव।

(५५) १. (घ) चहन।
(५८) १. (घ) जनहरीया मन।
(५९) १. (ख, ग) हरीया मन ही। २. (क, घ) मुझि।

अथ मन मृतग कौ अंग २१

मन जांणु[1] मिरतग भयौ, पांच सती भई लार।
हरीया अहरन ऊठिकै, बोलै मारुं मार ॥ १ ॥

मन कुं मारि मसांण करि, भयौ[1] षाक दर जाय।
जनहरीया मन भूत हुय, फेर विलगौ आय ॥ २ ॥

मन कुं मिरतग जानि करि, मत कोई करौ गुमांन।
जनहरीया मन[1] रूप धरि, किता[2] करै तूफांन ॥ ३ ॥

साध जबै लग डर करै, प्राण पंजर मैं थाय।
जनहरीया मन धवनि ज्युं, कब[1] ऊठै धूवाय ॥ ४ ॥

हरीया मन मिरतग भयौ, तौई भरोसौ नांहिं।
ज्युं मन मिरतग डेडरौ, कूदि उठै जल मांहि ॥ ५ ॥

जल काया मन मींडका, मिरतग जीव[1] बहोड़ि।
साध जबै डरपत रहै, हरीया जब लग[2]षोड़ि ॥ ६ ॥

---

(१) १. (क, घ) मन मेरौ, (ग) मन सूरौ।
(२) १. (घ) जिंद।
(३) १. (ख) हरीया दूजा, (ग) हरीया यौ मन मरि गयौ। २. (क, घ) बौहत, (ग) लाखां रह्यौ मसांन।
(४) १. (घ) फिर, (ग) यह साषी नहीं है, इसके स्थानपर निम्न साषियाँ हैं :—

धवन धवंती देष करि, एक अचंभै थाय।
यौ मन मृतग होय करि, फिर उठ्यौ धूंधाय ॥
मनवौ तौ मृतग भयौ, तन की आस मिटाय।
हरीया साधु जब डरै, सास सरीरां थाय ॥

(६) १. (ख, ग) जीया। २. (ग) साध भरोसौ ना धरै जनहरीया जब षोड़ि।

मन मिरतग जाकौ मतौ, आडि कबु नही [1]छाडि ।
आपा रुष लीयां रहै, और न किनसु [2]गाडि ॥ ७ ॥

अथ त्याग वासना कौ अंग २२

तन का त्यागी कोउ [1]कहै, मन का दुलभ होय ।
हरीया मन त्यागी [2]भया, गुंणां रहत है सोय ॥ १ ॥

तन त्यागी मन वासना, यु तौ त्याग न [1]थाय ।
तन मन तै त्याग्यां रहै, त्यागी सोय [2]कहाय ॥ २ ॥

हरीया मन की वासना, तौ लग तन की हांनि ।
जोनि जोनि[1] में[2] औतरै, दुष सुष भुगतै आंनि ॥ ३ ॥

हरीया मन की वासना, जांह तांह होसी [1]साथि ।
अैसैं मटीया षांन की, चाक चढैगी [2]हाथि ॥ ४ ॥

मिटै न मन की वासना, तौ लग त्याग न कोय ।
हरीया बीजै बीज कुं, उदै ऊगि फल होय ॥ ५ ॥

---

(७) १. (क, ख, ग) आडि न छाडै कोय (कांहि), (घ) जीव ।
२. (क) एक न दूजो होय, (ख, ग) हरीया दूजा नांहि, (घ) हरीया जब तन थीव ।

---

(१) १. (क) कोई कहै, (ख, ग) सुलभ है, (घ) कोई जांनीयै ।
२. (क, ख, ग) हरीया त्यागी मनका ।

(२) १. (ग) जांण, (ख, घ) होय । २. (क, घ) त्यागी कहीयै सोय, (ख) हरीया त्यागी सोय, (ग) तौ त्यागी परवांण ।

(३) १. (क, ख) जीव । २. (ग) लष चौरासी ।
(४) १. (ग) तौ लग धरिहै तंन । २. (ग) अंन ।

वेली तैं फल वीछड़ै, बीज न होवै नास।
एती अंतर[1] वासना, जेती जोनि[2] विनास॥ ६ ॥

हरीया जाचिक ब्रह्म का, जाचै जगत बलाय।
त्यागी तन मन वचन का, माल सहज का षाय॥ ७ ॥

अथ सुषम मारग कौ अंग २३

जिन मारग साधु गया, सो तौ[1] ल्ह्या न[2] सोध।
हरीया दूजा[3] गहि रह्या, विषीया वाद विरोध॥ १ ॥

हरीया मारग अगम की, मो सेती गम नांहि।
कहि कैसी विध पाईयै, चित गयौ ता [1]मांहि॥ २ ॥

मारग महमा सूर कौ, अधर इणी[1] की धार।
जनहरीया कित पुंहचीयै, पंथ न कोई [2]पार॥ ३ ॥

हरीया इन[1] मारग तणी, बौहत कठण है चालि।
समझि विनां नही चालिबौ, पग पग रोपी भालि॥ ४ ॥

---

(६) १. (ख) अंतर, (ग) ज्युं मन। २. (क, ख) हरीया होय, (ग) त्युं तन धारै जास।

---

(१) १. (ख) उ तौ रह्या असोध, (ग) किन लीया। २. (क) रहै असोध। ३. (ख) दोउं, (ग) ए दोय।

(२) १. (ग) मारग अगम अपार है, तुं कित षेलै दाव।
हरीया से अधवीच मै, तातैं थके पाव॥

(३) १. (क, ख) छुरी, (ग) अषंडी। २. (क, ख) होय (भये) अपंपर पार, (ग) हरीया सो किम पाईयै, गाफिल विनां विचार।

(४) १. (क, ख, ग) उस्य (सि), (घ) इस।

हरीया इन मारग [1]तणौ, थाव न[2] थाग्यो जाय।
तांह तकतोला करि रह्यौ, धीरी केम [3]धराय॥ ५॥
इत आये[1] नही रहि सघु, उततैं गयौ[2] न जाय।
जनहरीया विनसो[3] भली, हरि की आवै दाय॥ ६॥
वांहती कोय न आवीया, इतती कोय न[1] जाय।
हरीया वांहती आय [2]कै, गुझि कहै समझाय॥ ७॥
वांहती आये रांमजन, ता सु प्रीत लगाय।
सो बूझै सो दाषवै, दुबिध्या[1] दूरि गमाय॥ ८॥
साध सदाई सुष करन, दोष न धरता कोय।
परमारथ कै कारनै, हरिजन आए जोय॥ ९॥
हरीया धर अंबर विचैं, हैं दोय नदी [1]असाध।
और लोक इचरज भयौ, सूर सती अर [2]साध॥ १०॥
आसा तिसना हैं नदी, जामण मरण [1]असाध।
विण समझ्या[2] से पचि मूवा, समिझ रह्या से [3]साध॥ ११॥

---

(५) १. (क) हरीया मारग अथग जांह, (ख, ग) हरीया मारग अथक (दुलभ) है। २. (ग, घ) अथग न थागै कोय (थाग्यो जाय)। ३. (ग) पार न पैला होय।

(६) १. (ख, ग, घ) आए। २. (ख, ग) आगै गया। ३. (घ) वनिसो। (ग) प्रतिमें यह साषी सं० ४ के बाद है।

(७) १. (क, ग, घ) इत तैं सब को। २. (ग) हरीया जे कोई आय करि।

(८) १. (ग) सांसा।

(१०) १. (ग) अथग। २. (ग) जौ या सुं तिर नीसरै, तौ दोय और विलग।

(११) १. (ग) विलग। २. (क, ख, घ) समधा। ३. (ग) समधा से तौ उबरया, विण समधा से भंग।

अथ लांबा मारग कौ अंग २४

लांबा मारग दूरि[1] घर, विच है[2] औघट घाट।
हरि दरसन किम पाईयै, हरीया दुलभ[3] वाट॥ १॥

आय न को जावै [1]नही, दूरि दिसावर देस।
स्यांणा पिंडत [2]जोतिगी, विच ही फासि रहेस॥ २॥

तर ऊंचौ असमांन फल, पंथी रह्या विसूरि।
जनहरीया फल ऊजळा, हाथ न पुंहचै दूरि॥ ३॥

केता स्यांणा सुधि विन, विलब्या डाळी पांन।
जनहरीया फल चाहीयै, तौ ऊंचा असमांन॥ ४॥

जनहरीया फल चाहीयै, तौ सिर सटै [1]तीयार।
सीस समंप्यां बाहिरौ, फिर फिर दूरि [2]निहार॥ ५॥

हरि तरवर अर मुगति फल, सुन्य सरवर की पाळि(रि)।
जनहरीया मन पंछीया, लीजो सारि [1]विसारि॥ ६॥

---

(१) १. (ग) अलग। २. (क, ग) विच विच। ३. (क, ख, ग) दुलभ देस की।

(२) १. (ख) जहां कोई जाय न आवसी, (ग) भेदी विनां न वहि सकै। २. (ग) के वांवा के जीवणा।

(५) १. (क, ख) जौ सिर साटै चाहीयौ (यै), तौ हरीया फल त्यार। सीस न स्यौंप्यां बाहिरौ। २. (क) सो नहीं चाखणहार, (ख) ताहि न बूझै सार।

(ग) सिर साटै फल पाईयै, सिर स्यौंप्यां विन नांहि।
हरिरांमा सिर सौंप करि, पंछी फल ले जांहि॥

(६) १. (क, ख, ग, घ) लीया (लीजै) हाथ पषाळ।

अथ माया कौ अंग २५

हरीया माया रांम की, महा[1] अपरबल होय।
मेरी मेरी करिं गया, साथि[2] न चली[3] सोय ॥ १ ॥

हरीया माया रांम की, रही सकल जुग छाय।
जिन्हां जांणी जुगति सुं, तिन्हां प्रीत न[1] लाय ॥ २ ॥

माया जम दरगै षड़ी, कीया सकल जुग जेर।
जनहरीया आघा धसैं, सही त ल्यावै घेर ॥ ३ ॥

वडी ठगारी जांनीयै, हरीया[1] माया [2]जोरि।
और किनी सुं[3] नां टरी, लीया त सब जुग [4]भोरि ॥ ४ ॥

जनहरीया तिंह लोक मैं, माया ठगनी [1]जांनि।
केईक ठगीया जांणता, केई ठग्या अजांनि ॥ ५ ॥

माया जब तब ही बुरी, हरीया आदि'र अंत।
वडे वडे मुनजन छले, वै रहते एकंत ॥ ६ ॥

हरीया माया मोहनी, मोह्या सुर नर नाग।
एक न मोह्या रांमजन, उर उपज्या [1]वैराग ॥ ७ ॥

हरीया माया पापनी, लीया मुनीजन मोहि।
टुकीयेक जोवै निजरि भरि, सब जुग लेवैं टोहि ॥ ८ ॥

---

(१) १. (क, ख, ग) रही। २. (ग) संग। ३. (ख) किसकै।
(२) १. (क, घ) चित न, (ख) उर अंतर नही लाय, (ग) चले षाय षुलाय।
(४) १. (ख) जुग मैं, (ग) माया जुग मै जोय। २. (क, ख) जोय। ३. (ख, ग) हरीया किन सुं। ४. (क, ख, ग) ठगीया तेऊं लोय।
(५) १. (ग) हरीया माया नां भली वडी ठगारी जांनि, के तौ ठगीया०।
(७) १. (ख) वाकै मन अनुराग, (ग) रह्या सिवरन लाग।

माया पापनि पैस करि, कीया कलेजै घाव।
हरीया बौह बलिवंत कुं, रंक न पुंहचै [1]राव ॥ ९ ॥

हरीया माया नागनी, बैठी मुषा उबाय।
तीन लोक मैं वस्य[1] रही, जांह जांउं तांह षाय ॥ १० ॥

जनहरीया माया सगी, माया महरी माय।
पहली उदर जिनाय कै, पीछै लेह छिनाय ॥ ११ ॥

दमड़ी दमड़ी जोड़ि करि, वळि वळि बंधी गांठि।
जोड़त जोड़त ऊठिगे, पड़ी रही सळ[1] सांठि ॥ १२ ॥

हरीया माया जोड़ि करि, गाडी गोडैं हेठ।
माया इत की इत [1]रही, आप गये करि [2]वेठ ॥ १३ ॥

जनहरीया संसार कुं, दमड़ी चमड़ी चाहि।
जिन करि जांनि आपनी, ता गळि पासी [1]वाहि ॥ १४ ॥

दमड़ी चमड़ी वीच मैं, हरीया विवरौ होय।
दमड़ी सुं दावा किसा, चमड़ी मा करि जोय ॥ १५ ॥

हरीया दमड़ी चंमड़ी, सिरजी सिरजनहार।
सिरजनहार न ओळषै, जाकै सिर पैंजार ॥ १६ ॥

---

(९) १. (क, ख, ग) कोई न लग्गैं दाव।
(१०) १. (ख, ग) वसि।
(१२) १. (ख) सब, (ग) सिर।
(१३) १. (क) माया घर गा०, (ख, ग, घ) माया तौ (इत) गाडी रही। २. (ख, ग) नर करि चाल्यौ वेठ।
(१४) १. (ख, ग) हरीया दमड़ी चमड़ी, चाहै सब संसार। जिन करि जांणी आपनी तिनही के सिर भार (जाकै पड़सी मार) ॥ ('क' में भी प्रायः यही पाठ है)।

हरीया षोड़ौ चांब कौ, आठ काठ कौ नांहि।
जे कोई[1] भाजै दूरि सुं, तौ पग पड़ै न [2]मांहि ॥ १७ ॥
चमड़ी वीट्यौ आदमी, है दमड़ी कौ यार।
हरीया न्यारौ जांनि [1]करि, तौ पावै दीदार ॥ १८ ॥
हरीया दमड़ी चंमड़ी, अपनी कदे न जांनि।
लागत ही सुं घालिसी, गळ मैं पासी आंनि ॥ १९ ॥
हरीया दमड़ी चंमड़ी, हरि कै आडी ढाल।
जौ कोई देषै पास करि, तौ लाली निरषै[1] लाल ॥ २० ॥
माया करि करि [1]मांनवी, मन मैं मोटी आस।
हरीया पांणी[2] ओस का, पीयां मिटै न प्यास ॥ २१ ॥
हरीया माया कारणै, झुरि झुरि मरै गिंवार।
जौ बौहतेरी[1] संपजै, तौई न धापणहार ॥ २२ ॥
माया पसरी आगि ज्युं, घरि घरि लागी जाय।
जनहरीया[1] दाझै नही, मन तन हरि सुं [2]लाय ॥ २३ ॥
माया विसरी वेलड़ी, हरीया पसरी[1] दूरि।
केताई[2] फल कारणै, रह्या विसूरि विसूरि ॥ २४ ॥

---

(१७) १. (ख) देषरि, (ख) तौ कोई न बाझै मांहि।
(१८) १. (क, ख, ग) हरीया जौ न्यारौ रहै।
(२०) १. (ख) मैं, (ग) सो लाली पावै।
(२१) १. (क, ख, घ) पचि मरै, (ग) माया जोड़ै पचि मरै। २. (क, ख, ग) जल।
(२२) १. (ख) माया, (ग) जौ लषां धन।
(२३) १. (ख) हरीया तन, (ग) हरीया सो। २. (क, ख, ग) मन संतोषी थाय।
(२४) १. (क, ख, ग) नाल पसारा (पसरीया)। २. (ग) जुग सागा।

माया त्रिसरी वेलड़ी, दोय फल लगा जास।
जनहरीया फल[1] चषीया, सेई गया[2] निरास ॥ २५ ॥

माया विसरी वेलड़ी, अंधा रह्या[1] अळूझि।
जनहरीया से [2]जांनि कै, चाल्या देप सळूझि ॥ २६ ॥

माया वादळ[1] विजळी, मारै चमंक चमंक।
हरीया हरिजन [2]ऊबरे, राता रैंण समंक ॥ २७ ॥

माया जल केता कळ्या, वा का अंत न पार।
जनहरीया तिर नीसरघा, करि बेली करतार ॥ २८ ॥

माया बंधक बाण ज्युं, मारै अंग[1] लगाय।
जनहरीया[2] तिंह लोक मैं, भाजि किती लग जाय ॥ २९ ॥

माया कुं चाहै सकल, हरि कुं विरला कोय।
हरीया हरि कुं चाहसी, हरि का प्यारा[1] होय ॥ ३० ॥

माया भई विड़ांणीयां, भए विड़ांणे [1]लोग।
जनहरीया नही [2]आपना, विषै विलासा [3]भोग ॥ ३१ ॥

---

(२५) १. (ख, ग) हरीया ए जिन। २. (ग) आवै जांहि निरास।
(२६) १. (ख) मांहि, (ग) सब जुग। २. (ख) हरीया इन कुं देष करि, सेई चल्या, (ग) हरीया स्यांणा समझ०।

(२७) १. (ग) जुग। २. (क, ख) हरीया हरिजन बाहिरौ, छाडै राव न रंक, (ग) हरीया रांम सिवरता, सेई रह्या निसंक।

(२९) १. (क, ख, ग) मुष्षां (ष)। २. (ख) हरीया नर।
(३०) १. (ग) हरीया से जिनका हितु, सेई तिनका होय। (क, ख) सोई हरिका होय।

(३१) १. (ग) लोक। २. (क, ख, ग) हरीया हरि विन को नही। ३. (ग) ले चले सिर ठोक।

हरीया[1] माया हाथ करि, चाले ठोक [2]वजाय।
किरपण ऊंडी गाडि [3]कै, हाले हाथ मलाय ॥ ३२ ॥

माया मोरी मोकळी, बूदी[1] कमी[2] न जाय।
जनहरीया सो[3] बूदिसी, भगति भरोसौ थाय ॥ ३३ ॥

भगति भरौसै बाहिरौ, कारिज[1] सरै न कोय।
जनहरीया जुग वहि [2]गया, माया मोरी दोय ॥ ३४ ॥

आंवण जांवण मोरीयां, भवसागर संसार।
हरीया हरि विन जीव कुं, कौंण [1]उतारणहार ॥ ३५ ॥

माया ओलै जुग मुस्या, घूघट घेरै मांहि।
हरीया हरिजन जांनि [1]कै, विषै विलंब्या नांहि ॥ ३६ ॥

माया सब जुग मूडीया, विनां पाछणै मूड।
जनहरीया विन मूंडीयां, रह्या रांम का रूंड ॥ ३७ ॥

माया सुं परवत रहै, हरि सुं निरवत होय।
हरीया अैसा मांनवी, विषै वदीता[1] जोय ॥ ३८ ॥

---

(३२) १. (ख) केइक, (ग) हरिजन। २. (घ) चाले नर विल्साय।
३. (ख, ग) हरीया केता गाड करि।

(३३) १. (क, ख, ग, घ) बूंदी। २. (क, ग) किमी। ३. (क, ख) कोई, (ग) हरीया जे कोई बूंदसी।

(३४) १. (क, ख, ग) कांम सरै नही। २. (ग) हरीया जुग वहि जावसी।

(३५) १. (क, ख) और नही आधार, (घ) कौंण उतारै पार, (ग) में अधिक है—

दुष सुष मोरी जीव जल, भवसागर संसार।
हरीया या सुं वहि गया, जा कुं आर न पार ॥

(३६) १. (ख, ग) जांणीयै, देष विलंबै०।

(३८) १. (ख) जुग मैं रीता।

हरि सेती अंतर धरै, से पंतरीया जांनि।
जनहरीया उंन जीव [1]कुं, माया लेसी तांनि ॥ ३९ ॥

लषचौरासी जोनि मैं, मातौ मोह सकांम।
हरीया अैसै जीव कुं, कहां नही [1]विसरांम ॥ ४० ॥

माया सौदै मांनवी, केता वौहरै[1] हाट।
हरीया हरि सौदै तणी, ताहि न जांणैं [2]साट ॥ ४१ ॥

जनहरीया तिह लोक मैं, हरि सा सौदा नांहि।
हरि विन सौदा दूसरा, कांम किसै कलि [1]मांहि ॥ ४२ ॥

जनहरीया हरि नांव की, पूंजी विन वौपार।
षाई कव्र षूटै नही, षाई वसत अपार ॥ ४३ ॥

काया माया थिर नही, थिर नही यौ संसार।
जनहरीया निरकार विन, और इथर [1]आकार ॥ ४४ ॥

काया माया कारिवी, जैसैं करवा जांनि।
जनहरीया भागां पछै, चाक न चड़िसी आंनि ॥ ४५ ॥

हरीया माया कीच मैं, केताई[1] कळीयाह।
जे कोई निकसै बापड़ौ, सतगुर[2] सैं मिलीयाह ॥ ४६ ॥

---

(३९) १. (ख) जनहरीया अधवीच मैं।
(४०) १. (ग) हरीया जहां तहां जांणीयै, नांव विनां वेकांम।
(४१) १. (ख, ग) विणजै। २. (ग) बौहरि मिलै नही।
(४२) १. (क) जिन औ सौदा जांणीया, नफा लीया जुग मांहि।
(ख) जिन औ कुछीएक विणजीया, षाटि गया जुग मांहि।
(ग) लषचौरासी हाट मैं, हरिसा सौदा नांहि।
हरीया सेई विणजीया, षाटि चल्या जुग मांहि।
(४४) १. (क) थिर नांव है, निरधारां आधार, (ख) हरीया एको नांव थिर निरधारां०, (ग) हरिरांमा थिर नांव है, ले उतरै भव पार।
(४६) १. (ग) केता नर। २. (ग) हरिजन सुं (छुटकरमें)

माया मिलता मांनवी[1], हरिजन सेती नांहि।
जनहरीया हरि[2] भगति कौ, पेम[3] नही मन मांहि ॥ ४७ ॥

माया सेती मांनवी, सब को राषै मंन।
हरीबा राषै रांम सुं, सोई[1] न्यारा जंन ॥ ४८ ॥

यु माया किरपण तणी, षरिच[1] न सधै षाय।
हरीया हिरदै[2] नांव धन, यु राषौ लिव[3] लाय ॥ ४९ ॥*

किरपण माया कारणै, सुष दुष सहै सरीर।
जनहरीया[1] हरि नांव धन, पाया सुं वेपीर ॥ ५० ॥

माया सब ही वस्य कीया, सुर नर नागा लोक।
जनहरीया हरिजन गए[1], दे माया सिर ठोक ॥ ५१ ॥

माया प्यारी जगत कु, संतां प्यारौ रांम।
माया जग उपजै षपै, हरीया अमर[1] नांम ॥ ५२ ॥

माया आडी भगति कै, छाडी कमी न[1] जाय।
हरीया छाडी[2] समझि कै, आडी फिरै न आय ॥ ५३ ॥

---

(४७) १. (ग) माया सुं मिलता रहै। २. (ग) हरीया वाकै। ३. (ग) लेस। (छुटकरमें)

(४८) १. (ग) जुग मैं विरला। (छुटकरमें) (४६-४७-४८) 'ख' में नहीं है।

(४९) १. (क, ख) षरचै कबू न। २. (क, ख) जनहरीया ज्युं। ३. (क, ख) लीजै अंतर।

* (ग) मन माया किरपण धरै, षरचै कबू न षाय।
हरिरांमा यु रांम धन, अंतर सुं लपटाय ॥

(५०) १. (ख) हरीया अैसा, (ग) हरिरांमा है।

(५१) १. (ख, ग) हरीया हरिजन जीत (प) गे।

(५२) १. (ख, ग) रांम अमर है नांम।

५२ से लेकर ५९ तक 'ग' में नहीं है।

(५३) १. (ख) छडै न छाडी जाय। २. (क) चालै।

जनहरीया माया सबै, षाया जुग संसार।
एक न षाया रांमजन, सतगुर कै [1]आधार ॥ ५४ ॥

माया मोह न कीजीयै, माया वडी हरांम।
जनहरीया तिंह लोक मैं, केता[1] करै विरांम ॥ ५५ ॥

माया आगि सरूप[1] है, जोग जुगति सु राषि।
नही तौ तन जोषा घणा, हरीया हरिजन[2] आषि ॥ ५६ ॥*

पहली लागा नांव सु, पीछै क्या पछताय।
हरीया सरवर आय कै, जांणि तिसाया[1] जाय ॥ ५७ ॥

हरि सेती लागा [1]रहै, हरीया आदि'र अंत।
या भवसागर वीच [2]मैं, तौ आपा [3]उतरंत ॥ ५८ ॥

ऊतरता[1] एता भला, माया मोह विकार।
रांम न मना उतारीयै, जनहरीया छिन [2]वार ॥ ५९ ॥

---

(५४) १. (क, ख, घ) यह साषी ५० वीं के बाद है।
(५५) १. (ख) फिर फिर।
(५६) १. (ख) हरीया माया अगनि है। २. (क) सब कुं, (ख) सब संतन की साषि। * (क, ख) में अधिक है—

हरीया माया मोहनी, सब जुग लीया टोरि।
एक आध कोई ऊबरै (टळि नीसरै), तन मन हरि सुं जोरि ॥

(५७) १. (क, ख) से (ज्युं) नर तिसीया।
(५८) १. (क, ख, घ) रहौ। २. (ख) से नर लाग'रि ऊतरैं, विण पांणी डूबंत। ३. (क) यौ ही ले निकसंत, (घ) आपा ले।
(५९) १. (क, ख) ऊतरीया। २. (क, ख) हरीया नांव न छाडीयै, सिर जावौ सौ वार।

अथ मांन कौ अंग २६

मोटी माया महल [1]कुं, केताई नर[2] छाडि।
हरीया झींणी नां मिटै, रही प्रांण सुं गाडि॥ १ ॥

झींणी माया लींण [1]हुय, रही प्रांण सुं रचि।
सिध सिंन्यासी[2] जोगना, गए मुनी जन पचि॥ २ ॥

चोवा चंदण वास [1]तज्य, वासा पाक मंझारि।
हरीया[2] तजीयां क्या हुवै, मांन वडाई लारि॥ ३ ॥

मांन वडाई मत कुं, धारत हैं बौह लोय।
हरीया लुघता तत विन, पार न पैला [1]होय॥ ४ ॥

मांन वडाई डूबसी, या भवसागर मांहि।
लुघता नांव जिहाज [1]विन, हरीया तिरीयै नांहि॥ ५ ॥

---

(१) १. (क) मानवी, (ख, ग) देख करि। २. (क) गये किताई, (ख, घ) जांहि किता नर, (ग) गये मुनिजन।

(२) १. (क) झीण हुय, (ख) ना मिटै, (ग) झींणी कब्र छाडै नही। २. (क) जती सती सिध।

(३) १. (क, ख, ग) माया मिंदर छाडि करि। २. (ख) एता, (ग) अै दोय।

(४) १. अधिक हैं—

(क) मांन वडाई स्वांनि ज्युं, जनहरीया घुरराय।
लुघता लाठी एक विन, सब कुं लेसी षाय॥ १ ॥
मांन वडाई मत कुं, धारत है सब कोय।
जनहरीया निज तत कुं, संत धरैगा सोय॥ २ ॥

(ख, ग) मांन वडाई लड़ि पड़ी, ज्युं आपस मै स्वांन।
एकै (हरीया) लुघता बाहिरौ, दोऊं लागी षांन॥ १ ॥
मांन वडाई द्वार (वारि) हरि, हरीया (ए) दोय तरवारि।
लुघता आडी ढाल विन, सब जुग लीया मारि॥ २ ॥

(५) १. (क) जनहरीया जब ना तिरै, (ख, ग) हरीया कोय न तिर सघै, जब तैं लुघता नांहि।

वडा हौंन कुं सब षसै, लुघता विरला[१] कोय।
हरीया लुघता बाहिरौ, रांम न परसन होय॥ ६ ॥

जब तैं मांन वडाईयां, लुघता होय न जास।
जनहरीया जब तैं नही, रांम मिलन की आस॥ ७ ॥

मांन वडाई डारि करि, चले निरंजन[१] पास।
जनहरीया लुघता लीया, आडा फंध न फास॥ ८ ॥

अथ चांणिक कौ अंग २७

पोथी पुसतग टीपणौ, जुग मैं मोटी जांण।
हरीया पढि पढि पिंडता, हरि सुं रह्या अजांण॥ १ ॥

पोथी पढि पढि जुग ठग्या, पिंडत भया न एक।
अगिलौ बोज न उतर्‍यौ, औरूं बांधि [१]अनेक॥ २ ॥

जनहरीया पढिबौ[१] भलौ, जे पढि जांणै कोय।
एकै अछर बाहिरौ, सब ही पढिबौ [२]षोय॥ ३ ॥

पोथी पुसतग टीपणौ, विद्या दूरि[१] वहाय।
हरीया सब ही [२]छाडिकै, ररै ममै चित लाय॥ ४ ॥

---

(६) १. (क, ख) धरै न, (ग) होयं न।
(८) १. (ख, ग) रांम के।

---

(२) १. (ग) हरीया सो सिर ले चले, दावा बांधि अनेक।
(३) १. (ग) पढ़िबौ तौ सब ही। २. (क) क्या बौह पढ़ीयां होय, (ग, घ) पढ्यां गुण्यां क्या होय।
(४) १. (क, ग) देत (ह)। २. (ग) हरीया एता छाडि करि।

सीष पाषि[1] पिंडत भया, लिषीया भाषै[2] [3]लेष।
हरीया ताहि न ओळषै, वाका नांव [4]अलेष ॥ ५ ॥

षट भाषा नव व्याकरन, विद्या वेद [1]विष्यांन।
हरीया अछर एक विन, सब ही थोथा[2] [3]ग्यांन ॥ ६ ॥

संम्रित साष पुरांन [1]कु, सीष'रि भया सुजांन।
हरीया अछर हेक विन, चतुराई[2] सें मांन ॥ ७ ॥

चतुराई सब जांनि कै, भाषै आळ जंजाळ।
हरीया अछर हेक विन, सब ही[1] परलै काळ ॥ ८ ॥

तन[1] चतुराई बंभना, मन कै भीतरि [2]मैल।
आंन धरम कुं दाषवै, चलै न संतां [3]गैल ॥ ९ ॥

चतुराई चौकै घणी, का अंन[1] पाणी मांहि।
जनहरीया हरि भगति है, तांह चतुराई नांहि ॥ १० ॥

अन पांणी मैं जीव है, है गोबर[1] मैं जीव।
जीव जीव का मांगसी, पांडे लेषा [2]पीव ॥ ११ ॥

---

(५) १. (ग) पोथी पढि। २. (ख, ग) वाचै। ३. (क, घ) लिष्या भाषीया नांम। ४. (क, घ) हरीया जब नही जांणीया, अपना (अलष) आतम (आपना) रांम, (ग) हरीया सो सिवरे नही, आपा पासि अलेष।

(६) १. (ग) पुरांन। २. (क, घ) देषत, (ख) सीषत। ३. (ग) कूड़ कतेब कुरांन।

(७) १. (ग) साषा सम्रित पाठ पढि, सीषै सुणै। २. (क, घ) सब चतुराई मांन।

(८) १. (क, घ) होसी, (ख) जोसी।

(९) १. (ग) करि। २. (ख) झूठ, (ग) मन मैं रषै झूठ। ३. (ख) भगति न हिरदै ऊठ, (ग) रांम नांम सुं रूठ। क, घ में नहीं है।

(१०) १. (ख) भोजन, (ग) तन भोजन।

(११) १. (क) गारै गोबर। २. (क, घ) जनहरीया इन (उन) जीव का, लेषा लेसी पीव, (ग) पांडे जीमै जुगति करि, सुची कहां तैं यीव।

साई सब का[1] सुचि है, या विन और[2] असुचि।
हरीया सांई बाहिरौ, मेरै और न[3] रुचि ॥ १२ ॥

जांमै कांमै आपणै, सब को वूहा जांहि।
जनहरीया हम[1] जांणीयौ, जाकै जांमौ नांहि ॥ १३ ॥

मै भी वूहा जांहि था, जांमै कांमै लारि।
हरीया जब हरिका हूवा, जांमौ कांमौ डारि ॥ १४ ॥

कथा वारता टीपणौ, कवि जोसी कौ कांम।
हरीया हरिजन कै रिदै, अषंड एक ही[1] नांम ॥ १५ ॥

हरीया कलिका बंभना, करम करैं किरसांन।
का तौ होवैं श्रावगी, सेवै मड़ा [1]मसांन ॥ १६ ॥

कलिका बांभन डूम ज्युं, मांग'रि लेवै दांन।
जनहरीया[1] आघा पड़ैं, अणभावत जजमांन ॥ १७ ॥

दुनीयां आगै दीनता, साहिब सुं नही नेह।
जनहरीया दोजष पड़ैं, गुर जजमांन बिनेह ॥ १८ ॥

अपनै स्वारथ बंभना, सुवैं मड़ै कै साथि।
हरीया सुष संतोष विन, कछू न आवै हाथि ॥ १९ ॥

---

(१२) १. (क) मेरा, (ख) एको साहिब, (घ) अपना। २. (क, घ) तुं कहा (कुंन) जांनि। ३. (क, ख, घ) और न काई, (ग) हरीया सिवरन सुचि है, और असूचा मांनि।
आतिम सिवरन बाहिरो, पांडे पड़ी पचांनि ॥

(१३) १. (क, ख) हरीया एक न, (ग) सो नांमौ जांणै नही।

(१५) १. (ख) हरि, (ग, घ) हरीया हिरदै संत कै, (ग) आठ पौहर हरिनांम, (घ) रांम नांम विसरांम।

(१६) १. (क, घ) होसी राजस तांमसी, सातग नही पिछांन।

(१७) १. (ग) अति अहंकारी लोभीया, (घ) माडैई।

गळै जनेउ घालि करि, अपनो करै गुमांन।
तन मन कौ महरंम [1]नही, करि करि मूवौ [2]गिलांन॥ २० ॥
गळै जनेउ घालि करि, सब[1] तैं ऊंचा होय।
हरीया ऊंचा नीच [2]गिन, आतम एक न [3]जोय॥ २१ ॥
ऊंचै कुलती क्या सरै, ज्युं दीरघता वंस।
और कड़ंबौ जाळि करि, आप रही [1]निरवंस॥ २२ ॥
चतुराई की चालि मैं, पांडे बौहत[1] पुस्याल।
हरीया देषी सकल [2]की, एको गंदी षाल॥ २३ ॥
हरीया गंदी[1] षाल मैं, रांम नांम है[2] षूब।
जिन औं नांव न जांणीयौ, तांही दिसीया डूब॥ २४ ॥
तीरथ कै आसै फिरै, नाहै धोवैं तंन।
हरीया नांव न जांणीयौ, ज्या सु ह्वै निज [1]मंन॥ २५ ॥

---

(२०) १. (ग) हरीया मन महरम विना। २. (ग) पांडे भयौ अजांन, (ख) करि करि मुवै अज्यांन।

(२१) १. (क, घ) तन। २. (क) ऊंचा नीची जांनि कुल। ३. (क) हरीया ब्रहमन होय, (ख) यौ भव चाल्यो षोय, (ग) आपौ बैठा षोय, (घ) हरीया हरि की भगति विन ऊंच न जानौ कोय।

(२२) १. (ग) आप न जांणै अंस, (क, ख, घ) आप गए निरवंस।

(२३) १. (क, घ) भये, (ग) होय। २. (ग) हरीया एके नांव विन, सबही गंदी षाल। यह साषी सं० १२ के बाद है।

(२४) १. (क, घ) जनहरीया इन। २. (क, घ) महबूब। (ग) में नहीं है।

(२५) १. (क) हरीया ताहि न जांणीयौ, या भीतरि निरजंन, (ख) हरीया नांव न प्रांमीयौ, जासुं ह्वै निज मंन, (ग) हरीया तत न प्रांमीयौ, जासं राचै मंन, (घ) जनहरीया न्यारा रह्या, ताही तैं निरजंन।

आंन धरम [1]एकादसी, जोग जिग आचार।
इन आसै भूलौ मतै, हरीया विनां [2]विचार॥ २६॥

कासी कांठै घर करै, सहै सीत सिर घांम।
हरीया तौऊ[1] नां लहै, पारब्रह्म को धांम॥ २७॥

कासी करवत सिर [1]सहै, गळै हीयाळै देह।
हरीया निज फल दूरि [2]है, लागौ फूल [3]वनेह॥ २८॥

मन कै भोळै तन [1]गहै, गोविंद भोळै ग्यांन।
निरगुन कै भोळै करै, हरीया सुरगुन ध्यांन॥ २९॥

लोक लाज कुल कारणै, झूझि मरै संसार।
हरीया औसर [1]आपणौ, षोयौ वाद[2] गिवार॥ ३०॥

सांमी सिर दावा किसा, दावै मांहि विणास।
जुग निरदावैं [1]जांणीयै, सोई हरि का[2] दास॥ ३१॥

सांमी तौ[1] सब सेर हुय, साध भया[2] अधसेर।
हरीया सांमी साध [3]की, कुछि करणी मैं फेर॥ ३२॥

---

(२६) १. (ग) तप तीरथ व्रत साझिवा। २. (ख) विना भगति विभचार, (ग) हरीयौ कहै विचार।

(२७) १. (क) अैसै ना, (ख) जनहरीया तोई ना लहै, (घ) हरीया अैसै ब्रह्म कौ, लहै नही परधांम।

(२८) १. (क, ख) धरै। २. (घ) छाडिकै। ३. (ख) सनेह।

(२९) १. (क, घ) कसै, (ख) मिणकै भोळै फण गहै, (ग) मिणकै भोळै फण गहै, सिवरण भोळै ग्यांन। हरीया भोळै वहि मूवां, जुग धंधै मैं ध्यांन॥

(३०) १. (क) वाद मैं, (ग) औसर मिनषा देह कौ। २. (क) मूढ।

(३१) १. (ग, घ) हुय रहै। २. (क, ग) हरीया सोई दास, (ख) सोई कहीयै, (घ) हरीया कहीयै दास।

(३२) १. (क) सोई, (ख) सांमी सामी सेर, (ग) जुग मैं सेर है, (घ) हुय रहै सेर भरि। २. (ख) साध साध। ३. (ग) सांमी वडा पण साध तैं।

हरीया[1] सांमी मनमुषी, माया मांही[2] हेत।
क्युंईक गाडै रेत मैं, और वीयाजू देत॥ ३३॥

कलि षोटी पौहरौ बुरौ, रीस करौ मत [1]कोय।
हरीया माया भगति[2] कै, जांह तांह आडी [3]होय॥ ३४॥

सांमी मड़ी मडाय कै, मन विषीया कै [1]मांहि।
सिष साषा धन बौहत [2]की, षुधीया भाजै [3]नांहि॥ ३५॥

सांमी सेवग बारणै, कथा सुणावैं नित।
अरथ दिषावैं[1] और कुं, आप ठगाई [2]चित॥ ३६॥

सांमी सेवग सूप ज्युं, एकै मतै वहंत।
कंण छाडै कूकस गहै, षाली आप [1]रहंत॥ ३७॥

नीर न पीवै [1]आंणीयौ, और न रांध्यौ षाय।
सांमी[2] इन आचार मैं, कहा पळाप्यौ [3]आय॥ ३८॥

पांणी ल्यावै[1] डोरि करि, हाथे भात पचाय।
राजस तांमस रचि रह्यौ, सातिग नावै [2]दाय॥ ३९॥

---

(३३) १. (घ) कलि का। २. (ग, घ) सेती।
(३४) १. (ग) सांमी करौ न रीस। २. (ग) सकल। ३. (ग) है आडी जगदीस।
(३५) १. (ग) मन तन पकड़ै नांहि। २. (ग) करै। ३. (क, घ) मिमता धापै नांहि, (ग) मरै मोह कै मांहि।
(३६) १. (क, घ) बतावै, (ख) दाषवै, (ग) सेवग सेती सीष द्यै। २. (क, घ) आप न राषै चित।
(३७) १. (क, घ) हरीया निज कण छाडि कै, कूकस मनां गहंत।
(३८) १. (क, ग, घ) कोस कौ। २. (क, घ) हरीया। ३. (क) ल्यांवैं क्या ले जाय, (ग) तेरौ भलो न थाय।
(३९) १. (क, घ) काढै डोरती। २. (क, घ) हरीया हाथे और कै, क्या दोषण ठहराय।

नीर न पीयै चांबती, बैठौ चबडी[१] मांहि।
मन की मैं तैं नां [२]मिटै, अंतर[३] षोजै नांहि॥ ४०॥

मूरति सालिगरांम की, जल सुं धोवै [१]आंनि।
कर सु मेलै[२] उषणै, आतमरांम न [३]जांनि॥ ४१॥

हरीया कलि मैं आय [१]कै, सांमीपणौ संभाय।
ग्यांन गरीबी नां [२]गही, आपा अहूं उठाय॥ ४२॥

करणी कठण कांम है, रहणी रह्यो न जाय।
सिवरन की सरधा नही, सांमी कहा [१]कमाय॥ ४३॥

गाफिल[१] कौ मन गौहली, का तौ आंन[२] अग्यांन।
का मन पौथी पानड़ै, हरि सुं नांही ध्यांन॥ ४४॥

दुनीयां झूठै रचणी, साच न पैंडै जाय।
सांई झूठ न रचई, हरीया साचि [१]सुहाय॥ ४५॥

---

(४०) १. (क, ख, ग, घ) चमड़ी। २. (क, घ) हरीया अंतर आपनौ, (ग) जब लग दुबिध्या ना मिटै। ३. (क, घ) जब क्युं, (ग) आपौ।

(४१) १. (क, घ) हरीया जल सुं धोय, (ग) धोवै जल पाषांण। २. (ग) हरीया कर सुं। ३. (क, घ) होय, (ग) सो साहिब नही जांण।

(४२) १. (ख, ग) हरीया कलि मैं क्या कीयौ। २. (क) छाडिकै, (ग) नां धरी, (घ) दूरि करि।

(४३) १. (क, घ) रहणी तौ नही रंच भरि, करणी करी न जाय।
हरीया सांमी होयकै, कहा कमायौ आय॥

(४४) १. (ग) पापी। २. (क) का मन भयो, (ग) मांन गुमांन।

(४५) १. (क, घ) हरीया सांई सचि है, झूठ न आवै दाय।
(ग) सांई झूठै नां रचै, सांई सचि सुहाय॥
* 'ग' प्रतिमें निम्न पाठ अधिक है—
नां हरि सिवरन दीनता, नां गुर ग्यांन विचार।
हरीया अधम जीव कौ, कैसैं होय उधार॥

त्यागी सोभ्या जगत मैं, करता है सब कोय।
हरीया गिरसत साध का, भेदी विरला होय ॥ ४६ ॥

भेदी कुं भेदी मिलै, तन मन परषै [1]वाच।
हरीया भेदी बाहिरौ, कंचन कुं कहै [2]काच ॥ ४७ ॥

झूठी मन की कांमना, तौं झूठा तन त्याग।
हरीया साचा सबद है, तन मन सिवरौ [1]लाग ॥ ४८ ॥

क्या गिरही क्या वैसनौ, रांम सिवरि भै पारि।
जनहरीया सिवरन विनां, वाकु आर न [1]पार ॥ ४९ ॥

गाफिल दीन विसार मती, इण औसर नर देह।
हरीया हरि विन दूसरौ, कुंण गति मुगति करेह ॥
अब तेरौ नर कुंण धणी, आगै कुंण औरेस।
आगै पीछै हरि धणी, करणा वैग करेस ॥
मंदा कुण करता विनां, है कुण करता और।
हरीया हरि करतार विन, आदि अंत नही ठौर ॥

(४७) १. (क, घ) वेदी भेदी नां मिलै, झूठ मिलै नही साच। (ख, ग) सबद (भेद) पिछांणै साच। २. (क) जनहरीया कैसैं मिलै, कंचन सेती काच, (घ) हरीया जन जुग नां मिलै, कंचन मिलै न काच।

(४८) १. (क, घ) वाकै गिरह न त्याग।

(४९) १. (ग) हरीया हरि सिवरन विनां, अह त्यागन की हार।

* (ग) में अधिक है—

आतिम देव न ओळखै, धोकै मढ़ा मसांन।
हरीया आतिम एक विन, दुनीयां सबै अजांन ॥

जब लग आसा देह की, तब लग दास न होय ।
जनहरीया निरआस हुय, दास कहावै [1]सोय ॥ ५० ॥

हरीया निरगुण[1] नांव विण, सब गुण थोथा जांणि ।
चतर चलईया क्या करै, भालि विनां सर तांणि ॥ ५१ ॥

भालि विनां सर तांणीया, तन कै लगा जाय ।
जनहरीया बाहरि भिद्या, भीतरि छेद न थाय ॥ ५२ ॥

कथि कथि कहणी अगम की, रहणी रह्या न जाय ।
हरीया भेद विचार विन, लूण लषण नही [1]काय ॥ ५३ ॥

केता भूला ग्यांन करि, के भूला अग्यांन ।
जनहरीया पचि पचि मूवा, दीन विनां दुनीयांन ॥ ५४ ॥

---

(५०) १. (ख, ग) प्रतिमें अधिक है—

हरीया रांम विसारीया, जास पटंतर जोय ।
लषचौरासी औतरै, दुष सुष भुगतै दोय ॥
जनहरीया संसार मैं, दुष सुष एक समांन ।
आपनपौ नही ओळषै, मिटै न आंवन जांन ॥
ब्रौह बांणी अणभै कथै, वाचै सासत वेद ।
हरीया एकै नांव विन, च्यारुं वेद नषेद ॥
(सब गुण जांणि नषेद) ॥

(५१) १. (क, ख) एकै नांव ।
(५३) १. (क, घ) हरीया ब्रह्म विलास विन, थूक विलोवा थाय,
(ख, ग) हरीया चिल्या क्या करै, थोथा बांण लगाय ।

अथ कांमी नर कौ अंग २८

हरीया जल की ओवरी, वीच मिनष[1] का वास।
पल मंडै पल ढहि परै, हरिजन रहै उदास॥ १ ॥
हरीया जल की ओवरी, भीतरि[1] कांम कलेस।
लागी रहै हरि नांव[2] सुं, लिपै न दूजा लेस॥ २ ॥
नारी नेह न कीजीयै, नारि बुरी संसार।
हरीया नारी गंजीया, से भगा करतार॥ ३ ॥
करता विच अंतर करै, नारि भरोसौ नांहि।
जनहरीया इन नारि [1]सुं, भाजि किती लग [2]जांहि॥ ४ ॥
सूता सपनै[1] लूटसी, जागंतां सैंदेह।
जनहरीया तिंह लोक मैं, नारी जांण न देह॥ ५ ॥
नारी जीता सकल जुग, नारि न जीती जाय।
गोरष जीती ग्यांन सु, हरीया रांम [1]धीयाय॥ ६ ॥
के तौ मारया निजर भरि, के मारया मन मोह।
हरीया नारी देह सुं, घात करै विण लोह॥ ७ ॥
हरीया नारी नागणी, सब जुग लीया[1] षाय।
जे कोई वंचै बापड़ौ, गुर का मंतर [2]पाय॥ ८ ॥

---

(१) १. (क, ख, ग) वा मैं नर का।
(२) १. (ख) ता मैं, (ग) मांही। २. (क) हरि सिवरन लागा रहै, (ख) एक नांव सुं लगि रहै।
(४) १. (क, ख, ग) के लूट्या के लूटिसी। २. (ग) कुल कै मारग मांहि।
(५) १. (ग) सूता लूटै रूप धरि।
(६) १. (ख, ग) जोग जुगति करि ध्याय।
(८) १. (क, ख) सेती। २. (ख, ग) सतगुर सरणै आय।

चोरी जारी जीव कुं, दोउं नरक दुवार।
जनहरीया[1] जब परहरै, तब ही मोष दुवार ॥ ९ ॥

हैं मुंह[1] फाड़्यां वाघनी, दाढ्या सब संसार।
जे कोई वंचै[2] भाज करि, हरीया हरि आधार ॥ १० ॥

भागां मोह न जांणी द्यै, जांह तांह लेसी घेर।
हरीया कांमी कांम कै, लषचौरासी जेर ॥ ११ ॥

मोह न किनती[1] नां टरै, सो तन धरीया रूप।
जनहरीया टुकीयेक[2] टरै, सो रता अनरूप ॥ १२ ॥

नर नारी कौ रूप धरि, नाचै करै [1]निरत।
जनहरीया[2] नारी नही, कांमी कांम सुरित ॥ १३ ॥

कांमी कौ मन वहि गयौ, ज्युं विरषा वरसाळ।
हरीया वूठै नीर का, चहुं दिस चल्या षाळ ॥ १४ ॥

जनहरीया जल वाहळा, वहि वहि दूरि गयाह।
कांमी कौ मन कांम सुं, थिर हु नांहि [1]थीयाह ॥ १५ ॥

कांमी कौ मन षाभड़ै, का पड़नाळै होय।
औ वूठै वहि जावसी, उ पल-घड़ीयां जोय ॥ १६ ॥

---

(९) १. (ग) जांणि बूझि नर परहरै, जाकुं मोष तीयार।
(१०) १. (क, ख, ग) कांनां। २. (ख, ग) छूटै।
(१२) १. (ग) मोह किसीती। २. (क, ख, ग) कुछीयेक (एक)।
(१३) १. (क, ख, ग) करै निरत वौह (कुल) नाच। २. (क, ख, ग) जनहरीया नारी नही, कांमो कौ मन राच।
(१५) १. (ख, ग) कांमी कौ मन रांम सुं, युं थिर नांहि। भयाह

कांमी[1] नर कै कांम कौं, हरीया रतीयेक सुष।
या तैं अधिकौ ऊपजै, मेर प्रवांणै दुष॥ १७॥

एती मन की कांमना, जेता सुष दुष जांणि।
जा घरि गधीया गूंणती, ता घरि लद पलांणि॥ १८॥

कूकर कै मन कांम की, रुत सिर[1] विंछ्या होय।
कांमी नर कै कांम की, हरीया निसदिन [2]होय॥ १९॥

कांमी तैं कूकर भलौ, रुति विन रहै विजोग।
कांमी[1] नर कै कांम कौं, हरीया सदा संजोग॥ २०॥

कांमी कलि मैं आय कै, आपै मांहि न माय।
अगिलौ बोज न ऊतर्‍यौ, औरूं गयौ[1] उठाय॥ २१॥

कांमी रांम न [1]राचई, राचै चोळी चांम।
हरीया वन मैं रूष ज्युं, सूकरि हूवौ बांम॥ २२॥

कांमी रांम न जांणीयौ, जांण्यौ[1] विषीया स्वाद।
का तौ षाय'र सुय रह्यौ, का उठि कीयौ[2] वाद॥ २३॥

कांमी रांम न जांणीयौ, जांण्यौ आप [1]अकाज।
का मन आयौ[2] ईरषौ, का कुल लोका लाज॥ २४॥

---

(१७) १. (ख, ग) कांमी मन कांमणि वसै (कांमी कौ मन कांम सुं), का कोई (मन) उपजै दंद। कांमी को मन और सुं (वहि गयौ), कुंण सिवरै गोविंद।

(१९) १. (क, ख, ग) विन इंछया नांहि। २. (क, ख, ग) निसदिन मन ही मांहि।

(२०) १. (ग) हरीया कांमी मिनुष कै, सांसौ सदा संजोग।

(२१) १. (क) बोज, (ख) लीयौ, (ग) गए।

(२२) १. (ग) रीझवै, (रीझै)।

(२३) १. (ग) रातौ। २. (क, ख) का विस वादोवाद।

(२४) १. (क, ख, ग, घ) हरीया रांम न जांणीयौ, जा दिन भयौ अकाज। २. (ख, ग) कीयौ।

हरीया करता रांम है, या विन करता [1]कौंण ।
कांमी करता आप है, जोय[2] छतीसुं पौंण ॥ २५ ॥

कांम छतीसुं पौंण मैं, निज करता निहकांम ।
हरीया निज करतार कौ, नारि न पुरषा [1]नांम ॥ २६ ॥

रांम नांम विन जीव कौ, या जुग मांहि न [1]कोय ।
हरीया संग न चलही, किनक कांमणी दोय ॥ २७ ॥

किनक कांमणी कारणै, हरीया करै कळाप ।
कांमी वंछै आप कुं, संतन कै संताप ॥ २८ ॥

नारी क्यारी कांम की, सोच्यां करै[1] विरांम ।
जनहरीया तन मन धरै, ताहि नही [2]विसरांम ॥ २९ ॥

रहै रांम[1] कै आसरै, सिर परि षेलै दाव ।
हरीया लगै न दास [2]कु, तता सीळा वाव ॥ ३० ॥

---

(२५) १. (ग) दूजा करता नांहि । २. (क) जांणि छतीसुं, (ख) होय, (ग) सो उपजै षपि जांहि, (घ) जाति ।

(२६) १. (क, घ) तीन लोक सिर नांम, (ख) मेरै सिर परि नांम, (ग) करता अकरम कांम है, निज करता निहकांम । हरीया करता जांणीयै, वाकौ अंमर नांम ॥

(२७) १. (ख, ग) जुग मैं हासी होय ।

(२९) १. (क, ख, ग) विषया भरि, (ग) इनती उपजै कांम । २. (ग) सुष न पावै रांम ।

(३०) १. (ग) रांम नांम । २. (ग) हरीया जिन कुं नां लगै, उंन्हा ठंडा वाव ।

अथ सहज कौ अंग २६

हरीया जांणै सहज कु, सहजां सब कुछि होय।
सहजां सांई पाईयै, सहजां त्रिपीया पीय॥ १ ॥

सहज विनां नहीं पाईयै, अन्तरजांमी आप।
जब तैं[1] सहज विचारीया, हरीया[2] पिन न पाप॥ २ ॥

मन इंद्री कुं मारनै, मतैं करौ वेषास।
हरीया सहजां होत है, कांम कलपना[1] नास॥ ३ ॥

जे कोई चीन्हैं सहज कुं, सहजां आतम रांम।
जनहरीया सहजां भया, मन इंद्री विसरांम॥ ४ ॥

सहजां ताळा षूल्ही, सहजां कूंची लाय।
हरीया अैसैं[1] सहज कु, सहजां विनां न पाय॥ ५ ॥*

अथ साच कौ अंग* ३०

हरिजन सोई जांणीयै, तन मन सचा[1] वाच।
हरीया कंचन छाडि कै, गहै न कौडी काच॥ १ ॥

---

(२) १. (क, ख, घ) हरीया, (ग) हरीया सहजां पाईया। २. (क, घ) पीछे पुन न, (ख) ना कोई, (ग) जब को पुन न।

(३) १. (क, घ) सकल कांम का, (ख, ग) कांम करम का।

(५) १. (क, घ) जनहरीया इन, (ग) हरिरांमा इन सहज कौ, जन को विरला पाय।

*. (क, ख, ग, घ) में निम्न पाठ अधिक है—

सहजां कुंची सहजां तारा, सहजां षुल्है दसुं दवारा।
जो सहजां का जांणै भेव, हरीया सोई परतग देव॥

---

*. इस अंगकी कई साषियाँ (ग) में आगे-पीछे मिलती हैं, उनका पाठ-भेद मूलके क्रममें दे दिया है।

(१) १. (क) सेती साच, (ख) वाकै अंतर साच, (ग) जाकै पलै साच।

झूठा हौंण न को करै, साचा है सब [2]कोय।
हरीया साच'र झूठ की, कहि कैसैं[2] गम [3]होय ॥ २ ॥

झूठा जब ही जांणीयै, करै साच कुं [1]झूठ।
जनहरीया उंन जीव [2]कै, सुमति न हिरदै [3]ऊठ ॥ ३ ॥*

साचा जुग मैं जांणीयै, साचा गहि रहै [1]टेक।
हरीया पैंडै झूठ कै, श्रीष भरै नही [2]एक ॥ ४ ॥*

साचां संगी रांम है, टारै दुरत बलाय।
हरीया होसी झूठ कै, लारीं लाय [1]पलाय ॥ ५ ॥

दुनीया झूठै रचणी, साच न बोल्या [1]जाय।
हरीया झूठ न सांईयां, सांई सच्च सुहाय ॥ ६ ॥

हरीया पूंजी आपणी, सब को जाय[1] लदाय।
झूठां वेड़ी [2]डूबसी, साचां पार[3] लघाय ॥ ७ ॥

---

(२) १. (क, ख) होय। २. (क, ख) मिलीयां ही (सुं)। ३. (ग)
साच साच सब को कहै, जे कोई जांणै साच।
हरीया साचा सबद है, विणजौ तन मन वाच ॥

(३) १. (ख) भंग। २. (क) की, (ख) कौ। ३. (क) साष न का परपूठ, (ख) कदे न करीयै संग। * (ग) में ये दोनों नहीं हैं।

(४) १. (क, ख) साच पिछांणै सोय। २. (क, ख)
हरीया साच'र झूठ की, कांणि न राषै कोय।
(घ) पाव धरै नही एक।

(५) १. (ख) हरीया संगी झूठ कै, होसी हाय बलाय।
(ग) झूठा कै संग झूठ है, लारैं लाय पलाय।
(घ) संगी लाय पलाय।

(६) १. (क, ख, ग) साच न पैंडै जाय (लाय)।
(७) १. (ग) लदै भार। २. (ग) समंद मैं। ३. (ग) लंघसी पार।

साचां कै सांई रिदै, सब मैं जांणै सति।
जनहरीया मंन झूठ कै, एक न आवै [1]पति॥ ८ ॥

वहि वहि मूवा [1]मांनवी, झूठ न चल्यौ साथि।
हरीया हिरदै[2] साच विन, कछू न आयौ[3] हाथि॥ ९ ॥

झूठां सु रीझै [1]नही, साचां रीझै रांम।
जनहरीया नर झूठ [2]मैं, वहि मूवा वेकांम॥ १० ॥

साच न कोई सांभळै, झूठ कह्या नही जाय।
जनहरीया कलि कूकरी, छेड़त ही सु [1]षाय॥ ११ ॥

हरीया साच'र झूठ कौ, मिलै न एको मत।
साचौ साची दाषवै, झूठौ करै असत॥ १२ ॥

साचै कुं साचौ मिलै, नित कौ वधै[1] संनेह।
हरीया साच'र झूठ कौ, कैसैं संधै[2] नेह॥ १३ ॥

---

(८) १. (क) हरीया झूठा साच कुं, देष न आवै पति।
(ख, ग) सांचा सांई साच है, झूठां सांई झूठ।
साचां सु सांई रजा (जु), झूठां रांम दरूठ॥

(९) १. (क, ख, ग) मूवा (वौ) झूठ मैं। २. (क) सांई, (ख) पलै, (ग) एकै। ३. (ग) पलै कुछी नही।

(१०) १. (क. ग) झूठा रांम न रीझई। २. (ख) हरीया झूठा झूठ मैं, (ग) हरीया सोई झूठ करि।

(११) १. (क, ख) छेड़ी तोड़ि'र खाय।
(ग) साच कहूं तौ जुग लड़ै, झूठ कह्या नही जाय।
हरीया इन संसार सुं, तुं कैसैं सरिपाय॥

(१३) १. (क, ख) दिन दिन वधै, (ग) साचा करै। २. (ख) घटै वधै नही नेह, (ग) हरीया झूठा झूठ करि, मन मिल जाय बिनेह।

साचै साच पिछांणीयौ, झूठ न आवै दाय।
जनहरीया इंम्रित [1]मिलै, तौं विष षाय[2] बलाय ॥ १४ ॥

साचां कु सांई मिलै, जे कोई[1] साचा होय।
हरीया हरि दरगाह मैं, पला न पकरै कोय ॥ १५ ॥

सिदक सबूरी बाहिरौ, हरीया साच न [1]एह।
मुलां बांग पुकारीयां, सांई साद न [2]देह ॥ १६ ॥

न क्युं बांग पुकारीयां, न क्युं चुप रहीयांह।
सांई रीझै साच सुं, हरीया दिल गहीयांह ॥ १७ ॥

मुलां सूंनित तैं करी, तैं कीया विसमल।
षलड़ी गला कटाय कै, क्या कीया[1] वे'कल ॥ १८ ॥

पसु पंषेरुं जिन कीया, कीया जीव अर जंत।
हरीया नष चष जिन कीया, सूंनित क्यूं न करंत ॥ १९ ॥

मुलां हरता तु भयौ, तुंही ज करता होय।
तुंही ज मारैं हाथ सुं, तुही जीवारैं [1]सोय ॥ २० ॥

काया विसमल क्या करैं, मन कुं विसमल कींन।
हरीया मन विसमल विनां, आतम सधै न चींन ॥ २१ ॥

---

(१४) १. (क) चवै। २. (क) पीयै।

* 'ग' प्रतिमें निम्न पाठ विशेष है—

झूठा प्याला विष भऱ्या, सो पीयां मरि जाय।
हरीया साचा रांमरस, पीयां अंमर थाय ॥

(१५) १. (ग) मन।

(१६) १. (ख, ग) साच न कहीयै (पावै) सोय। २. (ख, ग) षुसी षुदाय न होय।

(१८) १. (ख, ग) जांण्यां।

(२०) १. (ख, ग) गळाज काटे करद सुं, दया न आवे (उपजे) तोय।

लोक लाज कुल काज मैं, हरिजन रहै न रूझि।
दुनीयां झूठै राह मैं, हरीया रही [1]अळूझि ॥ २२ ॥

हरीया दुनीयां दीन [1]विन, गावै अल-पल गीत।
साच न सगपण[2] जांणीयौ, पाळै झूठी प्रीत ॥ २३ ॥

न क्युं वांना पहरीयां, न क्युं घसीयां छार।
न क्युं केस [1]वधारीयां, न क्युं कीयां सुवार ॥ २४ ॥

सचा सांई याद करि, या विन दूजा धंध।
जनहरीया[1] साचै मतै, झूठ निवारौ फंध ॥ २५ ॥*

अथ भ्रम विधूसण कौ अंग ३१

जनहरीया गुर ग्यांन विन, भगति न उपजै भेव।
यु तौ[1] रांम न पाईयै, थांन थापना सेव ॥ १ ॥

दुनीयां भूली दीन कुं, पांहण पूजण [1]जाय।
अपणौ रांम विसारि कै, और पुकारै [2]आय ॥ २ ॥

जनहरीया जुग अंधरा, आंध्यां विच [1]अंधार।
भेद न जांणै भगति कौ, सिल पूजै संसार ॥ ३ ॥

---

(२२) १. (क, ख) साच न पैंडौ सूझि।
(२३) १. (ग) मिनष जमारौ पाय करि। २. (ग) हरीया साच न।
(२४) १. (ग) न क्यूं लांबा केस करि।
(२५) १. (क, ख, ग) हरीया हुय। * 'ग' प्रतिमें निम्न साषी अधिक है—

झूठी माया मोहनी, झूठा जुग वहवार।
हरीया सोई गहि रह्या, साचा सिरजनहार ॥

---

(१) १. (क, ख, घ) आतम।
(२) १. (ग) पांहण कुं कहै देव। २. (ग) आपा तत न ओळखै, करै और की सेव।
(३) १. (ग) हरीया आपा बुधि विना, वरतै घोर अंधार।

कोरि पथर मूरत करी, नांव धर्‍यौ [1]करतार।
इसै भरोसै [2]डूबस्यै, विण पांणी संसार ॥ ४ ॥

सिरजनहारा सिसट का, करता कहीयै सोय।
हरीया[1] करता दूसरा, कहन सुनन का होय ॥ ५ ॥

तन सेती क्या नाहीयै, मन कै भीतरि नाहि।
जनहरीया तन नाहीयां, मिटै न मन की [1]दाहि ॥ ६ ॥

तन कु[1] नाह्यां क्या हुवै, जौ नाह्या नही मंन।
जनहरीया मन नाहीयै, होत नही [2]दाझंन ॥ ७ ॥

तन[1] तीरथ फिर फिर कीया, जनहरीया क्या होय।
सब तीरथ घट भीतरैं, भटकि मरौ मत कोय ॥ ८ ॥

दुनीयां देवी देवता, पूजै षेतरपाळ।
हरीया हरि सुं ऊतरी, लागी[1] और [2]जंजाळ ॥ ९ ॥

---

(४) १. (ग) पांहण कुं पधराय कै, करि पूजै करतार। २. (क, ख, ग, घ) डूबसी।

(५) १. (क, ख, घ) या विन।

(ग) हरीया सिरजनहार विन, मेरै कांम न कोय।

(६) १. (ख) मिटी न भीतरि दाहि, (ग) हरीया बाहरि नाहीया, भीतरि लगी दाहि।

(७) १. (ग) तैं। २. (ख) हरीया मन कुं नाहीया, जिन पाया निरजंन, (ग) ज्युं भेटैं निरजंन।

(८) १. (ग) फिर फिर तीरथ नाहीया, यां नाह्यां क्या होय, हरीया घट मैं नाहिलै, भटकि०।

(९) १. (क, ख, घ) जाय पड़ी।

२. (ग) पूजै देवी देवता, कै तौ बांवन वीर।
हरीया दुनीयां किम तिरै, लागा भव की तीर ॥

आंन[1] देव कुं ईछना, करै आपनै नांय।
जनहरीया जुग देषीया, ठगा ठगी मिल [2]षांय ॥ १० ॥

हरीया सेवग सच हैं, सचा तेरा देव।
मुषा घुलावैं लापसी, तुं जिस करता सेव ॥ ११ ॥

हरीया देवी सकळ कहैं, मुष[1] सेती बोलाय।
बोलाई बोलै [2]नही, तौ मत पड़दा [3]षोलाय ॥ १२ ॥

देवी जांणु दोष तम, मुष तैं मांग'रि लेह।
हरीया मुष मांगैं [1]नही, तौ कूड़ा दोस न [2]देह ॥ १३ ॥*

जौ तुं मुष तैं मांगि लैं, तौ तुं [1]सकळा देव।
हरीया मुष मांगैं[2] नही, तौ झूठा देव'र सेव ॥ १४ ॥*

मूरत जौ बोलै मुषा, तौ आतम [1]आपांन।
मूरत मुषा न बोलही, तौ हरीया देष [2]पषांन ॥ १५ ॥*

---

(१०) १. (क, ख, ग) अपनै (तनकै) काज चड़ावा चाहै, आन (करै) देव कै नांय। २. (ग) हरीया सब जुग जांणीया, झूठ कपट मै षांय।

(१२) १. (क) मुषा मुषी, (ख) वंतळाई बोलंत, (ग) वतळाई मुष बोल। २. (ख) वतळाई बोलत नही। ३. (ख) ···षोलंत, (ग) तौ भूला जुग झोल।

(१३) १. (क) जौ औरां मुष दाषवै।
२. (ख) जौ मैं जांणु दोस तुमारौ, जो मांगैं मुष दाषि।
हरीया आपन दाषवैं, क्युं औरां मुष आषि॥

* (ग) में नहीं है।

(१४) १. (क, ख) तौ मैं जांणुं देव। २. (क, ख) विन मांगीयां।
* 'ग' में नहीं है।

(१५) १. (क, ख) तौ आतम करि जांन। २. (क) हरीया जांन पषांन, (ख) हरीया मुषा न बोलही, तौ आतम नही जांनि। * 'ग' में नहीं है।

षोद'रि आंनी षांन सुं, मूरत मुषा [1]सुंवारि ।
हरीया मुष उचरै [2]नही, आंनि मूवौ क्युं भारि ॥ १६ ॥*

हरीया मूरत काठ की, का पथर धात की होय ।
ऊ साहिब सहजां हूवा, कीया न क़िसका जोय ॥ १७ ॥*

पांहण कुं पूजै दुनी, करि करि कुल का देव ।
हरीया सुकला [1]छाडिकै, करि निकुला की सेव ॥ १८ ॥

हरीया भेद न भगति कौ, सेवै सालिगरांम ।
नांव निराला रहि गया, नर[1] भरम्या [2]वेकांम ॥ १९ ॥

जनहरीया जब जांणीया, अंतरजामी[1] एक ।
भेद विनां भरम्या फिरै, दुनीयांदार अनेक ॥ २० ॥

हरीया आप न ओळषै, कहै अनाथां नाथ ।
कंचन सेती [1]छाडिकै, गहै कथीरू हाथ ॥ २१ ॥

आतम आपा वीच मैं, रोम रोम भरपूर ।
हरीया ताहि न ओळषै, दुनीयां देषै [1]दूर ॥ २२ ॥

आतम आपा वीच मैं, सो अणघड़ीया देव ।
जनहरीया इन कुं भजौ, तज्य घड़ीया की सेव ॥ २३ ॥

---

(१६) १. (ख) कर सुं मूरत स्वारि । * 'ग' में नहीं है ।
२. (क) हरीया रांम न उचरै, आन'रि मूवौ भारि ।
(ख) हरीया भोळै रांम कै, यु ही मूवौ मारि ।

(१७) * 'ग' में नहीं है ।

(१८) १. (ग) हरीया दूजा भरम है ।

(१९) १. (ख) जुग । २. (ग) पचि मूंवा वेकांम ।

(२०) १. (ग) सब घट आतम ।

(२१) १. (ख, ग) हरीया कंचन छाडिकै ।

(२२) १. (ख) फिर फिर ढूढै दूर,
(ग) हरीया निकट न जांणीयो, सेई हरि सुं दूर ।

क्या पथर कुं पूजीयैं , क्या जल नाह्यां होय ।
हरीया हरिजन पूजीयै , भरम गमावै [1]सोय ॥ २४ ॥

अथ भेष कौ अंग ३२

भीतरि भेद न भेदीया , बाहिरि पहिऱ्या भेष ।
जोगी जोग न जांणीया[1] , हरीया[2] दरसण देष ॥ १ ॥

हठ पचि मरणा जोगिया , यु तौ जोग न [1]होय ।
हरीया सहजां सबद विन , पारि न पुंहचै [2]कोय ॥ २ ॥

सेली सीगी मेषला , कांनि मुदरका घालि ।
हरीया जोगी जुगति [1]विन , पंच न सधै[2] पालि ॥ ३ ॥

तन तीरथ फिर फिर [1]कीया , वांना भेष वनाय ।
हरीया मन विषीया भऱ्यौ , निज पद कैसैं पाय ॥ ४ ॥*

---

(२४) १. (ख) भरम कांठि का षोय ।

---

(१) १. (ग) जोगन जांण्या जुगति सुं । २. (क, ग) कांने, (ख) दरसन देषा देष ।

(२) १. (ग) जांणि ।

२. (क) हरीया सीगी सबद की, मन की मुद्रा सोय ।
(ख) जनहरीया मन जोगीया, सहजां मारै सोय ।
(ग) हरीया जोगी जांणीयै, सहजै उलटा आंणि ।

(३) १. (ग) जोग जुगति विन जोगीया । २. (ग) सध्या ।

(४) १. (क) तन तैं सब तीरथ करै, (ख) करि आयौ सब तीरथा ।

*. (ग) जप तप तीरथ बौहौ कीया, घर तज्य वैठा वन ।
हरीया भेष वनाय कै, निहचै कीया न मन ॥

जनहरीया सांगी घणा, छाप तिलक सिर केस ।
मसतग मूंछा मूंड़ीयां, तन वदलाया[1] वेस ॥ ५ ॥
माला मिणका[1] घालि करि, भगत भया बौह[2] लोय ।
जनहरीया चलि साध की, हासा षेल न होय ॥ ६ ॥
हरीया थोड़ी[1] साध की, जुग मैं जांनि पिछांनि ।
तांना बांना भेष की, है [2]बौंहतेरी मांनि ॥ ७ ॥
हरीया हरिजन भेष मैं, ज्युं सोनौ चिरमी संग ।
घाति तराजू[1] तोलीया, मोल नीयारा[2] मंग ॥ ८ ॥
हरीया हरि विण[1] जांणीयां, सांग धर्‌यां क्या होय ।
तन बाहरि उजळ भया, अंदर मैला होय ॥ ९ ॥
सांग पहरि सत सबद कौ, जांण्यौ नही [1]वमेष ।
पूंछ पकड़ीया भेड कौ, तिर्‌यौ न जुग मैं [2]देष ॥ १० ॥

सोरठौ

जनहरीया बौह भेष, कोई लोभी कोई लालची ।
हरिजन विरला देष, कलि मैं कोइक जांणीयै ॥ ११ ॥

साषी

विन वसतर नागा भया, वास कीया वन जाय ।
जनहरीया मन उलटि कै, बैठो वसती आय ॥ १२ ॥

---

(५) १. (क, ख) बौह पलटाया ।
(६) १. (क, ख, घ) मिणीया । २. (ख) सब कोय ।
(७) १. (ख) जनहरीया नही । २. (ख) जुग मांही ।
(८) १. (क) बराबर । २. (क) न एको,
(ख) साधु भया ज्युं भेष मैं, केचन चिरमी मांनि ।
तोल बिराबर तोलीया, मोल न एको जांनि ॥
(९) १. (ख) भाव भगति विण ।
(१०) १. (ग) विचार । २. (ग) हरीया होय न पार ।

वासौ वसती वीच [1]दुप, वन में ताप'र मीन।
हरीया दोउं विच षड़ौ, जाकौ मतौ अजीत॥ १३॥
रांम कहैं से रांमजन, हरीया[1] दूजा भेष।
दुनीयां सेती दोसती, धरैं संत मुं धेष॥ १४॥
घर घर में दाता नही, फन फन मिंवन न होय।
पतिवरता काई सुंदरी, यु जुग में जन जोय॥ १५॥

अथ कुसंगति कौ अंग ३३

आई रुति सिर आपनी, विरषा भई [1]सरस।
हरीया बीज कुभोमि का, नेपै होय[2] नि रस॥ १॥

---

(१३) १. (ख) वसती वस्यवौ दुल्भ है।
(१४) १. (ख) दूजा भरिम्या, (ग) और भरम का।
(ग) में निम्नसंख्यक साषियाँ इस प्रकार हैं—
(५) भेष पहरीयां हरि मिलै, तौ मैं पहरूं भेष।
हरीया मन कुं उलटि कै, अलष आप नैं देष॥
(६) सांगी संवल रूंष ज्युं, फल फूटा जब जांणि।
दीसंता हरि दरसणी, भीतरि विष की षांणि॥
(७) हरीया जुग जोगी घणा, तन पहिर्यां भ्रिग छार।
हरि भगता कोई संत है, जाकै मन इक तार॥
(९) एक सबद विण जांणीयां, सबही अरथ की हांणि।
हरीया जोगी पच मूवा, जोग न सम्या जांणि॥
(११) सोरठौ—
हरीया बाहरि भेष, भीतरि भरया विकार सुं।
दसा दिगंबर देष, पूजैगी षोहो पिथसी॥
(ग) में अधिक है—
भगति न उपजै भाव विन, भेष भगति नही होय।
हरिरांमा निज भाव विन, हाथि पदारथ षोय॥

---

(१) १. (ख) अफार। २. (क, घ,) थाय, (ख) ज्युं संभाले संसार।

जनहरीया संसार की, संगति करौ न कोय।
या संगति सु ऊपजैं, कळह कलपना दोय ॥ २ ॥

जनहरीया संगति करी, षळि सुं नागरवेल।
ता सेती निरफल [1]रही, ए कुसंगति[2] षेल ॥ ३ ॥

किता कुसंगति करि मूवा, जनहरीया नर नारि।
पावक प्रीत पतंग ज्युं, बैठा तन मन जारि ॥ ४ ॥

जनहरीया कोई मत [1]करौ, अणमिलता सुं संग।
एता प्रीत न पालही, पासौ पावक पंग ॥ ५ ॥

जनहरीया तांह[1] बोरड़ी, ताही कांठै[2] केल।
ऊ हालै आ[3] चीरजै, अणमिलतां का मेल ॥ ६ ॥

हरीया लागी काळ हुय, केला कांठै[1] बोरि।
जौ सुष चांहैं आपणौ, तौ[2] मन हरि सुं जोरि ॥ ७ ॥

या तेउं विच अंतरौ, पारस लोह पषांण।
हरीया मिलीयां जांणीयै, जो जेहा[1] [2]उंनमांन ॥ ८ ॥

सनेही संसार कौ, हरिजन सेती नांहि।
हरीया मकड़ी जाळ ज्युं, मन बिंध्या ता[1] मांहि ॥ ९ ॥

---

(३) १. (क, ख, घ) गई। २. (क, ख, घ) कुसंगति का।
(५) १. (क) हरीया कीयां क्या हुवै।
(६) १. (क, ख, घ) जहां। २. (क) ता संग, (ख) तांही लागी।
३. (क, ख) ऊ, (घ) वा।
(७) १. (ख) संगति। २. (क, ख) तन मन।
(८) १. (ख) जैसा। २. (घ) परवांन।
(९) १. (क, ख, घ) बंध्या।

सोरठौ

रसना रटै न[1] रांम, संगति करै न साध की।
अत उत नां विसरांम, जनहरीया इन जीव[2] कुं ॥ १० ॥

अथ संगति कौ अंग ३४

सफल जिनांदा जीवीया, सदा साध [1]सुं संग।
हरीया सत[2] संगति विनां, करि करि मूवा[3] कुसंग ॥ १ ॥

हरीया संगति साध की, हासा षेल न [1]जांनि।
अपना[2] सीस उतारिकै[3], धरै पगां तलि [4]आंनि ॥ २ ॥

---

(१०) १. (ग) रटै न आतिम रांम। २. (ग) कैसैं मिटै विरांम, हरीया जुग बौहो रोगिया।

(ग) प्रतिमें संख्या २ से ८ तक इस प्रकार पाठ है—

(२) हरीया साथ कुसंग का, कदे न कीजै जांणि।
कुसंगति सुं काळौ चढ़ै, कुमोमी कुण हांणि ॥

(३) कौंण कुसंग तै नींपना, जैंसैं नागरवेल।
हरीया ज्युं कुसंगति षळां, बूडा करि करि बेल ॥

(४) हरीया कुसंगति करि मुवा, केता इन संसारि।
पावक प्रीत पतंग ज्युं, बैठा तन मन जारि ॥

(५) १० संख्या वाला, सोरठा ५ संख्यामें है।

(६) यह यहाँ ९ की संख्यामें आई है।

(७) है कुसंगति संसार की, जामैं बौहत विराध।
हरीया छाडी जांणि करि, से वडभागी साध ॥

(८) जाकी संगति कीजीयै, वाकै हिरदै रांम।
हरीया हिरदै नांव विन, सो संगति कुण कांम ॥

---

(१) १. (ख, घ) कै। २. (क, ख) जनहरीया, (ग) हरीया साध। ३. (ख) केता गया।

(२) १. (ग) हासा षेली नांहि। २. (ग) आपौ। ३. (ख) मन मुं नान्हा होय करि, (ग) द्यै। ४. (ख) तन कुं सौंपे आंनि, (ग) धरै न धोषा मांहि।

संगति करीयै साध की, निसदिन[1] ऊगै सूर।
अपना भरम गमाय कै, औरन ही का [2]दूर॥ ३ ॥
संगति करीयै साध की, पहर घरी पल [1]एक।
जनहरीया संगति कीयां, होसी नफा [2]अनेक॥ ४ ॥
संगति करीयै साध की, हरि सुं धरीयै हेत।
हरीया षाली नां गमै, बीज सुभोमि [1]षेत॥ ५ ॥
साध संगति पल एक ही, रांम करावै याद।
हरीया पल या ही भली, और सकल[1] दिन वाद॥ ६ ॥
ऐसी संगति साध की, ज्युं वौपारी हाट।
जनहरीया जब [1]गाहकु, सबद मिलावै साट॥ ७ ॥
हरीया संगति साध की, नित [1]ही पेम प्रगास।
या विन संगति दूसरी, विषै विकारी [2]जास॥ ८ ॥

---

(३) १. (ख) हरीया, (ग) पल पल।
२. (ग) भरम गमावै दूरि का, भगति उदै भरपूर।
(४) १. (ख, ग) घरी पौहर दिनराति।
२. (ख, ग) हरीया एती कीजीयै, जेती सफल जाति।
(५) १. (क, घ) हरीया जब तब जांणीयै, षाली जाय न षेत।
(ख) जनहरीया लगा रहौ, तन मन सेती नित।
(ग) हरीया नित लागा रहो, ज्युं हाळी कण षेत।
(६) १. (ख) औरां सु, (ग) दुनिया सब, (घ) और गए।
(७) १. (क) हरीया गाहक जांनि कै,
(ख) जनहरीया सत सबद की, तुरत वणावै०।
(ग) हरीया तुरत वणाय द्यै, सुरति सबद की साट।
(घ) हरीया गुण का गाहकुं, ताहि मिलावै साट।
(८) १. (क) जा मैं, (ख) या मैं सदा विलास, (ग) जाकै ब्रह्म विलास, (घ) नितप्रत। २. (क) वासुं रहो उदास,
(ख) दूजी संगत देषीयै, जैसा पांन पलास।
(ग) साध संगति हरि भगति विन, जनम गमायौ जास।

संगति करीयै साध की, धरीयै चरनां[1] चित।
हरीया ज्युं ज्युं कीजीयै[2], त्युं त्युं लाहौ [3]नित ॥ ९ ॥

साध संगति का गुन घना, गिनत न आवै छेह।
जनहरीया लागा [2]रहौ, साचा मन तन [3]देह ॥ १० ॥

साध संगति विन दीहड़ा, सोई मिथ्या[1] जाय।
कालर षड़ीया[2] षेतड़ा, ज्युं हरीया निरफल[3]थाय ॥ ११ ॥

हरीया संगति साध की, करीयै प्रीत लगाय।
मांग्या मारग सुगति का, देसी तुरत[1] बताय ॥ १२ ॥

साध संगति साची सदा, झूठी कदे न [1]होय।
जनहरीया नित करतड़ां, मत पछतावौ कोय ॥ १३ ॥*

परमारथ कै कारनै, आये जुग मैं संत।
हरीया मन सु जांनि कै, जे कोई ओट [1]तकंत ॥ १४ ॥

---

(९) १. (क) चरन कवल मैं, (ख, ग) रहीयै चंगै। २. (क, ग, घ) हरीया षाली नां गवै, (ख) षालिक षाली नां गवै। ३. (क) साधु संगति नित, (ख) हरीया संगति नित, (ग) षालिक षेती नित, (घ) कीया कांम सुकरत।

(१०) १. (ग) गोविंद गिन्या न जाय। २. (ग) हरीया अैसा मन घरै। ३. (क) साचै मन सुं लेह, (ख) जब लग साजी देह, (ग) जैसी करै सिहाय।

(११) १. (ग) अलेषै लाय। २. (क, ख) बाह्या, (ग) बाह्या बीज ज्युं। ३. (क, ख, ग) हरीया निरफल जाय।

(१२) १. (ख) तोहि, (ग) द्यै दिल मांहि।

(१३) १. (ख, ग) सत संगति नित ही भली, जो मंन (दिल) साबित होय।
*. ख, ग में इसके बाद निम्न साषी अधिक है—
जा दिन संगत साध की, सोई दिन सुदिन।
हरीया आनंद उपजै, काटै कोटि विघन ॥

(१४) १. (क) जनहरीया कोई जांनि कै, इनकी ओट तकंत। (ग) या हो सरणि तकंत, (घ) बाकी।

हरीया संगति साध [1]की, कुछि करतां मैं फेर।
मन कै दीयां बाहिरौ, क्या तन कीया जेर ॥ १५ ॥

जा कुं संगति साध [1]की, सो वडभागी जांनि।
हरीया मुष रहसी सदा[2], रांम नांम की बांनि ॥ १६ ॥

सत संगत है साध की, असत कबु नही [1]जांनि।
हरीया ज्युं ज्युं कीजीयै, त्युं त्युं तत [2]पिछांनि ॥ १७ ॥

हरीया निगुण न जांणीयौ, चंदण का गुण एह।
यौं अपणों गुण ले मिल्यौं, वाकी ऊ जांणेह ॥ १८ ॥*

हरीया चंदण बावनौ, वाकै पासि विरष।
सोई चंदण दूसरा, कीया आप सिरष ॥ १९ ॥

हरीया तरवर वीच मैं, पंछी वासौ लेह।
कोई कब्बाड़ी आय कै, दोस विनां दुष देह ॥ २० ॥

देष कब्बाड़ी आवतौ[1], तरवर डोलण[2] लग।
मो पड़ीयां का डर नही, पंछी का घर [3]भग ॥ २१ ॥

---

(१५) १. (ग) सत संगति जे कोई करै।
(१६) १. (ख) साध संगति करिहै सदा,
(ग) सत संगति जाकै सदा, जिनकौ मोटौ भाग।
२. (ख) जनहरीया जाकै रहै,
(ग) हरीया है तिनकै रिदै, सुष सीतल वैराग।
(१७) १. (क) जाय, (ख, ग) थाय।
२. (क) त्युं त्युं निसचै थाय, (ख) त्युं त्युं आवै दाय,
(ग) स्वाद सलूणा आय।
*. (ग) प्रति में १८ से लेकर २९ तक यह पाठ नहीं है।
(२१) १. (क, घ) हरीया देष कब्बाड़ीयौ,
(ख) तरवर ताला बेलीयां, देष कब्बाड़ी आत।
२. (क, घ) कंपण। ३. (ख) जात।

रूष समूळौ काटीयौ, काटि कीयौ [1]निरलंग।
हरीया इन अपराधीयै, कसक न आंनी अंग ॥ २२ ॥

चंदण रूनौ[1] निसह भरि, या जुग मांही आय।
जनहरीया सजन करु, सोई दुरजन थाय ॥ २३ ॥

जनहरीया चंदण गयौ, दूरि दिसावर देस।
अजांणां पांनै पड़्यौ, फोग'र बांठ [1]करेस ॥ २४ ॥

इंधण सागै आंणीयौ, कीयौ बळीतौ बाळि।
एक न जांणै अधरमी, वास गई चहुं नाळि ॥ २५ ॥

बींहै चंदण बावनौ, या लसण कै संग।
हरीया आंनि कुवासनौ, करै वास कुं [1]भंग ॥ २६ ॥

भवंग मिले मलीयागरी, लहरि विषम की मेट।
साध सदा मिल करत है, रांम नांम सुष[1] भेट ॥ २७ ॥

हरीया चंदण [1]बावनौ, मेटै पासि भवंग।
अहि मुष इंम्रित नां चवै, दोस न चंदण संग ॥ २८ ॥

मैंटे चंदण बावनौ, प्राण भयंगम पीर।
हरीया कदे न[1] आपनौ, विष न तजै सरीर ॥ २९ ॥

---

(२२) १. (ख) तर जड़ सेती काटीयौ, काट'रि कीयौ निलंग।

(२३) १. (ख) सोरठौ-चंदन रूनौ आंनि, हरीया अपनौ को नही।
सो सजन करि जांनि, सोई दुरजन हुय मिलै ॥

(२४) १. (क) गिणेस, (ख) कहेस।
(२६) १. (क) करै सुवासन भंग।
(२७) १. (ख) राम भगति की भेट।
(२८) १. (क, ख, घ) विषमता।
(२९) १. (ख) तौई न।

हरीया चंदण साध कौ, आषरि मतौ ज [1]एक।
ऊ वासिग दुष परहरै, औ मेटै भरम [2]अनेक ॥ ३० ॥

संसारी अर सरप की, एको रीत पिछांनि।
ऊ कोई औगुण ले मिलै, औ विष परगासै आंनि ॥ ३१ ॥

साधु संगति क्या करै, जौ मन मांहि अभाव।
हरीया पासौ हाथ कौ, आप न सारै दाव ॥ ३२ ॥

साधू संगति क्या करै, जौ मन विजक्यौ होय।
ज्युं हरीया [1]हरीवधण, वाग न झालै कोय ॥ ३३ ॥

मन ब्रिंध्यौ[1] पडपंच सुं, रिदै ईरषो रोस।
हरीया पेम न नेम [2]त्रिन, क्या संगति कुं दोस ॥ ३४ ॥

साध संगति कुं परहरै, संसारी सुं[1] संग।
जनहरीया जब्र जांणीयै, कुछि[2] करणी मैं भंग ॥ ३५ ॥

रांम नांम अंतर धरै, प्रांण पिंड कै[1] पासि।
हरीया[2] संगति साध त्रिन, रहै न किन सुं फासि ॥ ३६ ॥

---

(३०) १. (क) है चंदण अर साध कौ, जनहरीया अंग एक।
(ख) रूप रंग है एक।

२. (ख) उर अपनौ गुन काढि करि, औगुन हरै अनेक ॥

(३३) १. (क, घ) जनहरीया हरियाव(घण)धंन।
(३४) १. (क, ख, घ) बंध्यौ। २. (ख) हरीया पेम न उपजै, साध संगति क्या दोस, (ग) हरीया त्रिपत न उपजै।

(३५) १. (क, ख, ग, घ) करै जगत का संग। २. (ग) होय भजन। (छुट०)।
(३६) १. (ग) पिंड जगत कै। २. (ग) सदा रहै सत संत सुं, हरीया और न फास (छुटकरमें)।

सेवत ही रहै साध[1] कुं, आलसि कबू न [2]जाय।
हरीया जब तब[3] रांम कुं, आपा[4] भीतरि [5]पाय ॥ ३७ ॥

लोहा संगति दार [1]की, उतरि सिंध तै पार।
हरीया संगति साध की, या जुग मैं निसतार ॥ ३८ ॥

हरीया संगति साध की, साध भया सब कोय।
ज्युं जल आसैपासि का, मिल गंगोदष होय ॥ ३९ ॥*

औगुन काटै गुन करै, साधू संगति [1]जांनि।
जनहरीया इन भावनै, रांम मिलावै आंनि ॥ ४० ॥

हरीया संगति साध की, सारत है सब कांम।
कुमित हरै मति [1]ऊपजै, निज सिवरावै नांम ॥ ४१ ॥

---

(३७) १. (क, घ) संत कुं। २. (घ) ताय। ३. (घ) सिवरत। ४. (क) तन ही, (घ) तन मन। ५. (ख)

साध संगति लीयां रहै, और न मंन कै लेस।
जनहरीया जाकै सदा, पेम भगति परवेस ॥

(३८) १. (क, ख, ग, घ) ज्युं लोहा संग दार कै।

* (ख) प्रतिमें निम्न पाठ अधिक है—

साध संगति का गुन घना, गिनती मांहि न होय।
हरीया हरि सिवराय कै, और भरम कुं षोय ॥

(४०) १. (घ) साध संगति सति जांनि।
(४१) १. (क, ख) मन मति धरै।

* 'ग' प्रतिमें १८ संख्यासे ३९ तक पाठ नहीं हैं, निम्न साषियाँ हैं—

हरीया चंदन ज़ांहि था, और दिसावर देस।
आगै ल्सन उठि मिल्या, संगति का फल लेस ॥ १९ ॥
ल्सन गुन परकासीया, चंदन वास बिगार।
हरिरांमा जन जगत सुं, मिलीयां ए उपगार ॥ २० ॥
ल्सन की संगति इसी, हरीया साकट जांनि।
ज्युं पंगां पय पाईयै, विष परकासै आंनि ॥ २१ ॥

अथ असाध कौ अंग ३५

घात्यौ काग कठंदरै, बौले सूवा बांनि।
विध विध[1] बांणी बोलतां, साधपणौ नही[2] जांनि ॥ १ ॥

हरीया साध असाध की, बोल्यां रीत पिछांनि।
साध[1] रिदैं की दाषवैं, ऊगल ऊपरिली आंनि ॥ २ ॥*

हरीया साध कहाय कै, मुष तैं मीठा बोलि।
पर घरि आघा पैस करि, कपट दिषावैं [1]षोलि ॥ ३ ॥*

मीठै सु दुनीयां मिलै[1], कड़वा तन सुं दूर।
जनहरीया कड़वै मिलै, ता अंतर नही कूर ॥ ४ ॥*

चंदन की संगति इसी, जैसैं त्रिमल साध।
चंदन वासिग विष हरै, साधु काटै व्राध ॥ २२ ॥
लसन वास कुलछनी, चंदन वास सुलछि।
हरीया भिनकरि जांणीयै, जैसैं पछि कुपछि ॥ २३ ॥
साध सदाई पछि करै, कुपछि करै नही कोय।
हरीया चंदन बावनो, नींब कदे नही होय ॥ २४ ॥
साध संगति हरि भगति विन, सोई जनम अकाज।
हरीया मन मंत्री विनां, तन मन विणसै राज ॥ २५ ॥
'ग' प्रतिकी २६ वीं साषी ३४ में आ गई है ॥ २६ ॥
सत संगति का सुं करें, जौ दुबध्या दिल मांहि।
हरीया अंतर मांहिला, कसमल कदे न जांहि ॥ २७ ॥

---

(१) १. (क, ग) दोय दोय (दुतीया), (ख) हरीया बांणी दूसरी।
२. (क, ग) हरीया साध न, (ख) बोल्यां साध न।
(२) १. (ख) साधू दिल दाषै इसी, और असाधू आंणि।
(३) १. (ख) सब सैं मीठा बोलि करि, सोई साध कहाय।
पहली आघा पैस करि, पीछे कपट दिषाय ॥
(४) १. (क) मीठै मिल बैसै दुनी,
(ख) मीठै सुं लागै दुनी, कड़वै विरला कोय।
कड़वौ काटै रोग कुं, मीठै औगण होय ॥

कड़वौ सोई नींब सौ, बौह गुणवंतौ [1]होय।
हरीया कड़वौ पाय [2]कै, षांड न पावै[3] कोय ॥ ५ ॥*

अथ साध कौ अंग ३६

साध संनेही नांव का, निरदावैं संसार।
हरीया मैं तैं परहरै, धरै एक इक [1]तार ॥ १ ॥

जनहरीया जांह [1]साधगी, सत व्रत षंडै नांहि।
हेक[2] भरोसौ गहि रहै, दूजी दिसा न जांहि ॥ २ ॥

साध न छंडै साधगी, जौ सिर जाहि सरीर।
ज्युं हंसा सर[1] छाडि कै, जाहि न दूजी[2] तीर ॥ ३ ॥

हंसा सरवर कुं गहै, तन मोताहळ काज।
साध गहै मन साधगी, भावै जेथ[1] विराज ॥ ४ ॥

---

(५) १. (क) बौह गुण करता होय, (ख) वा सुं बौह गुण थाय।
२. (क, ख) करि। ३. (क) पीयै, (ख) कोई पाय।

*. चिह्नांकित पाठ 'ग' प्रतिमें नहीं है, निम्न पाठ है—

सूवै काग पटंतरौ, ए तौ साध असाध।
हरीया सूवै रांम पढि, कागै कथी उपाध॥
कउवा की परि जगत है, सूवा की परि संत।
सूवा उचरै रांम कुं, कगा रोळ करंत॥
अनातम क्या जांणिसी, रांम भजन की रौंस।
हरीया उगै भांण ज्यु, औलू देषण सौंस॥

---

(१) १. (क, ख, ग) सुष दुष दोऊं परहरैं (दूरिकरि), धरै (रहै) एक निरधार।

(२) १. (ख, ग) साध न धरैं असाधगी। २. (क, ख, ग, घ) एक।

(३) १. (ग) सरवर गहै। २. (घ) पैली।

(४) १. (ख) जांह तांह रहै, (घ) तहां।

करै न अपनौ गीरबौ, साधु सब का सैंन।
ग्यांन गरीबी गहि रहै, बोलै इंम्रित[1] बैंन ॥ ५ ॥

हरीया हरिजन जांणीयै, अंतर गरवा तंन।
दास बिंदगी[1] दीनता, सिद्क सबूरी मंन ॥ ६ ॥

साध न आंणै[1] आपदा, सील संतोषी थाय।
हरीया राग न [2]धेषता, सब सुं[3] एक सभाय ॥ ७ ॥*

साध कुमारग [1]परहरै, सुमति[2] सुमारग लेह।
मौनि गहै कुवचन सहै, हरीया कसनी एह ॥ ८ ॥

साध[1] कसौटी सहि रहै, ज्युं हीरा घन चोट।
हरिजन हरि छाडै नही, यु हीरौ अहरन ओट ॥ ९ ॥

हीरौ घन की सहि रहै, लषां मोल विकाय।
साध कसौटी सहि रहै, पेम पदारथ [1]पाय ॥ १० ॥

---

(५) १. (ग) मीठा।
(६) १. (क, ख, ग) बंदगी, (घ) गरीबी।
(७) १. (क, ख, ग,) संचै संपदा। २. (क, ख, घ) राग न किन सुं दोषता (वैरता), (ग) हरीया मन मिलतां मिलै। ३. (क, ख, घ) हरीया, (ग) सब सुं।

* 'ग' प्रतिमें निम्न अधिक है—

कूड़ कपट नही साधकै, सोई साध कहाय।
हरीया जाकै कपट है, सो पषवादी थाय ॥

(८) १. (क, ख, ग) साध न चलै कुमारगी, (घ) साध कुमारग ना गहै। २. (ख, ग) सुबुधि।
(९) १. (ख, ग) साधु कसनी यु सहै।
(१०) १. (ग) नांव अमोल्कि पाय।

अथ देषा-देषी कौ अंग ३७

देषा-देषी जाहि थी, कीड़ी कुल कै लारि।
जनहरीया विच फसि रही, होय न पैलै[1] पारि ॥ १ ॥

दुनीयां देषा-देष मैं, पकड़ी कुल की [1]टेक।
ऊल-पैल मैं रचि रही, हरीया दूरि [2]अदेष ॥ २ ॥

देषा-देषी जुग[1] चलै, हरीया कुल की लाज।
आये थे कुछि काज कुं, करि करि गये अकाज ॥ ३ ॥

हरीया देषा-देष मैं, भगति न आई [1]हाथि।
दुनीयां दीन गमाय कै, दुनी न चली साथि ॥ ४ ॥

हरीया देषा-देष मैं, धरै ब्रह्म को ध्यांन।
अैसैं चित विन चाकरी, चूक पड़ै निद्यांन ॥ ५ ॥

देषा-देषी हरि भजै, पेम न नेम न [1]प्यास।
जनहरीया[2] मन मिरघ ज्युं, वन वन फिरै उदास ॥ ६ ॥

देषा-देषी भेष[1] धरि, हुय बैठे हरिदास।
ऊडे थे असमांन कुं, आय पड़े धर पास ॥ ७ ॥

---

(१) १. (क, ख, ग, घ) सघी।
(२) १. (क, घ) रेष, (ख) वाटि, (ग) वहि वहि मूवौ वाटि। २. (क, घ) अलेष, (ख, ग) लाटो विचही लूटीयौ, हुयगी बारै वाटि (कुछी न चल्यौ षाटि)।

(३) १. (क, ख) सब।
(४) १. (ग) देषा-देषी भगति कौ, भेद न आयौ हाथि।
(६) १. (क) पेम न हिरदै जास, (ख, ग) पेम न हिरदै प्यास। २. (ग) हरिरांमा।

(७) १. (ख) सांग, (ग) हरीया देषा-देष मैं।

देषा-देषी दास हुय, दुनीयां दाषै[1] ग्यांन।
षाली रहिग्या नांव[2] विन, ज्युं तेगै विन म्यांन ॥ ८ ॥

देषा-देषी दास हुय, आये हरि की ओट।
षराषरी कै षेत मैं, चले चापड़ै चोट ॥ ९ ॥

देषा-देषी रूंषड़ै, जाय चड़े फल लैंन।
हरीया फिर फिर जोईयौ, लैंन न काहु[1] दैंन ॥ १० ॥

अथ जुग जन कौ अंग* ३८

जुग जांणै जन और सा, जन जांणै जुग और।
हरीया[1] जुग अर जन चलै, आपो अपनी दौर ॥ १ ॥

जुग चालै जुग राह मैं, इनकी सुलटी चालि।
हरीया जन उलटा चलै, जुग डग सघै न हालि ॥ २ ॥

हरीया जुग लोपै नहीं, कुल अपनै की[1] कार।
पूंछड़[2] बांध्या ऊंठ ज्युं, लारो लारि कतार ॥ ३ ॥

ज्युं रवि चंदा जांणीयै, चलता दीसै नांहि।
जनहरीया गय[1] साधकी, देषत आवै[2] नांहि ॥ ४ ॥

---

(८) १. (क, ग) दिढाए, (ख) सेती। २. (ग) निसचै चल्यौ एकलौ।
(१०) १. (ख) हरीया ज्युं ज्युं जोईयौ, त्युं त्युं लैंन न दैंन, (ग) हरीया देषा-देष मैं, नां कुछि लैंण न दैंण।

---

* 'ख, ग' प्रतिमें इस अंगका नाम 'जुग जन संवाद कौ अंग' है।
(१) १. (क, घ) जनहरीया जुग जन, (ग) हरिरांमा।
(३) १. (ग) जुग चालै चलि आपनी लोपि न सघै। २. (ग) हरीया।
(४) १. (ग) हरिरांमा गति। २. (क, ख, घ) देषत कै नही मांहि, (ग) ज्युं बाहरि नही मांहि।

हरीया जन[1] अर जगत की, कुछि करणी मैं फेर।
जुग जौंरौ ले जावसी, साध[2] करै जम जेर ॥ ५ ॥

दुनीयां भांडा भरम का, नांव न जांणै [1]कोय।
हरिजन हरि कुं सिवरि कै, हरीया निसचै होय ॥ ६ ॥

गोविंद[1] गैला नां लीया, साध न कीया [2]संनेह।
वहिग्यौ झोलै जगत कै, दुलभ मिनषा [3]देह ॥ ७ ॥

हरीया अपनै ह्वाल मैं, रता जुग जेहांन।
गुर गोविंद विन जांणीयां, होसी सब[1] हैरांन ॥ ८ ॥

हरीया अपनै ह्वाल मैं, षलक फिरै षुसीयाल।
होसी षालिक ब्राहिरौ, हैंदू[1] तुरक वेहाल ॥ ९ ॥

हरीया सब जुग रोगीया, ओषद षाय न[1] एक।
एकै ओषद [2]वाहिरौ, मरि मरि जांहि अनेक ॥ १० ॥*

---

(५) १. (ख) साध।
 २. (ग) भगति विषै विच अंतरौ, हरीया इतनौ फेर।
  विषै जाहिगौ जमपुरी, भगति करै जम जेर ॥

(६) १. (ग) भाव भगति गम नांहि। हरीया निसचै ब्राहिरौ, सबही भूला जांहि।

(७) १. (ग) बूझनि। २. (ग) संग। ३. (क) निसचै नांहि कदेह, (ख) चेतै नांहि कदेह, (ग) भूल पड़्या जुग झोल मै, निकसन का नही रंग।

(८) १. (क, ख) नर।

(९) १. (क, घ) हीन्दु।

(१०) १. (क, ख, ग) अनेक। २. (क, ख, ग) वा ओषद सु उत्रै, वाकुं लहै न एक।
 * 'ग' प्रतिमें निम्न पाठ अधिक है—
 ओषद लीया त क्या भया, जो पछि राषी नांहि।
 हरीया ओषद पछि विनां, कुपछि मरे मरि जांहि ॥ १ ॥

अथ साध साषी भूत कौ अंग ३९

हरीया साधु सीप मुष, ता निज मोती होय ।
जन कोई जांणै जौंहरी, तोल मोल की सोय ॥ १ ॥

हरीया सीप समंद मैं, यु साधु जुग मांहि ।
सीपां मोती नीपजै, साध साध विन नांहि ॥ २ ॥

साध सकोमल सुष-करन, दंद-निवारन दूर ।
हरीया अैसे[1] साध कौ, नित भेंटीजै नूर ॥ ३ ॥

सदा[1] संनेही नांव का, मन अनुरागी होय ।
हरीया अैसै संत कुं, ताप न लगै कोय ॥ ४ ॥

त्रिविध ताप तैं[1] रहत है, हिरदै सीतल थाय ।
जनहरीया उंन संत कै, सुर नर लगैं पाय ॥ ५ ॥

कांम न ऊठै[1] कलपना, राग न किन सुं दोष ।
जनहरीया उंन संत कुं, जीवत कहीयै मोष ॥ ६ ॥

नांव लीया किस्य कांम का, सुधि बुधि सुरति न सार ।
सांसै मांही वहि मुवा, हरीया सब संसार ॥ २ ॥

---

(३) १. (क) जनहरीया उंन ।
(४) १. (ग) रांम नांम रसनां रिदै, है अनुरागी मंन ।
हरीया अैसै संत कै, ताप न उपजै तंन ॥
(५) १. (ख, ग) जिन कै नही । २. (ग) हरीया साध संतोष संन,
साषी भूत कहाय ।
(६) १. (ख) काई,
(ग) कांम क्रोध नही कलपना, परमानंदी मोष ।
हरीया हरिजन कै रिदै, राग न किन सुं दोष ॥

अनमंता[1] इन्द्रीजिता, अहिनिस[2] रता रांम।
मन[3]मींता परमारथी, हरिजन हंदा कांम ॥ ७ ॥

तन[1] तौ राष्यौ नां रहै, जतन करंतां जाय।
यु हरीया पांणी ओस का, विनसत वार न लाय ॥ ८ ॥

मन मेवासी वस्य नही, आंकस सहै न कोय।
जनहरीया आंकस सहै, जौ ग्यांन गरीबी[1]होय ॥ ९ ॥

सहजां सुख दे वस्य कीया, मन मोहादिक[1] कांम।
जनहरीया गोरष जती, सहज कीया[2] विसरांम ॥ १० ॥

कांम रांम घट घट वसै, जास पटंतर जोय।
कांम विलंबे सकल जुग, रांम नीयारा होय ॥ ११ ॥

कांम सुधारै काज कुं, कांम ही करै अकाज।
जनहरीया निहकांमना, सो संतां सिर [1]ताज ॥ १२ ॥

कांम जांहां तहां रांम है, क्या वसती [1]एकंत।
जनहरीया[2] मैं क्या कहुं, साष भरैं सब संत ॥ १३ ॥

---

(७) १. (क, घ) उन मता, (ख, ग) एक मता। २. (क) हरीया, (ख, ग) उनमुन। ३. (ख, ग) बौहौ।

(८) १. (ग) हरीया जौ नित कीजीयै, तन का घणा जतन।
जतन करंतां जावसी, रहै न राख्यौ मन ॥

(९) १. (ग) हरीया हरि किरपा करै, सहजांई सिध होय।

(१०) १. (ग) माया मोह सकांम। २. (ग) मन पाया।

(१२) १. (ग) काज करै सब कांमना, कांम ही करै अकाज।
सब दे जीता कांम कुं, सब दे अणभै राज ॥

(१३) १. (ग) तीन लोक मैं कांम है, ता मैं रांम वसंत। २. (ग) हरिरांमा।

ध्रू पहलाद मछंदरी, भगति भरोसौ [1]जांनि ।
जनहरीया[2] गोरष जती, और न हिरदै[3] आंनि ॥ १४ ॥*

जनहरीया हरि कारनै, सो परमारथ स्वाद ।
आप सुवारथ हरि विनां, सो स्वारथ त्रिसवाद ॥ १५ ॥

हरीया लागौ[1] नांव सुं, सांसौ मेट[2] सरीर ।
ताकुं त्रिषा न ऊपजै, हरि[3] सरवर की तीर ॥ १६ ॥

सांई सब का सजना, दुरजन किसका नांहि ।
जनहरीया तन [1]दूबळा, राता[2] माता मांहि ॥ १७ ॥

राता माता मैं [1]भया, तैं सेती रहमांन ।
हरीया नैणां[2] वीच मैं, निरषु[3] सारंगप्रांन ॥ १८ ॥

हरिजन हरि कै वीच [1]मैं, दुबिध्या धरौ न [2]कोय ।
हरीया दिल दुबिध्या धरै, तौ हरि मिलन न [3]होय ॥ १९ ॥

---

(१४) १. (ग) रह्या भरोसै रांम । २. (ग) हरीया यु । ३. (क, ख) काई, (ग) सबही सीधा कांम ।
* (ग) प्रतिमें यह अधिक है—

भेष देष भूलौ मतै, हरीया विनां पिछांनि ।
भेष भरोसै मैं रह्या, भाव भजन की हांनि ॥

(१६) १. (ग) हरीया मन हरि । २. (ग) नही । ३. (ग) सांई ।
(१७) १. (ग) हरीया तन तैं दूबळी । २. (ग) राती माती ।
(१८) १. (क, ख) राती माती मैं भई । २. (ग) नैंण झरोषै । ३. (क, ख, ग) देषुं ।
(१९) १. (क, ख, ग, घ) हरिजन हरि कौ एक घर । २. (क, ख, घ) मत करि जांणौ और (दोय), (ग) जे कोई ठावा जांणि ।
३. (क) इन सेती अंतर धरै, हरीया ताहि न ठौर ।
(ख) हरीया इन अंतर धरै, ताहि न दरगै ठौर ।
(ग) हरीया घर कैसैं लहै, अंतर दूजी आंणि ।
(घ) हरीया जो अंतर धरै, तो मिल्यौ कैसैं होय ।

श्री १००८ श्री मोतीरामजी महाराज
रामस्नेहि सम्प्रदायाचार्य सिंहस्थल (३)

रांम सकल मैं रमि रह्या, हाजरि षड़ा [1]हजूर।
हरीया अंध न [2]देषई, चुंह दिस[3] ऊगा सूर ॥ २० ॥
जांणि बूझि गहली भई, प्यारी पिव कै जोग।
हरीया गुझि करतार सु, भसौ विड़ांणे लोग ॥ २१ ॥
साध सोई करि[1] जांणीयै, आतम[2] निसचै एक।
हरीया दूजा देषीयै, भरम्या भेष अनेक ॥ २२ ॥
साध साध सब सरस है, निरस न दीसै कोय।
हरीया सोई निरस है, रांम न परसन[1] होय ॥ २३ ॥*

अथ साध महमा कौ अंग ४०

पहरन फाटा पंगरन, ओढण[1] तूटा थांन।
हरीया निजर न [2]आवही, पाट पटंबर [3]आंन ॥ १ ॥
पिलंग पथरणा पौढणै, सदा सहेली संग।
हरीया होसी भगति विन, विषै विलासा [1]भंग ॥ २ ॥

---

(२०) १. (ग) हैं हाजरि नही दूर। २. (ग) अंधै कुं दरसै नही। ३. (क) अैसैं, (ख) कलि मैं, (ग) हरीया ऊगौ।
(२२) १. (क) साधू सोई। २. (ख) आषर।
(२३) १. (ख) दिल परसन नही, (ग) में यह साषी नहीं है।
*. (ख, ग) में निम्न साषी अधिक है—
रांम नांम (हरि सिवरत) इछया घनी,
मंन विषीया सुं नांहि।
हरीया वाकुं (दरसन) नित है,
दरसन दिल कै (दिल दरपन कै) मांहि ॥

---

(१) १. (ख) तूटी ओढन सौर। २. (ख) साध की। ३. (ख) और, (ग) पहरन कुं पंगरन नही, सिर बंधन नही सौर।
हरीया तौई हरिजन की, निजर न आवै और ॥
(२) १. (ग) हरीया हरि रंग बाहिरौ, सब ही काचा रंग।

मैड़ी मिंदर माळीया, साषत का घरबार ।
हरीया हरि की भगति विन, वसती ऊझड़ [1]बार ॥ ३ ॥

हरिजन कै भुय [1]सोवणौ, बैसण छपर [2]छांह ।
जनहरीया छिब दूसरी, निजर न आवै [3]तांह ॥ ४ ॥

केता[1] करम कमाय कै, साषति संचै[2] आथि ।
जनहरीया इनतैं भली, हरिजन घरां अनाथि ॥ ५ ॥

साषत रांढु मूंज [1]कौ, भीनौ करै [2]मरोड़ ।
हरीया गुर[3] विन वहि गया, केता लाष [4]करोड़ ॥ ६ ॥

पाड़ोसी पिंडत वुरौ, जौ हरि भगति न होय ।
हरीया हरिजन गांव घर, ता तुल्य भलौ न कोय ॥ ७ ॥

जै कुल हरिजन जनमीयौ, सो कुल कुल में जांनि ।
हरीया कुल हरिजन विनां, जै जीयै जुग[1] हांनि ॥ ८ ॥

जै माता सुत जनमीयौ, विनां भगति वसवास ।
हरीया जिन अर क्या कीयौ, भारि मूंई दस मास ॥ ९ ॥

---

(३) १. (ख) वसती ही सुंनयार,
(ग) भगति विना किस कांमका, हरीया जुग परिवार ।

(४) १. (क, ख) हरिजन. सोवण सथरौ, (ग) सौंणा धरती सथरैं ।
२. (ख) छांनि । ३. (क, ख) हरीया या तुल्य को नही,
हरि सिवरन है तांह (नांव सुनावै आंनि) ।
(ग) हरीया तौई हरिजन कै, सदा सुष मन तांह ।

(५) १. (क) आपा, (ग) अकरम । २. (ग) वंछै ।
(६) १. (ख) सौ । २. (ग) मार सहै सिर तन । ३. (क, ख, घ) हरि, (ग) ज्युं भीजै त्युं आसवै । ४. (ग) गहै न गरवा तन, (ख) वाकुं अंत न ओड़ ।
(८) १. (क) कुल, (ख) ई, (ग) सो कुल कुतरबांणि ।

साकट बेटौ जनमीयौ, हरिजन के घरि आय।
ताही तैं पुतरी भली, हरीया[1] भगति सुहाय॥ १०॥

ढुळैं चमर[1] सिर गौष घर, गड़पति गोवळ गांम।
हरीया गुर गोविंद विन, सो नर केहै [2]कांम॥ ११॥

हरिजन के सिर[1] कंबळी, काळी कुटल [2]कुरंग।
हरीया तुलै न [3]दूसरा, साषत चीर [4]सुरंग॥ १२॥

हरीया साकट मत मिलौ, भावै उतिम[1] होय।
हरिजन सोई नीच [2]कुल, सदा मिलौ सब [3]कोय॥ १३॥

हरीया कबू न कीजीयै, साकट केरौ[1] संग।
एता मिल बैसैं [2]नही, गाय गदहड़ौ [3]अंग॥ १४॥

---

(१०) १. (क, ख, ग) जौ हरि।

(११) १. (क, ख, ग, घ) चवर। २. (क) सो सुष केहै कांम, (ख) सो दीसै वेकांम, (ग) हरीया वसती सुवस है, विना भगति वेकांम।

(१२) १. (ख, ग) ओढणि। २. (ख) करूप, (ग) विरंग। ३. (ख, ग) हरीया ता तुल्य नां तुलै। ४. (ख) सरूप।

(१३) १. (क) जौ कुल ऊंचै होय, (ख) भावै ब्रंमन होय। २. (क, ख) हरिजन सोई नित कौ। ३. (क, ख) नीच (भांय) मिलौ हरि कोय, (ग) में यह साषी नहीं है।

(१४) १. (क) सुं आलोझ, (ख) जनहरीया साकट सभा, साध न बैसै जांणि, (ग) हरीया साषित की सभा, तुं जिन बैसै कांय, (घ) सेती। २. (क) एता भेळा नां रहै, (ख) गाय गदहड़ौ लंगरू, (ग) गाय गदहड़ौ वाघरू, (घ) एता मिलै न ऐकठा। ३. (क) गाय गदहड़ौ रोझ, (ख, ग) रहै न एकै ठांणि (ठांय)।

हरिजन सोनौ सोळवौ, रती न कौट [1]समाय ।
हरीया साकट लोह ज्युं, कौट भखोई [2]थाय ॥ १५ ॥

एक आध नही साध घर, सब साकट का वास ।
जनहरीया उंन गांवड़ै, नेम न पेम निवास ॥ १६ ॥

एक आध घर साध कौ, और साषती लोग ।
जनहरीया धिन गांवड़ौ, भाव भगति कौ जोग ॥ १७ ॥*

अथ मध्य आंगुली कौ अंग* ४१

जनहरीया मधि आंगुली, गह्यां पारिगति होय ।
दोउं कांनै लागि करि, कलि मैं बूडा सोय ॥ १ ॥*

---

(१५) १. (क) मावै कौट, (ख) कौट न मावै पेट । २. (क) भरीयौ कौट अंगौट, (ख) कौट भखोई थेट, (ग) में यह साषी नहीं है ।

* 'ग' प्रतिमें यहाँ एक साषी और है—

साध साध सब सरस है, निरस न दीसै कोय ।
हरीया सो जन सरस है, ताहि परम सुष होय ॥

---

* (ख, ग) में 'मधि कौ अंग' नाम है ।

(१) * 'ग' प्रतिमें इसके स्थानपर निम्न साषियाँ अधिक हैं—

अंगुली वांवै दांहिणै, मधि इन्हां के वीच ।
हरीया सोई गहि रह्या, कदुं कलै नही कीच ॥ १ ॥
कांम कलणि कै कीच मैं, कल्या स कांनै लागि ।
हरीया मधि सुं उबर्‌या, गई दुबध्या भागि ॥ २ ॥
जब तेरा मन दोय सुं, तब तन वरसै आगि ।
हरीया है मन एक सुं, सुष सीतलता जागि ॥ ३ ॥
जाकै दिल दुबध्या वसै, सोई आगि सरूप ।
हरीया दुबध्या मिट गई, सीतल अंग सरूप ॥ ४ ॥

ताप सीत दुंह आगि तैं, आतम न्यारा जांनि।
एक मता हुय लागीयै, हरीया दुविध्या भांनि ॥ २ ॥

गहौ एक मधि अंगुली, सुष सीतलता थाय।
जनहरीया दुंह अंगुली, गहीयां आगि लगाय ॥ ३ ॥

कांम क्रोध बौह कलपना, ता दाझत संसार।
हरीया हरि वसीया रिदै, सुष सीतल[1] अंगार ॥ ४ ॥

जनहरीया[1] मधि अंगुली, या गहि रहीयै[2] ठौर।
या ही तैं हरि प्रामसौ, दूजी परिहरि दौर ॥ ५ ॥

हरि सागर सुष लहरीयां, ता मंझे झूलांय।
जनहरीया सीतल भया, तता कबू न थांय ॥ ६ ॥*

इला चंद रवि पंगला, विच सुषमणि कौ घाट।
हरीया गुर परताप तैं, षूल्हा सहज कपाट ॥ ७ ॥

पांच पचीसुं प्रोळीया, छठौ मन सिकदार।
जनहरीया सुन्य सहर[1] का, चेतन चौकीदार ॥ ८ ॥

---

(४) १. (ख, ग) सीतल भया।
(५) १. (ग) हरिरांमा। २. (ग) एक पकरि रहि ठौर।
(६) * 'ग' प्रतिमें अधिक है—

सुष दुष सागर लहरीयां, के आंवै के जांहि।
हरीया सब जुग झूल्ही, तती सीली मांहि ॥
हरिरांमा मधि अंगुली, या सु प्रीत लगाय।
आसि पासि की दूरि करि, ज्युं निरभै हुय जाय ॥
सिंध वार चढ़ि पार हुय, वसै अगम घरि आय।
हरिरांमा मिल पीव सुं, एक भए जब जाय ॥

(८) १. (ग) हरीया अणभै राज का।

रांम विरष[1] निज मूल है, साषा वेद [2]पुरांन।
जनहरीया फल मुगति [3]का, चाषि भये[4] आसांन ॥ ९ ॥

रांम सरिन हींदू कहैं, मुसलमांन षुदाय।
हरीया दुंह विच एक है, सो निरपष [1]रहाय ॥ १० ॥

हींदू पूजै देहरा, मुसलमांन मसीत।
हरीयै चेतन चेतीया, क्या अचेतन [1]प्रीत ॥ ११ ॥

तन देवल में देव है, मन मसीत षुदाय।
जनहरीया इन वीच [1]मैं, प्रांण लीया परचाय ॥ १२ ॥

मकै मांहि [1]दूवारिका, मका द्वारिका मांहि।
हरीया रांम षुदाय [2]मैं, मेरै दुविध्या नांहि ॥ १३ ॥

उड़िद पीस आटा कीया, चावळ की भई दाळि।
हरीया रुचि करि जीमीया, सब तैं मीठी साळि ॥ १४ ॥

---

(९) १. (ग) नांम। २. (ग) और सकल विसतार। ३. (क) हरीया सेई मुगति फल, (ख) जनहरीया फल चषीया, (ग) हरिरांमै चढ़ि चषीया। ४. (क) चढ्या, (ख) मुगति भई, (ग) आतिम फल निरधार, (घ) चढ्या असमांन।

(१०) १. (क) वाकै पष न काय, (ख) मरै न आवै जाय, (ग)

हींदू ध्यावै रांम कुं, मुसलमांन षुदाय।
हरीया निरपष होय कै, रांम नांम लिव लाय ॥

(११) १. (ग) चेतन कुं चेतैं नही, करैं अचेतन प्रीत।
(१२) १. (ग) हरीयै तन मन भीतरै।
(१३) १. (ख, ग) द्वारिका। २. (ग) हरीया सबही एक है, किसती०।

अथ ग्यांन विचार कौ अंग ४२

तिवर गया रवि तेज [1]तैं, तेज गया निस पास।
हरीया ग्यांन विचारतैं, होय करम का [2]नास॥ १ ॥

नांव लीया[1] गुण नां मिट्या, तिवर न भागा तेज।
हरीया ग्यांन विचार विन, रही जेज की जेज॥ २ ॥

गुर पैं ग्यांन न बूझीया, बूझि न कस्था विचार।
हरीया कर[1] दीपग दीयां, अंधै कै[2] अंधार॥ ३ ॥

उर अंधारौ जांह नरां, सतगुर कुं नही भेट।
आये थे हरि मिलन कुं, लगी और ही फेट॥ ४ ॥

कहीयां माया संपजै, मन सुं जांण्यां ब्रह्म।
हरीया हौवे सुष तैं, उदग्या सेती भ्रंम॥ ५ ॥

कह्यां न माया संपजै, जांण्यां ब्रह्म न होय।
जनहरीया सुष उदगीयां, धरम न हूवा [1]जोय॥ ६ ॥

माया दतब तैं भई, रांम भज्यां सुं भ्रंम।
जनहरीया कुछि होत है, कर सुं दीयां भ्रंम॥ ७ ॥

कह्या सुण्या[1] तौ क्या भया, विनां सुधि बुधि [2]सार।
हरीया आपौ उलटि कै, आतम ग्यांन [3]विचार॥ ८ ॥

---

(१) १. (ख, ग) सुं। २. (ग) नांव करै अघ नास।
(२) १. (ख) ग्यांन कीया, (ग) नांव कह्या।
(३) १. (ग) घर। २. (क) भाय।
(६) १. (क) सुणीया कोय, (ख) धरम न होवै कोय, (ग, घ) कोय।
(८) १. (ख) ग्यांन कीया, (ग) नांव लीया। २. (ग) संसार। ३. (ख) लीया ब्रह्म विचार, (ग) हरीया ग्यांन विचारीयां, दिल मांहि दीदार।

अथ सार ग्राही कौ अंग ४३

हरीया सब ही रांम का, दूजा देष न कोय।
जाकुं सुधि न सबद की, सोई आपौ [1]षोय ॥ १ ॥

हरीया जांह तांह हेक [1]है, भेष पड़दा तांणि।
भरम करम कुं दूरि करि, घट घट ब्रह्म [2]पिछांणि ॥ २ ॥*

जनहरीया सांई विनां, षाली षलक न कोय।
एक धरैं तांह एक [1]है, दूज करैं[2] तांह दोय ॥ ३ ॥

रांम कहै सेई भला, कहा जगत कहा [1]भेष।
तैं औरां की[2] क्या पड़ी, हरीया दिल मैं[3] देष ॥ ४ ॥

आदि अंत मधि एक है, रांम निरंजनराय।
जनहरीया दसहुं दिसा, रहै अधर मठ छाय ॥ ५ ॥

---

(१) १. (ख) हरीया साकट को नही, सबही हरिका होय ।
जा मुष रांम न संचरै, तन मन आपौ षोय ॥

(२) १. (ख) जनहरीया ह्यां एक है। २. (क, ख) आतम जांण।

* 'ग' प्रतिमें पहली और दूसरी साषीका निम्न पाठ है—

ह्यांती आए एकले, इहां न हुयगे और।
हरीया जहां तहां देषीयै, आतिम सबही ठौर ॥ १ ॥
हरीया साकट को नही, सबै रांम के लोग।
हिरदै हरि सिवरण नही, तन ताही कै सोग ॥ २ ॥

(३) १. (क) एकै सेती एक है, (ख) एको जांण्यां, (ग) ब्रह्म सकल मैं व्यापई, न्यारा कदे न जोय। २. (क, ख, घ) धरै ।

(४) १. (ख, ग) दूजा वुरा न कोय। २. (क) तैं औरन की, (ख, ग) भली वुरी तैं। ३. (क, ख, ग) आपौ देष (जोय)।

हरि दरीया सूभर भर्या, पार अपंपर [1]थाय।
हरीया राई एतली, हरि विन ठौर न काय ॥ ६ ॥

अथ पीव पिछांणि कौ अंग ४४

पड़दा मैं छिपीयौ रहै, सो सांई नही थाय।
हरीया हरि[1] तिंह लोक मैं, संपट मांहि न माय ॥ १ ॥

हरीया[1] करता हेक है, दूजा करता नांहि।
सोई करता सिसट का, न्यारा घट घट मांहि ॥ २ ॥

साहिब सब सुं गुपत [1]है, जे कोई [2]परगट जांनि।
हरीया दीसै दिष्ट [3]मैं, ताहि न जांनि[4] पिछांनि ॥ ३ ॥

साहिब दिष्ट न मुष्ट मै, रूप न रेषा [1]नांहि।
हरीया सांई सहज मैं, देष पाषि दिल [2]मांहि ॥ ४ ॥

हरीया सांई हेक है, दूजा देष न कोय।
जो सांई दूजा कहुं, तौ कलि उथल [1]होय ॥ ५ ॥

---

(६) १. (ख) पार न कोई पाय, (ग) हरि ही आसे पासि हरि, हरि मधि रहै समाय।

---

(१) १. (ख) उ साहिब, (ग) हरीया साहिब सकल मैं।
(२) १. (ग) कायम।
(३) १. (ग) सो मेरै अंतर वसै। २. (क) परगट कोई एक, (ख) प्रगट करै कोई, (ग) सोई। ३. (ग) हरीया सब घट सांईयां। ४. (ख) तासुं नही, (ग) सोई पीव।
(४) १. (ख) नही रूप नही रेष। २. (ख) हरीया गम नही दूसरां, तूं अंतर मैं देष। 'ग' में यह नहीं है।
(५) १. (क, ख) तौ पीव न परसन होय, (घ) तौ परसन नही होय। 'ग' में यह नहीं है।

हरीया साईं हेक है, दूजा कोय न[1] जांनि।
जौ मैं जांणु दूसरा, तौ सबद न[2] लागा कांनि ॥ ६ ॥

अथ वसवास कौ अंग ४५

हरीया चिंता मत करै, झूठै तन कै काज।
एतौ लिषीयौ वषत[1] मैं, जिती[2] ऊतरै बाज ॥ १ ॥

हसती कुं मुन भेजवै, चींटी चावळ चूंण।
हरीया[1] सब कुं [2]पूरवै, आटा पांणी लूंण ॥ २ ॥

बंदा करीयै बिंदगी, दिल की दुरमति षोय।
करता चिंत निवारिसी, तुं ताही दिस [1]जोय ॥ ३ ॥

हरीया दाता रांम है, लषचौरासी [1]मांहि।
षांवन कुं जिन[2] मुष दीया, सो क्यु देसी [3]नांहि ॥ ४ ॥*

---

(६) १. (ख) और न किस कुं। २. (ख) गुर नही। 'ग' प्रतिमें ये नहीं हैं परन्तु निम्न पाठ है—

(ग) वाकी मांडी मेदनी, ठौरि ठौरि भरपूर।
हरीया सोई सांईयां, तास गिणौ क्यु दूर ॥

(ग) तीन लोक ताकै सिरै, एक अभंगी जांणि।
हरीया सो साहिब सही, आभ गाभ जै पांणि ॥

---

(१) १. (ग) भाग। २. (क, ख, ग, घ) इती।

(२) १. (क, ख, घ) सांई, (ग) पूरणहारा पूरवै। २. (ख) पूरसी।

(३) १. (ग) हरीया करीयै बिंदगी, दिल्की दुवध्या मेट।
करता चिंतन चित रही, निवंत मिटै नही नेट ॥

(४) १. (ग) जूण। २. (ग) उदर भरन कुं।
३. (ग) सोई दिलावै चूण।

*. इस साषीके बाद (ख, ग) में निम्न साषी अधिक है—

(ख) हरीया वणी स वणि रही, अब कुछि वणी न जाय।
कहा अणवणी कारणै, पचि पचि मरै बलाय ॥

हरीया अैसी हरि करी, तैसी करै न कोय।
जिन औ जाकुं सुष दीया, पूरणहारा[1] सोय ॥ ५ ॥

हरीया बंदा क्या करै, सांई[1] करै स होय।
जीव जिंद जिन सिरजीया, तिन्ह का कीया [2]जोय ॥ ६ ॥*

जाकै सिर हरि की रजा, कजा करैगा कौंन।
जनहरीया वसवास विन, दुनीयां देषै[1] सौंन ॥ ७ ॥

दिल दरीया हरि जल [1]भऱ्या, पंछी[2] मरै पीयास।
आघा पाछा[3] हुय रह्या, हरीया विन वसवास ॥ ८ ॥

हौंण [1]मतै सो हौंण दे, राषि एक मन [2]ठांय।
दांणा पांणी [3]जेथ का, हरीया जासी [4]गांय ॥ ९ ॥†

(ग) हरीया तेरै सो वणी, सोई सत्य करि जांणि।
और अणवणी कारणै, असत न मन मैं आंणि ॥

(५) १. (क, ख, घ) चूंण ही देसी,
(ग) वणी अवणी धारतां, हाथि पलै क्या होय।

(६) १. (क, घ) हरि ही, (ख) रांम करै सो, (ग) करता।
२. (ख) जीव जिंद उसका कीया, पालग सबका होय।
(ग) ज्युं बांधै छोडै धणी, फिर ताही दिस जोय।

* इसके बाद (ग) में निम्न अधिक है—
वणी वणाई जांण करि, राषि एक वसवास।
हरीया अवणी ना वणै, तुं मत करि वेषास ॥

(७) १. (क, ख, ग, घ) मांगै।
(८) १. (ग) सुष सागर सुभर भऱ्यौ। २. (ग) तुं क्युं। ३. (ख) पूठा।
(ग) आपे रांम निवाजिसी, हरीया और न आस।

(९) १. (ग) हार। २. (ग) ठांम। ३. (क, ख) ओथि का। ४. (क, ख, घ) जिस ले जासी गांय,
(ग) हरीया हौंणा षूब है, अण हौंणां कुण कांम।

† इसके बाद (ग) में निम्न साषी अधिक है—

दांणा पांणी हरिवसु, जांह जावै तांह देह।
षांणा पीणा जिंद कुं, हरि का करि करि [1]लेह ॥ १० ॥

रांम रजू तौ मैं रजू, मैं न रजू रज रांम।
हरीया जांमण अर मरण, जांह तांह हरि सुं[1] कांम ॥ ११ ॥

हरीया और न [1]कीजीयै, करि [2]सांई की आस।
षांणा पीणा सहज का, मांगि न लेवै दास ॥ १२ ॥*

साध न मांगै मांगणौ, मांगै मांगिणहार।
हरीया उर[1] इक तार धरि, हरि है [2]पूरणहार ॥ १३ ॥

हरीया लेष लिलाट का, मेट्या कमी न जाय।
या मैं तिल भरि नां वधै, रतीयन घाटै थाय ॥ १४ ॥

वणी वणाई आदि की, सो अणवणी न होय।
हरीया अब धीरी धरौ, पचि पचि मरौ न कोय ॥

(१०) १. (ग) जीमण जूण जिंद का, भावै ज्युं करि लेह।
दांणा पांणी हरिवसु, हरीया सब कुं देह ॥

(११) १. (क, घ) सो (है) हरि ही सुं, (ख) सदा रांम सुं, (ग) हरीया आदि'र अंत मैं, सदा रांम सुं कांम।

(१२) १. (क, ख) हरीया औरां क्या करै (है), (ग) हरीया कळपत कांय फिरै। २. (ग) साहिब।

* यहाँ 'ग' में अधिक है—

मंगण सूं मरिवौ भलौ, हरीया तन कुं मुझि।
जे मंगु पर कारणै, सांई सरणौ तुझि ॥

(१३) १. (क, घ) मन, (ख, ग) हरीया धरीयै धारणा। २. (क, ख) हरि सब जांणणहार।

हरीया लेष लिलाट मैं, जो वेह वाल्या अंक।
सुष दुष भुगतौ आपणा, कहा करी गैंरंक ॥ १५ ॥*

करता कै काई[1] नां कमी, नां[2] बंदै परि रोस।
हरीया प्रापति पाईयै, किसौ दई कु दोस ॥ १६ ॥

भूष त्रिषा तन कारणै, कहा दुषी नर होय।
जनहरीया[1] जींव सिरजीया, सार करैगा सोय ॥ १७ ॥

दांणा पांणी रिजक धन, हरीया हरि कै हाथ।
मतौ करै जाकुं दिवै, भरि भरि नंषै[1] बाथ ॥ १८ ॥†

हरीया सब हरि हाथि है, हरि मारै जीवारि।
हरि धारै जो कुछि करै, ल्यै डूबंता तारि ॥ १९ ॥

हरीया सिर हरि की रजा, कजा करैगा कौंन।
ज्युं घन मेहां नीपजै, लगै न झोला पौंन ॥ २० ॥

धणी षड़ा जब षेत मैं, विगड़न कुं कुछि[1] नांहि।
जनहरीया[2] हरि सा धणी, क्युं डरपैं जुग मांहि ॥ २१ ॥

जनहरीया[1] ऊभै धणी, षेत न[2] षंडै कोय।
जांह रुषवाळा रांमजी, माळ न वंकौ होय ॥ २२ ॥

---

(१५) * (ग) यहाँ एक सोरठा अधिक है—

सब सिर लिषीया लेष, सुष दुष आपो आपणै।
न्यारा रह्या अलेष, हरिरांमा जन को लषै ॥

(१६) १. (क, घ) कुछ, (ग) का तौ करता कै कमी। २. (ग) का।

(१७) १. (ख) जै जीव जिंद, (ग) हरीया जिन जीव।

(१८) १. (क, ख, घ) नांषै, (ग) प्रतिमें यहाँसे लेकर ४० संख्यातक साषियाँ नहीं हैं। † (ग) में यह छुटकर साषियोंमें आती है।

(२१) १. (ग) जांह कुछि विगड़ै। २. (ग) हरीया हरि सा है। छुट०।

(२२) १. (ग) हरीया ज्युं। २. (क) कुणक न, (ग) कुण नहि। छुट०। (घ) षेत न षावै।

काांही कुं धन सीत का, कांही भूष अपार।
हरीया दोस न दीजीयै, लिषीयै का उपगार॥ २३॥

का दीयां धन पाईयै, का लिषीयै[1] परवांन।
हरीया अपनै भाग विन, क्या पूछैं [2]दिनमांन॥ २४॥

हरीया जो कुछि वषत मैं, पाट पिछोरी ल्यार।
वषत विनां नही पाईयै, माणिक भरया[1] भंडार॥ २५॥

हरीया अपनै वषत[1] विन, कौडी ही धन [2]नांहि।
बंदै कौ मन बौहत है, लषां हजांरां [3]मांहि॥ २६॥

जौ लषां धन संपजै, अधप तोई न धापि।
हरीया टुक[1] संतोष विन, मिमता किनी न मापि॥ २७॥

हरीया क्या पछताईयै, आप औरकै काज।
राषणहारा रांमजी, लोक सकल की लाज॥ २८॥

हरीया हक [1]पिछांणीयै, अनहक सुं क्या कांम।
जो कुछि सहजां देत है, रिजक रोटीयां[2] रांम॥ २९॥

हरीया लीषीयौ[1] भाग मैं, रांम मता धन माल।
एतौ नितप्रित संपजै, मेटै कौण मजाल॥ ३०॥

---

(२४) १. (ख) का पूरबलै अंक, (क) पूरबलै। २. (ख) कहा करी गैरंक।

(२५) १. (क) हरिकै भरया, (ख) कमी न का करतार।
(२६) १. (ख) भाग। २. (ख) कौडी गांठि न होय। ३. (ख) होय।
(२७) १. (ख) सुष।
(२९) १. (क) संभारीयै, (ख) न छाडीयै। २. (ख) रोटी।
(३०) १. (ख) अपनै।

जनहरीया क्या [1]कीजीयै, सांसा सोग सरीर।
एतौ अंन जल नेमीयौ, लीयां षड़ौं[2] तुझि तीर॥ ३१॥
हरीया रोटी अरस की, आधी मिलैं हसाब।
जौं चाहैं लौं साबती, तौ तुझि नही सबाब॥ ३२॥
हरीया रोटी साबती, चाहैं चोपड़ीयांह।
चोपड़ीयां चाळौ करैं, सारी भठि पड़ीयांह॥ ३३॥
हरीया आधी लाभतां, सारी सुरित न धारि।
लूषी सूषी षाय [1]कैं, सांई नांव संभारि॥ ३४॥
आधी रोटी उपरैं, जे कोई राषै [1]मंन।
हरीया हरि का हुय रहै, भूष त्रिषा नही [2]तंन॥ ३५॥
हरीया अैसा हरि भया, तैसा भया न कोय।
वाकै पाय विलबीयै, पारि उतारै सोय॥ ३६॥
हरीयै कीया[1] दोसती, रांम नांम जुग[2] मांहि।
दास भरोसै दीन[3] कै, जम का धका न षांहि॥ ३७॥
हरीया नीकी नां डरु, वदी षरौ डराय।
दोय विचाळै जीवड़ौ, करणी काय न आय॥ ३८॥
हरीया नीकी अर वदी, हाथि न तेरै[1] होय।
हरि कै मन भावै जिका, सिका करैगा सोय॥ ३९॥

---

(३१) १. (क) करत हैं, (ख) हरीया कीया क्या हुवै। २. (क) दे तौ है तुझि, (ख) सब तीर, (घ) दीया जाय।

(३४) १. (ख) करि, (घ) पाय कै।

(३५) १. (ख) जो मन राषै कोय। २. (ख) और दिसौ नही जोय।

(३७) १. (ख) कीजै। २. (क) कलि, (ख) चित लाय। ३. (ख) भरोसा सत्य है, (घ) रांम।

(३९) १. (ख) रांम कै

नीकी सोभ्या ऊपजै, वदी कसोभ्या जांनि।
हरीया दोउं दूरि करि, हरि करिसी आसांनि ॥ ४० ॥

अथ धीरज कौ अंग ४६

वैरै बैस न भरकीयै, मन मैं रहौ सधीर।
हरीया साहिब[1] सा धणी, पारि उतारै तीर ॥ १ ॥
बैरै बैस सधीर हुय, आघौ पछौं न जोय।
जनहरीया सो मारसी, राषणहारा [1]सोय ॥ २ ॥
जनहरीया चढ़ि ग्यांन गज, जाजम अधर विछाय।
जगत सरूपी कूकरा, भुसलिमरौ भसि [1]जाय ॥ ३ ॥

---

(४०) 'ग' प्रतिमें निम्न पाठ और मिलता है—
हरीया सांई सो करै, जोई चंगी जांणि।
दूजौ मंदी कुण करै, अपणौ भाग पिछांणि ॥ १ ॥
चंगी मंदी क्या डरै, हुवै मतै अधीर।
मंदी करता मेटसी, हरीया रहौ सधीर ॥ २ ॥
नीकी करूं त नां डरूं, वदी परौ डराय।
दोय कात्यां विच जीवड़ौ, कहौ कौंण दिस जाय ॥ ३ ॥
हरीया नीकी अर वदी, चलैं अगोल्ग साथि।
वदी नीकी कुण करै, सब सांई कै हाथि ॥ ४ ॥
नीकी लालच. उपजै, वदी वाधै रोग।
हरीया दोउं मेटीयां, नां कोई सांसौ सोग ॥ ५ ॥

---

(१) १. (ग) सांई सिर।
(२) १. (ख, ग) मारणवाळा सो धणी, राषणवाळा सोय।
(३) १. (ग) या जुग मैं जन आय कै, निरपष नांव धरेस।
हसती होदै वैसतां, कुकर कहा करेस ॥

हरीया मन हसती भया, जगत कूकरा लारि।
हरिजन कै भांणै नही, भौंक रह्या[1] झष मारि॥ ४ ॥*

हरीया साकट सूकरा, दोउं की परि एक।
गयंद[1] चलै गय आपनी, कूकर लवौ अनेक॥ ५ ॥

हरीया अैसा हुय रहौ, परबत कैसै[1] भाय।
धका धूंम केता सहै, विरच कवु[2] नही जाय॥ ६ ॥†

मन परबत सा होय कै, ग्यांन धणी[1] सुं धारि।
जनहरीया जाकुं कदे, काळ सधै नही मारि॥ ७ ॥‡

हरि दरीया भरीया रहै, आठुं पौहर अचूक।
हरीया हरिजन[1] सेवसी, पीयै भरि भरि बूक॥ ८ ॥

कीजै तौ करि जांणीयै, प्यारै सेती प्रीत।
हरीया हसौ अजांण नर, छाडीजै नही रीत॥ ९ ॥♦

---

(४) १. (ख) भांय।
* 'ग' प्रतिमें यह नहीं है, परन्तु निम्न पाठ है—
(ग) सझे सलीता ग्यांन का, दिल का दरक ल्दाय।
हरीया मन हसती चढ़े, प्यादे मरै पिदाय॥

(५) १. (ग) साध।
(६) १. (ख) मन परवत से। २. (ख) भवे।
† (ग) में इस साषीके स्थानपर यह सोरठा है—
एक वला लष लोग, एकां हरिजन एक लौ।
तौ इन आंणै सोग, नेह लगौ रहमान सुं॥

(७) १. (ख) धुनि हरिजी सुं।
‡ (ग) में नहीं है।
(८) १. (ग) हरीया टुक धीरी धरौ।
(९) ♦ (ख) में यह सोरठारूपमें है। (ग) में नहीं है।

अथ विरकताई कौ अंग ४७

ऐसैं नटवा वांस [1]चरि, उलटा षेलै दाव।
जनहरीया युं[2] जगत मैं, विरकत मेलै पाव॥ १ ॥

दुनीयां[1] पूठा पाव धरि, हरि कै सांम्हा होय।
हरीया जुग अरहट घरी, रीती भरी न जोय॥ २ ॥

रीती देष न विरचीयैं, भरी न धरीयैं चित।
हरीया रीती अर भरी, दोऊं सुं विरकत॥ ३ ॥

सोरठौ

हरीया सब जुग जाहि, रहता एको रांम है।
आपा धिल षुल माहि, औरां सुं विरकत दसा॥ ४ ॥

साषी

जनहरीया तन भीतरैं, काय पड़ी मन कांनि।
ऐसैं फाटा दूध ज्युं, फेर मिलै नही आंनि॥ ५ ॥

मन हाकलि पाछा लीया, आयौ कुवचन याद।
रूठौ सजन नां घिरै, हरीया करि करि साद॥ ६ ॥

मोती भागौ नां मिलै, नां मन मिलै कबोल।
हरीया केता पड़ि गया, अंतर आडा झोल॥ ७ ॥

---

(१) १. (ख, ग) यु वादीगर वांस चरि। २. (ख, ग) हरीया ऐसैं
(२) १. (ख) औरां (ग) विरकत।
(५) (ग) यह साषी नहीं है, इसके स्थानपर निम्न साषी है —
हरीया कसी कवाण तन, उतरि फेर चड़ंत।
मन तरकस का तीर ज्युं, फैंक्या दूर पड़ंत॥
(६) (ग) यह साषी नहीं है, इसके स्थानपर यह है—
तीर कसीसै फैंकीयौ, सो फिर जोड़ै तन।
हरीया भड़क न बाहड़ै, मोताहळ अरं मन॥

एक न आडे चालते, सब सुं रहते संक।
जनहरीया काय पड़ि गई, चित[1] कै मांहि चमंक ॥ ८ ॥

चित गयौ चहुं चालि दिस, एक पड़ी अण राय।
हरीया वाड़ी फूल ज्युं, लेग्यौ पौंण [1]लुड़ाय ॥ ९ ॥

रहता सेती रचीयै, क्या वहतां[1] सुं कांम।
भाव जहां[2] हंसि बोलीयै, वे[3]भावत वेकांम ॥ १० ॥

हरीया सोच विचार करि, अपना सूत समोय।
या अल-पल संसार सुं, कहा पड़ी है तोय ॥ ११ ॥

वैरागी विरकत भलौ, जुग सु न्यारा[1] मंन।
हरीया गिरही सो [2]भलौ, सब सुं दासा[3]तंन ॥ १२ ॥

हरीया कदे न कीजीयै, अपनी सोभा [1]मुष।
अपनै मुष सरावतां, और[2] पड़ै कोई दुष ॥ १३ ॥

---

(८) १. (क) चित ही, (ख) पड़गी और।

(९) १. (ग) उडाय। (ग) प्रतिमें यहाँ एक साषी विशेष है—

एक ज झोलौ पवन कौ, अंग वहेग्यौ आज।
हरीया सबै सुहागिन्यां, आय मिलै महाराज ॥

(१०) १. (क, ख) जातै, (ग) अंनरता अनुराग। २. (ख) हसतां सुं।
३. (ख) अण, (ग) हरीया अंतर ऊपज्या, परमानंद वैराग।

(११) इस साषीके बाद (ग) में विशेष है—

रता आतिमरांम सुं, आंन विरता मंन।
हरीया अैसा हुय रहौ, जाकै वसती वंन ॥

(१२) १. (ग) दसा। २. (क, ख, ग) रहै (धरै) एकता।
३. (ग) गिरही दासा दीनता, सब सुं मिल्ता तंन।
इसके बाद (ग) प्रतिमें यह अधिक है—

किस्य कूं भंग न कीजीयै, सबके बीच अभंग।
हरीया आतिम जीव कै, रहीयै एकै रंग ॥

(१३) १. (ग) आय। २. (ख) आंनि, (ग) लीया बोज उठाय।

आपनपौं[1] चाहै भलौं, पर कौं भलौं न [2]चाय।
जनहरीया ता दिष्ट मैं, हिंस्या उपजी[3] आय ॥ १४ ॥

किसकौं[1] बुरौ न कीजीयै, जौं सिध होय असिध।
हरीया आडी आवसी, जिसी[2] कमाई किध ॥ १५ ॥

तन जोबन दिन चार के, तुं तन पहली त्याग।
नही तौं[1] तोकुं त्यागसी, हरीया रहौं[2] न लाग ॥ १६ ॥

हरीया हरि की क्या कहैं, रांम सकल मैं होय।
जांणत होसी बावरौं, हिरदै धरसी [1]सोय ॥ १७ ॥

तीन लोक ताकै[1] तलै, निजर न आवै कोय।
हरीया हरिरस[2] पीव कै, रह्या अछक तन [3]होय ॥ १८ ॥

अछक भया[1] जब जाणीयै, निरदावै [2]निरपष।
हरीया विरकत होय कै, दिल कै बैस [3]धरष ॥ १९ ॥

---

(१४) १. (ख) अपनौ तन। २. (ख) भाय। ३. (ख) वरती।
(१५) (ग) किस्य कौ। २. (ख, ग) आप।
इसके बाद (ग) प्रतिमें निम्न साषी अधिक है—
पर निंद्या अर ईरषो, वाद विषै अर भीष।
हरीया एता छाडिदे, या संतां की सीष ॥
(१६) १. (ख, ग) नही तर। २. नेह।
* 'ग' प्रतिमें निम्न सोरठा अधिक है—
जुग मैं मोटी वात, ठगै न आप ठगायबौ।
हरीया घरि कुसलात, जे कोई जांणि ठगावसी ॥
(१७) १. (ग) यह साषी नहीं है।
(१८) १. (ख, ग) वाकै। २. (ख) रांम रसायन। ३. (क, घ) मन होय, (ख, ग) हरीया (बैठा) अछक होय।
(१९) १. (क, ग) छक्या। २. (ग) दसुं दिसा विसराय। ३. (ग) हरीया प्याला पेम का, पीया रुचि कराय।

धिल धरषत विरकत दसा, ध्यांन अधर का लाय।
जनहरीया उंन रूष का, जब सहजां फल [1]पाय ॥ २० ॥

अथ समृथाई कौ अंग ४८

हरीया सांई एक है, सबै समरथा [1]जांन।
ऊ जल मांही थल करै, थल तांह[2] नदी निवांन ॥ १ ॥

जनहरीया पल एक [1]मैं, करतां कितीयेक वार।
बंदौ काई चीतवै, करै और करतार ॥ २ ॥

करता करैं स तुं[1] सही, मेरा कीया न [2]तुझि।
हरीया[3] मुझि सुं होत है, तौ मैं करिल्युं [4]तुझि ॥ ३ ॥

कीया कराया रांम का, हरीया तेरा[1] तंन।
तो[2] विन दूजा कुन करै, ऊथप अर थापंन ॥ ४ ॥

सांई सब सुं तु वडा, का तेरा हरिजन।
हरीया वडी वडाईयां, हरि ही कुं देवन ॥ ५ ॥

---

(२०) १. (क) षाय, (ख) जब फल चषै जाय।
(ग) में यह साषी नहीं है।

---

(१) १. (ख) सब करता आसांन। २. (क, ख) जहां,
(ग) नाळां सुं नदीयां करै, नाळा नदीयां मांहि।
सांई सूका सर भरै, भरीया से सुस जांहि ॥
(२) १. (क, ख, घ) पौहर मैं, (ग) हरीया आज'क कालि मैं।
(३) १. (ग) सो हुवै। २. (ख, ग) कुझि। ३. (ग) जौ मेरा कीया हुवै। ४. (ग) मुझि।
(४) १. (ग) तन जोबन। २. (क, ख) या, (ग) हरि।

हरि कुं एती ओपमा, तेती लायक होय।
हरीया ज्युं ज्युं दीजीयै, त्युं त्युं भार न कोय ॥ ६ ॥

मात पिता हम सुं[1] वडा, वाकै उद्र आय।
जनहरीया सब सुं[2] वडा, मैं वाका घर पाय ॥ ७ ॥

हरीया घट वधि क्या कहैं, क्या तेरा उंनमांन।
हरिका कीया देख लै, विण थंभां असमांन ॥ ८ ॥

नान्हौं कहूंत कै जिडौ, वडौ कहूं किन मांनि।
हरीया हरि कि वडौ कहुं, निजर न[1] सुणीयौ कांनि ॥ ९ ॥

नींचौ तौ[1] ऊ प्याल लग, ऊंचौ तौ असमांन।
हरीया हरि आडौ[2] किडौ, वडा वडी कौ डांन ॥ १० ॥

वंदेती कुछि नां थीयै, हरीया हरि[1] आसांन।
मेरहुं ता राई करै, राई मेर[2] समांन ॥ ११ ॥

आभ गाभ ती नांषीयौ, धरा लीयौ सिर झल।
हरीया धर सिर धूणीयौ, कर गहीयौ वीठल ॥ १२ ॥

---

(७) १. (ख, घ) सब सुं (तैं)। २. (क, ख, ग) हरीया सो सब सै।
'ग' प्रतिमें निम्न साषी अधिक है—

हरीया उ घर अगम है, निगम न जांणै कोय।
नाग न सुर नर संचरै, हरिजन पावै सोय ॥

(८) 'ग' प्रतिमें नहीं है।
(९) १. (क, ख, घ) देष न।
(१०) १. (ख) हरि। २. (क, ख, घ) हरीया आडा हैं तिडा।
(११) १. (ख) हरि के सब।

२. (ग) घर अंबर उंनका कीया, उंनका कीया कमेर।
हरीया राई मेर मैं, राई मांहि समेर ॥

अनंत रूप हरि[1] का कीया, ताहि लषै नही [2]कोय।
जनहरीया घर सुन्य मैं, निरष नीयारा [3]होय ॥ १३ ॥

जा दिन माई जनमीयौ, सो दिन सालै मोहि।
जोनि[1] जोनि सुष दुष सह्या, हरीया हरि विन तोहि ॥ १४ ॥

हरीया मरणी क्या मरैं, जौ हरि की नही दाय।
जा जा सेरी संचरैं, तां ता बूंद कराय ॥ १५ ॥

जांह चीटी नही चड़ि सधै, हसती चड़ि चड़ि माल।
ऊ रांवां ती[1] रंक करि, रंकां करै निहाल ॥ १६ ॥

सूई कै नाकै जिती, सेरी ताहि [1]समांन।
हरीया हसती[2] नीसरै, हुय कीड़ी [3]उंनमांन ॥ १७ ॥

अथ सुन्य* सरवर कौ अंग ४९

सांसा सोग संताप तज्य, आपा होय[1] अबीह।
सुंन्य सहज मैं पाईया, हरीया अभिनासीह ॥ १ ॥*
हरीया मन सांसै पड़्यौ, कहि समझावै कौन।
हसतौ रमतौ बोलतौ, ऊ कहां करिग्यौ गौंन ॥ २ ॥*

---

(१३) १. (ग) तेरा। २. (ग) मोपै लष्या न जाय। ३. (ख) जोति सरूपी जोय, (ग) छिन बालौ छिन डोकरौ, छिन मैं तरणा थाय।
(१४) १. (ग) हरीया सुष दुष भुगतीया, मेटै करता सोय।
(१६) १. (ग) रांवां कुं रंक करै।
(१७) १. (क) ता सुंनमांन, (ख, ग) ता उंनमांन। २. (ख) कुंजर। ३. (ख) कै, (ग) हरीया हुय तहां नीसरै, कुंजर कीरी मांन।

---

* (ख) सुनि।
(१) १. (ख) भया।
* चिह्नाङ्कित साषियाँ 'ग' प्रतिमें नहीं हैं।

हरीया संसा[1] मिट गया, गुन मिलग्या [2]निरगुंन ।
आवन जावन रहत हुय, सुरति समांणी सुंन ॥ ३ ॥*

सुंन सरवर चहुं फेर मैं, सुष सीतल तासीर ।
हरीया एक अषंड [1]मैं, ध्यांन धरुं ता तीर ॥ ४ ॥*

दिल दरीया मन मछली, नीर सिरजनहार ।
हरीया सब सुं ढूकड़ै, विरला [1]जांणणहार ॥ ५ ॥

जनहरीया मन जांह कीया, सुंन्य सरवर में वास ।
वळे न जांमण मरण की, धरै न हंसौ[1] आस ॥ ६ ॥*

जनहरीया सरवर सबै, ठांम ठांम भरपूर ।
जांह पायौ तां परम सुष, दुषी रह्या से दूर ॥ ७ ॥*

अपणै घर की गम नही, पर घर थावैं[1] कांय ।
हंस हंस की गय चलै, काग काग की [2]पांय ॥ ८ ॥

हंस गयौ उडि आप घरि, करि सायर की सुधि ।
हरीया सरवर सुधि विन, बूडौ काग [1]कुविधि ॥ ९ ॥

जनहरीया जल पंछीयै, पीयौ चंच भराय ।
अैसा कोय न देषीया, सब सरवर[1] पी जाय ॥ १० ॥

---

(३) १. (क, ख, घ) सब सांसा मिट्या । २. (क, ख) गुनां मिल गया गुंन ।

(४) १. (क, ख) हुय ।

(५) १. (ख, घ) विरला जांणैं सार, (ग) जे कोई जांणै सार ।

(६) १. (ख) दूजी ।

(८) १. (क, ख) डोहै, (ग) डोहण जांय । २. (ग) हरीया हंसा देष गय, कागा चलै ज कांय ।

(९) १. (क) कुबुधि ।

(१०) १. (क, ख) समंदर ।

* चिह्नाङ्कित साषियाँ 'ग' प्रतिमें नहीं हैं, उसमें पाठ निम्न प्रकारसे है—

अथ पेम कौ अंग ५०

जा घट[1] पेम प्रगासीया, त्रिषीया विकळप नांहि ।
हरीया छांना नां[2] रहै, आया[3] अंतर मांहि ॥ १ ॥
पेम न निपजै षेत मैं, हाट न. विकतौ जोय ।
हरीया गाहक पेम कौ, सिर दे लेसी सोय ॥ २ ॥
सिर कै साटै जौ मिलै, तौ निज पेम न जांनि ।
हरीया लेसी पेम कुं, देसी मन कुं आंनि ॥ ३ ॥

त्रिसना करूं न पचि मरूं, डरूं न डोलूं प्रांन ।
हरिरांमा मंन महज ले, धरूं सुन्य मै ध्यांन ॥ १ ॥
सुन्य सरवर कै तट की, तलक न दूजा नीर ।
हरीया वहिग्या वाहला, समंद न पाई सीर ॥ २ ॥
सुनि सरवर कै घाट मै, मनवा उलटि मिलाय ।
हरीया सो दर सेवीया, सांसा गया विलाय ॥ ३ ॥
हरीया विषै न वासना, कांम करम का नास ।
मनवा सुनि सरवर मिल्या, जहां सुष नील विलास ॥ ४ ॥
हरीया भरमे वंधीया, जुग मै जेता जीव ।
मिटैं न पड़िदा भरम का, पाय न सघैं पीव ॥ ५ ॥
सुनि सरवर कै वीच मै, जीव सीव का वास ।
हरिरांमा इन भेद कुं, भेदै हरि का दास ॥ ६ ॥
हरि सरवर सुभर भरया, जिन आंकै जिन चांक ।
हरीया पंछी पी गया, रती न षूटा टांक ॥ ७ ॥
हरीया पांणी अरस का, पाताळां पिणहार ।
जहां भरि पीया परम सुष, और दुषी संसार ॥ ८ ॥

---

(१) १. (ग) जाकै । २. (ख) क्युं । ३. (क) अपना, (ग) आपा ।
(२) (ग) गांव सहर कै गोरिवै, प्रेम विकाउ जाय ।
हरीया जे कोई लेवसी, देसी सीस कटाय ॥
(३) (ग) सिर कै साटै जो मिलै, तो सुंहगा जांणि ।
हरीया पेम पीयास विन, जांणै कौंण अजांणि ॥

हरीया साचै मन विनां, पेम न लीया जांहि ।
लेसी जन कोई वावरौ, मेट अहूं तन दांहि ॥ ४ ॥

अहूं आगि जा घट [1]वसै, पेम जिगासा नांहि ।
हरीया वासा पेम का, मन सीतलता मांहि ॥ ५ ॥

आगि लगाई जल[1] बुझै, सो फिर सीतल थाय ।
हरीया यातैं[2] अधिक है, अहूं न मेट्या[3] जाय ॥ ६ ॥

पेम भगति नित नेम[1] का, बौह कंठण वहवार ।
हरीया सोई[2] ले निभै, सुष दुष तज्य संसार ॥ ७ ॥

हरीया नेह निरास कौ, जे कोई पालै नेह ।
आपा इतनी[1] आदरै, तन मन पहली[2] देह ॥ ८ ॥

तन मन पहली[1] आडि [2]दे, हरीया नेह न छाडि ।
सूर सहै रिण पेत [3]मैं, यु मांसा चूकी हाडि ॥ ९ ॥

नेह जिको करि जांणीयै, हरीया आदि'र [1]अंत ।
तन मन देतां सीस[2] कुं, धोषौ नांहि [3]धरंत ॥ १० ॥

स्वांति बूंदि आकास की, पासै[1] पड़ी समंद ।
हरीया पेम विकार का, निज कण षोया कंद ॥ ११ ॥

---

(५) १. (ख, ग) तहां उपजै ।
(६) १. (ग) बळि । २. (क) इनतैं, (ख, ग) अहूं आगि तैं ।
३. (ख, ग)हरीया दहन (मिटै) न जाय ।
(७) १. (ख, ग) नेह । २. (क, घ) जनहरीया सो, (ग) कोई ।
(८) १. (क, ख, ग) इतनी पहली । २. (क, ख, ग) आपा तन मन ।
(९) १. (क, ख, ग) आपौ तन मन । २. (घ) दीजीयै ।
३. (ख) नेह जिकोई जांणीयै ।
(ग) सोई नेह निभावसी, घाव सहेसी हाडि ।
(१०) १. (ख) हरीया ले निरवंत । २. (ग) ले रहै । ३. (ग) तौ नेही निरवंत ।
(११) १. (ख) षाली ।

नीर निरासा सीप मुष, निज कण[1] मोती होय।
पेम उदै भई [2]आतमा, हरीया हरि सुष [3]होय॥ १२॥

हरीया सतगुर रीझ करि, वाह्या सब्द सतांण।
लागत ही परगट [1]भया, उदै पेम का भांण॥ १३॥

उदै पेम अंतर भया, पाया ब्रम [1]निवास।
हरीया ऊगै सूर का, चहूं दिसां [2]ओजास॥ १४॥

हरीया प्याला पेम का, पीया भरि भरि दाव।
और अमल किस कांम का, लीयां लाव न साव॥ १५॥

एक पीयाला[1] पेम का, वा मैं सुष[2] अनंत।
जनहरीया नित[3] पीवसी, सो[4] मतवाळा संत॥ १६॥

मतवाळा घूमत रहै, आठुं पौहर अषंड।
हरीया आवै [1]ऊतरै, पेम नही पाषंड॥ १७॥

अषंड पेम जा घट वसै, घट ही मांहि समाय।
जनहरीया घट पेम विन, सो घट पसु [1]कहाय॥ १८॥

पेम पीयाला रांम[1]रस, पी-पी भया [2]अछक।
जनहरीया पीयां पछै, तलब न काय [3]तलक॥ १९॥

---

(१२) १. (ग) रुति सिर। २. (क, ख, ग) आतिमा। ३. (घ) सोय।
(१३) १. (ख) सुं भेदीया, (ग) अंतर भेदीया।
(१४) १. (ख) विलास, (ग) एक सकल परगास। २. (ख) चहुंदिस भया उजास, (ग) भांण उदै दिन चंदणा, हरीया निसा न जास।
(१६) १. (क, ख, ग) एकज। २. (ख ग) या (जा) मै रुचि। ३. (ख) सो, (ग) हरीया सोई। ४ (ख) है, (ग) मन।
(१७) १. (क, ख, ग) षिन आवै षिन ऊतरै।
(१८) १. (क) सो पसुवादिक थाय, (ग) सो विषवादी थाय।
(१९) १. (ख) रांम रसायन पेम कुं। २. (ग) निहाल। ३. (ग) हरीया सोई पीवसी, सोई हरि का लाल।

हरीया प्याला पेम का, प्यासा होय स [1]पीव।
पेम ज मांग्या नां मिलै, महा अमोलिक [2]थीव ॥ २० ॥

जे कोई चाहै पेम कुं, पेम विनां नही [1]पेम।
जनहरीया सो पीवसी, नांव धरेसी [2]नेम ॥ २१ ॥

पहली पेम न चषीया, पीछै क्या पछताय।
पेम विनां सो [1]संगडौ, जनहरीया विष[2] भाय ॥ २२ ॥

पहली पेम चषाय लै, होय निरासा जीव।
जनहरीया जब पाईयै, परम सनेही पीव ॥ २३ ॥

परम सनेही पेम रस, सो[1] इतनौं निरबाहि।
हरीया रिध सिध मुगति की, और सकल[2] कुं चाहि ॥ २४ ॥

हरीया लैंणा पेम का, घरजांणी का पेल।
माथौ हाथि उतारि कै, आंनि पगां तलि[1] मेल ॥ २५ ॥

माथौ हाथि उतारि कै, धरै पगां तलि [1]आय।
हरीया अैसा हुय रहै, जब अमरापुर [2]पाय ॥ २६ ॥

---

(२०) १. (ख) लेह, (ग) प्यासौ है सोई लेह। २. (ख) मोलि महूंगै देह, (ग) मोल सटै नही देह।

(२१) १. (ख, ग) पेम अमोलिक मोल। २. (क) नांव धरै नित नेम, (ख) या ले चषसी, माप न कोई तोल, (ग) हरीया सोई चाषसी, षालिक सुं धिल षोल।

(२२) १. (क, ख) जनहरीया सो धं (ध्रं) गड़ौ, (ग) हरीया सोई धंगड़ौ, (घ) जनहरीया सो संगड़ौ। २. (क, घ) पेम विनां विष भाय, (ख, ग) पेम विनां अणभाय।

(२४) १. (क, ख, घ) मो। २. (ख) सब काहू कुं।

(२५) १. (क) पहली पगां तलि, (ख, घ) पगांणै।

(२६) १. (घ) उपरि पांव धरेस।
२. (क) जब न्यारा घर पाय।
(ख) माथौ मेल पगाथीयां, उपरि पांव धरेह।
हरीया जब तैं पाईयै, पेम तणां परमेह ॥
(घ) जब हरि आघा लेस।

हरीया भाठी पेम की, इंदर दई जगाय।
पेम पीयाला पीव करि, विषीया[1] प्यास मिटाय ॥ २७ ॥*

अथ कुसबद् कौ अंग ५१

कुवचन तौ साधु [1]जरै, भोमि सहेसी[2] भार।
बूंद समावै सिंध [3]मैं, वाढ़ सहेसी दार ॥ १ ॥

हरीया सोरी चोट सर, हाड पासळी छेक।
चोट सहेसी सबद की, गरवा[1] ग्यांन वमेक ॥ २ ॥

जिन पूरा गुर [1]प्रामीया, अहूं ईरषौ नांहि।
हरीया सबद विचारीयां, ग्यांन गाळीयां मांहि ॥ ३ ॥

गाळी ही मैं ग्यांन है, जौ टुक अंग समाय।
हरीया दुरजन को नही, सब सजनता [1]थाय ॥ ४ ॥

हरीया उर सीतल भया, पाया तत अनूप।
जै होतासण जुग जळ्या, मेरै उदग सरूप ॥ ५ ॥

---

(२७) १. (क, ख) बीजा।
*. 'ग' प्रतिमें अन्तिम चारों साषियाँ नहीं हैं।

---

(१) १. (क) साध जिको कुवचन जरै, (ख) साध कुवचन सहि रहै।
२. (क) धरा सहै सिर, (ख) धरा। ३. (क) समदरां, (ख) सायरां।

(२) १. (क) वाकै, (ख) अंतर।

(३) १. (क, ख, घ) पाईया।

(४) १. (ख) उर सीतल उपजाय।

हरीया जब सीतल भया, सब तैं एक समाय।
राग दोष अंतर[1] नही, सुष संतोष [2]समाय॥ ६ ॥*

अथ सबद कौ अंग ५२

हरीया जंत्री जंत्र विन, वाजै तार अषंड।
विन तूंबा विन मोरनां, घौर पड़ै ब्रहमंड॥ १ ॥

हरीय घट मैं सबद की, वाजै विन[1] करतार।
का तौ सांई सांभळै, का सांई का यार॥ २ ॥

---

(६) १. (ख) किनतैं। २. (क) सदाय, (ख) सदा सुषी मन थाय। (घ) रहाय।

*. 'ग' प्रतिमें इस अंगमें ये साषियाँ नहीं हैं, निम्न पाठ है—

हरीया दास न जांणीयै, कुवचन जरै न अंग।
कुवचन जरीयां बाहिरौ ताहि न लगै रंग॥ १ ॥

सोरठौ— मन आपनपौ मांनि, जब तैं कुवचन ना सहै।
हरीया तन की हांनि, विन आपनपौ मेटीयां॥ २ ॥
धरा सहै सिर षूंद, वाढ सहैगी विनसती।
समंद समावै बूंद, साधु कुवचन सहि रहै॥ ३ ॥

साषी— घाव सुहेला सेल का, लागां देह झड़ंत।
सबद दुहेला सो सहै, हरीया पाय पड़ंत॥ ४ ॥
जिन पूरा गुर भेटीया, मेट्या मोह अग्यांन।
हरीया पहली समझीयां, पीछै गाळी ग्यांन॥ ५ ॥

सोरठौ— हरीया गाळी ग्यांन, उर सीतलता उपजै।
आया अंतर ध्यांन, जिन पाया निरबाण पद॥ ६ ॥

साषी— सीतलता जब जांणीयै, दिल की दाझन जाय।
हरीया दुरजन को नही, सब ही सजन थाय॥ ७ ॥

---

(२) १. (ग) अनहद।

चोट सतांणी सब्रद की, भेद गई विच[1] प्राण।
हरीया लागी सो लखै, का वाही[2] सो जांण॥ ३ ॥

सोरठौ

लगी सबद की चोट, वींध गई विच काळिजौ।
हरीया और न [1]ओट, सतगुर वाह्या[2] मूंठ भरि॥ ४ ॥

साषी

सबद मार[1] कौ मारीयौ, रोम रोम विच पीर।
हरीया तीर न साल ही, सालै सबद[2] सरीर॥ ५ ॥
हरीया मार्‍यौ लोह कौ, घूंमै घायल होय।
मार्‍यौ घूंमै सबद कौ, घाव न दीसै कोय॥ ६ ॥

सोरठौ

हरीया घाव न एक, सब तन सारा [1]साबता।
अंदर छेक अनेक, चोट सबद की वहि गई॥ ७ ॥
सबद तणी तांह मार, ऊठै सूळ सरीर मैं।
हरीया इणी न धार, नष चष सारा [1]वींधग्या॥ ८ ॥

साषी

सबद मार छांनी छुरी, दिष्ट मुष्टि मैं [1]नांहि।
जनहरीया सो जांणसी, वहिगी अंतर मांहि॥ ९ ॥

---

(३) १. (क, ख, ग) तन। २. (ग) लाई।
(४) १. (ग) हरीया रह्यो न षोट। २. (ख) मार्‍या, (ग) मेल्या।
(५) १. (क, ख, ग) बांण, (घ) भालि। २. (क, ख, ग) पीर।
(७) १. (क, ख, ग) सारौ साबतौ।
(८) १. (ग) वेधीया।
(९) १. (ग) भूंदू कुं गम नांहि।

सबद मार कौ मारीयौ, रीवै सास उसास ।
हरीया बाहिर बोलिकै, काढि न सधै [1]वास ॥ १० ॥

जै जै मरणी[1] जुग मरै, सो मरणौ आसांन ।
हरीया विन मरणी मरै, सो तौ[2] कठण जांन ॥ ११ ॥

सींगण बांण सतांण विण, तकि वाह्या तत [1]तीर ।
का वाह्या सो जाणसी, का जिन सह्या सरीर ॥ १२ ॥

छकीयौ[1] घूंमै घाव [2]कौ, सो घट घायल[3] पीर ।
हरीया घूंमै घाव विन, भीतर मार सरीर ॥ १३ ॥

सबद मार[1] कौ मारीयौ, सारौ परित न होय ।
हरीया पहली मरि रह्यौ, पछै न जोषौ [1]कोय ॥ १४ ॥

माऱ्यो[1] बांण सरीर मैं, विण सांठी विण भालि ।
जनहरीया मन मरि [1]रह्यौ, हंस गयौ सर हालि ॥ १५ ॥

हंसौ जिन सरवर गयौ, चुगै न हरीया[1] चूंण ।
पायो एक निरास घर, आस न[2] दूजी जूंण ॥ १६ ॥

हरीया सरवर सीप विन, ता निज मोती होय ।
सो मोती हंसो चुगै, चंच पंष विन सोय ॥ १७ ॥

---

(१०) १. (क, ग) सास ।
(११) १. (क, ख, ग) जै (जिन) मरणी मैं । २. (क, ग, घ) ई ।
(१२) १. (ख, ग) तकि तकि माऱ्या तीर ।
(१३) १. (ग) घायल । २. (ग) सूं । ३. (ग) जाके घट की पीर (छुटकरमें) ।
(१४) १. (क, ख) बांण । २. (क) पछै जतन क्या होय, (ग) प्रतिमें नहीं है ।
(१५) १. (ग) लागा । २. (ख, ग) हरीया तन मन (थकि रह्या) ।
(१६) १. (ख, ग) मोती । २. (ग) धरै न ।
(१६) १. (ग) प्रतिमें नहीं है ।

अथ करम कौ अंग ५३

करम[1] कचोड़ी बैस करि, निजर लगी चहुं [2]दिस ।
हरीया विषै विकार मैं, तन मन रहीयौ [3]फिस ॥ १ ॥

जुग सुं तांतौ जोड़ि करि, सांई सुं नही सिंध ।
जनहरीया सो ले चल्यौ, करम कजोड़ा बिंध ॥ २ ॥

केताई नर[1] कळि गया, करम कळिन कै मांहि ।
हरीया हरि की भगति[2] विन, सो निकसन का नांहि ॥ ३ ॥

काचा पीळा करम करि, संचै धन संसार ।
हरीया पूंजी पाप की, चाहै पिन [1]आचार ॥ ४ ॥

पिन[1] सेती पुंहचै नही, अरस तणां घर दूर ।
जनहरीया सो [2]पुंहुचसी, भजै रांम[3] भर पूर ॥ ५ ॥

हरीया केता वहि गया, कीया करम कै लारि ।
धिल धंधै धन[1] वीच मैं, ध्यांन सधै नही धारि ॥ ६ ॥

हरीया रांम विसारि कै, मन माया मैं गाडि ।
वधि वधि होसी वषत मैं, बौह करमन की जाडि ॥ ७ ॥

---

(१) १. (क, ख) काच । २. (ख) निजर चहुं दिस थागि, (ग) नाना संधै नेह । ३. (ख) लागि, (ग) हरीया जाकै मुष मैं, जोय पड़ैगी षेह ।

(३) १. (ग) हरीया केता । २. (क, ख) हरीया साचै सबद, (ग) पसु पंषेरूं मानवी ।

(४) १. (ख) धरम नेम आचार, (ग) धरम करै वहवार, (घ) चाहै पुन आचार ।

(५) १. (क, ख, ग) पुन (न्य) । २. (ख) हरीया पुहचै नांव सुं, (ग) हरीया भूंज'रि वाहीया । ३. (क) नांव भजै नित सूर, (ख) भजै रैन दिन सूर, (घ) रांम भजन ।

(६) १. (क) कै ।

आसि पासि वन करम का, फल लागा सुष दुष ।
माया मोह विकार की, हरीया मिटै न भुष ॥ ८ ॥

हरीया सुत वित वौह भया, मिमता अजूं अघाय ।
कीड़ा होसी करम[1] का, चुड़िष चुड़िष तन षाय ॥ ९ ॥

चित चिंत्या संताप [1]तंन, करम उपासी जीव ।
हरीया कहि कैसैं मिलै, इतनां थोकां पीव ॥ १० ॥

हरीया करवत करम का, निस दिन वाढै अंग ।
वहरैं आवत जावतौं, वाढि करै तिंह भंग ॥ ११ ॥

करम[1] कचौळै वीच मैं, माया मिसरी[2] गाळि ।
हरीया सोई[3] पीवसी, देसी इंदर[4] जाळि ॥ १२ ॥

मिसरी का मावा करै, विषीया बंधै हेत ।
हरीया ऊषड़ि जावसी, ज्युं मूळै का षेत ॥ १३ ॥

करम करैं तौ धरम करि, नही तौ करम न षटि ।
जनहरीया जुग जेवड़ी, ज्युं ऊवट ज्युं वटि ॥ १४ ॥

कहता है करता नही, अैसा आदम षोर ।
मूवा चाहै मुगति कुं, जीवत हरि का चोर ॥ १५ ॥

---

(९) १. (ख) कीड़ा मधिम ठौर का ।
'ग' प्रतिमें सं० ७, ८, ९, १० साषियाँ नहीं हैं ।

(१०) १. (ख) मन ।

(१२) १. (ख) काच । २. (ख, ग) मिसरी करि करि । ३. (क, ख, ग) सो भरि । ४. (ख, ग) अंदर, (घ) अंतर ।

(१३) १. (ग) प्रतिमें यहाँ अधिक है—

माया मिसरी मन विषै, मावा बंध सनेह ।
हरीया वासा करम का, जिन का आरिष एह ॥ १० ॥

हरीया रांम न [1]सिवरीयौ, तास पटंतर[2] एह।
जोनि जोनि मरि[3] औतरै, दुष सुष भुगतै देह ॥ १६ ॥

तीन लोक फिर देषीया, घर घर ठांमो ठांम।
हरीया रांम संनेह [1]विन, किधू[2] नही विसरांम ॥ १७ ॥

साध सुमारग [1]नां लीया, फस्या जगत कै [2]मांहि।
जनहरीया उंन[3] जीव का, करम न मन का [4]जांहि ॥ १८ ॥

जीवां कुं तौ ब्रह्म [1]कहै, कहै ब्रह्म कुं[2] जीव।
हरीया ऐसा [3]आदमी, कलि मैं करमी थीव ॥ १९ ॥*

अथ काल कौ अंग* ५४

हरीया रांम न चेतीयौ, जा[1] दिन भयौ अकाज।
जो[1] दिन होता [3]कालि का, ऐसा होय न[4] आज ॥ १ ॥

---

(१६) १. (ख, ग) रांम विसारीयौ। २. (क, ख, ग) जा स तणा फल। ३. (ग) लख्चौरासी।

(१७) १. (ख) हरीया रांमो राम विन, (ग) हरीया हरि सिवरन विनां। २. (ग) कहूँ।

(१८) १. (ख, ग) हरिजन पैंडै ना धस्या। २. (ग) वीच। ३. (ग) हरीया ऐसैं। ४. (क, ख) करम कदे नही जांहि, (घ) करम किसी विध जांहि, (ग) करम न कटीया कीच।

(१९) १. (क) जीवां जांनै ब्रह्म करि, (ख) जीव करि जांनै ब्रह्म कुं। २. (क, ख) ब्रह्म करि जांनै। ३. (ख) पुरुष है।
* (ग) जीवां सेती जीव कहै, कहै ब्रह्म कुं ब्रह्म।
जैसे कुं तैसा कहै, हरीया भरम न क्रम ॥

---

*. (ग) प्रतिमें 'काळ चित्रावण कौ अंग' नाम है।

(१) १. (घ) जा। २. (क, ख) सो। ३. (क, ख) कालि सा। ४. (क, ख) होय इसा (जिसा) नही। (ग) में यह साषी नहीं है, इसके स्थानपर निम्न साषी है—

आज कालि क्या करत हैं, हरीया होय अवेर।
क्या जांणु कैसी[1] करैं, संझां वीच सवेर ॥ २ ॥

समझायौ समझै नही, अंधौ[1] भयौ अगौर।
जम रोकैगौ द्वार[2] नव, निकसन[3] कुं नही ठौर ॥ ३ ॥

सब जुग जाता देषीया, रहता[1] कोउ नांहि।
हरीया होसी[2] तुझि मैं, अैसी[3] ही [4]मुझि मांहि ॥ ४ ॥

सब ही कुं डर काळ का, निडर न[1] दीसैं कोय।
हरीया जाकुं[2] डर नही, रांमसंनेही होय ॥ ५ ॥

रांमसंनेही बाहिरौ, सबै काळ की [1]मार।
जनहरीया[2] तिंह लोक मैं, चुणि[3] चुणि [4]करै [5]सिकार ॥६॥*

आज कालि क्या करत है, अंधा भयौ अचेत।
जम तेरै घर प्रांहणौ, चेत सकै तौ चेत ॥

(२) १. (ख) क्या होवसी। (ग) में यह साषी नहीं है, निम्न साषी है—

रांम नांम चेत्यौ नही, स्याई भई सपेत।
हरीया सो क्या लाटसी, बीज न वाह्या ब्रेत ॥

(३) १. (क, ख, ग) हरीया, (घ) आंधौ।
२. (क) जम रोकै घर बार नर, (ख) जम रोकै जब द्वार घर।
३. (क, ख) नासण, (ग) तुं करि दसवै ठौर।

(४) १. (ख) जोर किसी का, (ग) एक विनां को।
२. (क) हरीया होसी एक दिन, (ख) हरीया रहीयै डरपता, (ग) हरीया तातैं डरत हूँ। ३. (ख) औरां सो, (ग) सो होसी। ४. (क) तुझ।

(५) १. (क, ख) भया नही। २. (ख, ग) सोई निडर है।

(६) १. (ख) चार। २. (ग) हरीया है। ३. (क) फिर फिर।
४. (ख) लेसी मार। ५. (ग) ना कोई वंचणहार।

*. (ग) में यहाँतककी साषियाँ 'काळ चित्रावण' के अंगमें हैं। इसी कथित अंगमें निम्न साषियाँ अधिक हैं—

निसदिन आवत जात है, ज्युं धम घटता[1] जाय।
हरीया सास[2] सरीर[3] मैं, वास किता दिन[4] थाय ॥ ७ ॥

ज्युं ज्युं धम निसदिन घटै, ज्युं जुर घतै[1] जाळ।
हरीया पहली [2]कीजीयै, रांम[3] नांम की[4] पाळ ॥ ८ ॥

सकल[1] काळ की झपट मैं, आए[2] राव'र रंक।
जनहरीया[3] न्यारा[4] रह्या, सिवरया[5] रांम[6] निसंक ॥ ९ ॥

दसवौ घर है देव कौ, जहां जम का नही जोर।
हरीया चेतन राज है, पंच न पसरै चोर ॥
तीन लोक वस्य काळ कै, काळ न किसकै वस्य।
हरीया हरि असवार हुय, लीया काळ कुं कस्य ॥
अति उँचौ असमांन तैं, तीन रसातळि जांनि।
हरीया ताकै वीच मैं, लेसी संत पिछांनि ॥
(इनके आगे 'काळ कौ अंग' है।)

---

(७) १. (क, ख, ग, घ) आवै। २. (ग) अैसै धम का। ३. (ख) उसास का। ४. (क, ख, ग) किसा भरोसा। (ग) में इसके पश्चात् निम्न साषी है—

किसा भरोसा रैण दिन, सास किसा वेसास।
हरीया ज्युं जल तेह विन, किसी ओस की आस ॥

(८) १. (ग) मंडै। २. (ग) बंधीयै। ३. (ग) ज्युं जळ दोळी। ४. (क) प्रित। (ग) में इस साषीके अनन्तर निम्न साषी अधिक है—

ज्युं ज्युं धम निसदिन घटै, आव उरेरी आव।
वेल गये दिन च्यार मैं, ज्युं चौपड़ि का दाव ॥

(९) १. (ग) सबै। २. (ग) हरीया।

३. (ग) जुग मैं धारै सो करै, किस की मनै न संक।
४. (ख) रहसी सदा। ५. (ख) एको। ६. (क, ख) नांव।

तीन[1] लोक ता वीच मैं, अकल काळ की चोट।
जनहरीया[2] जोय[3] मारिसी, छोटा गिनै न मोट ॥ १० ॥

छोटा मोटा नां गिनै, उंचा गिनै न नींच।
जनहरीया[1] दिन पूजीयां, मारै मींच[2] कुमींच ॥ ११ ॥

तेरै सिर परि[1] जम पड़ौ, बांण कसीस[2] कबांण।
हरीया किन[3] सुं नां टरै, मारै विन[4] कर तांण ॥ १२ ॥

हरीया वूढा[1] नां गिनै, तरना[2] गिनै न बाळ।
काळ पसारा सकल जुग, ज्युं मकड़ी का जाळ ॥ १३ ॥

पौह मैं[1] सिंझ्या सिंझ पौह, जम रोकैंगौ द्वार।
हरीया रांम संभारतौ, ढीलौ कांय गिवार ॥ १४ ॥

मैं नही जांणु काळ[1] कुं, कहौ[2] किसी दिन आय।
जनहरीया डर काळ कौ, साथि फिरै[3] जीव जाय ॥ १५ ॥

---

(१०) १. (ग) काळ कीसी कै वस्य नही, काळ अकल है चोट।
२. (ग) हरीया सब। ३. (क, ख, ग) चुणि चुणि लीया।

(११) १. (ग) हरीया सो। २. (क, घ) जमरौ मींच, (ग) काळ।

(१२) १. (क, घ) जमरौ। २. (क, ख) कबांण कसीस, (ग) उभौ बांण कसीस। ३. (क) किस विध, (ख) किसती, (ग) सो किस विध टरै। ४. (क, ख) विसवा वीस।

(१३) १. (ग) तरणा। २. (ग) वूढा गिणै।

(१४) १. (ग) ती।

(१५) १. (ग) मैं डरपत हूं काळ सुं। २. (ग) काळ। ३. (ख) लीयां, (ग) हरिरांमा तिह लोक मै, जौंरौ वुरी बलाय।

(ग) में इसके पश्चात् निम्न साखी अधिक है—

मैं जांणु नही काळ कुं, करै किसी दिन घात।
हरीया ज्युं जांमण मरण, उदै असत हुय जात ॥

हरीया[1] बालक जनमीयौ, जा[2] दिन वागौ थाळ।
वा दिन[3] रळी वधांवणौ, काळ वजावै ताळ॥ १६॥

हरीया[1] बालक जनमीयौ, ता[2] दिन भलौ [3]कहाय।
इक दिन याही[4] मुष तैं, आय[5] कहैं हाय हाय॥ १७॥

हरीया[1] बालक जनमीयौ, गावैं मंगल गीत।
जा[2] दिन कुं जांणैं नही, जौंरौ करै फजीत॥ १८॥

जौंरौ करै फजीतीयां, रोय रोय रता[1] नैंन।
हरीया हरि विन[2] जीव कौ, सजन[3] नां कोई सैंन॥ १९॥

जवै[1] जाय[2] जीव एकलौ, संग न कोई साथ।
जनहरीया तन धन [3]पछै, पड़ै पारकै हाथ॥ २०॥

---

(१६) १. (ग) जिस घर। २. (क) जिसकै, (ख) जिस घर, (ग) हरीया। ३. (क) वा घरि, (ख) वाकै, (ग) जिस घर, (घ) वा घर।

(१७) १. (ग) जिस दिन। २. (क) जा दिन, (ख) जिस, (ग) सब को भली, (घ) जो दिन। ३. (ख, ग) कहंत। ४. (ख, ग) वाही। ५. (क) सोह कौ वुरौ सुणाय, (ख) भूंडौई भाषंत, (ग) वुरी वुरी भाषंत।

(१८) १. (ख) जिस दिन। २. (ख) जिस, (ग) उस।

(१९) १. (क, ख, ग, घ) थके। २. (ख) जनहरीया इन, (ग) हरीया सुत परिवार मै।
३. (क, ख) नां कोई सजन सैंन,
(ग) रांम विनां कुन सैंन।

(२०) १. (क) यौ। २. (क, ख, घ) जीव जावै। ३. (क) जवै, (ख) सवै।

'ग' प्रतिमें यह साषी नहीं है।

मात पिता सुत बंधवा, कोय किसी का नांहि ।
हरीया चींटी नाळ ज्युं, के आवै के[1] जांहि ॥ २१ ॥

जौ बालक जनमत नही, तौ[1] वाजत नही थाळ ।
हरीया[2] जा घरि आयकै, कहा करैगौ[3] काळ ॥ २२ ॥

जनहरीया तन [1]कारिवौ, जैसैं काचा कुंभ ।
वा मैं सासा थिर[2] नही, या मैं नीर न [3]ठंभ ॥ २३ ॥

तन तरवर कै वीच मैं, वसे पंषेरु पंच ।
जनहरीया उडि [1]जावसैं, नही भरोसौ रंच ॥ २४ ॥

सो दीसै सो विणससी, ऊगै आथमि जाय ।
जनहरीया सो जनमसी, जम[1] ले जासी आय ॥ २५ ॥

जम[1] झोलै का मारीया, पग टेकण नही पाय ।
हरीया काठा हुय [2]रहै, आतम ओट संभाय ॥ २६ ॥

---

(२१) १. (क) एक आवै एक, (ख) इक आवै इक । (ग) में यह साषी नहीं है ।

(२२) १. (ख) तौ कुंण थाळ वजाय । २. (ख) जनहरीया जम जास घर, (ग) हरिरांमा जम आयकै । ३. (क, ख, घ) करेसी, (ग) कहां वजावै ताळ ।

(२३) १. (ग) हरीया काया कारवी । २. (ग) इथिर है । ३. (क, ख) थंभ ।

(२४) १. (क) जांहिगे, (ग) हरीया कब उडि जावसैं, (घ) जावसी ।

(२५) १. (क, ख) सो जम (जौंरौ) लेसी षाय ।
(ग) प्रतिमें इस स्थानपर निम्न साषी है—
सो दीसै सो थिर नही, थिर नही सास सरीर ।
हरीया झोलौ काळ कौ, ज्युं निकसै तन तीर ॥

(२६) १. (क, घ) जम कै झोलै मारीयौ, (ख) जम झोलै जुग मारीयौ । २. (क) रहौ, (ख) जनहरीया जो मिंड रहै ।
(ग) प्रतिमें यों है—
जुग झोलै को मारीयौ, ज्युं आवै चलि जाय ।
हरीया हरि सुं उबरै, आडी ओट संभाय ॥

ओट गही तौ क्या भया, जौ सिवखा नही [1]रांम ।
जनहरीया विन चालीयां, कैसैं पुंहचै[2] गांम ॥ २७ ॥

षड़ौ पुकारै मिरघलौ, या वन मांहि अनेक ।
और पारधी चुणि लीया, आय रह्या हम एक ॥ २८ ॥

हरीया मिरघ[1] विलंबीयौ, हरया देष वन [2]घास ।
जीवण का सांसा पड़्या, इण आजूणै [3]वास ॥ २९ ॥

मिरघ एक लष पारधी, छूटि किसी विध [1]जाय ।
जनहरीया जौ [2]ऊबरै, अगम देस कुं ध्याय ॥ ३० ॥

मैड़ी महल चिणावते, ऊपरि कळी लपेट ।
चिंणत चिणावत ऊठिगे, लगी काळ की [1]फेट ॥ ३१ ॥

नोबतिषांना गिड़गिड़ी, वाजा भेर निसांन ।
जनहरीया जब[1] छाडिगे, फिरी काळ की [2]आंन ॥ ३२ ॥

पग पग बैठे पाहरु, आडा सजड़ किवार ।
काळ धकै सुं ले [1]चल्यौ, काय न मांनी कार ॥ ३३ ॥

---

(२७) १. (क, ख, ग) नांम । २. (क, ख, ग, घ) आवै ।
(२९) १. (ग) मन मिरघौ तहां । २. (ग) वास । ३. (क, ख) इण हरियाळै वास, (ग) हरया चरै कुंण घास ।
(३०) १. (क, ख) छोडण का नही थाय, (ग) उठि उठि लगा पाय । २. (ग) हरीया ऐसैं उबरैं ।
(३१) १. (ग) प्रतिमें यह साषी निम्न रूपसे है—

ईंटां महल चिणाय करि, चूनौ कळी लगाय ।
चिणता सेई चलि गया, चले चिणाय चिणाय ॥

(३२) १. (क, ख) सब, (ग) हरीया सबही पलक मै । २. (क, ख) राजपाट असथांन (सुलतांन), (ग) छाडिगए दीवांन ।
(३३) १. (क, ख) गयौ, (ग) जीव जरवांणै लेगयौ ।

हैंवर ऊभे[1] पायगै, द्वारै[2] हसती बंध।
हरीया हेकै पलक मैं, सब सुं पड़िगी [3]संध ॥ ३४ ॥

छाड्या मिंदर माळीया, छाडी सेझ [1]सराय।
हरीया गढ मढ छाडिकै, वसे[2] मसांणां जाय ॥ ३५ ॥

छाडे छतर [1]वैसणौ, भूपति छाडे देस।
हरीया सेझ[2] सराय मैं, काळ कीया परवेस ॥ ३६ ॥

चोवा चंदण चरचती, कांमणि करत[1] सनेह।
सूती जाय मसांण विच, भसम भई[2] सब देह ॥ ३७ ॥

दीया दे दे पौढती, रहती पीया[1] रति।
जनहरीया [2]जम आयकै, लेग्यौ आगैं[3] घति ॥ ३८ ॥

आज सहेली दंत कौ, चूड़ौ पहर्यौ हथ।
हरीया सिंझ सवेर मैं, चली अडोळी बथ ॥ ३९ ॥

बालापण तरणा गयौ, वड वूढापौ थाय।
हरीया कर सिर कंपीया, त्रीष भरी नही जाय ॥ ४० ॥

आज सहेली[1] अंगणै, ऊभी[2] अंग सुवारि।
हरीया सांझ'क[3] स्वार मैं, सूती पाव पसारि ॥ ४१ ॥

---

(३४) १. (क, ख, ग) बंधे। २. (ख) होते, (ग) हसती राज दुवार। ३. (ग) छड़ी'ज पौंहती काळ की, चले सार विसार ॥

(३५) १. (ग) विछाय। २. (ग) वासा मड़हट थाय।

(३६) १. (ग) छतर सिंघासन छाडिकै। २. (ग) सहर।

(३७) १. (ख) कंत। २. (क, ख, ग) करी।

(३८) १. (ग) विषीया। २. (ख, ग) हरीया जौरो। ३. (क, ख) आगलि।

(४१) १. (ख, ग) आज'ज उभ्री। २. (ख, ग) आपा। ३. (ग) सभां'क सांझि विच।

हरीया सब[1] संतां कह्यौ, जै[2] कोई कांनि [3]करेस ।
एक सबद गुर बाहिरौ, सबही काळ [4]गहेस ॥ ४२ ॥

काळ कमर कसीयां षड़ौ, मारै मूंठ[1] अदीठ ।
जनहरीया जौ वंचीयै, साहिब[2] रषै पीठ ॥ ४३ ॥

करता जौ कायम करै, तौ कुंण मारणहार ।
जनहरीया करतार[1] विन, और न को आधार ॥ ४४ ॥

जोय जौंरौ करिसी [1]जिका, रांम भजन विन [2]तोय ।
जनहरीया जल पाळि[3] विण, जातां ताळ न [4]कोय ॥ ४५ ॥

---

(४२) १. (ग) संतां सो । २. (क, ख, ग) सो मैं कह्या सुणाय । ३. (घ) धरेस । ४. (क, ख) काळ धरासै आय, (ग) काळ सकल कुं षाय ।

(ग) प्रतिमें इसके पश्चात् निम्न साषी अधिक है—

या जुग मांही आय करि, केता कह्या विगार ।
काल करै सो नां करै, हरीया हरि करतार ॥

(४३) १. (ख) दीठ । २. (क, ख) सांई ।

(ग) प्रतिमें इस प्रकार है—

काळ कमर कसीयां षड़ौ, वासौ सहर मंझार ।
हरीया आज'क स्वार विच, आतां कितीएक वार ॥

(४४) १. (क) करता विनां ।

(ग) प्रतिमें निम्न पाठ है—

करता जौ कायम करै, काळ करै कुछि नांहि ।
हरीया हरि करतार विन, जुग सौह वूहा जांहि ॥

(४५) १. (क, ख, घ) जोय जिका जौंरौं करै । २. (ख) सोय । ३. (क, ख, घ) हरीया पांणी पाळि विण । ४. (क, ख) होय ।

(ग) प्रतिमें यह साषी इस प्रकार है—

जोय जिका तुझि मैं करै, जमरौ घातै रोळि ।
हरिरांमा ज्युं कूकरा, करैं उघाड़ी पौळि ॥

तुं क्युं सूतौ[1] नींद भरि, भजन विनां [2]वेकाज।
जनहरीया[3] जौरौ करै, षड़ौ सिरांणै वाज॥ ४६॥

तुं [1]क्युं सोवै नींद भरि, असुर ईयांणौ होय।
जनहरीया[2] सिर ऊपरैं, दुसमण आया[3] दोय॥ ४७॥

तूं तौ[1] सूतौ नींद भरि, लिवैं नचीतौ धंम।
हरीया आया[2] [3]जोवतां, एक जुरा एक जंम॥ ४८॥

जुरा करै[1] तन जोजरौ, जैसैं[2] जीरण चीर।
हरीया धकौ न सहि सषै, जीरण चीर सरीर॥ ४९॥

जौ जंम सेती [1]वंचीयै, तौ[2] जुरा न टाळी[3] जाय।
हरीया दोउं वीच मैं, कुसल किसी[4] विध[5] थाय॥ ५०॥

तीन लोक ताकै परै, एक अभंगी राय।
जनहरीया[1] जांह[2] मिल रह्या, जुरा न जौरौ [3]षाय॥ ५१॥

---

(४६) १. (ख) जुग सोह सोवै। २. (क, ख, ग) कालि उलीदै आज। ३. (ग) हरीया जोय।

(४७) १. (ख, ग) जुग। २. (ग) हरीया जिण। ३. (ग) ऊभा।

(४८) १. (ख, ग) सब जुग। २. (क) हरीया सिर ऊपरि षड़ा, (घ) आसी। ३. (ख, ग) जनहरीया सिर (दुनी) आवीया।

(४९) १. (ख) कीयौ, (ग) भयौ। २. (ख) ज्युं कोई।

(५०) १. (ग) काल किसी विध सिर टरै। २. (क, ख, ग, घ) में 'तौ' नहीं है। ३. (क) छडै जोय, (घ) वीयापै जोय। ४. (ग) न कोई। ५. (क, घ) होय।

(५१) १. (क) हरीया जहां मन मिल०, (ख) हरीया वासुं, (ग) हरीया सो घर पाईया। २. (घ) मन। ३. (क, ग, घ) जाय।

अथ मछी कौ अंग ५५

प्रीत इसी करि जांणीयै, ज्युं जल मछी जोय।
जनहरीया तन नीर [1]तैं, निमष न[2] न्यारी होय॥ १ ॥

मछी जल छाडै नही, छाड्यां तजै सरीर।
जल कै मन[1] भांणै नही, जनहरीया पर पीर॥ २ ॥

पीर पराई कारणै, सो मरणौ [1]मुसकल।
हरीया अपनी पीर मैं, सोई [2]मरण सहल॥ ३ ॥

मछी वास वसंतड़ी, इन [1]सरवर की तीर।
झीवर कै पांनै पड़ी, बंधी जाल सरीर॥ ४ ॥

वंधक मछी ले गयौ, छूंनि पचायौ षांण।
जनहरीया हरि नांव विन, वंचैंगौ[1] किस पांण॥ ५ ॥

मछी मरम न जांणीयौ, या जल कांठै जाळ।
जनहरीया[1] परवस्य पड़ी, छूटण का नही ह्वाळ॥ ६ ॥

मछ कहै सुण मछली, तेरा सरवर वास।
मैं भी इन सरवर [1]वसु, तुं क्युं बंधी फास॥ ७ ॥

---

(१) १. (ख) हरीया पलक न वीछरै। २. (क) न्यारी पलक न, (ख) जीवन जौं ला जोय, (ग) न्यारी निमष न। (ग) में यह साषी नहीं है।

(२) १. (ख) कुछि। (ग) प्रतिमें यह साषी नहीं है।

(३) १. (क) मुसिकल, (ख) मुसकलि। २. (ख) मरणौ आज कि कलि। (ग) में यह साषी नहीं है।

(४) १. (ख, ग) भवसागर।

(५) १. (क, ख) जीवैगौ, (ग) ले जासी जमरांण।

(६) १. (ग) हरीया तन।

(७) १. (क, ख) रहुं, (ग) मैं भी या जल मैं रहूं।

मछा मतै गुमांन करि, या लोकायत [1]लोग।
तेरा दिन पूगा नही, मेरा आया जोग ॥ ८ ॥

मछा मतै गुमांन करि, तम ही [1]जल का जीव।
तम ऊगण हम आथवण, इती विचाळी [2]थीव ॥ ९ ॥

मछा सुणि मछी कहै, मोटा बोल न बोल।
मुझि मैं होय'स तुझि मैं, कहुं वजायां ढोल ॥ १० ॥

मछी जळ जोषा घणा, सूती कौंण पसाय।
झीवर तेरै कारणै, लांबी डोरि वटाय ॥ ११ ॥

तुं सरवर की मछली, वास वहंदे[1] पाळ।
सो[2] सरवर नही सेवीयौ, झीवर जाळ न काळ ॥ १२ ॥

जल जाई जल ऊपनी, जल तेरा विसरांम।
हरीया जम ले जावसी, वैग सिवरीयै[1] रांम ॥ १३ ॥

तीन लोक मैं काळ का, जाळ पसारा जोय।
जनहरीया[1] इन वीच मैं, आय जाय सब [2]कोय ॥ १४ ॥

मछी बैठी तठ सिर, झीवर घत्यौ जाळ।
हरीया कैसैं[1] वंचीये, षड़ौ[2] सिरांणै काळ ॥ १५ ॥

तुं सरवर की मछली, दावा किसती नांहि।
बंधक लेग्यौ बिंद[1] करि, भरीयै सरवर मांहि ॥ १६ ॥

---

(८) १. (ग) तुं केता दिन भोग।
(९) १. (ख, ग) तम हम जल के। २. (क) पीव।
(१२) १. (ग) वहंतै। २. (ग) तैं सो सर सेयौ नही।
(१३) १. (क) संवरि हरि नांम, (ख, ग, घ) भजै नही रांम।
(१४) १. (ग) हरीया वाकै। २. (क, ख) लोय।
(१५) १. (ख, ग) किस विध। २. (ख) आय।
(१६) १. (क, ख) बंध, (ग) बिंध।

तुं सरवर की मछली, कौंण पिता कुंण माय।
अलप संनेही कारणै, हाटो हाट[1] विकाय ॥ १७ ॥

कहा कीयौ तैं मछली, या सरवर मैं आय।
जनहरीया हरि[1] नांव विन, जीव दह[2] वाटां जाय ॥ १८ ॥

सोरठौ

जींव गयौ दह वाट, कारिज को सरीयौ नही।
जनहरीया हरि[1] हाट, सुक्रिथ सौदा नां कीया ॥ १९ ॥

हरीया सरवर तीर, मांणिक मोती अति घणा।
क्या जांणै सुधि कीर, मरजीया सो [1]जांणिसी ॥ २० ॥

साषी

अथग नीर ता वीच मैं, मछी कीन्हा वास।
जनहरीया[1] डर को नही, काळ न झीवर पास ॥ २१ ॥

अथ सजीवन कौ अंग ५६

ओषद करि करि जुग मूंवा, वेदन चड़ी न हाथि।
जा[1] ओषद सुं उबरै, वाकी[2] पड़ी अनाथि ॥ १ ॥

---

(१७) १. (ग) हाथो हाथ।
(१८) १. (क, ग, घ) हरीया हरि सिवरन विनां, (ख) सिवरन विनां।
२. (क, ख) दसुं दिस।
(१९) १. (ख) इन, (ग) हरीया बैठे।
(२०) १. (घ) मन प्रामसी।
(२१) १. (ग) हरीया तांह।

---

(१) १. (ख) वा, (घ) जा ओषद। २. (क) हरीया।

हरीया पीर परापती, तन तैं[1] दई लगाय ।
वैद विचारा क्या करै, विन भुगत्यां नही जाय ॥ २ ॥

जनहरीया जांह जाईयै, पषापषी नही [1]काय ।
मूंवां[2] सोग न सांदरौ, रोज[3] न रोवै आय ॥ ३ ॥

जांह आंवण जांवण नही, मूंवा सुणैं न कांन ।
जनहरीया जांह जाईयै, वैद मिलै [1]भगवांन ॥ ४ ॥

हरीया वैद बुलाय[1]कै, बांह दिषाई मोहि ।
सो वेदन तन[2] भीतरैं, हाथि न आवै तोहि ॥ ५ ॥

---

(२) १. (क) देह सुं, (ख) जो दिन, (ग) जो दिन दीन्ही थाय, (घ) सुं ।

(३) १. (ख) कोय । २. (ख) नां कोई । ३. (ख) मुंवां न रोवन होय । (ग) में यह साषी इस प्रकार है—

हरीया नाड़ी वैद कुं, कहा दिषायां होय ।
अंतरजामी बाहिरौ, रोग न जावै कोय ॥

(४) १. (ग) प्रतिमें निम्न साषी है जो मूल साषी संख्या ६ से प्रायः मिलती है—

तुं क्या बूझै वैद कुं, कहा ओषदी षांन ।
हरीया जिन वेदन दई, सो करिसी आसांन ॥

(५) १. (ख) करि । २. (ख) धिल । (ग) प्रतिमें ५ वीं साषीके आगे इस प्रकार साषियाँ हैं—

षिण षावै कंद मूल कुं, वास करै वन मांहि ।
रांम नांम विन ओषदी, हरीया से मरि जांहि ॥
सो ओषद क्या कीजीयै, जासुं मरि मरि जाय ।
हरीया सोई लीजीयै, जनम'र मरण मिटाय ॥
हरीया मरिबौ षूब है, दूरि दिसंतर जाय ।
तुं जहां थारौ को नही, म्हारौ कहै न आय ॥
हरीया जहां मूवा भला, पछै न को पछताय ।
ना कोई जाळै जिंद कुं, माटी स्यावज षाय ॥

तुं क्या करी हैं [1]वेदीया, ओषद पांणी [2]देह।
हरीया[3] जिन वेदन दई, सारा[4] सोय करेह ॥ ६ ॥

जुगति विनां जोगी मूंवा, रोगी ओषद षाय।
नांव[1] ओषदी बाहिरौ, जीवन कैसैं थाय ॥ ७ ॥

सोरठौ

ओषद आतम[1] नांम, हरीया सतगुर कहि गया।
त्रिषीया[2] मिटैं विरांम, जे कोई लेवैं[3] पछि करि ॥ ८ ॥

हरीया[1] ओषद षाय, बौह सिध साधिक [2]ऊवरया।
कुपछि मूंवा जुग [3]आय, नही तौ[4]ओषद नांव निज ॥ ९ ॥

साषी

या भव [1]जग मैं यु रहौ, ज्युं कवला जल पास।
हरीया जांह[2] मन रषीयै, जुरा न जम का फास ॥ १० ॥

हरीया[1] पांव न पंष विन, सुरति चड़ी असमांन।
नांव निरंजन पाईयां, न्यारा वेद पुरांन ॥ ११ ॥

---

(६) १. (क, ख, घ) वैदीया। २. (ख) आंनि। ३. (ख) जनहरीया। ४. (ख) सो करसी आसांनि।

(७) १. (क) हरीया निज ओषद विनां, (ख, घ) हरीया ओषद नांव विन, (ग) हरीया पछि विन कुपछीया।

(८) १. (ग) हरि का। २. (क, ग, घ) यासुं, (ख) कोटिक। ३. (ख) लेसी।

(९) १. (ख) इन। २. (क, ख) वंचीया, (ग) या ओषद कुं षाय, आगै पीछै उवरै। ३. (क, ग) कुपछया से मरि जाय। ४. (ग) हरीया।

(१०) १. (ग) इन भव जुग सुं, (घ) या भव जल। २. (क, ख, ग) तांह।

(११) १. (ग) में यह साषी इस प्रकार है—
हरीया नाभी मेर करि, सुरति गई असमांन।
पीव नीयारा पेषीया, देही मै दीवांन ॥

अथ चित कपटी कौ अंग ५७

जनहरीया[1] चित कपट[2] कौ, ज्युं बदरी का बोर।
तन तैं[3] दीसैं नरम सा, इंदर[4] भया[5] कठोर ॥ १ ॥

मन मैला तन ऊजला, भला न होय [1]निदांन।
हरीया उ[2] मन यु रषै, षाग रषै ज्युं म्यांन ॥ २ ॥*

आयां कुं आदर [1]नही, मोड़ै पाछा मुष।
हरीया जांह न जाईयै, मिलै न अपनी[2] रुष ॥ ३ ॥

हरीया जांह न जाईये, देष[1] दुरावै [2]नैंन।
वाकै चित अभांवना, मिलै न तन मन [3]वैंन ॥ ४ ॥

नेन न पेम न प्रीत [1]हरि, आव न कहै सिधाव।
हरीया परहरि हित[2] विन, वा[3] घरि लाव न साव ॥ ५ ॥

---

(१) १. (ख) हरीया यु। २. (क, घ) का, (ग) हरीया कपटी चित है। ३. (क, ख) मुष नरमाई दाषवै, (ग) बाहरि। ४. (क, ख, घ) अंतर, (ग) भीतरि। ५. (ख) बौहत।

(२) १. (ख) निद्यांन, (ग) धारै बुग सा ध्यांन। २. (ख) ऊ अपना, (ग) कपटी चित कुं यु।

* (ग) में इसके बाद निम्न साषियाँ विशेष हैं—

अंदर कड़वा तन वसै, मुष तैं मीठा बोलि।
हरीया कपटी चित की, कपटी ही सुं षोलि ॥
तन कंचन सा क्या भया, मन भीतरि भंगार।
हरीया मुष सीतल च्वै, उर वरसै अंगार ॥

(३) १. (ग) विण आदर आघा लिवै। २. (ग) मन की।

(४) १. (क, ख, ग) नैंन (ण)। २. (क, ख) देष, (ग) जास। ३. (क, ख) राग न जासु (धरीयै) धेष, (ग) हेत न प्रीत निवास।

(५) १. (क, ख) पेम प्रीत जा घरि नही, (ग) भगति भाव जाकै नही। २. (क, ख,) हेत, (ग) पेम विन। ३. (क) लाव न कोई, (ख) वामैं लाव न, (ग) जा घरि।

जनहरीया जांह[1] जाईये, जा घरि[2] सतव्रत होय ।
अधरम[3] असती अंगनै, हरिजन[4] जाय न कोय ॥ ६ ॥

आयां मन विगसै नही, गयां न होवै[1] दुष ।
जनहरीया हरि भगति[2] कौ, कैसैं उपजै[3] सुष ॥ ७ ॥

मिलबौ भलौ[1] असाध कौ, हरीया भोळै[2] भाय ।
हरि सुं वेमुष वैसनौ, तासुं मिलै[3] बलाय ॥ ८ ॥

देषत का तन[1] दिब सा, मांहि करम का[2] कीच ।
जनहरीया उंन[3] ऊंच परि, वारूं हरिजन[4] नीच ॥ ९ ॥*

---

(६) १. (ख) हरीया जा घरि, (ग) संतो जिन घरि । २. (क) सतव्रत ताहि घरेह, (ख) साचौ सत०, (ग) वाकै सतव्रत पाय । ३. (ग) हरीया । ४. (क) संत न पाव धरेह, (ख, घ) संत न जावै कोय, (ग) अधमध आवै जाय ।

(७) १. (क) उपजै । २. (क, ख, ग) हरीया जहां न जाईये । ३. (क, ख) जे (जो) कोई होवै, (ग) सायर भरीयौ ।

(८) १. (क, ख) हरीया भोळै भाय मैं, (घ) संसार कौ । २. (क, ख) सबकौ भलौ असाध । ३. (क, ख) जहां न जावै साध, (घ) ताहि न मिलीयै जाय । (ग) में यह साषी नहीं है ।

(९) १. (क, ख, ग, घ) ऊजळा । २. (क, ख) मन का होय मलीन, (ग) मैला जिस का मंन, (घ) की टेक । ३. (क) हरीया अैसा, (ख) हरीया उतिम ऊपरैं, (ग) हरीया ताहि न धीजीयै, (घ) हरीया हरिजन नीची परि । ४. (क, ख) हीन, (ग) झूठा बोल वचंन, (घ) वारुं ऊंच अनेक । * (ग) में इस साषीके पश्चात् यह साषी विशेष है—

आगै सजनता भयौ, पूठै दुरजन थाय ।
हरीया दुरजन आरसी, दोयुं एक सभाय ॥ ११ ॥

हरीया जांह न जाईयै, चंगा[1] होय न चित।
वा विन मीलीयां [2]सारीयै, ताहि नही [3]आरित ॥ १० ॥

हरीया मुष आगै भली, पूठ बुरी परगास।
या दुरबुधी जीव कै, परित न रहीयै [1]पास ॥ ११ ॥

अथ असलि कमसलि को अंग ५८

हरीया असली असलि विन, चवै न कमसलि वैंन।
असली जौं कमसलि चवै, तौ दिन वरतै रैंन ॥ १ ॥

असली सु[1] कमसलि मिलै, सो असली हुय जाय।
ज्युं[2] लोहा पारस परिस कै, हरीया कंचन थाय ॥ २ ॥

कुण असली कुण कमसली, तास पटंतर [1]एह।
कमसल[2] चलै कुमारगी, असलि सुमारग लेह ॥ ३ ॥

धरीया धरै कुमारगी, पूजै धात[1] पषांण।
एक न सिवरै रांम कुं, जिन सिरज्या [2]जेहांन ॥ ४ ॥

---

(१०) १. (क, ख) है तांह (वाकै) चित दुभाव, (ग) एक मतौ नही थाय।
२. (क, ख) तन तैं आघा हुय मिलै, (ग) मुष ऊपरि गुण दाषवै। ३. (क) अंतर मांहि न चाव, (ख) अंतर नही उछाव, (ग) पूठै औगण गाय।

(११) १. (क, ख, ग) संग न रहीयै (करीयै) सास (जास)।

---

(२) १. (क, ख, ग) कुं। २. (ग) कमसिल कुं असली मिलै, कमसिल-पणौ दिषाय।

(३) १. (ग) कुण कमसिल कुण असलि है, हरीया विवरौ देह।
२. (क, ख, ग, घ) कमसिल (सलि)।

(४) १. (ख) काठ, (ग) जढ। २. (ख) सब कीया जिहांन, (ग) रांम नांम कुं छाडि करि, वाचै वेद पुरांन, (घ) सिरज्या सबै जेहांन।

असली सो अधरा धरै, धरै न धरीया देव।
हरीया धरीया [1]छाडिकै, करूं[2] अधर की सेव ॥ ५ ॥

हरीया असली असलि[1] विन, चलै न दूजी[2] चालि।
असली चालै असलि चलि, कमसलपणौ [3]निकालि ॥ ६ ॥

जांह असली जांह असिल[1]पण, कमसले [2]कमसलि।
हरीया अैसी[3] ऊपजै, जैसी होय[4] मसलि ॥ ७ ॥*

असली कदे न आतळै, नां चलि चोर कहाय।
हरीया अैसी[1] चलि चलै, मिलै असल मैं आय ॥ ८ ॥

असली कदे न असलि विन, भरै न दूजी[1] त्रीष।
जनहरीया दूजी भरै, तौ गुर की नही सीष ॥ ९ ॥

---

(५) १. (ग) जौ धरीया धरै। २. (क) करौ, (ग) तौ पड्पंचम सेव।

(६) १. (क, घ) एक, (ख) आप, (ग) कमसली कमसिल विनां। २. (ख) और न चालै, (ग) असली। ३. (ग) हरिरांमा असली कदे कमसिल सबै न हालि।

(७) १. (ख, ग) है। २. (ख, ग) कमसिल। ३. (क) जैसी, (ख) अंदर। ४. (ख, ग) मसिल।

* (ग) में ७ वीं साषीके पश्चात् यह अधिक है—

हरीया जौ असली मिलै, तौ असली हुय लेत।
कमसिलपणौ गमाय द्यै, तन मन आपौ देत ॥ ८ ॥

(८) १. (ग) सोई।
(९) १. (क, ख) पासै।

अथ गुर सिष कौ अंग ५९

हरीया अैसा को[1] मिलै, वाकै[2] रहीयै संग।
आपो[3] अपनी आगि मैं, सब को दाझै अंग ॥ १ ॥*

हरीया अैसा को[1] मिलै, हरि का प्यारा [2]होय।
हम सेती उपदेस दे, रांम कहावै [3]सोय ॥ २ ॥

हरीया अैसा को[1] मिलै, सो निज भगता जांनि।
मेरा भरम गमाय कै, करै आपसा आंनि ॥ ३ ॥†

हरीया अैसा को[1] मिलै, करै हमारी सार।
या भव जल मैं डूबतां, आंनि उतारै [2]पार ॥ ४ ॥

---

(१) १. (क, ख, ग, घ) नां। २. (क) जाकै, (ख) जा संग रहीयै जाय, (ग) मेट हमारी चिंत। ३. (क) जांह तांह अपनी आगि सुं, सब जुग दाझै, (ख) जांह तांह सब जुग जलत है, अहूं आगि मैं आय, (ग) या जुग मांहि आय करि, आपा होय निश्चिंत।

* (ग) में इसके बाद यह अधिक है—

हरीया अैसा को मिलै, पीतब का प्याराह।
सो हम सुं अैसी करै, जुग सेती न्याराह ॥ २ ॥

(२) १. (क, ख) नां। २. (ग) सो बूझै परपीर। ३. (ग) भवसागर मैं डूबतां, ले निकसै परतीर।

(३) १. (क, ख) नां।

† (ग) प्रतिमें इस जगह निम्न साषी है—

हरीया अैसा को मिलै, सो साहिब का संत।
आसि पासिली दूरि करि, आतिम सुं एकंत ॥

(४) १. (क, ख) नां। २. (ग) में नहीं है।

हरीया अैसा को[1] मिलै, साहिब का सचीयार।
झूट न वाकै[2] कपट कौ, रंच[3] नही वौहवार॥ ५ ॥

हरीया अैसा को मिलै, तन मन वाचा [1]सूर।
दोऊं एकै चोट सुं, कोट करै चकचूर॥ ६ ॥

हरीया अैसा को मिलै, सहजां रहै[1] समाय।
बाहरि वाजा वचन [2]वौह, चित न विलगै[3] जाय॥ ७ ॥

हरीया अैसा को[1] मिलै, निजर[2] इमीरी नालि।
मुझि[3] कुं अपना जांनि करि, परि पूरबली पालि॥ ८ ॥

हरीया हम कुं आय कै, गुझि[1] कहै समझाय।
अैसा बंदा रांम का, जा[2] सुं चित मिलाय॥ ९ ॥

हरीया अैसा को[1] मिलै, चित चौथै[2] विसरांम।
ताप त्रिगुण सुं रहत [3]है, निज[4] भगता निहकांम॥ १० ॥*

---

(५) १. (क, ख) नां। २. (ख) काहू। ३. (क) होय, (ख) विषै न को वहवार।

(६) १. (ग) भरम गमावै दूर।

(७) १. (ख) सुरित। २. (ग) भाव न किन सुं वैरता। ३. (ख) जामैं, (ग) सब सुं एक सभाय।

(८) १. (क, ख) नां। २. (ग) मीट अमी भरि जोय। ३. (ख) मुझि अपना करि जांणिसी, (ग) सब सेती सजन गिनै, दुरजन गिनै न कोय।

(९) १. (ग) वात सुनावै गुझि। २. (ग) तन मन सौपुं मुझि।

(१०) १. (क, ख) नां। २. (क) चवथै धांम, (ख) धांम चवथै वास। ३. (ख) हुय। ४. (ख) आसा छाडि निरास।

* (ग) में यहाँसे १३ वीं साषीतक नहीं है; इनकी जगह निम्न साषियाँ हैं—

हरीया अैसा को मिलै, हम सेती समझाय।
भूल पड़ीया देष करि, मारग देह वताय॥

त्रिगुण ताप[1] कै वीच मैं, अैसा मिलैं अनंत।
हरीया चौथै चित का, अैसा कोय मिलंत॥ ११ ॥*

हरीया अैसा को[1] मिलै, रांम संनेही [2]संत।
अपना औगन दूरि[3] करि, औरन का [4]मेटंत॥ १२ ॥

अैसा कोय न देषीया, मेटैं मन की दौर।
पांच पचीसु पसरतां, हरीया[1] रषै ठौर॥ १३ ॥

हरीया चौथै चित का, अैसा मिलै न एक।
त्रिगुण ताप सनेहता, अैसा भिंत अनेक॥
हरीया अैसा को मिलै, हरिव्रत रता होय।
आपनपौ सब मेट करि, और न नींदै कोय॥
अैसा नां कोई देषीया, जाकी मिमता ठांय।
हरीया ताहि विलबीयै, ले पुंहचावै गांय॥
घायल मिलीयां घाव की, घायल जांणै पीर।
हरीया वेघायल मिल्या, घाव न बूझै पीर॥
हरीया कोई हम सुं करै, सत सबद परसंग।
अैसा सतगुर जो मिलै, ताह नि छाडुं संग॥

(११) १. (घ) ताप त्रिगुना।

* (क, ख) में निम्न प्रकारसे है—

(क) त्रिगुण ताप सेती मिलै, चोथा कोय न देष।
हरीया सबही रांम का, विरला जांणि वमेष॥

(ख) त्रिगुण सहत केता मिल्या, चौथा मिल्याज नांहि।
हरीया सब जीव रांम का, धीग पड्या विच मांहि॥

(१२) १. (क, ख) नां। २. (क) होय, (ख) हरि सुं रता होय। ३. (क, ख) आपनपौ सब मेट करि, (घ) मेट करि। ४. (क) पर दुष भंजै सोय, (ख) दंद निवारै सोय।

(१३) १. (ख) आंणंत एकै।

हरीया ढूंढत मैं फिरुं, पेम पीयारा मिंत।
ता हिरिदै की [1]दाषवु, मेट[2] हमारी चिंत ॥ १४ ॥

मिलता सुं[1] सब को मिलै, अणमिलता सुं कोय।
हरीया अणमिलता मिलै, वाका[2] रहीयै होय ॥ १५ ॥

——>o<——

अथ हेत प्रीत कौ अंग ६०

हितिकारी हिरदै वसै, यु[1] गुडीयन की डोरि।
जनहरीया[2] तन अंतरै, मन मिलग्यौ ता ओरि ॥ १ ॥

अण[1] हितकारी [2]आद्मी, अैसैं[3] वद्र छांह।
इन की थिर छाया नही, हरीया[4] हेत न तांह ॥ २ ॥

सिष[1] सेती गुर परहरै, तोई न छाडै हेत।
जनहरीया गुर बीज विन, सिष न निपजै षेत ॥ ३ ॥

---

(१४) १. (ख) दाषीयै, (ग) वास कीया जै सुन्य मैं। २. (क, ख) सब सु भाय मिलंत, (ग) जासुं जाय मिलिंत।

(१५) १. (क, ख, ग) सेती सब। २. (क, ख) ताहि मिलीजै जोय, (ग) तासुं मिलीयै जोय।

---

(१) १. (क, ख, ग, घ) ज्युं। २. (ग) हरीया तन सुं अंतरै, सुरति मिली ता०।

(२) १. (क, ख, ग, घ) वे। २. (ग) जांणीयै। ३. (ख) जैसैं, (ग) जैसी। ४. (क, ख, ग, घ) ऊ थिर।

(३) १. (ग) गुर सिष सेती परहरै, तौई न सिष छाडंत।
गुण औगुण आंणै नही, हिरदै मांहि गडंत ॥ ३ ॥

गुर का गुण हिरदै वसै, हरीया ऊगै सूर।
जौ कोई तन औगण धरै, मन सुं तजौ न दूर॥ ४ ॥*

जौ मन सुं गुर [1]ऊतरै, और[2] पड़ी अणराय।
हरीया गोविन्द गुर विनां, कहा करेसी [3]गाय॥ ५ ॥

अणउपगारी आदमी, कांमि न आवै कोय।
हरीया पर उपगार नर, हरि का प्यारा होय॥ ६ ॥

अथ सूरातन कौ अंग ६१

सूरा लड़ै धणी कै [1]कारण, सती सांम कै हेत।
हरीया भागां भुय घणी, मुष न सोभा देत॥ १ ॥

हरीया[1] भड़ भाजै नही, भाजै तौ भड़ नांहि।
सेल धमंका सिर सहै, पग रोपै[2] रिण मांहि॥ २ ॥

---

(४) * (क, ख, ग) में निम्न रूपसे पाठभेद है—

(क) हरीया गुर का गुण रिदै, नित ही षड़ा हजूर।
जौ कोई औगण तन वसै, तौई मन तजै न दूर॥
(ख) हरीया गुर का गुण रिदै, तौ नित षड़ा हजूर।
जौ कोई औगण मन वसै, तौ नैड़ा ही दूर॥
(ग) गुर का गुण अंतर वसै, निसदिन ऊगै सूर।
ज्युं नदीयां सुं वाहळा, आय मिलै पर दूर॥

(५) १. (क) जौ मन तैं गुर उतरया, (ख) गुर सेती मन उतरया।
२. (क, ख) वीच। ३. (ग) में इस प्रकार रूपान्तर है—

नदी विछूटा वाहळा, वळै न पूठा फेर।
हरीया गुर तै वीछड़ै, सुरति घिरै तौ घेर॥

---

(१) १. (ख, घ) सूर धणी कै कारणै।
(२) १. (ख, ग) भड़िकन। २. (ख) मंडै पग।

श्री १००८ श्री रघुनाथदासजी महाराज
रामस्नेहि सम्प्रदायाचार्य सिंहस्थल (८)

सूर न पूठा पग धरै, आय विण्यै[1] अवसांण।
हरीया[2] मरणौ हेक दिन, आज'क कालि[3] विहांण ॥ ३ ॥

सूरौ सिर[1] आड्यां फिरै, छाड्यां तन की आस।
टोप[2] न बगतर पहरिई, षेलै षेल[3] निरास ॥ ४ ॥

सूरौ सिर दीयां फिरै, आज लिवौ भांय[1] कालि।
सांठी तन का[2] छेद करि, भाजि रही विच भालि ॥ ५ ॥

हरीया सर सालै नही, भालि सही जिन[1] अंग।
सूरां घरे वधांवणा, कायर कौ[2] मन भंग ॥ ६ ॥

प्रिसणां[1] आगै सूरवौ, हरीया[2] भाजि न जाय।
घाव सहै समसेर का, इणीयां[3] मंडै आय ॥ ७ ॥

षराषरी कै षेत मैं, चुणि चुणि मारै[1] षोट।
हरीया साचौ सूरवौ, आडी[2] गहै न ओट ॥ ८ ॥

सझै[1] समांमा सूरवै, साज बाज संग्रांम।
आपौ मेटै हरि [2]भजै, हरीया[3] भेटै रांम ॥ ९ ॥

---

(३) १. (क, ग, घ) वणै। २. (ख) आषिर। ३. (ख) हरीया आज।

(४) १. (ग) मन। २. (ग) अंग न। ३. (ख) एक।
(५) १. (क, ग) कोई, (घ) भांइ। २. (घ) कुं।
(६) १. (ग) जै। २. (ख, ग) के घर।
(७) १. (क) हरीया, (ग) सूरो प्रिसणां पूठि दे। २. (क) प्रिसणां। ३. (क) मुहरै।

(८) १. (क, घ) मास्या। २. (ख, ग) पांचे (देवै) प्रिसणां दोट।
(९) १. (घ) सेल। २. (ग) आपो मेटण हरि मिलन। ३. (क, ख) जब जाय भेटै सांम, (ग) सारण सब ही कांम।

कांम सखा[१] सब आपणा, सांम धणी कै हेत।
जनहरीया जब [२]सूरवौ, छाडि न जावैं षेत॥ १० ॥

हरीया साचै[१] सूरवै, मास्या पहली मोह।
पकड़्या[२] पांचुं भोमीया, दौड़ां करता दोह॥ ११ ॥

सूर षळां सिर साषती, हरीया आज'क[१] कालि।
लाटौ लूटै [२]लोभीयां, हके आयौ हालि॥ १२ ॥

सूरौ आयै सांकड़ै, मना[१] न मैल्है मांण।
हरीया मरणौ [२]आदरै, पेस[३] न छाडै [४]प्रांण॥ १३ ॥

सांम सरणि कारण धणी, सूर सती मत एक।
जनहरीया तन मन तजै, तौई न छाडै टेक॥ १४ ॥*

रज रूधा रिण षेत[१] मैं, सूर लड़ै समवादि।
कमंध[२] लड़ै धड़ एकलौ, भूप[३] वड़ाई आदि॥ १५ ॥

सूर लड़ै जब कंध सिर, कमंध लड़ै विण सीस।
हरीया सूर कमंध विच, विवरौ विसवा वीस॥ १६ ॥

---

(१०) १. (ख, ग) कांम आपना (सकल) सारीया।
२. (ख, ग) हरीया साचा (हरिजन) सूरिवा।

(११) १. (ग) हरिजन। २. (ग) पीछै पंचे भोमीया।
(१२) १. (ग) आज'र। २. (ग) कायरां।
(१३) १. (क, ख, ग) मूंछ। २. (ख, ग) आसगै। ३. (क, ख, घ) पेम। ४. (ग) छडै न पण आंपांण।

(१४) * (ख) सूर सती मत एक है, मरत न लावै वार।
हरीया ऐसा हुय भजै, जब आवै इकतार॥
(ग) सूर सती मत एक है, धसै धोम षग धार।
हरीया तन आपौ तजै, सिवरै सिरजनहार॥

(१५) १. (क, ख, ग) राह। २. (ग) लड़ै गिरद। ३. (ग) कमंध।

कमंध हणै[1] षळ कंध विण, हटै न मांणस[2] तांण।
हरीया केहा कीजीयै, मुष तैं[3] तांण[4] वषांण॥ १७ ॥*

सूरौ मरणौ आसगै, पूठा धरै न पाव।
हरीया आगै सांम कै, चूक न जावै दाव॥ १८ ॥

हरीया सागै[1] सांम कै, कायर कंपै[2] सीस।
आयै औसर नां मरै, तौ जीव'रि कहा करीस॥ १९ ॥

हरीया सब मैं सूरवौ, एकल मल [1]अबीह।
सिर मोड़ै सांसै तणां, दई निबाहै [2]दीह॥ २० ॥

षड़ौ रहै रिण षेत मैं, सिर वाजंदै सार।
है सूरा तन साहीयां, हरीया हरि आधार॥ २१ ॥

सांसै का सिर कपीया, जम कुं कीता[1] जेर।
हरीया सूर[2] सधीर सुं, कुंण बंधै समसेर॥ २२ ॥

सांसा सबल[1] संघारिया, सार सबद कै जोर।
हरीया आपौ उलटि कै, पांचे[2] पकड़या चोर॥ २३ ॥

---

(१७) १. (क, ख, ग) हरै। २. (ख, ग) प्रांणस। ३. (क, ख, ग) सुं। ४. (ग) कमंध।

* (ग) में विशेष है—

सूरै कै सिर एक बल, और नही बल कोय।
हरीया तन आपौ दीयां, मरै न मारै कोय॥

(१९) १. (क, ख, घ) आगै, (ग) समीयै। २. (ग) ठमकै।
(२०) १. (ग) अभंग। २. (ख) आयौ धौळै दीह, (ग) जीयण जम सुं जंग।
(२२) १. (क) कीना, (घ) कीधा। २. (ख) साचै सूर सुं, (ग) हरिरांमा तिह लोक मैं।
(२३) १. (क, घ) सब, (ख) सबै। २. (क, ग, घ) पंचे।

नांव विनां निरभै[1] नही, करिहौ कोटि जतंन।
जनहरीया[2] औसर [3]विण्यै, सूरां किसा उ तंन ॥ २४ ॥

सूर धसे[1] घमसांण घण, कायर लहै न ठौड़।
हरीया सूरै[2] मरण का, माथै बिंध्या[3] मौड़ ॥ २५ ॥

षाग षिवै ज्युं [1]दामणी, सर वरसैं ज्युं [2]अंद।
हरीया सूरा[3] साळ लैं, गळैं कायरां कंद ॥ २६ ॥

सूर मंडे मैंदांन मैं, वाय षलां सिर षाग।
पड़ै भंगांणा भोमीयां, सूर सधगे [1]लाग ॥ २७ ॥

सबद भलका तन सहै, मना[1] न आंणै संक।
रावत सोई[2] मरि रहै, हरीया[3] रीवैं रंक ॥ २८ ॥

हरीया[1] दल ऊमटि घटा, तबल घुरे नीसांन।
दहल पड़े सिर दोषीयां, आये सूर सुजांन ॥ २९ ॥

साथे सील [1]संतोषड़ौ, वेली[2] ग्यांन विग्यांन।
जनहरीया दलमां फिरी, नांव निरप की [3]आंन ॥ ३० ॥

---

(२४) १. (ग) निहचै। २. (ख) हरीया औसर आवीयै, (ग) हरीया सिर औसर विण्यां। ३. (घ) वण्यौ।

(२५) १. (ग) मंडै। २. (ख, ग) हरीया मरिवा कारणै। ३. (क, ख, ग) बंधे।

(२६) १. (ग) वीजली। २. (क, ख, ग, घ) इंद। ३. (ख, ग) सूरा दल मै।

(२७) १. (ख, ग) सूरां वधीयौ आग।

(२८) १. (ग) सो मंडै षुरसांण। २. (ख, ग) मूवां पहली। ३. (ख) रावत दूजा, (ग) तौ सूरां परवांण।

(२९) १. (ख) अैसैं।

(३०) १. (क, ख, घ) संतोष ले। २. (क, ख) वेऊं। ३. (ग) में यों है—

सूर चढ़े समयांण सझि, साथी सील संतोष।
हरीया ग्यांन विग्यांन संग, नांव निरप निरदोष ॥

हरीया हौंदे[1] ऊपरैं, रावत वाई रीठ।
मार्‌यौ राजा[2] मोह कुं, पड्यौ तळफै पीठ ॥ ३१ ॥

दल दोऊं दिस [1]आवरे, सूर दमांमा देह।
हरीया रवि छायौ रजी, आयां गयां न छेह ॥ ३२ ॥

भिड़ भागौ प्रिसणां [1]तणौ, पड़ै भोमीयां भार।
हरीया सूर'स पारधी, चुंणि चुंणि करै[2] सिकार ॥ ३३ ॥

पांचुं पिंड़ पाड़े [1]प्रिसण, मारे मांन गुमांन।
हरीया ज्युं ज्युं भू पड़ै, दे सूरां सनमांन ॥ ३४ ॥

भला भमाड़े[1] सूरवै, गिड़ गाहण [2]घमसांण।
धार इणी सिर चोट दे, सांम तणै अवसांण ॥ ३५ ॥

हरीया डाकणि हड़ हड़ै, षड़ षड़ [1]षेतरपाळ।
सूर सधीरा पग धरै, कायर लगै[2] न ताळ ॥ ३६ ॥

चाचर भूचर षेचरा, मिले महा रिण मांहि।
हरीया कायर[1] कंपीया, सूरा डरपै नांहि ॥ ३७ ॥

हरीया डरै न [1]सूरवौ, अधर[2] ओट निरधार।
कायर डरपै[3] बापड़ौ, धरीया के आधार ॥ ३८ ॥

---

(३१) १. (क) जनहरीया हदि, (ख) हरीया हदि कै, (ग) हरीया हौदां।
२. (क, ख, ग) पहली।

(३२) १. (ग) पीछै भागा भोमीया।
(३३) १. (ग) षुरसांण का। २. (ग) कीया।
(३४) १. (क, ख, ग) पिंड पाड़े प्रिसणां तणा।
(३५) १. (ग) संपेषै। २. (ख, ग) सिरघांण।
(३६) १. (ग) षेलै वीर। २. (ग) धरै न धीर।
(३७) १. (ग) कंपे कायरां।
(३८) १. (ख, ग) हरीया सूरा क्युं (नां) डरै। २. (क, घ) धरै,
(ग) ओट गहै। ३. (ग) कंपै बापड़ा।

वेढ वडाई [1]राजीयां, सूरौ दळ सिणगार।
सेल धमंका सिर [2]सहै, आवै[3] जब इकतार ॥ ३९ ॥

धीका मूकी सेल [1]सर, घावां मुंहकंम पूर।
सूरौ सोई[2] सहि रहै, हरीया[3] ता मुष नूर ॥ ४० ॥

तता करि नांषै [1]तुरी, भेळै गढ भौपार।
जनहरीया[2] जब सूर कौ, है[3] मुजरौ दरबार ॥ ४१ ॥

थाट थड़े जम दाढ जुड़ि, उठै बलाबल लूर।
सूर षड़ा पिड़ ले रह्या, कायर भागा[1] दूर ॥ ४२ ॥

गोळी ग्यांन बंदूक [1]तन, पेम पलीता लाय।
दुरजन कै सिर दबटियै, हरीया सूर [2]कहाय ॥ ४३ ॥

जोध जुड़े माथा मुड़े, मारे मदवां मांण।
सूर भलां गाहड़ि करै, हरीया हरि कै [1]तांण ॥ ४४ ॥

सूर सती अर साध कौ, हरीया एको[1] मत।
सूर सती[2] आपौ तजै, साध भजै[3] निज तत ॥ ४५ ॥

---

(३९) १. (घ) राजव्यां। २. (ग) घाव सहै सिर सेल का। ३. (ख) पावै जब दीदार, (ग) सो पावै दीदार।

(४०) १. प्रिसण पगांणै पेल करि। २. (ख) हरीया सूरा, (ग) हरीया सनमुष सूरिवा। ३. (ख) ता मुष हरि का नूर, (ग) पावै परम हजूर।

(४१) १. (क, ख, ग) इणी। २. (ग) हरीया जब तैं। ३. (ख) है।

(४२) १. (क, ख, ग) घर।

(४३) १. (ग) हरीया गोळी ग्यांन की। २. (ग) ज्युं अणभै पद पाय।

(४४) १. (क, ख, ग) पांण।

(४५) १. (ख, ग) मतौज एक। २. (ग) उ. अपनौ। ३. (क) न छाडे, (ख) न छाडै टेक, (ग) यो हरि छडै न टेक।

सूर सती अर साध की, हरीया हेको रीत।
ऊ त्यागै तन सांम[1] कजि, हरिजन हरि की[2] प्रीत ॥ ४६ ॥

सूर सती अर साध कुं, भागां ठौर न काय।
रोपि रहै पग [1]पाधरै, हरीया रांम[2] सिहाय ॥ ४७ ॥

सूर सती अर साध का, मता न जांणै कोय।
देषत का[1] सुलटा चलै, अंदर[2] उलटा होय ॥ ४८ ॥

सुलटां कुं सांसा घणा, पेम न उपजै[1] प्यास।
अंदर[2] चालै उलटि कै, हरीया[3] हरि का दास ॥ ४९ ॥

सूर सती अर साध की, चालि कठण घर और।
जनहरीया दुनीयांन [1]की, आ तौ ऊली [2]दौर ॥ ५० ॥

सब ही जुग सुलटा[1] चलै, उलटा एक[2] न पाव।
हरीया पासा पेम का, रमैं'स जांणैं दाव ॥ ५१ ॥

हरीया पासा पेम का, षेल न जांणै कोय।
षेलनहारा[1] षेलसी, हाथ पाव विन होय ॥ ५२ ॥

---

(४६) १. (क, ख) आपनौ, (घ) और। २. (क, ख) इनकै हरि सुं, (ग) प्राण तजै गोविंद भजै, हार न किन सुं जीत।

(४७) १. (ग) भागां भुय भारी घणी। २. (क) दई, (ख, ग) दई निभाय।

(४८) १. (क, ख, ग) मैं। २. (क) इंदर, (घ) अंतर।

(४९) १. (क) जांणै, (ख) भगति न उपजै, (ग) भगति न भावै जास। २. (क, ख, ग) हरीया। ३. (क, ख) सोई, (ग) जब हरि पावै दास।

(५०) १. (क) कुं, (ख, ग) हरीया जांहां दुनीयांन कुं। २. (क) जांह चलिबै नही ठौर, (ख, ग) पग टेकण नही ठौर।

(५१) १. (ग) सुल्टा जुग मारग। २. (ग) धरै।

(५२) १. (ख, ग) पासा सोई।

हरीया हाथ'र[1] पाव विन, उलटि चढै असमांन।
सूर सती का और घर, जांह नही[2] पावै जांन॥ ५३॥

सोरठौ

हरीया हरि दरगाह, जांह साधु जन[1] संचरै।
और न जांणै राह, पाव[2] विहूंणौ चालिबौ॥ ५४॥

साषी

हरीया सूरा[1] साहि षग, वाहै जा सिर [2]वाहि।
कायर पाछा पग धरै, जाकै दिसौ न [3]जाहि॥ ५५॥

तीन लोक मरजाद[1] तज्य, सूर चलै हरि पास।
हरीया हरि[2] आघा[3] लीया, देष आपणा[4] दास॥ ५६॥

साध सती मत सूर विन, हरीया सरै न[1] कांम।
कायर कांम न [2]आवही, मुहडै ताहि [3]नमांम॥ ५७॥

हरीया निसदिन धिन घरी, वार पुरब[1] धिन जांनि।
अपनै सांई कारणै, तन मन सौंपु[2] आंनि॥ ५८॥

---

(५३) १. (क) हरिजन, (ख, ग) हाथ न। २. (क) जहां न, (ख, ग) वांहां न।

(५४) १. (ग, घ) जांहां कोई। २. (ख) पगां, (घ) चरण।

(५५) १. (क, ख) सूर संबाहि, (ग) सूरा सतव्रत साहि। २. (ग) धसै धोम विच धार। ३. (ग) हरीया हरि आदर दिवै, आवै जब इकतार।

(५६) १. (ख) की कार, (ग) लोक लाज कुल कार छडि। २. (क) जनहरीया। ३. (ग) आदर दीया। ४. (क) आवता।

(५७) १. (ख, ग) कौंण सुधारै (सुवारै)। २. (ग) हरीया सो दिन सांम विन। ३. (क) मौंह न वाकै मांम, (ख) वाकै मुह नही मांम, (ग) सो सालै वेकांम।

(५८) १. (क) जिको वार, (ख, ग) सोई वार। २. (घ) अरपुं।

सूरौ सोई सांम विन, गहै न दूजी ओट ।
हरीया हेकै चोट सुं, मारै मन का[1] षोट ॥ ५९ ॥*

हरीया सांठी सुरति की, सबद भळका [1]संध ।
तक धीरज करि तांणीयै, तांह मूकै मन [2]बंध ॥ ६० ॥

सूर सती जब जांणीयै, आपा ऊपरि षेल ।
हरीया सूरौ लड़ि मरै, सती आगि[1] तन झेल ॥ ६१ ॥

हरीया हरिजन जांणीयै, नांव निरासा [1]मंन ।
और सकल की आस तज्य, मरै न मारै [2]तंन ॥ ६२ ॥

सूर सतीपण[1] सहल है, घड़ी पलक कौ[2] ष्याल ।
हरीया कठण साधपण, आठ पौहर उरसाल ॥ ६३ ॥

---

(५९) १. (क) चुणि चुणि । * (ग) में यह साषी इस प्रकार है—

साध सती अर सूरिवौ, गहै रांम की ओट ।
हरीया हरि परताप तै, माऱ्या चुणि चुणि षोट ॥

(६०) १. (क, ख) सारि, (ग) साय । २. (क, ख) धारि, (ग) चोट जहां मन थाय ।

(६१) १. (क) अगनि, (ख) अगनि कुं, (ग) जले ज्युं तेल ।

(६२) १. (ख) धारि । २. (ख) किस कु मारि । (ग) में यही साषी इस प्रकार है—

हरीया हरिजन जांणीयै, इंन कौ षेल अघट ।
आपा तन की आस तज्य, मन का मारि मरट ॥

(६३) १. (घ) कौ सहल पण । २. (ख) एक घड़ी का । (ग) प्रति-में यों है—

सूर सती पल एक मैं, मारि मरै जलि जाय ।
हरीया हरिजन षाग विन, घायल नित कौ थाय ॥

हरीया जे कोई ऊबरै, सत सबद की[1] ओट।
नही तौ करिसी[2] देषतां, काळ दड़ी सिर[3] दोट॥ ६४ ॥*

हरीया दुबिध्या दूरि करि, पासौ पकड़ौ एक।
रजपूती जिसकी रहै, छाडि न जावै टेक॥ ६५ ॥

टेक जिसी की जांणीयै, एक न दूजी आस।
हरीया भूषौ[1] केहरी, तौ ई चरै नही घास॥ ६६ ॥

हरीया लांघण साधकै, जाचै[1] किनी न जाय।
यु लांघणीयौ[2] केहरी, मूवां पछै[3] न षाय॥ ६७ ॥

साध सिंघ कौ एक मत, हरीया दोय न जांन।
साध भाव तांह पगधरै, सिंघ भषै तांह प्रांण॥ ६८ ॥

हरीया सूरा सापरसि, कदे न द्यै वर पूठ।
कायर केता कापरसि, दिन का जावै ऊठ॥ ६९ ॥

हरीया आदर सूर कुं, जांह जावै तांह [1]देत।
कायर कुं कैंठै[2] नही, मांन वडाई [3]नेत॥ ७० ॥

हरीया आदर दीजीयै, सूरां सापरिसांह।
आवन जावन[1] बैसणौ, कायर कापरिसांह॥ ७१ ॥

---

* ६४ से ७२ तककी साषियाँ 'ग' प्रतिमें नहीं है।

(६४) १. (ख) साम गहेसी। २. (ख) दूसरां। ३. (क) ज्युं।

(६६) १. (ख, घ) लांघण।

(६७) १. (क, ख) जाचण (न)। २. (क, ख) भूषौ तौई। ३. (घ) परत।

(७०) १. (ख) जेथी तेय तीयार। २. (घ) कांठै। ३. (ख) भार।

(७१) १. (ख) वाकुं आवन।

सूर[1] सबद कै मोरचै, सदा[2] रहै हुसीयार।
जनहरीया [3]जुग दूसरा, कोय न गंजणहार ॥ ७२ ॥

लड़ै[1] पड़ै रिण षेत मैं, तन तैं होय[2] विहंड।
सूरा तन कौ क्या [3]मूवौ, हरीया दरगह[4] मंड ॥ ७३ ॥

सूरां ताहि[1] न मारीयै, मूंवा मिटी[2] समांन।
जनहरीया मन[3] मारीयै, अंतर[4] भरूया गुमांन ॥ ७४ ॥

सती जळन कुं नीसरै, लीयां चावगर [1]लोग।
और गये[2] घरि आपनै, इंन कौ यौ ही [3]जोग ॥ ७५ ॥

सती सतमत साहिकै, जळी[1] मड़ै कै साथि।
हरीया मन मूंवां[2] विनां, कछु न आवै [3]हाथि ॥ ७६ ॥

---

(७२) १. (ख) एक। २. (क) षड़ा, (ख) सूर षड़ा, (घ) होय षड़ा। ३. (क, ख, ग) हरीया वाकुं।

(७३) १. (ख, ग) सूर। २. (क, ग) षंड, (ख) तन करि षंड। ३. (क) सूर सती कौ क्या मरै, (ख) हरीया जिन कौ क्या मरै, (ग) हरीया साधु मरि रहै। ४. (क) सनमुष, (ख) आपो धरै अषंड, (ग) तन मन करै न षंड।

(७४) १. (ग) तन क्या। २. (ख, ग) सो तन मूवां। ३. (क) हरीया ताकुं, (ख, ग, घ) हरीया मन कुं। ४. (क, ख, ग) सो मन, (घ) भीतर।

(७५) १. (ग) जळै पीव कै संग। २. (क, ख, घ) जांहि। ३. (ग) हरीया पीछै ई मरै, पहली जिस कुं रंग।

(७६) १. (क) चडी, (ख) मुंई। २. (घ) माल्या। ३. (क) हरीया जो मन मरि रहै, तौ हरि सुं जोडै हथ, (ख) हरीया मन सुं मरि रहै, तौ हरि जोड़ै हथ, (घ) हरि नही जोड़ै हाथि। (ग) में इस प्रकार है—

सती जळन कुं नीसरै, जलै मडै कै साथि।
हरीया जीवत ही मरै, तौ हरि जोडै हाथि॥

सती पुकारै पंथ[1] सिर, सुणौ हमारी गल।
अलप संनेही[2] कारणै, भसम करी मैं पल ॥ ७७ ॥

सती मड़ै कुं संग ले, जाळी जीवत देह।
हरीया ताहि न जांणीयौ, जीवत मुगति[1] संनेह ॥ ७८ ॥

सती आपनौ घर कीयौ, मड़ां[1] मसांनां मांहि।
हरीया हरि[2] विन दूसरा, मूंवा सीरी[3] नांहि ॥ ७९ ॥

सूरातन हथीयार गहि, मारि किसी कुं नांहि।
मारैं तौ[1] मन मोह कुं, पांच[2] वसी हुय जांहि ॥ ८० ॥

पांच प्रिसण कुं[1] पालिकै, हरि सुं[2] काठा होय।
जनहरीया[3] जब जांणीयै, सूर[4] सबै सिध होय ॥ ८१ ॥

लषचौरासी जीवड़ा, भरमे बिंध्या [1]जांहि।
हरीया गुर गम बाहिरौ, कब छूटण का [2]नांहि ॥ ८२ ॥

---

(७७) १. (ख) पीव कुं। २. (क) पीव मुवा कै, (ख) तोहि मुवै कै। (ग) में नहीं है।

(७८) १. (क, ख) सहजा होय, (घ) सहजा सांम। (ग) में नहीं है।

(७९) १. (ख) मुवां। २. (क, ख) सीरी। ३. (क) पीछै, (ख) कोई। (ग) में नहीं है।

(८०) १. (क, ख, ग) जौ मारै। २. (ख) तौ पांचे वसि मांहि, (ग) पंचे मूवा मांहि।

(८१) १. (क, घ) करि, (ग) पीव्र कै। २. (ख) कुं, (ग) हरीया आडा, (घ) मन कुं। ३. (ख) हरीया जब तै, (ग) सूरौ सोई पंच कुं। ४. (क, ख) सारी ही, (ग) जीयै तौ, (घ) सांम कांम।

(८२) १. (ग) आया सांसै मांहि। २. (ग) सांसै मैं षपि जांहि।

जनहरीया धमचक[1] लगी, आपो[2] आपस मांहि।
भगति करेसी[3] रांम की, किसतौ[4] दावा नांहि॥ ८३ ॥*

भगति करेसी[1] रांम की, धिल का होय[2] सधीर।
हरीया हरि की[3] भगति विन, ओछा मता[4] अधीर॥ ८४ ॥*

रांम भगति कै कारणै, सीस करु[1] बगसीस।
हरीया जे कोई [2]काटिल्यै, तौई न मांनु[3] रीस॥ ८५ ॥*

भगति करै कोई [1]सूरवा, जाति पांति कुळ षोय।
जनहरीया भूदु नरां, ता तैं भगति न होय॥ ८६ ॥*

---

(८३) १. (ख) दस हूं दिसा, (घ) हरीया धमचक चहु दिसा। २. (ख) लगी आपचक। ३. (ख) सोई। ४. (घ) जिसकै। (ग) में नहीं है।

(८४) १. (ख) सोई। २. (क) भया, (ख) षरा। ३. (क) सो किस कांम का, (ख) हरीया का मन और का। ४. (क) होय, (ख) भया।

(८५) १. (क, ख) करै। २. (ख) जे कोई आंनि उतारिल्यौ। ३. (क, ख) मानैं।

(८६) १. (घ) सूरवौ। * चिह्नाङ्कित (ग) में निम्न प्रकारसे है।

(१) भगति दुहेली रांम की, जिसी अगनि की अंच।
हरीया डाकि निरास रहि, से दाधा पड़पंच॥
(२) भगति दुहेली रांम की, जैसैं वांस वरत।
हरीया हरि भज ऊंतरै, डिगैंत पासि परत॥
(३) भगति दुहेली रांम की, हासा षेल न होय।
सांई सिर साटै मिलै, हरीया द्यै जो कोय॥
(४) नषचषसिर हरि का दीया, या मै तेरा नांहि।
हरीया हरि कुं दीजीयै, आपा अंतर मांहि॥
(५) भगति दुहेली रांम की, कायर करै न कोय।
हरीया करिसी भगति कुं, सूरा सिर विण होय॥

सीस काटि[1] काँनै करै, ऊपरि[2] पाव धरेस।
हरीया अैसा हुय[3] रहै, तौ हरि आदर[4] देस ॥ ८७ ॥

भगति करेसी[1] रांम की, साच वचन[2] मन सूर।
चोट सहै सत सबदी की, हरीया जा मुष [3]नूर ॥ ८८ ॥

चोट [1]सहै सत सबद की, सनमुष मंडै [2]आय।
हरीया कायर[3] क्या सहै, फिर पाछा [4]पछिताय ॥ ८९ ॥

सूरां भाजण प्रीत है, दीयौ दलांचौ भार।
कायर भांजै सीत का, हरीया[1] विन [2]इकतार ॥ ९० ॥

सिंह फिरै वन एकलौ, निजर न कोई झल।
हरीया कायर सीत का, सूरौ एकल मल ॥ ९१ ॥

जनहरीया वन स्याळ [1]ज्युं, कायर कासा[2] टोळ।
सूरौ एकल सिंह [3]ज्युं, दह दिस घालै[4] रोळ ॥ ९२ ॥

---

(८७) १. (ख) कापि। २. (क) तापरि। ३. (ख, ग) मिलै। ४. (ख, ग) आघा लेस।

(८८) १. (क, ख, ग, घ) दुहेली। २. (क, ख) साचा निरवै (करसी), (ग) कोई करेगा। ३. (क) जनहरीया मुंह पूर, (ख) मुह-कम पूर, (ग) सनमुष पूर।

(८९) १. (क, ख, ग) सबद की सौ सहै। २. (ग) साचा सूर सधीर। ३. (क) सो नर। ४. (ख) फिर फिर पूठि दिषाय, (ग) तन मन भया अधीर।

(९०) १. (ग) एक नही। २. (ख) इतवार।

(९२) १. (ख) स्याल भया ज्युं सीत का, (ग) कहा भया दल सीत का। २. (ग) काचा। ३. (ग) हरीया एकल सूरिवौ। ४. (ग) देवै।

सबद भळ्का [1]सार का, सनमुष झेलै[2] सूर।
हरीया झलैं[3] न दूसरां, भाजि गई[4] भकभूर ॥ ९३ ॥

कायर कुं सर सबद का, हरीया भूलि[1] न वाहि।
जो कायर कुं वाहीयै, तौ सर षाली [2]जाहि ॥ ९४ ॥

सांम कांम जब[1] सूरवौ, घाव सहै समसेर।
अैसो दाव न आवसी, जनहरीया [2]वळ फेर ॥ ९५ ॥

सूर मंडै मैदान मैं, घूंणी तकै न [1]काय।
हरीया मरणौ हक [2]है, छिपीयां[3] छूटि न जाय ॥ ९६ ॥

हरीया मरिबौ सो भलौ, सूरातन सुं होय।
कायर भागा काळ का, जाकौ मुंह कुण जोय ॥ ९७ ॥

सूरातन कै सो भली, सांई भलौ [1]मनाय।
हरीया आगै क्या पछै, मरणौ एक'र [2]साय ॥ ९८ ॥

हरीया भाजि [1]न जाईयै, भागां ओपम नांहि।
साहिब[2] देसी ओळभौ, मिली[3] कचेड़ी मांहि ॥ ९९ ॥

---

(९३) १. (ग) सो सहै। २. (ग) मंडै। ३. (क) दूजा क्या झलै, (ख, ग) कायर झलै (सहै)। ४. (क, ख, ग) गये (या)।

(९४) १. (ख) कदे, (ग) वाहौ कांय। २. (ग) कायर कुं सर वाहतां, सेई षाली जांय।

(९५) १. (ख) जांह, (ग) इणीयां आगै। २. (ख) नर, (ग) हरीया अैसौ दाव सिर, आयौ किणी एक फेर।

(९६) १. (ख, ग) कोय। २. (ग) हरीया लुक्या न छूटीयै। ३. (क, घ) छुपियां, (ख) छुप्यां, (ग) इक दिन मरणा होय।

(९८) १. (ग) भलौ सांम कौ होय। २. (ख) थाय, (ग) हरीया मन एकौ धरै, दूजी धरै न कोय।

(९९) १. (ग) सूर न भजई। २. (क, ख) सांई। ३. (ख) मिलै मिलावै।

हरीया सूर[1] न भाजई, जाकै भाजण प्रीत।
कायर भाजैं[2] कापरसि, नेम न पेम न[3] चित ॥१००॥

कमंध लड़ै सिर[1] कंध विण, तन कै पौरस [2]तांण।
हरीया ताहि [3]बराबरी, करै न कोई[4] घांण ॥१०१॥

हरीया सिर विण सो [1]लड़ै, कमंध कहावै सोय।
मन अपनै सुं झूझ करि, हरिजन [2]कहीयै सोय ॥१०२॥

सूरा सकजा सापरसि, कलि मैं होय[1] अनेक।
हरीया मन[2] इन्द्री जिता, जुग मैं है[3] कोई एक ॥१०३॥

हरीया नष चष [1]वीच मैं, घावे मुंहकम [2]पूर।
सूर पड़ै[3] रिण षेत मैं, कायर भागा[4] दूर ॥१०४॥

हरीया हाथ'र पाव[1] विन, इणीयां[2] ऊपरि षेल।
जागीरी पावै [3]जबै, सहै धमंका सेल ॥१०५॥

---

(१००) १. (ख) सूरा क्युं भजै। २. (ग) भाजौ वापड़ा। ३. (क) जाकै नित, (ख, ग) जाकै नेम न।

(१०१) १. (ग) धड़ एकलौ। २. (ख) होय, (ग) सूरां धड़ सिर होय। ३. (ग) हरीया सिर विन सो लड़ै। ४. (क, ख) दूजा जांण (कोय), (ग) कमंध कहीजै सोय।

(१०२) १. (ख) सूरा सिर पड़ीयां लड़ै। २. (ख, घ) हरि का होय। 'ग' में नहीं है।

(१०३) १. (क, ख, ग) केता होय। २. (ख) जनहरीया, (ग) हरीया कमंध बरावरी, (घ) रामरता इन्द्री०। ३. (क, ख) विरला जोय, (ग) करै न दूजा कोय, (घ) हरीया जन कोई एक।

(१०४) १. (ग) सूरका। २. (क, ख, ग) थाय। ३. (ख, ग) रहै। ४. (क, ख, ग) गये नसाय।

(१०५) १. (ग) सिर। २. (ग) इणी उपरिला। ३. (ख, ग) जिको।

हरीया ब्याली[1] षलक मैं, के तौ गया वसाय।
के आया ज्युंई गया, वुसत मुसाय मुसाय ॥१०६॥

हरीया चौड़ै चापटै, रांम कहैगा सोय।
दूजा भरम'र करम [1]कुं, छाड्यां[2] निहचै होय ॥१०७॥

लोक लाज कुं छाडि करि, छाडी[1] कुल की कांणि।
भगति करेसी [2]रांम की, हरीया अैसी[3] जांणि ॥१०८॥

भगति करेसी [1]रांम की, षिम्या षड़ग [2]संभाय।
हरीया पाये चोरटा, पांचे पकड़ि [3]लगाय ॥१०९॥

भगति रांम की सो [1]करै, सांम कांम[2] हुसीयार।
हरीया [3]परदल वीच मैं, सबद[4] वजावै सार ॥११०॥

भगति रांम की सो [1]करै, सहै[2] कसोटी अंग।
जनहरीया सो[3] क्या करै, तन मन वाचा भंग ॥१११॥

---

(१०६) १. (क) जनहरीया इन।

(१०७) १. (क, ख, ग) और भरम कुं छाडिकै (दूरिकरि)। २. (क, ख, ग) आप ही (आपा)।

(१०८) १. (ग) छाड़ै। २. (क, ख) भगति रांम की सो करै, (ग) रांम भजै सो जांणीयै। ३. (क) साची, (ख) अंतर दूज न आंणि, (ग) अंतर भरम न आंणि।

(१०९) १. (क) भगति रांम की जांणीयै, (ख, ग) रांम भगति सो जांणीयै, (घ) भगति रांम की सो करै। २. (ख) संभारि, (ग) तत साहि तरवारि। ३. (क) पकड़ि पाय, (ख, ग) टूक टूक करि डारि।

(११०) १. (ग) रांम भजै सो जांणीयै। २. (ख) धरम, (ग) सूरातन। ३. (क) दोय दल, ४. (ख) भली, (ग) भली वजाई वार।

(१११) १. (क, ख) भगति रांम की सो करै, (ग) रांम भजै सो जांणीयै। २. (ख) कांम। ३. (ख) सोई क्या भजै, (ग) हरीया दूजा क्या सहै।

सूरा सोई जांणीयै, मन सुं मांडै [1]झूझ।
हरीया पांचे [2]पसरता, आपस मांहि [3]सळूझ ॥११२॥

मन कुं मारै ताकि करि, साहि सबद का बांण।
जनहरीया[1] चूकै नही, सांम कांम [2]अवसांण ॥११३॥

दाव न [1]अपणौ जांण द्यै, सहै इणी सिर [2]चोट।
जनहरीया [3]जब रांमजी, आडी देसी [4]ओट ॥११४॥

लगा भळका[1] सबद का, सो जांणै [2]तन पीर।
जनहरीया[3] क्या जांणिसी, ताहि न[4] भिद्या सरीर ॥११५॥

जनहरीया[1] मत साधका, ज्युं सूरा संग्राम।
सूरा पग छाडै [2]नही, साध न छाडै रांम ॥११६॥

---

(११२) १. (क, ख) झूझै मंन सुं जांनि, (ग) झूझ करांय। २. (ग) दौरता। ३. (क, ख) एकैइ धरि आंनि, (ग) उलटा आंणै ठांय।

(११३) १. (ख) हरीया एक न चूकही, (ग) हरीया आयै दाव कुं। २. (ग) परित न देवै जांण।

(११४) १. (ग) आया दाव न। २. (क, ख, ग, घ) घाव। ३. (क, ख) हरीया जिसकुं (वाकुं), (ग) जाकुं रामजी। ४. (क) आघा लेसी आव, (ख, घ) आघा कहसी आव, (ग) लेसी आघा आव।

(११५) १. (ग) है सर। २. (ख) धिल। ३. (क, ख) हरीया सो, (ग) हरीया जांणै और क्या। ४. (ख) सारा रह्या, (ग) सारा तन, (घ) रंच न भिद्या।

(११६) १. (ख, ग) हरीया दिढ। २. (ग) सूरा छाडै जिंद कुं।

हरीया कहना रांम का, सोरा [1]सा नही जांन।
दुष सहै तन [2]आपनै, और न [3]काई आंन ॥११७॥*

हरीया जिन दोखु दई, सोई सोखु देत।
रांम रांम कहता रहौ, सूर सती रिण षेत ॥११८॥

हरीया कहिसी रांम कुं, करै[1] मसांणां वास।
छल छिद्र सुं ना डरै, जीवण की [2]नही आस ॥११९॥

जनहरीया डर क्या करै, सास न[1] रहिसी देह।
रांम भजौ आपौ तजौ, अवसर[2] आयौ एह ॥१२०॥

हरीया कहिसी रांम कुं, विषीया मेट [1]विकार।
सूरातन कुं[2] साहिकै, झूझै विन [3]हथियार ॥१२१॥

---

(११७) १. (ख, घ) सो सोरा। २. (क) नर देह सुं, (ख) जौ दिन काढै दुषरा। ३. (क) मना न दोरवु, (ख) तौई न दोरूं।

* (ग) में ११७ से १२२ तक नहीं हैं परन्तु ये साषियाँ मिलती हैं—

(१) लांघनीयौ साधु भलौ, का लांघनीयौ सींह।
ऊ लांघनीयौ हरि भजै, यौ सुप रहै अबीह॥

(२) हरीया लांघन साध कै, मुष तै मांग नि षाय।
का तौ लांघन सींह कै, मिरतग दिसौ न जाय॥

(३) हरीया साधु'र सींह का, माता ज एको जांण।
साध भाव विन ना भषै, सींह भषै तहां प्रांण॥

(११९) १. (ख) वीच। २. (क, घ) नां जीवण की, (ख) करै न जीवण।

(१२०) १. (क, ख) किता दिन देह (मांहि)। २. (ख) एह विनां घर नांहि।

(१२१) १. (क, ख) मारि मारि मन मारि। २. (क) सूर सती पण, (ख) सत सूरातन। ३. (क, ख) आपा लेह उबारि।

हरीया पैंडा भगति का, अधर [1]इणी का षेल ।
उलटि [2]पड़ैं तौ ऊबरैं, नही तौ होसी हेल ॥१२२॥

चन्द्रायणा

सबद गरू का बांण, सहै कोई[1] सुगरा ।
ग्यांन ध्यांन गलतांन, न संगी जुगरा ॥
सूर वीर अवसांण, न चूकै एक रे ।
हरिहां दास कहै हरिरांम, न छडै टेक रे ॥१२३॥

सबद गरू का बांण, गहै नही निगुरा ।
लागां विन गम नांहि, न चेतै मन गुरा ॥
नेम कछु [1]नही पेम, बझ्यौ पषवाद मैं ।
हरिहां दास कहै हरिरांम, रच्यौ विष स्वाद मैं ॥१२४॥

सबद गरू का ग्यांन, ध्यांन उर धारि रे ।
आपा निहचै बैस, भरम कुं [1]डारि रे ॥
उंनमुंन[2] सेती उलटि, रांम रस पीवणा ।
हरिहां दास कहै हरिरांम, जुगे जुग जीवणा ॥१२५॥

सबद गरू का सेल, सूर सोई झेल रे ।
कायर का नही कांम, षरे का षेल रे ॥
सहै धमंका सेल, छाडि दे पागड़ा ।
हरिहां दास कहै हरिरांम, थंभे रिण थागड़ा ॥१२६॥

---

(१२२) १. (क) धार । २. (ख) जांहि ।
(१२३) १. (क, ग) सो, (ख, घ) सोई ।
(१२४) १. (ख, ग) न वाकै ।
(१२५) १. (घ) मारि रे । २. (ग) आपा ।

सबद गरू का षाग, लाग कड़ि कस्य रे।
जरणा जरकस पहरि, धार मैं धस्य रे॥
डावा डिग मिग छाडि, आडि दे सीस कुं।
हरिहां दास कहै हरिरांम, जपौ[1] जगदीस कुं॥१२७॥
जवर कांम सुं जंग, करै सोई[1] सूर रे।
पांच भोमीया पकड़ि, करै[2] चकचूर रे॥
गढ कौ राजा मंन, उलटि जिन वस्य कीया।
हरिहां दास कहै हरिरांम, परम [3]तत परसीया॥१२८॥
नांव निरप की फौज, चाडि[1] सिर चंपीया।
सांयंत[2] सील अमराव, कांम दल कंपीया॥
संसा राग'र दोष, जीप[3] गुर गम सुं।
हरिहां दास कहै हरिरांम, राज मुंहकंम सुं॥१२९॥
सबद गरू का [1]कूंत, सहै मन धीर रे।
धरै न आडी ढाल, सझै सरीर रे॥
उर विच लगा एक, नष[2] चष भेदग्या।
हरिहां दास कहै हरिरांम, करम[3] कुं छेदग्या॥१३०॥
रांम नांम की झिषर, करै कोई संत रे।
मन की मैं तैं मेटि, रहै एकंत रे॥
आसा तिसना छाडि, निरासा हुय रहै।
हरिहां दास कहै हरिरांम, सांम[1] सुष जब लहै॥१३१॥

---

(१२७) १. (ख, ग) मिलै।
(१२८) १. (क) जन, (ख, ग, घ) कोई। २. (ग) कीया। ३. (ग) रांम कुं।
(१२९) १. (ख) चहुंदिस। २. (ख, ग) एक इणी, (घ) सांति। ३. (ख) जीत।
(१३०) १. (क, ख, ग) वांण। २. (क) भळका, (ख, ग) एक भळका। ३. (क, ख, ग) कालिजौ।
(१३१) १. (क, ख) सांति, (ग) परम।

अथ जीवत मृतग को अंग ६२

हरीया जीवत मरि रहौ, ज्युं पावौ दीदार।
आपा कलि मैं अमर हुय, औरन कुं उपगार॥ १॥

हरीया मुनि सहजां घरे, जन[1] मरजीया [2]होय।
रांम[3] रतन तांह पाईयै, चुणि चुणि हिरदै ढोय॥ २॥*

हरीया पंषी पंष विन, पड़े रसातलि आय।
ऊडण[1] की सरधा नही, जीवत मृतग थाय॥ ३॥

हरीया[1] मन माया मूंई, मूवा मांन गुमांन।
हंस वटाऊ उठि गया, रहीया आऊठांन॥ ४॥

हरीया[1] वसे मसांन विच, किनी न बूझी वात।
रांम लीया वतलाय कै, ज्युं बालक कुं मात॥ ५॥

हरीया वाद विरोध[1] तज्य, तज्य मन विषै [2]अग्यांन।
ग्यांन गरीबी रष्य लै, ज्युं पावै भगवांन॥ ६॥

---

(२) १. (क, ख, ग, घ) मन। २. (ग) जाय। ३. (ग)
आसा छाडि निरास हुय, रांम रतन जहां पाय।
*(ग) में यहाँ अधिक है—
जीवत ही नही जांणीयौ, जौ मिरतग नही जांणि।
हरीया जीवत मरिं रहौं, तौ पावौ आसांणि॥

(३) १. (ग) उठिवा मन हुलसै नही, बैठै पंष षुसाय।

(४) १. (ग) में इस प्रकार है—
हरीया मन अैसैं मूवा, थका तन बल प्रांण।
जु तन तैं जूंजर भयौ, तौई न मेलै मांण॥

(५) १. (ग) में इस प्रकार है—
हरीया मड़हड़ वीच मै, वासा वसीया जाय।
वात न बूझी और किन, हरि आदर दिवराय॥

(६) १. (ग) कांम करोध। २. (ग) तज्य मन मोह अग्यांन।

वैद मूंवा रोगी [1]मूंवा, मूंवा जुग जेहांन।
हरीया हरिजन नां मूंवा, हिरदै[2] हरि का ध्यांन ॥ ७ ॥

हरीया जुग मै जीवनौ, थोरौ सौ[1] करि जांनि।
विन आपनपौ [2]मारीयां, बौह जीवन[3] की हांनि ॥ ८ ॥

आपौ मेटौ हरि भजौ, तजौ विड़ांणी आस।
हरीया अैसा होय[1] कै, जबै कहावौ[2] दास ॥ ९ ॥

दासन का परदास हुय, रहौ[1] मरजीया मंन।
हरीया अैसा [2]जौ हुवौ, तौ[3] भेटौ निरजंन ॥ १० ॥

हरीया नवणी [1]षूब है, जे नुय जांणै कोय।
एक नवै भारी [2]पणै, एक नुय नांन्हा होय ॥ ११ ॥

---

(७) १. (ख) वैद विचारा रोगीया, (ग) पिंडत रोगी वैदीया।
२. (ख, ग) वाकै (अंतर)।

(८) १. (ग) ई। २. (ख, ग) आपा मार्यां वाहिरौ। ३. (ग) जीयांई।

(९) १. (क, ख, ग, घ) हुय रहौ। २. (ग) तौ तम हरि का।

(१०) १. (ग) मया। २. (ग) हुय रह्या, (घ) होय कै। ३. (ग) जदि मेट्या।

(ग) में इसके बाद यह साषी अधिक है—

भूंड भूंड सब को कहै, भूंड किसी मैं नांहि।
हरीया अंतर षोजीयै, तौ भूंडि आप ही मांहि ॥

(११) १. (ग) सोह नवै। २. (क, ग) पड़ै। (ग) में इसके पश्चात् निम्न साषी और है—

औरं कुं भूंडा गिनै, आप न देषै भूंड।
हरीया भूंडा आप कुं, गिनै रांम का रूंड ॥

भारी भारी सब नवै, ज्युं वाटन मैं [1]वाट।
हरीया नांन्हा होय[2] कै, नवैं'स न्यारा[3] घाट ॥ १२ ॥

औरां कुं सकजा गिनै, आपा होय[1] निकज।
हरीया हरिजन जांणीयै, जिसी राह की [2]रज ॥ १३ ॥

जौ रज हुवा त क्या भया, उडि उडि लागै अंग।
हरीया हरिजन [1]जांणीयै, जैसा पांणी गंग ॥ १४ ॥

गंगोदक तौ क्या [1]भया, नाहै सब संसार।
हरीया हरिजन [2]जांणीयै, हरि भज उतरै पार ॥ १५ ॥*

---

(१२) १. (ख) ज्युं वाट वाट में जांणि। २. (क, ख) हुय नवै। ३. (क) सो तौ औघट, (ख) मेटि मांहिली कांणि। (ग) में नहीं है।

(१३) १. (क) हरीया आप, (ख) सब सुं आप, (ग) हुय रहौ आप। २. (ख, ग) हरीया अैसा हुय रहौ, जिसी वाट की रज।

(१४) १. (ख) हरिजन अैसा चाहीयै। (ग) में नहीं है।

(१५) १. (ख) गंगाजल हुय क्या कीया। २. (ख) हरिजन अैसा चाहीयै।

* (ग) प्रतिमें १४-१५ नहीं हैं, निम्न साखियाँ हैं—

निकजा भया त क्या हुवा, काज न किस कै आय।
हरिजन अैसा चाहीयै, ममता रहै समाय ॥ १६ ॥
समता भया त क्या हुवा, सब कुं देषै एक।
हरिजन अैसा चाहीयै, आतिम छडै न टेक ॥ १७ ॥
टेक न छडी क्या भया, आपौ रह्यौ अटिक।
हरिजन अैसा चाहीयै, मन कुं राषि हटिक ॥ १८ ॥
मन हटिक्या तौ क्या भया, पांचे रषै ठांम।
हरिजन अैसा चाहीयै, सहजां सिवरै नांम ॥ १९ ॥

अथ मांस अहारी कौ अंग ६३

मांस भषैं से मांनवी, कागां कुतां समांन।
हरीया इंन सुं दूर रहि, मुष भसिबा की [1]बांन ॥ १ ॥

कागां कुतां कुमांणसां, तिहवां[1] एको रुचि।
अैसा षांणा [2]षाईये, जैसी[3] उपजै सुचि ॥ २ ॥

हरीया मांस मसांण है, भूत राकसी षांण।
सोई[1] भषै विनादमी, वेमुष[2] वडा अजांण ॥ ३ ॥

झूठा षांणा वकणा, ए जमपुर का कांम।
हरीया सुवचन साचका, विसन परा विसरांम ॥ ४ ॥

मांस भषैं अर मद पीयै, भांगि धतूरां [1]हेत।
हरीया ऊषड़ि जावसैं, ज्युं मूळै का [2]षेत ॥ ५ ॥

लष चौरासी जोनि मैं, है नायक नर देह।
हरीया इंमृत[1] छाडि कै, विषै न करीयै[2] नेह ॥ ६ ॥

विषै विकारी जीव कुं, सुमति[1] न उपजै काय।
हरीया मिनष मलीन कै, भली न आवैं[2] दाय ॥ ७ ॥

---

(१) १. (ग) दंद वाद मै भसि मरै, आपनपौ न पिछांन।
(२) १. (ख, ग) तिहूंवां। २. (क, ख, ग) षावसी। ३. (क) हरीया जैसी।
(३) १. (क, ख, ग) या कुं। २. (ग) अहिमुख।
(५) १. (क, ख, ग) रंग। २. (क, ख) ज्युं मूळौ जड़भंग, (ग) हरीया नागर वेल ज्युं, निरफल षळि के संग।
(६) १. (ख, ग) अमृत। २. (ग) धरीयै।
(७) १. (ख, ग) सुबुधि। २. (ख) म्यासै, (ग) जुवारी जुवै विचै, कुबुधि प्रकासै आय।

मांस[1] मूवा मुष मेलता, सोई ढेढ कहाय।
सो नर षावै मार करि, वडा[2] निरदई थाय॥ ८ ॥

मांस अहारी मिनष कै, कदे [1]न कांठै जाय।
हरीया संग[2] न कीजीयै, जे कोई पारि वसाय॥ ९ ॥

अथ अपारिष कौ अंग ६४

हरीया हीरौ हाथ[1] करि, गए वटांवण हार।
पारिष विनां न पाईयै, हरि हीरां की [2]सार॥ १ ॥

हरीया मिले अपारषु, ताहि घटायौ मोल।
हरि हीरां कौ क्या घट्यौ, घट्यौ स वाकौ बोल॥ २ ॥

जांह देसे बगला वसै, हंस न[1] को परवेस।
हरीया किनीयेक[2] भांति सुं, हंस गयौ [3]उंन देस॥ ३ ॥

---

(८) १. (क, घ) मूवा मांस। २. (क) महा, (ख) मति समूली जाय। (ग) में इस प्रकार है—

मांस अहारी मांनवी, सेई जुग मै ढेढ।
रांम भजे से जन है, हरीया और कुढेढ॥

(९) १. (ख) हरीया। २. (ख) संगति कदे, (घ) गुझि।

(ग) में निम्न पाठ है—

हरीया ढेढ कुढेढ की, संगति करौ न कोय।
जैसी संगति कीजीयै, अैसी पिंगति होय॥

---

(१) १. (ग) ले। २. (ग) सागी मोल गिवार।

(३) १. (क, ख, ग, घ) नही। २. (क) जनहरीया किन विध सुं, (ख, ग) हरीया (कहीक) वाव फरु कंडै, (घ) हरीया किनी इक विघन सुं। ३. (ग) हंस बुगां कै देस।

जनहरीया हंसां [1]तणौ, मरम न [2]मांणसीयांह।
बगलौ करि बैसाणीयौ, वासौ विड़ [3]वसीयांह ॥ ४ ॥

हरीया हंसन को कहै, जोड़ विछूटी [1]जांणि।
सायर का सांसा पड़्या, छीलर वसीयौ [2]आंणि ॥ ५ ॥

जोड़ी जिसकी [1]वीछड़ै, हाथ मलेसी जांह।
वीच पड़ेसी अन्तरौ, हरीया हरि सुं तांह ॥ ६ ॥

हरीया[1] हंस न जांणदे, नैड़ौ थकौ[2] मनाय।
जांह बैठां तु[3] सोहणौ, तोड़ी[4] भली न काय ॥ ७ ॥

हरीया कंकर हाथ करि, पेम[1] पदारथ षोय।
हंस बगां घरि आवीया, यौ ही इचरज होय ॥ ८ ॥

सोरठौ

हीरौ हाटां मांहि, हरीया विकतौ देषीयौ।
पारिष विन कुछि नांहि, कौडी वदलै जात है ॥ ९ ॥

हरीया[1] उंनमुंन [2]होय, मन तोलै[3] सु तोलीयै।
रांम सकल मैं [4]जोय, तोल न वाकौ मोल [5]कुछि ॥ १० ॥

---

(४) १. (ग) हरीया हंसा देष गय। २. (क, ख, ग) मरम न जाण्यौ जांस (ह)। ३. (क) वसतांह, (ख) गयौ विड़ाणै वास, (ग) गयौ बुगां कै वास।
(५) १. (ख, ग) तेह। २. (ख, ग) वास वसेह।
(६) १. (क, ख, ग, घ) वीछड़ी।
(७) १. (ख) बगला। २. (क, ख) लेह, (ग) वैगौ लेह। ३. (ख) जहां बैठां घर, (ग) जासुं दीसै। ४. (ग) तोड़्यां।
(८) १. (ग) मुहा।
(१०) १. (क, ख, ग) यह साषी है। २. (क, ख) होयकै, (ग) मन उंनमुन सुं तोलीयै। ३. (क, ख) तोलीजै तोल,

अथ पारिष कौ अंग ६५

हरीया अंदर[1] ऊपजै, अैसा निकसै वैंन।
मिलीयां सेती मन कहै, यौ दुरजन यौ सैंन ॥ १ ॥

जनहरीया उर [1]उपजै, अैसी[2] वांणी बोल।
पारिष ह्वै तौ [3]पाईयै, अैसा तोल'र[4] मोल ॥ २ ॥

एक सिकौ इक साल कौ, घड़ीयौ एकण घाट।
हरीया कहिये पारषु, जैसौ पेट'र थाट ॥ ३ ॥

हरिजन हीरा[1] पेमरस, सौदा रांम संनेह।
जब इनका[2] गाहक मिलै, हरीया[3] गांठि षुलेह ॥ ४ ॥*

हरि हीरा मन जौंहरी, हरीया हिरदौ गांठि।
गाहक मिलीयां सुं मिलै, हरि हीरां की सांठि ॥ ५ ॥*

(ख) लीया ज मन कुं तोल, (ग) हरीया जे कोई तोल।
४. (क, ख) रम रह्या, (ग) सब्द सवै घट व्यापही।
५. (क, ख, ग) तोल न वाकौ मोल।

---

(१) १. (क, घ) इंदर।
(२) १. (ख) हरीया अंदर उपजै, (ग) हरीया मन जैसी वसै।
२. (क, ख, ग) तैसी। ३. (क) मिलीयां लाभै मांहिलौ, (ख) मिलीयां कहियै मांहली, (ग) अैसैं मिलीयां पारषु।
४. (ग) कहियै हीरो।
(४) १. (क) हरीया हरिजन, (ख) हरीया हरिरस पेम सुष।
२. (क, ख) हरि हीरा। ३. (क, ख) जब गुण।
* चिह्नाङ्कित साषियाँ (ग) प्रतिमें नहीं हैं, इनके स्थानपर निम्न पाठ है—

देषत हीरा पारषु, करै मोल की सुध्रि।
हरीया पीयै रांम रस, अैसी उपजै बुधि ॥
जैसा गुण गाहक मिलै, तैसा आदर पाय।
हरीया अैसा पारषु, जैसा मोल बताय ॥

हरीया गुण ग्राहक विनां, कछू न कहीयै जाय।
जौ गाहक विन[1] दाषीयै, तौ गुण[2] गांठि गमाय॥ ६ ॥*

पारिष विन पावै नही, षोटा षरा'ज षेत।
हरीया मिलीयां पारषु, जिसा तिसा कहि देत॥ ७ ॥

अथ आंन देव कौ अंग ६६

हरीया दुनीयां देव की, जाति दूंण कुं जाय।
दूर पड़ी दरगाह सुं, धका वीच[1] ही षाय॥ १ ॥

चाडि लापसी[1] चूरिमौ, चांट[2] कुसल की नांषि।
आंन देव सुं [3]दीनता, हरीया हरि सुं[4] आंषि॥ २ ॥

हरीया[1] नव नेवज करै, महमाई[2] कै काज।
अन पांणी सब रांम का, चाडत[3] नावै लाज॥ ३ ॥

धोक पूज मैं दिन गया, आंन देव कै नांय।
जौरौ देष'र विगसीयौ, जाय[1] हमारै गांय॥ ४ ॥

---

(६) १. (ग) जौ उसि आगै। २. (क) गांठी गरथ, (ख) गरथ गांठि कौ जाय, (ग) अपणौ मोल घटाय।
* (ग) में इसके पश्चात् यह अधिक है—
(ग) रांम रतन मजूस तन, निरत तालिका लाय।
हरीया कूंची सुरति की, गाहक मिल षोलाय॥

---

(१) १. (क, ख, ग, घ) काळ का।
(२) १. (ग) चाडै कुतबी। २. (क, ग, घ) छांट, (ख) छांट इमीरी। ३. (ख) दोसती, (ग) दिहसा रषै आंन की। ४. (ख) आतम सेती, (ग) हरि सुं टाळै।
(३) १. (क, ख, ग) दुनीयां। २. (ख) कुलदेवी, (ग) आन देव। ३. (क) हरीया, (ख) सेवत, (ग) सिवरत, (घ) धोकत।
(४) १. (ग) जासी मेरै।

हरीया नारी नांव विन, गावै आळ [1]जंजाळ।
सूंठ मसीड़ै लापसी, मूल छोडि गहि [2]डाळ ॥ ५ ॥

राति जगावैं[1] वीरती, दिन की लेवे नींद।
हरीयौ कहै कुरांड कुं, क्युं करि[2] मुई उलींद ॥ ६ ॥

हरीया नारी[1] नांव विन, जोनि[2] कुतरी [3]थाय।
फिरै घरा घरि [4]भटकती, धापि न[5] टूका षाय ॥ ७ ॥

हरीया हरि कै नांव विन, सब ही सूत [1]कसूत।
अैसैं नारी बांझड़ी, दूध न वाकै पूत ॥ ८ ॥

हरीया हरि व्रत[1] छाडि कै, करै और ही [2]वास।
जैसैं गिनका पीव [3]विन, औरां सुं [4]घरवास ॥ ९ ॥

निसा नीद भरि नां सुवै, जागै विषीया काज।
हरीया[1] अैसै जीव कौ, जांह[2] तांह होय अकाज ॥ १० ॥

---

(५) १. (ख, ग) अलपल गावण जाय। २. (क, ख, ग) भलौ किसी विध भांय (भाल)।

(६) १. (क) रात्युं जागै, (ग) राति जगावैं गीतड़ा। २. (ग) करिं करि, (ग) कुण लाडा कुण वींद।

(७) १. (ख) हरि कै, (ग) एकै। २. (ख, ग) नारी कुकरी। ३. (क) जोनि कुकरी जाय। ४. (ख, ग) भौंकती। ५. (ख) कदे नही, (ग) पेटा।

(८) १. (ग) सो नर जांणि अयुत।

(९) १. (ख, ग) भ्रम। २. (क, घ) करै आन कौ वास, (ख, ग) करै (धरै) आन कौ व्रत। ३. (क, ख, ग) जांणीयै। ४. (क, घ) लगी जगत कै पास, (ख, ग) रहै और सुं रत।

(१०) १. (क, ख) जनहरीया उन। २. (ख, ग) आषिर, (घ) जब तब।

जाग्या सोई जांणीयै, हरीया हरि के हेत।
हरि वेमुष[1] सुं जागीया, ता मुष[2] पडसी रेत ॥ ११ ॥

या[1] अपती संसार कुं, वार वार समझाय।
हरीया हेक न आदरै, दूजी[2] धरै[3] उठाय ॥ १२ ॥

हरीया करता रांम[1] है, जाकौ [2]जपीयै जाप।
दूजा करता सो [3]कहै, सहिसी[4] दोजष ताप ॥ १३ ॥*

अथ ऊंचा नीची कौ अंग ६७

कुंण[1] ऊंचा नीचा कवण, जांस पटंतर [2]जोय।
हरीया ऊंची हरि[3] भगति, करै स ऊंचा होय ॥ १ ॥

---

(११) १. (क, ख) हरि विन सोई, (ग) सो जागै हरि नांव विन।
२. (ख) ताही मुहडै।

(१२) १. (ख) इन, (ग) निगसांवै। २. (ख) दुरमति।
३. (क) कहै।

(१३) १. (क, ख) हेक (एक)। २. (क, ख) जपीयै जिनकौ।
३. (क) करै, (ख) सोई नरक सिधावसी।
४. (क) जासी, (घ) पडसी।

* (ग) में यहाँ निम्न साषी है—

निगसांवै संसार कै, कह्यौ न लागै कांनि।
हरीया सुवचन ना सुणै, कुवचन लेसी मांनि ॥

---

(१) १. (ग) नींचै कुल नींचा गिनै।
२. (क) काया फेर न कोय, (ख) ऊंच नींच नही कोय, (ग) सोई नींचा होय। ३. (क, ख, घ) भगति है, (ग) हरीया निकुली भगति है।

परबत सुं पथर गिर्‌यौ, पर्‌यौ रसातल आय।
हरीया हरि की भगति[1]विन, सोई नीचा[2] जाय॥ २ ॥

जिन ही जल तैं ऊंच[1]हुय, जिन ही जल तैं नीच।
हरीया ऊंच'र नीच[2]का, एको जांमण मींच॥ ३ ॥

आतम ऊंचा [1]देषीयै, नींच न देषौ कोय।
ऊची नींची मेट[2] करि, हरीया हरि का[3] होय॥ ४ ॥

जनहरीया जनमै मरै, जासु किसा संनेह।
आतम षपै न उपजै, तासु करीयै [1]नेह॥ ५ ॥

नीच न किन कुं[1] जांणीयै, कुल ऊचा कु जोय।
जनहरीया[2] किस जोनि मैं, ऊंचाई[3] नींचा होय॥ ६ ॥

---

(२) १. (क, ख) हरीया (अैसै) तन तैं ऊंच हुय, (ग) अैसैं तन तैं उच्च है, (घ) हरीया हरि विन ऊंच है। २. (ख) नींच कहाय।

(३) १. (क, ख, ग) जिन जल तैं ऊंचा भया (कीया)। २. (क) मैं।

(४) १. (क, घ) आतम देषौ ऊंच करि, (ख, ग) ऊंच न देषै ऊंच करि। २. (क, ख, ग) मिट गई। ३. (क) हरिजन, (ख, ग) एक न दूजा।

(५) १. (क, ख, ग) में यह साषी पाठभेदसे इस प्रकार है—

(क, ख) उतिम न्यारो (सोई) आतमा,
मधिम मिनषा (सोई) देह।
हरीया अमर (आतम) देह विन (अमर है),
षलक (देह) भई सब षेह॥

(ग) उतिम तौ है आतिमा, मध्यम तौ है देह।

(६) १. (क) हरीया नींच न, (ख, ग) हरीया नींच न नींदीयै। २. (क, ख, ग) क्या जांणु। ३. (क, ख, ग) आप ही, (घ) ऊचा नीची।

अथ निंद्या कौ अंग ६८

हरीया जुग विड़ नींदीयै, जा कुं[1] भगति न भाय।
से रता रहमांण सुं, और न आवै दाय॥ १ ॥*

हरीया औगुण और का, देष मुळकै [1]कांय।
क्यां जांणु[2] अणचीतीयौ, पड़ै[3] आप ही मांय॥ २ ॥

हरीया कष[1] न नींदीयै, पड़्यौ देष धर पाय।
क्या जांणु कब ऊडिकै, पड़ै आंषि मैं आय॥ ३ ॥ †

हरीया पड़ीयौ[1] आंषि मैं, षरौ षटकै [2]तुछि।
अंन उदर मैं सेर भरि, आंषि न मावै कुछि॥ ४ ॥

हरीया भलौ न नींदीयौ, हरिजन क्या संसार।
जैसौ जांणौ और कुं, तैसौ आप [1]तीयार॥ ५ ॥

---

(१) १. (क) भगति न भावै काय, (ख) जिन्हां भगति०, (घ) भाव न भगति सुहाय। * (ग) में इसके स्थानपर निम्न रूपसे साषी है—

जुग विड़ सेती नींदीयै, जौ नही ग्यांन विचार।
हरीया ताह नि भाव ही, हिरदै रांम उचार॥

(२) १. (क, ख, ग) जास। २. (क, ख, ग) आपनपौ (उर आपौ) नही मांनही। ३. (क, ख, ग) आय पड़ै गलि पास, (घ) उठै आप ही।

(३) १. (ग) पांन न। † (क, ख, ग) में इसके पूर्व यह साषी अधिक है—

पर औगुण क्या नींदीयै, जो आपण पै नांहि।
हरीया पर कुं नींदीयां, पड़ै आप ही मांहि॥

(४) १. (घ) अैसे। २. (घ) तुसि।

(५) १. (क, ख) जिसौ और कुं जांणीयै, तिसौ आप कुं त्यार। (ग) में यह नहीं है।

अथ दयान्निर्वैरता कौ अंग ६९

हरीया सायर परजल्या, दाझै जल थल रंन।
जोर किसौ [1]जगदेव सुं, दाझै देह[2] रतंन॥ १ ॥

ऊंमटि आई सेहरी, वरसै अगनि [1]अपार।
हरीया ऊठि[2] पुकार करि, दाझै दुनीयां दार॥ २ ॥

के दाधा दुष आपणै, के पर दधा[1] होय।
हरीया दाधी सब दुनी, सुषीया देष [2]न कोय॥ ३ ॥

सब दुष रोवै [1]आपणा, परदुष[2] देष न रोय।
हरीया रोवै जास कुं, सो सारां[3] विच होय॥ ४ ॥

---

(१) १. (क) जगदीस, (ख) नहीं जगदीस, (घ) जढ जीव कौ। २. (क, ख) मांहि रतंन, (घ) जल थल रंन। (ग) में यह साषी इस प्रकार है—

हरीया निरजल सायरुं, पर घर लगी लाय।
रतन अमोल्कि दाझही, मो हरि वस न काय॥

(२) १. (ग) वरसि अंगारा धार। २. (ख) कूक, (ग) हरीया देष फिराद करि।

(३) १. (ख, ग) दुषीया। २. (ख, ग) सुषी न दीसै। (ग) प्रतिमें इसके पूर्व यह अधिक है—

दुनीया दुष दूमर भरी, निरदुष नांही कोय।
हरीया निरदुष सो भया, हरि सुष जाण्या सोय॥

(४) १. (क, ख) सबको रोवै आप दुष, (ग) सबही रोवै आप दुष। २. (क) मो दुष, (ख) हमकुं कोय न रोय, (ग) मुझिकु एक न रोय। ३. (क, ख) सो दुष सारां, (ग) सो दुष सब मैं।

सब कौ[1] चाहै सुष कु, दूंदर[2] दुषां न छेह।
हरीया ऐसा को नही, सांसा[3] मेट संनेह ॥ ५ ॥

हरीया सुष दुष आपणा, औरां देष [1]न रोय।
यांहती जाता देषीया, वांहती देष[2] न कोय ॥ ६ ॥

दुनीयां दुष दुभर भरी, निरदावै नही कोय।
हरीया हरि की भगति है, सो निरदावै [1]होय ॥ ७ ॥

मछ विछूटौ टोळीयां, ताहि न घातौ घात।
आप मतौ मरि जावसी, तळफ तळफ जीव [1]जात ॥ ८ ॥

अथ सूंदरि कौ अंग ७०

जनहरीया सूंदरि [1]कहै, करौ[2] हमारी सार।
तो विन मिलीयां सजनां, जीयु किन [3]परकार ॥ १ ॥

दे दे थकी संदेसड़ा, सुणि सूंदरि का कंत।
मछी जीवै जल विनां, तौ तो विन मैं जीवंत ॥ २ ॥

---

(५) १. (ग) जुग। २. (क) दुषां न कोई छेह, (ख) दुषां दंद नही, (ग) दुषां कलापन। ३. (ख) मेटै ताहि, (ग) मेटै मुझि।

(६) १. (क, ख) सबको देष्यां (रोवै जाय), (ग) सबही रोय रोय जाय। २. (ख) कोय न आय, (ग) पूठा कह्या न आय।

(७) १. (ग) सनमुष सुं सनमुष रहौ, परमुष सुं परमुष।
हरीया सेई दुष भख्या, जासुं केहवा सुष ॥

(८) १. (ग) चाह्या सुष न सपजै, दुष भी चाह्या नांहि।
हरीया जो कुछि होत है, सहजां सहजां मांहि ॥

---

(१) १. (ख) करै। २. (ख) सुणौ हमारी साद। ३. (ख) मरूंत पांऊंदाद।

हरीया सोई सूंदरी, हरि सेती हितकार ।
ताहि वदूं[1] नही सूंदरी, मन बिंध्यौ[2] संसार ॥ ३ ॥

अथ उपजन कौ अंग ७१

पैंडै पड़्या वदेस कै, पहरि सावटु[1] वेस ।
हरीया पहली डारिदै, पीछे नांव न लेस ॥ १ ॥

छाडि चल्या[1] इस देस कुं, वसण वदेसां जाय ।
हरीया हरि सुनमांन दे, आघा लेह बुलाय ॥ २ ॥

---

(३) १. (ग) दूजी वदूं न । २. (क, ख) वंध्यौ, (ग) विंध्या ।
* (ग) में १-२ नहीं है, निम्न रूपसे है—

सुन्दरी सांम सनेह सुं, न्यारी पलक न होय ।
हरीया जौ न्यारी हुवै, जल विन मछी जोय ॥ १ ॥
मछी जल का जीव है, जल ही मांही वास ।
हरीया सूंदरी सांम विन, निसदिन षरी उदास ॥ २ ॥
मछी जल नेहा घणा, जल कै नेह न कोय ।
हरीया साम'र सूंदरी, एक न दूजा होय ॥ ३ ॥
हरीया सोई सूंदरी, सांई मुष निहार ।
दूजी सूंदरी वापड़ी, देषण कौतिगहार ॥ ५ ॥
दूजी कौतिग देष करि, चली अंग मरोड़ि ।
सोई सकोड़ी सूंदरी, सांई सुं दिल जोड़ि ॥ ६ ॥
हरीया पहली दिल दीया, तौ पीछै हरि देह ।
दिल कै दीयां वाहिरौ, सांई किसा संनेह ॥ ७ ॥
असनेही सूंदरी तणौ, जणौ जणौ नही जांणि ।
हरीया सोई सूंदरी, आपा मिंझ पिछांणि ॥ ८ ॥

---

(१) १. (क) पहरण चंगा, (ग) जास न जांणु ।
(२) १. (क, ख, ग) दाषि चल्या इस देसती ।

उलिंघ मेर आकास कुं, हरीया[1] चले हजूर।
इंद लोक इचरज भयौ, देष दास कौ नूर ॥ ३ ॥

हरीया ऐसी ऊपजी, या भवसागर मांहि।
नौका करि हरि नांव की, ता चढि हरि पै जांहि ॥ ४ ॥

भव जल तारि निहाल करि, हालि[1] सधीरा होय।
डूबण का डर को[2] नही, हरीया हरि बल जोय ॥ ५ ॥

हरीया भव जल डाक करि, पार उतरीया तीर।
अब निरभै घर पाईया, संसा [1]मिथ्या सरीर ॥ ६ ॥

पांणी सद पाताळ का, हरीया पीयौ [1]आंनि।
वासी पांणी विष[2] सा, पीयै'स परळै जांनि ॥ ७ ॥

हरीया सो दिन वार धिन, आय मिले [1]सतसंग।
अब तौ चडै न ऊतरै, लागा हरि का[2] रंग ॥ ८ ॥

हरीया घर कागद [1]करु, लेषन भार अढार।
सात समंद की[2] घोळि मसि, हरि गुण लिष्यां[3] न पार ॥ ९ ॥

---

(३) १. (ख, ग) चाल्यौ रांम। २. (ग) तीन लोक। ३. (ग) हमारौ नूर।
(४) १. (ख, ग) इन। २. (ख) निज।
(५) १. (ग) पारि। २. (ख, ग) छाडि दे।
(६) १. (क, ख, ग, घ) गया।
(७) १. (ख) कढ। २. (क, ख, ग, घ) विषमता। ३. (ख) पी मूवा जीव जढ।
(८) १. (ख, ग) हरि संग। २. (क) सुं, (ख) लागि रह्मा हरि, (ग) लागा रंग सुरंग। (ग) में यहाँ यह विशेष है—

हरीया पेम पीयासदे, करि करि अधिकी ब्यांत।
रंग लागा हरि नांव का, चढै न दूजी भांत ॥

(९) १. (क, ख, ग, घ) करूं। २. (ख, ग) सातुं सायर। ३. (ख, घ) लिषत, (ग) रांम गुणां नही पार।

हरीया हरि का[1] अनंत गुण , लिष लिष हिरदै [2]मेल ।
नीर न पीयु डरपती , मत[3] औ देत उगेल ॥ १० ॥

हरीया हरि बल जोरि है , निडर भये [1]सब दास ।
रांम भगति विन धम गया , सोई[2] सालैं सास ॥ ११ ॥

हरीया दया दयाल की , हीरौ चढीयौ हाथि ।
लेते मिणीया [1]मूंगीया , जब जाते ज़ुग साथि ॥ १२ ॥

जनहरीया[1] चलि जांह गये , वांह अभिनासी राय ।
पसु पषेरु जीवड़ा , विच[2] ही रह्या थकाय ॥ १३ ॥

जनहरीया[1] चलि जांह गये , आपो[2] आप अचल ।
अपना करि बैसांनीया , मुजरौ [3]मांनि अपल ॥ १४ ॥

---

(१०) १. (क, ख) हरि गुण बौहत हैं, (ग) हरि गुण घणा। २. (ग) लिषीया रिदै मंझारि। ३. (क) जौ उ देत, (ख) जौ वै, (ग) जौ कब धोय उतारि। (ग) में यहाँ अधिक है—

हरीया हरि का गुण घणा, मेल्ह्या अंदर मांहि।
सास न लेउं संकता, जौ कब निकस्या जांहि॥
हरीया हरि का गुण घणा, मेल्ह्या अंदर जास।
निसदिन रिदै न वीछरै, ज्युं फूलन मै वास॥

(११) १. (ख) हरि। २. (ख) सो दिन सालैं।
(१२) १. (ग) आगै मिणहट लेवते, लोक विड़ां कै साथि।
(१३) १. (ख, ग) हरीया चलि चलि। २. (ग) सब।
(१४) १. (ख, ग) हरीया चलि चलि। २. (क) है जांह, (ख, ग) है वांहां (आंहां) एक। ३. (ख) होय।

श्री १००८ श्री चेतनदासजी महाराज
रामस्नेहि सम्प्रदायाचार्य सिंहस्थल (५)

अथ कसतूरिया मृिघ कौ अंग ७२

कसतूरी कमडल[1] वसै, मृिग[2] ढूढै वन वंन ।
हरीया जुग जांणै[3] नही, रांम वसै तन तंन ॥ १ ॥

हरीया कोय[1] न देषीया, पांचैं सामटि[2] लेह ।
जिन अै पांचे वस्य कीया, भया[3] परम सुष एह ॥ २ ॥

हरीया पांचे चोरटा, पकडि कीया चकचूर ।
कांम न ऊठै[1] कलपना, सोई हरिजन[2] सूर ॥ ३ ॥

हरीया हरि हिरदै [1]वसै, नर दूरां[2] फिर जोय ।
ज्युं कसतूरी नाभ [3]विच, मिरघ न जांणै कोय ॥ ४ ॥

मृिग भरिम्यौ वन वन फिरै, ज्युं[1] मूरष जुग मांहि ।
हरीया गुर गम बाहिरौ, उर[2] आतम सुधि नांहि ॥ ५ ॥

हरीया हरि अंतर वसै, दुनीयां[1] देषै दूरि ।
दूरि कहै तांह दूरि है, हाजरि [2]जांनि हजूरि ॥ ६ ॥

---

(१) १. (ग) नामी, (घ) कुडल । २. (घ) मृघ । ३. (ग) भटकत फिरै ।

(२) १. (क, ख) अैसा, (ग) जिनकौ । २. (ख, ग) कीया ठांम, (घ) सांमटि । ३. (क) पाया परम सनेह, (ख) जिन पाया विस्रांम, (ग) जिनही पाया रांम ।

(३) १. (ख) व्यापै । २. (क) संतजन, (ख) साध है, (ग) सो साधुजन ।

(४) १. (क, ख, ग) विचैं । २. (क) न्यारा, (ख) जुग जुग मैं, (ग) जुग न्यारा । ३. (ख) मैं ।

(५) १. (ख) मूरिष नर । २. (क, ख) आतम की, (ग) है आपा ।
(६) १. (ग) दुनी कहै परदूर, (घ) कौ मन । २. (ग) ताहि ।

रांम सकल कै[1] वीच मैं, षाली [2]षलक न कोय।
जनहरीया[3] नर भेद विन, दूरि दिसंतर जोय॥ ७॥

मिरघ वासना कारणै, फिरि फिरि ढुंढै[1] घास।
हरीया[2] आतम सुधि विन, तन मन[3] फिरै उदास॥ ८॥

देस दिसंतर[1] देषीया, तौंई न[2] पाया रांम।
जनहरीया घट भीतरैं, सुझि[3] पेष्या निज नांम॥ ९॥

मिरघै मरम न जांणीयौ, सुझि[1] कसतूरी नाभ।
हरीया सब[2] घट रांम है, गुर विन गये[3] अलाभ॥ १०॥

आपा भीतरि आप है, भूदू[1] लहै न भेव।
हरीया आपा पास करि, लगा और[2] की सेव॥ ११॥

आंषि आंषि मैं पूतली, ज्युं घट घट मैं रांम।
हरीया पडल[1] भरम का, ताहि न दरसै[2] नांम॥ १२॥

---

(७) १. (ग) तन। २. (क, ख) एक। ३. (क, ख) हरीया आपा, (ग) हरीया भेदी।

(८) १. (क, ख) ढूढै, (ग) वन वन फिरै उदास। २. (क) आप आतमा, (ख) आपा आतम, (ग) भरम्या जीव न आवही। ३. (क, ख) यु नर फिरत (फिरै), (ग) आपा मन वेसास।

(९) १. (ग) दिसावर। २. (ग) किनही न। ३. (ख) मैं, (ग) जिन पाया विसरांम।

(ग) में यहाँ यह अधिक है—

हरीया निज नामी वसै, कसतूरी इन मांहि।
मिरघा मिनषा भेद विन, गम दोउं कुं नांहि॥

(१०) १. (ख) है। २. (क, ग) घट घट। ३. (ग) सतगुर विनां।

(११) १. (क, ग) भूंदू। २. (क) लागा दूजी, (ग) जण जण लागा।

(१२) १. (क, ख, ग) पड़िदा। २. (क) सूझै, (ग) निकट न सूझै, (ग) धरै और ही नांम।

हरीया घट मैं रांम रस, जांणै विरला[1] कोय।
काया कूंपा विष भर्या, सीच पीयै[2] सब कोय ॥ १३ ॥

वाहै विष की क्यारीयां, ढोरै अंमृत[1] नीर।
जनहरीया क्या जांणसी, हरि रस[2] हंदी सीर ॥ १४ ॥

हरीया घट मैं रांम रस, लीजै[1] प्रीत लगाय।
पीयां पीछै जांणीयै, चित न आवै[2] काय ॥ १५ ॥

घर मैं[1] समझ्या घरि रहौ, वन समिझ्या वन मांहि।
हरीया घर वन समिझि कै, बोलण कुं कुछि नांहि ॥ १६ ॥

अथ निगणै कौ अंग ७३

हरीया दुरमति सठ की, पिंड प्रांण [1]लग होय।
भावै स्यांणा बौह मिलौ, सठ न समझै कोय ॥ १ ॥

हरीया विरषा [1]वौह भई, धर कड़[2] वैठौ तेह।
पांहण पुडंग न भेदई, नित कौ[3] वरसौ मेह ॥ २ ॥

---

(१३) १. (ख, ग) ताहि न जांणै। २. (ख, ग) सो सीचै।
(१४) १. (घ) इंमृत। २. (ग) हरि सुष।
(१५) १. (क, ख, ग) पीयौ, (घ) पीजै। २. (क) दूजी,
(ग) और नहीं रुचि।
(१६) १. (क, ख, ग) का।

---

(१) १. (ख) तैं। (ग) में यह इस प्रकार है—
हरीया मूरष मिनष की, दुरमति एती जांन।
मिटै न जेती प्रांण लग, बौहते मिलौ सुजांन ॥
(२) १. (ख) वरसगी। २. (ख) तलि। ३. (ख, ग) नवघण वूठा।

हरीया बौह वन[1] मौरीया, पांनां फूल फलांह ।
हेक न मौरयौ [2]बापड़ौ, सूकौ मेह घणांह ॥ ३ ॥

हरि जल बूठौ मोतीया, हरीया सिर [1]सिष रांह ।
सुगणां[2] मोती चुणि लीया, हाथि नही [3]निगुणांह ॥ ४ ॥

हरीया हरि जल बरसीयौ, सिषर गिर सारेह ।
नीर न षहड़ां ठाहरै, ठाहर निवांणेह ॥ ५ ॥

कहा निगण कुं बाहींये, हरीया सुवचन तीर ।
लागि लागि अर झड़ि पड़ै, रंच न चुभै [1]सरीर ॥ ६ ॥

निगणे आंगण ऊपई, ग्यांन वमेष विचार ।
ज्युं षर अगर क्या करै, हरीया लेपन छार ॥ ७ ॥

हरीया जाळु देसड़ौ, जहां न हरि परसंग ।
उर इकतार न ऊपजै, देष दुरंजी[1] रंग ॥ ८ ॥

हरीया नेह न कीजीयै, नर निगुणै सुं जाय ।
गुण अगलूणा[1] छावरै, औगुण काढि दिषाय ॥ ९ ॥

---

(३) १. (क, ख, ग) वन वन सारौ । २. (क, ख, ग) हरीया एक न मौरीयौ ।

(४) १. (क, ख, ग, घ) समंदांह । २. (ख) स्यांणां, (ग) सारां । ३. (ख) याणांह ।

(६) १. (ग) में यह इस प्रकार है—

हरीया वचन वमेष का, कहा निगण कु वाय ।
वचन जिन्हां कुं वाहीयै, षाली परितन जाय ॥

(८) १. (क, ख) दुनीयां (दूजौ) ढंग वेढंग, (ग) ढंग वेढंग सौ । (ग) में इसके बाद यह है—

पसुवै सूतै जल पीयौ, सुपनै मांही जाय ।
हरीया सूतौ जागीयौ, प्यास न भागी काय ॥

(९) १. (ख, घ) अगलै का । (ग) प्रतिमें इस प्रकार है—

सो है प्यासा पेम का, पेम पीयां विन आय ।
हरीया प्यासा पेम विन, जाकी त्रिषा न जाय ॥

दूध पीलाया सरप कुं, सो सरपै विष होय।
हरीया कोय न देषीया, विष पी इंम्रृत होय ॥ १० ॥

अथ वीनती कौ अंग ७४

हरीया देष[1] हरांमड़ौ, रोस न कीजै [2]रांम।
अब तौ तेरौ[3] हुय रह्यौ, और न मेरै [4]कांम ॥ १ ॥

विड़द [1]तमारौ रांमजी, ले वहीयै [2]म्हाराज।
हरीयै गुण[3] औगुण कीया, तौई तमां[4] कुं लाज ॥ २ ॥

हरीयै औगुण बौह कीया, करत न कोई[1] छेह।
जौ तुं औगुण याद करि, होय[2] न छूटण केह ॥ ३ ॥

सांई केरा बौहत गुण, गिणंतां [1]ग्यांन न कोय।
हरीया हिरदै भीतरै, लिष लिष [2]राषुं पोय ॥ ४ ॥

हरीयै औगुन[1] बौह कीया, संक न आंनी[2] कांय।
भावै तौ मुझि बगसीयै, भावै कुंद भराय ॥ ५ ॥

---

(१) १. (क) महा, (ख) जांणि। २. (ख) राजि। ३. (ख) रांम तम्हारौ। ४. (ख) अब कहाँ जाउं भाजि। (ग) प्रतिमें निम्न रूपसे है—
हरीयै बौहत विगारीया, मैला करि करि मंन।
तम गुणवंता सांईया, मैं भरोया औगंन ॥
(२) १. (क, ख, ग) तुहारौ, (घ) तुमांरौ। २. (क, ख, ग) महाराज। ३. (ग) औगण गारा आदिका। ४. (ख) तमांतुं, (ग) मेरी तुझि कुं।
(३) १. (क) धग। २. (क) तौ मोहि न छूटण सग, (ख) तौ नही, (ग) नां मैं।
(४) १. (ग) औगुन एक। २. (ग) मेलुं।
(५) १. (क, ख, ग, घ) दोषन। २. (क, ख, ग, घ) मांनी।

साांई गहरा रूंषड़ा, सदा'ज[1] सीतल छांह।
हरीया पंछी बापड़ा, ता विच केल करांह॥ ६ ॥

काहू कै सिर को धणी, कूड़ा[1] करत कलाप।
हरीयै कै सिर तुं धणी, तूं ही मांय'र बाप॥ ७ ॥

सांई[1] सुणीयै वीनती, हरीयौ कहै पुकारि।
जौरै का[2] सिर जोर बल, धणी धका दे टारि॥ ८ ॥

तेरै तौ[1] आसान सब, मेरै बौहत जरूर।
हरीयै कुं करि आपनौ, राषौ रांम हजूर॥ ९ ॥

जनहरीयै की वीनती, सांई करीयै कांनि।
बंदै कुं मुसकल घनी, तेरै[1] सब आसांनि॥ १० ॥

हरीयै का दिल तुझि सुं, तेरा मुझि[1] सेतीह।
ज्युं सोनौ अर सोहगी, मिलग्या [2]अंगेतीह॥ ११ ॥

हम[1]सा तेरै बौहत[2] है, तम[3]सा मेरै नांहि।
हरीयौ तुझि कुं छाड़ि कै, और न[4] किस पै जांहि॥ १२ ॥

---

(६) १. (ख) नितही, (ग) जाकी।

(७) १. (क) कोऊ, (ख) काहू मरत, (ग) कोई विन धिणीयाप।
(ग) में यह अधिक है—

जुग मैं जौरा जुलम है, कूक सुणै नही कोय।
हरीयै हंदी वेनती, सांई सेती होय॥

(८) १. (ग) सुणीयै मैरी। २. (क, ख, ग) का सिर जोर है।

(९) १. (क, ख, ग) सब आसांन है।

(१०) १. (क, ख) सांई, (घ) सांई तुझि। (ग) में यह साषी नहीं है।

(११) १. (ख) हम। २. (क) संगेतीह। (ग) में यह साषी नहीं है।

(१२) १. (ग) मुझि। २. (क) है किता। ३. (ग) तुझि। ४. (क, ग) और कीसी।

गाफिल जनम गमाय [1]नां, करि करि झूठा नेह।
हरीया दुलभ [2]पायबौ, रांम भगति नरदेह ॥ १३ ॥

हरीया हरि की भगति विन, कहा कीयौ नर [1]आय।
का तौ विषीया बाद करि, का सुय रहीयौ [2]पाय ॥ १४ ॥

जुग मैं जामण अर[1] मरण, सो तौ सब कै मांहि।
जनहरीया हरि भगति विन, पापी परळै जांहि ॥ १५ ॥

पाप कीया से मुझि[1] कीया, हरीया[2] फेर न सार।
भावैं तौ तुझि[3] मेट करि, भावैं दोजष[4] डार ॥ १६ ॥

कलम हमारी रांमजी, होय तमारैं[1] हाथि।
जनहरीयै कुं[2] रषीयै, सदा तमारैं[3] साथि ॥ १७ ॥

अथ तन माला कौ अंग ७५

षट दरसन कुं[1] नां धरु, धरु न को [2]पाषंड।
जनहरीया[3] घट भीतरैं, पाया एक [4]अषंड ॥ १ ॥

---

(१३) १. (क, ख) मत। २. (क, ख) पाईयै, (ग) बोहद दिन पाईयै, (घ) दुरलभ पाईयै।

(१४) १. (ख, ग) मिनष (षरौ) जमारौ षोय। २. (ख, ग) का उठि (तौ) रहीयौ सोय।

(१५) १. (ख, ग) मरण है।

(१६) १. (क, ख, ग) हम। २. (ख, ग) जामै। ३. (क, ख, घ) मुझि, (ग) कुछि। ४. (ख, ग, घ) दोझष।

(१७) १. (ग) है सब तेरै। २. (क, ख, ग) हरीयै कुं ले। ३. (क, ख, ग) तम्हारै।

---

(१) १. (क) कुं क्या करुं, (ख) मै हम नही। २. (क) क्या पाषंड कुं जांनि, (ख) ना पाषंड मैं होय। ३. (क) हरीया सब, (ख) हरीया सब मैं एक है। ४. (क) सोई लीया मुझि मांनि, (ख) सही कीया मैं सोय।

हरीया जाति न पांति [1]मैं, नां कुल सेती [2]कांम।
पांच तत के[3] वीच मैं, बोलै[4] गैबी रांम ॥ २ ॥

ततां[1] तत मिलाय [2]लै, सतगुर मोटा[3] साह।
हरीया अलगरजू घणा, ताहि न द्यै सौदाह ॥ ३ ॥

जनहरीया[1] घट मैं षुली, हरि हीरांची षांनि।
मांग्याई मैं[2] देत हूं, जौ कोई[3] गाहक जांनि ॥ ४ ॥

मिणीया मोती[1] मूंगीया, लेऊ लषां लोय।
हरि हीरां का गाहकु, हरीया[2] कोईक होय ॥ ५ ॥

---

(२) १. (घ) कुछि। २. (ख) हरीया हम कुल मैं नहीं, जाति पांति मैं नांहि। ३. (क, ख) का पूतला। ४. (क) ता विच बोलै, (ख) अगमी बोलै मांहि; (घ) बेलै गेबी।

(३) १. (क, ख) तत मैं। २. (ख) नित। ३. (ख) पूरा। (ग) में १ से ४ तक यों हैं—

हरीया हींदू कौंन है, कुंन है मुसलमांन।
मै एको करि जांणीया, रांम सोई रहमांन ॥

हींदू कहीयां नां षुसी, षुसी न मुसलमांन।
हरीया हरि कहीयां षुसी, या विन और गिलांन ॥

हरीया हम हींदू नही, हम नही मुसलमांन।
जाति पांति की कांणि तज्य, हरि सुं जोड़या प्रांन ॥

हरीया चित जांहां विलंबीया, है तहां औघट घाट।
सतगुर साह सधीर मिल, षोल्या घट कपाट ॥

(४) १. (क, ख, ग) हरीया मुझि। २. (क) बौह, (ख) मुष तैं मुगता, (ग) और किती कुं। ३. (ख) गाहक कोई न।

(५) १. (ग) हरीया मिनीया। २. (ग) कोडी मंझां कोय।

हीरां केरा[1] गाहकु, हीरां हाट[2] षुलाय।
सुरित निरत[3] सुं निरषलै, सौंदै[4] साट मिलाय॥ ६ ॥

हरि हीरां कै कारणै, हांड्या देस विदेस।
परष पड़ी [1]जब जौंहरी, हरीया[2] हिरदै लेस॥ ७ ॥

हरीया हिरदै [1]भीतरैं, पाया[2] हरि हीरांह।
आन उपासी अंधरा, तासुं परतीरांह॥ ८ ॥

जनहरीया तन भीतरैं, पायौ पदारथ।
काढि[1] किसी कुं दाषीयै, गांठी विनां गरथ॥ ९ ॥

हरीया गांठी गरथ विन, हाथं[1] न लेषौ होय।
पदारथ का पारषु, कोट्यां मंझै कोय॥ १० ॥

रांम पदारथ जांह[1] नरां, ता[2] घरि कमी न काय।
हरीया नव निध दूसरां, ज्युं आवैं ज्युं जाय॥ ११ ॥

---

(६) १. (ग) का गाहक मिलै। २. (ग) गांठि. षुल्हाय। ३. (ग) हरीया जिस कुं दीजीयै। ४. (ग) सबदां (ग) प्रतिमें इसके पूर्व यह साषी अधिक है—

रतनां का गाहक नही, जिन कै हाथि न देत।
हरीया रतनां गाहकु, कौडी हाथि न लेत॥

(७) १. (ख) हरीया परषत २. (ख) हिरदै मांहि लहेस।
(८) १. (ख) हिरदै भीतरि लहि लीया। २. (ख) हरीया। (ख) में यह अधिक है—

हरि हीरां नही गाहकुं, परष न काई थीव।
हरीया सोई जांणीयै, चौरासी का जीव॥

(९) १. (क, ख, घ) काढि न किस।
(१०) १. (क, ख, घ) हाट।
(११) १. (क, ख, घ) प्रामीयो। २. (क, ख) जाके कमी, (घ) ता।

हरि हीरा तन हटड़ी, निज मन परषणहार।
जनहरीया [1]जब जांणसी, तोल मोल की सार ॥ १२ ॥

हीरां की पारिष परै, ताहि सहै घन चोट।
सिर अहरन कै चाढीयां, हरीया रहै न षोट ॥ १३ ॥

का तौ घन अहरन सहै, का सहै हीरा तंन।
हरीया एता नां सहै, काच अधीरा मंन ॥ १४ ॥

अथ माला कौ अंग ७८

हरीया माला [1]काठ की, पोयर फेरै [2]हाथि।
अंदर काती कुबुधि की, सो तौ[3] मनकै साथि ॥ १ ॥

कर सेती माला फिरै, मन विषीया कै [1]मांहि।
हरीया कूड़'र[2] कपट मैं, पलै पड़ै[3] कुछि नांहि ॥ २ ॥

---

(१२) १. (क, ख, घ) सो। (ग) प्रतिमें—८ से १२ तक नहीं है; इनके स्थानपर निम्न साषियाँ हैं—

रांम रतन जन जौंहरी, गाहक ग्यांन विचारि।
हरीया यौ तन हटड़ी, लीजै सारि संभारि ॥
हरीया तोल न मोल की, अजांणां नही आषि।
रतनां का गाहक मिलै, जिसकै आगै दाषि ॥
हरि हीरां गाहक मिलै, जिसकुं षोलि दिषाय।
हरीया गाहक बाहिरौ, भेद न दीजै काय ॥
हरि हीरां नही गाहकुं, पारिष को नही नांम।
हरीया जिन ही गांवड़ै, मिनष वसै वेकांम ॥
हरि हीरा मन पारषु, ग्यांन गाहकु मांहि।
हरीया भेदी बाहिरौ, तोल मोल सुधि नांहि ॥

---

(१) १. (ग) हाथ सुं। २. (ग) निसदिन फेरयां जांहि। ३. (क, ख) इन, (ग) निकसी नांहि।

(२) १. (ग) साथि। २. (क, ख) अैसैं, (ग) अैसैं फेरीयां। ३. (क, ख) हाथ पलै, (ग) कुछि न आवै हाथि।

कर सेती माला फिरै, जीव करै[1] जंजाल।
जनहरीया क्युं[2] पाईये, अैसैं[3] दीनदयाल ॥ ३ ॥

क्या फेरैं कर[1] काठ की, मन की[2] माला फेर।
जनहरीया[3] माला फिरै, विनां विचेरण [4]मेर ॥ ४ ॥

माला मांही मन [1]वसै, गिणवां लेवै नांम।
जनहरीया तन [2]भीतरैं, कैसैं पावै[3] रांम ॥ ५ ॥

मूरष आंणी[1] मोल करि, माला गल कै[2] मांहि।
हरीया आतम[3] नांव की, सुधि बुधि पाई नांहि ॥ ६ ॥

माला फेरै [1]मनमुषी, चित न एको[2] ठौर।
मेटै मारग मुगति[3] का, हरीया दूजी[4] दौर ॥ ७ ॥

---

(३) १. (क) फिरै, (ख) फिरै भ्रम जाळ, (ग) जीव जंजाळा मांहि।
२. (क, ख) निसचै विनां न, (ग) हरीया मन बाहरि फिरै।
३. (क, ख) हरीया, (ग) सिवरन का सुष नांहि।

(४) १. (क) नर, (ग) कर सेती क्या फेरीयै, (घ) कहा फेरीयै।
२. (ग) सुं। ३. (ख, ग) हरीया मन। ४. (ग) जाकै गांठ न मेर।

(५) १. (क) रहै, (ख) हरीया माला फेरि करि, (ग) माला फेरै काठ की। २. (ख) मन भीतरि लेवै फिरै, (ग) हरीया मन लेवै। ३. (क, ख) ताहि मिलै नही, (ग) सिवरण कौ नही कांम, (घ) किसविध पावै।

(६) १. (क) माला, (ख, ग) माला मोल ले। २. (क) ले घाती गल, (ख, ग) हाथि गलै पहराय, (घ) पहराई गल मांहि। ३. (क) जनहरीया हरि, (ख) हरीया कौडी वीधकै, ज्युं घाल्यां गलिगाय, (ग) हरीया ज्युं गलिगाय कै, कौडी घाल्या जाय।

(७) १. (ग) मनमुषी सिवरण करै। २. (क, ख) राषै ठांय। ३. (क) आदि कौ, (ख) आदू मारग भूलिग्यौ, (ग) हरीया हिरदै रांम है। ४. (क, ख) फिर फिर (गुर विन) गोता षाय, (ग) ता कुं समझै नांहि।

एको नांव असंष [1]है, गिणतां ग्यांन न कोय।
जनहरीया जब [2]जीवीयै, तब[3] लग भजीयै सोय ॥ ८ ॥

मिणकै मिणकै नांव ल्यै, गिण गिण लेषै चाडि।
हरीया अंध अचेत[1] नर, नांव न लेषै[2] पाडि ॥ ९ ॥

मन[1] माला सतगुर दई, सुरति सूत सुं पोय।
हरीया घट मैं फेरीयै, जाप अजपा होय ॥ १० ॥

हरीया माला[1] सास की, जौ नित फेरी [2]जाय।
काटै फंदन करम [3]का, जीव न जमपुर [4]जाय ॥ ११ ॥

मूरष माला काठ की, पहरि मूवौ क्युं भारि।
हरीया हरि[1] सिवरन विनां, कोय[2] न उतरै पारि ॥ १२ ॥

---

(८) १. (ख) अलष असंष्या नांव है, (ग) हरीया नांव अपार है। २. (क, ख) हरीया जब लग लीजीयै (सिवरीयै), (ग) हरीया जब तैं प्रांण है। ३. (क) तब लग पिंजर होय, (ख) जीव जिंद मैं होय, (ग) लेतां होय स होय।

(९) १. (क, ख, ग) न चेतही। २. (ख) अलष न लेषै।

(१०) १. (ग) में यह इस प्रकार है—
हरीया सिवरण सास का, सतगुर दीया वताय।
विण कर माला फेरतां, जाप अजपा लाय ॥

(११) १. (ग) माला सास उ०। २. (ख, ग) निसदिन फेरै कोय। ३. (ख) फेरत ही जब जांणीयै, (ग) हरीया घट मै फेरतां। ४. (ख, ग) अंदर (सहज) उजाळा होय।

(१२) १. (ख) रांम नांम। २. (क) एक। (ग) में १२-१३ के स्थानपर निम्न साषियाँ हैं—
मन माला घट्मां फिरै, ताहि लषै नही कोय।
हरीया माला काठ की, और अरट कै जोय ॥
हरीया माला पहरि कै, भारि मरौ मति कोय।
मन माला विन फेरीयां, अलष लषै नही कोय ॥
हरीया गुर हम कुं दई, सीष समंझि मति एह।
रांम नांम घट भीतरै, मन माला सुं लेह ॥

मन माला घट भीतरैं, हरीया फेरै[1] कोय।
फेरतई[2] हरि पाईयै, अगम उजाळा[3] होय॥ १३॥

हरीया मन[1] माला भई, तिलक हमारै तत।
ग्यांन[2] हमारै गूदड़ी, सहज हमारै मत॥ १४॥

हरीया दाड़ी मूंछ कुं, इन मूंड्यां क्या होय।
मूंडीजै मन मांहिलौ, यु[1] सारी सिध होय॥ १५॥

दाड़ी मूंछां क्या कीयौ, कहा कीयौ केसांह।
हरीया[1] कीयौ[1] समन कीयौ, भरीयौ[2] बौह लेसांह॥ १६॥

मसतग[1] माल मूंडाय कै, दाड़ी मूंछ मूंडाय।
हरीया मन मूंड्यां विनां, निज[2] पद कैसैं पाय॥ १७॥

दाड़ी मसतग मूछ का, घुरिड़ मूंडीया केस।
हरीया मन पलिट्या नही, पलिट्या तन का वेस॥ १८॥

जोग जुगति जांण्यां[1] विनां, क्या भगवा क्या सेत।
हरीया बीज न[2] वाहीया, जा का निरफल षेत॥ १९॥

---

(१३) १. (क) फेरत, (ख) ता फेरत है। २. (क) ता फेरत, (ख) हरीया हरि भज। ३. (क, ख) हिरदा उजल।

(१४) १. (ख, ग) माला मन की। २. (ग) ध्यांन की।

(१५) १. (क) तैं मूंड्यां, (ख) ज्युं सिध कारिज, (ग) ज्युं पंचे वस्य, (घ) वां सुं सब।

(१६) १. (क, ख, ग) जो कुछि। २. (ख, ग) जामै।

(१७) १. (खं) माथै, (ग) माथे केस। २. (क, घ) निज मन सधै न, (ख) ब्रह्म न भेटै जाय, (ग) रांम न भेट्या जाय।

(१९) १. (क) जोग जुगति विन जोगीया, (ग) हरीया जोगी जुगति विन। २. (क, ख) वाह्या बीज विन, (ख) अैसै, (ग) तन मन का परचा नही।

अथ कड़वो वेल कौ अंग ७७

हरीया कड़वी वेल का, कड़वाई फल [1]किध।
जब वेली तैं वीछड़ै, होय नांव की सिध॥ १ ॥

सिध भई तौ क्या भयौ, प्रसिध गई चहूं पास।
उदै अंकूरी बीज की, हरीया मिटी[1] न आस॥ २ ॥

रांम नांम रस वेलड़ी, जनहरीया[1] सींचंत।
ऊगै तौ हरि[2] अंस मैं, विलै[3] नही जावंत॥ ३ ॥

सिधि होती जब मैं हुता, अब[1] हम हैं सिधि नांहि।
हरीया वेल न[2] वासनां, रही न अंतर मांहि॥ ४ ॥

---

(१) १. (ग) लाय। २. (ग) सिध भई जब नांव की, वेल विछोवा थाय।

(२) १. (क) इंदर वास, (ख) औजूं अंदर वास।

(३) १. (ख) हरीया सीचंताह। २. (ख) उदैत आतम। ३. (क) निरवंस न, (ख) आंन भवे नही जांह।

(४) १. (ख) मैं हूं अब सिध। २. (ख) वेल न दोऊं। (ग) में २ से ४ तक नहीं हैं; इनकी जगह निम्न साखियाँ हैं—

वेली तैं फल वीछड़ै, बीज न होवै नास।
हरीया अंतर वासना, भी ऊगण की आस॥
वेल पुरांणी फल नवा, उदै जास अंकूर।
हरीया ऐसैं सिध की, गई वासना दूर॥
सिध सहज मै झड़ पड़ी, लगी बंधनी लाय।
हरीया फेर न ऊगई, वेली सिध जलाय॥

अथ वेली कौ अंग ७८

जड़ षिण काटी[1] लकड़ी, तौंईत कूपळ[2] काढि।
हरीया फेर[3] न पांगरै, इसी वाढणी[4] वाढि॥ १ ॥
ज्युं सींचुं त्युं ढंषरी, काटत[1] गहरी होय।
हरीया वारी वेल कुं, जास तणा गुण जोय॥ २ ॥
हरीया सब गहरा भला, ढंषर भला न कोय।
गहरा जबही जांणीयै, तब फल प्रापति होय॥ ३ ॥
धर वेली विण फूलड़ां, फल लागा असमांण।
जनहरीया जब चषीयां, और न भावै [1]षांण॥ ४ ॥

अथ माया ब्रम निरणै कौ अंग ७९

ज्युं[1] माया सुं ब्रह्म है, ज्युं[2] काया सुं जीव।
जनहरीया [3]जोय अंतरै, पाया[4] जीव'र सीव॥ १ ॥

---

(१) १. (ग) ज्युं ज्युं जाळूं। २. (क, ख) कूंपळ, (ग) त्युं त्युं कूंपळ। ३. (ग) वेल न तूं बडी। ४. (ग) जब जड़ सेती।
(२) १. (ख) वाळ्यां।
(४) १. (क) षाय रह्या ठहपांण, (ख) ठहरयौ षातां पांण। (ग) में २ से ४ तकके स्थानपर ये साषियाँ हैं—
हरीया मै इस वेल कुं, बलिहारी के वेर।
आगै दौं पीछै हरी, जड़ काट्यां फल फेर॥
हरीया सुगणी वेल का, केताई गुण अंग।
ज्युं काटूं ज्युं रंग द्यै, सीच्यां होय विरंग॥
धर वेली असमांन फल, पांन फूल विण छाय।
हरीया चष विण निरषणौ, मुष विण वैठौ षाय॥

---

(१) १. (ग) माया सेती, (घ) यौ। २. (ग) काया सेती। ३. (क) निर, (ख, ग) हरीया माया (दोउं), (घ) जब। ४. (ख) काया, (ग) जीव भया जब।

माया ओलै[1] ब्रह्म है, आकारे निरकार।
जनहरीया जोय[2] जुगति सुं, न्यारा[3] दिल दीदार ॥ २ ॥

माया जब काया षड़ी, काया जब लग जीव।
हरीया जीव'र सीव[1] का, मेला[2] कैसैं थीव ॥ ३ ॥

काया माया[1] कारवी, जैसैं करवा जांनि।
जनहरीया[2] भागां पछै, चाक न चढ़िसी आंनि ॥ ४ ॥

जिन जलती भांडा [1]कख्या, करत न लाई वार।
हरीया वाकुं [2]सिवरीयै, आदि[3] अंत का यार ॥ ५ ॥

काया छाया एकठी, ज्युं माया सुं ब्रह्म।
हरीया [1]न्यारा जांणिसी, जिन[2] पाई गुर गम ॥ ६ ॥

---

(२) १. (क) मांही, (ख, ग) ज्युं माया सुं। २. (क, ख, घ) हरीया देषै (जोगी) (देष्या), (ग) हरीया निसचै जांणीयै। ३. (क) जब, (ख) जब देषै, (ग) पावै जब।

(३) १. (क, ख) सीव मिल। २. (क) न्यारा कबू न, (ख) अब अजरामर। (ग) में यहाँपर निम्न साषियाँ हैं—

माया मैं माया मिली, काया मटीया मांहि।
हरीया हंसा कहां गया, निजरां आया नांहि ॥
माया का घर मंन है, है मंन का घर कांम।
हरीया है घर संत का, रांम नांम विसरांम ॥

(४) १. (ख, ग) हरीया काया। २. (ख) भी करवा, (ग) तन करवा।

(५) १. (क, घ) कीया। २. (ख, ग) जनहरीया (हरिरांमा) वाकुं भजौ। ३. (क, ख, घ) सब का सिरजणहार, (ग) दूजा तजौ विकार। (ग) में इसके पश्चात् ये साषियाँ अधिक हैं—

ज्युं करवा कुंभार का, ले तन अगनि जलाय।
अब जल सेती ना मिलै, ठमका सह्या न जाय ॥
एक ठमंका जगत का, मटीया आंण्या मोल।
एक ठमंका गुर दीया, जाका मोल न तोल ॥

(६) १. (क) न्यारा सोई। २. (क) जनहरीया।

हरीया [1]चलतां सुं चलै, थिर सेती थिर होय।
काया बंधी करम [2]सुं, छाया लिपै न कोय॥ ७ ॥

माया जोड़ौ ब्रह्म सुं, छाया जोड़ौ देह।
काया माया जावसी, हरीया देषंतेह॥ ८ ॥*

ससतर सुं नहीं छेदीयै, पावक [1]लगै न सीत।
हरीया अैसी[2] ब्रह्म की, उद बुद[3] कहीयै रीत॥ ९ ॥

रहता नारि न पुरुष है, रहैं न तेउं[1] लोय।
रहता एको ब्रह्म[2] है, हरीया[3] सब घट सोय॥ १० ॥

रहता सोई जांणीयै, रहता सुं मिल जाय।
हरीया रहता [1]रांम विन, काळ [2]घरासै आय॥ ११ ॥

---

(७) १. (क) चाल्यां, (ख, ग) चलतां सेती चलत है, (घ) जन-हरीया चाल्यां। २. (ग) हरीया काया करम है।

(८) * (क, ख, ग) में यह साषी निम्न रूपसे है—

(क) हरीया छाया ब्रह्म ज्युं, ज्युं माया ज्युं देह।
काया माया ब्रह्म विन, जासी देषंतेह॥

(ख, ग) ज्युं छाया ज्युं ब्रह्म है, ज्युं माया ज्युं देह।
देही वार न विणसतां, छाया अछेदेह॥

(९) १. (ग) जलै। २. (क) अणभै, (ग) हरिरांमा है। ३. (क, घ) अैसी उद बुद रीत, (ख) अणभै अदभुत, (ग) आदू अणभै।

(१०) १. (ख, ग) लब चौरासी, (घ) तीनुं। २. (ख, ग) हरीया रहता रांम है। ३. (ख, ग) सब घट व्यापक सोय।

(११) १. (क, ख) नांव, (ग) बाहिरो। २. (अन्य) ग्रामै।

अथ वेहद कौ अंग ८०

हरीया हदि आसामुषी, ताहि न करीयै हेत।
वेहद वास निरास [1]घर, ताकुं[2] तन मन देत॥ १ ॥

के वांवा के [1]दांहिणा, हदि बौह मारग होय।
जनहरीया [2]इन वीच मैं, भटकि मूंवा नर [3]लोय॥ २ ॥

हरीया हदि का जीव [1]कुं, वेहद की गम नांहि।
कीड़ी केरै नाळ ज्युं, के[2] आवैं के जांहि॥ ३ ॥

हरीया हदि[1] कुं छाडि कै, वेहद पुंहता जाय।
दिल[2] दरगै दीवांन मैं, धका न धूंमी[3] काय॥ ४ ॥

हदि छाडि वेहद भया, हरीया रांम हजूर।
अषंड उजाळा गैब का, निसा न ऊगै सूर॥ ५ ॥

---

(१) १. (ग) मंन। २. (क, घ) अंतर, (ख) वाकुं अंतर, (ग) तिनकुं अंतर देत।

(२) १. (ख, ग) जीवणा। २. (ख) हरीया वाकै, (ग) हरीया वेहद। ३. (क, ख) पारि न पुंहता (पुंहचै) कोय, (ग) दूजा राह न कोय।

(३) १. (क) जनहरीया हदि वीच मैं, (ख, ग) हरीया हदि मैं आय कै। २. (क) एकावैं एक जांहि, (ग) आंवण जांवण करि गया, लष चौरासी मांहि।

(४) १. (क) जनहरीया हदि छा०। २. (क, ख) वा (वांह)। ३. (क, ख) धूबी। (ग) में यहाँ ये साषियाँ हैं—

हरीया हदि न पाईयै, वेहद रांम तीयार।
हदि वेहद कुं जांणिकै, रांम नांम हुसीयार॥
हदि छाडि वेहद गया, दरगह बैठा जाय।
हरीया उंनि दरगाह मै, मेल्या आतिम राय॥

हदि का रता हदि मैं, वेहद का वेहद ।
हरीया वेहद [1]पाय कै, हदि भई सब रद ॥ ६ ॥

हदि सुं जांणै दूरि [1]हरि, वेहद [2]ठावौ ठीक ।
हदि वेहद की सुधि [3]हुय, हरीया[4] रांम नजीक ॥ ७ ॥

हरीया वेहद कै[1] घरां, नही[2] हदि की आस ।
संसा सोग न ताप[3] तन, नांव निरासा [4]वास ॥ ८ ॥

जनहरीया वेहद [1]घरां, घन अनहद [2]की घोर ।
वाजा राग [3]अपंग धुनि, एक अषंडी टोर ॥ ९ ॥

जनहरीया हदि [1]मैं घणा, सुष दुष[2] भरम संनेह ।
वेहद कांम न कलपना, अति आनंद[3] अछेह ॥ १० ॥

वेहद कांठै घर कीया, निज सुष पाया नांम ।
हरीया भागी भरमना, भया[1] सकल सिध कांम ॥ ११ ॥

---

(६) १. (ख, ग) हरीया रता वेहदी ।

(७) १. (क) हदि सुं हरि नैड़ा नही, (ख, ग) हदि मांही (सेती) हरि को कठै । २. (क, ख) की नही । ३. (क) हरीया हदि वेहद लहै, (ख) ठीक करि, (ग) पाय गम, (घ) पाय सुधि । ४. (क) जासुं ।

(८) १. (क) जनहरीया वेहद, (ग) पायकै । २. (ग) छोडी । ३. (क) हरष दुष, (ख) सुष दुष संसा को नही, (ग) वांहां सुष दुष सांसा नही । ४. (क, ख) जुरा न जम का फास, (ग) जनम न मरणा जास ।

(९) १. (ख, ग) हरीया वेहद कै घरां । २. (ग) अनहद की घनघोर । ३. (क) छतीस, (ख, ग) वीणा ताल मृदंग विन (धुन) ।

(१०) १. (ख, ग) हरीया हदि मांही । २. (ग) आडा । ३. (ग) आतिम सुष ।

(११) १. (क) सब्या, (ग) मन आया ठिक ठांम ।

चित चंचल निहचल भया, पूरी मन की आस।
जनहरीया [1]हदि छाडि कै, वेहद कीन्हा वास॥ १२॥

हदि वैठा हदि की कहै, वेद पुरानां वाचि।
हरीया वेहद [1]वावरा, रह्या रांम सुं राचि॥ १३॥

जनहरीया वेहद कथा, किन्ह[1] सुं कहीयै वोलि।
महरंम आगै [2]दाषीयै, दिल[3] का पुसतक षोलि॥ १४॥

वचन सुन्या वेहद का, हदि न आवै दाय।
हरीया [1]सुन्य मैं सांईयां, तां सु[2] ध्यांन लगाय॥ १५॥

सुरति वसी वेहद मैं, हरीया एक [1]अभंग।
पड़ै पुड़ंग[2] तांह पेम की, नष चष भीना [3]अंग॥ १६॥

हरीया अनहद सवद की, तार न[1] कवहु तूटि।
घोर सुणंत[2] है गिगन मैं, सुर वाहरिं नही[3] फूटि॥ १७॥

---

(१२) १. (ग) हरीया और न चाहीयै, जीव पीव कै पास।

(१३) १. (ग) हरीया वेहदि यु कह्या, रांम नांम सुं राचि।

(१४) १. (क, ख) किनी न। २. (ग) सहज ग्यांन गुन उचरै। ३. (ख) धिल।

(१५) १. (ख, ग) मुषविन (अंदर) बोलता। २. (ख) तांह लिव, (ग) सुरति रही ठहराय।

(१६) १. (ख) अषंड, (ग) कवहु षंडै नांहि। २. (ख) पुड़ंगां पेम की, (ग) हरीया अनहद सवद की। ३. (ख) विण वादल व्रहमंड, (ग) तार लगी तन मांहि।

(१७) १. (क, ख, घ) कवू नही। २. (क, ख) पड़त। ३. (क) सवद न वाहिर।

हरीया हदि का[1] जीवड़ा, ता कुं[2] धका अनंत ।
जांह गुर पाया वेहदी, ले निर वांण [3]चड़ंत ॥ १८ ॥

जनहरीया[1] हम कुं कह्या, सतगुर ऐसा[2] दाव ।
हदि का पासा छाडि दे, वेहद [3]सांम्हा आव ॥ १९ ॥

हरीया हदि सागर तणौ, थग थोड़ौ थारेह ।
जुग सारौं तिसीयौ फिरै, जल वूठौ पारेह ॥ २० ॥

वेहद सुष सागर भर्‌यौ, पंथ न पग पारेह ।
हरीया हरिजन पीवसी, हदि सुं हुय [1]न्यारेह ॥ २१ ॥

वेहद कुं पुहचै नही, हरीया हदि के लोक ।
तन तौ माटी मैं मिल्यौ, मनग्यौ सांसै सोक ॥ २२ ॥

॥ इति श्री अंग समाप्त ॥

---

(१८) १. (ग) उरवार है । २. (क) मैं, (ख, ग) जामैं । ३. (ग) पैलै पारि करंत । (ग) प्रतिमें यह साषी अधिक है—

हरीया हदि मै रांम कुं, दूरि दिसंतर जोय ।
सतगुर ती सोझी परी, हरि अंतर नही कोय ॥

(१९) १. (ख, ग) हरीया गुर । २. (ख, ग) सत सब्द का (सा) । ३. (क, ग) की दिस ।

(२१) १. (ख, ग) धुनि अंतर (एको) धारेह ।

अथ परसंग लिष्यते

अथ गुर सिष कौ प्रसंग * १

साषी

सिष सतगुर पैं जाय कै, चरण नवाये[1] सीस।
जनहरीया सतगुर कीया, चेला रांम वरीस ॥ १ ॥

सिष सेती सतगुर कहै, परापरी की[1] रीत।
और भरम कुं छाडि दे, रांम नांम सुं[2] प्रीत ॥ २ ॥

सिष मन कौ नाळेर करि, ले गुर चरनां चाढि।
हरीया सतगुर देत है, अपना अंतर काढि ॥ ३ ॥

अंतर जीसकु दीजीयै, हरीया अंतर[1] देह।
आपा अंतर[2] बाहिरौ, जासुं[3] किसा संनेह ॥ ४ ॥

हरीया भेद न दीजीयै, वाकै अंतर षोट।
तन तैं नांन्हा हुय मिलै, मन तैं वडम मोट ॥ ५ ॥

हरीया तन का क्या दीया, जौ मन दुविध्या आंनि।
तन मन भीतरि एक है, ताहि दीया सब जांनि ॥ ६ ॥

---

* (ख) परसंग। (ग) प्रतिमें प्रसंग नहीं हैं, कुछ प्रसंगोंकी साषियाँ 'छूटक साषी' में आई हैं, उनका पाठभेद प्रसंगानुसार प्रसंगोंमें दे दिया गया है।

(१) १. (क, ख, ग, घ) नवाए।
(२) १. (ख) परि पूरबली, (ग) रांम नांम की।
२. (ग) दूजा भ्रम कुं दूरि करि, एक राषि परतीत।
(४) १. (क, ख) हरीया अंतर दीजीयै, आपा तन मन। २. (क) तन मन, (ख) तन मन विन दीयां। ३. (ख) वासुं।

ताहि[1] दीया सब जांनीया, आपा[2] अंतर साच।
हरीया कबहु मुष तैं, असत न अषै वाच॥ ७॥

मुष तैं मींठा बोलणा, अंदर[1] भरीया षार।
वाकै[2] कूड़'र कपट का, हरीया[3] वौह [4]वौहवार॥ ८॥

हरीया तन हरि का दीया, मन हरि कै नही हाथि।
मन कुं गुर परमोधि कै, दई नांव सी आथि॥ ९॥

वा[1] गुर कुं क्या [2]अरपीयै, दीजै अपनौ मंन।
मन कै पूठै सब दीया, हरीया तन'र [3]वचंन॥ १०॥

मन को देबौ दुलभ है, जे कोई मन कुं देत।
जनहरीया [1]मन देत है, तन करि[2] जांनै रेत॥ ११॥

मन मेरा सेवग भया, लगा सबद गुर कांन।
रोम रोम मैं भिद गया, हरीया किधू न जांन॥ १२॥

दास भाव सबही कीया, दीया मन अर तंन।
हरीया पीछै क्या रह्या, पाया गुर [1]दरसंन॥ १३॥

हरीया गुर दरसन कीयां, कटैं कोटि अपराध।
सोई निसदिन [1]धन घरी, होय समागम साध॥ १४॥

साध समागम सफल है, हरीया तन मन जांनि।
अैसा[1] वाहै बीज कु, जैसा[2] लुणसी आंनि॥ १५॥

---

(७) १. (ख) जिन्हां। २. (क, ख) वाकै अंदर, (घ) वाकै।
(८) १. (क) इंदर, (घ) अंतर। २. (ख) हरीया। ३. (ख) वाकै। ४. (क, ख, घ) वहवार।
(१०) १. (ख) या। २. (ख, घ) दीजीयै। ३. (ख) अर धन।
(११) १. (ख) हरीया सोई। २. (ख) कुं।
(१३) १. (घ) गुर दरसन परसन।
(१४) १. (क, ख, घ) धिन।
(१५) १. (क, घ) जैसा। २. (क, घ) तैसा।

हरीया गुर का सत सबद, साचै मन सुं धारि।
भवसागर मैं डूबतां, लेसी पारि उतारि ॥ १६ ॥

जनहरीया[1] गुर आपनै, सबद कह्या समझाय।
दूजा भरम'र करम कुं, पलमां देह वहाय ॥ १७ ॥

हरीया जैमलदास गुर, रांम निरंजन देव।
काया देवल देहरौ, सहज [1]हमारै सेव ॥ १८ ॥

चन्द्रायणौ

सतगुर का सिष जांणि, विचारै ग्यांन कुं।
तन मन सौंपै[1] सीस, धरै उर ध्यांन कुं ॥
निसदिन सिवरै रांम, कबु नही भूल रे।
हरिहां दास कहै हरिरांम, ताहि नही तूल रे ॥ १९ ॥

अथ सिकैसाल कौ प्रसंग २

सतगुर का सिष जांणीयै, एक अटंकी साल।
हरीया देषत पारषु, नांव न धरै[1] दुसाल ॥ १ ॥

जांणि सिकै कुं पारषु, करै असुधि सुं सुधि।
हरीया हरि अंतर[1] लहै, अैसैं[2] उपजै बुधि ॥ २ ॥

---

(१७) १. (क, ख) हरीया मिल।
(१८) १. (क, ख) आतमरांमा।
(१९) १. (घ) अरपै।

---

(१) १. (ग) कोय न कहै।
(२) १. (ख) जनहरीया अैसैं, (ग) जनहरीया जो हरि। २. (ख) आतम, (ग, घ) अैसी।

जित सिका पतिसाह का, तेती[1] वरतै आंण।
जनहरीया सतगुर[2] सिका, एती धर असमांण॥ ३ ॥

और सिका [1]किस कांमका, सो दुनीयन का देष।
नांव सिका सतगुर दीया, हरीया[2] रूप न रेष॥ ४ ॥

हरीया गुर[1] सोनी भया, सिष कंचन की षांनि।
ग्यांन अगनि तन ताव दे, जो होता सो जांनि॥ ५ ॥

जो होता सो [1]जांनीया, कंचन काच न होय।
हरीया सिकाज नांव का, नांव न लेसी[2] कोय॥ ६ ॥

❀ अथ च्यार असथांन सिवरन मेध्या प्रसंग ३

रांम रांम[1] रसनां लीया, मास दोय विसरांम।
हरीया हिरदै कंठ[2] मैं, सागर वरस मुकांम॥ १ ॥

प्रथम रसनां असथांन सिवरन

हरीया रसनां[1] सिवरीयै, रांम नांम कुं नित।
आपा देषौ[2] उलटि कै, चंगा राषौ चित॥ २ ॥

---

(३) १. (क) तेथी, (ख, ग) जेती । २. (क, ख) गुरका, (ग) सतगुर का सिका जिती।

(४) १. (ख, ग) कुंण। २. (क, ख, घ) वाकै, (ग) जाकै।

(५) १. (ग) सतगुर तौ।

(६) १. (क, ख, ग) जांणीया। २. (ख) लेवै, (ग) जनहरीया परसिर मिल्या, सतगुर सिष न दोय।

---

* (ख) अथ च्यारि चौकी सिव०। (ग) 'छूटक साष' में 'सिवरन मेध्या' नामसे है। (घ) रसना असथान सिव०।

(१) १. (ख, ग, घ) नांम। २. (घ) विच।

(२) १. (क, ख) रसनां सेती। २. (क, ख) हरीया तन मंन।

रांम नांम का कीजीयै, आठुं पौहर उचार।
हरीया बंदीवांन ज्युं, करीयै कूक पुकार ॥ ३ ॥

आठ पौहर अहिनिस[1] घरी, एको नांव धरंत।
हरीया जब तब जांणीयै, सांई साद सुणंत ॥ ४ ॥

हरीया सिवरत रांम कुं, ढील करौ मत [1]कोय।
सासो सास संभारतां, जो कुछि करै'स [2]जोय ॥ ५ ॥

हरीया रसनां रांम कुं, सिवरौ सैंनां[1] सैंन।
और[2] अमंथ्या जांणीयै, हरि विन निकसै वैंन ॥ ६ ॥

दुतीयै कंठ असथांन सिवरन

रांम नांम कुं सिवरतां, पेम परगटे[1] आंनि।
जनहरीया धुरि कंठ मैं, जांह लागा[2] मन जांनि ॥ ७ ॥

गलै गिळगळी होत है, वा का अधिक[1] निवास।
जनहरीया भेदी विनां, भेद न जांणै जास ॥ ८ ॥

गद गद सिवरन कंठ मैं, इंमृत की सी[1] धार।
जनहरीया पीवत रहौ, छाडौ विषै[2] विकार ॥ ९ ॥

---

(४) १. (घ) चौसट। (ख) में यह नहीं है।
(५) १. (क, ख) हरीया रसनां रांम कुं, सिवरौगे सब लोय।
२. (क, ख, घ) होय'स होय।
(६) १. (ख) दिन अर रैंन। २. (ख) सोई मथ्या।
(७) १. (क) पेमज प्रगट्या, (ख) पिलासा ठांनि, (ग) पियासा ठांनि, (घ) पहल पेम कुं ठांनि। २. (ख) मन लगा, (ग) मन राषौ।
(८) १. (ख) सुषम, (ग) वामै सुषम, (घ) ईधक।
(९) १. (क, ख) वाकी इंमृत, (ग) वाकी अमी फुहार। २. (ग) और।

एक अषंडी होत है, भवर पंष भणकार।
हरीया पीछै [1]जांणीयै, अनंत अनंत परकार ॥ १० ॥

श्रवनां भीतरि सुनत है, धुनि मुरली की टेर।
जनहरीया[1] मन विगसीया, आगै हुलस्या फेर ॥ ११ ॥

तीसरै ह्रदै असथांन सिवरन

दीपक दे[1] मिंदर वड्या, नांना तिवर नसाय।
हरीया[2] ग्यांन प्रकासीया, उर अग्यांन मिटाय ॥ १२ ॥

भगति[1] भांवना [2]आप सु, और वकै नही ग्यांन।
जनहरीया हिरदै [3]वस्या, नांव[4] निरंतर ध्यांन ॥ १३ ॥

रांम नांम कुं [1]सिवरतां, सहजां[2] सासा होय।
जनहरीया गम सों [3]लहै, जा घट उपजै[4] सोय ॥ १४ ॥

उर भीतरि[1] लागी रहै, प्रीत पीया सुं नित।
जनहरीया[2] छाडु[3] नही, ज्युं चंद कमोदिन चित ॥ १५ ॥

चतुरथै नाभ असथांन सिवरन

हरीया नाभी वीच मैं, नव दिन कीया मुकांम।
चेतन सेती यारीयां, चित चवथै [1]ठांम ॥ १६ ॥

---

(१०) १. (क, ख, ग) जनहरीया वाकै (ताकै) पछै।
(११) १. (ख) हरीया जांह।
(१२) १. (क) ले। २. (क, ख, ग) ग्यांन रिदै परका (ग) सीया।
(१३) १. (क, ख, ग) अरथ। २. (ख) एक सुं। ३. (क, ख, ग) लग्या। ४. (ख) रांम नांम का, (घ) नांव निरंजन।
(१४) १. (ग) रांम नांम रसनां रटै। २. (क) सासो, (ख) सासा सिवरन। ३. (क) जनहरीया हिरदै वसै, (ख) हरीया हिरदै वीच मैं, (ग) जनहरीया इन भेद कुं। ४. (क) जा सुष जांणै, (ख) महरंम जांणै, (ग) चीनै विरला कोय।
(१५) १. (ग) हरीया उर। २. (ख, ग) यु निसदिन। ३. (घ) छाडै।
(१६) १. (ग) उलटा मन असमांन कुं, सुनि वसाया गांम।

सहज कला जागी सबै, तन मन वचनां सास ।
जनहरीया इंदर[1] कथा, वेद न जांणै व्यास ॥ १७ ॥

ओउं सोउं सबद की, सहजां सुणी अवाज ।
जनहरीया इन[1] ऊपरैं, ररंकार का राज ॥ १८ ॥

ओउं सोउं सबदी की, तीन लोक लग सोय ।
एक सबद ररंकार का, हरीया पार न[1] कोय ॥ १९ ॥

रांम रांम[1] रसनां[2] रटै, सोई जुग मैं साध ।
हरीया सिवरन सहज का, वाका मता अगाध ॥ २० ॥

रोम रोम ररंकार की, महमा कही न जाय ।
जनहरीया सुष[1] सहज कुं, भाग विनां नही पाय ॥ २१ ॥

नव दिन नाभी ध्यांन कौ, विवरौ देह वताय ।
जनहरीया ररंकार[1] सुं, सहजां[2] ताळी लाय ॥ २२ ॥

सहजां ताला षूलही, सहजां कूंची लाय ।
हरीया अैसैं[1] सहज[2] कुं, सतगुर सबदां[3] पाय ॥ २३ ॥

---

(१७) १. (ख, ग) अंदर, (घ) अंतर ।
(१८) १. (ग) हरीया याकै ।
(१९) १. (ग, घ) जनहरीया ररंकार का, आर पार नही कोय ।
(२०) १. (क, ख, ग, घ) नांम । २. (ग) भजै ।
(२१) १. (क) इन सुष कुं, (ख) हरीया अैसै सुष कुं, (घ) हरीया सिवरन सहज का ।
(२२) १. (ग) निरकार । २. (ख) तन मंन, (ग) सुनि मै ।
(२३) १. (क, ग, घ) जनहरीया इन, (ख) जनहरीया सुष । २. (ग) भेद । ३. (क) सेती, (ग) गुर घट मांहि वताय ।

इक डंकी रसनां चलै, यु इक डंकी[१] ढोल।
हरीया इन कौ सबद[२] सुनि, रसनां[३] सुनत न बोल ॥ २४ ॥

ढोल वजायां [१]वजई, विण[२] वायां अटकंत।
हरीया[३] रसनां सबद[४] कुं, सहजांई[५] सिवरंत ॥ २५ ॥

संग ढिकूली ले चली, कोस कूंप कै मांहि।
भौंन सताबी फिरत है, यु[१] रसनां मुष मांहि ॥ २६ ॥

भौंन सताबी फिरत है, देषत है सब लोय।
हरीया सिवरन सहज का, ताहि[१] लषै नही कोय ॥ २७ ॥

ज्युं जल सेझै सिंध का, वाका थाह न कोय।
हरीया[१] सिवरन सहज का, निसदिन[२] घट मैं होय ॥ २८ ॥

अथ तन मन वाच गुर कौ प्रसंग ४

हरीया तन अर मन वचन, चौथौ गुर कौ ग्यांन।
नांव निरंतर पाईयै, धरीयै अंतर ध्यांन ॥ १ ॥

तन तैं सहजां नाचिबौ, मन तैं सहजां ध्यांन।
सिवरन सहजां वचन तैं, हरीया गुर तैं ग्यांन ॥ २ ॥

---

(२४) १. (क) ताळी। २. (क, ख, ग, घ) इन (वा) (या) कौ सुर श्रवनां सुनै। ३. (क) वाकौ, (ग) ऊ परगट नही बोल।

(२५) १. (ख, ग) वजही। २. (ग) ताकौ सुर तुटंत। ३. (घ) घट मैं। ४. (क) रांम कुं, (ख, ग) सिवरन सहज का। ५. (ग) हरीया अषुटंत।

(२६) १. (क) यु हरीया रसनां मांहि, (ग) ज्युं।

(२७) १. (ग) वाकु लषै न।

(२८) १. (ख) छेझै। २. (ख) हरीया।

सहजां तन मन वचन तैं, सिवरन ध्यांन न नाच ।
जनहरीया[1] गुर ग्यांन विन, सुधि बुधि लहै न साच ॥ ३ ॥

हरीया तन का मन वचन, का गुर हीना [1]होय ।
इतौ[2] सही कर जांनीयै, वटौ[3] भगति मैं जोय ॥ ४ ॥

हरीया[1] तन मन वचन [2]तैं, जबलग[3] निसचै नांहि ।
गरू न भांजै भरम कुं, दोष किसौ सिष मांहि ॥ ५ ॥

हरीया तन मन वचन की, सारी सौंज[1] मिलाय ।
चौथौ गुर कौ ग्यांन मिल, भगति भरोसौ [2]थाय ॥ ६ ॥

उदै अंधारा चष विन, ऐसैं गुर विन ग्यांन ।
हरीया तन मन वचन विन, कैसैं[1] धरीयै ध्यांन ॥ ७ ॥

हरीया तन मन वचन का, भरम करै गुर दूर ।
जब निसचै[1] करि जांणीयै, पारब्रह्म भरपूर ॥ ८ ॥

अथ जालंधरबंध उतांनपात कौ प्रसंग ५

ध्यांन धसै नही धरनि कुं, द्वार गिगन तैं होय ।
जब जालंधरबंध कु, हरीया लखै[1] न कोय ॥ १ ॥

---

(३) १. (ख, ग, घ) हरीया गुर का ।
(४) १. (ग) हरीया तन मन वचन गुर, इनमै जो कोई हीन ।
२. (क) ए तौ सति । ३. (ग) भाव भजन सुं षीन ।
(५) १. (घ) अंतर । २. (ग) मै । ३. (ग) आतिम, (घ) हरीया ।
(६) १. (घ) सुंज । २. (ग) मुगति फल पाय ।
(७) १. (ख, ग) धरै न हरि का ।
(८) १. (ग) सो निसचै पावै सही, (घ) निश्चै ।

---

(१) १. (क, घ) लहै ।

है जालंधरबंध मैं, मन पवनां की गांठि।
हरीया मिले उतांन मैं, सुरित सबद की सांठि ॥ २ ॥
सुरति सबद मन पवन कुं, पबां[1] पछिम मिलाय।
जनहरीया आकास का, रह्या अधर[2] घर छाय ॥ ३ ॥

अथ आकास मध्य प्याल* को प्रसंग ६

आकासे मध्य प्याल [1]कुं, उलट पलट[2] मन फेर।
वास[3] कीया अमरा पुरी, जनहरीया चढ़ि मेर ॥ १ ॥
आकासे छिन छिन चरु, छिन पाताले जाय।
हरीयै पाया अगम[1] घर, काळ न पुंहचै आय ॥ २ ॥
पाताले पाताल सुष, आकासे आकास।
हरीयै पाया[1] परम सुष, दंद न कोई[2] फास ॥ ३ ॥

अथ सहज सबद को प्रसंग ७

सहज सबद सैं ऊपजै, सबद सहज कै मांहि।
हरीया सहजां सबद ले, सबद सहज मिल जांहि ॥ १ ॥

---

(३) १. (ख) पूरब। २. (क) एक अषंड।
* (ख) प्रतिमें 'पताल'।

---

(१) १. (ग) आकासे पाताल विच। २. (क, ख) उलटा निज।
३. (ग) जनहरीया जहां घर कीया, अणभै अवचल मेर।
(२) १. (ग) हरीया बैठै सहज।
(३) १. (क) हरीया मेरै, (ख, ग) हरीया मेरै एक। २. (क) वामै दंद न, (ख) दूजा दंद न, (ग) कीया अपंपर वास।

हरीया सहजां सबद[1] ले, मिले ओत अर पोत।
दूजा सुष दुष को [2]नही, एको आनंद[3] होत॥ २ ॥

हठ इन्द्री निग्रह करै, जोग जप तप ग्यांन।
हरीया सहजां सबद का, रंच न पावै घ्यांन॥ ३ ॥

रांम रांम[1] रटता रहै, दूजी धरै न [2]आस।
हरीया सहजां सबद का, जब घर पावै दास॥ ४ ॥

अथ देवल तीरथ साध कौ प्रसंग ८

देवल तीरथ साध कुं, निकट न जांणै कोय।
जनहरीया [1]जब दूरि [2]तैं, सुनि सुनि [3]महमा होय॥ १ ॥

देवल तीरथ दूरि तैं, जुग सौह आवै जात।
हरीया जुग मैं साध की, विरला बूझै बात॥ २ ॥

देवल तीरथ कुं दुनी, जावै देषा देष।
हरीया [1]पूजै साध कुं, वाकै[2] ग्यांन बमेष॥ ३ ॥

---

(२) १. (ग) हरीया निज मन सहज मै। २. (ग) वाहां दुष दंद न व्यापही। ३. (क, ख, ग) नित (एक) (सदा) आनदी।

(४) १. (क) नांम रसनां रटै, (ख) नांम। २. (ख) आसा छाडि निरास।

---

(१) १. (क, ख) कहै, (घ) भूय। २. (ख) सैं।
३. (ग) हरीया देवल धांम की, दूरै महमा होय।

(३) १. (घ) बंदै। २. (ख) जाकै।

हरीया परषत जौंहरी, नग नैणां सु जोय।
सबद साधका दूरि [1]तैं, सुणतांई गम होय॥ ४ ॥
सबद सुणै जब साध का, भेदी परषै[1] सोय।
हरीया भेदी बाहिरौ, बात न बूझै कोय॥ ५ ॥

अथ तत मत कौ प्रसंग ९

हरीया रता तत का, मत का रता नांहि।
मत का रता से फिरै, तांह[1] तत पाया[2] नांहि॥ १ ॥
हरीया तत विचारीयै, क्या मत सेती कांम।
तत बसाया अमरपुर, मत का जमपुर धांम॥ २ ॥

अथ काल वंचन कौ प्रसंग १०

हरीया गति अवगति की, मो पैं लषी न जाय।
आया[1] मरि मरि जात है, अमर कोय न थाय॥ १ ॥

---

(४) १. (ख) सैं।
(५) १. (घ) परषत।

---

(१) १. (ख) वांह।
२. (ग) जो है रता मत का, तत का रता नांहि।
हरीया मता तत विन, जा कुं जम ले जांहि॥

---

(१) १. (क) जाया,
(ख, ग) हरीया माया रांम की, मो पैं लषी न जाय।
मूवां न दीसै जीवतां, जीवै सो मरि जाय॥

काल किसी सारै नही, मारै [1]सुलटी मूंठ।
हरीया हरिजन[2] ऊबरै, उलटि[3] चड़े वैकूंठ ॥ २ ॥

हरीया वंचौ काल सुं, गहौ सबद की ओट।
नही तौ सिर पर ले चले, भरम करम की पोट ॥ ३ ॥

सोरठौ

भरम करम की पोट, हरीया गुर तैं ऊतरैं।
टारै जम की चोट, रांम नांम सिवराय कै ॥ ४ ॥

अथ सुष दुष कौ प्रसंग ११

जनहरीया[1] संसार [2]मैं, सुष दुष दोऊं[3] झूठ।
जब तैं सुष अर दुष गिनै, तब हरि तैं [4]वेपूठ ॥ १ ॥

हरीया आपौ उलटि कै, तन मन [1]षोजौ मांहि।
सुष दुष दोऊं[2] देह का, नर[3] कुछि तेरा नांहि ॥ २ ॥

दुष सुष सीरी जिंद का, जिंद न तेरी थीव।
हरीया तेरा रांम है, जासुं मिलग्या जीव ॥ ३ ॥

---

(२) १. (ग) सुंघी। २. (क) हरि तैं, (ख) रांम सबद सुं, (ग) हरीया गुर परताप तैं। ३. (ग) डाकि।

---

(१) १. (क, ख, ग) हरीया सब। २. (ग) का। ३. (ग) झूठा जांनि। ४. (ग) आपनपौ न पिछांनि।

(२) १. (ख) मन पतिआवौ, (घ) अंतर। २. (घ) सीरी। ३. (क, ख) इनमैं।

अथ सुरित सुन्य कौ प्रसंग १२

सुरित [1]सुनि मैं संचरी, अनहद करी अवाज।
हरीया तन मन वचन[2] तैं, सारै नित[3] निवाज॥ १ ॥

सुरित सीप [1]सुनि समंद मैं, निज कण मोती होय।
जनहरीया [2]हंसौ चुगैं, आस न दूजी कोय॥ २ ॥

अथ सुरित सबद कौ प्रसंग १३

हरीया अपनै पीव सुं, जाय मिली कर जोरि।
आडा अंतर को नही, ज्युं गुडीयन की डोरि॥ १ ॥

सोरठौ

हरीया गुडीयन डोरि, कब तूटै कब संधीयै।
सुरित सबद सु जोरि, कहुं काळ तूटै नही॥ २ ॥

साषी

करम उतरै धरम सुं, नांव लीयां जम डंड।
हरीया सुरित न उतरै, लागी[1] एक अषंड॥ ३ ॥

---

(१) १. (ख) सुन्य, (ग) सबद। २. (ग) वीचमै। ३. (ग) सहज।
(२) १. (क, घ) सुन्य। २. (क, ग, घ) हरीया जन हंसा।

(३) १. (ख) सुरित न षंडै सबद सुं, हरीया एक अषंड।

अथ रांम रस कौ प्रसंग १४

गिगन कूंप मुष उरध का, सहजां चूल्है [1]दाट।
हरीया भरीया[2] नीसरैं, हरि रस हंदा माट॥ १ ॥

हरीया हरि[1]रस पीव करि, पी पी भया मगंन।
मैं अर मेरै [2]यार की, लागी एक लगंन॥ २ ॥

हरीयै पीया रांम रस, एक अषंडी धार।
वाकी इंदर[1] भीतरैं, फूट[2] रही ढेकार॥ ३ ॥

हरीयै पीया रांम रस, आठूं पौहर अभंग।
और किसी कुं [1]पावसी, करै हमारा संग॥ ४ ॥

हरीया नष चष वीच मैं, साहिब का रस मांणि।
अैसैं लाडु कंद का, जांह तांह मीठा[1] जांणि॥ ५ ॥

हरीया लाडु कंद का, स्वाद कहैं [1]सब्र षाय।
रांम रसायन स्वाद कुं, कह्यां न को पतिआय॥ ६ ॥

षायां पीयां सिवरीयां, स्वाद सकल मैं होय।
हरीया [1]कुछीयेक अंतरौ, न्यारा करि करि जोय॥ ७ ॥

---

(१) १. (घ) हाट। २. (ख) भरि भरि।
(२) १. (क) यौ, (ख) जनहरीया। २. (घ) पीव की।
(३) १. (ख, ग, घ) अंदर (तर)। २. (ग) उठत है।
(४) १. (क, ख, ग, घ) पावसुं।
(५) १. (घ) स्वाद कहै सब।
(६) १. (ख) मुष।
(७) १. (क, ख) हरीया इनमैं, (घ) जनहरीया कुछि।

षावै पीवै मुष तैं, मुष तैं सिवरै रांम।
षायां पीयां ऊपजै, सिवरयां मिटै विरांम ॥ ८ ॥

पायां पीयां मुष तैं, हरीया षड़ा सरीर।
हरि सिवरयां तैं पाईयै, हरि[1] सरवर की सीर ॥ ९ ॥

अथ हरि सरवर कौ प्रसंग १५

हरीया सरवर[1] ढूकड़ै, हरिजन[2] पीयै आय।
सूरा सती [3]तपेसरी, सकल तिसाया जाय ॥ १ ॥

हरीया सरवर ढूकड़ै, पग पग पैंडै मांहि।
सुरति विनां सूझै नही, आस पास वहि जांहि ॥ २ ॥

हरि सरवर मन मछली, पांच सषी पिणहारि।
हरीया भरि भरि [1]नीसरैं, आपौ उलटि विचारि ॥ ३ ॥

हरीया सरवर ढूकड़ै, सब ही घर घर वीच।
हरिजन[1] पी पी [2]नीसरैं, दुनीयां[3] कादौ कीच ॥ ४ ॥

---

(९) १. (ख) सुष।

(१) १. (ग) हरिसर। २. (ग) जन कोई। ३. (क) जती सती जन सूरवा।

(३) १. (ग) पीवसी।

(४) १. (ग) केई। २. (ख) नीसरया, (ग) उतरया। ३. (ग) कांही।

अथ भ्रम निसचै कौ प्रसंग १६

हरीया घट मैं घड़त है, केताई नर घाट।
आडा पड़िदा भरम का, ब्रह्म[1] न सूझै वाट॥ १॥

हरीया [1]आतम एक है, दूजा कोउ नांहि।
मन की मैं तैं मिट[2] गई, पद [3]पाया घट मांहि॥ २॥

घट मैं तारा चंद [1]रवि, घट मांहि [2]ब्रहमंड।
हरीया घट मैं रांम है, वाकी[3] जोति अषंड॥ ३॥

हरीया आवै देष[1] मै, ए तौ माया रूप।
आतम दिष्ट न मुष्ट है, अणभै अकल[2] अरूप॥ ४॥

हरीया घट मैं अघट है, वाकी ठौड़ विगट।
विन गुर गम षूल्हैं नही, भरम करम का पट॥ ५॥

भरम भूत भागां विनां, करम कटैं नही कांहि।
हरीया पडल आंषि मैं, ताका[1] तिवर न जांहि॥ ६॥

दतब तैं धन पाईयै, धरम दया तैं होय।
हरीया हरिजन और का, भरम गमावै सोय॥ ७॥

---

(१) १. (ग) ताहि।

(२) १. (ग) जनहरीया हरि। २. (क, घ) मेटकरि, (ख, ग) आसि पासि की दूरि करि। ३. (ख, ग) ज्युं पावै।

(३) १. (क, ख) रवि। २. (क, ख, ग) नव षंड। ३. (क, घ) जाकी।

(४) १. (ग) दिष्ट। २. (क) त्रिभै नांव निरूप, (ख, ग) अणभै आप।

(६) १. (ग) वाका।

हरीया तन मन वचन तैं, आतम निसचै [1]जांनि।
वाकै नित आनंद है, सोग न संसै [2]आंनि ॥ ८ ॥

जनहरीया[1] निसचै भया, भरम [2]दूसरा नांहि।
आस पास की मिट गई, आतम आपा[3] मांहि ॥ ९ ॥

जल षांनै वहि नीसरै, हरीया तेरु होय।
वहिग्यौ षांनै भरम कै, हाथ पड़ै नही कोय ॥ १० ॥

हरीया भांजै भरम कुं, सतगुर मिलै सधीर।
भवसागर मैं डूबतां, पारि उतारै तीर ॥ ११ ॥*

अथ ग्यांन अग्यांन कौ प्रसंग १७

भावै तौ गुरु ग्यांन गहि, भावै गहि अग्यांन।
जनहरीया मावैं नही, दोय षांडा इक म्यांन ॥ १ ॥

जब तैं दीपग एक था, तलि अंधारा होय।
हरीया दोय दीपग धस्था, तब सैचंदण होय ॥ २ ॥

एको[1] दीपग ग्यांन का, दूजा गुर गम थाय।
जनहरीया अग्यांन का, उर[2] अंधारा जाय ॥ ३ ॥

---

(८) १. (ख) होय। २. (ख) एक मई आनंद मैं, दूजा भरम न कोय।
(९) १. (ख) हरीया अब। २. (ख) और भरमनां। ३. (क, ख) पीव पाया घट।
(११) * (ख) इसके अनन्तर निम्न साषी और है—
हरीया भव जल तिरन कुं, संतां कीयौ उपाव।
मन षेवटीया साथि ले, सत सबद की न्याव ॥

(३) १. (ख) इक तो, (घ) एकज। २. (क) भरम, (ख) सब।

अथ ग्यांन क्रीया कौ प्रसंग १८

ग्यांन क्रीया तैं[1] ऊतरे, हरीया हरिजन पारि ।
अैसैं अंधै कंध करि, पंगौ आंनि उतारि ॥ १ ॥

अंधा पंगा देष[1] मिल, अंतर करी उपाय ।
कूंप अगनि [2]तैं ऊबरे, हरीया न्यारा[3] थाय ॥ २ ॥

पंगा सोई ग्यांन है, किरीया अंधी जांनि ।
जनहरीया मिल एकठा, मुगति भई आसांनि ॥ ३ ॥

ग्यांन विनां किरीया निकुछ, निकुछि क्रिया विन ग्यांन ।
हरीया किरीया ग्यांन मिल, यौं ही आतम ध्यांन ॥ ४ ॥

ग्यांन ब्रह्म की दिष्ट है, किरीया ध्यांन[1] सरूप ।
जनहरीया मिल [2]देषीयै, आतम तत[3] अनूप ॥ ५ ॥

ग्यांन सहत किरीया भई, मोष महापद जांनि ।
हरीया किरीया ग्यांन [1]विन, भगति भरम[2] की ठांनि ॥ ६ ॥

अथ बंध मोष करि जांनै जिन कौ प्रसंग १९

आपा बंधे आपदा, औरां सुं[1] संतोष ।
हरीया अैसै[2] नां बनी, मन माया अर मोष ॥ १ ॥

---

(१) १. (क, ख, घ) करि ।
(२) १. (क, ख) अैसैं अंधा पंग, (घ) अंधा पंग्यां एक हुय ।
२. (क, ख) दूरि (सुं टारि) करि । ३. (क, ख) निरभै ।
(५) १. (क, ख) भगति । २. (ख) एकठा । ३. (क, ख) रूप-अरूप ।
(६) १. (घ) मिल । २. (घ) भई आसांनि ।

---

(१) १. (क) सुष, (ख) कुं, (ग) परसेती, (घ) औरन कुं ।
२. (ग) या तौ ।

आपा उर[1] अग्यांनता, औरां आगै[2] ग्यांन ।
हरीया अैसी[3] ऊपजै, जैसी फलै [4]निद्यांन ॥ २ ॥

जाकै मन जैसी वसै, तैसी तन[1] वरताय ।
हरीया अैसी[2] आदि है, अंत षड़ी है [3]आय ॥ ३ ॥

अैसी इंदर[1] ऊपजै, तैसी[2] द्यै छिटकाय ।
जनहरीया उंन[3] संत कुं, दोष न लगे काय ॥ ४ ॥

अथ त्रिगुन गुन कौ प्रसंग २०

त्रिगुन तैं[1] गुन [2]ऊपजै, गुन कै त्रिगुन[3] मांहि ।
जनहरीया फल वेल तैं, फल विन वेली नांहि ॥ १ ॥

हरीया त्रिगुन मूल है, सुरगुन साषा पांन ।
भगति बीज फल मुगति है, और[1] सकल भ्रम आंन ॥ २ ॥

सोरठौ

फूल डाल तज्य पांन, एक पकड़ि रहि पेड़ कु ।
चढ़ि ऊंचा असमांन, हरीया निज फल चाहीयै ॥ ३ ॥

---

(२) १. (क, ख, ग) मन । २. (क, ग) दिढावै, (ख) सेती । ३. (ग) जनहरीया उर । ४. (क, ग, घ) निदांन ।

(३) १. (ग) तन मै होय । २. (ग) जनहरीया जो । ३. (ग) अंत फलेगी सोय ।

(४) १. (ग) अंदरि, (घ) अतर । २. (ग) जैसी । ३. (ख) मन सांफ, (ग) वौ ।

---

(१) १. (ख, ग) सेती । २. (क) उपना, (ख) थीया, (ग) भया । ३. (ख, ग) निरगुण गुण कै, (घ) गुन तैं त्रिगुन तांहि ।

(२) १. (क, ख) फल ।

साषो

केईक पांनां फूलड़ां, केईक त्रिलव्या डाल।
हरीया मूल विलंबीया, फल पाया असराल ॥ ४ ॥

चढ़ि ऊंचा फल चषीया, हाथ पाव विन [1]मुंह।
हरीया त्रिगुण रूंषड़ौ, कहि[2] गुण मांहि किसुंह ॥ ५ ॥

सुगुणां मा सुगुणौ[1] सिरै, रूंषां मांहि निरूष।
जनहरीया फल चषीया, फेर न आवै कूष ॥ ६ ॥

गुण मैं औगुण अनंत है, आपा भुगतै आय।
जनहरीया त्रिगुन वसै, जुग मैं आय न जाय ॥ ७ ॥

अथ ऊंच नीच करनी कौ प्रसंग २१

घर की ठौड़ अकूरड़ी, इन ऊपरि घर मंड।
हरीया ऊंचा नींच तैं, नींच ऊंच तैं पंड ॥ १ ॥

नीची करणी नीच [1]नर, ऊंची करणी ऊंच।
हरीया ऊंचा नीच [2]कुंण, करै[3]स करणी ऊंच ॥ २ ॥

जैसी करणी कीजीयै, तैसा पावै ठांम।
हरीया नीची नीच [1]कुल, ऊंची ऊंच मुकांम ॥ ३ ॥

---

(५) १. (क, ख) मुष। २. (क, ख) सारां मांहि सुलष।
(६) १. (क, ख) सारां मांहि सुलषणो।

---

(२) १. (क) पण, (ख) पद। २. (ख) क्या। ३. (क) करणी पारि पहूंच, (ख) करणी विनां न पूंच।
(३) १. (क, ख) पद, (घ) नीची करणी नीच फल।

हरीया निकुली हरि[1] भगति, हरिजन[2] कै कुल होय।
सो कुल कुल मैं हीन है, हरि[3] की भगति न होय ॥ ४ ॥

हरीया करणी कीजीयै, करणी सुं सिध[1] कांम।
जब तैं कुवौ [2]तेवीयै, तब तैं[3] पीयै गांम ॥ ५ ॥

साची करणी साध की, हिरदै हरि का जाप।
जनहरीया [1]दुनीयां करै, कूड़ो[2] कोटि कळाप ॥ ६ ॥

करणी करता रांम है, उर अंतर मैं धारि।
सिवरि सिवरि से पुंहचग्या, हरीया हरिजन पारि ॥ ७ ॥

हरीया कुल करणी विनां, तिरथा न सुणीया कोय।
करणी सुं गिनका तिरी, वा कुलहीणी होय ॥ ८ ॥

हरीया पुहच्यै साध की, करत कसोम्या कोय।
क्या सोम्या सुं चाहीयै, जौ कुछि करणी होय ॥ ९ ॥

अथ सुष मैं सुष न्यारै कौ प्रसंग २२

पीस्यै मांही पीसणौ, छाण्यै मांही छांण।
हरीया सुष मैं सुष है, ज्युं जांणै मांही जांण ॥ १ ॥

अजांणा मैं जांणिबौ, हरीया लषां [1]लोय।
पिण जांण्यै मांही जांणीबौ, कोट्यां मंझे कोय ॥ २ ॥

---

(४) १. (क, घ) भगति है। २. (क) साधु। ३. (क) ता कुल। (ख) में यह साषी नहीं है।

(५) १. (क, ख) विण करणी वेकांम। २. (क, ख) ज्युं (यु) कूवौ विन तेवीयां। ३. (क, ख) कैसैं।

(६) १. (ख) हरीया जुग झूठी। २. (ख) करणी।

---

(२) १. (घ) होय।

हरीया सुष संसार का, सो मेरै नही [1]भाय।
या[2] सुष न्यारा सुष है, मन ता मांहिं समांय॥ ३॥

अथ सुष सहज कौ प्रसंग २३

इला पिंगला पूरि कै, मन [1]सुषमल कै मांहि।
जनहरीया सुष सहज[2] की, इन सेती गम नांहि॥ १॥
नाद बिंद कु उलटि कै, रोकै दसवै द्वार।
जनहरीया सुष सहज[1] की, इन कुं[2] सुधि न सार॥ २॥
इंद्री मन अर पवन कुं, अपनै थिर करि लेस।
जनहरीया सुष सहज[1] का, उ है[2] न्यारा देस॥ ३॥
जोग जिग जप तप करै, करै वेद अभ्यास।
हरीया[1] पांणी ओस का, पीयां न भाजै प्यास॥ ४॥
अंन भोजन छुछम करै, गाळै अपनी देह।
हरीया छाजै मांन कै, सहजां[1] नांहि संनेह॥ ५॥
जनहरीया सुष [1]सहज मैं, लोक दिषावा नांहि।
पड़पच कीयां न पाईयै, सांई सहजां मांहि॥ ६॥

---

(३) १. (ख) सो नही मोय सुहाय। २. (क, ख, घ) इन।

---

(१) १. (घ) सुषमणि। २. (ख) हरीया सहजां सुष, (घ) सहज का।
(२) १. (ख) हरीया सहजां सुष। २. (घ) वाकुं।
(३) १. (क, ख) हरीया सहजां सुष, (घ) विन। २. (घ) अे कूड़ा उपदेस।
(४) १. (ख) जनहरीया सुष सहज कुं, पावै हरि का दास।
(५) १. (ख) यौ नही नांव सनेह।
(६) १. (क) हरीया सहज सनेह मैं, (ख) हरीया नांव सनेह कै।

हरीया सहज[1] सनेहड़ौ, जन कोई [2]जांणंत ।
दुनीयां[3] लोकाचार मैं, वहि वहिं वीच[4] मरंत ॥ ७ ॥

वहि वहि मूवा मांनवी, करि करि लोकाचार ।
भेद न पायौ भगति कौ, हरीया विनां विचार ॥ ८ ॥

जुग मैं केता करत हैं, झूठ विषै वकवादि ।
हरीया साची [1]भगति विन, भूलौ[2] अंतर आदि ॥ ९ ॥

अथ नांव धन कौ प्रसंग २४

रांम नांम सा धन नही, लीजै आठु कठ ।
हरीया हरिजन देत है, जे कोई जांणै पठ ॥ १ ॥

हरीया धन हरि नांव सा, अैसा और न कोय ।
नव निध सिध का मूल है, राषि रिदै सुं पोय ॥ २ ॥

हरीया रिध सिध क्या करै, रांम नांम धन पासि ।
लाहा तोटा जीव का, गया दूरि दिस नासि ॥ ३ ॥

हरीया हरिजन कै [1]पलै, रांम नांम धन होय ।
नाकारै सुष नेम है, जे कोई[2] गाहक जोय ॥ ४ ॥

हरीया हरिधन[1] दीजीयै, साचा[2] गाहक जांनि ।
हरिधन[3] का गाहक नीही, जासु किसी [4]पछांणि ॥ ५ ॥

---

(७) १. (ख) नांव। २. (ख) करि कोई जांणै संत। ३. (क, ख) दूजा। ४. (क, ख) मांहिं।
(९) १. (घ) जनहरीया सुष सहज। २. (क, ख, घ) भूला।

---

(४) १. (क) जनहरीया जिनकै रिदै। २. (ख) गाहक मंगै कोय।
(५) १. (ख) जिसकुं। २. (ख) गुण का। ३. (क, ख) हरिधन (हरिगुण) का नही गाहकुं। ४. (क, ख) केही जांणि पिछांणि।

रांम नांम जाकै पलै, सोई [1]धनवंताह।
हरीया या तुल्य [2]दूसरा, रिध न [3]सिधवंताह ॥ ६ ॥
धनवंता सो[1] जांणीयै, रिदै रांम का नांम।
भगति भंडारै ना कमी, रिध सिध केहै कांम ॥ ७ ॥
रिध सिध दाता नांव[1] है, चाहै जो कुछि होय।
हरीया दाता नांव का, सतगुर[2] कहीयै सोय ॥ ८ ॥

अथ नांव कौडी कौ प्रसंग २५

हरीया कौडी हाथि [1]करि, डारी समदर मांहि।
केता तेरु पचि [2]मूवा, हाथि[3] किसी कै नांहि ॥ १ ॥
हरीया कौडी समंद मैं, हरि[1] हैं वेद पुरांन।
जल कौडी हरि पुसतगां, हाथि न मन पतीयांन ॥ २ ॥
हरीया कौडी समंद मैं, किंनी न आई हथि।
नांव न पायौ पुसतगां, के सुनिम्या के कथि ॥ ३ ॥

अथ वेद भेद कौ प्रसंग २६

हरीया वेद पुरांन कुं, वांचै विनां वमेष।
अरथ वतावैं और कुं, आप चलै जुग देष ॥ १ ॥

---

(६) १. (ख) धनवंत जांनि। २. (क) को नही। ३. (ख) सिध न मांनि।
(७) १. (ख) हरिजन सोई।
(८) १. (घ) रांम। २. (घ) पूरा सतगुर होय।

---

(१) १. (क, ख) सुं (ले)। २. (क, ख, घ) गया। ३. (ख) थाह।
(२) १. (क, ख) युं (ज्युं) हरि।

हरीया वेद पुरांन कुं, सीषैं सुनैं अनेक।
रांम नांम सत [1]सब्रद का, भेदी विरला एक॥ २॥

पिंडत वेद पुरांन कुं, वाचैं [1]करै विचार।
हरीया औरां अकलि द्यै, आप न सुधि बुधि सार॥ ३॥

भेद न जांणै वेद कौ, वाचि[1] सुणावैं वेद।
हरीया भेदैं भेद कुं, वेद करैं सब छेद॥ ४॥

हरीया भेदैं भेद कुं, जब आपौ पतिआय।
कहनी सुननी नांव विन, और[1] न आवै दाय॥ ५॥

हरीया सब घी षात है, अंन पांणी कै मांहि।
जे कोई जीमै एकलौ, जिस बलिहारी जांहि॥ ६॥

जनहरीया ज्युं[1] नांव घी, अंन पांणी ज्युं वेद।
जे कोई न्यारौ[2] जांणिसी, जिन कुं आयौ भेद॥ ७॥

अथ कलि मैं नांव कौ प्रसंग † २७

हरीया नांव न जांणीयौ, कलि मैं नांव न कोय।
जिन औ जांन्यौ नांव कुं, नांव नांव तैं होय॥ १॥

नांव न सुत परवार तैं, नांव न वित तैं होय।
नांव रहैगा नांव सुं, हरीया अमर सोय॥ २॥

---

(२) १. (ख) पारषु, लषां मांही एक।
(३) १. (ख) वाच'रि कहै।
(४) १. (ख) सीष सुनांवै।
(५) १. (क, ख) एक न।
(७) १. (क, ख) हरीया ज्युं घी नांव है। २. (क, ख) सो न्यारौ करि।

† यह प्रसंग 'ख, घ' प्रतिमें ही उपलब्ध है, अतः वहींसे लिया गया है।

एक सकल का नांव है, नांव विनां नही कोय।
हरीया अैसा नांव लै, नषत बषत विन होय ॥ ३ ॥
हरीया जोसी जगत का, नषत बषत का नांम।
नषत बषत विन नांव है, सिवरौ आठु जांम ॥ ४ ॥
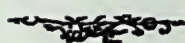
अथ ठाकर चाकर कौ प्रसंग * २८

हरीया चाकर चाकुरी, ठाकुर जिसका गांव।
पटा जिसीका ऊतरै, ढीक पंचायण नांव ॥ १ ॥
हरीया सारी सिसट का, ठाकुर कहीयै सोय।
पटा परित नही ऊतरै, के कलि उथल होय ॥ २ ॥
पटा ऊतरै अर[1] चढै, सो ठाकुर नही जांनि।
हरीया[2] सेवा चाकरी, मन मेरा[3] नही मांनि ॥ ३ ॥
हरीया ठाकुर एक है, सब घट वरतै[1] नूर।
दूजा ठाकुर कहन [2]का, दिन का[3] ऊगै सूर ॥ ४ ॥

अथ इष्ट इष्ट कौ प्रसंग २६

हरीया अपनी इष्ट [1]मैं, सब कोई हुसीयार।
इष्ट इष्ट मैं अंतरौ, यु[2] पारस अर[3] सार ॥ १ ॥

---

* (क, घ) में 'चाकुर ठाकुर' नाम है।

(३) १. (क) फिर, (ख) तन पड़ै। २. (ख) वाकी। ३. (ख) जनहरीया।

(४) १. (ख) एक सकल मैं नूर। २. (ख) बीजा ठाकुर वापड़ा। ३. (क) दिन।

---

(१) १. (घ) कुं। २. (ख) ज्युं। ३. (ख) ज्युं।

लोहा ले पारस [1]मिल्या, सो फिर कंचन होय।
हरीया कंचन पलटि कै, लौहा भया न कोय ॥ २ ॥

हरीया जुग लोहा भया, पारस रूपी रांम।
कंचन रूपी साध है, सारैं सब का[1] कांम ॥ ३ ॥

लोहा पारस परसि कै, पारस भया न कोय।
हरीया आतम परसि कै, आप ही आतम होय ॥ ४ ॥

जौ लागा हरि नांव सुं, लागि विसारौ कांय।
हरीया[1] हरि सा को नही, सजन मेरै भांय ॥ ५ ॥

हरि वसती हरि वन है, हरि हैं ठांमो ठांम।
हरीया हरि हिरदै गया, ताहि नही विसरांम ॥ ६ ॥

अथ माया षरचन षांन कौ प्रसंग ३०

न को[1] ल्यायौ ओथि सुं, नां इत सुं ले जाय।
माया जिसकी जांणीयै, हरीया षरचै षाय ॥ १ ॥

हरीया माया जौ[1] भली, वांटै रांम निवंत।
आवै जावै सहज [2]सुं, रहै [3]निरासावंत ॥ २ ॥

हरीया लांबै नाक कुं, दुनीयां षरचै दाम।
लाजै काजै[1] विढ मरै, का जुग[2] चाहै नांम ॥ ३ ॥

---

(२) १. (घ) लोहा पारस परसतां।
(३) १. (ख) क्या लोहा सुं।
(५) १. (ख) हरि सा ठाकुर को नही, वाकै वसीयै गांय।

---

(१) १. (ग) ना कोई।
(२) १. (ग) जासकी। २. (ग) मै। ३. (ग) न आसावंत।
(३) १. (ग) लाज काज मैं। २. (ग) जुग मैं।

धौड़ै धावै पचि मरै, माया कुं नित नेम।
हरीया संची मेलग्यौ, घूंघा गोळी जेम॥ ४ ॥

माया कुं व्रीह जोड़ि [1]करि, षरिच न सघै षाय।
हरीया दिन दस करि गयौ, रुषवाळी नर [2]आय॥ ५ ॥

हरीया माया नां सुनी, चली न [1]तनकै संग।
माया करि[2] करि रांम की, वांटै जिस[3] कुं रंग॥ ६ ॥

चंदा मांहि चिकोर की, सुरित वसी है जाय।
हरीया तन[1] दाझै नही, जलत अंगारा षाय॥ ७ ॥

जनहरीया [1]सत सबद मैं, सुरित रैंन दिन पोय।
माया कौ डर को नही, रहौ निसंसै [2]होय॥ ८ ॥

जलत अंगारा षात है, उदर भरन [1]चिकोर।
जौ संचै तन कारणै, हरीया विघन [2]करोर॥ ९ ॥

साध भरोसै सबद कै, हरीया डरपै नांहि।
विनां भरोसै [1]डूबग्या, माया कादै मांहि॥ १० ॥

माया कौ कादौ विन्यौ, अंध[1] विलंब्या आय।
हरीया नर आघा धसै, ज्युं[2] ज्युं कळता जाय॥ ११ ॥

---

(५) १. (क) माया अपनी जांनिकै। २. (ख) हरीया जुग मैं आयकै, सोई रीता जाय।

(६) १. (क, ख, घ) किन, (ग) किनकै साथि । २. (ग) मैरै। ३. (ग) जिसकै हाथि।

(७) १. (ग) विघन न व्यापही।

(८) १. (ग) हरीया अैसैं। २. (ख) अपनी गिनै न कोय।

(९) १. (ग) हरीया उदर काज। २. (ग) तौ उ करत अकाज।

(१०) १. (क, ख) डूबसी।

(११) १. (क, ख, ग) जीव। २. (ग) त्युं त्युं।

सोरठौ

माया मोटी वात, हरीया इन[1] संसार मैं।
जीव एकलौ[2] जात, संग[3] न चालै चालतां ॥ १२ ॥

साषी

हरीया माया सूंब की, हाथि न दीनी जाय।
का डंडै का घर मुसै, का कोई ठगि लेजाय ॥ १३ ॥*

माया करि करि [1]मांनवी, धौड़ै रात'रि दिन।
हरीया[2] पूंजी पाप की, किनी न आई पिन ॥ १४ ॥

हरीया पूठा[1] आय कै, सार न बूझै कोय।
माया जांह की जांह रही, आप ऊठगे [2]रोय ॥ १५ ॥

निसदिन[1] धौड़ै धन करै, धन करि संचै [2]घालि।
हरीया दे कुछि दे सघै, साथि न कौडी [3]हालि ॥ १६ ॥

---

(१२) १. (क, ख) सब, (घ) जनहरीया । २. (ख) नागौ आयौ।
३. (क) रंच ।

(१३) *. (क, ख) प्रतिमें यह साषी निम्न प्रकारसे है—

(क) मूरष माया हाथ सुं, लेवै किनीन लाय।
हरीया आये देषवा, उठिगे लाड लडाय ॥

(ख) हरीया माया हाथि करि, षरच न सघै षाय।
देष न आए च्यारि दिन, पलै कुछी न पाय ॥

(१४) १. (ग) हरीया माया कारणै। २. (ग) मूंवां संग न चाल्ही,
चलै पाप का पिन ।

(१५) १. (ग) पाछा। २. (ग) जोय। (ख) प्रतिमें यहाँपर तीन
साषियाँ अधिक हैं, जो 'माया के अंग' पृ० १०२-३ पर ४६-४७-
४८ संख्याकी हैं।

(१६) १. (ग) मूरष। २. (क, ख, ग) हाथि। ३. (क, ख, ग) रंच
न चालै साथि।

नर धौड़े धन कारणै, धन सांई कै हाथि।
जिन औ तो [1]कुं तन दीया, धन की किसी अनाथि ॥ १७ ॥

जिन तो कुं तन धन दीया, दीया नैंन मुष व्रैंन।
हरीया वाकुं सिवरीयै, आदि अंत का सैंन ॥ १८ ॥

माया मांही लष गुन, हरीया[1] औगुन कोटि।
जिन करि जांनी आपनी, तिन[2] घरि आई तोटि ॥ १९ ॥

माया मांही लष गुन, औगुन एक न कोय।
हरीया अरपन रांम कै, जे करि जांनै कोय ॥ २० ॥

हरीया माया षूब है, बंदा है वेकूफ।
जौ तनैं दीन्ही रांमजी, तौ लैं नीकां यह लूफ ॥ २१ ॥

माया परची षूब है, जौ कुछि परची जाय।
हरीया षरचत [1]षावतां, विरच कबु नही जाय ॥ २२ ॥

जिन औ तो कुं धन दीया, तिन कै लेषै लाय।
माया सपनौ रैंन कौ, हरीया जाय विलाय ॥ २३ ॥*

माया देवण जोग है, जे कोई देवण जोग।
हरीया हरिजन पूजीयै, लागै हरि कै भोग ॥ २४ ॥

हरिजन [1]सोई जांणीयै, कहै कहावै रांम।
हरीया [2]हरि अंतर वसै, क्या औरन सुं[3] कांम ॥ २५ ॥

---

(१७) १. (ग) हरीया जिन यो।
(१९) १. (क, ख) औगुन कोटि अनंत। २. (क) विन कारज विन संत, (ख) विन पांणी डूबंत।
(२२) १. (ख) हरीया परची बाहिरौ।
(२३) *. इसके पश्चात् 'क, ख' में निम्न साषी विशेष है—
माया दीन्ही रांमजी (मानवी), वांटण हरि के हेत।
हरीया स्याणा चेतसी, यांणा रह्या अचेत ॥
(२५) १. (क) हरीया हरिजन। २. (क) वाकै हरि। ३. (क, ख, घ) औरन (औरां) सुं नही।

माया षरचन षांन [1]क्री, जे कोई जांणि[2] वमेष।
हरीया हरि की [3]जांणीयै, आप न[4] अपनी देष ॥ २६ ॥

हरीया जो कुछि [1]दीजीयै, माया हरि कै[2] नांय।
जौ करि [3]जांणि आपनी, तौ हरि कै नहि [4]भांय ॥ २७ ॥

माया का नर[1] म्हैंनती, रांम न जांणैं नांम।
हरीया वांटण सिवरणौ, पूर नषत का कांम ॥ २८ ॥

हरीया मोदी मांनवी, माया हरि की होय।
जा [1]सिर दूवौ भेजीयौ, षाय षुलावै[2] सोय ॥ २९ ॥

विन दतव माया नही, जुग मैं झूठी [1]जांनि।
हरीया साची भगति है, भाग विनां नही [2]आंनि ॥ ३० ॥

हरीया तन मन वचन [1]तैं, सिवरि सिवरि हरि[2] नांम।
दासी अैसै दास[3] की, माया आठुं[4] जांम ॥ ३१ ॥

---

(२६) १. (क) कुं, (ख) हरीया माया देत है। २. (ख) दैंणै मांहि। ३. (ख) एकां जांणी रामकी। ४. (क) और न, (ख) एकां, (घ) आप न।

(२७) १. (क, ख) कीजीयै। २. (ख) जांनि। ३. (क, ख) जौ (जिन) करि (आ) जांनी। ४. (ख) ताहिं कै घरि हांनि।

(२८) १. (घ) कारन।

(२९) १. (ख) जाकु दूवौ। २. (क) षरचै षावै, (ख) षरचणहारा।

(३०) १. (क, ख) है झूठी जुग मांहि। २. (क, ख) कुछि नांहि, (घ) नही मांनि।

(३१) १.-(ख) हरीया सहजां रांम कुं। २. (क, घ) निज, (ख) सिवरै आठु जांम। ३. (ख) साध की। ४. (ख) ठामो ठांम।

माया दासी हुय रही, साध तणै घर बारि।
हरीया आतम[1] सिंवरि कै, षाय षुलरतां[2] मारि ॥ ३२ ॥

माया दीन्ही रांमजी, माथै सारू देष।
के तौ आया दूंण कुं, कां ही मारी मेष ॥ ३३ ॥†

अथ त्यागन भुगतन कौ प्रसंग ३१

ग्यांन सीष ग्यांनी भया, त्याग भया [1]तन मेष।
हरीया निज पद बाहिरौ, दूजी[2] देषा देष ॥ १ ॥

हरीया माया महल कुं, त्याग [1]रहै नर दूर।
अंन पांणी तन [2]पंगरन, चहीयै ऊगै सूर ॥ २ ॥

हरीया पांणी पवन सुं, धरीया तेरा तंन।
दूजी माया मन तजै, ले छाजन भोजंन ॥ ३ ॥

हरीया पांणी अंन सुं, जीवै सब संसार।
जब ही छूटै जिंद सुं, तब ही चलणहार ॥ ४ ॥

---

(३२) १. (ख) हरि कुं, (घ) रांम उच्चारिकै। २. (ख) पुलरतां, (घ) षुलतिरां।

(३३) † (ख) प्रतिमें इसके पश्चात् निम्न अधिक है—
हरीया माया सकल कुं, भाग प्रवांणै देत।
केई लाहो ले चल्या, कांही सिरमैं रेत ॥

---

(१) १. (ग) त्यागी तन का। २. (ख, घ) दुनीयां।

(२) १. (क, ख) त्यागै तन सुं (तैं), (घ) चलै। २. (ख) वसतर पांणी अंन कुं।

अथ माया ब्रह्म निरणै कौ प्रसंग ३२

हरीया माया [1]मोहनी, जा सुं बंधे जीव।
ता[2] सुं तांतौ तोड़ि करि, सहज[3] मिलैंगे सीव॥ १॥
जीव मिलानां सीव मैं, सीव जीव कै मांहि।
हरीया छाया त्रिरष की, अैसैं अंतर नांहि॥ २॥
हरीया छाया विरष की, बधै घटै वहि जाय।
मेला जीव'र सीव का, न्यारा कबू न थाय॥ ३॥

अथ एकता कौ प्रसंग ३३

हरीया हेकै नांव [1]का, सवै[2] ग्यांन परकास।
यु ऊगै रवि [3]एकता, जुग सारै औजास॥ १॥
वात वात मैं वात है, जे कोई जांणैं वात।
एक वात सुं वंचीयै, एक वात जम घात॥ २॥
वात वात सब को कहै, वातां मांहि वमेष।
एक वात गुर सबद है, एक दुनी का देष॥ ३॥
गुर सबदां सुं पाईयै, अंतरजांमी आप।
जनहरीया[1] गुर सबद विन, दुष दोजष अर [2]ताप॥ ४॥

---

(१) १. (क, ख) ब्रह्म की। २. (ग) या। ३. (ग) जाय।

---

(१) १. (घ) एक रांम कु सिवरतां। २. (क, घ) सकल। ३. (घ) हरीया ऊगै एक रवि।
(४) १. (ग) हरीयां गुर गोविंद विन, आंन देव का जाप।
२. (क) भुगतैं तेउं ताप, (ख) कूड़ा करै कळाप॥

वांहती आए बोल करि, ईहां विसरगै कौल।
हरीया जम दरगाह मैं, वाकुं देसी औल॥ ५ ॥

आये थे ल्याये कहा, कहा बांधिगे गांठि।
हरीया आये[1] ज्युं गये, सौदा जुड़्या न सांठि॥ ६ ॥

वांहती आए एकले, इहां वेकले थाय।
हरीया चाले [1]हेकले, पलै कछू [2]नही पाय॥ ७ ॥

सपनै सांसा ऊपना, वसत गमाई गांठि।
जनहरीया जब जागीया, वसत गांठि की गांठि॥ ८ ॥

जैसौ[1] सपनौ जागरत, अैसौ[2] मन को भाव।
जनहरीया पासौ पड़ै, तैसौ आवै दाव॥ ९ ॥

का तौ पासौ हारि कौ, का तौ पासौ जीत।
हरीया दोउं दूरि[1] करि, एकौ मतौ अजीत॥ १० ॥

रांम कहाया कहि लीया, और कहौ सब लोय।
हरीया [1]हेकै सबद विन, भरम[2] न भूलौ कोय॥ ११ ॥

सिव[1] ब्रह्मा विसनर कहैं, संत[2] भरैं सब साषि।
रांम नांम एको भला, हरीया हिरदै राषि॥ १२ ॥

गाफिल गडे गुमांन मैं, मन विषीया कै मांहि।
हरीया [1]हेकै नांव विन, सब जुग[2] परलै जांहि॥ १३ ॥

---

(६) १. (क) आये थे नर।
(७) १. (क) चाले एकल-वेकले। २. (क) कुछी न।
(९) १. (ग) अैसौ। २. (ग) जैसौ।
(१०) १. (ग) वीचमैं।
(११) १. (ख) एको नांव कुं, (ग) अैसा को नही।
२. (क) भरम भूलो मत कोय, (ख, ग) वेद वखानै सोय।
(१२) १. (ख, ग) सिव सिनकादिक कहत हैं। २. (ख, ग) भरत हैं।
(१३) १. (ग) रांम सनेह विन। २. (ख) सब ही लूब्या, (ग) सई।

अरि हरि कौ डर एक है, हरीया भिन करि जोय ।
अरि तौ मारै घाव करि, हरि जीवारै सोय ॥ १४ ॥
हरीया फिट मंगन जनम, निकजौ भयौ निलाज ।
एको रांम विसारि कै, जण जण कुं सुभराज ॥ १५ ॥
जनहरीया मुष षूब है, जा मुष [1]उचरै रांम ।
मंगन [2]वाही मुष तैं, औरां उथले नांम ॥ १६ ॥
हरीया मंगन जनम [1]के, मैं तैं[2] कथीयौ कूर ।
मुष तैं आश्रीवाच दे, औरां ऊगै सूर ॥ १७ ॥
हरीया सुधि बुधि [1]ऊपजी, आयौ मनकै साच ।
अब नही देउं [2]आप सुं, औरां[3] आश्रीवाच ॥ १८ ॥
गिण तिण मिटै न ग्यांन विन, विण धीरज नही घ्यांन ।
हरीया गुर विन वहि गया, यु अंधा उदीयांन ॥ १९ ॥
तन तकतोला करि रह्यौ, मन मैं तैं औधारि ।
हरीया धौड़ा धुक मैं, चाल्यौ दीन विसारि ॥ २० ॥
हरीया संता[1] सत वचन, असत न को[2] आषंत ।
दुनीयां साच न चाहीयै, झूठ[3] कपट भाषंत ॥ २१ ॥
विषै विकारी जीव कुं, हरीया क्या समझाय ।
चौवा चंदण चरचीयै, स्वाय[1]न कै नही भाय ॥ २२ ॥

---

(१६) १. (ख) या मैं निकसै, (घ) निकसै । २. (ख, घ) याही ।
(१७) १. (क, ख, घ) मैं। २. (क) साच न, (ख, ग) कथीयो साच'र ।
(ग) में इस प्रकार है—
हरीया मैं मगन जनम, कथीयौ कूड़'र साच ।
फिर फिर दीयौ नितकौ, औरां आश्रीवाच ॥
(१८) १. (क, ग, घ) उपनी । २. (ख, ग) और कुं । ३. (ग) मुष तैं ।
(२१) १. (क, ख, ग) साधु। २. (ग) ही भाषंत। ३. (क) कूरा सुं राचंत, (ख) कूड़ी गल दाषंत, (ग) झूठ पलै राषंत ।
(२२) १. (ग) स्वांनि कै नहि ।

हरीया रांम संभारीयै, गहौ न दूजा ग्रंथ।
या ही हरिजन कहि गया, पारि हौंन का पंथ ॥ २३ ॥

रांम नांम [1]रटता रहौ, जनहरीया दिन राति।
या सतगुर की सीष है, दूजी वात न ताति ॥ २४ ॥

हरीया आतम एक है, सब ही घट घट वीच।
वाकुं देषै दोय करि, सोई मिनषा नीच ॥ २५ ॥

एकन चाक उतारीया, एकन ही कूंभार।
हरीया माटी हेक है, फेर न कोई सार ॥ २६ ॥

घड़ौ कूलड़ौ तांवणी, घड़ीया घाट अनेक।
कुल करमा विवरौ कीयौ, हरीया माटी[1] हेक ॥ २७ ॥

ऊंच नीच कुंभार कै, सब को [1]करां उठाय।
हरीया जब जल सुं भख्या, अंतर दुबध्या लाय ॥ २८ ॥

एकै जल का ऊपना, एको जल भरि आंनि।
हरीया [1]ता तन कुबुधि है, जा [2]मन दुबध्या जांनि ॥ २९ ॥

पसु पंषेरुं जोनि तैं, दुबध्या धरै [1]न कोय।
हरीया नर नरदेह [2]तैं, अंतर[3] धरिहै दोय ॥ ३० ॥

हरीया नष चष नासिका, धरीया वाधि न घाटि।
एक नीर का ऊपना, आया एकणि वाटि ॥ ३१ ॥

---

(२४) १. (क, ख, ग) रसनां।
(२७) १. (क, ख) भांडा एक।
(२८) १. (क, ख) कर सुं धरैं।
(२९) १. (ख) सोई। २. (ख) अंतर।
(३०) १. (ख) भ्रांति करै नही। २. (ख) सुं। ३. (ख) आपो रषै जोय।

कुंण ऊंचा कुंण [1]नीच है, कौंण जाति कुंण पांति ।
हरीया कपड़ौ एक है, न्यारी[2] न्यारी भांति ॥ ३२ ॥

जनहरीया [1]तन कपड़ौ, रूप रंग [2]बौह भांति ।
करता रूपी[3] एक है, करै सकल की षांति ॥ ३३ ॥

रांम भजै सो[1] ऊंच है, भजन बिनां [2]नर नींच ।
हरीया अैसै[3] नींच कुं, जम घांणी मां पींच ॥ ३४ ॥

बांभण षत्री वईस क्या, क्या सुदर चंडाळ ।
हरीया हरि की भगति विन, सब ही परलै काळ ॥ ३५ ॥

बांभण षत्री मैं भया, मैं सुदर मैं वईस ।
हरीया हेकै नांव विन, दूज रही जगदीस ॥ ३६ ॥

बांभन षत्री बौह भया, बौह सुदर बौह वईस ।
जनहरीया[1] होसी भला, हेकौं[2] रांम कहीस ॥ ३७ ॥

च्यार वरन मैं उंच कुन, सो अधिकारी रांम ।
जनहरीया सो नीच है, हिदै न हरिका[1] नांम ॥ ३८ ॥

बांभन षत्री कौंन है, कुंन सुदर कुंन वैंईस ।
हरीया आतम हेक है, दूजा कोय न दीस ॥ ३९ ॥

---

(३२) १. (ख) इनमैं ऊंचा नींच कुन । २. (ख) जूई जूई भांति ।

(३३) १. (क, ख) हरीया काया । २. (ख) ज्युं । ३. (क) कायम करता, (ख) कारीगर करतार है ।

(३४) १. (क) नर । २. (ख) नांहि भजैं से । ३. (क) जनहरीया नर ।

(३७) १. (ख) हरीया जन्न । २. (ख) मुष्ष तैं ।

(३८) १. (क) एक न हिरदै, (ख) वाकै नांम न ठांम ।

अथ हसती कै हुदै को प्रसंग ३४

हरीया हसती कै हुदै, निरपत बैठे आय।
दूजी दुनीयां पग [1]तळै, तैस मैस हुय जाय॥ १ ॥

हरीया मन हसती भया, आंकस हरिका नांम।
गुर म्हावत सिर ऊपरैं, जब[1] आया ठिक-ठांम॥ २ ॥

हरीया आगै सांम कै, करै अगम की चोट।
पांचे मारै चोरटा, मेटै मन का षोट॥ ३ ॥

हरीया हौंदै नांव कै, लागी सुरति अषंड।
न्यारी कबहु नां हुवै, छाय हरी ब्रहमंड॥ ४ ॥

हरीया हौंदै वीच मैं, मुझि मिल्या रहमांन।
पूरा लिष दीया पटा, षरच न षूटै षांन॥ ५ ॥

हरीया हौंदै दूरि [1]तै, भाजि गया निरभाग।
के आसै पासै [2]षड़ा, केई वजावै षाग॥ ६ ॥

हरीया हौंदै वैस[1] करि, निजर लगी असमांन।
के आगै पूठा षड़ा, केई [2]हजूरीवांन॥ ७ ॥

हरीया हौंदै वीच मैं, मैं मेरा साहिब।
आप हजूरी आप का, और न को तालिब॥ ८ ॥

---

(१) १. (ख) दुनीयां पैंडै वीच मैं।
(२) १. (क) मुझि पाया विसरांम।
(६) १. (क) सैं। २. (क, ख) रह्या।
(७) १. (क) बैसतां, (ख) नांव कै। २. (ख) के पावै इनाम।

लगनि लगी हरि नांव सुं, हरीया अंतर मांहि ।
मन बाहरली[1] मिट गई, तन की सुधि बुधि नांहि ॥ ९ ॥

हरीया धर अंबर नही, नही चंद नही सूर ।
मैं अर मेरै सांम कौ, एकमेक तांह नूर ॥ १० ॥

दिह सौ वार न तिथ पुरब, लोक लाज कुल नांहि ।
हरीया सांई मुझि मैं, मुझि सांई कै मांहि ॥ ११ ॥

अथ निराकार आकार कौ प्रसंग ३५

जनहरीया निरकार कुं, भजि पुंहते भौ पार ।
से आसै आकार कै, रहिगै ऊलै वार ॥ १ ॥

जनहरीया निरकार विन, नर कोई पुंहचै नांहि ।
न्यारो निज मन जांणसी, करि आकारां[1] मांहि ॥ २ ॥

---

(९) १. (क) की डिगमिग, (ख) की चितवन ।

(ख) प्रतिमें निम्न साषियाँ अधिक हैं—

चोट लगी सत सबद की, हरीया दसवै द्वार ।
तन बाहरि दीसै नही, मन कै भीतरि मार ॥
तार लगी तन भीतरैं, हरीया एक अषंड ।
वाज न बाहरि फूटई, वाजि रही ब्रहमंड ॥

(क, ख) हरीया एक निरास घर, अघर झरोषै मांहि ।
ठाकुर चाकुर आसगुर, कोय किसी का नांहि ॥

---

(२) १. (ख) से लागा आकार सुं, देष पड्या घर मांहि ।

अथ अहुं आगि कौ प्रसंग ३६

अहुं आगि तैं[1] अधिक है, तन तिनका जरि जाय।
हरीया [2]बाकी अवधि मैं, सुष संतोष न थाय ॥ १ ॥
अहुं आगि ता [1]तन वसै, व्यापै[2] विघन करोड़ि।
जनहरीया पद स्वांत कुं, जाता लेह वहोड़ि ॥ २ ॥

अथ नांव हासिल कौ प्रसंग ३७

सोरठौ

सोई निपज्या साध, हरीया हासिल नांव कौ।
दूजा दाध वलाध, एकै हासिल बाहिरौ ॥ १ ॥

साषी

हरीया नर का क्या वडा, वडा'त हासिल जांनि।
का ही कुं तौ [1]नफा चौगणा, के नर बैठा भांनि ॥ २ ॥
हरीया हासिल कीजीयै, निस दिन ऊगै [1]सूर।
उर आणंदी [2]ऊपजै, भव दुष भाजै [3]दूर ॥ ३ ॥

---

(१) १. (ग) तहां उपजै। २. (ग) ताकी।
(२) १. (क, ख) काळ क्रोध अंतर (जाकै) २. (ख) वाकुं।

---

(२) १. (ख) कांही कीयौ नफौ चौगुणौं।
(ख) में इसके पश्चात् यह अधिक है—
हरीया निकुली हरिभगति, हरिजन सुकला होय।
सो कुल कुलमैं हीन है, ता कुल भगति न होय ॥
(३) १. (ख) जो कुछि कीया जाय। २. (क) आतम नेपै अनत है।
३. (ख) बंदा हासिल बाहिरौ, षेती कहा निपाय।

अथ होळी दीवाळी कौ प्रसंग ३८

होळी अर दीवाळीयां, घर घर दीपग मांहि।
हरीया दीपग और दिन, कोई क[1] द्यै कोई [2]नांहि ॥ १ ॥

हरीया[1] दीपग ग्यांन का, इंदर[2] दीया संजोय।
भया चहुं दिस चंदणा, भरम[3] अंधारा षोय ॥ २ ॥

होळी अर[1] दीवाळीयां, दुनीयां ई[2] कहै रांम।
हरीया संतन कै[3] सदा, रांम नांम[4] सुं कांम ॥ ३ ॥

होळी अर[1] दीवाळीयां, का मिलीयां इक वार।
और दिनां[2] नही नांव की, हरीया सुधि न[3] सार ॥ ४ ॥

अथ आचार विचार कौ प्रसंग ३९

पांडे तेरै रांधीयै, जौ तेरी गति होय।
हांडी डोई हाथि ले, औगति जाहि न कोय ॥ १ ॥

---

(१) १. (क) देता, (घ) करै।
२. (ख) हरीया दीपग एक दिन, सब ही घरि घरि होय।
होळी विन दीवाळीयां, रहै अंधारै सोय ॥

(२) १. (क) इंदर, (ख) घटमै। २. (क) संतां, (ख) दीपग, (घ) अंतर। ३. (क) हरीया पार न कोय, (ख) और, (ग) नही अंधारौ कोय।

(३) १. (ख) का। २. (क) दाखै। ३. (क, ख, ग) निसदिन (नितप्रित) संत कै। ४. (क) रांम भजन, (ख) हरि सिवरन, (ग) रांम रिदै विसरांम।

(४) १. (क, ख) का। २. (क) जनहरीया, (ख) हरीया जुग जांणै नही, (ग) जनहरीया आवै नही। ३. (क) दुनीयां सुधि, (ख) रांम नांम की सार, (ग) दुनीयां कुं इतवार।

हरीया[1] इंन आचार मैं, ग्यांन[2] विचार न कुछि ।
पांणी पीयै डोरि कौ, तंत न पावैं तुछि ॥ २ ॥

गोवर आंनै गाय कौ, चूल्है चौकौ देह ।
हरीया हरि की[1] भगति विन, चतराईमैं षेह ॥ ३ ॥

हरीया[1] षांणा अंन का, पीणा जल का होय ।
भोजन माषी[2] भषीयौ, सुचि[3] कहां तैं होय ॥ ४ ॥

सो माषी मल मूंत की, सोई भांणै भात ।
हरीया देषी सुचि की, कहन सुनन की वात ॥ ५ ॥

जुग मैं सुन्या न देषीया, कुन आचारी साध ।
हरीया हरि की भगति[1] विन, सोई जांणि असाध ॥ ६ ॥

अथ कूंडै वैसण कौ प्रसंग ४०

कूंडै भेळा बैस करि, जपैं[1] सकति कौ जाप ।
हरीया अंतर[2] ऊपजै, सांसा सोग संताप ॥ १ ॥

---

(२) १. (क, ख, ग) पांडे । २. (ग) विना ।
(३) १. (क, ख) पांडे पड़सी, (ग) पांडे पड़सी नांव विन ।
(४) १. (क, ख, ग) पांडे । २. (ख) पहली माषी चषीयौ । ३. (क) हरीया सुचि न कोय, (ग) साषी है सब कोय ।
(६) १. (ख, ग) हरीया आतिम नांव (ग्यांन) विन, दुनीयां (दूजा) दाध बलाध ।
(ख) में इसके बाद २ साषियाँ और हैं—
एको पांणी पिंड है, एक हाड अर मास ।
एको तात'र मात है, आए एक निकास ॥
एको जांमण मरण है, एको सासा पौंन ।
हरीया आतम एक है, दूजा कहीयै कौंन ॥

---

(१) १. (ख) करैं । २. (ख) वाकै, (घ) अंतर वीचमैं ।

जनहरीया मत [1]जांणिजौ, कूंडै मांही [2]साच।
झेलैं सतीया धरम कुं, कूड़ा तन मन [3]वाच॥ २॥

कूंडै बैसैं साध हुय, विषीया [1]सेती नेह।
हरीया सेई[2] धरत हैं, लष चौरासी देह॥ ३॥

आपज बैसैं साध हुय, औरां कुं कहैं थूळ।
हरीया हेकै नांव विन, सब जांवण कौ मूळ॥ ४॥

कूंडौ ऊंडौ कूंप सौ, साध दिसौ नही[1] जाय।
जनहरीया दुनीयां[2] पड़ै, देषा देषी [3]आय॥ ५॥

नर नारी मिलीया करैं, काया नेम धरम।
हरीया दोउं ऊठगे, माथै बांधि करम॥ ६॥*

कूंडै में भी बैसते, करते काय[1] न भ्रांत।
जनहरीया जब[2] ना मिटी, दिल[3] कै मांहि दुरांत॥ ७॥

---

(२) १. (क) हरीया जांणौ साच मत। २. (क) कूर। ३. (क) पांतरीया नर पडत है, हरि दरगाह सुं दूर। (ख) में निम्न रूप-से है—

थे मत जांणौ साच है, कूंडै मांही कूर।
पातरीया नर पड़त है, हरीया हरि सुं दूर॥

(३) १. (ग) करै विषै सुं, (घ) बंधै। २. (क) पीछै, (ख, घ) से नर, (ग) से नर धारितैं।

(५) १. (क) न बैसै, (ख) भंवरौ बैसैं आय। २. (ग) जामै। ३. (ख) जाय।

(६) * (ख) कूंडै बैसैं नारि नर, धरि अंजन सुं मंन।
जनहरीया इन धरम सुं, हैं न्यारा निरजंन॥

(७) १. (क) भ्रांत न काय, (ग) नांहि। २. (ख) हरीया जब तैं, (ग) हरीया तोई। ३. (क) मनकै मांहि दुराय, (ख) मनकै।

सतगुर भागी भरमना, निहचै पायौ[1] नांम।
हरीया [2]घट मैं रांम रस, क्या कूंडै सुं कांम॥ ८॥

अथ साच कूड़ कौ प्रसंग ४१

चंद्रायणौ

कूड़ कपट वेकांम, कहा नर कीजीयै।
साहिब दरगै सांच, होय तौ दीजीयै॥
स्वारथ का संसार, न को परमारथी।
हरिहां दास कहै हरिरांम, गुझि मुझि यारथी॥ १॥

साषी

साचा नर संसार मैं, साहिब सुं[1] रहैं सांच।
हरीया कबहु मुष [2]तैं, कूड़ा कथैं न[3] वाच॥ २॥
साचा सुं निरबाहीयै, हरीया आदि'र अंत।
कूड़ा कलि मैं आदमी, थोड़ै ही थाकंत॥ ३॥
हरीया निसदिन कीजीयै, साचां केरौं संग।
से ऊंडै गहि[1] नीसरै, रहैं एकही[2] रंग॥ ४॥

---

(८) १. (क) लीया निहचै, (ख) एक वताया, (ग) पाया मन विसरांम। २. (ग) तन।

(२) १. (क) सेती। २. (ख) कूड़ न वाकै मुष मैं। ३. (क) असत न अषै, (ख) हरीया निकसै।
(४) १. (क) ऊंडैई ले, (ख) वै ऊडैई ले। २. (ख) कूड़ कपट नही रंग।

अथ कोयल कागणि कौ प्रसंग ४२

कोयल इंडा [1]आपना, उदर बाहरि आंनि ।
चंच भरे भरि ले चली, कागिन[2] कौ घरि जांनि ॥ १ ॥

कागिन अपना पारका, तन[1] मन सेती लाय ।
हरीया हेको जांनि कै, दूज[2] न रषी काय ॥ २ ॥

भोळी भेद न जांणीयौ, या मैं अपना कौंन ।
हरीया रांम संनेह विन, सब ही[1] आवा गौंन ॥ ३ ॥

कोयल इंड़ा आपना, वांह[1] सेती ले जाय ।
हरीया होता ओंथि का, तेथी धरीया [2]आय ॥ ४ ॥

या जुग [1]मांही आय कै, तन[2] तैं वास वसाय ।
हरीया [3]हरिजन समझि कै, मन[4] तैं न्यारा थाय ॥ ५ ॥

जहां के थे जन जांह गये, करि परमारथ पुठि ।
बूडी दुनीयां बापड़ी, संग न स्वारथ उठि ॥ ६ ॥

अथ गुर वेमुष कौ प्रसंग ४३

गुर कुं थापै ऊथपै, सो अपराधी सिष ।
हरीया तन मन वचन मैं, साच न वाकै चिष ॥ १ ॥

---

(१) १. (ग) जब तैं इंडा कोयली । २. (ग) कायर ।
(२) १. (ग) राष्या अंग लगाय । २. (ग) दुबिध्या धरी न ।
(३) १. (ग) दूजा ।
(४) १. (ग) वहां, (ख) वाहांती लीया उठाय । २. (ख) जाय । (घ) में नहीं है ।
(५) १. (ख, घ) यु (या) जुग मैं जन, (ग) मैं जन जांणीयै । २. (क) सबकौ, (ख) अैसें, (ग) वासा वसीया आय । ३. (ख) जब तैं । ४. (क) तन मन, (ख, ग) तब तैं ।

गुर दरसन परसन नहीं, हरीया वेमुष जांनि।
अंधा नर वेवै नही, पीपल बाधी तांनि ॥ २ ॥

तन मन [1]तैं गुर परहरै, मुह तैं करै फत्तूर।
जनहरीया[2] जब जांणीयै, वाकै[3] अंतर कूर ॥ ३ ॥

लोक लाज कुल[1] कारणै, करै[2] कूड़ का कोट।
हरीया[3] सुधि बुधि साच विन, पलै बांधिग्यौ षोट ॥ ४ ॥

भाव भगति कुं छाडि द्यै, विषै न छाडी जाय।
हरीया अैसै जीव कुं, दरगै ठौर न काय ॥ ५ ॥

हरीया गुर सुं सिर षरु, सोई हरि सुं जांनि।
पहली आटा पीसीयै, पीछै कपड़ छांनि ॥ ६ ॥

हरीया कपड़ छांन करि, सकर घिरत मिलाय।
जब तैं षांणा षूब है, गुर तैं गोविन्द पाय ॥ ७ ॥

हरीया गुर [1]तैं विमुष नर, पाछा दरगै मांहि।
अैसैं[2] भागा सूरवा, दफतर चढ़िसी नांहि ॥ ८ ॥

जनहरीया दफतर चढ़ै, सोई साचा सूर।
कायर कै[1] है कांम का, गुरु[2] गोविन्द सुं दूर ॥ ९ ॥

---

(३) १. (ख, ग) सुं। २. (ख, ग) हरीया सोई (सो सिष)। ३. (ख, ग) हरि सेवा (भाव भगति) सुं दूर।

(४) १. (ग) हरीया कुल भ्रम। २. (ग) कीया। ३. (ग) साचौ धरम न जांणीयौ।

(८) १. (ख) सुं, (ग) जनहरीया गुर। २. (ग) जैसें।
(९) १. (क, ख, ग) कूडै। २. (ग) जाकै मुह पर धूर।

अथ हदि वेहदी गुर कौ प्रसंग ४४

हदीया गुर हदि की कहै, आपा सुधि बुधि नांहि।
जनहरीया गुर वेहदी, ब्रह्म बतावै मांहि॥ १ ॥

हरीया हदीया छाडि गुर, सतगुर करीयै और।
वेहद का गुर छाडि कै, जावैगौ किस ठौर॥ २ ॥

जनहरीया हदीया गरू, बैठा [1]ऊलै वार।
वेहद का गुर समझि कै, उतरि उतारै [2]पार॥ ३ ॥

हरीया हरिजन कै घरे, हरिजन आये हालि।
टूका पावौ वांटि कै, आधौ आसण घालि॥ ४ ॥

सबद संत का [1]आगिला, हसती का [2]सा दंत।
ताक न तूटै भरम का, सैं देही [3]विनसंत॥ ५ ॥

हरीया हसती दंत सुं, तोड़ै कोट किवार।
साध विडारै सबद सुं, भरम करम का डार॥ ६ ॥

हरीया भांजै [1]क्यार कुं, हसती मातौ मद।
साध विडारै[2] भरम कुं, सो रातौ अनहद॥ ७ ॥

सतपुरसां की साष सुनि, सीषत ग्यांनी होय।
हरीया गुर का सबद विन, ग्यांनी भया न कोय॥ ८ ॥

---

(३) १. (ख, ग) ऊली तीर। २. (ख) पार उतारै तीर।

(५) १. (क, ख) सबद आगिला से भया (संत का), (ग) भया से। २. (क, ख) ज्युं हसतीका। ३. (ग) वासु भरम न भाजई, ताक न को तूटंत।

(७) १. (ख) क्याड। २. (ग) भांजै।

ग्यांन विनां नही पाईये, अलष[1] अमूरत देव।
हरीया ग्यांनी वावरा, करैं क्रितम की[2] सेव ॥ ९ ॥

साध भया ज्युं वदला, रांम भया ज्युं इंद।
साध क्रिपा तैं [1]पाईयै, पूरण[2] परमानंद ॥ १० ॥

हरीया विरषा इंद की, वादल विनां न होय।
रांम सकल मैं रमि रह्यौ, गुर विन लषै न कोय ॥ ११ ॥

अथ ग्यांन गुर लाठी कौ प्रसंग ४५

हरीया लाठी ग्यांन की, गुर वाही उबरांगि।
लागी दसवै द्वार की, दूजी परितन[1] मांगि ॥ १ ॥

हरीया मांगै दूसरी, जा सिर लागी नांहि।
आसै पासै वहि गई, अगल बगल कै मांहि ॥ २ ॥

लागी जिसकै जांणीयै, हरीया तन मन चित।
फेर न मांगै दूसरी, उर मैं सालैं नित ॥ ३ ॥

अथ साध संमाधि कौ प्रसंग ४६

हरीया सबद संमाधि का, कह्यां सुण्यां क्या होय।
जब नैणां नही देषीयै, अंतर मिटै न दोय ॥ १ ॥

---

(९) १. (क, ख, ग) आप आतिमा। २. (ख) क्या किरतम कुं, (ग) पोथी पुस्तग सेव।

(१०) १. (ख) हरि क्रिपा। २. (ख) मेटै दुष अर दंद।

---

(१) १. (ख) एक न दूजी।

जब नैणां भरि देषीये, हरीया साध संमाधि।
यु दीसे मुष आरसी, घाटि कछु नही[1] वाधि ॥ २ ॥

अथ ब्रह्म संमाधि कौ प्रसंग ४७

चित मन पवनां [1]थिर रहै, उलटि पंच कुं साधि।
जनहरीया जब [2]जांणीये, या ही ब्रह्म संमाधि ॥ १ ॥

मन पवनां मिल [1]एकठा, सुरित[2] सबद सुं लाय।
हरीया ब्रह्म संमाधि का, जब सहजां [3]घर पाय ॥ २ ॥

हरीया ब्रह्म संमाधि [1]कौ, सहजां [2]सुष अनंत।
कांम कठण सुधि[3] जांणिबौ, विध विरला बूझंत ॥ ३ ॥

जनहरीया सुष द्वारती, चली [1]सबद की सीर।
जाय मिली सुष सहज मैं, गंग जमन की तीर ॥ ४ ॥

गंगा जमना सुरसती, नित कौ नांहन होय।
जनहरीया [1]जांह नाहीया, घाट वाट नही [2]कोय ॥ ५ ॥

---

(२) १. (क) त्युं कुछि घाटि न, (ख) इन मैं घाटि न।

---

(१) १. (क, ख, ग) कुं गहै। २. (ख) हरीया सहजां संत कै, (ग) हरीया ऐसैं नित है, सिवरन सहज समाधि।

(२) १. (क, ख) सुरति सबद मन पवन कुं।
२. (क) ले पछमि दिस लाय, (ख) पूरब पछिम मिलाय।
३. (ख) सुष।

(३) १. (क, ख) मैं। २. (क, ख, घ) है सुष सहज।
३. (क) काम कठण यो जाणिबौ, विध विरला बूझंत।
(ख) दुनीयां सुष सहजां विनां, हठि पचि मांहि मरंत।
(घ) कांम न ऊठै कलपना, तन की सुधि विसरंत।

(४) १. (ख) नांव की।

(५) १. (क, ख) हरीया हरिजन। २. (क, ख) अवघट घाटी होय।

सीरां छूटी चहुं दिसा, अंत न [1]कोई पार।
जनहरीया[2] पी मगनीया, तन की सुधि न सार॥ ६ ॥

रसनां नष चष वीच मैं, रोम रोम रंकार।
जनहरीया[1] सुष ब्रम का, जहां[2] नही मंकार॥ ७ ॥

इला पिंगला वीच मैं, सुषमणि[1] हंदा घाट।
हरीया ब्रह्म [2]संमाधि की, सहजां पाई [3]वाट॥ ८ ॥

विनां चंद जांह चंदणा, विनां[1] सूर तांह तेज।
जनहरीया घर [2]ब्रम का, आप[3] कला आपेज॥ ९ ॥

पवन न पांणी चंद रवि, जांह नही घर आकास।
जनहरीया घर[1] ब्रम का, आस न [2]पास निरास॥ १० ॥

---

(६) १. (क, ख) वाका (कौ) अंत न । २. (क) हरीया पी मन विगसीया।

(७) १. (ख) हरीया सुष समाधि का, (ग) हरीयै प्याला पेम का।
२. (ख) ओथि, (ग) पीया डिकार डिकार, (घ) होत नही।
(क, ख) में इसके पश्चात् निम्न सोरठा अधिक है—
(क) रोम रोम ररंकार, एक अषंडी होत है।
वा सुष अगम अपार, हरीया हरिजन जांणसी॥
(ख) एक अषंडी होय, रोम रोम ररंकार धुन।
विरला जांणै कोय, जनहरीया इन जुगति कुं॥

(८) १. (क, ख) है सुषमिण का। २. (क) जनहरीया घर ब्रह्म का, (ख) हरीया जांह घर ब्रह्म का। ३. (क) सहजां षूल्है दाट, (ख) षूलैं सहज कपाट।

(९) १. (घ) सूर विना अहवास। २. (ख) संत का। ३. (ख) अधर कला वर तेज, (घ) तेज पुंज परकास।

(१०) १. (ख) हरि एक है, (ग) दूजा नही। २. (क) है नही आस, (ख) का कोई हरि का दास, (ग) एकमेक हरिदास।

चड़े अगम [1]असथांन कुं, सुरित[2] मिली निरकार।
जनहरीया घर ब्रम का, ओथि[3] नही आकार ॥ ११ ॥

हरीया धूं धूं धुनि उठै, तनक थेई ततकार।
वाजै पिंड व्रहमंड मैं, एक अषंडी तार ॥ १२ ॥

इला[1] दुहारी पिंगला, षोड़ि दुवादस गाय।
ज़नहरीया[2] मत मटकी, लीया तत कुं ताय ॥ १३ ॥

संतन की गति संत कुं, दुनीयन की दुनीयांह।
जनहरीया अवगति की, गति[1] न को लहीयांह ॥ १४ ॥

पाव विनां जांह चालिबौ, राह विनां जांह राह।
जनहरीया घर व्रम का, सुर[1] नर सधैं न जाह ॥ १५ ॥

---

(११) १. (क) उलटि पलटि असमांन कुं, (घ) सुरति चड़ी असमांन कुं। २. (घ) जाय। ३. (क, घ) ओथि,। (ख) में यह साषी इस प्रकार है—

उलटा मन आकार कुं, जाय मिले निरकार।
हरीया नष चष वीचमैं, एकमेक सुष सार ॥

(१३) १. (ग) इला पिंगला होय दुहारी। २. (ग) हरीया मनां मथाण करि। (क, ख) में इसके अनन्तर निम्न साषी अधिक है—

मूरष की मूरष लहै, गुनीयन की गुनीयाह।
पारब्रह्म की कुंण लहै, देष्या नही सुनीयाह ॥

(१४) १. (क) और न को, (ख) आपो आप नीयांह, (घ) गति न सुनियांह।

(१५) १. (ख) आय न कोई।

श्री १००८ श्री रामप्रतापजी महाराज
रामस्नेहि सम्प्रदायाचार्य सिंहस्थल (६)

अथ अध मध उतिम अतिउतिम सिवरन की रोत*

प्रथम अध सिवरन

अध सिवरन चौरै करौ, रांम रांम[1] मुष पाठ।
हरीया काटै करम कुं, यु[2] कारीगर काठ॥ १ ॥

हरीया परगट कीजीयै, अध सिवरन कुं जांनि।
मुष रसनां तैं होत है, रांम रांम[1] की बांनि॥ २ ॥

दुतीयै मध सिवरन

हरीया रसनां रांम रटि, यु[1] महीयारी माट।
मध सिवरन मैं पेमरस, कंठ कवल कै घाट॥ ३ ॥

हरीया पीजै पेमरस, रसनां लीजै रांम।
जब लग जुग मैं जीवजे, कीजे यौहीज कांम॥ ४ ॥

हरीया मुष हालै नही, रसनां हालंतांह।
मध सिवरन गदगद गळै, रांम[1] रांम जपतांह॥ ५ ॥

त्रितीयै उतिम सिवरन

उतिम सिवरन हिरदय, होते ध्यांन प्रकास।
रांम रांम कुं [1]उचरतां, सोक सुणीजै सास॥ ६ ॥

---

* (क, ग) प्रतिमें यह नहीं है।

(१) १. (घ) नांम। २. (घ) ज्युं।
(२) १. (ख, घ) नांम।
(३) १. (घ) ज्युं।
(५) १. (घ) रोम रोम।
(६) १. (घ) हरीया रांम उचारतां।

हरीया कूवै कोस ज्युं, सब्द उसारा अंग।
भया अचंभा सासथिरि, मन बैठे[1] सुष संग॥ ७॥

चतुरथै अतिउतिम सिवरन

अध मध[1] उतिम रांम[2] भजि, अतिउतिम दुसराय।
केवल कांनां मात विन, सब अछर सिवराय॥ ८॥

सब अछर सहजां पढे, पढि पढि मिथ्या संनेह।
एक सवद रंकार हुय, हरीया अगम अछेह॥ ९॥

अतिउतिम सिवरन सहज, नाभ कवल असथांन।
रोंम रोम ररंकार हुय, भाग वडै का डांन॥ १०॥

हरीया पछिम देस की, वाटि विषम घर दूरि।
सहजां विनां न पुंहचीयै, औघट घाटी चूरि॥ ११॥

औघट घाटी चूरि करि, पाया पीतम यार।
हरीया जांमण मरण का, सांसा मेट सधार॥ १२॥

---

(७) १. (ख) बैठा

(८) १. (घ) मध्य। २. (ख, घ) रटि।

अथ रांम नांम सिवरन विचार*

आदि एक ररंकार कुं, सिवरयां सिध न होय।
जनहरीया ममंकार मिल, यु पंछी पर दोय॥ १ ॥

उडि पंछी असमांन कुं, पुंहच न सघै कोय।
जनहरीया ममंकार मुष, रह्या अधसलै होय॥ २ ॥

ररंकार रहता पुरस, कीया कराया नांहि।
हरीया सहजां होत है, रग रग रसनां मांहि॥ ३ ॥

ररंकार पछिम दिसा, उलटि चढे असमांन।
हरीया नाभी पूरब दिस, ममा थकि रह्या प्रांन॥ ४ ॥

हरीया रसनां नाभ लग, ममंकार की दौर।
रोम रोम ररंकार हुय, ममंकार नही ठौर॥ ५ ॥

ममंकार माया मिलै, औ तौ ईथिर रूप।
जनहरीया ररंकार मिल, अणभै अटल[1] अरूप॥ ६ ॥

ररौ ममौ दोय मंत्र है, या सेती लिव लाय।
हरीया जब तब सिवरतां, लेसी पार लंघाय॥ ७ ॥

अैसैं छाया विरष सुं, हरीया रही लपटि।
जैसैं माया ब्रह्म सुं, कैसैं जाय विछटि॥ ८ ॥

रांम रांम रटता रहै, आठुं पौहर अभंग।
हरीया कबहक सहज मैं, एक न दूजै संग॥ ९ ॥†

---

* (क, ख, ग) में यह ग्रन्थ नहीं है, एवं 'घ' प्रतिमें इसका नाम "ररै ममै समरण" है।

(६) १. (घ) अकल।

† (घ) में १०–११–१२–१३ क्रमशः साषियाँ नहीं हैं।

हरीया अपनै पीव सुं, सूती सेझ विछाय।
जौ राषै मन और सुं, तौ विभचार कहाय ॥ १० ॥

हरीया अंतर ध्यांन की, लागी रहै पलक।
साध षिलकै नां रचै, षिलकै रचै षलक ॥ ११ ॥

हालण डोलण बौह बकण, मन पवना थिर नांहि।
हरीया परमानंद सुष, उदै नही उर मांहि ॥ १२ ॥

परमानंद सुष जांणीयै, सहजां सबद उचार।
हरीया बोलण बकण की, सरधा नही लिगार ॥ १३ ॥

अथ सोलै तिथ कौ विचार*

चौपई

अमावस मेटौ अग्यांनां। सत सबद गुर गहीयै ग्यांनां ॥
एकम एक रांम कुं लीजै। अंतरजामी अपना कीजै ॥ १ ॥

बीजै बीज ऊपनी आसा। कंठ कंवल मैं कीन्हा वासा ॥
तीजै ताप तीन गुण त्यागे। आतम ध्यांन रिदै मैं जागे ॥ २ ॥

चौथै चित चेतन घर आया। रोम रोम ररंकार लगाया ॥
पांच्युं उलटि एक मन बंध्या। अंतर ध्यांन धनी सुं संध्या ॥ ३ ॥

छठै अछक पीयाला छकीया। छकि छकि अनभै बांनी बकीया ॥
सात्युं सुरति सबद सुं लागी। जनम मरनकी दुबध्या भागी ॥ ४ ॥

आठ्यु अनहद नाद घुराया। आपा भीतरि अजर जराया ॥
नवमें नांव निरंजन नाथा। मनकै मसतग धरीया हाथा ॥ ५ ॥

दसवें निकलंक देव पधारे। सबही सहजां काज सुधारे ॥
एकादसी नांव अनभंगा। तट त्रिवेणी न्हाया संगा ॥ ६ ॥

---

* (क, ख, ग) तथा मूल प्रतिमें यह ग्रन्थ नहीं है, यहाँ (घ) प्रति-से लिया गया है।

बारस बौहत बंदगी बंदा । करत करावत नित आनंदा ।
तेरस परम तत परगासा । एको एकी नांव निरासा ॥ ७ ॥
चवदस चित चेतन लपटाणा । जनम मरन दुष दूर मिटाणा ॥
पुन्युं पुन पूरब परतापुं । हरिरांमा मिल आपो आपुं ॥ ८ ॥

साषी

हरीया सोलै तिथ का, जे कोई जांनि विचार ।
आप परम पद पाईयै, औरन कुं उपगार ॥ ९ ॥

अथ अछर अणअछर विचार*

साषी

हरीया अछर पुसतगां, लिष्या भाषीया मांहि ।
अणअछर सो जांणीयै, कहन सुनन मैं नांहि ॥ १ ॥
अछर सोई [1]जांणीयै, मुष तैं होत[2] उचार ।
हरीया अणअछर अगम, कहीयै कौंण विचार ॥ २ ॥

चौपई

रसनां नाभ सबद संचरीया । तन मन वचन सहज विसतरीया ॥
उलटि अछर अणअछर होई । सुरता बकता लहै न कोई ॥ ३ ॥
पछिम दिसा की पाई वाटी । वंकनाळि की षूल्ही घाटी ॥
मेर डंड मैं वसीया वासा । आगै अंतर उपजी आसा ॥ ४ ॥
अब घर अधर कीया मनभाई । बागा अनहद वंटी वधाई ॥
नांव अषंडत षंडै नांही । सुरति सबद कै मंडी[1] मांही ॥ ५ ॥

---

* (क, ख, ग) प्रतिमें यह ग्रन्थ नहीं है ।
(२) १. (घ) सो परवाणीयै । २. (घ) होय ।
(५) १. (घ) मंडीया ।

मनवा उलटि मिल्या निज मन कुं। संसा सोग न व्यापै तन कुं ॥
अरध उरध विच रसतह लाया। जोषा जंत न वुसत विसाया ॥ ६ ॥
जमदाणी[1] का दांण चुकाया। छाप अमर थिर पटा लिषाया ॥
लिष दफ्तर दिल देस दिराया। भोग भगति भंडार भराया ॥ ७ ॥
षरचत षावत षूटै नांही। नित की पूंजी वधती जांही ॥
देज न धूंवा कूंत न नाजै। राव'र रंक भया इक राजै ॥ ८ ॥
तीन लोक मंडप विसतारा। जा विच आय जाय संसारा ॥
वाकै परै अभंगीराया। आसण एक अटल मट छाया ॥ ९ ॥
आदि अंत कै मिलीए[1] सैंना। परमानंद सुष पाया चैंना ॥
काळ करम का जौर न पूजै। उपजै षपै न आवै दूजै ॥१०॥
षंडन मंडन मूरत सेवा। आपो आपी अलष अभेवा ॥
मात पिता सुत भात[1] न कोई। हेका हेक निरंजन होई ॥११॥
तीरथ बरत न गिरही त्यागी। राग न रंग न को अनुरागी ॥
जोग न जिग जप तप नही सूरा। गाज[1] बीज अनहद नही तूरा ॥१२॥
चंद न सूर न धर आकासा। तेज पंज[1] तांह होत प्रकासा ॥
एको एकी अषंड उजाला। सरग नरग नही मध्य पीयाला ॥१३॥
अैसैं पांणी पिंड मिलांना। जीव सीव कै मांहि समांना ॥
ज्युं जल विंद जिंद नही जूवा। जीव सीव मिल हेको हूवा ॥१४॥

साषी

हरीया अणअछर विनां, जीवत मुगति न होय।
अणअछर कुं आषतां, भाग भलेरा जोय ॥१५॥

---

(७) १. (घ) जम डांणी का डांण।
(१०) १. (घ) मिलीया।
(११) १. (घ) भ्रात।
(१२) १. (घ) गाज न बीज न अनहद तूरा।
(१३) १. (घ) पुंज।

अथ छुटक साषी

हरीया ठग हरि नांव का, औरन का ठग नांहि।
पासीगर परदेस का, मारै मन कै[1] मांहि॥ १ ॥

क्या सुणीयां क्या सीषीयां, क्या है कथीयां ग्यांन।
जनहरीया[1] हरि पाईयै, धरीयै अंतर[2] घ्यांन॥ २ ॥

तहां न तारा चंद रवि, सासा नही उसास।
हरीया धर अंबर नही, सुरति ब्रह्म का वास॥ ३ ॥

पूरब अर पछिम मिले, मिले उतर दषणाधि।
हरीया इन ऊपरि मिले, जीव सीव समाधि॥ ४ ॥

सोरठौ

हरीया हाजरि रांम, दुनीयां देषै दूरि फिर।
कहा सरै सिध कांम, तन मन का परचा नही॥ ५ ॥

साषी

हरीया करणी क्या करै, गुर सुं वेमुष थाय।
तोरै तूटी वरत ज्युं, षबड़षत कौ जाय॥ ६ ॥

हरीया जुग जांणै नही, सत सबदन की[1] सार।
पूजै पांहण पूतळी, का आचार विचार॥ ७ ॥

प्यारौ पंजर भीतरैं, ताहि न जांणै कोय।
जनहरीया[1] सो जांणिसी, सुषी[2] सुहागिन होय॥ ८ ॥

---

(१) १. (क) कुं।
(२) १. (क, घ) हरीया जो हरि। २. (क) उंनमुन।
(७) १. (ख) आपा आतम।
(८) १. (क, घ) हरीया सोई। २. (ख) सषी।

सौंय[1] सुहागिन सूंदरी, सुष सागर भरतार।
दूजी दुषी दुहागनी, हरीया विन इकतार॥ ९ ॥

हरीया कोय न देषीया, पिता[1] मात बिन पूत।
त्रिगुण[2] सुरगुण यु भया, तांणै पेटैं सूत॥ १० ॥

त्रिगुण न्यारौ नांव[1] है, सुरगुण विनां न पाय।
किस कुं नदीयै वंदीयै, हरीया पिता'र [2]माय॥ ११ ॥

कपट न मावै भगति मैं, यु आंषिन मैं तुस।
हरीया सिष सतगुर विनां, हसती विन आंकुस॥ १२ ॥

हरीया[1] जा घट कपट है, ता [2]तैं भगति न होय।
अैसैं धरीया पवन मैं, लगै न [3]दीपग लोय॥ १३ ॥

दीपग वाती तेल मिल, मिंदर भया उजास।
हरीया गुर[1] सिष सबद मिल, पाया पेम [2]प्रगास॥ १४ ॥

जौ कोई चाहै मुगति कुं, तौ[1] सिंवरीजै रांम।
हरीया गैलै [2]चालतां, अैसैं[3] आवै गांम॥ १५ ॥

गांव बीच गैला घणा, भगति विचाळै भ्रम।
महरंम मिलीयां बाहिरौ, हरीया होय न गम॥ १६ ॥

जनहरीया महरंम[1] मिल्या, मुगति वताया राह।
भागी मन की भरमना, आसि पासि की साह॥ १७ ॥

---

(९) १. (क) होय।
(१०) १. (ख, घ) मात पिता। २. (ख) निरगुन।
(११) १. (घ) कुं। २. (ख) सब सुरगुन मैं आई, एक पिता एक माई।
(१३) १. (घ) जनहरीया। २. (क, ख) ता तन। ३. (क, ख, घ) दीया।
(१४) १. (क) सिष गुर। २. (क) प्रकास, (ख) जब हुय हरि का दास।
(१५) १. (क) निसदिन सिवरौ। २. (क) चालीयै, (ख) जब गैलै चलै, (घ) चालीयां। ३. (ख) तबही।
(१७) १. (क, ख) हरीया महरम तैं मिल्या।

चंद विहूंणा चांदणा, सूर विनां [1]परकास।
हरीया देष्या दिष्ट विन, भूमंडल आकास ॥ १८ ॥

देख तमासा सुन्य मैं, नैंन सुरति का षोलि।
जनहरीया[1] रसनां विनां, वचन[2] अषंडी बोलि ॥ १९ ॥

तांह तारे होते नही, होते चंद न सूर।
जनहरीया घर[1] ब्रह्म का, गाज बीज नही तूर ॥ २० ॥

जाप[1] अजंपा जांह नहीं, तांह[2] नही सास उसास।
हरीया जीव'र सीव का, एक अषंडी [3]वास ॥ २१ ॥

वात वदेही ब्रह्म की, कहीयां कोय न [1]जांनि।
का महरंम कुं दाषीयै, का अपना मन [2]मांनि ॥ २२ ॥

हरीया वात वदेह की, कहिवै सुनिवै नांहि।
निज मन जांनै [1]आपनौं, मिल वैठौं[2] दिल मांहि ॥ २३ ॥

एक अषंडी यार सुं, ताळी दसवैं द्वार।
हरीया सुष समाधि[1] का, फेर न कोई[2] सार ॥ २४ ॥

---

(१८) १. (क) अहवास।
(१९) १. (क, ख) हरीया जांह। २. (क) एक, (ख) वैंन।
(२०) १. (क) हरीया जांह सुष, (ख) जांह ब्रह्म है।
(२१) १. (क, घ) जाप न, (ख) जांह अजपा पुंहचै नही। २. (ख) जाप न पुंहचै सास। ३. (ख) एकमेक तांह वास।
(२२) १. (क, ख) मांनि। २. (क, घ) जांनि, (ख) हरीया और न जांनि।
(२३) १. (क, ख, घ) आपना। २. (क, ख, घ) बैठा।
(२४) १. (क, ख) जहां, (ख) सदा समाधि है। २. (ख) ता मैं फेर न। (घ) में यह साषी इस प्रकार है—
एक अषंडी यार सुं, सुरति लगी उर साच।
जनहरीया सो जांनिसी, अगमी अनभै वाच ॥

एक अषंडी ब्रह्म[1] की, जा[2] घट झिलमिल जांनि।
हरीया[3] उतिम साध की, या[4] ही रीत पिछांनि ॥ २५ ॥

मुष सिंवरैं सो मांनवी, सहजां साध सरूप।
हरीया सिंवरै जीव सुं, आतम[1] आनंद[2] रूप ॥ २६ ॥

हरि हिरदा मैं पाईयें, वेद कतेबां नांहि।
हरीया निसदिन सीवरीयै, रांम नांम घट[1] मांहि ॥ २७ ॥

वेद पुरांनां पुसतगां, दुनीया देषत ग्यांन।
हरीया नांव निरूप कौ, मेरैं अंतर ध्यांन ॥ २८ ॥

हरीया नांव निरूप कौ, दिष्ट मुष्टि मैं नांहि।
जिन पायौ जिन सिवरि कैं, तन मन वचनां मांहि ॥ २९ ॥

जप तप तीरथ जोग जिग, इन सेती क्या होय।
हरीया पांणी ओस का, पीयां[1] तिपत[2] न कोय ॥ ३० ॥

हरीया वचन वमेक का, सब कुं[1] कह्या[2] सुणाय।
आडा[3] वगतर भरम का, एक न अंग सुहाय ॥ ३१ ॥

करम जिन्हांदा चिकणा, नांषै वचन उझांट।
जनहरीया लागै नही, घड़ै चौपड़ै छांट ॥ ३२ ॥

सोरठौ

जब लग मन मैं आंट, सुधि बुधि नही सरीर मैं।
हरीया [1]अैसैं षांट, ढोरै अपनौ पारकौ ॥ ३३ ॥

---

(२५) १. (क) सबद। २. (ख) जोति। ३. (क) अैसी। ४. (क) हरीया।
(२६) १. (क) अति। २. (क) अनूप।
(२७) १. (क) आपा तन मन।
(३०) १. (ख) प्यास न भाजै। २. (क) होय।
(३१) १. (क) सकल। २. (क) समझाय। ३. (क) ताकै, (ख) वाकै।
(३३) १. (क) जैसैं।

साषी

जे चाहैं सुष जीवकुं, विषीया वाद निवारि।
हरीया निसदिन वीच मैं, रसनां रांम संभारि ॥ ३४ ॥

हरीया भेटौ रांम[1] कुं, अैसैं पारस लोह।
पारस[2] ती कंचन भया, रांम पलटि [3]मन मोह ॥ ३५ ॥

जुग में माया जाळ है, जा सुं उळझे जीव।
जनहरीया [1]परवस्य पड़े, सुळझन कैसैं थीव ॥ ३६ ॥

उळझ'रि सुळझ्या[1] साधकै, जे कोई सरणै जाय।
जनहरीया[2] जब ऊबरै, रांम नांम सिवराय ॥ ३७ ॥

बंदी छोडण जीव का, हैं जुग मांही साध।
हरीया संगति कीजीयै, पोहर घरी पल आध ॥ ३८ ॥

काटैं फंदन करम का, मेटै माया जाळ।
हरीया हरिजन[1] जांणीयै, काम क्रोध नही काळ ॥ ३९ ॥

सोरठौ

हरीया घट मैं जीव, निसदिन सिवरै पीव कुं।
सूतांई सुष थीव, सहजांई समाधि कौ ॥ ४० ॥

साषी

चाले थे[1] निज पंथ कुं, ग्यांन न गैला बूझि।
जनहरीया आघा पाछा, विच ही रह्या अळूझि ॥ ४१ ॥

---

(३५) १. (क) नांव। २. (क) या सेती, (ख) पारस मिल। ३. (क) ऊ मेटै माया मोह।
(३६) १. (क) परवस।
(३७) १. (ख) उळझ्यौ सुळझ्यै। २. (क) हरीया जब तैं।
(३९) १. (क, ख) हरिजन अैसा जांणीयै।
(४१) १. (ख) चलण करै।

विच लालच अर लोभ विच , विच माया अर मोह ।
हरीया पारस दूरि हुय , लागि रह्या नर लोह ॥ ४२ ॥

मुष बाणी अणभै कथै , कथि कथि भरै भंडार ।
जनहरीया मन विगसीयां , हौंन करै नर पार ॥ ४३ ॥

पारि[1] हौंन कै पंथ की , चालि कठण अणघाट ।
रांम नांम विन दूसरा , हरीया थटै न थाट ॥ ४४ ॥

हरीया हर लगा रहै , हेकै मन तन होय ।
रांम भजन विन [1]दूसरी , और[2] न [3]आवै कोय ॥ ४५ ॥

रांम रांम[1] कहता रहै , आगो लगा मंन ।
हरीया सती'र सूर ज्युं , धरै न पाछा तंन ॥ ४६ ॥

सूर सती साचे मतै , गहै अगनि षग धार ।
हरीया हरिजन कै सदा , रांम [1]रांम मुष चार ॥ ४७ ॥

हरीया सती'र सूरवां , पूठ न पाछी फेर ।
हरिजन मरणो आदरै , रांम न [1]छडै टेर ॥ ४८ ॥

रांम [1]रांम कुं सो भजै , तजे आन की आस ।
जनहरीया गुर धरम गहि , षेले षेल निरास ॥ ४९ ॥

नांव निरासा ध्यांन धरि , तन करि जाने झूंठ ।
साचे मन सुं सिवरीयै , हरीया डिगै न मूंठ ॥ ५० ॥

---

(४४) १. (ख, घ) पार ।
(४५) १. (ख) दूसरा । २. (ख) दाय, (घ) वात । ३. (घ) धारै ।
(४६) १. (घ) नांव ।
(४७) १. (ख) नांम, (घ) रांमो रांम उचार ।
(४८) १. (घ) छाडै ।
(४९) १. (ख, घ) नांम ।

जनहरीया मन मूठ गहि, सबद भळाका सांधि।
काळ कुत्रिधि कुं मारीयै, तन तरगस कुं [1]बांधि ॥ ५१ ॥

सबद भळका[1] सांधिकै, जीता जम सुं जंग।
हरीया हरि आगा[2] लीया, सदा आपनै संग ॥ ५२ ॥

जनहरीया मारेल मन, सारेला निज तत।
न्यारेला दुनीयांन सुं, यारेला अवगत ॥ ५३ ॥

धारेला गुर धरम कुं, डारेला दुरमति।
टारेला जम चोट कुं, लारेला रहमति ॥ ५४ ॥

गारेला गुण गरब कुं, हारेला हालेस।
जनहरीया षारेल जुग, प्यारेला परमेस ॥ ५५ ॥

तांतौ सिष सतगुर तणौ, काचै धागै जेम।
जनहरीया तूटै नही, नांव नेम अर पेम ॥ ५६ ॥

कन-फूंका कन-फाड़ गुर, ज्युं जुग तांतौ जोय।
जल मैं[1] फूटी नाव ज्युं, हरीया पार न[2] होय ॥ ५७ ॥

जनहरीया गुर जगत का, फूंकै फाड़ै कांन।
मेला जीव'र सीव का, सतगुर सोई जांन ॥ ५८ ॥

सतगुर सोई जांनीयै, एक अषंडी तत।
जनहरीया गुर दूसरा, कहन सुनन की वत ॥ ५९ ॥

कहन सुनन की वात [1]का, हरीया विवरा[2] थाय।
कोई महरंम हुय दाषवै, को[3] कहै वात वनाय ॥ ६० ॥

---

(५१) १. (ख) द्वितीय और चतुर्थ चरण विपर्ययसे हैं।
(५२) १. (घ) भळाका। २. (ख, घ) आघा।
(५७) १. (ख) हरीया। २. (ख) पार न पैला।
(६०) १. (ख) कौ। २. (ख) विवरौ। ३. (ख, घ) कोई।

वात वताई जुग ठग्या, ठगि ठगि बिंध्या भार ।
हरीया सतगुर सबद[1] कुं, विरला बूझणहार ॥ ६१ ॥

हरीया कठण बूझिबौ, दुलभ चलिबौ[1] राह ।
सो सुलभ संसार मैं, ता दिस [2]जांहि घणाह ॥ ६२ ॥

सबद कहाया कहि लीया, भरम न भागा चिष ।
जनहरीया जब जांणीयै, गरू न निसचै सिप ॥ ६३ ॥

सो गुर निसचै जांणीयै, सबद कहै समझाय ।
हरीया पहली रवि तपै, पीछै विरषा थाय ॥ ६४ ॥

रवि तता जल सीवळा, सिप सतगुर का भाव ।
हरीया रवि गुर ताप तैं, सब गुण[1] होत सुवाव ॥ ६५ ॥

ग्यांन मगन गळतांन जू, अगमी पार अपल ।
सिष साषा निरभै भया, पाया गुर जैमल ॥ ६६ ॥

प्रथम सतगरू परषीयै, ग्यांन ध्यांन दिढ रीत ।
हरीया पीछै सिष परषि, दासा लुघता प्रीत ॥ ६७ ॥

दुतीया द्वीरघ [1]धेषता, ता सत-सबद न दाषि ।
या सेती दुष ऊपजै, हरीया नषां न राषि ॥ ६८ ॥

जाति पांति विवरौ करै, भांणै आंणै भिन ।
हरीया इन परसाद मैं, पाप न कोई पिन ॥ ६९ ॥

जांणि जिमावै साध कुं, दिल विच रषै दूज ।
जनहरीया ऊगै नहीं, बीज वाहीया भूंज ॥ ७० ॥

---

(६१) १. (ख) जनहरीया गुर सबद कुं, (घ) का ।
(६२) १. (ख) चलणौ । २. (ख, घ) पुलैं ।
(६५) १. (ख) सुष, (घ) ही ।
(६८) १. (घ) देष मन ।

हरीया लोकाचार की, या तौ दूज न जांनि।
दूज धरैं दिल भीतरैं, होय भाव की हांनि ॥ ७१ ॥

जनहरीया गुण लीजीयै, कहा जाति[1] सुं कांम।
जाति वडेरी क्या करै, औगुण भरीया ठांम ॥ ७२ ॥

वाकै उर औगुण वसै, भाव न भगति सुहाय।
हरीया कबहु भूलि कै, जाकै संग न जाय ॥ ७३ ॥

जौ [1]वाकै संग जाईयै, तौ तन मन की हांनि।
जनहरीया दुष देह कुं, दूणा[2] देसी आंनि ॥ ७४ ॥

हरीया नीकौ बोलिबौ, औसर आयै बोलि।
यु[1] नारी अपनै नाह कुं, मुष देषावै षोलि ॥ ७५ ॥

नारी अपनै नाह विन, घूंघट षोलि दिषाय।
हरीया परमुष निरषतां, सोभा भली न काय ॥ ७६ ॥

औसर आयै बोलिबौ, हरीया हरि कै हेत।
हरि हेतारथ बाहिरौ, ता मुष पड़सी रेत ॥ ७७ ॥

रांम रांम[1] कौ बोलिबौ, जुग मैं साचौ जांनि।
हरीया हरि[2] विन बोलिबौ, सोई झूठी बांनि ॥ ७८ ॥

बांणी बोलै पुरस[1] की, मांहि जगत की मति।
हरीया कैसैं हंस की, काग न चालै गति ॥ ७९ ॥

---

(७२) १. (घ) जगत।

(७४) १. (ख) जाकै। २. (घ) दूणौ।

(७५) १. (ख, घ) में 'यु' नहीं है।

(७८) १. (ख, घ) नांम। २. (घ) या विन दूसरा। यहाँपर तीन साषियाँ और हैं परन्तु वे 'रांम नांम सिवरन विचार' में ११–१२–१३ वीं ही हैं।

(७९) १. (घ) साध की।

वात कहै दिस पछमि की, बैठे पूरब देस ।
जनहरीया जब जांणीयै, अै कूड़ा उपदेस ॥ ८० ॥

ररंकार सिवरण सहज, नाभ-कवल असथांन ।
हरीया पछमि देस कु, पुंहचन का परवांन ॥ ८१ ॥

रांम रांम रसनां रट्या, हरीया पूरब देस ।
कीया पीयाना पछमि कुं, ममै का नही लेस ॥ ८२ ॥

हरीया पछमि देस की, वाट विषम घर दूरि ।
सुरित सबद जांह संचरै, ताप त्रिगढ[1] कुं चूरि ॥ ८३ ॥

हरीया पछमि देस का, कौंण नांम कुंण ठांम ।
अरध अषंडी नांम है, सुन्य सहर विसरांम ॥ ८४ ॥

धारि ससतर ग्यांन[1] का, क्या औरां सिर वाहि ।
हरीया वाहौ आप सिर, षाली कदे न जाहि ॥ ८५ ॥

षाली कदे न जांणीयै, आपा ऊपरि षेल ।
हरीया आपा [1]बाहिरौ, जोयज होसी हेल ॥ ८६ ॥

माया नांना भांति की, हरीया जुग मैं जांनि ।
काहू सुत वित असतरी, काहू अणभै बांनि ॥ ८७ ॥

हरीया सुत वित असतरी, अणभै बांणी बोलि ।
एता मन सुं दूरि करि, हरि निर अंतर षोलि ॥ ८८ ॥

काया माया आस तज्य, कथणी बकणी छाडि ।
हरीया होता परम सुष, जांह निज मंनवा गाडि ॥ ८९ ॥

---

(८३) १. (ख) त्रिगुण कुं, (घ) त्रिविध गढ ।
(८५) १. (घ) ग्यांन ससतर धारिकै ।
(८६) १. (ख, घ) षेल विन ।

सांग ऊंन अर सूत का, तिलक मिटी का देष।
हरीया हरि की भगति विन, बावु[1] भला न भेष ॥ ९० ॥

घांना भेष[1] बनाय कै, भांड छळन कु जाय।
हरीया अैसैं हरि मिलैं, तौ सब[2] सांग धराय ॥ ९१ ॥

पुरष पलटि महरी वनी, मंगन कै अधिकार।
ताहू कुं धन देत है, हरीया ध्रिग संसार ॥ ९२ ॥

नारी रूप बिनाय[1] कै, मेट[2] पुरष मरजाद।
देषत [3]ही जुग भरमीया, हरीया कौंन सुवाद ॥ ९३ ॥

नारी आगै पुरष कै, नाचै करै निरत।
जनहरीया रीझै नही, ताहि नीयारौ चित ॥ ९४ ॥

नारि न नीकौ नाचिबौ, नां नीकौ नर देष।
हरीया नाचन देषबौ, दोउं विनां वमेष ॥ ९५ ॥

तन तैं भेष बनाय कै, मन का मरम न जांनि।
हरीया जीव न जांनीयौ, मूंवां के ही हांनि ॥ ९६ ॥

हरीया त्यागी [1]अर ग्रिही, सुरति रांम सुं [2]सिंध।
भावै धागा गूदड़ी, भावैं पघड़ी [3]बिंध ॥ ९७ ॥

अनातम क्या जांणसी, रांम भजन की रौंस।
अलू[1] कुं रिव आंषीयां, हरीया[2] देषण सौंस ॥ ९८ ॥

---

(९०) १. (घ) बाबू।
(९१) १. (ख) सांग। २. (घ) सबको।
(९३) १. (ख, घ) बनाय। २. (घ) मेटै। ३. (ख) देषत जुग अंधा भया।
(९७) १. (घ) क्या। २. (घ) संध। ३. (घ) बंध।
(९८) १. (ख) हरीया ऊगौ सूर कुं, (घ) अलू दिन ऊगां पछै। २. (ख) अलु।

हरीया गहनौ गौरि[1] कुं, पहरायौ किस कांम।
यु मिनषा तन [2]पायबौ, विनां भजन वेकांम ॥ ९९ ॥

हरीया ग्यांन वमेष तैं, उर उपजै वैराग।
गुर तैं गोविन्द पाईये, कुछि करणी कुछि भाग ॥१००॥

हरीया ढूलौ[1] ढूलीयां, रमै कुवारी नित।
सागी [2]पीतम सुं [3]मिलै, रांमति [4]मेल्है चित ॥१०१॥

जप तप तीरथ आंन[1] व्रत, कन्या ढूलड़ी जेम।
हरीया हरिजन परहरै, हरि सुं [2]लागै [3]पेम ॥१०२॥

रांमति[1] रमती ढूलीयां, कन्या[2] कुवारी[3] थाय।
रुतवंत पीछै रमण की, हरीया [4]प्यास मिटाय ॥१०३॥

हरीया [1]रुतवंत सुंदरी, रहै रांम[2] सुं रत।
दूजी[3] रुतवंत बापड़ी, विषै [4]विलासा मत ॥१०४॥

सुनि वातां सषीयन षिनै, करत कुंवारी हौंस।
हरीया [1]पीव विन परसीयां, होय[2] नियारी रौंस ॥१०५॥

---

(९९) १. (घ) गौर कुं। २. (घ) पायकै।
(१०१) १. (ग) ढूल्ही। २. (ग) परण्या। ३. (ग) मिली। ४. (ग) मेली।
(१०२) १. (ग) भ्रम। २. (घ) लावै। ३. (ग) हरीया जब जन छाडिदै, आतिम उपजै पेम।
(१०३) १. (ग) जबतैं। २. (ग) तबतैं। ३. (ग) किनीया। ४. (ग) आस।
(१०४) १. (ख) सोई। २. (ख) हरीया हरि, (ग) एक रांम। ३. (ख) बीजी, (घ) दूजी दुनीया। ४. (ग) आन सुं।
(१०५) १. (घ) पति। २. (ख) रही, (ग) वा सुष नावै रौंस।

हरीया होडा[1] होड करि, हटि पचि मरौ न कोय।
सहज रांम [2]सुष पाईयै, भाव[3] भजन गुर होय ॥१०६॥

हरीया परणी [1]पीव सुं, षेलै[2] अंग लगाय।
दूजी वेगम देष[3] करि, आवै ज्युं उठि जाय ॥१०७॥

हरीया पेम पीयास विन, बौहत वनावे वात।
अंतर जांमी आप मैं, ता ही न जांणै घात ॥१०८॥

देष पगुं कै [1]कंकणी, बींद कहै सब कोय।
हरीया वांना पहरि[2] करि, भगत[3] भया बौह लोय ॥१०९॥

हरीया [1]वांना पहरीयां, यु[2] निज भगता नांहि।
निज[3] भगता सो जांणीयै, निज मन रता[4] मांहि ॥११०॥

हरीया हिरमच लायकै, बैठे विरकत होय।
विरकत सोई जांणीयै, विषै [1]विरता सोय ॥१११॥

हरीया कुल ध्रम साध कै, भोळा भोळी भाय।
ज्युं ज्युं कुल ध्रम परहरै, हरि ध्रम आवै दाय ॥११२॥

हरीया डाकिण मंत्र कै, जरष होय वस्य जेम।
रांम मंत्र वस्य रांम है, नर सिवरौ नित नेम ॥११३॥

रांम मंत्र पढि पढि हुवा, हरीया हरिजन पारि।
डाकिण मंतर सीष करि, हाले तन मन हारि ॥११४॥

---

(१०६) १. (ग) हौंस। २. (ग) हरिसुष सहजां। ३. (ख, ग) भजन भाव।

(१०७) १. (ख) सूंदरी। २. (ग) भेटै। ३. (ग) क्या करै।

(१०९) १. (ख, घ) कंकणा, (ग) क्वारैरे पग कंकणा। २. (ख, ग) पहरिकै, (घ) पहरीयां। ३. (ग) ऊ हरि भगता होय, (घ) युं नीज भगति न होय।

(११०) १. (ग) भेष वनायकै। २. (ग) सो निज, (ग) यु हरि। ३. (ग) हरि। ४. (ग) रता हरि सुं मांहि।

(१११) १. (ग) अविगत रता सोय।

जनहरीया कैसैं मिलै, रांम नांम की सांट।
गरू धलाली बाहिरौ, होय न सौदौ हाट ॥११५॥

गरू धलाली बाहिरौ, सिवरन सौदौ लेह।
हरीया भाव'र भगति कौ, भाजै नांहि संनेह ॥११६॥

हरीया रांम संभारीयै, जब लग साजी देह।
पछैं पड़ेसी[1] अंतरौ, तूटै सकल संनेह ॥११७॥

जनहरीया आयौ हिमैं, रांम मिलन कौ घाट।
जपता ढील न कीजीयै, रसनां वहती वाट ॥११८॥

हरीया सुरित'र सबद की, एक अषंडत डोर।
माया कौ डर को नही, जम का लगै न जोर ॥११९॥

हरीया सहजां रांम रटि, रसनां चटपट मांहि।
घट छूटंतै प्रांण लग, हटकि राषियै नांहि ॥१२०॥

जौ हटकी तौ क्या भयौ, सुरति सबद कै संग।
हरीया लिव हरि सुं लगी, आठुं पौहर अभंग ॥१२१॥

जनहरीया ममकार की, मुष सिवरन की बांनि।
रोम रोम ररंकार कौ, जोग न आयौ जांनि ॥१२२॥

जोग जांनि ररंकार कौ, सहज भजन जब होय।
रसनां विच ममकार कौ, हरीया संग न कोय ॥१२३॥

रसनां मुष ममकार मिट, रटि सहजां ररंकार।
हरीया [1]इंमृत छाडि करि, विषै न पीवणहार ॥१२४॥

---

(११७) १. (घ) पड़सी।
(१२४) १. (घ) हरीया आघा पाव धरि, पाछा कदे न धारि।

विष पीजै कुंण कारणै, ता सेती मरि जाय।
हरीया इंमृत पीव करि, कलि अजरांमर थाय ॥१२५॥*
कीया भजन सुष होत है, हरीया सहजां नांहि।
ब्रह्म मिलन की वीच मैं, हौंस रही मन मांहि ॥१२६॥
ममा रहत ररंकार हुय, एक अषंडी जाप।
हरीया मिलीयै ब्रह्म सुं, पूरबलै[1] परताप ॥१२७॥*
हरीया नीर तळाव का, ऊंच नींच भरि ल्यात।
अंतर दुविध्या ऊपनी, तातै रीता जात ॥१२८॥*
आपा देषै उलटिकै, ज्युं जल आतम अेक।
हरीया देषै दोय करि, तातै भया अनेक ॥१२९॥
एक अनेकां वीच मैं, जांह तांह फिर फिर जोय।
हरीया जल जल एक है, यु ऊंच नीच नही कोय ॥१३०॥
मन तैं ऊंच न नींच गिन, तन तैं लोकाचार।
हरीया तन मन मिट गई, पाया ब्रम विचार ॥१३१॥
नीर मिल्या जब नीर मैं, निजर न दीसै दोय।
हरीया यु हरि अंतरौ, गिनै स मूरष होय ॥१३२॥
जनहरीया सिष कांन गुर, ज्युं जुग तांतौ जोय।
जल मैं फूटी न्याव ज्युं, पार न पैला होय ॥१३३॥
कंचन काच कथीर कौ, पहरि अभूषन अंग।
हरीया सोभा होत है, ऐसा करियै संग ॥१३४॥

---

(१२५) * (घ) प्रतिमें इसके स्थानपर निम्न साषी है—

हरीया आघा पांव धरि, करि पाछा कुंण काज।
साध सती अर सूरवां, पाछा पड्यां अकाज॥

(१२७) १. (घ) गुर गोबिंद। * यहाँतककी छुटक साषियाँ मूल प्रतिकी हैं।

(१२८) * साषी संख्या १२८ से संख्या १५० तकका पाठ 'ख' प्रतिसे लिया गया है।

संगति विषै विकार की, ता सेती तन हांनि ।
जनहरीया मन परहरै, तौ सतसंगति जांनि ॥१३५॥
संगति साध असाध की, जौ कोई जांनि करेस ।
जनहरीया जुग बंधनै, पंतरि नांहि परेस ॥१३६॥
गुन औगुन जांनै नही, हरीया नर बंदै ।
पूजे डंभक पाषंडी, संतन कूं नंदै ॥१३७॥
मुष मकर मैं रैंन का, हरीया दरसै नांहि ।
उदै भया जब सूर का, मुष परकासै मांहि ॥१३८॥
घट मकर मुष आतमा, ग्यांन सूर अभ्यास ।
हरीया जब तैं होत हैं, मुष आतम परकास ॥१३९॥
देव न अैसौ देहरौ, निजर न आवै कोय ।
हरीया इन कुं पूजीयै, आप ही करता होय ॥१४०॥
दूजा देवळ देवता, कीया कराया होय ।
तन देवळ हरि देवता, हरीया कीया न होय ॥१४१॥
दुनियांई देवळ कीया, दुनियांई कीया देव ।
हरीया कहा पळापसौ, करि करि इनकी सेव ॥१४२॥
हरीया देवळ देवता, कीया पथर सूं कोरि ।
बोलाया बोलै नही, सेवग माथौ फोरि ॥१४३॥
हरीया देही भीतरैं, है अणघड़ीया देव ।
तन देवळ कूं पूजीयै, सहज देव की सेव ॥१४४॥
जनहरीया चकमक कड़ौ, गुल भी इनके संग ।
सतगुर मिल ठमका दीया, पावक पसरचा अंग ॥१४५॥
चित चकमक अर ग्यांन गुल, वचन कड़ै सु झाड़ि ।
जनहरीया मिल एकठा, पावक हरि कुं पाड़ि ॥१४६॥
रांम नांम संसार कै, देषत भूली जांनि ।
हरीया अणभेदी अनंत, जन कोई भेद पिछांनि ॥१४७॥

रांम नांम संसार मैं, हरिजन जांननहार।
ज्युं धूकरियौ धूरि मैं, जांनै बूरनहार ॥१४८॥
हरीया चित वातां वसै, सिवरन कौ नही सुष।
सिवरन कौ सुष जांणीयौ, चुप मन चाहै मुष ॥१४९॥
हरीया मन वातां रचै, जव त्रिवाच विरंच।
जव त्रिवाचन सुं रचै, तव मुष वात न रंच ॥१५०॥
उदै भया जव ग्यांन रवि, मुष आतम दरसाय।
हरीया दरपन वीच उर, निस अग्यांन नसाय ॥१५१॥*
ग्यांन उदै हरि दरस उर, दरपन मैं मुष देष।
हरीया निस अग्यांन फुन्य, हीन कला क्रम रेष ॥१५२॥
गुर तरवर गहरा अनंत, सुष सीतलता छांह।
जनहरीया मिल वस्य करि, ताप न उपजै तांह ॥१५३॥
गुर तरवर गुन क्या करै, उर औगुन उपजाय।
सुष सीतल कैसै थीयै, हरीया दूर वसाय ॥१५४॥
पर गुन औगुन आपनां, उलटि विचारै आप।
जनहरीया लागै नही, ता कुं सीत न ताप ॥१५५॥
जनहरीया जल एक है, जां सुं उपजी जिंद।
ता विच रांम विराजीया, नर मूरष सौ निंद ॥१५६॥
हरीया आतम एक है, करम जू जवा जांनि।
दुनीयां बंधी भरम सुं, संतां रांम पिछांनि ॥१५७॥
कायर कुं भावै नही, सत सूरा की वात।
जनहरीया तन जुर थकी, रुच न उपजै भात ॥१५८॥

सोरठौ

सत सूरा की वात, हरीया भावै सूर कुं।
कायर कुं न सुहात, चौर न चाहै चांदणौ ॥१५९॥

---

* सं० १५१ से सं० २१९ तककी साषियाँ 'घ' प्रतिसे ली गई हैं।

साषी

देही भीतर देवता, सौं अणघड़ीया देव ।
जनहरीया ईन देव की, करौ निरंतर सेव ॥१६०॥
किनकै जनम्यौ उतिम घर, किनकै मध्यम होय ।
जनहरीया दोउ भला, आतम रता सोय ॥१६१॥
सब सरणाई रांम है, असरण एको रांम ।
जनहरीया इन बाहिरौ, कोय सरै नही कांम ॥१६२॥
यारी कीजै एक सुं, आपा मन परचाय ।
दूजा दोसत से करै, सोई दोझष जाय ॥१६३॥
हरीया हरि वस्य साधकै, सेवग कै वस्य साध ।
सेवग दासातन करि, साधु रांम आराध ॥१६४॥

सोरठौ

घट मांही घड़ीयाल, आठ पौहर लागी रहै ।
हरीया राग रसाल, रग रग भीतर होत है ॥१६५॥

साषी

विषै विकारी अधम नर, हरि सुं प्रीत न काय ।
हरीया वां कुं साध विन, कौन कहै समझाय ॥१६६॥
दंदी वादी जीव कुं, रांम न दरसै कोय ।
हरीया गुर उपदेस विन, भलौ किसी विध होय ॥१६७॥
भलौ किसी कुं चाहीयै, बुरौ न कीरीयै कोय ।
जनहरीया सब कुं कह्या, रांम भजौ नर लोय ॥१६८॥
हरीया भव जल तिरन कुं, गरू वताया भेव ।
रांम भजन की नाव करि, मन षेवटीया षेव ॥१६९॥
जे कोई करि है तिरन कुं, सरन संत की साहि ।
हरीया आपौ आप दै, ता सेती निरबाहि ॥१७०॥

मिमता माया मोह मन, संसा सोग सरीर।
हरीया जब संगी ईता, हरि सुष लहै न सीर ॥१७१॥

इक मन षांचै नीर कुं, इक मन षांचै तीर।
हरीया पीचौ तांण में, वहग्यौ सास सरीर ॥१७२॥

हरीया सतगुर कह गया, रांम सबद घट मांहि।
आपा उलटि न देषीयै, तब पतिआवै नांहि ॥१७३॥

हरीया आपौ उलटि कै, देष्या जब पतिआय।
मेरै मोष'र मुगति कौ, संसौ रह्यौ न काय ॥१७४॥

जिन आ जल तैं देह धरि, करि नष चष सुरति।
हरीया वाकुं सिवरीयै, अधर एक मुरति ॥१७५॥

अधर एक इकतार विन, धारै धरीया देव।
हरीया मरि मरि औतरै, अमर न पाया भेव ॥१७६॥

अैसै अंध अग्यांन नर, आपा भयौ अचेत।
हरीया बूहै बीज विन, कहा निपावै पेत ॥१७७॥

हरीया कुलि का देव करि, नर नारी मिल पूज।
अचेतन सुं एकता, चेतन सेती दूज ॥१७८॥

हरीया हेकौ रांम है, सब का सिरजनहार।
या विन धारै दूसरा, पड़ै गैब की मार ॥१७९॥

सिवरन तत मत साधकौं, जनहरीया सति जांनि।
पूजा मान परमोधता, वे गम तांहि वषांनि ॥१८०॥

रांम नांम निज भगति की, पावौड़ी गुर दाष।
हरीया या विन दूसरी, ताहि न हिरदै राष ॥१८१॥

जनहरीया जल सिंध का, थाघ न थाग्यों जाय।
सहज भजन घट भीतरै, ताहि न को पतिआय ॥१८२॥

जनहरीया जल अरस का, वरसै तौ वरसाय।
ममंकार उचार मुष, सिवरै तौ सिवराय ॥१८३॥

सोरठौ

हरीया मुष ममंकार, तब सहजां सिवरन नही।
मरै घरै आकार, मेला जीव'र सिव विन ॥१८४॥

साषी

जनहरीया मावै नही, मुष भीतर ममकार।
एक अषंडी हुय रह्या, रोम रोम ररंकार ॥१८५॥
जनहरीया मन पवन चित, पांच पचीसूं थीर।
न्यारो परमानंद सुप, सहजां होत सरीर ॥१८६॥
जनहरीया गुर सरन तैं, भरम करै चकचूर।
जाय चढै धोकान जब, दाग पाग तैं दूर ॥१८७॥
जनहरीया मन आप है, इन कुं और न जांनि।
जौं मन तन तै दूरग्यौ, तौ सब रस की हांनि ॥१८८॥
हरीया अणघड़ एक है, दूजा घड़ीया घाट।
विनां नीव जिन मंडीया, लप चौरासी हाट ॥१८९॥
लप चौरासी वीच मै, हरीया आतम ऐक।
तन मन सेती पंतरघा, लागा भरम अनेक ॥१९०॥
हरीया थांन मुकांम कुं, दुनीयां पूजै जाय।
वाकै थांन न थापना, मूरत धरी न काय ॥१९१॥
हरीया वेद पुरांन पढि, केता पिंडत होय।
आतम परचै वाहिरौ, साधन सूझै कोय ॥१९२॥
हरीया अैसा को नही, हरि सागर सा मिंत।
यौं ही भांजै भूष दुष, यौं ही मेटै चिंत ॥१९३॥
हरीया हरि सा को नही, अैसा दिल दरीयाव।
यौं ही ऐकै पलक मै, बोड़ै तठ तळाव ॥१९४॥
हरीयां जुग हासिल करै, षेत कुंवा किरसांन।
वषतावर सो जांनीयै, अंतर उपजै ग्यांन ॥१९५॥

जनहरीया धनमांल कुं, परचै वरचै पाय।
भाव भगति गुर ग्यांन तैं, जनम सफल हुय जाय ॥१९६॥

धन धन कीयां न पाईयै, धन मन सेती नांहि।
हरीया दीया हाथि का, ऐथ अगौतर मांहि ॥१९७॥

जनहरीया रतौ रहै, हरिजन हरि के संग।
जौं राचै हरि नांव विन, तौ मन वाचा भंग ॥१९८॥

अजर सबद जरीयां विनां, कथै वकै सो कूर।
जनहरीया अजरा जरै, साच वाच मन सूर ॥१९९॥

रांम नांम कुं नत भजौ, रसनां होठ समेत।
हरीया जोग'र जुगति विन, सहज कौ सिवरेत ॥२००॥

जनहरीया सिवरन सहज, रसनां रग रग मांहि।
रोम रोम ररंकार हुय, ममंकार मुष मांहि ॥२०१॥

सब ही लसकर रांम का, के कायर के सूर।
सांम कांम साचै मतै, हरीया ता मुष नूर ॥२०२॥

गुर दरसन परसन घट्यौ, घट्यौ पेम अर भाव।
हरीया हरि सिवरन घट्यौ, घट्यौ दास कौ दाव ॥२०३॥

गुर दरसन परसन सदा, सदा पेम अर भाव।
हरीया हरि सिवरन सदा, सदा दास कौ दाव ॥२०४॥

गुर दरसन परसन नही, नही पेम अर भाव।
हरीया हरि सिवरन नही, जग डूबण कौ दाव ॥२०५॥

तिरन करै भव जगनि कुं, तौ सरन संत की साय।
हरीया राषै डूबतां, रांम सिवर सिवराय ॥२०६॥

रांम नांम कुं सिवर कै, हरिजन उतरे पार।
दूजी दुनीयां दीन विन, गए जमारौ हार ॥२०७॥

साध समागम नां कीया, नांव न कीया सनेह।
हरीया मरि मरि औतरै, लष चौरासी देह ॥२०८॥

सासतर वेद पुरांन पढि, करि कर अरथ अनेक ।
हरीया जब क्या जांणीयै, रांम न ध्यायौ ऐक ॥२०९॥
छुरी कटारी सेल पग, बांणां कहक बंदूक ।
हरीया मरणैं कुं घणी, एको भालि अचूक ॥२१०॥
सबद भालि अंतर लगी, हरीया एक अपंड ।
जनमैं मरैं न दूसरैं, जम का लगैं न डंड ॥२११॥
हरीया रसनां मुप सहत, अछर पढ़ते दोय ।
एकैं अछर लागि करि, अरथ नांम जब होय ॥२१२॥
ममंकार का पाट मुप, उर अंतर ररंकार ।
हरीया सहज उचारतां, नांम भये निरकार ॥२१३॥
हरीया निज निरकार की, महरम बिन गम नांहि ।
एक अपंडी होत धूनि, सुनि सिपर कै मांहि ॥२१४॥
आए जीव अनादि तैं, जहां उपजै तहां आदि ।
हरीया उतिपति कौंण सैं, ऐसै ब्रह्म अग्यादि ॥२१५॥
बंधे विषैं सनेह सुं, तातैं कहीयैं जीव ।
अलप निरंजन आप है, हरीया न्यारौ पीव ॥२१६॥
माया उतपत्य कारणैं, धरीया अनत सरूप ।
हरीया जो उपजै षपै, रहता नांम निरूप ॥२१७॥
ब्रह्मा बिसन महेसवर, वेद कतेब कुरांन ।
हरीया नांव निरूप का, पार न कोई जांन ॥२१८॥
एक रांम कुं सिवरीयै, दूजे तत न मत ।
ध्यावैं सौ पावैं सही, हरीया साषी संत ॥२१९॥
हरि रस प्याला भरि पीया, रोम रोम एकंत ।
हरीया मुप भरि क्या कहुं, महमा कोटि अनंत ॥२२०॥*

---

* संख्या २२० से संख्या २६५ तककी साषियाँ 'ग' प्रतिसे ली गई हैं ।

जनहरीया मन एक विन, मिलै न सौदे सट।
जुग सारों फिर आवीयौ, लष चौरासी हट ॥२२१॥
एक अमोलिक वसत का, विरला विणजणहार।
जनहरीया तोटा नही, लाहैं अंत न पार ॥२२२॥*
लष चौरासी हाट मैं, वसत अमोलिक एक।
हरीया जांणी विणज कै, लीया लाभ अनेक ॥२२३॥
एको आतिम जांणीया, से सरवंगी साध।
हरीया आतिम रांम विन, सोई आंन उपाध ॥२२४॥
जुग में साधु जांणीयै, वाकौ उलटी पेल।
घट मैं आतिम पाईयै, ज्युं तिल मांही तेल ॥२२५॥
ज्युं तेलन मैं तेल है, जाकी वास सुगंध।
ज्युं साधन मैं साध है, बंधन तैं निरबंध ॥२२६॥
जब तैं आपौ उलटि कै, आपनपौ उलषाय।
आपनपौ विन देषीयां, दुनीयां गोता षाय ॥२२७॥
रांम रांम रसनां कह्या, कंठ रिदै असथांन।
जनहरीया ररंकार का, धख्या नाभ मैं ध्यांन ॥२२८॥
सहज नांभ कुं धाबि के, सुरति चढै असमांन।
हरीयै निज पद परसीया, वेहद का वसवांन ॥२२९॥
रोम रोम ररंकार की, अषंड एक धुनि होय।
जनहरीया जाकै लगी, तन मन जांणै सोय ॥२३०॥
त्यागी सोभ्या जगत मैं, करता है सब कोय।
जनहरीया सत सबद का, भेदी विरला होय ॥२३१॥
लाज लाज मैं जुग वहैं, तरक त्याग मैं जोग।
जनहरीया सतगुर विनां, सांसा मिटै न सोग ॥२३२॥
वादल रूपी संत है, अंद सरूपी रांम।
रांम सकल जीव सिरजीया, जन सिवरावै नांम ॥२३३॥

---

* यह साषी पतिव्रताके अंगमें पाठभेदसे सं० ४५ में आई है।

हरीया घट घट व्यापही, अंतरजामी एक।
करता कीया नां हुवै, वाका कीया अनेक ॥२३४॥
साध संगति लीयां रहै, और न कोई लेस।
जनहरीया जाकै सदा, भाव भगति परवेस ॥२३५॥
जांनि भजै नही रांम कुं, देष भया जा चंध।
जनहरीया जम घालिसी, जाकै गल़ मैं फंध ॥२३६॥
इमी पियाला छाडि कै, विषीया सेती नेह।
हरीया वाकै करम कौ, कदै न आवै छेह ॥२३७॥
हरीया रांम न जांणीयौ, विना ग्यांन गुरगम।
गले भरम की जेवरी, जहां तहां षांचे जंम ॥२३८॥
पोथी पतड़ा वाचि कै, आतिम लहै न कोय।
हरीया आतिम पाईयै, आपौ उलटिर जोय ॥२३९॥
हरीया दासन दासगी, दुनीदार का देस।
सबद भळका साध का, तहां करे परवेस ॥२४०॥
हरीया साधन संचरै, सबद भळका जाय।
जाकै लागा सो लषै, औरां के नहिं भाय ॥२४१॥
हरीया दुनी दिसांवली, भरमत आपा मांहि।
उदैमांन गुर ग्यांन विन, जब तैं निहचै नांहि ॥२४२॥
पूछताछ मैं दिन गया, धोषा मिट्या न मंन।
पोथी पतड़ै विलंबीया, रांम रह्या परछंन ॥२४३॥
उलटि वाय आकार कुं, जाय मिली निरकार।
हरीया नष चष रोम मैं, भया परम सुष सार ॥२४४॥
जांणि बूझि हरि कुं तजै, औरां सेती चित्त।
हरीया जम दरगाह मैं, मार पडेसी नित्त ॥२४५॥
रांम नांम रातौ नही, मातौ माया मोह।
हरीया का तौं चेड़सी, तातौ करि करि लोह ॥२४६॥

हरीया मारौ सबद को, सारो परित न होय।
परियौ रीवै रैंन दिन, अंदर जांणै सोय ॥२४७॥

हरीया सूरा सहल है, सहल त्याग परधन।
पेम भगति गुर भावनां, दौंरौ दासा तन ॥२४८॥

माया अपनी जांनि करि, सोई परचनहार।
जनहरीया पांनी विनां, सोई बूडणहार ॥२४९॥

नाभी नष चष वीच मैं, अपंड एक धमकार।
हरीया अहरन घन विनां, लगि रही मांरूं मार ॥२५०॥

उर अहरिन गुर वचन घन, चोट सहै निरधार।
हरीया अैसा हुय रहै, तौ पावै करतार ॥२५१॥

सहजां सुधि वुधि उपनी, हीरौ चडीयौ हाथि।
हरीयौ मंगै कौन कुं, घट मैं पाई आथि ॥२५२॥

प्याला पीया पेम का, प्रीत पीया सुं लाय।
हरीया आतिम यार कुं, दीया दाव जगाय ॥२५३॥

कूंडै वैस'र करत है, महमाई को जाप।
हरीया सैं नर भुगति सैं, त्रिगुण तीनुं ताप ॥२५४॥

कूंडै वैसै साच करि, कांम कमावै कूर।
हरीया सें नर परत हैं, हरि धरगाह सुं दूर ॥२५५॥

हरीया इन संसार मैं, माया मोटी वात।
चालै संग न चलतां, ज्युं आयौ त्युं जात ॥२५६॥

हरीया माया हाथ करि, षरचै नां कुछि षाय।
देषन आयौ च्यार दिन, गयौ उबाणै पाय ॥२५७॥

हरीया सिवरन रैंन दिन, एक अषंडत होय।
सिर पै सतगुर चाहीयै, पीछै कजा न कोय ॥२५८॥

हरीया सिर हरि की रजा, कजा करैगा कौंन।
ज्युं घन मेहां नीपजै, लगै न झोला पौंन ॥२५९॥

हरीया गुडीयन डोरि ज्युं, सुरित सबद कै संग।
लागी जब ही जांणीयै, आठुं पहर अभंग ॥२६०॥
हरीया गुडीयन डोरि तैं, ज्युं तूटै त्युं संध।
सुरित न टूटै सबद सुं, पैला कोय निबंध ॥२६१॥
हरीया आतिम एक है, सबहीकै घट मांहि।
वाकै आसा और का, ताकुं भ्यासै नांहि ॥२६२॥
हरीया वाकुं सिवरीया, सब करता आसांन।
उ जल मांही थल करै, थल मैं नदी निवांन ॥२६३॥

चौपई *

है आलस निद्रा अति अंगा। जब तैं जांनि भजन मैं भंगा ॥
माया मोह मदन मन मांही। करम सरम कुल छूटै नांही ॥ १ ॥
भेष धरन की इंछा धर है। पेम भगति कै पंथ न परि है ॥
मांन वडाई डंभ सरीरा। सुष सागर की लहै न सीरा ॥ २ ॥
सत रज तामस लोकाचारा। आपा उलट न देषै न्यारा ॥
सिष साषा सुत वित कुं तरसै। परम तत कुं कैसैं परसै ॥ ३ ॥
ऊंच नींच भिल वैसै कूंडै। पांन पांन परसुष मैं थूंडै ॥
मोष मुगति की धरौ न आसा। जब तैं नांही नांव निरासा ॥ ४ ॥
धात पथर मूरति पधरावै। ठाकुर सेवा नांव धरावै ॥
कर सुं षोळि करै चरणामत। युं तौ जांनि नही परमागत ॥ ५ ॥
जब लग ममंकार मुष बांणी। न्यारौ ररंकार नही जांणी ॥
सिवरन सहजां सवद उचारा। पाया केवल ग्यांन विचारा ॥ ६ ॥
ब्रह्मा विष्ण सेस सिव सोई। रहता दस औतार न कोई ॥
सो दीसैं विनसै आकारा। अमर एक नांव निरकारा ॥ ७ ॥
एक सबद विन सबही आंनां। षट सासतर चहु वेद पुरांनां ॥
जनहरिरांम परम पद पाया। या सुं आवा गवन मिटाया ॥ ८ ॥

---

* केवल 'घ' प्रतिमें ही उपलब्ध है।

अथ कवति लिष्यते *

कूंडै वैसै साध, साध सतीया भ्रम आपै ।
ग्यांन गरीबी साध, साध कै वात निपापै ।।
भेष वनावै साध, साध भ्रम जैन वषांनै ।
इंद्री निग्रह साध, साध उलटा मन आंनै ।।
जनहरीया[1] तन वीची मैं, नष चष घाटि न वाध ।
और साध सब कहन का, रांम भजै सोई साध ।। १ ।।

रांम वषांनै वेद, रांम कुं दाषि पुरांनै ।
रांम साष सिंम्रत, रांम सासत्र सु जांनै ।।
रांम गीता भागोत, रांम रांमांयन गावै ।
रांम विसन सिव सेस, रांम ब्रह्मा मन भावै ।।
रांम नांम तिंह लोक मैं, अैसा और न कोय ।
जनहरीया गुरगम विनां, कह्यां सुंन्यां[1] क्या होय ।। २ ।।

प्रथम गरू सिव जांनि, नांव पारबती दीयौ ।
ता सेती नारद, नांव तन '[1]मतैं लीयौं ।।
दे नारद उपदेस, नांव सिनकादिक जांन्यौ ।
गुर तैं जनक वदेह, पीव उर मांहि पिछांन्यौ ।।
सतगुर तैं सुषदेव मुनि, कीया भरम सब दूर ।
जनहरीया गुरगम अगम, ताहि लहै कोई सूर ।। ३ ।।

---

* (क, ख, ग) प्रतियोंमें नहीं हैं। ये छप्पय छन्द हैं किन्तु इसका नाम 'कवति' (कवित्त) ही लिखा मिलता है।

(१) १. (घ) हरिरांमा तन वीच मैं ।
(२) १. (घ) सुण्यां ।
(३) १. (घ) मन करि ।

कायर गहै न ग्यांन, ध्यांन कायर नही धारै ।
कायर दीयै न दांन, अहूं कायर नही मारै ॥
कायर वहै न षाग, सांम अवसांण न सरि है ।
कायर भजै न रांम, त्याग कायर नही करि है ॥
जनहरीया कायर कछु, करै करावै नांहि ।
कायर कळिग्यौ बपड़ौ, मन कै धोषै मांहि ॥ ४ ॥

अथ कवित कुंडलीया

जनहरीया नरदेह मैं, कुंण ऊंचा[1] कुंण नीच ।
एको जांमण अर[2] मरण, लष चौरासी वीच ॥
लष चौरासी वीच, षड़ी है मींच सिरांणै ।
लंघणा औघट [3]घाट, पड़ैगौ दूरि [4]पीयांणै ॥
तन अर मन सुं[5] जांनि, दीन[6] दोसत नही कीया ।
लीया संग[7] कुसंग, हाथ करि कछू न दीया ॥
अंतकाल[8] इंन जीव की, ह्वैगी[9] हीचा हीच ।
जनहरीया नरदेह मैं, कुंण ऊंचा कुंण नीच ॥ १ ॥

---

(१) १. (ग) उतिम । २. (क, ख, ग) मरण है । ३. (ग) तलब लगी तन मांहि । ४. (क, ख, ग, घ) प्रयांणै । ५. (क, घ) आपा तन मन (पाय), (ख) तन मन सेती, (ग) लंघणा औघट घाट । ६. (ग) यार संग दूजा कीया । ७. (क) और, (ग) आगै पीछै एक, जांणि संग ताहि न लीया । ८. (ग) या नर की जम लोक मै । ९. (क, घ) होसी ।

हरीया सोई हरि भगत, अंदर[1] हरि की बांणि।
निरदावै निरपष रहै, करै न कुल[2] की कांणि॥
करै न कुल की कांणि, आप आपौ[3] न सरावै।
आसा तजै अनंत, नांव[4] निर आसा लावै॥
निरभै[5] रहै निसंक, ताप तीन्हुं[6] भव नांणै।
भाव न [7]धरै कुभाव, एक सब कुं करि जांणै॥
जिन्हां नित आनंद है, और न[8] काई आंनि।
जनहरीया सो हरि भगत, अंदर हरि की बांनि॥ २॥
जनहरीया[1] सो नर फकर, दोसत[2] कीया रांम।
मन[3] माया विषीया तजै, भजै निरासा नांम॥
भजै निरासा नांम, एक[4] लिव ताळी लावै।
भरम [5]करम कुं मेट, नांव[6] निसचै करि ध्यावै॥
आप[7] न करै अनीत, नीत रषै मन मांही।
सुरित सबद कै [8]पास, और[9] दिस जावै नांही॥

---

(२) १. (क) है मुष, (ख) वाकै, (ग) जाकै, (घ) जा मुष। २. (क) किसकी। ३. (क, घ) आपो विसरावै, (ख) और न विसरावै, (ग) आपनपौ न। ४. (क, ख, घ) एक आतम लिव लावै, (ग) लिव एकन सुं लावै। ५. (ग) आपा। ६. (क, घ) तीनुं नही आंणै, (ख) हिरदै नही आंणै, (ग) आंन भय ताकै नांही। ७. (ग) को धरौ भाव कुभाव, एकरस देषै मांही। ८. (क, घ) सोग न संसा, (ग) घट वधि मना न।

(३) १. (क, ख, घ) हरीया सोई। २. (क, घ) कीया दोसती, (ख) वाकै दोसत, (ग) जाकै अंतर। ३. (ग) मोह माया मिमता तजै, निजानंद निहकांम। ४. (क, घ) और की आस निवारै, (ग) सहज सुं। ५. (क, घ) करै सब दूर। ६. (क, घ) ध्यांन (निश्चौ)। ७. (क) और, (ग) यारी तजै, (घ) काय। ८. (क, ख, घ) पासि, (ग) संग। ९. (क) दूरि, (ग) आसि पासि रहै, (घ) आंनि।

एकौ तन मन [10]वचन तैं, मेटै सकल त्रिरांम।
जनहरीया सो नर फक्कर, दोसत कीया रांम॥ ३॥

दूजा दुनीयांदार [1]नर, हरि कुं भजै'स दास।
दिल का दीपग जोय कै, सहजां[2] करै त्रिलास॥
सहजां करै विलास, एक[3] आतम सुं यारी।
भया[4] परम आनंद, दुप सुष[5] देह निवारी॥
गया तीन गढ चूरि, चित चौथे घर [6]लाया।
वस्या अपूरव देस, जीव अर सीव [7]मिलाया॥
हरीया हरि सुष [8]जांणीया, तन [9]मन भया निरास।
दूजा दुनीयांदार नर, हरि कुं भजै'स दास॥ ४॥

नही तौ गधीया ओड का, ऊपरि छटीया थाय।
जनहरीया सत[1] सबद विन, जुग पंतरीया जाय॥
जुग पंतरीया जाय, मोप मारग नही पावै।
जौ पूरा गुर[2] होय, आप[3] मैं आप बतावै॥
मन की डिग मिग[4] मेट, एक[5] आतम लिव लावै।
सत बेली सत सबद ले, पारि पैलै पुंहचावै॥

---

१०. (ग) वीच मै, मिटग्या सकल विरांम।

(४) १. (क, ख, ग) है। २. (ग) आतिम। ३. (ख, ग) लगी (सहजां)। ४. (ग) अषंड भया। ५. (ख, ग) (और) देह दुष दंद। ६. (क, ख, घ) आया, (ग) सीव मै जीव मिलाया। ७. (ग) अगम वसाया देस, राज अणमै पद पाया। ८. (ग) मांणीया। ९. (क) आपा, (ख, ग) आसा भई।

(५) १. (ख) हरीया गुर का, (ग) हरीया अंतर ध्यांन, (घ) हरि। २. (ग) मिलै। ३. (क) आप घट मांहि, (ख) अगम कै मारग ल्यावै, (ग) राह भूला समझावै। ४. (ग) डिग मिग डावा छोडि। ५. (ख, ग) रहौ।

भव भागा[६] त्रिभैं भया, दरगह बैठा आय।
नही तौं गधीया ओडका, ऊपरि छटीया थाय ॥ ५ ॥

तन तोला मन ताकड़ी, विणजणहार वचंन।
रांम रतन[१] कुं छाडि कै, साध न संचै धंन ॥
साध न संचै धंन, ग्यांन आतम[२] कौ धारै।
आपा निज[३] पद पाय, और सेती उपगारै ॥
उलटा मन अर पवन, पांच इक धागै पोया।
मिथ्या[४] भरम अंधार, द्वार दस दीपक जोया ॥
सुरित निरत करि सोझीया, पाया रांम रतंन।
तन तोला मन ताकड़ी, विणजणहार वचंन ॥ ६ ॥

अथ सवीया *

अंग सकोमल पेम [१]सरभर, चूंप सभै[२] चतरंग[३] चितारौ।
साध सती जत राग रसांयन, सूर षिम्या कवि दास दतारौ ॥
ग्यांन विग्यांनी य जांनि सबै विध, रूप तपो मन मोह धूतारौ।
दास कहै हरिरांम विनां[४] हरि, होय नही नर कौ [५]निसतारौ॥ १॥

---

६. (क, ख, घ) निसचै (श्चै), (ग) अनहद तारां चेत लै, विन जिभ्या गुण गाय।

(६) १. (क, ख, ग, घ) नांम धन। २. (क, ख, घ) परमातम धारै, (ग) जनम अर मरण सुधारै। ३. (ख) अविगत, (ग) आतिम निसचै बैसि, आप फिर और उधारै। ४. (ख, ग) मिटग्या।

---

* (घ) सवइया।

(१) १. (घ) सरोभर। २. (घ) सवै। ३. (ख) चतुरंग, (ग) चुतरंग, (घ) चितरंग। ४. (ख) प्रभु विन, (ग) इसौनर। ५. (ग) रांम विनां नही पारि उतारौ।

राग न दोष न को[1] काहू तैं, संसा सोग न को[2] परकासै।
मांन अमांन न को उर मैं तैं, कांम करोध कुं दूरि निकासै॥
आपा और न पासि धरै धिल, सुरित लगी सत सबद अकासै।
दास कहै हरिरांम भजौ हरि, ग्यांन दीयौ गुर होय सिकासै॥२॥

सील संतोष सदा रहै[1] सीतल, आनंद रूप रहै जांह तांही।
पेम प्रवाह[2] भयै तन[3] भीतरि, और विकार लिपै नही काही॥
दंद न को दुष सुष न हिंस्या, कूड़ कपट दिसौ नही जांही।
दास कहै हरिरांम वसौ वन, भावै बैस रहौ घर मांही॥३॥

---

(२) १. (घ) कोय कहु इह। २. (घ) पिंड। इसके बाद 'घ' में पाठ यही है, परन्तु शब्द-विपर्यय है; (ख, ग) में निम्न पाठ है—

(ख) राग न दोष न को किनही तैं, कांम करम कुं दूरि निकासै।
मैं तैं मोह न काहु तैं दोहा, संसा सोग भरम न भ्यासै॥
मांन अमांन न को काहू तैं, सिवरन एको सास उसासै।
दास कहै गुर ग्यांन भयौ जब, डारि दई दुबिध्या दिल पासै॥

(ग) राग न दोष न लोक न लज्या, कांम करोध न दूरि निकासै।
मैं तैं मोह न दोह किन्ही सुं, संसा सोग न भरम न भ्रासै॥
मांन अमांन अग्यांन न कोई, सिवरन एको सास उसासै।
दास कहै गुर ग्यांन भये जब, डारि दई दुबिध्या दिल पासै॥

(३) १. (क, ख) तन। २. (ग) पियास। ३. (ग) यहाँसे आगे-का पाठ (ख) के समान ही 'ग' प्रतिमें है, अतः 'ख' प्रतिका पूरा पाठ दिया जा रहा है—

सील संतोष सदा तन भीतरि, आनंद रूप रहै जांह ताही।
पेम प्रवाह भये भगता निज, कूड़ कपट दिसो नही जाही॥
दंद न को दुष काम न हिंस्या, वाद विरोध करै कुछ नांही।
दास कहै हरिरांम वसौ वन, भावै वैस रहौ घर मांही॥

तुं कहा चिंत करै नर तेरीय , तें[1] करता सोई चिंत[2] करैगौ ।
जै सुष[3] जांनि दीयौं[4] तुझि मांनव, सोय सबहन[5] का पेट[6] भरैगौ ॥
कूकर[7] एक टूक कै कारन , नित[8] घराघरि बार फिरैगौ ।
दास कहै हरिरांम विनां हरि , कोय न[9] बंदा काज[10] सरैगौ ॥४॥

कवित

राजी राव रंक भूप , नारि ही पुरष राजी,
झूठ सी विनाई वाजी , षुसी आप[1] षाल मैं ।
सिन्यासी दुहा[2] दत , जोगी आदिनाथ जांनै,
जती ही वषांनै जैंन , रता मता ह्वाल मैं ॥
भोपना सकति सेव , वैसना औतार ध्यावैं,
वंभना कै वेद पाठ , चतुराई[3] चालि[4] मैं ।
पषाई पषी मैं लोक , निरापेषी जन कोई,
हरीयै कै रांम एक , नही लाल पाल मैं ॥ ५ ॥

पूर्वार्ध सम्पूर्ण

---

(४) १. (ग) तम । २. (ख, ग) चिंत्या करिही । ३. (ग) जिन नष चष विनाया सबका । ४. (ख) विनायो है । ५. (ग) सो नित प्रित का । ६. (ख, ग) उदर भरिही । ७. (ग) ज्युं नर स्वानि टूक कै कारन । ८. (ख, ग) विनां भरोसे घरि-घरि फिरही । ९. (क) बंदा कुछि न । १०. (ख, ग) कारिज सरिही ।

(५) १. (ख, घ) सब । १. (क, ख, ग, घ) दुहाई दत । ३. (ग) कठणाई । ४. (क, ख) चालि ।

* राम *

श्रीहरिरामदासजी महाराजकी अनुभव-वाणी

उत्तरार्ध

श्री १००८ श्री चौकसरामजी महाराज
रामस्नेहि सम्प्रदायाचार्य सिंहस्थल (७)

अथ घघर नीसांणी लिष्यते *

साषी

हरीया संमत सतर सै, वरष सईकै जानि।
तिथ तेरस आसाढ वदि, सतगुर परी पिछांनि॥
तौ सतगुर पिछांणी, परचै प्रांणी,
सब सिध कांम सरंदा है॥ १ ॥
सतगुर सैं मिलीया, अंतर भिळीया,
सार सबद ओळषंदा है॥ २ ॥
तन मन करि हेती, रसनां सेती,
रांमोरांम रटंदा है॥ ३ ॥
वरस्या है पेमा, दरस्या नेमा,
कंठ कवल फूलंदा है॥ ४ ॥
भवरा गुंजारुं, षुला बारुं,
मुरली टेर सुनंदा है॥ ५ ॥
सासर उसासा, हिरदै वासा,
सिवरन ध्यांन धरंदा है॥ ६ ॥
नाभी घरि आया, नाच नचाया,
सहजां सुष सिवरंदा है॥ ७ ॥
रग रग आरंभा, भया अचंभा,
छुछम वेद भणंदा है॥ ८ ॥
ओउं अर सोउं, देष्या दोउं,
पारब्रह्म परछंदा है॥ ९ ॥
ममाहुय पासै, कवल विगासै,
अरघ नांव आषंदा है॥ १० ॥

---

*. यही ग्रन्थ सटीक परिशिष्ट भागमें है, वहाँ अवलोकन करें।

ऊ नांवज केवल, वडे महाबल,
रोम रोम उचरंदा है ॥ ११ ॥
रहता सुं रहता, है निज तता,
न्यारा हुय निरषंदा है ॥ १२ ॥
अैसा अभिनासी, आया न जासी,
भाग वड़ै भेटंदा है ॥ १३ ॥
रेचक अर पूरक, कर विन कंभक,
आप उलटि पलटंदा है ॥ १४ ॥
ताटिक हुय ध्यांनु, वात विग्यांनु,
आपा पट षूलंदा है ॥ १५ ॥
सुषमिण की घाटी, चड़ीया वाटी,
अरस घरां ठहरंदा है ॥ १६ ॥
फिरीया मन पूरब, चले अपूरब,
ठांम ठांम ठमकंदा है ॥ १७ ॥
जालंधर बंधा, उरधे कंधा,
तन अर पवन मिलंदा है ॥ १८ ॥
उलट्या हैं आसण, पलिट्या वासण,
सुरित सब्रद परसंदा है ॥ १९ ॥
वहते वंकनाड़ी, षुली किवाड़ी,
भवर गुफा भणकंदा है ॥ २० ॥
उलघीया मेरा, गुर मिल चेरा,
चहूं चकडोल फिरंदा है ॥ २१ ॥
षटचकर भेद्या, भव दुष छेद्या,
संसा सोग नसंदा है ॥ २२ ॥
गरजत है गैणु, वरजैवैणु,
सरवर सुन्य वसंदा है ॥ २३ ॥

हंसा सुन्य होती, मंझे मोती,
मुष विण चूणी चुगंदा है ॥ २४ ॥
आतम ब्रह्म मंडा, एक अषंडा,
विण रसणां गावंदा है ॥ २५ ॥
अंवर घरि आए, ब्रह्म वधाए,
अनहद नाद घुरंदा है ॥ २६ ॥
नौबति निसांनां, दिल दीवांनां,
वाजा भेर वजंदा है ॥ २७ ॥
मन सिषर मिलीया, त्रिगढ मिळीया,
चौथा पद पावंदा है ॥ २८ ॥
अरधे मिल उरधा, पवन निरुधा,
ध्यांन समाधि लगंदा है ॥ २९ ॥
धरीया नही धारू, अधर अधारू,
सहजां सेव करंदा है ॥ ३० ॥
दसवै मिल द्वारी, लाई तारी,
अमर विंद वरंदा है ॥ ३१ ॥
मनवा थिर पवनां, पंचे दनवां,
प्याला अजर पीयंदा है ॥ ३२ ॥
त्रिमल जांह नूरा, उदै अंकूरा,
परमानंद परसंदा है ॥ ३३ ॥
त्रिवेणी छाजै, ब्रह्म विराजै,
त्रिभै राज करंदा है ॥ ३४ ॥
झिलमला जोती, ओतर पोती,
जीव'र सीव मिलंदा है ॥ ३५ ॥
हरि हीरा पाया, विणज हलाया,
तोल न मोल लहंदा है ॥ ३६ ॥

हरि हीरा होती, पारिष कोती,
षोट न चोट चड़ंदा है ॥ ३७ ॥
मन पंचे रहता, मुषा न कहता,
अंतर लिव लावंदा है ॥ ३८ ॥
सुधि बुधि कु विसरी, सुरति न निसरी,
पूरण ब्रह्म अनंदा है ॥ ३९ ॥
जीवत जांह मुगति, सिव मिल सकति,
जनम न फेर मरंदा हैं ॥ ४० ॥
अमी रस पीया, जुग जुग जीया,
षालिक मिल षेलंदा है ॥ ४१ ॥
हंसा परि हंसा, एको अंसा,
सुन्य परि सुन्य सोहंदा हैं ॥ ४२ ॥
ऊडे विन पंषा, मिले असंषा,
पार न को पावंदा है ॥ ४३ ॥
जाहर जुग जोगी, है अणभोगी,
ओघट घाट रमंदा है ॥ ४४ ॥
नाथन के नाथु, मसतग हाथु,
सिव ब्रह्मा सेवंदा हैं ॥ ४५ ॥
हरिजन हरि जांनी, वेद वषांनी,
सेस विसन ध्यावंदा है ॥ ४६ ॥
धरीया अवतारूं, अंत न पारूं,
रहता एक रहंदा है ॥ ४७ ॥
अंतह नही करतु, बाल न तरतु,
त्रिध न को वरषंदा है ॥ ४८ ॥
पषांण न पाती, छाप न ताती,
थांन न आंन थपंदा है ॥ ४९ ॥
अणघड़ अजातुं, मात न तातुं,
निराकार निरदंदा है ॥ ५० ॥

हाट न को सहरुं, विणज न वहरुं,
षरच न को षूटंदा है ॥ ५१ ॥
सूरा नही सती, जोग न जती,
जुरा न जम पूजंदा है ॥ ५२ ॥
तीरथ नही वरतुं, आभ न धरतुं,
अकल कला आपंदा है ॥ ५३ ॥
नारि न को पुरषा, चतर न मूरषा,
वेद न च्यारि वचंदा है ॥ ५४ ॥
अणभै पद खोल्या, अंतर षोल्या,
विध विरला बूझंदा है ॥ ५५ ॥
मिलीया गुर आदु, पाय अनादु,
पूरबलै लेषंदा है ॥ ५६ ॥
जांण्या हम जैसा, कहीयै कैसा,
कुछीयेक मन सरमंदा है ॥ ५७ ॥
कायम कुरबांणी, करि आसांणी,
तुं ही तु कांम कमंदा है ॥ ५८ ॥
तूं ही है रांमां, तूं ही रहीमां,
जनहरिरांम जपंदा है ॥ ५९ ॥*

---

*. गाँव निमाज स्थानकी एक हस्तलिखित प्रति जो 'संत साहित्य संगम' के पुस्तकालयमें है, उसमें निम्नाङ्कित साषियाँ अन्तमें अधिक मिलती हैं—

नीसांणी सतगुर तणी, कीन्ही ग्यांन वीचार।
जनहरीया धारण करै, मिलै मुक्त के द्वार॥
सतगुर जैमलरांमजी, मैरे मस्तक मोड़।
जनहरीया धारण (वंदण) करै, हस्त कवल दोऊ जोड़॥

= प्राचीन संतोंके मुखसे निम्न साषी भी सुनी जाती है—

निसांणी निश्चय करै, धरै उन्मुनि ध्यांन।
हरिरांमा साची कहै, पद पावै निर्वांन॥

अथ घट परचौ लिष्यते *

जाति चौपई

गुर परचै सुं परचै [1]मनां । मन परचै सुं परचै [2]तनां ॥
तन परचै वाचा परचांणी । वाचा परचै पद निरबांणी ॥ १ ॥
पद परचै सुं अणभै होई । बाहरि[1] बोलै भीतरि[2] सोई ॥
सब का रांम नांम[3] निज मूला । भजीयां भरम दूरि असथूला ॥ २ ॥
कूड़ कुसंगति का नही [1]प्यासा । सत संगति कीन्हा [2]अभ्यासा ॥
रांम नांम सुं पेम लगाया । सहजां घट में जीव जगाया ॥ ३ ॥
घट मैं देष्या एक अचंभा । आपो आपी षेलै रंभा ॥
घट मैं षूल्हा केवल नांमा । वाचैं राचै आतम रांमा ॥ ४ ॥
घट मैं एक हक्क है अला । लहसी भाग जिन्हांदा भला ॥
औउं सोउं जाप अजंपा । घट मैं कीया संप असंपा ॥ ५ ॥
घट मैं सिवरन एक[1] अटला । मुजरा आतम कीया अपला ॥
रोम रोम ररंकार लगाया । एक अरीझन कुं रींझाया ॥ ६ ॥
रेचक कंभक[1] पूरक घ्यांनां । उलट पलट[2] मैं सहज पिछांन्यां ॥
पूरब घ्यांन भया जब ताटिक । षूल्हा सहज गिगन का पाटिक ॥७॥

---

* (क) लिषते, (ख)...हरिरामदासरौ कह्यौ, (घ) ग्रन्थ... लिष्यति ।

(१) १. (क, ख) मंनां । २. (क, ख) तंनां ।

(२) १. (क, ख) बाहिर । २. (क, ख) अंदर, (घ) इंदर । ३. (क) एक रांम ।

(३) १. (ख) कूड़ कुविधि का कीया नासा । २. (ख) परगासा ।

(६) १. (क) होय ।

(७) १. (क, ख) पूरक कंभक । २. (क, घ) पुलट, (ख) पलटि ।

साषी

हरीया सबद पयाल कुं, चल्यौ गिगन तैं होय।
जब जालंधर बंध कुं, बिरला जांणैं कोय ॥ ८ ॥

चौपई

उलटा ध्यांन पछमि[1] दिस आया। बीच मेर थांणा थरपाया ॥
घट मैं लागी चोट करारी। मनसा अगम देस कुं धारी ॥ ९ ॥
सुरित[1] सुन्य का सहर बसाया। आकासे घर मंडप छाया ॥
घट मैं सिव सकती का वासा। सहज करत हैं भोग विलासा ॥१०॥
षूल्ही सीर सुषम की घाटी। इळा पिंगला बूंदी वाटी ॥
तल का नीर चढ्या आकासा। भरीया सरवर नदी [1]नवासा ॥११॥
वांह छूटैं अंमृत[1] की धारा। पी पी संत भया मतवारा ॥
औरन को संगति नही [2]सोबति। लागी एक अलष सुं मौहबति ॥१२॥
घट मैं रांम निरंजन राया। जुग मांही विरलै जन पाया ॥
घट मैं प्रांण पुरस की माया। घट मैं तीनु[1] लोक समाया ॥१३॥
घट मैं चंद सूर तारायन। घट मैं तत तेज नारायन ॥
घट मैं सात दीप नव षंडा। घट मैं एको जोति अषंडा ॥१४॥
घट मैं गंग जमन सुरसती। छापा तिलक सहज [1]गोमती ॥
घट मैं सेव करुं असनांनां। पूजुं मूरत[2] न धात पषांनां ॥१५॥

---

(९) १. (घ) पिछम।
(१०) १. (क, घ) सुरति।
(११) १. (क, ख, घ) निवासा।
(१२) १. (ख, घ) इंमृत। २. (घ) सोभति।
(१३) १. (क) तीन्हु।
(१५) १. (क) घट मैं तिलक छाप गोमती। २. (क) ध्यांत न मूरत, (ख) मूरित, (घ) मुरति।

पान न पाती फूल चडांउं । घट मैं उंनमुंन[1] ध्यांन लगांउं ॥
घट मैं सहज करुं[2] डंडौता । पूजुं प्रांण पुरष पंडौता ॥१६॥
घट मैं रास रच्यौ नर नारी । आप ही नाचै कौगतिहारी ॥
पातरि नाचैं पांच पचीसुं । गावैं अणभै राग छतीसुं ॥१७॥
निरत करै ताळी चटकावैं । सास सास सुर घाई ल्यावैं ॥
घट मैं[1] ताल पषावज [2]वावैं । चेतन चावगीर हुय [3]आवैं ॥१८॥
आसण तपस्या जोग धीयांनां । सहजां पाया भ्रम गीयांनां ॥
चेतंन चिरत किता घट मांही । आदि अंत कोई आवैं नांही ॥१९॥
रांम नांम केता घट चिहनां । कहनी मांहि न आवैं सुननां ॥
जा घट प्रापति सोई जांनै । औरन का आपा नही मांनै ॥२०॥
सहंस कला सूरज ले ऊगा । अंधै कै ऊगा ज्युं पूगा ॥
भूत प्रेत डाकिन डर नांही । रमतां रांम हमारै मांही ॥२१॥
चाचर भूचर षेतरपाळा । जोगणि जुरा न झंपै काळा ॥
पहली चोट [1]परति नही चूकै । एको[2] मूठ उंनमुनी मूंकै ॥२२॥
सबद बांण गुर ग्यांन कबांणां । सहजां मारि लीया जमरांणां ॥
भेर नगारा नौबती वाजै । हरिजन हैक विराजै [1]छाजै ॥२३॥
वाजै अनहद घुरै नीसांनां । राज पाट पाया परवांनां ॥
इंदर[1] बैठा बाहरि बोलै । विण[2] कूंची ताळा कुंण[3] षोलै ॥२४॥
गुर गम कूंची षूल्हैं ताळा । आपा आतम[1] होय उजाळा ॥
जिन गुर धरम भाव नही जांन्या । दरसन नेम पेम नही ठांन्या ॥२५॥

---

(१६) १. (क) उंनमुंन सहजां ध्यांन, (घ) घट मैं आतमदेव मनाउं । २. (क) करूं, (ख) भया ।

(१८) १. (क) सहजां । २. (क) वाया । ३. (क) आया ।

(२२) १. (क, ख) परित । २. (क) उल्टी ।

(२३) १. (क) भया जब राजै ।

(२४) १. (ख) अंदर, (घ) अंतर । २. (ख) विन । ३. (ख) कुंन ।

(२५) १. (क) इंदर, (ख) घट मैं, (घ) अंतर ।

वाकै उर औगण का कीचा । नांगुर हरि का है अध-वीचा ॥
नारद गुर की निंद्या कीन्ही । तातैं लष चौरासी दीन्ही ॥२६॥
गुर निंद्या का लागा पापुं । नां उतरै हरि जपीयां जापुं ॥
गुर कुं ऊच नीच करि जांनै । सो डूबे जुग मैं विन षांनै ॥२७॥
जल विन उतरै नांहि मलेसा । गुर विन कटैं न करम कलेसा ॥
गुर का दोष मिटैं गुर सेती । ज्युं ब्रिरषा निपजै कणषेती ॥२८॥
नारद कै मन भया अनेसा । फिर बूज्या गुर कुं उपदेसा ॥
नारद आप हीनता भाषी । गुर कुं गुझि हिरदै की दाषी ॥२९॥
गुर नारद[1] कुं दीन्हा भेदा । भरम करम का करिहुं छेदा ॥
लिष हरि पै चौरासी ल्यावौ । वाकै पेटै मांहि लिटावौ ॥३०॥
नारद कीन्हा लेट पलेटा । मेट्या लष चौरासी फेटा ॥
नारद मुगति भया जब कांनै । यु गुर भरम करम कुं भांनै ॥३१॥

साषी

हरीया बिरषा क्या करै, बीज न वाह्या होय ।
अैसैं घर बिरषा विनां, बीज न ऊगै कोय ॥३२॥
गुर बिरषा अर बीज हरि, और न या सैं [1]तुल्य ।
जनहरीया जब[2] दास की, षेती निपजै [3]ढुल्य ॥३३॥

चौपई

सूरा झूझि[1] मरै षग धारा । सती सहै तन आगि अंगारा ॥
के भुय मांहि करैं तन भंगा । के तन हाड पषाळैं गंगा ॥३४॥
के गळि मरै हीयाळें मांही । वाकुं मोष मुगति फल नांही ॥
के कासी करवत सिर धरि हैं । तातैं देह और अवतरि हैं ॥३५॥

---

(३०) १. (क) नारद कुं गुर ।
(३३) १. (क, ख, घ) तुलि । २. (क, ख) हर । ३. (क, ख) ढुलि, (घ) ढूलि, (ढूलि) ।
(३४) १. (क) झूझ ।

हठ आपच करि मरौ न कोई । रांम भगति विन मुगति न होई ।।
हठ जौहर कीयां क्या होसी । सहजां विनां वात सब पोसी ।।३६।।
सहज विना कोई सरै न काजा । रांम नांम की बंधौ पाजा ।।
एक नांव तै पांहन तिरीया । एक नांव तैं गज ऊबरीया ।।३७।।
एक नांव है साचा [1]सबदा । या विन और[2] सकल है बौहदा ।।
एक रांम नांम महबूबै । या कुं सिवरयां कोय न डूबै ।।३८।।
आठ काठ की फैरे माला । जीव करै बौह आल जंजाला ।।
ग्यांनी पिंडत स्यांणा जोसी । रांम भगति विन दास न होसी ।।३९।।
कथा करैं बौह अरथ वतावै । आप भरम औरां भरमावै ।।
अरथ करै हालै अनरथा । नांव न जांणै वाचै गरथा ।।४०।।
लाभ लोभ का बाधै पोटल । सब तैं वडा हुवा रहै टोकल ।।
व्यासा भगति करीजै भाई । नही तौ धका काल का षाई ।।४१।।
करि[1] आचार भया [2]आचारी । दिल के भीतरि दुबिध्या डारी ।।
आंवण जांवण एको घाटी । एको आतम एको माटी ।।४२।।
पांडे हाथ पाव सो तेरै । सोई हाथ पाव सब केरै ।।
या मैं ऊंच नीच कुंण होई । एको ब्रह्म न दूजा कोई ।।४३।।
दरसन देषा देष पहरीया । मन नही वीध्या कांन चहरीया ।।
गोपीचंद, भरथरी गाया । जोगी जोग ध्यांन नही पाया ।।४४।।
जोग ध्यांन अंतर मैं भाई । क्या ह्वै बाहरि भसम लगाई ।।
औरां सुं[1] आदेस कराया । आदि पुरष हिरदै नही आया ।।४५।।
वावैं सीगी पूरैं नादा । अनहद का नही जाणैं स्वादा ।।
जोग न साझैं साझै भोगा । करि मूवा पड़पचम रोगा ।।४६।।

---

(३८) १. (ख) सौदा । २. (ख) झूठ ।

(४२) १. (क) तन तैं आप भयौ आचारी । पायौ ब्रह्म न ग्यांन विचारी ।
२. (ख) ब्रमचारी ।

(४५) १. (ख) सैं, (घ) कूं ।

जंगम सिव सिंभू[1] करि गावै । दसा दिगंबर भेष बनावै ।।
सिर मुगटी कर घंट बजावै । लड़ लूंबां[2] नीचै लटकावै ।।४७।।
घर घर मैं फिर मांगै भीषा । या सतगुर की नांही सीषा ।।
सतगुर दीया[1] एक निज नांमा । इनकै[2] ठीक न कोई ठांमा ।।४८।।
सिन्यासी[1] नागा अवधूता । भगवा बसतर अंग बभूता ।।
जटा लंगोटा ससतर धारी । आप न मारै[2] औरां मारी ।।४९।।
राग धेष बौह[1] भेष बनावै । नायक सेन्या बीच कहावै ।।
तपे षपै करि करि अहकारी । राजस तांमस माया धारी ।।५०।।
संष नगारा तुरही वाजा । अनहद की नही जांणै वाजा ।।
दल मां[1] फेरै दत दुहाई । तत मत की षबरि न [2]काई ।।५१।।
देही का कहीयै दसनांमी । एक न जांणै अंतर जांमी ।।
सिन्यासी[1] कहीयां क्या होई । जब तैं अपना करम न षोई ।।५२।।
माथा षोस'रि[1] भया मथेना । चाला चिरत करै [2]बौतेना ।।
टांणा टूंणां कांमण करिहै । घरि घरि भीष मागता फिर है।।५३।।
चेला चांटी साल सुवारै । दास भाव नही कोय दुवारै ।।
लाभ लोभ राषै मंन मांही । दया धरम कुं पालै नांही ।।५४।।
ऊंचा [1]कुल नींचा करमन का । भगति विनां भांडा भरमन का।।
हेत प्रीत अंजन तै राषै । नांव निरंजन का नही दाषै ।।५५।।

---

(४७) १. (क) स्यंभु, (ख, घ) संभु । २. (ख) झूंबां ।
(४८) १. (क, ख, घ) कह्या । २. (क) इन कुं ।
(४९) १. (क, ख) संन्यासी । २. (क) आपा मरै न, (ख) मारै औरां आपन मारी ।
(५०) १. (क) सिर ।
(५१) १. (क, ख, घ) दल मैं । २. (घ) पाई ।
(५२) १. (क, ख) संन्यासी ।
(५३) १. (क) षोसिर, (घ) षोस'र । २. (क) बहतेना, (ख, घ) बौह तेना ।
(५५) १. (ख) कुल ऊंचा ।

सेवै नेमनाथ पारसा । आतम देव नही धारसा ॥
मन मूंडै नही मूंडै माथा । इनकै भगति ऊतरी हाथा ॥५६॥
किन जायौ किन घर मैं आयौ । मोल लीयौ अर जती कहायौ॥
कहा भयौ जे जती कहाई । रहनी एक रती नही [1]राई ॥५७॥
वाचै पोथा करै वषांनां । रहै एक दोय तिह ठांनां ॥
धरम नेम ओरां कुं दाषै । आपा अधरम हिरदै राषै ॥५८॥
औराती[1] भोजन वहरावै । आप वैस छांनें चमकावै ॥
आप अंधारै औरां चंदणा । दुनीयां[2] धरम लाभ गुर वंदणा ॥५९॥
इनकै अंतर वसै अनीता । जैन धरम सुं पालै प्रीता ॥
माया का बंधन है जैनां । तूटै कबू न ऊपजै चैनां ॥६०॥
जंतर मंतर ओषद[1] पांणी । साध पणै कुं मूल न जांणी ॥
नौका फेरै नांव न जांणै । इनकै भगति न आई पांनै ॥६१॥
भगति वैसना [1]नवध्या[2]करिहै । दसधा की कुछि षबरि न परिहै॥
छापा तिलक बनावै वांना । इनतैं[3] साहिब रहीया छांना ॥६२॥
ले मूरत[1] मुष आगैं थरपै । षांन पांन इन सेती अरपै ॥
षांन पांन इनकै नही भांनै । मूरष तोई मरम न जांनै ॥६३॥
नाहै धोवे सेवै पथरा । इनतैं दूर[1] रह्या[2] हरि मथरा ॥
तोड़ै पाती फूल चड़ावै । युं[3] तौ आतम रांम न भावै ॥६४॥
रांम नांम अंतर मैं भाई । सो सिवरै जाकुं सुधि आई ॥
दाड़ी मूंछ न मूंडौ कोई । मन मूंड्यां विन सिध न होई ॥६५॥

---

(५७) १. (घ) आई ।
(५९) १. (क, घ) औरां'ती । २. (क) दूजा ।
(६१) १. (घ) औषध ।
(६२) १. (क) नवध्या भगति वैसना । २. (घ) धरि है । ३. (क) अंतर ।
(६३) १. (ख) मूरित, (घ) मूरति ।
(६४) १. (क, ख) दूरि । २. (घ) भया । ३. (क) अैसै, (ख) रांम नांम हिरदै नही पावै ।

मूंडौ तौ इन मन कुं मूंडौ । यौ ही भलो बुरौ है मूंडौ ॥
तप तीरथ फिर कीया सिनांनां । तौइ न मनका मैल धुपांनां ॥६६॥
धौवैगा कोई मनका मैंलुं । पड़सी पेम भगति कै गैलुं ॥
भरिम्या देस दिसंतर डोलै । ताहि न जांणै [1]अंतर [2]बोलै ॥६७॥
करता कुं भूला कीरतंना । नारी रूप धरै नर तंना ॥
वाय पषावज ताळ वजावैं । सुरगुण गाय जगत रीझावैं ॥६८॥
नाचै निरत करैं बौह तांनां । इन तैं दूरि रह्या भगवांनां ॥
नारद ब्रह्मा कांन [1]कछाया । साच न [2]पैंडौ झूठ [3]वनाया ॥६९॥
जाट भया सिध जसनाथांणा । छूट गई तेरै रकमांणा ॥
सिरपरि सांग और का धारी । अपना साहिब गयौ विसारी ॥७०॥
मन तैं हुय बैठो सिध पुरसा । तन तैं सांग पहरीया दुरसा ॥
तेरै घर[1] आसा आसणकी । सिध पुरस हुय क्या षाटणकी॥७१॥
अब तौ सिध भया जसनाथी । अंतकाल तेरा नही साथी ॥
जब तैं काळ आय घर लूटै । हरि विण सिध साधिक नही छूटै॥७२॥
थापन तैं थापन नही जांन्यौ । उथापन कुं हिरदै आन्यौ ॥
थाप उथापन एक है भाई । सो सब कै घट मांहि समाई ॥७३॥
तम तौ थापन मा विसनोयन । आ'तौ वात न आई भोयन ॥
थापन मात पिता नही जायौ । आप ऊपनौ आपे[1] आयौ ॥७४॥
तुं थापन हिरदै कौ यांनौ । तैं झांभौ सांई करि जांन्यौ ॥
झांभै सा कोई कलि मैं होई । सांई सा और [1]नही कोई ॥७५॥

---

(६७) १. (ख) घट मैं । २. (घ) षोलै ।

(६९) १. (क, ख) कछावै । २. (ख) जांणै । ३. (क) वनावै, (ख) वणावै, (घ) रचाया ।

(७१) १. (क) तेरै मन, (ख) घर मांही तेरै जाटण की ।

(७४) १. (क) आफेई, (ख, घ) आफे ।

(७५) १. (ख) एक ।

झांभै आगैं हुवा जोतिगी । आ'तौ आई वात वरतगी ॥
रांम भगति विन ह्वैगी भांडी । मूवैं कुं [1]परणायां रांडी ॥७६॥
नागै हुय असनांन कराया । विसनदेव का नांव धराया ॥
तुं तौ आस पास कुं [1]नाळैं । अलष रह्यौ आपि दे ठाळैं ॥७७॥
पिंडत और पिंड परमोधै । आपा उलटि आप नही सोधै ॥
थापि कलस थापना [1]थापी । औरां धरम दाषवैं [2]आपी ॥७८॥
नेजा धजा डिगंबर धारी । सिष साषा वौहता संसारी ॥
एक राह की षवरि न पाई । दुनीयां दूजे धंध लगाई ॥७९॥
पिंडत पीर कह्यां नही होई । पीर परातम जांणैं सोई ॥
ऊलै कांन सुणौ[1] कोई पैले । नांव लीया जाहि तौ लै लै ॥८०॥
नांव लीयां विन भला न होई । सांग धरौ न धरौ मत कोई ॥
सब ही कुं दाषुं गल साची । एक न कौ जांणौं [1]दिल काची ॥८१॥
साची एक ब्रह्म की वाता । दूजी सकल आंन की जाता ॥
जुग मां वौत रचे[1] पाषंडा । एक न जांणै नांव अषंडा ॥८२॥
छुरी वगल मैं हाथि गेडीयौ । छांनै वैस'र गळौ छेदीयौ ॥
इन पूज्यां का ए उपगारा । साध नही औ वडा मुसारा ॥८३॥
पूरै कलस थपावैं थाता । पूजै आंन देव अर माता ॥
गूंथै कूड़ कुविध की गाळी । संग लीयां रहै तेरै ताळी ॥८४॥
सेली सींगी घालै नेमा । रांम भगति का नांही पेमा ॥
भरम करम बौह करै विकारी । साध नही औ वड संसारी ॥८५॥

---

(७६) १. (घ) परणाई ।

(७७) १. (क) न्हाळैं ।

(७८) १. (क) थावै । २. (क) औरां आगैं धरम दिढावै ।

(८०) १. (घ) भाय ।

(८१) १. (ख) मत ।

(८२) १. (घ) रच्यौ ।

तार तंदूरा जंत्र वजावै । जोड़ि मजीरा मजनौ गावै ॥
कांवड़ भगवा[1] पहरै भेषा । अलष न कोई इनकै लेषा ॥८६॥
औघड़ एक न पायौ औघड़ । आक धतूरा पाय हूवौ तड़ ॥
वुरा भला पावै किस काजै । तेरै भीतरि रांम विराजै ॥८७॥
तेरा कीया भला हुय जाई । वुरा[1] न किसका करीयै भाई ॥
वाकै भला वुरा नही कोई । औघड़ औघड़ कहीयै सोई ॥८८॥
जौ तेरौ आपौ पति आई । वुरा भला किसकुं नही लाई ॥
उसका वुरा भला है उसका । तेरै हाथि धूड़ का भसका ॥८९॥
भगत भया हैं भोपा भरड़ा । डांक वजावै ढूढस ढरड़ा ॥
नाचैं कूदैं फरगट फेरी । घर घर मांगै[1] घालै घेरी ॥९०॥
घमक घूघरा नेवर वाया । दुनीयां देष तमासै आया ॥
गांव वीच घालै अषाड़ौ । गावै गोगपाल परवाड़ौ ॥९१॥
सांई छोडि सकति का हूवा । इन कुं नही भगति का दूवा ॥
चाडै जीभ उतारैं सीसा । यां सुं अलग रह्या जगदीसा ॥९२॥
घर वेसा[1] घरवेस कहाया । धिल[2] घरवेस मता नही पाया ॥
हाथे झंडा गलै बागली । घरि घरि मांगै भीष आगली ॥९३॥
संग पांच सात की टोळी । ढेढ न डूंम गिणै नही कोळी ॥
जाय जगत मैं[1] धम जगावै । आप धम-की गम न पावै ॥९४॥
भेदी विनां भरम का भंडा । हाथे लोह लकड़ का डंडा ॥
वराबरी धिल[1] भीतरि षेलै । सो घरवेस[2] पांच कुं पेलै ॥९५॥

---

(८६) १. (घ) भगवां ।

(८८) १. (क) तौ बुरा ।

(९०) १. (घ) मै फिर ।

(९३) १. (घ) दरवेसा दर० । २. (ख) दिल ।

(९४) १. (क) औरां ऊपरि ।

(९५) १. (घ) दिल । २. (घ) दरवेस ।

सुनि वे काजी मुसलमांनां । षलड़ी काटि कीया हैरांनां ॥
विनां हुकम[1] क्युं गला कटावैं । अनहक करि करि हक मिटावैं॥९६॥
अपनै हाथि कीया मन[1] मांनी । हरि का कीया दाय नही [2]आंनी॥
मारैं[2] गऊ कहैं विसमला । युं तौ षुसी षुदाय न [3]अला ॥९७॥
पंचै वषत निवाज[1] गुदारैं । मूंवा मडा मसीत पुकारैं ॥
काढ कतेव कुरांनां वाचैं । यु रहमांन रहीम न राचैं ॥९८॥
जोरू करि करि जाया लड़का । सूतौ वाज करै उठि तड़का ॥
आरिड़ ऊरड़ि घरि घरि मंगै । लड़का लड़की लीयां संगै ॥९९॥
जिंदा होय जिंद नही जांणी । उलटा नाद ब्रिंद नही आंणी ॥
फकर जलाली सेप कहाया । रांम रहीमां दूरि [1]रहाया ॥१००॥
पंचै पीर पूजै पीरांणां । एक[1] नही जांणै रहमांणां ॥
पीर मुरीदां सईद मनावैं । मड़ां[2] मसीतां सीस नवावैं ॥१०१॥
चाडै पांचा कूटैं [1]चवड़ी । इनी वात मैं हैं अलपलड़ी ॥
नाचै कूदै ढोल वजावैं । रांम न रीझैं जुग रीझावैं ॥१०२॥
धांमस धीमस भड़भस होई । या मैं लूंण लषण नही कोई ॥
घरि घरि ता जित घालै ताली । ज्युं[1] नाचैं कूदैं षेतरपाली ॥१०३॥
ऊंच नीच फिर मंगै [1]आषा । संग लीयां रहैं अपनी [2]साषा ॥
मांग भीप अर बंधै पौटा । षालिक दिसीया षाया षोटा ॥१०४॥
धरीया भेष भगति सुं भागा । और भरम अधकेरा लागा ॥
पेम भगति का कठण पैंडा । विटब न कोई मावै फैंडा ॥१०५॥

---

(९६) १. (क) दोस ।
(९७) १. (ख) मानै, आनै । २. (क, ख) मारैं । ३. (क) अल्हा ।
(९८) १. (क) निसदिन पंच नवाज ।
(१००) १. (क) हिरदै रांम रहीम न आया ।
(१०१) १. (ख) रिदै । २. (ख, घ) मुंवां, मूवा ।
(१०२) १. (ख, घ) चमड़ी ।
(१०३) १. (घ) युं ।
(१०४) १. (घ) भीषा । २. (घ) सीषा ।

वांना पहरि फिरौ वन वन मैं। भावैं बैस रहै घर घर मैं॥
सांई कै घर साच पीयारौ। कूड़ कपट का राह निवारौ॥१०६॥
साचा सवद एक है सोई। दूजां कांम सरै [1]नही कोई॥
सो मैं सवद गरु तैं पाया। फुरै मंत्र इसरो वाया॥१०७॥
कूड़ी गल करौ मत कोई। साचा [1]सांम पतीजै सोई॥
साची एको अमर वाता। दूजी वात[2] करै जम घाता॥१०८॥
नागा मोनी दूधा धारी। गलै भरम की पासी डारी॥
मोनी कै आसा मिंतर की। अैसा कोई[1] जांणै अंतर की॥१०९॥
नगन रहै धूंणी सुं ध्यांना। इनकै गुरगम यौ ही ग्यांना॥
दूधा धारी कै मन फिकरी। गाय भैंस का हे घरि बकरी॥११०॥
धूंणी का मन मिंतर दूधा। इनकुं रांम नांम नही सूधा॥
अपनै तन की आसा वरतै। नांव निरासन[1] की नही सुरतै॥१११॥
छह दरसन छिनवै [1]पाषंडा। एक न जांणै नांव अषंडा॥
केता देष पाषि नर भूला। विषै करम करिग्या [2]वेसूला॥११२॥
वाकुं[1] आर पार नही कोई। रह्या रांम सुं वेमुष सोई॥
ब्रह्म विचार भया जन पारा। और रह्या[2] वार का वारा॥११३॥
हींदू तुरक आदि का झगरा। झगरत झगरत वीता पगरा॥
अैसा रै कोई न्याव निछोरै। पषापषी का बंधन तोरै॥११४॥
एकादसी वरत हिंदवांणै। रोजा ईद भया तुरकांणै॥
करि करि ईद इग्यारसि रोजा। रांम रहीम न पाया षोजा॥११५॥

---

(१०७) १. (क) दूजा कूड़ै कांम नही।
(१०८) १. (क) अलष। २. (क) झूठ।
(१०९) १. (ख, घ) को।
(१११) १. (क) सत सवद की।
(११२) १. (क, ख) पाषंड छतीसुं, विरला जांणै जन जगदीसुं। २. (घ) बेसुंला।
(११३) १. (क, ख, घ) वाकुं। २. (ख) षड़ा।

साषी

हरीया हींदू कौंन है, कुंन है मुसलमांन।
सकल आतमा एक है, दुविध्या धरैं'स आंन ॥११६॥

चौपई

टाला टोलै ध्यांन न धरि ही। मूंवां विनां काज नही सरिही॥
मौत विनां मुसकल है मरना। विन मूंवां नही पारि उतरना॥११७॥
आपा मारि मरैं जौ कोई। हरि धरगा मैं हटक न होई॥
आपा मारि मरैं जनैं[1] सदका। विन आपै मूंवा सो रदका॥११८॥
वेद पुरांण सवै जुग लागा। नांव न[1] को जांणै मद भागा॥
सुर नर नागा मुन[2] जन न लहैं। वांह पुंहचन का राह दुलभ है॥११९॥
पुंहचैगा कोई हरि का दासा। परम जोति मैं कीन्हा वासा॥
गोवल गांव नही कोई गैला। पावै दीन दोसती पैला॥१२०॥
विन अछर वाचै पुसतगा। नैन विनां परषत है नगा॥
तार वजावत है विन हाथा। विन रसनां गावै गुन गाथा॥१२१॥
षेलत है चौपरि[1] विन पासा। हार जीत विन भया[2] तमासा॥
आसि न पासि पुरष[3] विन नारी। ओथि लगी हरिजन[4] की यारी १२२॥
दुनीयां दुष सुष भुगतै केता। रांम नांम सुं नांही हेता॥
नांव सनेह न जांनै कोई। मैं संतन कहि थाका सोई॥१२३॥
रांम नांम सब ही कुं[1] आष्यौ। ब्रह्मा विसन[2] महेसुर[3] भाष्यौ॥
सोई नांव कह्यौ पारबती। आयौ भेद रिष नारद ती॥१२४॥
जनहरिरांम कहै घट परचा। अषंड एक रांम की चिरचा॥
घट मैं रांम नांम लिव लावै। जब तैं[1] सुरति निरत घर पावै॥१२५॥

---

(११८) १. (क, ख, घ) जिन (जौ)।
(११९) १. (ख) नही जाणंत। २. (घ) मुनी न।
(१२२) १. (क) षेलै दाव सार। २. (क, घ) होय। ३. (क, ख, घ) नही। ४. (घ) सु।
(१२४) १. (क) दाष्यौ। २. (ख) सेस सिव। ३. (क) अष्यौ।
(१२५) १. (क) सोई।

रांम नांम नित[1] भजन अनंदा। ताहि न को व्यापै दुष दंदा॥
रांम भजन सब का सिध कांमी। रांम सकल का अंतरजांमी॥१२६॥
रांम नांम अभिनासी[1] ठाकुर। वाका हुय रहीयै घर चाकुर॥
चाकुर हुय पाई निज पदी। माया मौह[2] न मावै मदी॥१२७॥
रांम नांम हैं वडे उज्यागर। यु मन मिलें भवंग मलीयागर॥
मेटै भवंग विषै उंन सरनां। रांम हिरै[1] दुष जांमण मरनां॥१२८॥
रांम नांम है गहर गंभीरा। वाकै संग सदा सुष सीरा॥
ज्युं तरवर की छाया गहीयै। ताप न लागै सीतल रहीयै॥१२९॥
तरवर की छाया छिन भंगा। आठ पौहर थिर नांही संगा॥
रांम नांम का संग सदाई। हैं सुष आदि अंत ठहराई॥१३०॥
रांम नांम मोषन का दाता। रांम पिता कुल बंधव भ्राता॥
रांम नांम पापन का मोचन। संसा मेट करै सब सोचन॥१३१॥
रांम नांम सा ना कोई साझन। माया कै बंधन नही बाझन॥
रांम नांम कुं[1]निसदिन ध्यावै। विषै वासना दूरि मिटावै॥१३२॥
रांम नांम अैसा निज पद है। या भजीयां दूजा मद[1] रद है॥
एक रांम नांम हैं सब का। जीवत मूंवा साथि जब तब का॥१३३॥
रांम नांम सुष सागर भरीया। चाष्या चित त्रिचित हुय रहीया॥
चाषि चाषि मैं भया निहाला। पांयु जे कोई पीयैं पीयाला॥१३४॥
पेम पीयाला भरि भरि पीया। पी पी कलि अजरांमर थीया॥
अैसा हरि रस और न कोई। पीयैगा सोई प्यासा होई॥१३५॥
रांम नांम लीयां निसतरीयै। भव सागर मैं डूब न मरीयै॥
रांम नांम जुग मांहि जिहाजा। संतन कुं तिरबै कै काजा॥१३६॥

---

(१२६) १. (क) निज।
(१२७) १. (क) सबहीका। २. (ख, घ) औथिन, ओयन।
(१२८) १. (क) हरै।
(१३२) १. (क) जे कोई।
(१३३) १. (ख, घ) पद।

रांम नांम हैं पतित उधारी। आयै संगठ लीयां उबारी ॥
रांम नांम भगतिन का भीरी। सो सिवरैं ताही का सीरी ॥१३७॥
रांम नांम सरनांगति संतां। आगै आगै कोटि अनंतां ॥
अब ही सिवरि [1]सिवरि सरनागति। जाकी जांनि भई परमागति॥१३८॥
रांम नांम का धरि है निहचा। सोई नर निरभै हुय [1]पुंहच्या ॥
साषी षट [2]सासत चहुं वेदा। रांम नांम सा और [3]न भेदा ॥१३९॥
रांम [1]रांम है केवल नांमां। या तैं उपज्या सब सिध कांमां ॥
केवल नांम कहीजे सोई। वाकै कांना मात न कोई ॥१४०॥
सो मैं केवल सहजां पाया। जब ही तैं तन मन पतिआया ॥
केवल कीया न केवल यारा। वेद कतेब[1] सकल [2]सुं न्यारा ॥१४१॥
निरभै निराकार पद सोई। वाका आर पार नही कोई ॥
जनहरिरांम अगम गम नांही। मेला सुरति निरति कै मांही ॥१४२॥

अथ नांव परचौ लिष्यते *

साषी

सतगुर का सत सबद तैं, उपज्यौ मन बसवास।
रांम नांम छाडुं नही, धरूं न दूजा पास ॥ १ ॥
प्रथम रांम रसनां [1]सवरि, दुतीयै कंठ लगाय।
त्रितीयु हिरदै ध्यांन धरि, चौथै नाभ मिलाय ॥ २ ॥

---

(१३८) १. (क, ख) भये।
(१३९) १. (घ) पौंहचा। २. (घ) सासत्र। ३. (घ) ना कोई।
(१४०) १. (क, ख, घ) नांम।
(१४१) १. (घ) पुरांन। २. (ख) सैं।

---

* यह पाठ 'क' प्रतिसे लिया गया है।
(२) १. (ग, घ) सिवर।

चौपई

अध मध उतिम [1]त्रीय घर ठांनु ।
चौथै अति उतिम असथांनु ॥
ए चहुं भिन देषै आसरमा ।
रांम भगति कौं पावै मरमां ॥ ३ ॥

अध सिवरन जू अैसैं कहीयै ।
रसनां रांम नांम [1]दिढ गहीयै ॥
निस दिन [2]रसनां रांम उचारा ।
ज्युं दर बंदीवांन पुकारा ॥ ४ ॥

ज्युं रसनां तन [1]ज्युं तण वेली ।
तन [2]तण संग तंतवा मेली ॥
वेली पांन फूल फल लगा ।
रसनां रांम सिवरि भव भगा ॥ ५ ॥

अध सिवरन रसनां सुं करीया ।
करतांई भव[1] पार उतरीया ॥*
रसनां रांम सिवरि[2] अध तालु ।
मध सिवरन की आया नालु ॥ ६ ॥

मध सिवरन जू अैसैं भाई ।
रांम विनां [1]हाजित नही [2]काई ॥
गद गद कंठा कवल विगासा ।
पाया पेम भया परगासा ॥ ७ ॥

---

(३) १. (घ) त्रिय ।
(४) १. (ग, घ) रांम कुं । २. (ग) एको ।
(५) १. (ग) युं । २. (ग) तिणकै, (घ) तिण ।
(६) १. (घ) मुक्ति । * 'ग' में यह अर्धाली नहीं है । २. (ग) सिवरन एह भया, (घ) सिवर भया ।
(७) १. (ग) आजित । २. (घ) मुष सिवरन हाल्त रह जाई ।

ज्युं घायल उर सालै पीरा।
त्युं त्युं [1]व्यापक रांम सरीरा ॥
घायल की घायल सो जांनै।
परगट कहि दिषलांउं [2]छांनै ॥ ८ ॥

अध सिवरन रसनां[1] लिव लागी।
तिसना[2] कंठ कवल की भागी ॥
मध सिवरन की ए परतीत।
अब्र उतिम सिवरन की रीत ॥ ९ ॥

उतिंम सिवरन हिरद सथांनुं।
मांहोमांहि भया घर ध्यांनुं ॥
रसनां [1]लीया रांम का नांमा।
उर भीतरि पाया[2] विसरांमा ॥ १० ॥

सहजां सासा [1]रांम पिछांणी।
रसनां [2]संग रांम की वांणी ॥
उतिम सिवरन [3]सुष हिरदा मैं।
यु नारी पुरषा [4]रुचि (तिकी) यामैं ॥ ११ ॥

---

(८) १. (घ) व्यापै। २. (ग) परगट कहूं गुपत नही छानै, (घ) रांम भजै सोई मन मांनै।

(९) १. (ग) अर्धाली नहीं है, (घ) निसचै रांम नांम। २. (घ) भ्रमनां।

(१०) १. (घ) लेत। २. (ग) सासो सास नित पति नांमा। उतिम सिवरन मन विसरांमा ॥

(११) १. (ग, घ) सबद। २. (ग) रांम ल्गी धुन बांनी, (घ) सहत नांम निरबांनी। ३. (ग) हिरदै थईयुं, युं नारी पुरुषांरथ भईयुं। ४. (घ) मन कांमैं।

जब उतिम सिवरन सुष पाया।
तब ही तैं निसचै मन [1]आया ॥
अध मध उतिम [2]अरु असथांनां।
अब अति उतिम [3]आय मिलांनां ॥ १२ ॥
अति उतिम सिवरन जू अैसा।
या ऊपम गुन [1]कहीयै कैसा ॥
अति उतिम सिवरन परकारा।
रोम रोम लगा ररंकारा ॥ १३ ॥
अति उतिम नाभी असथांनुं।
मन संकलप विकलप नही ठांनुं ॥
अति उतिम सिवरन सरबंगा।
अछर एक भया अणभंगा ॥ १४ ॥

साषी

सिवरन मारग संत का, तातै भरम नसाय।
हरिरांमा [1]हरि बंदगी, करीयै चित [2]लगाय ॥ १५ ॥

छंद प्रीयात भुजंगी

नांव चेतन मन चेत भाई।
नांव तैं[1] चित चौथै मिलाई ॥ १६ ॥
नांव तैं केवल होय[1] भजनां।
नांव तैं सहज सिवरन रसनां ॥ १७ ॥

---

(१२) १. (घ) उतिम सिवरन की सुध आई, टुकी इक ध्यांन रह्या ठहराई। २. (ग) सिवर समाना, (घ) सिवरन सुजांनां। ३. (ग, घ) अति उतिम कै मांहि।
(१३) १. (ग, घ) या उपमा मैं वरतु कैसा।
(१५) १. (ग) हरीया हरि की। २. (ग) कीजै मन एक लाय।
(१६) १. (ग, घ) कुं।
(१७) १. (ग) एक अनेक।

नांव तैं अजपा जाप ओऊं।
नांव तैं सास उसास सोऊं ॥ १८ ॥
नांव तैं हक है एक अल्हा।
नांव तैं अर्षीयै एह [1]गल्हा ॥ १९ ॥
नांव तैं चंद सूरा समेला।
नांव तैं करत मन सुष केला ॥ २० ॥
नांव तैं षोलि कपाट गैंणु।
नांव तैं ध्यांन [1]ताटिक नैंणु ॥ २१ ॥

साषी

नाभी परचा नांव का, अरध[1] कवल असथांन।
हरिरांमा[2] मन उलटि कै, चल्या उरध[3] कुं ध्यांन ॥ २२ ॥

छंद भुजंगी प्रयात

पलटि पूरब अपूरब पांणा।
करि वंक नाली[1] ले मेरथांणा ॥ २३ ॥
ध्यांन आकास धरि [1]अटल छाजै।
सुरति अर सब्द [2]जांह एक राजै ॥ २४ ॥
मन बुधि चित अरु अहकारा।
पांच पचीस मिल एक यारा ॥ २५ ॥
नाद अनहद जांह तूर वाजै।
विण वादलां वीज विण अब गाजै ॥ २६ ॥

---

(१९) १. (ग) नांव महमान की आषि गला।
(२१) १. (ग) त्राटक।
(२२) १. (ग, घ) गुर तैं पाया ग्यांन। २. (ग) जनहरीया, (घ) हरीया पूरब एकपल। ३. (ग) धरि आकासां, (घ) धन्या गिगन मैं।
(२३) १. (घ) नाले लीया।
(२४) १. (ग) अरघ आकास उनमुन। २. (ग) मिल।

विण गंग जमना वहै नीर पारा।
चलै सुषमणा [1]इंमरत धारा ॥ २७ ॥
झिलमिला होत जांह अषंड जोती।
निरमला[1] नूर तांह ओत पोती ॥ २८ ॥
अगम [1]अपार अवगति यारा।
मिल्या मुझि मैं मुझि [2]पीतंव प्यारा ॥ २९ ॥
तीन गड [1]चूरि पति अदल साई।
सुन्य का सहर निरभै वसाई ॥ ३० ॥

साषी

हंसा सुंन्य सरवर मिल्या, सरवर हंस मिलाय।
हरीया परि [1]सरि षेलतां, सहजां [2]मांहि समाय ॥ ३१ ॥

छंद प्रीयात भुजंगी

मन अर तनकरि[1] सहज पूजा।
आपही[2] देव नही और दूजा ॥ ३२ ॥
सहज का जोग साझन पवनां।
सहज थिर नाद अरु बिंद गिगनां ॥ ३३ ॥
सहज तीरथ जप तप ध्यांनु।
सहज षटकरम सेवा सिनांनु ॥ ३४ ॥
सहज कछि काछ कीरतंन काजा।
सहज का सबद सुर वाय वाजा ॥ ३५ ॥

---

(२७) १. (ग, घ) सीर।
(२८) १. (ग, घ) त्रिमला।
(२९) १. (ग) है पार। २. (घ) पीतम।
(३०) १. (ग) च्यार चक चूरि, (घ) फदल कुं जीत।
(३१) १. (घ) सिर। २. (घ) रह्या।
(३२) १. (ग) सहज मन वचन तन प्रांण पूजा। २. (ग, घ) सहज विन (सा)।

सहज मैं नाच दे निरत ताली ।
सहज आकास परि भोमि भाली ॥ ३६ ॥
वंदना सहज कर [1]सीस धरींया ।
सहज हरिनांव वगसीस करीया ॥ ३७ ॥
सहज का भेद सोई भेद भेदै ।
सहज विन जांनि दूजा नषेदै ॥ ३८ ॥
सहज का भेद सोई संत जांणै ।
हदि कुं जीत वेहद मांणै ॥ ३९ ॥
सहज का[1] आसण सहज आसा ।
सहज मैं षेलणा[2] सहज पासा ॥ ४० ॥
सहज[1] सब जांनना षूब भाई ।
सहज सामाधि सहजैं मिलाई ॥ ४१ ॥

साषी

सहजां मारग सहज का, सहज कीया विसरांम ।
हरीया जीव'र सीव[1] का, भया एक ही[2] ठांम ॥ ४२ ॥

छंद प्रीयात जाति भुजंगी

जीव अर सीव मिल एक राई ।
पूरणा ब्रह्म जांह सुषदाई ॥ ४३ ॥
आदि अरु अंत नां मधि कोई ।
जीव जांह सीव मिल एक होई ॥ ४४ ॥

---

(३७) १. (ग) सहज करि वंद सिर टेक धरीया ।
(४०) १. (घ) सहज आसण कीया सहज वासा । २. (ग) षेल निर आस, (घ) षेल अजीत ।
(४१) १. (ग, घ) सहज का षेलणा ।
(४२) १. (ग) हरिया सहजां पाईया, जीव सीव का धांम । २. (घ) एक नांम अर ।

जीव अर सीव का ओथि वासा।
आभ धरती न हो [1]तूं निरासा ॥ ४५ ॥
जीव अर सीव करिं एक जांणी।
मिल्या सिंध मैं सिंध ज्युं बूंद पांणी ॥ ४६ ॥
ब्रह्म [1]त्रिपाय गुण [2]ग्रभ गळीया।
जुरा नांहि झंपै [3]भै कंप टळीया ॥ ४७ ॥*
ब्रह्म भवतार [1]भय रहत होई।
ब्रह्म अवगति आणंद सोई ॥ ४८ ॥
ब्रह्म निरबंध निरबांण नितुं।
ब्रह्म पी अपी परमांन[1] चितुं ॥ ४९ ॥
ब्रह्म अनहद अनवी नवी सा।
ब्रह्म अनाथ के नाथ ईसा ॥ ५० ॥
ब्रह्म वदेह त्रिभेव [1]देवा।
ब्रह्म त्रिपाप[2] त्रिपुन लेवा ॥ ५१ ॥
ब्रह्म अडोल [1]भय नांहि डोलै।
ब्रह्म अबोल विन [2]मुष बोलै ॥ ५२ ॥
ब्रह्म अतोल नही मोल माया।
ब्रह्म अपार किन पार पाया ॥ ५३ ॥

---

(४५) १. (ग, घ) होते।

(४७) १. (ग, घ) निरपाय। २. (घ) गरब। ३. (ग) भय। * (ग) में निम्न अधिक है—

ब्रह्म निरधार निरवंस निरहै, ब्रह्म निरकार निरभै न मरिहै।

(४८) १. (ग, घ) भव।

(४९) १. (घ) परमा निरतुं।

(५१) १. (ग) ब्रह्म निरदेव निरदेन भेवा। २. (ग, घ) निरपाप निरपुन।

(५२) १. (घ) भव। २. (ग) अबोल्ता मांहि, (घ) अबोल्ता नांव।

ब्रह्म निरंजन निरगुन न्यारौ ।
ब्रह्म परमातमा आतम प्यारौ ॥ ५४ ॥
ब्रह्म अग्याध कोई साध जांणी ।
और घुर घींस [1]सिर नाक तांणी ॥ ५५ ॥

साषी

जीव सीव मिल [1]एकता, रहे [2]निरंतर छाय ।
हरीया ब्रह्मानंद मैं, और न [3]कोय समाय ॥ ५६ ॥

छंद भुजंगी

नको रस भोगी नको रहत न्यारा ।
नको आप हरता न करता [1]ब्यौहारा ॥ ५७ ॥
नको ब्रह्मा [1]नकोई नगेसं ।
नको आदि नकोई महेसं ॥ ५८ ॥
नको नादबिंदं नको जीव जिंदुं ।
नको आभ धरती नकोई गिरिंदुं ॥ ५९ ॥
नको मोह माया नको कांम क्रोधं ।
नको त्रिध तरणा नको बाल बोधं ॥ ६० ॥
नको षांणि च्यारै नको च्यारि बांणी ।
नको चंद सूरा नको पौंण पांणी ॥ ६१ ॥
नको मास पषं नको तिथ वारा ।
नको राति दिनं नको अंधियारा ॥ ६२ ॥

---

(५५) १. (ग) और सिर पाव ठोक नांक ।

(५६) १. (घ) एकठा । २. (ग) सकल निरताय । ३. (ग) ना कोई और ।

(५७) १. (घ) बुहारा ।

(५८) १. (ग) नको नाग सेसं ।

नको सातदीपं नको नवषंडा।
नको तेज तारा नको ब्रहमंडा ॥ ६३ ॥
नको सिंध [1]सिलता नको ढार भारुं।
नको तीन लोका नको जुग च्याख्‍‍ुं ॥ ६४ ॥
नको रिध सिधं नको मांनि धाता।
नको आय जावै नको नेहनाता ॥ ६५ ॥
नको नारि पुरषा नको जाति पांती।
नको ऊंच नींचा नको छोतिभ्रांती ॥ ६६ ॥
नको लोक लज्या नको कुटंम धरमा।
नको पित मातं नको भरम करमा ॥ ६७ ॥
नको थांन मानं नको पांन पाती।
नको देवदोसं नको जगजाती ॥ ६८ ॥
नको सुचिक्रिया नको वेदपाठं।
नको मुषब्रांणी नको मोन काठं ॥ ६९ ॥
नको [1]तनत्यागी नको [2]ग्रेहचारा।
नको नवनाथुं नको [3]पंथवारा ॥ ७० ॥
नको जोग जुगता नको जतजोषा।
नको सातसुषं नको दसदोषा ॥ ७१ ॥
नको मंनवाचा नको स्वाल सबदी।
नको हदि मांही नको वेयहदी ॥ ७२ ॥
नको रागदोषं नको वंध मोषा।
नको घाटि वाधं नको आध ओषा ॥ ७३ ॥
नको राजतेजं नको देसपती।
नको गढछाजा नको द्वारि [1]हसती ॥ ७४ ॥

---

(६४) १. (ग) सात सिंधु।
(७०) १. (ग) त्याग त्यागी। २. (ग) सांग धारै। ३. (ग) पंथवारै।
(७४) १. (ग, घ) नको महल छाजा नको रूप रती।

नको [1]ब्वासदासी नको आसपासं ।
नको साथसंगी नको सास वासं ।। ७५ ।।

नको रागबागं नको षटभाषा ।
नको ह्वालमाली नको लष पाषा ।। ७६ ।।

नको सूरसती नको षग [1]धारुं ।
नको आगिलागै नको झूझ [2]मारुं ।। ७७ ।।

नको साषसोई नको दूज दाषै ।
नको जातिजूई नको [1]पषराषै ।। ७८ ।।

नको धजनेजा नको तूरवाजै ।
नको मेघवरषा नको बीजगाजै ।। ७९ ।।

नको दईत देवा नको दसवतारा ।
नको षेल[1] जूवा नको जीतहारा ।। ८० ।।

नको भगति नौधा नको षट व्रनं ।
नको कान गोपी नको कीरतनं ।। ८१ ।।

नको मूरतसेवा नको देवद्वारा ।
नको भोग चाढै नको षांणहारा ।। ८२ ।।

नको तीरथव्रतं नको असनांनं ।
नको होम जापं नको तप[1]दांनं ।। ८३ ।।

नको पिंड पौहरा नको चोर लागै ।
नको रैंण सूता नको दिन जागै ।। ८४ ।।

---

(७५) १. (ग) दासदासी ।
(७७) १. (ग, घ) धारा । २. (ग, घ) मारा ।
(७८) १. (ग) रुष राषै ।
(८०) १. (ग) जुध ।
(८३) १. (ग) ध्यांनं ।

नको च्यारि वेदं [1]नकोउ पुरांनां ।
नको है कतेवां [2]नकोउ कुरांनां ॥ ८५ ॥
नको औल हींदू नको कौल मुलां ।
नको दायपालं नको महरसुलां ॥ ८६ ॥
नको राह पीरां नको तेग मरदां ।
नको हक्क मूवा नको हक करदां ॥ ८७ ॥
नको सुनत काजी नको बंग न्वाजा ।
नको [1]दिन रोजा मका नांहि ष्वाजा ॥ ८८ ॥
नको राव रंकं नको सुलतांनां ।
नको षाक पाकं नको मसतांनां ॥ ८९ ॥
नको सुपन जागै नको सुषपती ।
नको पद तुरीया नको मोष मुगती ॥ ९० ॥
नको भूत प्रेतं नको [1]वीर विद्या ।
नको काळ जाळं [2]नकोउ अविद्या ॥ ९१ ॥*

---

(८५) १. (ग, घ) नको है । २. (ग, घ) नको है ।
(८८) १. (घ) ईंद ।
(९१) १. (घ) जष जूणा । २. (घ) नको तत दूणा । * 'ग' प्रतिमें ९१-९२-९३ संख्यावाली साषियाँ नहीं हैं, निम्न साषियाँ हैं—

(ग) नको नको मै कहत हूं, नहीं'स है है नांहि ।
हरीया न्यारा ब्रहम है, व्यापक सबकै मांहि ॥ १ ॥
ज्युं घट घट मै ब्रहम है, वादल वादल वीज ।
हरीया आपा भेद विन, मूरष कहा पतीज ॥ २ ॥
माया त्रिगुण रूप है, ब्रह्म निरूपी होय ।
हरीया रूप निरूप कुं, न्यारा निरषै कोय ॥ ३ ॥
न्यारौ काटै करम कुं, भांजै भरम अपार ।
जनहरीया जब तैं लहै, प्रांण पुरस दीदार ॥ ४ ॥

साषी

ज्युं देष्या त्युं मैं कह्या, कांणि न राषी काय।
हरीया परचा नांव का, तन मन भीतरि पाय ॥ ९२ ॥

दारक मैं पावक वसै, आतम तन कै मांहि।
हरीया पय मैं घ्रित है, विन मथीयां कुछि नांहि ॥ ९३ ॥

प्रांण पुरस जहां रमि रह्या, सुष दुष संसा नांहि।
हरीया आपा उलटि कै, मिले निराला मांहि ॥ ५ ॥

(अन्य प्रतिमें) * पुष्पाङ्कितके बाद निम्न साषियाँ उपलब्ध हैं—

नको दीन दुनीयां नको माल संचै।
नको आदि अंती नको काल वंचै ॥
नाको ना सब करत हूं, एक विनां कोउ नांहि।
इक न्यारा हरिरांम जी, व्यापक सबकै मांहि ॥ १ ॥

इक इनता इक नित्य है, आदि अंत तैं लाय।
इनता धरि मरि भी धरै, नित न आवै जाय ॥ २ ॥

एक ब्रह्म सो नित है, और अनित्या जीव।
हरिरांमा कैसै लहै, पाणी मथ्या घीव ॥ ३ ॥

जौं पावक पाहण वसै, जौं कासट फुन जांणि।
ज्युं दूधन मैं घ्रत है, जौं आतिम रांम पिछांणि ॥ ४ ॥

सिवरण अैसा रांमका, जैसा और न कोय।
कोटि करम ते कारिवा पल मै डारै षोय ॥ ५ ॥

जौं जांण्या तौ मै कहा, औरूं आर न पार।
सिव सनकादि ब्रह्म ले, नांव नकेवल सार ॥ ६ ॥

अथ निजग्यांन लिषते *

साषी

सतगुर सोई जांणीयै, कहै कहावै रांम।
हरीया गुर गोविंद सा, और न को विसरांम ॥ १ ॥ †

चौपई

मेरै सत सबद का सरना। तातैं मिटै जनम जग मरना॥
सो[1] सबद सतगुर तैं पावै। जब तन मन का संसा जावै ॥ २ ॥
गुर संम्रथ गुर सुष की सीरा। गुर हैं दवन[1] विषै तन पीरा ॥
गुर अघहरन करन आनंदा। गुर तैं मिटै भरम भय फंदा ॥ ३ ॥
गुर दयाल दीन गुर दाता। गुर सबहन के ग्यांन विधाता॥
गुर हैं [1]दया [2]पाल गुर देवा। या गुर की मिल करीयै सेवा ॥ ४ ॥
गुर श्रोता कुं [1]भेद बतावै। मैं तैं मन अग्यांन मिटावै ॥
गुर का संग भंग नही करीयै। चरण कंवल चित [2]आगैं धरीयै॥ ५ ॥‡
ररौ ममौ अछर पढि लीजै। तन मन वचन साध पैं दीजै ॥
रांम नांम सत्य है[1] सोई। जाकुं जानत है जन कोई ॥ ६ ॥

---

* 'ग' प्रतिमें··"हरिरामदासजीरो कह्यौ' यह विशेष है। पाठ 'क' प्रतिसे लिया गया है।

(१) † (ग) प्रतिमें यह साषी नहीं है।
(२) १. (घ) सोई।
(३) १. (घ) गुर सौह मेट विषै।
(४) १. (घ) दयाल। २. (घ) दीन।
(५) १. (घ) गुर सुरता कुं ग्यांन। २. (ग) चित कवल चरणांकर।
‡ (घ) में यह नहीं है, एवं इसके पश्चात् १५ वीं संख्यावाला पाठ आता है, और १८ के बाद फिर यही मूल पाठ आता है।
(६) १. (घ) सार सबद सति है सोई।

सोहै चिदानंद [1]अभिनासी । निराकार निरगुन निरवासी ॥
पराब्रह्म पार परषोतम । निराधार निरभै निरगोतम ॥ ७ ॥
निरविकलप निकलंक त्रिवासी । निरालेप त्रिबांण निरासी ॥
निंहचल अचला चलै न डोलै । अमर अथाह न अरथ अतोलै ॥ ८ ॥
निरपष निजानंद पद न्यारौ । परमगरू परमेस्वर प्यारौ ॥
अजरांमर अषंडी [1]अणभंगी । आप अकल अणभै [2]अणजंगी॥ ९ ॥
परमातम परनव परगासा । परोदेव परभव परनासा ॥
त्रिव्यापक त्रिदेह निरालौ । नां कोई त्रिध न तरणा बालौ ॥१०॥
अधर एक [1]अणभग अणजायौ । मात पिता नही गोद षिलायौ ॥
नां कुछि हलका नां कुछि भारी । नां कुछि पुरषा नां कुछि नारी॥११॥
नां मुष मौन ग्रहै नही बोलै । नां [1]उ षलक पलक नही षोलै ॥
अगमागम अवगति [2]आद्यंता । पावैगा परमांगति [3]मिंता ॥१२॥
एक बूंद का [1]मिंझ्या मंडांणां । कुंण हींदू कुंण मुसलमांणां ॥
जाति पांति कारण नही कोई । सब ही[2] मैं हरि हेको[3] होई ॥१३॥
छोटे वडे नीच कुल ऊंचा । रांम [1]कहत सबही नर सूचा ॥
कहा भयौ [2]जे ऊंच कहायौ । रांम नांम [3]हिरदै नही गायौ॥१४॥*
वार वार औसर नही अैसौ । रांम भजन कौ मौसर कैसौ ॥
अज हूं कांय विसरै छिनवारा । गाफिल गंदा मूढ गिंवारा ॥१५॥

---

(७) १. (घ) अविनासी ।
(९) १. (ग, घ) अणजंगी । २. (ग, घ) अणभंगी ।
(११) १. (घ) अणभंग ।
(१२) १. (घ) षालिक । २. (ग) आद्यिंता, (घ) आनंता । ३. (घ) मंता ।
(१३) १. (ग, घ) मंझ्या । २. (ग, घ) का । ३. (ग) एको ।
(१४) १. (ग) कहै सोई नर । २. (ग, घ) ऊंच (ऊंचै) कुल । ३. (ग, घ) जो (जे) मुषां न । * (घ) में नहीं है ।

दीन[1] विना दाता नही कोई । हरता करता सब का [2]सोई ॥
ग्यांन ध्यांन गलतांन [3]गभीरा । पेम सहत मन वचन सरीरा ॥१६॥
द्वंदवाद किन हूं नही करीयै । आपा[1] सेती अजरा जरीयै ॥
राग न धेष हरष नही धोषा । सीलादिक संजम संतोषा ॥१७॥
निंद्या लोक दोष पर त्यागै । अहिनिस एक आतमा जागै ॥
छाजन भोजन भूष विनासा । उझर वसती ग्रह वनवासा ॥१८॥
रंमता[1] रांम एक रंग रता । माया मोह विषै नही मता ॥
उतिम साध सु लछन.थीरा । सो कहीयै अजरांमर वीरा ॥१९॥
मेरा सो हरिजन हितकारी । वांकै पेम भगति अधिकारी ॥
समझि बूझि अैसैं नर [1]भाई । मनवा एक दोय फल दाई ॥२०॥
कै[1] तौ विषै करम कै काजै । भावैं[2] बैठ रहौ हरि छाजै ॥
अकरम करम न करता होई । जैसा दत्तब भ्रुगतै सोई ॥२१॥
मैं तौ अपणा पीव पीछांण्या । जब तैं[1] एक एक करि जांण्या ॥
अब घट मेरै भया अणंदा । सिसहर घर सूर सूर घर चंदा ॥२२॥
जाकै विच सुषमनां जागी । नांव निरंतर ताली लागी ॥
जुरा मरण काल नही ग्रासै । मनवा मिल्या रांम इक रासै ॥२३॥*

---

(१६) १. (ग, घ) एक । २. (ग, घ) होई । ३. (ग) गुरगम ग्यांन ध्यांन मुन धारा । पेम सहत निज नांव पीयारा ॥

(१७) १. (ग) तनमन ।

(१९) १. (ग) रहता ।

(२०) १. (ग) मन कुं ग्यांन गुझि संभलाई ।

(२१) १. (ग) का मन विषै करौ कुल काजै, (घ) का तौ । २. (ग) का मन ।

(२२) १. (ग) आपा । * इसके पश्चात् (घ) में निम्न पाठ और है—
सतगुर जैमलदास सिहाई । ता तैं जीव ब्रम एक थाई ॥

जनहरिराम कहै निज ग्यांनां । प्रगट्या परम तंत पर ध्यांनां ॥
पूरन पद पाया परनांमी । सब संतन के दास [1]गुलांमी ॥२४॥

अथ पद बतीसी लिष्यंते *

एक सबद मैं कहि समझाऊं, सुणि हो सब संसारा ।
रांम नांम सो सार सबद है, और कथन है [1]छारा ॥ १ ॥
आपा भेद विना सोई सुरता, कहै सुणै सो झूठा ।
जब लग अणभै तत न दरसै, मरि मरि आवै पूठा ॥ २ ॥
मन कुं [1]निकट गहौ जौ गाढौ, पकड़ै पांचुं षांनां ।
तीन गुणां की माया त्यागै, पद पावै निरबांनां ॥ ३ ॥
माया मोह विषै संसारुं, दूतर मारग दूरा ।
कायर ताहि वीच मैं [1]गड्यौ, डाकि परै सो सूरा ॥ ४ ॥
सूर महातम सझि [1] संग्रांमां, सांम कांम इकधारा ।
षाग त्याग दोउं तड़ जोड़ै, मोड़ै षळ दल मारा ॥ ५ ॥
जोग जिग जप तप असनांनां, ए सब आसा बंधी ।
पूरण [1] ब्रह्म सकल सुं न्यारा, दुनीय न [2] जांणै अंधी ॥ ६ ॥

---

(२४) १. (ग, घ) में इसके बाद यह और है—
हरीया कहि कहि रांम कुं, (रसणा एको राम ले), पीया पेम भर पूर ।
अषंड एक अव (औ) गति रता, दुष भय (भै) संसा दूर ॥

* पद वतीसी लिष्यंते हरिरामदासजीरी कही (क) प्रतिसे पाठ लिया गया है । मूल प्रतिमें नहीं है ।

(१) १. (ग) और विषै वौहौ हारा ।
(३) १. (घ) उलटि ।
(४) १. (अन्य) गड़ीयौ ।
(५) १. (ग) सूरा कै मन सु संगरांमां ।
(६) १. (ग) एको रांम । २. (ग) दुनीयन देषै, (घ) दुनीन ।

त्रिगुण पद का भेद नीयारा, कह्यां सुण्यां नही पावै।
आपा उलटि आप कुं देषै, जब तैं मन पतिआवै ॥ ७ ॥
भाव हीन प्रिथमी होसी, पूजा दंभक चाड़ा।
नांनां विध का मारग होसी, रांम नांम वटवाड़ा ॥ ८ ॥
मैं नही कहत कहत परिग्यांनुं, सुणि हो सबै सयांणां।
मैं तैं राग दोष जुग विंध्या, ए कलि के इह नांणां ॥ ९ ॥
दुनीयां दुसट बुधिता होसी, मनमुष ग्यांन समरथा।
धरता कुं करता करि जांणै, अरथुं करैं अनरथा ॥ १० ॥
वकता वेद बकै बौह तेरा, सहजां सुधि न आवै।
नाटक चेटक करि करि[1] भूला, पैलां[2] पंथ न पावै ॥ ११ ॥
बाबु पलटि[1] कहीया बाबा, बौह रंग भसमी लाया।
देह दसा[2] करि भया दिगंबर, मन [3]वइराग न आया ॥ १२ ॥
बाहिर हेम राम का वांना, भीतरि भया भंगारु।
या तन कुं कारी नही लागै, मनवा भरचा विकारु ॥ १३ ॥
तन कै काज धरचा बौह वांना, मन थिर करि नही लीया।
चंचल चित चहुं दिस डोलै, पकड़ि काळ वसि कीया॥ १४ ॥
देषा देष सकल जुग[1] भरिम्यां, पषा पषी कै सरमां।
आसा तिसनां[2] भया अषंडी, लोक लाज कुल करमां ॥ १५ ॥
दोय अछर का सकल पसारा, या सुं[1] करौ संनेहा।
एकै लागि[2] लागि जुग मोह्या, एक रह्या निरछेहा ॥ १६ ॥
मन तन वचन ग्यांन दिढ करिकै, एक सबद गुझि अषुं।
जाता कुं जावण दे भाई, रहता कुं ग्रहि रषुं ॥ १७ ॥

---

(११) १. (ग) आउला नाटक चेटक करि है। २. (घ) पार।
(१२) १. (ग, घ) नांम, नांव धरि। २. (ग) तै। ३. (घ) वैराग।
(१५) १. (ग) भगति विनां भेष जुग भरमै। २. (घ) भई।
(१६) १. (ग, घ) या मै कौंण सनेहा। २. (ग) सकल।

सिवरण सार सकल का सौदा, नांव नकेवल एकुं ।
अलष पुरष आतम अभिनासी, माया और अनेकुं ॥ १८ ॥
माया तीन लोक मुसि षाया, सुर नर नाग नरेसा ।
या कुं जीत चलै कोई साधु, सतगुर कै उपदेसा ॥ १९ ॥
रांम नांम गुर सवद हमारै, सो सब तैं सिर ताजुं ।
और सवद गुर मेरै भावैं, कहन सुनन कै काजुं ॥ २० ॥
रांम नाम परताप सदाई, तारे पतति अनेका ।
सिव सिंनकादिक रिष नारदसे, पाया[1] ग्यांन वमेका ॥ २१ ॥
अरध उरध मैं कीया पयांणा, जांणै विरला जोगुं ।
मन पवनां पछिम की घाटी, आपा नांव तरोगुं ॥ २२ ॥
सुधि वुधि [1]विसर गया [2]सव देहा, रांम[3] नांम रस पीया ।
अैसा[4] अछक छक्या अवधूता, जुग जुग अणभै जीया ॥ २३ ॥
अैसी अकथ कथा और[1] सैं, कहीयै कौण वमेषी ।
उलटा अजर जरै अवधूता, सो जन विरला देषी ॥ २४ ॥
अजरांमर का मारग औला, सौला संत पिछांणै ।
वंक नालि मेर संचरि कै, भवर गुफा सुष मांणै ॥ २५ ॥
इला पिंगला नाड़ी [1]मिलकर, सुषमनि कीया [2]विछांनी ।
अरस परस पीया [3]सुं षेली, मगनां भई दिवांनी ॥ २६ ॥
धर [1]अंबर कै वीच कलाळी, विण कर प्याला पावै ।
भाटी अधर पीयै मतवाळा, रोम रोम रुचि आवै ॥ २७ ॥

---

(२१) १. (ग) ब्रह्मा विसन ।
(२३) १. (ग, घ) पलटि । २. (ग, घ) गुण । ३. (ग) रोम रोम, (घ) ररंकार । ४. (ग) आतिम ।
(२४) १. (ग) कुंण आगै, (घ) औरन सुं ।
(२६) १. (ग) नारी संजम । २. (घ) पिछांनी । ३. (ग) मिल ।
(२७) १. (ग) असट कवल ।

तीन्हुं पैल षेल घर चौथै, दिल इंदर मिल यारा।
पांचे[1] उलटि एक घरि आया, पाया दसुं दुवारा ॥ २८ ॥
षोड़ि[1] दवादस गऊ मिलाई, अजपा [2]दही जमाया।
तन मटकी मन कीया झेरणा, मुगता[3] माषण आया ॥ २९ ॥
सुन सुभर मैं बालक जाया, तुचा हाड़ नही मासुं।
जाति [1]न पांति वरण नही वाकै, नांव न धरीयै कासुं ॥ ३० ॥
अगम निगम [1]घर षेल हमारा, जांह[2] एको निरवासा।
रूप रेष नष चष नही वाकै, देह न ग्रेह न सासा ॥ ३१ ॥
जैमलदास गरु परतापे, तोड़्या भरम किंवारूं।
जनहरिराम कहत है संतो, पद बतीस विचारूं ॥ ३२ ॥*

अथ ग्यांन परिछ्या[1] लिष्यते

साषी

सिष पूछ्या गुर प्रसन हुय, कहि मोकुं गुझि ग्यांन।
तम सा मेरै को नही, दाता परम [1]निध्यांन ॥ १ ॥

---

(२८) १. (ग, घ) पांचूं।
(२९) १. (अन्य) षोड़स। २. (घ) मही। ३. (अन्य) मुगत सुं।
(३०) १. (ग, घ) प्रतिमें इस स्थानपर 'नकार' नही है—जाति पांति।
(३१) १. (ग) जहां। २. (ग) नर।
(३२) * (ग, घ) में निम्न साषी अधिक है—

पद बतीस विचारिकै, आतिम उपज्यौ ग्यांन।
आपा ले उनमुन रहै, लह्यो (है) परम निज ध्यांन ॥

---

१. (ख, ग) ग्यांन गुसट (ष्ट); [विज्ञप्ति—इस रचनाको ग्यांन गुष्ट भी कहते हैं।]
(१) १. (घ) निधांन।

नांव न कोई रांम सा, सतगुर की नही सेव।
देवळ ना कोई देह सा, आतम सा नही देव ॥ २ ॥
जतन [1]नही कोई जत सा, सुषमणि सी नही सीर।
सकति न [2]काई सुरति सी, त्रिमल सा नही नीर ॥ ३ ॥
निजमन सा [1]मिंत्री नही, पेम समा नही प्यास।
दरसण नां कोई दिल सा, हरिजन सा नही दास ॥ ४ ॥
षालिक सी षेती नही, कण[1] जैसा पण[2] नांहि।
चेतन सा चेता नही, महरम सा नही मांहि ॥ ५ ॥
भगति न काई भावसी, अगम समा नही ग्यांन।
आपै सा परचा नही, धीरज सा नही ध्यांन ॥ ६ ॥
नेम न कोई नित सा, अलष समा नही षेल।
सगपण ना कोई साध सा, एक समी नही बेल ॥ ७ ॥
साच न कोई सबद सा, अनहद सा नही गाज।
सहर न कोई सुन्य सा, अणभै सा नही राज ॥ ८ ॥
जुगत न काई जोग [1]सी, अजपै सा नही जाप।
सिवरन नां कोई सहज सा, लिव सा नांहि मिलाप ॥ ९ ॥
त्याग न तन मन वचन [1]सा, अवगति सा नही यार।
सुषी न परमानंद सा, पतिव्रत सा नही[2] प्यार ॥ १० ॥
मता न[1] कोई तत सा, त्रिगुन सा नही नेह।
वेद न कोई छुछम सा, गिगन समा नही ग्रेह ॥ ११ ॥

---

(३) १. (घ) जतन न। २. (घ) संगत न कोई।
(४) १. (घ) मंत्री।
(५) १. (क, ख, ग, घ) पण। २. (क, ख, ग, घ) कण।
(९) १. (क, ख, ग, घ) जोग न कोई जुगति सा।
(१०) १. (ख, ग) त्याग न को स्वांयत (सांयत) सा। २. (क) पीव न सा कोई, (ख) पीव समा नही प्यार।
(११) १. (क, ख) नही, (घ) मत न

उंनमुंन सी मुद्रा नही, सुधि बुधि सी नही सार।
वात न [1]विद्या वमेष सी, अधर न सा आधार ॥ १२ ॥
विहर न को वैराग सा, रब सा नां कोई रंग।
हरष न सा हासा [1]नही, सत सा [2]नां कोई संग ॥ १३ ॥
पीर न को वेपीर सौ, आस न जिसी[1] निरास।
सकल न कोई अकल सा, सास न सा वेसास ॥ १४ ॥
साहिब सी नही साहिबी, आसित सी नही आथि।
वंधु नां कोई दीन सा, अमर सी न अनाथि ॥ १५ ॥
वरत न को हरिव्रत [1]सा, निरजन सा नही नूर।
कहतब नां कोई रहत [2]सा, अरध न सा अंकूर ॥ १६ ॥
होतब सा जोतब नही, अरथुं सा [1]न गरथ।
वैंन न को वेहद सा, सांम न सा समरथ ॥ १७ ॥
चैंन [1]नही कोई चुप सा, भेद समा नही भेष।
प्रीत न को परतीत सी, अदेष सा नही[2] देष ॥ १८ ॥
झिलमिल सी जोती नही, त्रिभवन सा नही नाथ।
हिरदै सा आसन नही, सुभ्रम[1] सा नही साथ ॥ १९ ॥
त्रिगुटी सा तीरथ नही, सील न समा सिनांन।
इंम्रित[1] सी धारा नही, अभै समा नही दांन ॥ २० ॥

---

(१२) १. (ख) को, (ग) वतीया नांहि।
(१३) १. (क) हासा ना कोई हरष सा, (ख) हसना ना कोई हरष सा।
२. (ग, घ) स (सं) त न सा।
(१४) १. (ख, ग) आसिक सी नही आस।
(१६) १. (ख, ग) हरि भ्रम सा कोई भ्रम नही। २. (ख) रहतब सा कहतब नही, (ग) रहणी सी कहणी नही।
(१७) १. (ग) अरथु समा न, (घ) अरथ न समा।
(१८) १. (क, घ) न। २. (क) देष न इसा अदेष।
(१९) १. (ख, ग) सांई सा (सौउं) सुनाथ।
(२०) १. (क) इमरत, (ख) इंमृत, (ग) अमृत।

कुछीयेक[1] सुधि बुधि आपनी, कुछीयेक[1] गुर उपदेस ।
जनहरीया मन [2]समुझि कै, मन कुं उतर देस ॥ २१ ॥
जाति पांति है गरू[1] हमारी, नांव दीया हरिरांम ।
पिता हमारै[2] भागचंद, ग्रेह सींहथल गांम ॥ २२ ॥*
चेला जैमलदास का, इष्ट हमारै रांम ।
उलटा चित चहौड़िकै, सुनि कीया विसरांम ॥ २३ ॥*

अथ दुतीय प्रसनोतर

चौपाई

कहौ कौंण घर पेम निवासा ।
कहौ कौंण घर ध्यांन प्रकासा ॥
कहौ कौंण घर मन मिल पवनां ।
कहौ कौंण घर सहज सिवरनां ॥ १ ॥

कहौ कौंण घर अभरा भरि है ।
कहौ कौंण घर नीझर झरि है ॥
कहौ कौंण घर अनहद तूरा ।
कहौ कौंण घर परसत नूरा ॥ २ ॥

---

(२१) १. (ख, ग) कुछीएक, (घ) कुछीयक । २. (क) पूछिकै, (ख, ग, घ) समझिकै ।

(२२) १. (क) जाति गरू कै जनम हमारा । २. (क) रांमी माता पिता भागचंद ।

* पुष्पाङ्कित दोनों साखियाँ 'ग' प्रतिसे ली गई हैं ।

कहौं कौंण घर उंनमुंन लाई ।
कहौं कौंण घर सुरित समाई ।।
कहौं कौंण घर पीय मिलावै ।
कहौ कौंण घर आय न जावै ।। ३ ।।

अथ उतर

कंठ कवल घर पेम निवासा ।
रिदै कवल घर ध्यांन प्रकासा ।।
नाभ कवल घर मनमिल पवनां ।
रोम रोम घर सहज सिवरनां ।। ४ ।।
वंकनाल घर अभरा भरि है ।
अरध ऊरध घर निझर झरि है ।।
सुन्य[1] सिषर घर अनहद तूरा ।
दसुं[2] द्वार घर परसत नूरा ।। ५ ।।
लिलाटी घर उंनमुंन लाई ।
सुरित सबद घर मांहि समाई ।।
त्रिवेणी घर पीव मिलावै ।
सिवसता घर आय न जावै ।। ६ ।।
जनहरिराम [1]जहां घर पाया ।
जनम मरण संदेह मिटाया ।।
विन गुर गम देषै[2] नर दूरा ।
ब्रह्म वताया आप [3]हजूरा ।। ७ ।।

---

(५) १. (क, ख, ग, घ) सुनि । २. (घ) दसवै ।
(७) १. (क) कहै, (ख, ग) अगम । २. (ख) कोई भेदै नांही । ३. (ख) ब्रह्म वताया घटही मांही, (ग) में यह अर्धाली नहीं है ।

साषी

गुंष्ट हमारी सो करै, होई[1] हमारा यार।
जनहरीया दूजी दुनी, जा कुं उभ जुहार॥ ८॥

——०——

रेषता *

जिंद्री भीतरै अजब जोगी वसै,
जुगति विन जांणीया[1] नांहि जाई।
प्रथम गुरदेव की आय[2] असतूत करि,
मंन अर[3] तंन कुं देत भाई॥
रसनां [4]रांम कुं सिवरि नही ढील करि,
एह[5] विन दूसरी आस नांही।
पाट हिरदा षुल्हैं कवल नाभी फुलैं,
बोलता पुरस कुं देष मांही॥
आप गुरदेव का दसत राषै नही,
और कुं ग्यांन उपदेस देवै।
आठ ही पौहर हरिनांव कुं[6] उचरै,
साच[7] नही जांणि गुर विमुष सेवै॥

(८) १. (क, ख, ग, घ) सोई।

* मूल प्रतिमें रेषते नहीं हैं; अतः (क) प्रतिसे लिये गये हैं। इनमें २८ वाँ (घ) से एवं ३१–३२ वाँ (ख) से लिया गया है; क्योंकि ये तीनों रेषते 'क' में नहीं हैं।

(१) १. (ग) ओलिष्या। २. (ख, ग) जाय। ३. (ग) तन वचन कुं। ४. (ख. ग) निसदिन। ५. (ख, ग, घ) एक। ६. (ख, ग, घ) जौ। ७. (ख, ग) सत्य।

आवता एक अर एक ही जात है,
अंध अग्यांन ब्रौह करत[८] मोहा।
दास हरिरांम निज भेद पाया विनां,
हाथि[९] क़ंचन गहै होत लोहा॥ १॥

प्रथम गुर ग्यांन [१]दासतन वंदगी,
सील संतोष लुघ दीन यारा।
राग अर दोष तिहुं ताप मन तैं तजै,
झूठ अर कपट सुं[२] रहत न्यारा॥
एक अभ्यास दिल[३] आस नही दूसरी,
ब्रह्म का ध्यांन मन सुरति सेती।
जोग जिग दांन तप नेम तीरथ व्रत,
तुल्य तिह लोक नही नांव जेती॥
भरम कुं भांजि कुट[४] करम कुं काट करि,
साहि समसेर सत सब्रद सूरा।
दास हरिरांम कहै दिल दीवांण मैं,
राज सोई करत है संत पूरा॥ २॥

अगम अग्याद मैं ग्यांन पोथी पढ्या,
भरम[१] अग्यांन कुं दूरि डाल्या।
नांव निरधार आधार मेरै भया,
गहर गुमांन मन मोह माल्या॥

---

८. (ग) धरत। ९. (ग) आप ही आप कुं करत दोहा।

(२) १. (घ) ग्यांन अरदास। २. (ख) सैं। ३. (ख, ग) विन और (जांणि) नही दूसरा। ४. (ग) बौहौ, (घ) कुछि।

(३) १. (ख) और।

तीन चक्र चूरि अर[2] चित चौथै गया,
नाभ असथांन धुनि धम कारा।
सास उसास मैं वास त्रिभै[3] कीया,
रमि रह्या एक आतम यारा॥
सहज मैं सांम सुष रास असैं मिल्या,
रूम मैं रूम ररंकार जागे।
दास हरिरांम गुरदेव परताप तैं,
हदि कुं जीत वेहद लागे॥ ३॥

प्रथम सो प्रथम अध नांव रसनां लीया,
दूसरै नांव मध कंठ धारा।
तीसरै उतिम निज[1] नांव हिरदै कह्या,
चतुरथै नाभ अति उतिम यारा॥
यार तैं यार मिल यार एको भया,
नैंन सुं[2] बैंन मिल द्वार षूल्हा।
चंद सुं[3] सूर मिल सूर चंदै मिल्या,
ग्यांन सुं[4] ध्यांन मिल असथूला॥
अरध सुं[5] उरध मिल उरध अरधै मिल्या,
मन सुं[6] पौंन मिल एक रागा।
पूरब दिस आय अर उलटि[7] पछ्यु मिल्या,
अटल[8] असथांन धुनि ध्यांन लागा॥

---

२. (घ) करि। ३. (ख, घ) निरभै।

(४) १. (ख, ग) सुं, (घ) सो। २. (ख, ग, घ) तैं। ३. (ख, ग, घ) तैं। ४. (ख, ग, घ,) तैं। ५. (घ) तैं। ६. (घ) तैं। ७. (ख, घ,) पूरब कुं उलटि अर पलटि पछिम०, (ग) पूरब कुं ध्याय दिस पछमी मिल्या। ८. (ख) अगम असथांन कुं आय लागा, (ग) अगम असथांन लिव जाय लागा।

तीन गढ जीत मन मींत चौथै मिल्या,
पांच पचीस मिल एक पाया।
दास हरिरांम कहै राज अणभै भया,
नाद अनहद नीसांण वाया ॥ ४ ॥

सोच विचार सत सबद सतगुर कह्या,
मन कुं उलटि घट[1] घेर मांही।
सुरति संभाय[2] अवगाहि[3] गुर ग्यांन कुं,
रांम कहि रांम विन और नांही ॥
दोय दल ताप गुण तीन सेती [4]तजौं,
भजौं एक आतम भै उतरि [5]पारा।
नांव[6] निरधार आधार तिहु लोक मैं,
प्रांमसी नित[7] प्रित नेम धारा ॥
दिल साबूत ईमांन मन[8] एकता,
दूसरा देव[9] की आस नांही।
भरम अर करम कुं काटि[10] कांनै करै,
देषलै[11] आप दीदार मांही ॥
नांव परताप भिन भेद पाया सबै,
घट सुं घट मिल पेल लाया।
मंन अर पौंण की तार एको वणी,
कंठ रसनां रिदै नाभ आया ॥

---

(५) १. (ख) ले घट, (ग) उलटायले घटमा० । २. (ख, ग) संभारि । ३. (ख) विचार ले ग्यांन, (ग) निरताय निसदिन मैं । ४. (ग) पांच पच्चीस दल दोय तीनु तजै । ५. (ग) भजि भगवांन रहि आंन न्यारा । ६. (ग) एक । ७. (ग) तत कोई संत प्यारा, (घ) कोय निज संत प्यारा । ८. (ग) धुनि । ९. (ख, ग) सेव सुं नांहि दावौ । १०. (ख, ग) कापि । ११. (ख, ग) आप मैं आप (अजब) दीदार पावै ।

पेम कै पंजरै सहज सूवा पढै,
बोलता[१२] अगम आकार वांणी।
सास उसास मैं जाप अजपा जपै,
जीत[१३] जोगेस्वर जिन जुगति जांणी॥
उलटि आकार निरकार[१४] पद परसीया,
दरसीया दसवैं देव द्वारी।
दास हरिरांम जांह सोग संसा नही,
जीव अर सीव की[१५] एक यारी॥ ५॥
आप कुं पोजि परि[१] ग्यांन की षबरि करि,
अलष आराधि मंन साधि प्यारा।
जीव अरजिंद की झूठ यारी तजौं,
भेष भगवांन करि[२] देष न्यारा॥
अणषरी वेद कुं निरष निरताय लैं,
अगम अर निगम का भेद वाचैं।
तीन गुण ताप मन[३] वचन निरदोष रहि,
सांम सुं सरषरु संत[४] साचैं॥
सांझि सभ[५] स्वार क्या करत नर बावरा,
बैग भजि बैग हरि दाव आई।
दास हरिरांम तन षाक मिल[६] जांहिगे,
चूक सब[७] जांणि जुग चतुराई॥ ६॥

---

१२. (ख, ग) होत है अगम अग्याद वांणी। १३. (ख) जीव जोगी भया जुगति जां०, (ग, घ) जीव जोगीस्वरा जुग०।
१४. (ग) मिल सुरति निरकार मैं, अरस परस मिल एक हूवा।
१५. (ग) कव नांहि जूवा।
(६) १. (ग) गुर। २. (ग) कुं। ३. (ख) कुं मेट, (ग) तैं दोष, (घ) तन मन वचन तैदोप नि०। ४. (ख) होय, (ग) हीमत। ५. (ग) अर, (घ) अब। ६. (ख, ग) हुय। ७. (ख, ग) मन।

भरम अग्यांन की भीत कुं ढाहि करि,
ग्यांन[1] चौगांन मैं[2] षेल सूरा।
कूड़ अर कपट की झपट कुं छाडिदे,
त्रिगढसिर[3] वाय अनहद तूरा ॥

पांच पचीस गलीम कुं साझिलै,
मंन कुं जीत महरंम होई।
आदि जुगादि ले नांव त्रिभै भया,
भरैं साष जाकी सदा[4] संत सोई ॥

ब्रह्म कुं भेद कुट[5] करम कुं छेद करि,
वेद कतेब तैं[6] निरष न्यारा।
दास हरिरांम कहै उलटि[7] आपा विचै,
परसि लै परम दीदार प्यारा ॥ ७ ॥

मंन की मूठ पहलूण गाढी गहौ,
तत का तीरले[1] हाथि साहौ।
ग्यांन कबांण करि ध्यांन धोरा धरौ,
आंन अग्यांन का ढिग ढाहौ ॥

अरस का अस्व परि त्रिप नीकां चढ़ौ,
नांव निसांण सिरडंक लावौ।
एक असवार अर पंच प्यादा पुळै,
लारि लै [2]कार हरि वैग ध्यावौ ॥

---

(७) १. (ग) षेल। २. (ग) गुर ग्यांन पूरा। ३. (ग) सुनिमैं। ४. (घ) भरै जिह्साष निज। ५. (ख, घ) कुछि, (ग) अर। ६. (ग, घ) सु, सैं। ७. (ग) आप।

(८) १. (ख, ग, घ) करि। २. (घ) ललकार।

तन की नाळि करि चित दारु भरौं,
सुरति की जांमगी सवद गोळा ।
भोमीया भ्रम कुं मारि मुजरा करौं,
पांच प्रधांन कुं पालि प्रोळा ॥

सत का सेल करि पाग षिम्या तणी,
दोय दल मोड़ि गड तीन तोड़ौं ।
दास हरिरांम सभ राज एको भया,
सांम मैं[3] मौंह मिल हाथ जोड़ौं ॥ ८ ॥

तन का तपत अर[1] मन राजा भया,
मांन अमांन[2] कै महल मांही ।
पांच परधांन पचीस चीरागरी,
करत हैं कांम किलोल वांही ॥

जांणि रे जांणि जुग मांहि जन सूरिवा,
दोय दल वीच मैं रौळि घालै ।
निरत असवार अर सुरति घोड़ा लीयां,
कांम अर क्रोध कुं[3] दबटि पालै ॥

ग्यांन की गुरज ले ध्यांन[4] धसीसवै,
तत तरवारि सत[5] सेल साहै ।
पांच परधांन मन मारि राजांन कुं,
मांन अमांन[6] का महल ढाहै ॥

---

३. (ख, ग) सैं, (घ) सैं मुह ।

(९) १. (ख, ग, घ) परि । २. (घ) गुमांन । ३. (ग) पांच पचीस कुं उलटि । ४. (घ) पांण अघा घसै । ५. (ख) कडि सूरसाहै, (ग) गुर सबद साहै, (घ) ले हाथिसाहै । ६. (घ) गुमांन ।

नांव त्रिप कोट[7] सिर चाढि नांवै कीयौ,
नष[8] अर चष विच एक राई।
दास हरिरांम सब[9] राज अवचल भया,
दसवैं[10] द्वार नौबति वाई ॥ ९ ॥

रसनां प्रथम सत[1] सबद कुं दिढ करि,
दूसरै कंठ लिव[2] पेम आया[3]।
तीसरै सास उसास हिरदै[4] उठै,
चतुरथै नाभ[5] घट पेंल लाया ॥
असट जांह[6] कवल दल नांव परकासीया,
रोम ररंकार धुनि एक लाई।
मन अर पवन की गांठि गाढी घुळी,
उलटि पूरब दिस पछमि आई ॥
उलघि मंन मेर सुनि सिषर सहजे चढ्या,
जीव अर सीव जांह नांहि जूवा।
दास हरिरांम तांह परम जोगेस्वरा,
द्वार मिल दसवैं पारि हूवा ॥१०॥

प्रथम तैं रसनां रांम सिवरन कीया,
दूसरै[1] तन मन वचन[2] ध्याया।
तीसरै एक[3] सब अछर केवल भया,
चतुरथै रोम ररंकार लाया ॥

---

७. (ग) मांहि गढ राज अपना कीया। ८. (ग) सील संतोष सब एक राई। ९. (ग) जहां। १०. (ख) तीन लोक सिर फेर द्वाई, (ग) च्यार चक लोक तिह फिरत द्वाई।

(१०) १. (ग) गुर। २. (ग) जहां। ३. (ख, घ) लाया, (ग) प्यासा। ४. (घ) सहजां रिदै। ५. (ख, ग) अजपा नाभ थाया (वासा)।

(११) १. (ख, ग) दुतीय। २. (ख) सहज। ३. (ख) भजन, (घ) नांव, (ग) सास उसास अजपा जपै।

पंचमै उलटि नाभ अणअषरी,
मेर षट सात ब्रहमंड छाया।
असटवै सुनि सिर अंतरै जांणि नव,
दसवै देव दीदार पाया॥
पूरब अर पछमि उतराध मेला दषणि,
प्रामसी पंथ[४] कोई भाग पूरा।
दास हरिरांम तांह संत परमातमा,
अरस अर परस मिल[५] एक नूरा॥११॥

तन मन मांहिले[१] ष्यांत षेती करौं,
पहल सांसै तणा सूड़ कीजै।
वाहि सुधि भोमि कुं भाव मलबा भरौं,
सांम सुं मिल दिल हाथ लीजै॥
पांच किलोड़ीया हक हाळीपणौं,
सील संतोष[२] की रासि बंधौ।
साज अर बाज सब सूत[३] करि सांतरा,
निरत की सीव सुं सुरति संधौ॥
आदि आसाढ की बाह नही आवसी,
वाहता वैग मत ढील कीजो।
साच[४] किरसांण करि षाधि तोटा नही,
रज अर तज करि बीज बीजो॥

४. (घ) संत। ५. (ख) हुय।

(१२) १. (ख) तन मन ते, (ग) मन मंजूर तन, (घ) मन अर तन तैं। २. (ग) सास उसास। ३. (ख) हाळ हळ सूत सब एक, (ग) हेत का हाळ हळ करि चउ चित की। ४. (ख, ग) सुक्रिथ।

क्रम नेदांण करि राषि ध्रम आपणौं,
और उजाड़ कुण करत तेरौं।
गोफणी ग्यांन अग्यांन गेरा[५] उडैं,
संत की[६] वाड़ि गुर सब्द फेरौं॥
आय अनेक जुग मांहि जन नीपनां,
नांव लिव लांवणी सौंज लागा।
दास हरिरांम गुण गाहि गाडा भरौ,
भूष भै दुषग्या[७] दूरि भागा॥१२॥

उलटीया पेम चहुं ओर व्रिरषा लगी[१],
गिगन[२] घन घोर विन[३] इंद गाजैं।
षळ्कीया नीर तन[४] तठ नाडा भख्या,
ब्रह्म परफूळ षट्[५] कवल [६]छाजै॥
अरस की साष निज[७] भजन वाहेतरौं,
नांव नेपै घणी सांति[८] सेती।
षाधि उपाधि अदुवाव झोला नही,
इसी [९]हरदास कोई करत षेती॥

---

५. (ग) गेख्यां। ६. (ख) सीलकी, (ग) जतकी वाड़िदे सत फेरो। ७. (ग) दुष सब जांहि भागा।

(१३) १. (ख) वणी। २. (ख) घरर गहणार विण०, (ग) अषंड वरसाल अनहद गाजै। ३. (घ) ज्यूं। ४. (ग) नषचष। ५. (ख) सिर। ६. (ग) छह रित हरीया छिव एक छाजै। ७. (ख) नित, (ग) अर बरस आसीतको। ८. (ग) स्वांत। ९. (ख, घ) हरि।

अगम[१०]लाटौ लीयां निगम[११] संसा नही,
राज[१२] तप तेज डर नांहि कोई ।
दास हरिरांम ऊ देस अदेजगर,
आप कमाय अर षाय सोई ॥१३॥

मंनकै मंडहै तत ब्रांधी[१] तणी,
पेम परतीत की लाय पीठी ।
सुधि अर बुधि का वैस विनायका,
रस कै डोरड़ै गांठि [२]गीठी ॥
जुगति की जांनि करि[३] जोग दुलहौ चढ़्यौ,
परिणवा[४] प्रमला लाछि लाडी ।
हदि कु लोपि वेहद सूधौ चल्यौ,
गांव सुनि गोरिवै निजर गाडी ॥
सुरति [५]करि आरती निरत नेता लीयां,
सांम संमेहळै मिलै सारा ।
ब्रह्म[६] वर वींदणी पैरवंटी षरी,
इंद ज्युं ओवड़े इमी धारा ॥
पांच पचीस औछाह धौंले रड़ैं[७],
ग्यांन गुण मंगळा धवल गावैं ।
रागअणभै तणी[८] नित ओलग करैं,
एक एको[९] सिरै मौज पावैं ॥

---

१०. (ख, ग, घ,) अगह। ११. (ख) सुगम, (ग) सुगह, (घ) सुग। १२. (ख) ताप, (ग) काम अर कल्पना नांहि०।

(१४) १. (ग, घ) रोपी। २. (ख, ग, घ) मीठी। ३. (ख) सूं। ४. (ख, ग) परणिजै। ५. (ख, घ) की। ६. (ख) आप, (ग) अमर। ७. (ग, घ) धौलेरणै (णी)। ८. (ग) अषंड ओल्ग०। ९. (ग) ईमान बहु मौ०।

नाद् अनहद् वजे भै[10] दुष दूजा भजे,
गिगन तोरण जांह[11] जाय[12] वंदे।
भाव भोजन रचे वाच अवचल वचे,
ग्यांन[13] गाळी दिवैं चिदानंदे॥
च्यार चक्र चमरी वेद छुछम पढ़ैं[14],
अरध अर उरध कै वीच फेरा।
दास हरिरांम [15]कहै व्याह अैसा रच्या,
आय नही जाय वळ फेर घेरा॥१४॥

सकल संसार दुष सुष का नां संगी,
सुष दुष देह कै संग लागा।
षोजि आकार निरकार की षबरि करि,
जनम अर मरण भै जांहि भागा॥
धारिं वसवास मन एक आतम तणौ[1],
एक[2] विन दूसरा नांहि[3] कोई।
औंर[4] पड़पंच पाषंड[5] विषीया तजौ,
सिवरीयै[6] रांम सब[7] घट सोई॥

---

१०. (ग) अधर छाजै छज्जै। ११. (ख) जब। १२. (ग) वीच। १३. (ख, ग) अगम। १४. (ख) भणै। १५. (ख, घ,) गुर।

(१५) १. (ग) धारि मन एक इकतार आतिम कौ। २. (ख) एह, (ग) या। ३. (ग) जांनि। ४. (ख, ग) पांच पचीस। ५. (ग) परकार। ६. (ग) भजिलै। ७. (ख) महमाण, (ग) रहमान।

तीन गुण तांप तांह[8] विघन व्यापै नही,
राग अर दोष जांह[9] भरम नांही ।
दास हरिरांम कहै[10] नांव निसचै[11] भया,
एक तैं[12] अनंत मिल अनतेक मांही ॥१५॥

आपदा अधिक दह दिस धायां फिरै,
करत पड़पंच परवार मेरा ।
कांमना करम कोट्यांन केता करै,
धापदा नांहि बौह मंन तेरा ॥
पिंड ब्रहमंड का प्रांण परचा विनां,
षंड फिर मंड कुं देष आवै ।
अनंत उपाय करि [1]एक जांण्या नही,
ब्रह्म विचार कुं नांहि पावै ॥
वेद कतेब पडि भेद पाया नही,
भेद विन झूठ संसार वाजी ।
जिंद भूला फिरै जगत परमोधीया,
आप विन जांणि औरां कहाजी ॥
नांव निरकार [2]निरभेद पायां विनां,
करत बौहौ ग्यांन अग्याध बोधुं ॥
जीव अर सीव का सिंध सोझी विनां,
वार ऊलै पड़ा पर पार सोधुं ॥

---

८. (ख) तन । ९. (ख) लिव लेस, (घ) भ्रम करम ।
१०. (ख) जब । ११. (ख) परचै । १२. (ख, ग) सूं ।
(१६) १. (ख, ग, घ) जन्न । २. (घ) नर ।

मानिषौ जनम गुरधरम जांण्यौ नही,
भजन विन गाफली[3] भयौ गाढौ ।
तन जोबन मंन मोह माया तणौ,
दीन विन दाषवै दिन देष दाढौ ॥
आज कै कालि पल मांहि धम हल चलै,
छोडि घर षाटभुय वंन डेरा ।
दास हरिरांम तांह नांव सचा संगी,
तुं नांहि किसकौ न को और तेरा ॥१६॥

समझि रे समझि मन मूंढ मेरा कह्या,
कुटंम परवार तैं[1] कौंण केरा ।
सकल संसार ज्युं[2] सहर की सोबता,
एक पल मांहि कब[3] कूच डेरा ॥
एक मन चित नित[4] नांव त्रिभै भजौ,
तुझि सिर काळ[5] नही करत जोरा ।
वेद कतेब सब जांणि काची कथा,
ताहि[6] भूलै मतै मन भोरा ॥

---

३. (ख, ग) गाफली ग्यांन विण ।

(१७) १. (ख) ना, (ग) हैं, (घ) कहै । २. (ख) युं सहर में, (ग) गांव घर सहर वासो सराय ज्युं । ३. (घ) हुय, (ख) पलक में कूच हुय जाहि, (ग) पल मैं लदि पदी जाहि । ४. (ख) हुय, (ग) निज । ५. (ग) काय सिर जाल । ६. (ख, ग) भ्रम मत भूल इन मांहि, (घ) देष भूलै मती ।

तप तीरथ व्रत साझि[७] एकादसी,
सात ही दीप नवषंड डोलै ।
जोग जिग जाप षट करम षाली रह्या,
आप कुं उलटि आपा न षोलै ॥
आदि अर अंत सत सबद कुं ध्यायलै,
पायलै दसवै द्वार सोई ।
दास हरिरांम तांह[८] मुगति संसा नही,
जीव अर सीव[९] मिल[१०] एक होई ॥१७॥

षबरि करि षबरि गाफिल तम[१] सुं कहुं,
बौहरि नही[२] पाय नरदेह थारी ।
एक इकतार सिरधारि दूजा[३] नही,
मांनि[४] मेरा कह्या सुणि पुरष नारी ॥
लोभ[५] लालच नर देष लागा रहौ,
आपदा पासि[६] पड़पंच ठांणै ।
आंन उपाधि बौह ताप हिरदै[७] उठै,
राग अर दोष मन मांण[८] तांणै ॥
कांम अर क्रोध मै जोध जोरावरी,
जहर अर क्हर[९] जुग मांहि जाडा ।
काळ कबाण कसीस सिर ऊपरै,
मारसी जोय[१०] नही कोय आडा ॥

---

७. (ख) नेम । ८. (ख, ग) कहै । ९. (ग) सुरित अर सबद । १०. (ख) गरकाव होई ।

(१८) १. (ग) तो । २. (ख) नरदेह नही फेर, (ग) षूब या देह नही बौहरि० । ३. (ख) हरि नांव का, (ग) नही दूसरा । ४. (ख) सत, (ग) कांनि । ५. (ख) निसदिन लोभ लालच लागा रहै, (ग) मनछा लोभ अर मोह मांहि रहै । ६. (ग) दुरमति जीव । ७. (ग) कुबधि काया विचै उपधि जहां उपजै । ८. (ख) दुसद आंणै, (ग) आपदांणै । ९. (ख, ग) भरम अर करम । १०. (ख, ग) चोट ।

मात अर तात सुत भ्रात तन[11] भामनी,
कुटंब परवार की प्रीत झूंठी।
दास हरिरांम कहै षेल बीतां पछै,
मेल सौ ऊठगे झाड़ मूंठी ॥१८॥

असी लष च्यारि पड़पंच मैं पचि मूवा,
आत अर जात लेषै न पारी।
मध्य पाताल जीव जंत सुरगादि मैं,
सकल ही[1] देषीया है कांम भारी॥
कांम ओपति अर षपति ही कांम है,
कांम फिर[2] कांमना करत केती।
कांम ही रैण दिन षाय अर सुय रहै,
निमष ही नांव कुं नांहि चेती॥
पूत परवार धन बौहत सुष[3] संपदा,
फस्यौ नर फसणि कै बीच मांही।
आप पर भोम जांह जाय मेरी करै,
सील संतोष विन कुछि [4]नांही॥
धारि वसवास मन एक आतम तणौ,
एह विन दूसरी आस [5]नांही।
दास हरिरांम सिवरि[6] कै सत सबद कुं,
चित[7] चौथै वस्या [8]पद मांही ॥१९॥

---

११. (ख, ग) सुत पित मात अर तात भ्रित, (घ) भ्रंग भमनी।

(१९) १. (ख, ग) मैं, (घ) फिर। २. (ख) ही, (ग) मन कलपना, (घ) उपाधिना करत०। ३. (ख, ग) है। ४. (ख) एक संतोष विन क्यौं न कांही, (ग) नर विना संतोष है कुछि। ५. (ख, ग, घ) छाडै। ६. (ख, ग) सो संत न्यारा। ७. (ख) तिगुण धाम, (ग) सकल धाम। ८. (ख, ग) विचै चित्त गाढै।

२७—

नैण नष नासिका दुरसि नीकां वणी,
सीस संधांण सुधि बुधि सारी ।
रांम ही पढ़ण कुं रीझ रसनां करी,
निसदिन ध्यायलौ[1] पुरष नारी ॥
धारि मन एक इकतार आतम [2]तणौ
दूसरै देव की नांहि[3] सेवा ।
मूरत मडांण पषांण क्या[4] पूजीयै,
पूजीयै मांड[5] जाकी मंडेवा ॥
जाति अर वरण जांह छोति छांटा[6] नही,
वेद कतेब का[7] नांहि सारा ।
दास हरिरांम उ अगम अपार है,
ताहि कोई जांणि[8] नर सार धारा ॥२०॥

गरजीया गिगन पाताल कुं [1]गमकीया,
छेदीया नाभ षटचक्र [2]सारा ।
उलटीया ध्यांन मन पवन[3] आकास कुं,
भेदीया नष चष द्वार[4] भारा ॥

---

(२०) १. (ख, घ) पद, (ग) नरदेह धारी । २. (ख) एक विसवास आसा धरौ, (ग) एक वेसास विन आस दूजी नही । ३. (ख) एक विन दूसरी छाडि सेवा, (ग) कीजीयै भाव निज भगति सेवा । ४. (ग) नही देहरा । ५. (ख) अघर आतम देवा, (ग) देष आतम तन वीच देवा । ६. (ग) भ्रांति । ७. (ख) तें होत न्यारा, (ग) नही ब्रह्मचारा । ८. (ख) जांणसी संत प्यारा, (ग) जांणसी जन जुग न्यारा ।

(२१) १. (घ) धमकीया । २. (ख) हुय पूरब द्वारा, (ग) नाभ कुं छेद करि आरपारा । ३. (ख, ग) उलटीया अरध मन पछिम (पौंण) । ४. (ग) रोम ।

सुरति अर सवद[५] का सुन्य वासा वस्या,
चंद अर सूर[६] घर एक आया।
पांच पचीस की परम यारी लगी,
दसवै देव दीदार पाया॥
अधर धरगाह जां ओट अल्हाकी,
निरकल्प कोट मन महरि[७] छाजै।
दिल दीवांण नही ओर सुं दोसती,
अनंत अणभै कला एक राजै॥
नांव निप्रांण जांह पुरस परमातमा,
निगम निरकार त्रिभेव[८] न्यारा।
वात वमेष विण भेद कोई नां लहै,
दास हरिरांम अवगति यारा॥२१॥
अरध अर उरध कै वीच पंछी उड्या,
पाव अर पंष विण गैंण छाया।
सूर विण तेज तांह चंद विण चंदणा,
ब्रह्म प्रकास जांह सहज माया॥
आस कुं मारि निरआस आसण [१]कीयां,
आदि अनादि का ध्यांन धारै।
सुन्य का सहर में सुरति सहरा रहै,
जोग अर जप कै नांहि सारै॥
घाट विणघाट जांह वाटि विरला वहै,
पंथ विण पंथ जोई पारि पुंहचै।
दास हरिरांम तांह सुरति सवदे मिल्या,
रमि रह्या रांम जन एक निहचै॥२२॥

---

५. (ख, ग) चंद अर सूर। ६. (ख, ग) सुरित अर सवद।
७. (घ) कलप निरकोट मन महल। ८. (ख, ग, घ) निरभेव।
(२२) १. (घ) करै।

सोग संताप सुष दुष[१] दुनीयां भरी,
करत अकाज कहि[२] कौंण काजा।
और की रीझ अणषीज तैं क्या पड़ी,
आपणी रीझ का षूब छाजा॥
सोच विचार देह धार्‌यां थका,
साच मन[३] वाच इकतार आछै।
सत का सबद ले ध्यांन[४] नीकां धरौं,
एक आधार निरकार[५] काछै॥
कूड़ अर कपट क्या करत नर [६]बावरा,
अलप जुग जीवणा जांणि [७]तेरा।
दास हरिरांम हुय[८] जांहि पल एक मैं,
तन जोबन धन धूरि [९]भेरा॥२३॥
सतगुर देव की गम कैसैं लहै,
कांन गुर फूकीया मांनि लीया।
भाव निज भगति की गम कैसैं लहै,
सेव किरतंम कुल काज कीया॥
साध संगत की गम कैसैं लहै,
जगत जंजाल मैं फिरत डूला।
ग्यांन विग्यांन की गम कैसैं लहै,
आंन अग्यांन मैं जात भूला॥

---

(२३) १. (ख) दुष दंद, (ग) लोभ अर मोह दुष दंद। २. (ख) वौह करम, (ग) वाद विषियाद कुल करत। ३. (ख) अर, (घ) मन तन। ४. (घ) नांव। ५. (घ) निरधार। ६. (ग) वौह कांमना। ७. (ख) अलप सी जांणि जुग मांहि वासा, (ग) जांणि तन जीव का अलप वासा। ८. (ख, ग) कुंछि (कहै) रांम की भगति विन, (घ) कहै होय पल एक मैं। ९. (ख, ग) जात है जनम ज्यौं (ज्युं) फूस फासा।

अजपा जाप की गम कैसैं लहै,
जुगति सुं जाप नही करत जांणी।
आतमा[1] देव की गम कैसैं लहै,
वेद कतेब[2] देषै[3] पुरांणी ॥
रोम ररंकार की गम कैसैं लहै,
सबद कै संग मंकार [4]होई।
दास[5] निरआस की गम कैसैं लहै,
आस[6] दुनीयांन की करत [7]सोई ॥
नाह[8] निरगुन की गम कैसैं लहै,
ताप गुण तीन कै पंथ[9] पुळीया।
उंनमुंनी ध्यांन की गम कैसैं लहै,
नांव कुं लेत है कांनि [10]सुणीया ॥
सुरति अर निरत की गम कैसैं लहै,
मन[11] वौह कांमना[12] रहत मांही।
अरध अर उरध की गम कैसैं लहै,
कंठ रसनां रिदै ध्यांन नांही ॥
पिंड ब्रहमंड की गम कैसैं लहै,
षंड फिर मंडका देष देषै।
नांव निरवांण की गम कैसैं लहै,
वाद वकवाद कैं राग धेषै ॥

(२४) १. (ख) आप आतम की, (ग) एक आतिम की। २. (ग) सासत। ३. (ख) ढूंढै। ४. (ख, ग) मुखा कवल कै वीच मंकार वाखा। ५. (ख, ग) नेह। ६. (ख, ग) दास। ७. (ख, ग) आसा। ८. (ख, ग, घ) नांव। ९. (ग) मांहि। १०. (ग) और फिर लेत है कान कुलीया। ११. (ख) मोह मन, (ग, घ) विषै मन। १२. (ग, घ) वासना।

वात वेहद की गम कैसैं लहै,
हदि मैं निसदिन रहत राता।
ब्रह्म आणंद की गम कैसैं लहै,
मन[१३] माया[१४] तणै मद माता ॥
जांण विजांण की गम कैसैं लहै,
सुधि बुधि आपणी सार [१५]चूका।
दास हरिरांम सिरभार कैसैं मिटै,
भरम अर करम कै ढिग ढूका ॥२४॥

गरू परचै विनां ग्यांन कैसैं गहै,
नांव परचै विनां ठांव नांही।
जीव परचै विनां पीव कैसैं मिलै,
आप परचै विनां क्यों न कांही ॥
मन परचै विनां ध्यांन कैसैं धरै,
त्याग परचै विनां स्वांयंत नावै।
अरध परचै विनां उरध कैसैं [१]चरै,
नाद परचै विनां विंद जावै ॥
अषंड[२] परचै विनां अनंद[३] कैसैं घुरै,
अगम परचै विनां वेद[४] बांनी।
साच परचै विनां झूठ कैसैं मिटै,
दास हरिरांम कहै[५] भेद जांनी ॥२५॥

---

१३. (घ) मोह। १४. (ख, ग) पड़पंच कै मद०। १५. (ख) चित चेतन की चाल चूका, (ग) आपणो तोल अर मोल चूका।

(२५) १. (ख, ग) चढ़ै। २. (ख) अनद, (ग) अषंड सुनि प०। ३. (ख) अषंड, (ग, घ) अनंहद। ४. (ख) गम और यांनी, (ग) निगम नाहि काई, (घ) निगम बोलै। ५. (ख) कहै ब्रह्मग्यांनी, (ग) सत्य कहत भाई, (घ) कह दिल खोलै।

सत का सबद विन सहज दरसै नही,
तत दरस्यां विनां मत डोलै।
सुरति उलटी विनां ब्रह्म भेदै[1] नही,
दिल[2] दरस्यां विनां साल फोलै॥
पेम विरषा विनां हरष[3] हिरदै नही,
आतमा[4] देव विन सेव दूजै।
भाव [5]उपज्यां विनां भगति भावै[6] नही,
साध दरस्यां विनां सिध पूजै॥
जुगति जांणी विनां जोग दरसै नही,
एक दरस्यां विनां नेक[7] घ्यावै।
वार दरस्यां विनां पार कैसैं लहै,
दास हरिरांम हरि[8] सिवरि पावै॥२६॥

(रामरक्षा)

नांव परताप तैं[1] काल कंटक टळै,
नांव परताप तैं[2] करम षोया।
नांव परताप[3] डर डाकणी ना [4]लगै,
नांव परताप[5] मन मैल धोया॥

---

(२६) १. (ग) दरसै। २. (ग) जिन्द दरसी। ३. (ख) कवंल विगसै नहीं, (ग) गिगन गरजै नहीं, (घ) नांव निपजै नहीं। ४. (ग) देव दरस्यां विना। ५. (ख, ग) दरस्यां। ६. (ख, ग) भेदै। ७. (ख, ग) अनंत गावै, (घ) अनंत धारै। ८. (ख) कोय समझि पावै, (ग) गुरु समझावै, (घ) सब रव सारै।

(२७) १. (ख) राम का नांव सुं, (ग) रामरिछपाल जहां। २. (ख) राम का नांव सुं, (ग) रामरिछपाल जहां। ३. (ख) राम कै नांव, (ग) रामरिछपाल जहां डाकि०। ४. (ख, ग, घ) डसै। ५. (ख) राम कै नाम, (ग) रामरिछपाल।

नांव परताप गुण[६] ताप त्रिवधा गई,
नांव परताप[७] ग्रह नांहि ग्रासै।
नांव परताप तैं भ्रम भागा सबै,
नांव परताप दुष दूरि नासै ॥*
नांव परताप[८] जल जोगणी चंडका,
भैरवा भूत छल छेद नांही।
नांव परताप तैं[९] विधन व्यापै नही,
नांव परताप[१०] तिह लोक मांही ॥
नांव परताप[११] सब[१२] संत महमा करैं,
विसन सिव सेस ब्रहमादि सारा।
दास हरिरांम निज[१३] नांव परताप [१४]तैं,
होय जुग मांहि नर [१५]निसतारा ॥२७॥

---

६. (ख) राम कै नांव तै, (ग) रामरिछपाल गुण। ७. (ख) राम कै नांव सुं, (ग) रामरछपाल। * (ख) इस पंक्तिका अभाव है, (ग) रामरिछपाल जहां जुरा झंफै नहीं,
रामरिछपाल तै विघन नासै।

८. (ख) राम कै नांव, (ग) रामरिछपाल। ९. (ख) राम कै नांव सुं, (ग) रामरिछपाल दुष दंद दूरै गया। १०. (ख) राम का नांव, (ग) रामरछपाल। ११. (ख) नांव की निगम, (ग) अगम अर निगम। १२. (घ) की। १३. (ग) जहां, (घ) कहै। १४. (ख) नांव जेहाज है, (ग) राम रिछ्या करै।

१५. (ख) ता वैस करीयै भै सिंध पारा,
(ग) कवहु न डूवै भै सिंध धारा,
(घ) जुग जल मांहि जन होय पारा।

नांव निज औषदी भव विथा करम कूं,
सबद का ध्यांन ईमान धारै।
साध सधीर कूं विघन व्यापै नही,
पेम का पछ दे कुपछ गारै॥
बाय गंभीर विष रोग हरि जांहिगे,
पित प्रवार सब दूर पीरा।
कफ तन षास अणसास आधौ फरै,
डैरवा नहरवा जुर जाहि तीरा॥
ताव्र तन तप वेलीज एकांतरो,
पंचगड़ गूम गौहान फोड़ी।
दास हरिरांम कहै वात ऐसी वणी,
तत कै नांव वेदन तोड़ी॥२८॥*
ब्रह्म[1] आणंद मैं पेम[2] विरषा वणी,
उलटि वरसाल चहुं दिस [3]धारूं।
स्वांयंत की बूंद आकास मैं घर कीया,
नांव नग हीर पाया[4] [5]अपारूं॥

---

(२८) * यह रेषता केवल (घ) प्रतिमें ही उपलब्ध है। रामस्नेही सम्प्रदायमें इन २७वें और २८वें रेषतोंकी 'रामरक्षा' संज्ञा है जिन्हें मन्त्रस्वरूपमें कवच रूपसे सिद्ध भी किया जाता है। इन्हें पर्वके दिन गोरोचन, केसर आदि गन्धद्रव्योंसे भोजपत्रपर सुवर्ण-लेखनीसे लिखकर धारण करनेसे समस्त आधि-व्याधिसे रक्षा होती है।

(२९) १. (ग) पिंड ब्रहमंड मैं एक। २. (ख) अषंड। ३. (घ) घारा। ४. (ग) नीपजै नग हीर। ५. (घ) अपारा।

ताहि परषत[६] जुग[७] मांहि जन जौंहरी,
सुरति अर निरत कै वैस छाजै।
मन परचाय पिंड[८] प्रांण परचा भया,
भगति अर[९] मुगति सहजे निवाजै॥
पाव अर[१०] पंथ[११] विण इंति[१२] ऊंचा चढ्या,
देषीया दीप परदीप[१३] द्वारा।
दास हरिरांम कहै नांव का नांव मैं,
होय गरकाब निह आरपारा॥२९॥

इला अर पिंगला वीच है सुषमणा,
होय तांह[१] त्रिगुटी घाट मेला।
अगम का पंथ जांह[२] और पुहचै नही,
हंस परिहंस मिल करत केला॥
वंक नाली वहै सुरति सवदां गहै,
जोग अर जिग जप तप नांही।
नाद अनहद[३] वजे भै दुष दूजा भजे,
अरध अर उरध कै वीच मांही॥
उरध मुष कूंप मैं अरट निसदिन वहै,
चलत है षाल चहुं[४] दिस धारा।
दास हरिरांम सो संत जन पीवसी,
प्यासा मरै और विन सुधि सारा॥३०॥

---

६. (ग) निरष परषत। ७. (ख, ग) है जन कोई जौहरी। ८. (ख) तन, (ग) अर। ९. (ख) निज। १०. (ग) विण। ११. (ख, घ) पंथ। १२. (ख) उलटि, (घ) अति। १३. (ग) परषंड।

(३०) १. (ग) आतिम तहां सहज मेला। २. (घ) कूं। ३. (ग) अनहद वाजा। ४. (ख, ग) सुषम धारा।

सिषर कुं ध्यांन चढ़ि धसे पाताल कुं,
पूरब कै घाट हुय नाभ आये।
उलटीया[1] सबद मन पवन पछमि दिसा,
ओथि जालंधरी बंध लाये॥
साझि षट चक्र सुन्य वीच फेरा कीया,
होय आगै गरू लारि चेला।
जनम अर मरण का[2] सोच संसा मिट्या,
नांव निर्भै तणा बांधि बेला॥
वेद कतेब गुण गाय पुहचै नही,
ब्रह्म कै धाम का अगम गैला।
सुरति अर निरत ले द्वार दसवैं मिल्या,
होय जब दीन दोसत्त पैला॥
पाप अर पिन[3] जांह हरष सोगा नही,
जीव अर सीव का होय मेला।
दास हरिरांम अब राज अैसा जम्या,
सिंघ बकरी चरैं वंन भेला॥३१॥

रांम महाराज की रौंस जांणै नही,
हौंस करि पथर पूजत पाजी।
अगम अग्याध कुं साध सूरा लहै,
पंथ पूरा गहै गहै मरद गाजी॥
मूढ अग्यांन की पोट माथै लीयां,
ग्यांन गुर गम विन उ तर नाजी।
अधर का ध्यांन मन सुरति सुन मैं धरौ,
वाय नीसांण चढ़ि पेम ताजी॥

---

(३१) १. (घ) सुरति अर। २. (घ) सनेह। ३. (घ) पुंण्य का।

वेद कतेब ले पाठ दोउं पढ़ै,
देहाथि छापां करि द्वारिकाजी।
तन तीरथ फिर नाहि आया घरे,
मन महरंम विन ऊ न राजी ॥
मात अर तात सुत भ्रात संगी न को,
देष दिन च्यारि की झूठ वाजी।
दास हरिरांम कहै साच हरि भगति है,
ढील कीजै मती देह साजी ॥ ३२ ॥

श्री १००८ श्री रामनारायणजी महाराज
रामस्नोहि सम्प्रदायाचार्य सिंहस्थल (८)

अथ हरिजस लिष्यंते
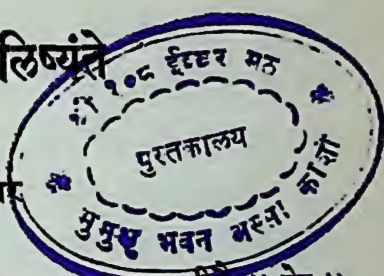
(१)

राग मलहार

रे नर सतगुर सौदा कीजै,
इन सौदा मैं [1]लाभ [2]अनंत है, एक मना हुय लीजै ॥ टेर ॥
मात पिता [3]सुत [4]बंधव [5]नेहा, चौरासी [6]लषईजै ॥ १ ॥
जे कोई [7]चाहै रांम भगति कुं, गुर की सरणि [8]गहीजै ॥ २ ॥
गुर विन भरम न भाजै भवका, करम न [9]कोय [10]कटीजै ॥ ३ ॥
गुर गोविंद विन मुगति न जीवकी, कहीयौ वेद [11]सुनीजै ॥ ४ ॥
जनहरिरांम और सब [12] कूकस, गरू [13] सबद सत बीजै ॥ ५ ॥

(२)

रे[1] नर रांम नांम सिवरीजै,
या सुं आगै संत [2]उधरीये, वेदां साष भरीजै ॥ टेर ॥
या[3] सुं धू पहलाद उधरीये, करणी साच करीजै ॥ १ ॥
या सुं रंका बंका उधरे, गोरष [4]अमर कहीजै ॥ २ ॥
या सुं गोपीचंद भरथरी, पैलौ[5] पार लंघीजै ॥ ३ ॥
या सुं रामानंद उधरीये, पीपा जुग जुग जीजै ॥ ४ ॥*

---

(१) १. (घ) नफा। २. (ख, ग, घ) बौहत। ३. (ख, ग) जुग। ४. (ख, ग) मांही, (घ) भ्रात। ५. (ख, ग) सकल कै, (घ) सनेही। ६. (ख, ग, घ) ही। ७. (ख) रांम भगति कुं जांनै। ८. (ख, ग) गुर का होय रहीजै। ९. (घ) काळ। १०. (ख, ग) निस (ह) चै नांव न हीजै। ११. (ख, ग) अंतर मांहि गहीजै। १२. (ग) है। १३. (घ) रांम।

(२) १. (ग) रसनां। २. (ख, घ) उधरीया। ३. (घ) या सुं दत मछंदर उधरे गौरष ग्यांन गहीजै। ४. (ख, गं) ध्यांन धरीजै, (घ) आपा अजर जरीजै। ५. (ख, ग) भवजल। * (ख, ग) में निम्न पाठ है—

या सुं दास कबीरा[६] नांनग , काळ'र[७] जाळ कटीजै ॥ ५ ॥
या सुं जन रिवदास उधरीये , मीरां वात वनीजै ॥ ६ ॥
या सुं कालु कीता उधरे , वांस अमरपुर कीजै ॥ ७ ॥
या सुं हरीदास[८] जन उधरे , दादू दीन भणीजै ॥ ८ ॥
जनहरिरांम अनंत[९] मुन उधरे , आतमरांम धणीजै ॥ ९ ॥

(३)

अैसैं[१] रांम सिवर नर बावरे ,
सिवरि[२] वैंग ढील नही कीजै , इन औसर इन दावरे ॥ टेर ॥
जिन यौ नर[३] तेरौ तन घरीयौ , सो[४] कारीगर ध्याव रे ॥ १ ॥
जिन प्रितपाल करी गरभन[५] मैं , विन ही[६] आव उपाव रे ॥ २ ॥
अब कहा सोच करै तुझि तन कौ , ऊ आफे[७] पुंहचाव रे ॥ ३ ॥
इन[८] तन जोबन कौ नांहि भरोसौ , विनसत वार न[९] लाव रे ॥ ४ ॥*

या सुं नामा सेना उधरे, रामानंद पुनीजै ।
या सुं पीपा धना उधरे, दास कबीर सुनीजै ॥
या सेती रिवदास उधरीये, ग्यांनी ग्यांन गुनीजै ।
या सुं काळु कीता उधरे, मीरा वात वनीजै ॥
या सुं नानग नापा उधरे, दादू दीन भनीजै ।
६. (घ) कबीर नामदे । ७. (घ) जमका । ८. (घ) जन-हरीदास उधरीये। ९. (घ) कहै सबहिन कूं, जपतां ढील न कीजै।

(३) १. (ख, ग) बंदा । २. (ग) सिवरत, (घ) सिवर्त वेग विलम । ३. (ख) तन जल सेती घरीयौ, (ग) तन विन माटी घरीयौ । ४. (घ) विन टांची विन घावरे । ५. (ग) माही । ६. (ख) कर, (ग) सो नित ही निरखावरे, (घ) में यह पूरी पंक्ति नहीं है । ७. (ख, ग) पूरी पंक्ति नहीं है, (घ) पौहचावरे । ८. (ख) इन घम घम कौ कौंन भरोसौ, (ग) है तन सास भरोसौ नांही, (घ) तन जोबन । ९. (ख, ग) आवै कबहुक नाव रे ।
* (ख, ग) में यहाँ अधिक है—
(ख) सब साधन की संगति करीयै, एको मन चित भाव रे ।
(ग) हरिभगतन की संगति करीयै, पलक घरि दिन पाव रे ॥

जनहरिरांम भजन[१०] विन जीतव , वामैं[११] लाव न साव रे ॥ ५ ॥

(४)

प्रभु मैं प्यासा तेरै [१]नांमका ,

करि[२] सुं मगन होय हरि आगै , ओलग आठुं जांमका ॥ टेर ॥

तो कुं [३]जाचि और नही [४]जाचुं , जाचिग होय [५]अजांमका ॥ १ ॥*

सेई जांम अजांम न [६]राता , माता[७] दमड़ी चांमका ॥ २ ॥

देही भीतरि[८] देव हमारै , चेतन चौथै धांमका ॥ ३ ॥

वाकै आसि पासि [९]रहुं लागा , महरंम ताहि [१०]मुकांम का ॥ ४ ॥

जनहरिरांम रांम विन मेरै , दूजा केहै [११]कांम का ॥ ५ ॥

---

१०. (ख) और की संगति, (ग) रांम भजिए को।
११. (ग) दूजा, (घ) लाव न कोई।

(४) १. (ग) नांम कौ, आगे सभी पदान्तोंमें तुक इसी 'कौ' के आधारसे है। २. (ख) नाचुं, (ग) निरत करूं निरमै पद गांउं, (घ) रहसुं। ३. (ख, ग) छाडि। ४. (ख, ग) आडुं। ५. (ख, ग) सेवग संमृथ सामका (कौ), (घ) मो दाता निज नांमका। * यहाँसे आगे 'ख, ग' में निम्नलिखित विशेष है—

(ख) चाकर होय रहूं नित चरनां, मैं कुरसीबंध रांम का।
(ग) और न कोय धणी सिर ऊपरि, चाकर रमता रांम कौ।
६. (ख) सोई रांम रंग नही राता, (ग) सो नर रांम रंग नही रातौ, (घ) सोई रांम नांम विन राता। ७. (ग) मातो। ८. (ग) मांही, (घ) या देही विच। ९. (घ) बौह। १०. (ग) जिन कै आसि पासि नही बसती, सो बासी सुनि गाम कौ। ११. (ख) जनहरिरांम एक है सांई, दूजो कूड़ो कांम कौ, (घ) जनहरिरांम रांम मोहि दाता, और किरपन किस कांम का।

(५)

राग भैरूं

गुर विन भगति न उपजै भेवा ।
पढौ[1] गुणौ भावैं बौह सेवा ॥ टेर ॥
गुर तैं रिष सिनकादिक पायौ ।
पारबती पति नांव पठायौ ॥ १ ॥
गुर सा और[2] न को [3]वरमादिक ।
भांजि[4] भरम [5]काटैं करमादिक ॥ २ ॥
सुरता अर बकता बौह [6]ग्यांनी ।
विन गुर गम आतम नही जांनी ॥ ३ ॥
गुर की महमा मुन जन गावैं ।
मूरष अंधा मरम न पावैं ॥ ४ ॥
जनहरिरांम विषम संसारा ।
गुर गोविंद ले उतरैं पारा ॥ ५ ॥

(६)

राग वसंत

संतो मन वरज्यौ नही लागै रे ।
यौ[1] पंचन कै भयौ सागै रे ॥ टेर ॥*

---

(५) १. (ग) जिग असमेध करौ भांय सेवा । २. (ग) धरम । ३. (ख) भूवादिक, (ग) अनादिक, (घ) सरनादिक । ४. (ख) भांजै, (ग) मेटै । ५. (ख, ग) कटै । ६. (ख) कथि कथि ग्यांन भये वौह ग्यांनी, (ग) वेद पुरांन पढे भया ग्यांनी ।

(६) १. (ग) मैं ज्युं लांयु त्युं भागै रे, (घ) 'यौ' नहीं है ।
* (ख, ग) में यहाँसे आगे निम्न पाठ अधिक है—(ख, ग)
यौ मन जाग्रत सुपन जांनि । (यौ) मन सुषपति मन तुरीय मांनि (ठांनि) ॥
यौ मन विषीया परम सार । यौ मन जीता कब हार ॥

सुर नर मुन जन रहत[2] वार ।
अजर अमर मन [3]भये अपार ॥
यौ मन आसा हुय[4] अनेक ।
यौ मन होय[5] निरास एक ॥ १ ॥
या मन कुं गोरष [6]हु जांन ।
जीता तन-मन इंद्री प्रांन ॥
मन पाया सुषदेव व्यास ।
भरम करम का कीया नास ॥ २ ॥
या मन सेती[7] धरत[8] ध्यांन ।
पावत हैं पद परम ग्यांन ॥
जनहरीया[9] मन उलटि थीर ।
सहजां सब सुष हुय[10] सरीर ॥ ३ ॥

(७)

तौई रांम विन गति किन न पाय ।
गुन वेद [1]सासत सुनत गाय ॥ टेर ॥
तन होय नागा घसत छार ।
लष[2] लीयां लंगर फिरत लार ॥
ग्रह छोडि[3] वन मैं करत[4] वास ।
मारि[5] आसण हुय निरास ॥ १ ॥

(ग) यौ मन इन्द्री लीयां साथ । हटिक हटिक नही आवै हाथ ॥
या मन सुं मन तोरि जोरि । तौई आदि न आवै अंत औरि ॥
२. (ग) थकत । ३. (घ) भयौ । ४. (ख) कब हुय रहत,
५. (ग) यौ मन भयौ निरास एक, यौ मन धारत आस अनेक ।
६. (ग) जोगी । ७. (ख, घ) मन उनमुन तैं, (ग) ले मन
उनमुन । ८. (घ) धरीयै । ९. (ग, घ) हरिरांमा ।
१०. (ख, ग, घ) भया ।
(७) १. (घ) सासतर । २. (ग) बौहौ । ३. (घ) छाडि । ४. (ग)
वसत जाय । ५. (ग) नित षिने षिन कंद मूल षाय ।

जोग जिग व्रत धरत नेम ।
अनंत महमा गरत पेम ॥
सिर सहत निसदिन घोम सीत ।
मन पंच इंद्री दवन जीत ॥ २ ॥
होम जप तप करत पाठ ।
सूर सती संग चडत काठ ॥*
भगति नवध्या धरत ध्यांन ।
कथत अणभै ब्रम ग्यांन ॥ ३ ॥
जाय हीयाळै गळत जिंद ।
उलटि राषत नाद विंद ॥*
कोटि गउ दिज दांन देत ।
मरत कासी मुगति षेत ॥ ४ ॥
फिरत अठसठ तीरथ धांम ।
दास दूसरा धरत ध्यांम ॥
हरिरांमा[६] विध सकल जांनि ।
छभा पिंडत अरथ छांनि ॥ ५ ॥

(८)

अब राषि सरनै रांम मोहि ।
बौह[१] वेर भरम्यौ विनां तोहि ॥ टेर ॥
का बौह लालच[२] करत लोभ ।
का[३] अपनी करि मरत सोभ ॥
का मन बंधे[४] आळ जाळ ।
जब जीव पकड़ि ले जाय[५] काळ ॥ १ ॥

---

* (ग) में पंक्तियाँ विपर्ययसे हैं। ६. (ख) जनहरीया।

(८) १. (ग) बौहौ। २. (ख) मैं लालच बौह, (ग) का मैं लालच का कोई। ३. (ग) मैं का। ४. (ग) मैं का कोई करते। ५. (ख) जात।

का[६] विषीया मन कांम क्रोध।
का करि [७]मूवौ वाद ब्रोध॥
का मन बंधे आंन पास।
विनां भगति भयै फूस फास॥ २ ॥
मैं कब नाना करत नेह।
का मन त्यागी वचन देह॥
का माया मन वीच गाडि।
मैं किती वेर ग्यौ छाडि छाडि॥ ३ ॥
का मैं आसन बैस पूरि।
का तन तीरथ फिरत दूरि॥
मैं कब आसा अनंत पास।
मैं कब एको हुय निरास॥ ४ ॥
का तन आलस करत ऊंघ।
का फिर सूंघा करत सूंघ॥
का मन मूरष विकल जास।
का हुय बैठे वेद व्यास॥ ५ ॥
मैं कब लुध दीरघता जांनि।
का मुझि मांन वडाई ठांनि॥
मैं कब साझे असट जोग।
मैं कब नांना करत भोग॥ ६ ॥
का मुझि मूंडत धरत भेष।
का मैं फकर जलाली सेष॥
का मैं करत सिंन्यास क्रंम।
का कुल मारग लोक भ्रंम॥ ७ ॥

६. (ख) मैं, (ग) का कोई करते। ७. (ग) का वहि मरते।

मैं कब सूकर सिंघ स्याळ।
मैं कब राव रंक भूपाळ॥
मैं कब आपा हुय अचेत।
मन मिरघा ज्युं चरत षेत॥ ८ ॥
मैं लष चौरासी धारि जोनि।
का बोलत का गहत मोनि॥
जनम जनम दुष बौहत पाय।
जब रांम नांम तैं त्रिमुष थाय॥ ९ ॥
मैं कब सीषत सुनत ग्यांन।
का चौका चतुराई ध्यांन॥
का तप तीरथ वरत नेम।
पार ब्रहम सुं नांह पेम॥ १० ॥
जनहरिरांम सकल कुं जांनि।
एक नांव की परी पिछांनि॥
तन मन लीया गरू कै पास।
दीया अभै पद मिटगी तास॥ ११ ॥

(९)

नर [1]क्यौं सिवरै नही रांम नांम।
निकमी य[2] रसनां कौंन कांम॥ टेर॥
झगरा झगरी करत झूठ।
पषा पषी पर निंद्या[3] पूठ॥
सीषत भाषत सुनत ग्यांन।
आतम कौ नही धरत ध्यांन॥ १ ॥

---

(९) १. (घ) क्युं। २. (ख) या विन, (घ) तेरी निकमी। ३. (घ) नंद्या।

सकल वरन मैं एक अंस।
ऊंच नीच कुंन[४] होय वंस ॥
जा मुष हरि की नांहि वांनि।
सोई जनम कुल हीन जांनि ॥ २ ॥
जौ मिनषा तन पाय जीव।
प्रांण थकै मुष उचरि पीव ॥
निस दिन ऊंमर घटत जाय।
जुरा पसारा करत आय ॥ ३ ॥
काळ कसीसा करत वांण।
मारै आजक कल विहांण ॥
गाफिल कांय सूतौ नचींत।
जागि अभैपद करि लै मींत ॥ ४ ॥
काटत भरम करम का पास।
मेटत जनम मरन की [५]तास ॥
हरिरांमा भजि परम तंत।
सिव सिनकादिक कहत संत ॥ ५ ॥*

(१०)

राग काफी

मैं तौ रांम[१] नांम भई मगनां,
अब तौ और लगै नही लगनां ॥ टेर ॥
माया मोह भरम की भीता,
मौष [२]मुगति कै आडी।
या कुं डाकि परै तौ पुंहचै,
नही तौ[३] करम कीच मैं गाडी ॥ १ ॥

---

४. (घ) कुंण होत। ५. (घ) त्रास। * (ग) में यह पद नहीं है।

(१०) १. (ख, ग) एक। २. (ख) रांम भगति, (ग, घ) भगति मुगति। ३. (घ) तर।

कोई कहै वेद कतेब [४]कुरांनु,
को[५] तीरथ व्रत दांनां।
एक नांव की जुगति न [६]जांनी,
ता तैं बौह विध करत विनांनां ॥ २ ॥
कोई कहैं जोग ज्याग जप सेवा,
कोई किरतम[७] कुं पूजै।
आपा तन मन परचा नांही,
देव दुनी करि ध्यावै दूजै ॥ ३ ॥
कोई कहै ग्यांन ध्यांन तप [८]करणी,
कोई आचार विचारा।
पारब्रह्म [९]का भेद न पाया,
गाफिल[१०] पचि पचि मरत गिवारा ॥ ४ ॥
कोई कहै मोनि पाठ ग्रह विंध्या,
कोई वसते[११] वनवासा।
सतगुर विन[१२] संसा नही भाजै,
भावैं कोटि करौ [१३]वेषासा ॥ ५ ॥
दास कहै हरिरांम सुणौ[१४] नर,
रांम भजन[१५] सुष सब तैं न्यारा।
पांचे उलटि गहौ मन पवनां,
दिल भीतरि पावौ[१६] दीदारा ॥ ६ ॥

---

४. (घ) कुरांनां। ५. (ख, घ) कोई। ६. (ख) रांमनांम की षबरि न पाई, (घ) एक नांव का नहचा नांही। ७. (ख) पांहण। ८. (ख) रहणी। ९. (ग) की षबर न पाई। १०. (ख, ग, घ) ता तैं। ११. (ख) धारत, (ग) दाषै। १२. (ख, ग) विना न संसा भाजै। १३. (ख) केता करि करि गे वेषासा, (ग) केते करि करि जांह वेषासा। १४. (ख, ग) भजौ। १५. (ग) सबद। १६. (ख) अलष तणां, (ग) पावौ परमानंद पीयारा।

(११)

या तौ विन [1]यु लागी, मिले पूरवले[2] यार।
लागी लागी जब [3]जांनि, दुबिध्या दिल भागी ॥ टेर ॥
विन वादल विरषा [4]विनी, छह रुत वारै मास।
पेम[5] घटा करि [6]औसस्यौ, भीज रहे[7] निज दास ॥ १ ॥
नष चष ही[8] नाडा भस्या, हस्या अठारै भार।
विण[9] फूलां फल मौरीया, हरिजन चाषण हार ॥ २ ॥
दीपग वाती तेल विन, मंदर[10] भये उजास।
सेझडीयां[11] सुषमिण तणां, आतम करत विलास ॥ ३ ॥
आवण जावण बौह मिट्या, पाया[12] पीव वदेह।
दास कहै हरिरांम भया मैं, एक मेक अस [13]नेह ॥ ४ ॥

(१२)

साजन घरि आवौ [1]भांवनै, मैं[2] किन संग षेलुं फाग ॥ टेर ॥
तो कारणि निस भरि नही सोऊं, जोऊं पल पल जागि।
क्या जांणु आवैं कब[3] करता, रही अनेसै लागि ॥ १ ॥

---

(११) १. (ख) अंतर लिव। २. (ग) सुरित ल्गी मुझि। ३. (घ) जांनियै। ४. (ग, घ) वणी। ५. (ख) अरध उरध विच, (ग) अघट। ६. (घ) औसरी। ७. (घ) रह्या। ८. (ख, ग) रोम रोम नष चष भस्या, (घ) विच। ९. (ग) पपीया ज्युं पीव पीव करै, विरहन वारूंवार। १०. (ख, ग, घ) मिंदर भया। ११. (ग) सहजां पर सुषमिण तणा, ब्रह्म कीया जहां वास। १२. (ख, ग,) देष्या दिल दीदार। १३. (ख, ग) जनहरीया ऐसैं कहै (यारी), रांम सिवरि भये (ई) पार, (घ) भया मुझि, एको मेक सनेह।

(१२) १. (घ) भावनां। २. (ख, ग) किन संग। ३. (ख) कब आवत।

जौ सोऊं सपनै [४]नही देषुं, जागंती जक नांहि।
पीतम कारन विरहन ठाढी, द्यौ दरसन [५]दिल मांहि॥ २॥

वैग मिलौ [६]मुझि अंतर जांमी, अवसर [७]वीतौ जाय।
हरिरांमा [८]जन रांम सहेली, हाथि लीयौ विलमाय॥ ३॥

(१३)

अजोनी[१] आये आंगनै, सषी[२] मिल मंगल गाय॥ टेर॥

ग्यांन गुलाल गहुं मन मूठी, गुर गम षेलुं फाग।
साधु संगति अगर [३]कम कमी, आज[४] महा धिन भाग॥ १॥

सुरति निरत की[५] सौंज विनाउं, पिंड करूं पिचकार।
प्रेम [६]प्रीत सुं भरि भरि डारूं, हरि[७] हुं षेलण हार॥ २॥

लिव सुधि [८]बुधि का सूंधा लांउं, चित चंदन चरचाय।
अैसैं रांम[९] वदेही दुलहौ, ल्युं अंतर लपटाय॥ ३॥

रांम निरंजन सब सुं[१०]न्यारा, घट घट लील विलास।
जनहरिरांम तमासा[११]तन मैं, देषत है हरिका[१२] दास॥ ४॥

---

४. (ख) तुझि, (ग) हरि, (घ) सुष। ५. (ख, ग) मुझि। ६. (ख) तम, (ग) मोहि, (घ) प्रभु। ७. (ख, ग) वीता। ८. (ख) हम, (ग) तुझ, (घ) जनहरिरांम रांम करि अपनी।

(१३) १. (घ) आज अजोनी। २. (ग) रलि मिल। ३. (ख, ग, घ) कमकमा। ४. (घ) होय। ५. (ख) सब। ६. (ग, घ) भाव। ७. (ख, ग) आतम, (घ) हरिजन। ८. (ग) हेत प्रीतका...। ९. (ख) ब्रह्म। १०. (ग) एको अंग न संग न सासा सब...। ११. (ख, ग) जनहरीया तन (घट) मांहि तमासा। १२. (ख) कोई पावै निजदास।

(१४)

ऐसा दिल भीतरि दरवेसा,
अजब यार सूरत परि वारी, कह्या न जावै कैसा ॥ टेर ॥
ग्यांन ध्यांन का झोली झंडा, तत तगोटा तांणी ।
षमीया[1] तणी पहरि करि षफनी, जरणा जोग वषांणी ॥ १ ॥
भाव भगति का षांणा पीणा, सील संतोषी पतरा ।
सुरति[2] निरत की सेली सींगी, लीया लंगोटा जतरा ॥ २ ॥
तीन लोक मैं रमै अकेला, निरपष पष नही कोई ।
जनहरिरांम रहत है न्यारा, देष्या दिल मैं सोई ॥ ३ ॥

(१५)

प्रांणी [1]करिलौ रांम संनेही,
विनस जाहिगी एक पलक मैं, या गंदी नर देही ॥ टेर ॥
रातौ मातौ विषै स्वाद मैं, परफूलत मन मांही ।
जीव तणा आया जम कंकर, पकड़ि ले गया बांही ॥ १ ॥
मूरष मगन भयौ माया मैं, मेरी करि करि मांनै ।
अंत काळ मैं भई विडांणी, सूतौ जाय मसांनै ॥ २ ॥
राग'र रंग रूप नर नारी, सब हुय जांहिगे षाका ।
जनहरिरांम रहैगा अमर, एको नांव [2]अल्हाका ॥ ३ ॥

(१६)

रे भवरा मन भाई, लिव चेतन सुं लाई ॥ टेर ॥
या जुग मांहि करन कुं [1]सौदा, आये[2] लोक लुगाई ।
एक ले चाले लाभ चौगणौ, एकां मूल ठगाई ॥ १ ॥

---

(१४) १. (घ) ष्यम्या । २. (ग) सत सबद की ।
(१५) १. (ग) करिल्यौ, (घ) करलौ । २. (ख, ग, घ) अलाहा ।
(१६) १. (ख, ग) सौदे । २. (ख, ग, घ) आए ।

ओथि ती करि कवल आयौ, एथ [3]वेसुरताई ।
साच कूड़ का लेह नतीजा, तोल[4] मोल निरताई ॥ २ ॥
निहचै [5]नांव राषि तन मन तैं, विक्रम [6]छोडि बुराई ।
धरगै मांहि धका नही षावैं, हालौ हक सराई ॥ ३ ॥
षबरि करौ दिल[7] मांहि षोजौ, जुग हटवाड़ै आई ।
जनहरिरांम कहै [8]ज्युं कीजै, सो सतगुर [9]फुरमाई ॥ ४ ॥

(१७)

हो [1]मांरा मन [2]अवतारी, तुं[3] मात पिता परवारी ॥ टेर ॥
तन भीतरि तम सा नही कोई, तुं जांणंत विध सारी ।
तूं ही [4]करण करावण वाळा, तुं पुरषा तुही नारी ॥ १ ॥
तूं ही आप [5]करैं मन स्वारथ, तूं हैं पर उपगारी ।
तुं मन[6] ध्यांन धरैं [7]निरजन का, तूं हैं[8] अंजन धारी ॥ २ ॥
तूं है दीन दोसती सबका, तुं भवसागर तारी ।
तूं ही न्याव षेवटीया[9] तूंही, तूं ही डूबणहारी ॥ ३ ॥
तूं ही वास करैं रंन[10] वन मैं, तुं ही भयौ घरबारी ।
जनहरिरांम[11] किसी विध पाउं, तेरा पार अपारी ॥ ४ ॥

---

३. (ग) पाठ आगे-पीछे है। ४. (ग) विनां। ५. (ख) एक, (ग) नांव राषि निस दिन मैं, (घ) राष एक तन मन कुं। ६. (ख) मेट। ७. (ग) धिल आप। ८. (ख) सोई, (ग, घ) कुछि। ९. (ग) करणी षूब कमाई।

(१७) १. (घ) मेरा। २. (ख, ग) हितकारी, (घ) अविसारी। ३. (ख, ग) नांव धरौ (जपौ) निरकारी, (घ) पूत पिता परिवारी। ४. (ख, घ) तुंही करैं करांवै तुंही। ५. (ग) स्वारथ सारै, तुंही। ६. (ख, ग, घ) ही। ७. (ग) निरगुन का। ८. (ग) तुंही गावत गारी। ९. (ग) तुंही करण पड़पंचम। १०. (ख, ग) वन मांही, (घ) वन वन मैं। ११. (ग) जनहरिरांम कहै मन सेती, तुंही परम दुवारी।

(१८)

हो मन पंच हजारी, तुं साहिब का नीजारी ॥ टेर ॥
घट[1] मैं अजपा जाप जपेसां, धरिस्यां ध्यांन सदारी ।
प्याला भरि भरि पीया रांम रस, घरि आई सिकदारी ॥ १ ॥
अभरा भरि भरि अजरा जरिसां, उंनमुंन लासां तारी ।
उलटी सुरति सबद मैं [2]राषां, अचष चषावण हारी ॥ २ ॥
करिस्यां भरम करम कुं कांनै, भरिस्यां भगति भंडारी ।
षरचत षावत सहज षजीना, लालच लोभ विडारी ॥ ३ ॥
अवहा वहि अण मिलता मिलस्यां, सुषमिण सेझ सुंवारी ।
षेल करूं आतम कै परचै, दूजा दाव [3]निवारी ॥ ४ ॥
वेद कथा अणअछर भिनसां, अणभै ग्यांन उचारी ।
दास कहै हरिरांम महापद, विरला लेह विचारी ॥ ५ ॥

(१९)

हे मनसा विणजारी, नायक [1]तुं चीतारी ॥ टेर ॥
लष चौरासी बाळिद केरौ, नायक अगम अपारी ।
वाकी[2] गम विरला जन जांणै, क्या [3]जांणंत संसारी ॥ १ ॥
साथणि पांच पचीसुं तांडै, विध जांणत हैं सारी ।
जब लग नायक नांव न राती, वहती घोर अंधारी ॥ २ ॥
जनहरिरांम विषै जुग सागर, जामैं चोर चकारी ।
तेरौ आय लूटसी तांडौ, नायक पारि उतारी ॥ ३ ॥

---

(१८) १. (ख) अंतर । २. (ख, ग) राषुं । ३. (ग) औरां होय तफारी ।

(१९) १. (ख) नांव संभारी, (घ) नांव । २. (ख) या कुं कोई, (ग) या की गम कोई कुछि एक जांणै । ३. (ख, घ) जांणै, (ग) सो विरला व्यौपारी ।

(२०)

हो मांरा जीवड़ला जूवारी , दसवै षेल दूवारी ॥ टेर ॥
यौ संसार विषै की वाजी , रमते रैंन दिहारी ।
या मैं आय [1]सकल नर नारी , जीप चल्या के हारी ॥ १ ॥
अैसैं चित [2]रहै चौपरि मैं , हालै[3] दाव सुंवारी ।
यु राषत हरि नांव रिदौं मैं , तौ [4]जुग पारि [5]उतारी ॥ २ ॥
अैसैं वरत बांधि सिर नटवा , चलता निजर न टारी ।
परत न अंध कूंप मैं कबहु , धुनि[6] आतम सुं धारी ॥ ३ ॥
पहली प्रीत करौ पीतब सुं , पीछै छाडि विकारी ।
जनहरिरांम करत हरिजी सुं , लाल[7] पुकार हमारी ॥ ४ ॥

(२१)

दिल मैं जागत रहीयै वंदा ॥ टेर ॥
हेत प्रीत संतन[1]सुं करीयै , परहरीयै परदंदा ।
आपा तन जोबन धन सेती , गरब न करीयै गंदा ॥ १ ॥
पद बोलौ तन मन कै[2]परचै , करणी सार करंदा ।
वरसै भोमि चकर षट भेदै , अंबर उलटि भरंदा ॥ २ ॥
ग्यांन गहौ गरवा तन साझौ , आपा अजर जरंदा ।
पचि पचि कांय मरौ पड़पंच मै , सहजां ध्यांन धरंदा ॥ ३ ॥

---

(२०) १. (ख) या विच आय गये, (ग) या विच आय वसे केता नर, (घ) जाय । २. (ख, ग, घ) राषत । ३. (ख, ग, घ) हाल्त । ४. (ख) भव । ५. (ग) यु धारत नर नांव निरंजन, विषीया वाद निवारी। ६. (ग) पग पाषंड सुं टारी, (घ) ध्यांन घनी सुं । ७. (ग) लगगी लाल पुकारी, (घ) सुणजो अरज ।

(२१) १. (ख, ग) साधन तै, (घ) हरिजंन । २. (ग) पाप न को वाकै पिन नांही ।

रांम नांम [3]सतगुर परतापे, कापे करम कुरंदा ।
सांसा सोग विघन नही [4]व्यापै, अनहद नाद घुरंदा ॥ ४ ॥
निराकार निरभै पद भेट्या, कट्या काळका फंदा ।
जनम मरन मेट्या जुग मांही, पाया[5] परमानंदा ॥ ५ ॥
अैसा यार न को आतम[6]सा, जिन्हां षड़ी है[7]जिंदा ।
जनहरिरांम भरमना भागी, गुर मिलीया गोविंदा ॥ ६ ॥

(२२)

अवं घरि आज्यो, आतम मेरे यार ॥ टेर ॥
तो कारन मुझि कायमा, निरप रही निरधार ॥ १ ॥
पीतंव[1] वैग पधारिज्यो, प्यारी करत पुकार ॥ २ ॥
निसदिन तोहि न वीसरुं, मेरे प्रांन अधार ॥ ३ ॥
अरज हमारी मांनि अकेली, तुं सब जांनन हार ॥ ४ ॥
जनहरिरांम रांम[2] घरि आये, भव पैला भरतार ॥ ५ ॥

(२३)

संगी[1] तेरा रांम विनां [2]नही कोय ॥ टेर ॥
मात पिता सब जूंनन मांही, आये उदर[3] वसेरा ॥ १ ॥
सकल[4] कुटंब सुत नारि संनेही, नदीयां नाव मलेरा ॥ २ ॥

---

३. (ग) सिवरन । ४. (ख, ग) सब नासै । ५. (ग) पूरन । ६. (ग) माव भगति आतिम की करीयै । ७. (घ) इसके बाद निम्न अधिक है—

अवगत नाथ अपार अमूरत, हरजन कोय लहंदा ।

(२२) १. (ख, ग, घ) पीतम । २. (ग) वालिम आए ।

(२३) १. (ग) रांम नांम विन कौंन संगी तेरा । २. (ख, घ) नर कौंन । ३. (ख, ग) दिन दस लेह । ४. (ख) गोत, (घ) भ्रात, (ग) माया मोह सकल संसारा, माटी छार मिलेरा ।

आतम एक विनां नही कोई, आज न कालि कलेरा ॥ ३ ॥
जनहरिरांम साध[5] सत संगति, और सकल[6] उलझेरा ॥ ४ ॥

(२४)

यारो असलि फकीरी भारी रे ॥ टेर ॥
रांम भगति कौ मारग न्यारौ, चलिबौ चोट करारी रे ॥ १ ॥
रहणी काछ कमर कस करणी, कांम करोध कुं मारी रे ॥ २ ॥
धूंणी ध्यांन ग्यांन गलतांनां, षफनी पहरि षिम्यारी रे ॥ ३ ॥
झोली जोग जुगति का झंडा, टोपी ब्रहम विचारी रे ॥ ४ ॥
पेम प्रीत की पतर पावोड़ी, सीस तिलक तत सारी रे ॥ ५ ॥
जनहरिरांम लहैं निज मन कु, द्यैं अपना घर जारी रे ॥ ६ ॥

(२५)

मुरधर कौ पार न पाई रे ॥ टेर ॥
सिंभु सेस विसन ब्रहमादिक, रांम[1] नांम लिव लाई रे ॥ १ ॥
सुर नर[2] नाग निगम मुन नारद, नांव निरंजन ध्याई रे ॥ २ ॥
आदि जुगादि अगम कुं[3] आगै, ग्यांन ध्यांन[4] गुन गाई रे ॥ ३ ॥
जनहरिरांम रांम निस[5] दिन मैं, सिवरि भया[6] सुषदाई रे ॥ ४ ॥

(२६)

ऐसा रे कोई दरद दिवांना।
आपा मन महरंम कुं जांना ॥ टेर ॥
अगम देस का माघ न कोई।
कुछीयक[1] जांनै गुर गम होई ॥ १ ॥

---

५. (ग) रांम सुष साचा। ६. (ख, ग) झूठा कुल, (घ) झूठा जुग।

(२५) १. (ख) जोग ध्यांन। २. (खं) नर सुर सकल। ३. (ख) अन्न। ४. (ख) कथै। ५. (ख) सरनागति। ६. (ख) सकल, (घ) सिंवर।

(२६) १. (ख, ग) जानेगा सोई।

भव सागर डूबण संसारा।
या कुं उतरै जन कोई पारा॥ २॥
मेटै राग दोष मन मांही।
जल पांहण कुं पूजै नांही॥ ३॥
लष चौरासी जीया जोनी।
एक सकल कै [१]मांहि अजोनी॥ ४॥
वेद पुरांन पढे पढि थाके।
न्यारे रहिगे नांव अल्हाके॥ ५॥
जनहरिरांम कहै सो दरदी।
रांम भजैगा मरदा मरदी॥ ६॥

(२७)

राग कनड़ौ

अैसा रे कोई सतव्रत सूरा।
दंद वाद कुं मेटै दूरा॥ टेर॥
ग्यांन ध्यांन का [१]धारै घोटा।
भांजै भरम करम का कोटा॥ १॥
पेलै पकड़ि भोमीया पांचू।
घाव न घोबौ और [२]न आंचू॥ २॥
झेलै [३]उलटि पछिम[४] दरवाजा।
वावै सुनि [५]सिंषर मैं वाजा॥ ३॥
काटै कूड़ कुबिधि की काती।
वैर भाव किन सुं नही घाती॥ ४॥

---

(२६) २. (ख, ग) या मैं है एक आप।
(२७) १. (ख, ग) धारत। २. (ख, ग) लावै (वाकै) घाव न घोबौ, (घ) घाव न घोबौ अंग न। ३. (ख, ग) कोट। ४. (घ) दसुं। ५. (ग) मैं अनहद वाजा।

आतम एक[6] सकल कै संगी ।
मरै न जीवै आप अभंगी ॥ ५ ॥

वाकै नांव त्रिपत सुं यारी ।
जनहरिरांम [7]कहै बलिहारी ॥ ६ ॥

(२८)

कीजै रे दिल दोसत अैसा ।
दिष्ट मुष्टि नही आवै तैसा ॥ टेर ॥

अरध कवल मैं भवर विराजै ।
विनां वासना बैंठा छाजै ॥ १ ॥

वसै न वाड़ी नांव न वासा ।
रहत उदास न लील विलासा ॥ २ ॥

अैसा अलष लषै नही कोई ।
आपा भीतरि [1]बोलै सोई ॥ ३ ॥

अैसैं[2] बीज विनां फल नांही ।
रांम[3] भगति विन मुगति न कांही ॥ ४ ॥

जनहरिरांम नांव त्रिबांनी ।
उर अंतर मैं[4] विरलां जांनी ॥ ५ ॥

---

६. (ख, ग) एकोएक । ७. (ख) ताहि ।

(२८) १. (ख) सब सुं न्यारा भीतरि, (ग, घ) पावै परि पूरबली । २. (ग) जैसैं । ३. (ग, घ) है हरि न्यारा बोलै मांही । ४. (ख) अंतर गति मैं, (ग) आपा भीतरि, (घ) आपा अंतर गति मैं जांनी ।

(२९)

है रे कोई अैसा गुर [1]ग्यांनी ।
पार ब्रह्म का धरिहै [2]ध्यांनी ॥ टेर ॥
मेटै ताप त्रिवध[3] गुण माया ।
भेटै रांम निरंजन [4]राया ॥ १ ॥
पूरब [5]उलटि पछमि दिस आवै ।
अरध उरध [6]मैं रांमति लावै ॥ २ ॥
सुष दुष होय न[7] कोई संसै ।
हंसा [8]आय मिल्या परिहंसै ॥ ३ ॥
काटै जनम मरन की पासी ।
पावै राज अटल अभिनासी ॥ ४ ॥
जनहरिरांम अगम गम नांही ।
गुर[9] सिष वास वसाया मांही ॥ ५ ॥

(३०)

भजीयै रांम नांम [1]आनंदा ।
तजीयै भरम[2] करम दुष दंदा ॥ टेर ॥
भीतरि कपट न बाहरि भेषा ।
लोक लाज कुल सुं नही लेषा ॥ १ ॥
वाहै ताकि सबद गुर [3]तीरा ।
झेलैगा कोई सूर [4]सधीरा ॥ २ ॥

---

(२९) १. (घ) ग्यांना । २. (घ) ध्यांना । ३. (ख, ग) त्रिगुणकी, (घ) तीन गुण । ४. (घ) जब तैं अणभै राज जमाया । ५. (ख) छोडि । ६. (ख) विच षेल मचावै, (ग) विच ताली, (घ) विच । ७. (ख) वाकै सुष दुष नां, (ग) सोग नही०, (घ) सुष दुष सेती भया निसंसै । ८. (ख, ग) उलटि । ९. (ख, ग) गुरगम, (घ) सतगुर सब्द बताया ।

(३०) १. (ख, ग, घं) निजबंदा । २. (घ) और भरम । ३. (ख, ग) ताकि ताकि सर वाहै सूरा । ४. (ख, ग) गुर मुष पूरा ।

लीया देस[५] दसुं दरवाजा ।
जेर[६] कीया गढ मैं मन राजा ॥ ३ ॥
सास सास सुनि सहर वसाई ।
नांव निरप की फेर[७] दुहाई ॥ ४ ॥
जनहरिरांम परम[८] सुष पाया ।
आतम अणभै राज [९]जमाया ॥ ५ ॥

(३१)

रसनां रांम[१] सिवरीयै नांमां ।
जब तेरा सब [२]ही सरजांमां ॥ टेर ॥
पंचे मन पांणतीया [३]लाया ।
लष चौरासी वाग लगाया ॥ १ ॥
आतम[४] एक वसै वन माली ।
सींचै वाग [५]करत रुषवाली ॥ २ ॥
वाग वाग मैं दोय फल लाया ।
से[६] षाया सेई पछताया ॥ ३ ॥
भरम[७] करम उपज्या बौह भारी ।
नाना रूप धरैं नर नारी ॥ ४ ॥

---

५. (ग) उलटि । ६. (ख) जब ही पकिड़्या गढ का राजा, (ग) पकिड़्या मन तन गढ का राजा, (घ) जेर कीया नगरी का राजा । ७. (ख, ग) घरि घरि अणभै फैर (फिरत) । ८. (ख, ग) ब्रह्म आनंदा । ९. (ख, ग) मेट विषै (सकल) गुण माया हंदा, (घ) भेट्या रांम निरंजन रायः ।

(३१) १. (ग, घ) एक सिवरीयै रांमां । २. (ग) जब लग सब तेरा, (घ) तेरे तन का । ३. (ग) तन तरवर मन नीर पिलाया । ४. (ग) या मैं । ५. (ख) यह पंक्ति नहीं है, (घ) वाग सकल सेती । ६. (ख) जिन पाया, (ग) आय जाय सकल भरमाया, (घ) जे षाया जेही । ७. (ख) इनतैं भ्रम ।

मात पिता सुत [८]कोय न किसका।
आवैं जांहि सदा अहि निसका ॥ ५ ॥
जुग में झूठ वनाई वाजी।
जीत[९] गया सोई नर गाजी ॥ ६ ॥
आतम एक सकल [१०]अन्नतारा।
आदि अंत इन कै आधारा ॥ ७ ॥
अकथ कथा [११]मोहि लषी न जावै।
तीन लोक तेरा जस गावै ॥ ८ ॥
जनहरिरांम सुन्य[१२] सर मेला।
हंस परि हंस करत जहां केला ॥ ९ ॥

(३२)

तन बंबही मन विसहर मांही।
डस्य डस्य जाहि सकल जुग तांही ॥ टेर ॥
विषम लहरि ऊठै अंग अंगा।
ता तैं होय सकल जुग भंगा ॥ १ ॥
गरू गारडु कोय[१] मिलावै।
मेरै तन की तपति बुझावै ॥ २ ॥
सतगुर सा समृथ नही कोई।
विषीया लहरि मिटावै सोई ॥ ३ ॥

---

८. (ख) सुत सैण न संगी, कोई आगै कोई लारै लंगी, (ग) बागवांन विण वाग विडांणा, किण संजोगे आय मिलांणा। जब संजोगे भया विजोगा, सुरति सवद का लहत न जोगा, (घ) कोई नही। ९. (ख) षेल गये पईसै का पाजी, (घ) के जीता के हार चल्याजी। १०. (ख, ग) एक मूल सकल विसतारा, या मैं ऊंच नीच कुण न्यारा, (घ) सकल संसारा। ११. (ख) मुझि, (ग) तेरी। १२. (ख) महा सून्य, (ग) सरोमिन।
(३२) १. (ख) वैग वुलावौ, (ग) मोहि मिलावौ" "वुझावौ।

जनहरिरांम सबद गुर दीया।
मनवा [2]उलटि आप वसि कीया ॥ ४ ॥

(३३)

गरू मेरै दीया सबद विहंगा।
पकरि लीया अैसैं मन पंगा ॥ टेर ॥

यौ मन भवंग वसै तन बंबी।
गवन करै कव [1]छोटीय लंबी ॥ १ ॥

एकन सरपै सब जुग डसीया।
हाथि न आवै सुर नर पसीया ॥ २ ॥

एक सरप मुष पंचे न्यारा।
तीन लोक फिर[2] करत विकारा ॥ ३ ॥

गरू का सबद हिरदै गहि लीजै।
मन सरपन कुं जांन न दीजै ॥ ४ ॥

जनहरिरांम विघन नही व्यापै।
अंतर अणभै राग अलापै ॥ ५ ॥

(३४)

है रे [1]सोई न्यारा जन जगती।
आठ पौंहर [2]हिरदै हरि भगती ॥ टेर ॥

अंतर[3] एक लीयां रहै सतव्रत,
असत न आषै बोल वचनती ॥ १ ॥

करत न को संकलप नही [4]विकलप,
सुष दुष देह न वंछै मनती ॥ २ ॥

---

२. (ग) मन विसहर ।

(३३) १. (घ) औछी'र । २. (ग) विच ।

(३४) १. (घ) कोई । २. (ख, ग) साधसंगति राता, (घ) परमानंद रती । ३. (ख, ग) निसदिन, (घ) अहनिस । ४. (ग) विषै न को विकलप नही वाकै ।

जोग न जिग जप तप नही तीरथ,
पाप न पिन लिपता नही छिपती ॥ ३ ॥
सुरति सबद का ध्यांन अहोनिस,
सास उसासा जाप अजपती ॥ ४ ॥
आतम[5] एको नांव अषंडत,
रोम रोम [6]आनंदमय मती ॥ ५ ॥
इला पिंगला पूरि पछिम दिस,
मन पवनां वासा सुन्य वसती ॥ ६ ॥
श्रवन नासिका नैनन कै मिंझ,
सहज भया संजम सिव सकती ॥ ७ ॥
जनहरिरांम लगी जांह[7] यारी,
निर बंधन द्वारा निरमुगती ॥ ८ ॥

(३५)

भजन विनां दुनीयां दूभरि भरि ।
हंसा जांनि[1] दुषी सरवर विन,
जुग जीवन सुष सागर घरि घरि ॥ टेर ॥
तीन लोक मध्य[2] सरग पीयाले,
षड़पंचम सुष नांही थिर थिर ॥ १ ॥
लष चौरासी जोनि जोनि मैं,
जनम जनम मरि[3] आवै फिर फिर ॥ २ ॥

---

५. (ग) अंतर । ६. (ग) परमानंदरती । ७. (ख) तांह, (ग, घ) तहां तारी ।

(३५) १. (ख, घ) क्युं न चुगत (गै) मोताहल, (ग) क्युं न लहत मोताहल । २. (ग, घ) मधि । ३. (ख, घ) फिर आवै मरिमरि, (ग) आय जावै मरि मरि ।

रसनां एक सिंवरि[4] आतम कुं,
और भरम [5]कुं न्यारा करि करि ॥ ३ ॥

हरि सुधरम हारैं कांय हासै,
या नरदेह नही उदरि दरि दरि ॥ ४ ॥

हरि भरपूर सकल[6] सुं न्यारा,
ध्यावैगा[7] सतगुर सिर धरि धरि ॥ ५ ॥

युं पय मैं ध्रित काढत मथि करि,
आतम[8] सासो सास उचरि चरि ॥ ६ ॥

बेला बंध एक बौह नामी,
सो[9] संगी साचा अवसरि सरि ॥ ७ ॥

नांव [10]न्याव षेवटीया मन करि,
भवसागर कुं पारि उतरि तरि ॥ ८ ॥

पांच पचीस तीन गुण[11] मांही,
आय गये औतार [12]मरे मरि ॥ ९ ॥

जनहरिरांम रांम[13] अभिनासी,
ताहि सिंवरि भाजैं भव डरि डरि ॥ १० ॥

---

४. (ख, घ) उचरि, (ग) रांम कुं सिंवरत । ५. (ग) सब । ६. (ग) देष नही न्यारौ, (घ) रांम सकल भरपूर भए नर । ७. (ख) पावैगा, (ग) सास सास सेती उचरि उचरि । ८. (ग) नर तन भीतरि पावैं हरि हरि । ९. (ख) करि, (ग) आतिम संगी ले अवसरि० । १०. (ख) नाव, (ग) चंगी न्याव षूब षेवटीया, (घ) जिहाज । ११. (ख) पांच तत तीनुं गुण, (ग) पांच तत गुण तीन कै, (घ) पांचू तत तीन गुण माया । १२. (ख) दस औतार भये तन परि परि, (ग) बौहो औतार भया तन धरि धरि । १३. (ख) एक ।

(३६)

सो साजन मोहि लागत प्यारौ।
है [1]मांही न्यारै कौ न्यारौ॥ टेर॥
हेक पलक[2] हिरदै नही [3]भूलुं,
सास सास सिवरन[4] सुष थारौ॥ १॥
आतम आय मिले [5]परमातम,
जनम मरन[6] दुष दूरि[7] निवारौ॥ २॥
तो विन आंन देव नही [8]देवा,
वेद पुरांन न कुल [9]आचारौ॥ ३॥
अैसौ [10]और न कोय परम पद,
पायौ घट मैं ब्रह्म[11] विचारौ॥ ४॥
तुं साहिब सुष सागर [12]सबका,
मैं नही जांणु पार [13]तम्हारौ॥ ५॥
जनहरिरांम सलूंणा साजन,
देषुं[14] दिल भीतरि दीदारौ॥ ६॥

---

(३६) १. (ग) घट मांहि रहत है न्यारौ। २. (ग) निसवासुर, (घ) हरि सिवर्न। ३. (ख, घ) विसरूं, (ग) छाडुं। ४. (ग) भरम करम कुं दूर विडारौ, (घ) मन मांहि सभारौ। ५. (ख, ग) अरस परस आतम सुं थारौ। ६. (घ) जनम। ७. (ग) मेटणहारौ, (घ) विडारौ। ८. (ख) सेवन, (घ) सेवा। ९. (ग) अगम अछेह वेह नही दंदा, सांम सरनि सब काज सुधारौ। १०. (ख, ग) ना कोई होय (और) परम सुष। ११. (ख) ग्यांन, (ग) उलटी सुरित सवद मैं धारौ। १२. (ग) कहीयै। १३. (ख, घ) अपारौ, (ग) मैं कुरसी बंध चाकर थारौ। १४. (ख, ग) दिल भीतरि पायौ। (पांउं) दीदारौ।

(३७)

लगनि लगी पीतम सुं प्यारे।
चाहरि भीतरि एक निरंतर,
माया भ्रम करि देषे न्यारे ॥ टेर ॥
नां पिंडत गुन वेद पुरांन न,
नां माया दुष सुष भोगीया रे ॥ १ ॥
मेरै एक रांम निज मिंत्रा,
जीवत मुगति का है जोगीया रे ॥ २ ॥
चलि पूरब मन सुरति पछिम दिस,
अगम निगम घर पंथ अपारे ॥ ३ ॥
पुंहचैगा कोई सूर संत जन,
एक मतै हुय[1] तत गहीया रे ॥ ४ ॥
निरालेप निरीकार निरंजन,
भव भंजन भव के निसतारे ॥ ५ ॥
जनहरिरांम सकल घट व्यापक,
नांव निरूपन कुं बलिहारे ॥ ६ ॥

(३८)

राग दरबारी कनड़ौ

हो पीया तम सुन घर का वासी।
मोहि मिलन[1] की प्यासी ॥ टेर ॥
पीया तेरी रहनि अपारा, मैं निरषुं[2] उरवारा,
लीजो बांह पसारा ॥ १ ॥
पीया निसदिन तोकुं ध्यांउं, उंन मुंन ताळी लांउं,
तो [3]विसरयां दुष पांउं ॥ २ ॥

---

(३७) १. (ख) अरस अरस आतम सुं यारे, (ग) आतिम अरस परस करियारे, (घ) अवगत गहीयारे।

(३८) १. (ख) मो मिलवा। २. (घ) वारू। ३. (ख) तोहि विनां।

पीया एक अनेसौ मेरै, आजक सिंझ[४] सवेरै,
हाजरि बंदी तेरै ॥ ३ ॥
जनहरिरांम पुकारी, सुणजो अरज[५] हमारी,
दरसन देह [६]मुरारी ॥ ४ ॥

(३९)

हो पीया तम मन मेरै मांही ।
धम एक विसरौ[१] नांही ॥ टेर ॥
पीया तीन लोक फिर जोई, तमसा [२]और न कोई,
मेरै[३] साजन सोई ॥ १ ॥
पीया [४]मगन भई मतवारी, निजर [५]न तो सुं टारी,
भूजि मरौ संसारी ॥ २ ॥
जनहरिरांम [६]सदाती, रहूं रांम रंग राती,
तो मिल आय न जाती ॥ ३ ॥

(४०)

राग विलावल

रांम भजौ नर वावरे, सब कौं[१] निसतारौ ।
जल पांहण [२]नही डूबही, आतम आधारौ ॥ टेर ॥
या जुग मांही[३] आय कै, विषीयां [४]सुं हेता ।
सो सत संगति[५] बाहिरौ, दुष भुगतै केता ॥ १ ॥

---

४. (घ) काल । ५. (ग) यार, (घ) अवगति हंदी यारी ।
६. (घ) दावा देह निवारी ।

(३९) १. (ख, घ) विसरूं, (ग) छिन एक विसरूं । २. (ख) घणी, (ग) सैंण । ३. (ख, ग) सिरपर । ४. (ख, ग) तो कारिण । ५. (ख, ग) कबू नही टारी । ६. (ग) पीयाती ।

(४०) १. (ख, ग) तेरौ । २. (घ) डूबै नही । ३. (ख) या जुग मैं नर, (ग) मिनष जमारौ पायकै । ४. (ग, घ) हरि सुं नही । ५. (ख, ग) एक न नांवै वाहिरौ, (घ) सो जम द्वारे जात है ।

कुछि[६] परमारथ नां कीयौ, तन[७] स्वारथ काजै।
रांम नांम कुं सिवरतां, भूंदू [८]मन भाजै ॥ २ ॥*
नांव[९] निरंजन ध्याइयै, अंजन कुं छाडौ।*
भीर परी [१०]गजराज मैं, आयौ हरि[११] आडौ ॥ ३ ॥
नांव विनां तिरबौ नही, भव सागर मांही।
जनहरीया गुर गम विनां, नर[१२] पुहचै नांही ॥ ४ ॥*

(४१)

अैसैं सोई जन जांणीयै, निरभै पद गावै।
आतम कै परचै लीयां, औरां[१] निरदावै ॥ टेर ॥
कांम क्रोध अर[२] लोभ मैं, सब ही जुग बंधे।
रांम [३]नांम सिवरत रहौ, भूलौ मत अंधे ॥ १ ॥
आसा तिसना अति नदी, ता वीच वसेरा।
संतन कुं डर को नही, बैठे निज बेरा ॥ २ ॥
मदन महा रस देह का, राषत [४]ही छीजै।
मन हसती आंकुस विनां, कैसैं वस्य कीजै ॥ ३ ॥

---

६. (ख, घ) निज, (ग) परमारथ जांनै नही। ७. (ख, ग, घ) अप। ८. (ख, ग) रांम भगति (कै कारणै) भावै नही, कुल आवै (अपना) लाजै, (घ) नर। ९. (घ) रांम। १०. (ख) टेर सुनी गजराज की, (घ) हरि भगति मैं। ११. (ख) पति, (घ) जब। १२. (ख) भ्रम भाजै, (घ) पद पावै। * (ग) में इनके स्थानपर निम्न हैं—

ध्यावौ आतिम राम कुं, पावौ विसरांमां।
एक पलक नही विसरौ, सारै सब कांमां ॥
पार अपंपर ता हरौ, पावै कुंण ग्यांनां।
जनहरीया निसदिन भजौ, एकै मन ध्यांनां ॥

(४१) १. (ख) दुनीयां, (ग) औरां छिटकावै। २. (ख) मद मोह, (ग, घ) मोह। ३. (ग) एक रांम। ४. (ग) राषुं तोई।

सुष दुष मांन अमांनता, तन सेती लागा।
हरिजन कै संसा नही, भै मन का भांगा ॥ ४ ॥
संपति देष न हरषीयै, विपत कहा सोगा।
ज्युं संपति ज्युं विपत है, जो होतब जोगा ॥ ५ ॥
सतगुर सबद विचारि कै, उचरै इक धारा।
जनहरीया आकार मैं, पाया निरकारा ॥ ६ ॥

(४२)

जो जेहै उंनमांन है, तो तेहै[1] जांनी।
जाकै [2]मन जैसी वसै, तैसी [3]दरसांनी ॥ टेर ॥
जन हंसा ज्युं जांणीयै, सुष[4] सरवर वासा।
मोताहल[5] हरि नांव विन, दूजी नही आसा ॥ १ ॥
जुग बुगला ज्युं जांणीयै, छीलर [6]सुं नेहा।
माया मछली षात है, पालत है देहा ॥ २ ॥
जन सूवा ज्युं जांणीयै, हिरदै हरि [7]धारै।
सीष सुनै नही और की, गुर ग्यांन [8]संभारै ॥ ३ ॥
जुग अलूवा ज्युं जांणीयै, मुष बांणि न मेलै।
ग्यांन भांन नही चाहीयै, अंधियारै षेलै ॥ ४ ॥
जन चात्रिग ज्युं जांणीयै, जल[9] चाहै वूठा।
ज्युं जन चाहै नांव कुं, औरन तैं रूठा ॥ ५ ॥

---

(४२) १. (ग) तन तैसैं। २. (ग) दिल। ३. (ख, ग) मुष वांणी।
४. (ख) सुन्य, (ग, घ) सुनि। ५. (घ) मन मोती। ६.
(ख) घर छीलर, (ग) तन छीलर। ७. (ख, ग) हरि नांव उचारै।
८. (ख) सतगुर का सत वचन सुनि, हिरदा विच धारै,
(ग) सीत पराई सीष सुणि, आपा निसतारै, (घ) विचारै।
९. (ख, ग, घ) घन।

जुग कउवा ज्युं जांणीयै, राचै[१०] कुल संगा ।
कीट करम [११]की चूण करि, सु धरम [१२]सुं भंगा ॥ ६ ॥
माया अपनी जांनि कै, सब ही [१३]जुग लागा ।
से जन [१४]रता नांव सुं, माया [१५]सुं भागा ॥ ७ ॥
जनहरीया तिह लोक मैं, माया [१६]भई प्यारी ।
जब चौथै पद घर कीया, तब ही[१७] तैं षारी ॥ ८ ॥

(४३)

राग अल्हइयौ विलावल

दुलहै विन फाग दुहेली ।
नैंन सुं नैंन वैंन सुं वैंनां, प्यारै पासि गहेली ॥ टेर ॥
सुरति संदेसा देत रैंन दिन, सुनि हो सैंन [१]सुजांनां ।
तज्य[२] कुल काज लाज लोकन की, मिलवा म्रुझि महमांनां ॥ १ ॥
नां [३]कोई देह न ग्रेह संजोगा, भई[४] अगम गति न्यारी ।
दिल दसवै घर दीया महोला, अलष[५] पुरष सुं यारी ॥ २ ॥

---

१०. (ग) चालै । ११. (ग) कुं चहत है । १२. (ग) नही अंगा । १३. (घ) सोई नर । १४. (ग) से रता रहमान सुं, (घ) लागा । १५. (घ) मन । १६. (ख, ग, घ) मन । १७. (ख, घ) तब तैं भई, (ग) सहजां भई न्यारी ।

(४३) १. (ग) सियाना । २. (ख) कुल मरजाद छाड मन भरकी, (ग) लोक लाज तोरत तिनकै ज्युं, धारत तोहि घियांनां । ३. (ख, ग) वाकै देह । ४. (ग) होय । ५. (ख) होय अलष सुं, (ग) ओय लगत है यारी ।

विन करताल डंक विन तूरा, पग विन पांतरि नाचै।
अषंड [6]मंहल मैं रास रच्यौ है, जांह मेरा मन राचै ॥ ३ ॥
सदा सुमंगल हरण सकल भ्रम, ब्रहमानंद विराजै।
जनहरिरांम सुरति कीया वासा, अधर[7] महल कै छाजे ॥ ४ ॥

(४४)

अवसिरि[1] आयौ यार असीनौ।
आज सु दिन भयौ भाग पूरबलै, पायौ परम रसीनौ ॥ टेर ॥
रहिसुं रांम सदा रंग राती, आंन भरमनां भागी।
अंतर तार कबु नही तूटै, लिव चेतन सुं लागी ॥ १ ॥
अहि निस[2] ध्यांन धरूं आतम कौ, एकै तन मन [3]होई।
ऊ विन[4] मात पिता[5] नही जायौ, सांम हमारै सोई ॥ २ ॥
पांच पचीस मिली निज मन सुं, भया[6] अचंभा भारी।
उलटि नाद बूंद वरषांना, गिगन भरै पिनहारी ॥ ३ ॥
इला पिंगला पासि सहेली, सुषमिण सुं घर वासा।
रांम[7] निरंजन रमै अकेला, सुनि महल मैं वासा ॥ ४ ॥
निरभै राज भया पतिनीका, अधर अमर वर कीन्हा।
जनहरिरांम मिले महरंम[8] सुं, अरस परस लिव लीन्हा ॥ ५ ॥

---

६. (ख, ग, घ) मंडल। ७. (ख, ग) एक (जहां) निरंजन राजै।

(४४) १. (ख) घरि, (घ) सर। २. (ख, ग) उंनमुंन। ३. (ग) और न बंछू कोई। ४. (घ) ना कुल। ५. (ख) उदर नही आयौ, (ग) घट घट मांहि उदर नही आया। ६. (ख, ग) एक। ७. (ग) अरध उरध मै। ८. (ग) आतिम।

(४५)

राग गुंड विलावल

लीजै[1] रे भईया रांम नांम।
जनम मरन याही सैं कांम ॥ टेर ॥
या तैं[2] सकल सरैं तुझि काज।
भजीयै रांम नांम[3] माहराज ॥ १ ॥*
रांम नांम तुल्य और न कोय।
निगम[4] पुकारि कहत हैं सोय ॥ २ ॥
संसा भरम[5] हमारै नांहि।
रांम नांम पाया घट मांहि ॥ ३ ॥
जनहरिरांम रांम भजि लोय।
या तैं मोष मुगति फल होय ॥ ४ ॥

(४६)

साध[1] सोई जाकै सहज समाधि।
हठ पचि मरै न और न उपाधि ॥ टेर ॥
सहजां मन पवनां का मेल।
सहजां चलै सिषर[2] कुं वेल ॥ १ ॥
सहज भया जालंधर बंध।
तोड़्या[3] भरम करम का फंद ॥ २ ॥

---

(४५) १. (ख, ग, घ) लीजो। २. (ख) सुं। ३. (ख) छोडि कुल लाज, (घ) तजौ कुल लाज। * 'ग' में विशेष है—सतगुर एक बताई रौंस, या विन और भजुं तो सौंस। ४. (ख, ग) वेद पुरांन। ५. (ख, ग) सोग।

(४६) १. (ख, ग) है सोई साधु इ (अ) गम इ (अ) ग्याधि, सहजां सिंवरन सहज समाधि। २. (ख, ग) गिगन। ३. (ग) मेट्या।

सहजां[४] सब्रद चड़े आकास।
सहजां पाया परम निवास ॥ ३ ॥
सहज[५] कीया तीरथ असनांन।
सहजां पाया ब्रह्म गयांन ॥ ४ ॥*
सहजां आसण जप तप जोग।
सहजां सिव सकती का भोग ॥ ५ ॥
सहजां महल[६] त्रिवेणी [७]वास।
जीव सीव [८]जांह करत विलास ॥ ६ ॥
जनहरिरांम सहज सुष पाय।
आंवण[९] जांवण आस मिटाय ॥ ७ ॥

(४७)

राग धनाश्री

मंगन कुं दांन दिवौ रांम राय ॥ टेर ॥
मैं मंगन जन द्वार तम्हारै, राषौ हरि सरनाय ॥ १ ॥
मैं भषीयारी भया बापरा, तुं दातार [१]कहाय ॥ २ ॥
दीजै दांन अभै[२] मो दाता, ऊंणत रहै [३]न काय ॥ ३ ॥
आठ पौहर ओलग हरि आगै, करिहुं चित[४] लगाय ॥ ४ ॥

---

४. (ख) सहजां षूला मेर कपाट, सहज वसाया नगर वैराट, (ग) सहजां मेर डंड की वाट, सहज वसाया मुनि वैराट।
५. (घ) सहजां तप। * (ग) में यह नहीं है, निम्न है—

सहजां गंग जमन की सीर, हंस जां हंस पीयै तहा नीर।

(ख, ग) सहजां अनहद वाजा वाय, सहज उतान पात वंध लाय।
६. (ख, ग) तट। ७. (ग) नाय। ८. (ख) तहां, (ग, घ) मिल। ९. (ग) दोय दुष आवा गिवन, (घ) दोऊं जांमण मरण।

(४७) १. (ग) तमसा धणी न काय, (घ) सदाय। २. (ग) इसो। ३. (ग) कबूहन। ४. (ख) हित चित लाय, (ग) पेम।

रीझैगा अमर[5] गोसांई, द्यैगा पटा लिषाय ॥ ५ ॥
षातां कबू न षूटै रोजी, दिन दिन [6]दूणी थाय ॥ ६ ॥
जनहरिरांम भगति बगसीजै, मुगति[7] न मांगुं काय ॥ ७ ॥

(४८)

इसे हैं रांम गरीब नवाज ॥ टेर ॥
भीर [1]परी पहलाद उबारे, हरणाकस हिणताज ॥ १ ॥
मा उपदेस दीयौ धू सेती, अटल बसायौ[2] राज ॥ २ ॥
टेर सुनत वेग हरि [3]आये, तारि लीयौ गजराज ॥ ३ ॥
जिन द्रोपदां कौ चीर वधास्यो, पंच भई भरताज ॥ ४ ॥
देवल फोरि कीयौ जिन सांमौ, भगत नांमदे काज ॥ ५ ॥
दास कबीर घरे जिन[4] बाळिद, आंनि उतारे नाज ॥ ६ ॥
मीरां जहर कीयौ चरणोदक, राषि[5] भरोसौ राज ॥ ७ ॥*
सब संतन के कारिज सारे, आप [6]विड़द की लाज ॥ ८ ॥
जनहरिरांम सदा[7] सिधकांमी, रांम सिंवरि [8]माहराज ॥ ९ ॥

---

५. (ख, ग) आतम गुर मैरा। ६. (ग, घ) इधकी।
७. (ख) और।

(४८) १. (ख, ग) पतित पावन। २. (ख, ग) कीयौ अवचल। ३. (ख) ध्यायै। ४. (घ) लदि। ५. (ख) सरणी तकी महाराज, (ग) मनकी करि करणाज। * (ग) में निम्न अधिक है—परसरांम कुं भीर परी जब, तबही रथ तह ताज। ६. (घ) भगति। ७. (ख) कहै क्या दाषुं, (ग) कहा कहि दाषै। ८. (ख) तम हरता करताज, (ग) तम दाता भरताज।

(४९)

भजन विन अहळ जमारौ [1]जाय ॥ टेर ॥
रातौ[2] रहै सदा विष रस मैं, पेम भगति नही भाय ॥ १ ॥
लोक लाज काज कुल [3]मांही, हरि पूज्यौ न सुहाय ॥ २ ॥
औरां[4] भरम करम सुं लागै, निसचै नांव न पाय ॥ ३ ॥
जनहरिरांम भगति[5] विन भूंदू, कहा [6]कमायौ आय ॥ ४ ॥

(५०)

दिवांने रांम [1]भजौं दिन राति ॥ टेर ॥ *
हरिजन[2] सा सजन नही कोई, आई टाळत[3] घात ॥ १ ॥
रांम सरीषा[4] नांव न कलि मैं, गायां पातिग जात ॥ २ ॥
पूरी एक विसायत [5]पाई, षूटै कबुयन षात ॥ ३ ॥
जनहरिरांम नांव निध [6]घटमैं, रिध सिध निजर न आत ॥ ४ ॥

---

(४९) १. (ग) थाय । २. (ख) विषीया मांहि वौहत मन गाड्यौ, (ग) विषीया हेत प्रीत सुं लागौ । ३. (ख, घ) सेती, (ग) कै भ्रम सेती । ४. (ख, ग) करि करि कूड़ चले (किता) नर कलि मै, साच पलै नही पाय । * (ख, ग) में निम्न पाठ अधिक है—
औंर भरम लागै नर डोलै, (ख) आप न सुधि बुधि काय । (ग) तन मन की सुधि नाय । (ख, ग) पर उपगार न कीयौ कबहू, स्वारथ आवै जाय । ५. (ग) मिटै नही मिमता, (घ) भगति विन जग मै । ६. (ख) काल ग्रासै आय, (ग) उर संतोष न आय, (घ) कहा कीयौ नर आय ।

(५०) १. (ग) सिंवरि । * (ख, ग) में अधिक है—
वाकै (जाकै) मात पिता नही बंधु, रूप वरण नही जाति ।
भाव भगति सत संगति करीयै, पर हरीयै परतात्ति ।
२. (ग) आतिम । ३. (ख) टालत जमकी, (ग) टालै दुरिजन, (घ) जमकी टालै । ४. (ख) नांमसा, (ग) ना कोई कलि मैं राम सरीषा, पातिग जावै गात । ५. (ख) पाई एक विसायत घट मैं, (ग) नांवन सी कोई नही विसायत, षूटत है नही षात । ६. (ख, घ) पाई, (ग) पाए ।

(५१)

राग पछ्यूंरी धनाश्री

सिवरौ रे सिवरौ संतो रांम निरंजन, सतगुर कहैं समझाई लो।
अंजन देष मतै कोई राचौ, या जुग मांहि ठगाई लो ॥ टेर ॥
किनीयेक पुन पाई नरदेहा, इन और ओळषाई लो।
आतम भूल मतै मन भोळा, ऐसौ दाव न आई लो ॥ १ ॥
सासो सास घटैं निसदिनका, ज्युं वेळू जल तेहा लो।
तन जोबन धन मांन गुमांनां, सब ही अलप संनेहा लो ॥ २ ॥
काळा पलटि भया नर पंडर, करता षबरि न पाई लो।
करि करि कूड़ जके नर कळीया, नायक[1] जनम गमाई लो ॥ ३ ॥
अंधा आपणपौ नही चेतैं, गुळ साटै षळि षाई लो।
जनहरिरांम रांम विन प्रीता, सेई रीता जाई लो ॥ ४ ॥

(५२)

राग आसा

अब नर चेतौ रे [1]कहुं भाई। तैं [2]कुं वार वार समझाई ॥ टेर ॥
यौ संसार [3]भयौ भै सागर, ऊंडौ अथग अपारा।
वाकै[4] वीच विषम[5] कैं लहरयां, के बहिग्या के पारा ॥ १ ॥
यौ मन जांणि भयौ बाजीगर, पांच[6] पचीस पसारा।
सुरति[7] निरत की[8] रामति मांडी, के जीता के हारा ॥ २ ॥

---

(५१) १. (ग) अहळौ।
(५२) १. (ग) मन। २. (ख, घ) तौ कुं, (ग) भिन भिन करि सम०। ३. (ख, घ) भयौ भव सागर, (ग) विषम जल भरीयौ। ४. (ख, ग) आवैं बांहि, (घ) बीच वहै। ५. (ग) लोभकी, (घ) विषियन की। ६. (ग) तीन लोक विसतारा, (घ) बाजी बौह विसतारा। ७. (ग) पांच पचीसुं। ८. (ख) सुं षेलण लागा।

मोह माया की वावरि मंडी, भरम करम का फंदा।
जाया[९] जीव'स[१०] काळ अहेरै, के छूटा के बंधा ॥ ३ ॥
तुं[११] नर कौंण पसाय नचीतौ, लारै[१२] जम सा जोधा।
जनहरिरांम रांम भजि[१३] लीजै, टाळै काळ[१४] करोधा ॥ ४ ॥

(५३)

आप उलटि पांडे आपौ जोई।
इन[१] आचार तिरौ नही कोई ॥ टेर ॥
जल ही[२] की मात पिता सुत भाई।
जल ही की धीव भया जल जुंवाई ॥ १ ॥
जल ही का ऊंच भया जल नींचा।
जल ही का पिंड[३] लीया जल सींचा ॥ २ ॥
जल ही की गगरी जल भरि[४] लाई।
छांटौ[५] छोत कहां सुं[६] आई ॥ ३ ॥
जल ही का गोबर जल ही की गाई।
चौका दे कीन्ही चतुराई ॥ ४ ॥
तुं तन[७] बाहरि करत आचारा।
पाया ब्रहम न मांहि[८] विचारा ॥ ५ ॥

---

९. (ग) लष चौरासी काल। १०. (ख) से काल, (घ) सकल। ११. (ख, ग) आपा उलटि (आपकुं जांणै) गहै तन मन कुं, वाकी उतिम बोधा। १२. (घ) जम सारीषा। १३. (ख, ग) माई। १४. (ख, ग) तजीयै काम'र क्रोधा, (घ) तजीयै काल।

(५३) १. (ख) यु विन जांनि, (ग) युं विन और, (घ) विनां विचार। २. (ग) जलका। ३. (घ) भया। ४. (घ) आई। ५. (ख) इनमें, (ग) वाकी। ६. (ख) तैं आई, (ग) जाई, (घ) लाई। ७. (ग) जिस कारण तूं। ८. (ग) खोई सुचि नही तन थारा।

तुं तन सुचि कीयां [9]सुचि होई।
तौ पांडे और असुचि नही कोई ॥ ६ ॥
जल [10]मल रोम हाड तुक मंसा।
त्रिमल वीच विराज्या हंसा ॥ ७ ॥
जनहरिरांम रांम भजि भाई।
वाकै[11] सुचि असुचि नही काई ॥ ८ ॥

(५४)

पांडे कुंन[1] करते आचारा।
आतम एको[2] वरण सकल मैं, इनका देह[3] विचारा ॥ टेर ॥
तम तौ ऊंच और[4] कहैं नींचा, कौंण पटंतर जांणी।
एक रोम नष चष [5]नर देहा, या[6] दुतीया क्युं आंणी ॥ १ ॥
ऊंचै मुष दस[7] मास उदर मैं, जब जल मल किण धोया॥
अब चौका चतुराई [8]ठांनै, दिन आचार [9]संजोया ॥ २ ॥
आदि अंत का षोज न दरसै, आचारी हुय बैठा ॥
लष चौरासी जोनि जोनि की, अैठ न आवै पैठा ॥ ३ ॥
लोक लाज कुल तज्य मरजादा, भजि एकों अबिनासी ॥
जनहरिरांम [10]लहैं सुष जबही, आपा[11] अंतर भ्यासी ॥ ४ ॥

---

९. (ख) जल ही तैं सुचि कीयां सुचि होई, (ग) जो तुं सुचि कीयां सुचि होई, तौ तन जल न्हाहो मत कोई, (घ) पांडे सुचि कीयां सुचि होई, तौ सब सुचि असुचि नही कोई। १०. (ख) हीका, (ग) का। ११. (ग) जामै।

(५४) १. (ख) कुंण कहीयै, (ग) किम करते। २. (घ) एक सकल घट भीतर। ३. (ग) पाया नांहि। ४. (ग) हम्हां। ५. (ख, ग, घ) भई। ६. (ख, ग, घ,) तैं। ७. (घ) नव। ८. (ख) जांणै, (ग) चतुराई आंनै। ९. (ग) चपोया। १०. (ग) कहै। ११. (ग) मनकी मैं तैं जासी, (घ) अंतर माह्य प्रकासी।

(५५)

पांडे देष पाषि मत भूलौ। आयौ औसर डूलौ ॥ टेर ॥
एको पिंड एक है पांणी, एक जोनि मैं आया।
या मैं ऊंच कौंण है नींचा, सब अवगति की माया ॥ १ ॥
कुल आचार करी कठणाई, ग्यांन विचार न पाया।
वेद पुरांन पढे पढि पिंडत, आपा जुग भर माया ॥ २ ॥
च्यारे वरण च्यार आसरमां, या मैं आतम एको।
जनहरिरांम रांम [1]सिवरीजै, या संतन की टेको ॥ ३ ॥

(५६)

काजी मनका मरम न पाया। ता तैं सूंनत कीन्ही काया ॥ टेर ॥
रोजा तीस दिनुं का राषै, सारै पंच निवाजा।
मन अपना कुं [1]मारै नाही, मारै मुरगी ताजा ॥ १ ॥
अपनै काज करै गउ विसमल, जीव सरै पुंहचावै।
काजी विसत हाथि है तेरै, तौ कुल दोजष क्युं जावै ॥ २ ॥
जोरा करै जीव संतावै, मनकै[2] संक्या नांही।
काजी गुना न बगसै करता, जब जम पकरै बांही ॥ ३ ॥
तम तौ महरवांन हौ [3]मवले, गला गऊ क्युं काटैं।
काजी जीव दया नही तैरै, भव अगलै नुं षाटैं ॥ ४ ॥
काजी सरै हक है तेरै, तौ अनहक जीव क्युं मारैं।
कुछी एक दीन तणौ डर दुनीयां, सिर अपनै सुं टारैं ॥ ५ ॥
आपा[4] असुर सरौ नही तेरै, वे फरवांणी हालैं।
जौ तुं काजी हक पिछाणै, घात न किस कुं घालैं ॥ ६ ॥

---

(५५) १. (ख, ग) भजि लीजै।
(५६) १. (ख, घ) मारत, (ग) आपा तन कुं षोजै। २. (ग) किसका डर। ३. (ख, ग) मुसलमांन जो महरवांन हो। ४. (ख, ग) अंधा।

मुई मिटीया [५]मुरदार कहत हैं, हाथे हक हलाला।
काजी धणी'र और धलाली, सब स्वारथ का चाला ॥ ७ ॥
काजी कलमां पढै कुरांनां, ना है मका मदीना।
जिस कै काज भरैं तुं बांगां, सो घट मांहि न चीना ॥ ८ ॥
कुंन सा मुसलमांन कहीजै, कुंन सा कहीयै हींदू।
हींदू तुरक एक हैं भाई, मैं दोय देष न नींदू ॥ ९ ॥
हींदू वेद पुरांनां भरिम्या, मुसलमांन कतेबां।
जनहरिरांम संत क्युं भरमैं, लागा[६] रांम रकेबां ॥१०॥

(५७)

राग गवड़ी

संतो [१]दूने राह हरांमी। षूंन करै विण षांमी ॥ टेर ॥
हींदू घाव[२] करै अजीया सिर, हरि सुं वेफरवांणी।
षावैं[३] स्वाद करै मुष[४] सेती, जीव दया नही जांणी ॥ १ ॥*
हींदू[५] तरपण करै गऊ कौ, पुंन दे पाप नसाई।
धन[६] मारै धाड़ौ करि ल्यावै, धरम कहां गयौ [७]भाई ॥ २ ॥
सहजे जीव जिंद कुं छाडै, ता कुं[८] कहत हरांमां।
काजी करद गऊ सिर [९]सारै, विनां दोस[१०] वेकांमां ॥ ३ ॥

---

५. (ख, ग) कुं कहै हरांमां। ६. (ग) जाकै।
(५७) १. (घ) संतां दोनु। २. (ख) चकर, (घ) घात। ३. (घ) मुषसुं। ४. (ख) अपने मुष, (घ) मन।
* (ग) विणस्यां तन मन होय हसावां, सो सारै जुग दीठी।
हाथि षड्ग अज्या सिर वाहै, मारि मुषां कहै मीठी ॥
५. (ख, ग) हींदू गाय विपर कै तांई, (घ) पहली। ६. (ख, ग) घोड़ौ धाड़ि उंन्ही के लारै (री), (घ) पीछै धन। ७. (ख) आप न करणा आई, (ग, घ) दुष्ट दया नही आई। ८. (ख) वाकुं, (ग) काजी। ९. (ग) हाथि करद करै गऊ विसमल। १०. (ख) षूंन, (ग) वैवै नांहि विरांमां, (घ) दोस विसरांमां।

मुई हरांम कहै हक मारी, पसुवौ करत पुकारा।
काजी[११] जाब कौंण सा देसी, सांई के धरबारा ॥ ४ ॥
मौहमंद पीर जिबै गउ कीन्ही, वा[१२] फिर मारि जीवाई।
होवन हार मिटै नही जीवका, तूं सिर ल्यै क्युं भाई ॥ ५ ॥
मुई मटीया मुरदार कहत है, मारी हक[१३] निवाला।
देषा देष दुनी करि[१४] भूली, काजी कौंण हवाला ॥ ६ ॥
हींदू कै पण जांणि गऊ कौ, सूवर कौ[१५] तुरकांणै।
दोउं मार भषै मुष मांसां, घटि वधि कौंण वषांणै ॥ ७ ॥
विषै करम कुं सब कोई[१६] आघा, हरिभ्रम सेती पाछा।
जनहरिरांम रांम रस पीजै, छाडि सूवर गऊ वाछा ॥ ८ ॥

(५८)

संतो देषि पाषि[१] पग धरीयै। अंध कूंप नही परीयै ॥ टेर ॥
यौ संसार भया[२] अंध कूपी, पांच विषै पिनहारी।
तिसना[३] वरत कांम का चड़सा, सींचत[४] है मंन मारी ॥ १ ॥
माया मोह वण्या[५] को सींटा, कूड़ कुबधि की क्यारी।
नैपै दुष सुष भया [६]अनंता, भुगतैं नर[७] अर नारी ॥ २ ॥
तीन लोक अर भवन चतर दस, जनम जनम मरि [८]जासी।
जनहरिरांम रहैगा[९] सोई, भजै रांम [१०]अभिनासी ॥ ३ ॥

---

११. (ख, ग) काफर। १२. (ख, ग) सो (ई)। १३. (ख, ग) होय हलाला। १४. (ख, ग) दुनीयां देष भोलावै भूली। १५. (ख, ग, घ) सो सुवर। १६. (ख) कांम करम कुं सब जुग आघा।

(५८) १. (ग) देष। २. (ग) अंधमुष कुवा। ३. (ख, ग) आसा। ४. (ग) मनसा सींचण हारी। ५. (ख, ग) लग्या। ६. (घ) अनेका। ७. (ग) जीव विकारी, (घ) भुगतत नर। ८. (ख, ग) जाही। ९. (ख, ग) भगति विन किन सुं। १०. (ख, ग) काळ टळै नही काही।

(५९)

संतो है हक मरणा सब कुं ।
जो कुछि कीया जाहि नर करणा, वैग सिवरणा रब कुं ।। टेर ।।
धंधै मांहि भयौ नर अंधौ, मनवौ[1] माया सेती ।
एकै रांम नांम विन [2]तेरै, मुषा पड़ेगी रेती ।। १ ।।
घूंघा गोळी ज्युं धन गहला, षिण षिण संचै[3] घालै ।
जब तै जीव[4] पकड़ि ले जावै, तन धन साथि[5] न हालै ।। २ ।।
वेद पुरांन पढे पढि पिंडत, षंडत करै न कोई ।
अछर एक अषंड विन [6]साधो, जावै दोजष सोई ।। ३ ।।
बालाती[7] तरणा भयौ वूढौ, तौ ई न [8]आपौ चेती ।
जनहरिरांम बीज विन वाह्यां, कहा निपावै षेती ।। ४ ।।

(६०)

संतौ[1] अैसैं लोक निपूती ।
अपनौ सांई याद न आंनै, औरां जांनि सपूंती ।। टेर ।।
घर घर देवसथांन थापना, नर नारी मिल पूजैं ।
आप सुवारथ करैं ईछनां, परमारथ सुं दूजैं ।। १ ।।
गहली दुनीयां ग्यांन विहूंणी, गोगा पाबु [2]गावैं ।
पंच पीर पाषंड सुं राती, रांम भगति नही भावै ।। २ ।।

---

(५९) १. (ग) निसदिन । २. (ख, ग) आतम एकै (एक न हरि कै) नांव विहूणो । ३. (ग) ऊंडा गाडै । ४. (ख, ग) काल । ५. (ग) दोयु छाडै । ६. (ख, ग) विन दूजा । ७. (ख, ग, घ) बालापण । ८. (ग) आपनपौ नही ।

(६०) १. (ख, ग) संतो अैसी दुनीयां झूठी, अपनौ सांई याद न आवै (नै) औरां कुं कहै तूठी । २. (घ) ध्यावै ।

चांवड सेती[3] भैंसा चाहै, भलौ आपणौ [4]चाहै।
जुग मैं जीव दया विन [5]देष्यां, सांई कै नही [6]राहै॥ ३॥
आंन देव कुं जाति [7]कबूलै, पिता पूत कै नांई।
जुग मैं जीव सकल जिन [8]सिरज्या, सो नही सूझै सांई॥ ४॥
मूंवै मड़ै कौ दिहसौ राषै, चेतन सेती चोरी।
षालिक छोडि षलक सुं लागा, धोकै गौरा [9]होरी॥ ५॥
आंन देव का आषा पूछै, आप न देषै मांही।
या विन और न आवै[10] आडौ, जब जम पकरै [11]बांही॥ ६॥
लाडौ लाडी जाय लडांवण, रात्युं ओलग सारै।
जनहरिरांम फिरै मन[12] फीटी, ध्यांन न हरि का धारै॥ ७॥

(६१)

संतो अैसा जुग मैं ष्यालै।
ऊंच नींच भेला हुय बैसै, एकै न्यालै प्यालै॥ टेर॥
महमाई कौ पंथ हलावै, कूड़ी कथणी भाषैं।
आयां सुं[1] आघा हुय मिलीया, काष कतरणी राषैं॥ १॥
थापै थात पात मुष पहली, छांनै कवली [2]षावैं।
बेला बांधरि करैं कमाई, फल दोजष रा [3]पावैं॥ २॥

---

३. (घ) आगै। ४. (घ) भावै। ५. (ख, ग) दुसटी जीव दया नही देषै, (घ) झूठे तनका जतन करत है। ६. (ख) पंड पाप मैं नाहै, (ग) कुंड नारगी नाहै, (घ) जीव दया नही आवै। ७. (घ) करै ईछना। ८. (ख, ग) कीया। ९. (ग) आंधी दुनीयां आषा पूछै, भोपा भोपी तांई। १०. (ख, ग) अंतवेर कोई नही आडो, (घ) आवै और नही कोई आडौ। ११. (ग) काळ पकड़ि ले जांई। १२. (ख, ग) वा।

(६१) १. (ख, ग) तन सेती। २. (ख) चेतैं। ३. (ख) हरिसुं नांही हेतैं, (ग) दोऊं दोजष जावै।

साध थूल रौ विवरौ राषैं, कूंडै वैसैं चोरी।
जनहरिरांम जिकां जीवां नुं, मुगति [4]कठा सुं मोरी ॥ ३ ॥

(६२)

संतो अैसा नर [1]वटफारा।
अपनौ[2] निज मंतर नही जांणै, और ऊथलै [3]झारा ॥ टेर ॥

जंतर मंतर टांणा टूंणा, कांमण टूंमण जांणैं।
वीर मूंठ विद्या बौहतेरी, आतम देव[4] अजांणैं ॥ १ ॥

भोपा हुय करि आषा देषैं, नित की गौंहळी [5]देवैं।
आंन देव कौ दोस [6]वतावैं, आपा ब्रहम न वेवैं ॥ २ ॥

सीष पाषि मंतर डाकिण कौ, साध भया नही कोई।
गुर विन ग्यांन गौडीया वाजी, हाथि पलै नही [7]होई ॥ ३ ॥

रसनां निसदिन फेरत[8] पीछी, रांम नांम कौ [9]झाड़ौ।
जनहरिरांम गरू[10] झाड़ीगर, भरम भूत कुं [11]ताड़ौ ॥ ४ ॥

---

४. (ख) न सुझे मोरी, (ग, घ) मुगति न पावै मोरी।

(६२) १. (ख) वटफाड़ा, (ग, घ) जुग अंधारा। २. (ख) निज मंतर हिरदै नही आंणै, (ग) आपनपौ मंतर, (घ) आपनपौ सांई नही सिंवरै। ३. (ख) झाड़ा, (ग) और न का बंधारा, (घ) औरां उथलै। ४. (ग) एक, (ग) नाह पछांणै। ५. (घ) पूजा पाती लेवै। ६. (घ) दाषवै। ७. (ख) साच न उपजै सोई। ८. (ग) झाड़ौ देकर। ९. (ख) हीलौ, (ग) भूत और का कीलै। १०. (क) जांणि जब रीता। ११. (ख) कीलौ, (ग) मन मरजाद न मिलै।

(६३)

संतो यु तौ भगति न होई ।
इंद्री[1] हठ निग्रह करि मूवा , पार न पुंहता सोई ॥ टेर ॥
नाड़ी निरष भया वैदंगर , अनंत[2] ओषदी कीन्हा ।
सारी धात रसांयन करि करि , आतम[3] एक न चीन्हा ॥ १ ॥
गावण वावण तांना तूंनी , करि करि लोक रीझावै ।
आप छतीसुं राग[4] अलापै , धुनि अधिकेरी ल्यावै ॥ २ ॥
वेद पाठ बौह करत विचारा , ग्यांन गरथ भर पूरा ।
उडत गडत राषत थिर देहा , साध सवी सिध[5] सूरा ॥ ३ ॥
जोतिग सीष जोतिगी हुवा , अगम अगोचर आषै ।
औरां कुं ग्रह गोचर लावै , आप लिव[6]न की राषै ॥ ४ ॥
तप तीरथ व्रत मरत कलापा , करि मत भरमौ भाई ।
जनहरिरांम रांम भजि [7]निहचै , नही तौं[8] परलै जाई ॥ ५ ॥

(६४)

संतो[1] संतन का मत एहा ।
अनहद तार गिगन[2] धुनि बाजै , सुरति सबद का नेहा ॥ टेर ॥
सूरौ एक मतै रहै साचै , त्यागै तन की[3] आसा ।
ग्यांन षड़ग ले लड़ै पंच सुं , पकड़ैं निज[4] मन पासा ॥ १ ॥

---

(६३) १. (ग) केता । २. (ख) आंन, (ग) औषद बूंटी पाई । ३. (ग) रोगी आंन जीवाई । ४. (ग, घ) मुष तैं राग छतीस । ५. (ग) लरत जरत तन घरत सरूपा,
बोल वचन का सूरा ।

६. (घ) लैण । ७. (ग) निरभै । ८. (ग) या विन ।

(६४) १. (ख) संतो हरिजन, (ग) साधो संतन । २. (ग) अषंड । ३. (ख, ग, घ) मन । ४. (ख) पकड़ै निरवल, (ग) घारै निरवल, (घ) पकड़ अभंगी ।

देषौ प्रीत रीत[५] सतीयन की, जीवत जिंद जलावै ।
म्रितग देह[६] कला नही वाकै, ता[७]सुं मोह मिलावै ॥ २ ॥
लागी[८] निसचै नांव निरंतर, भरम करम भव भागा ।
जनहरिरांम आनंद भयौ घरमैं, उर उपज्या अनुरागा ॥ ३ ॥

(६५)

संतो हरिजन अैसा जांणी ।
लोक लाज कुल कांणि[१] न राषै, सिर परि षेल[२] मंडांणी ॥ टेर ॥
निसदिन रांम रिदै[३] नही भूलै, भाव भगति[४] भर पूरा ।
ग्यांन ध्यांन तन मन[५] गलतांनां, बोल वचन का[६] सूरा ॥ १ ॥
त्रिगुन रूप रहै आनंद[७] मैं, कलह कलपना भांनै ।
आसा छाडि रहै निर आसा, डंभ वडाई[८] नांनै ॥ २ ॥
राग दोष मैं तैं नही मनमैं, मांन गुमांना[९] भेटै ।
तीन ताप तिरगुन सुं न्यारा, चौथै पद कुं भेटै ॥ ३ ॥
दुरबल दीन दयानिध[१०] दाता, दंद वाद कुछि नांही ।
जनहरिरांम तिरै सोई तारै, इन[११] भव सागर मांही ॥ ४ ॥

---

५. (ग) अैसी प्रीत जांणि । ६. (ख) रूप । ७. (ख, ग) वासु । ८. (ख, ग) में निम्न रूपसे है—

भरम करम मैं (तैं) सब जुग भूला, देषि पाष भया अंधा ।
जनहरिरांम परम पद परसै (पाया), बंध छाडि निर बंधा ॥

(६५) १. (ग) निवारै । २. (ख, ग) षेलै डांणी । ३. (ख) नांम । ४. (ख, ग) हिरदै दिढ करि (भीतरि) राषै । ५. (ख, ग) मन गहै गरीबी, (घ) सेतो । ६. (ख) सत भाषै, (ग) असत कबु नही भाषै । ७. (ग) आनंद रूप सदा दिल मांही । ८. (ग) दंभ न पूजा ठांनै । ९. (ग) वडाई । १०. (ख) दयानिध सूरा, (ग) वचन का पूरा । ११. (घ) या ।

(६६)

संतो माया सब कुं लूटै।
है जुग मैं असा जन कोई, रांम नांम कहि छूटै ॥ टेर॥
काया कोट दसुं दरवाजा, ताक भरम का भारी।
कांम करम की भोगळ मारी, षसि षसि ग्या संसारी ॥ १ ॥
मांटी[1] मोह मार कौ सब मैं, मन मेवासी राजा।
धौड़ै मांहि थकौ गढ बाहिर, कोथ न राषै साजा ॥ २ ॥
आस पासि माया कौ घेरौ, विच हैं जीवका वासा।
पांच पचीस मोरचा लागा, वंचैगा[2] कोई दासा ॥ ३ ॥
जौंरै[3] आय जीव वस्य कीया, देंस दुहाई फेरी।
जनहरिरांम कहै[4] पल मांही, कोट भया ढिग ढेरी ॥ ४ ॥

(६७)

संतो असा रे कोई सूरै। काया गढ [1]कुं चूरै ॥ टेर॥
छूटा सार[2] सब्द का गोळा, मुही मोरचा भागा।
ग्यांन ध्यांन का हाथि षड़ग ले, मन सुं लड़िवा लागा ॥ १ ॥
साथी सबल मारि सांसै कुं, पीछै मोह[3] पछाड़्या।
मांन गुमांन बालि मुह आगै, कुड़ कपट कुं [4]साड़्या ॥ २ ॥
नांव[5] कीया गढ कै बिच डेरा, अनहद तूर[6] बजाया।
एकै घर मैं राम छतीस सुं, आनंद मंगल[7] गाया ॥ ३ ॥

---

(६६) १. (ख) आगै, (घ) बलवंत। २. (ख) मंडै कोई एक। ३. (ख) जौंरे जीव पकड़ि, (घ) जवरै। ४. (ख, घ) एक, (ग) में यह पद नहीं है।

(६७) १. (ख) कोट करम का। २. (ख) एक। ३. (ख) लालच लोभ, (घ) मन मोहादिक पाड़्या। ४. (ख) झाड़्या, (घ) कांम क्रोध कुं ताड़्या। ५. (ख) यंदर वीच कीया जब डेरा, नांव निसाव। ६. (घ) नाद। ७. (ख) क्रिया कंठ सुर।

जनहरिरांम वैस थिल छाजे, अटल[८] अमर पद पाया।
नांव निरप की फेर दुहाई, चहुं दिस[९] राज जमाया॥ ४॥

(६८)

मन रे मनही करि आसांनां।
देष पाषि जांवै जुग रीता, आपा विन दरसांनां॥ टेर॥
मन संकलप विकलप है[१] मनही, मन जाग्रत मन सूता।
मन ही त्याग चलै बौह माया, मन ही लाग विगूता॥ १॥
मन पिंडत मन ही भयौ मूरष, मन ही वेद पुरांनां।
मन ही गायन[२] गायवै मनही, मन ही तोड़ै तांनां॥ २॥
मन ही जोग जुगती भयौ मनही, मन तप तीरथ वासी।
मन ही आस निरासा मनही, मन ही रांम[३] मिलासी॥ ३॥
मन ही देव सेव भयौ मन ही, मन आचार विचारा।
मन ही पाप पिन[४] भयौ मन ही, मन मंगन दातारा॥ ४॥
मन बाहिर भीतरि भयौ मन ही, मन का सकल पसारा।
मन ही राव रंक भयौ मन ही, मन का मन सिकदारा॥ ५॥
मन चंचल निहचल भयौ मन ही, मन वसती[५] भ्रम षंडा।
मन गहि पंथ एक घरि आंणै, डाकि[६] चढ़ै ब्रह्मंडा॥ ६॥
मन सेवग[७] सतगुर है मन ही, मन ही ग्यांन विग्यांनां।
मन ही पद पूरण अभिनासी, मन ही उंन मुंन ध्यांनां॥ ७॥
मन ही भगति विषै भयौ मनही, मन का पार[८] अपारा।
जनहरिरांम भयौ मन महरंम, षोलिं मुगति[९] भंडारा॥ ८॥

---

८. (ख) अणभै राज जमाया। ९. (ख) मंझ महापद पाया, (ग) में यह पद नहीं है।

(६८) १. (ग, घ) भयौ। २. (ख, ग) गाय बजावै। ३. (ग) ब्रह्म विलासी। ४. (ख, ग) पुन्य। ५. (ख, घ) वन षंडा, (ग) मन डोलै नव षंडा। ६. (ग) उलटि। ७. (ग, घ) सिष सतगुर भयौ। ८. (ख) मन आतम अवतारा, (ग) मन अवगति अवतारा। ९. (ख) द्वारा, (घ) जीव मुगति दातारा।

(६९)

संतो प्रीत करौ हरि सेती । मन मत धारि[1] पछेती ॥ टेर ॥
मैं तौ प्रीत करी हरि [2]सेती, मीन उदग ज्युं जांणी ।
मीन मरत जल कै नही मांणै, हरि सुष सागर प्रांणी ॥ १ ॥
मैं तौ प्रीत करी त्रिगुन[3] तैं, ज्युं अलि कवला सेती ।
त्रिगुन गुनका काटत फंदा, उ मरै[4] वासना [5]लेती ॥ २ ॥
मैं तौ प्रीत करी [6]परमातम, पावक देष पतंगा ।
परमातम[7] पर दुष निवारै, उ जलत[8] विसन कै संगा ॥ ३ ॥
मैं तौ प्रीत करी निज मन तैं, जांणि कमोदिन चंदै ।
चंद कला नही देत कमोदिन, निज मन नित[9] आणंदै ॥ ४ ॥
पेम प्रीत[10] जाकै उर पंजर, विषै विकार न भावै ।
जनहरिरांम भजौ अभिनासी, जांमण मरण मिटावै ॥ ५ ॥

(७०)

है रे कोई अैसा पर उपगारा । राषै जुग तैं न्यारा ॥ टेर ॥
यौ जुग झूठ कपट की यारी, पंचे करत पसारा ।
तीनु ताप लगी[1] तन मन कुं, लेगी जम कै द्वारा ॥ १ ॥
अंधे अंधकार मैं दुनीयां, भूल परी भय कूंपा ।
यां मैं बांह पकरि कोई [2]ल्यावै, उतिम साध अनूपा ॥ २ ॥
वाकै सुष दुष का [3]नही संसा, एक दसा करि देषै ।*
भावै आय[4] मिलौ कोई जावौ, राग न किन सुं वेषै ॥ ३ ॥*

---

(६९) १. (ख, घ) धरौ, (ग) करो । २. (ख, ग) अैसी । ३. (ख) निज मन तैं । ४. (घ) मरित । ५. (ग) हेती । ६. (ग) आतिम तैं । ७. (ग) उ आतम । ८. (ग) ओ बारत अपने । ९. (ग) होय, (घ) सदा । १०. (ग) भगति ।

(७०) १. (ग) गुण तीनुं माही, ले जावै जम । २. (ख, ग) काढै । ३. (घ) सुष दुष देह न कोई । ४. (घ) भाव अभाव मिलै ।

* (ख, ग) में चिह्नांकित नहीं हैं, निम्न पाठ है—

अहिनिस रांम नांम अवगाहैं, एकै तन मन हेती।
जनहरिरांम तिरै सोई तारै, आपा सेवग सेती ॥ ४ ॥

(७१)

संतो ऐसा ओषद करीये, सबही[1] कारिज सरीये ॥ टेर ॥
सतगुर[2] वैद विधाता सेती, मिल करि[3] नाड़ि दिषांउं।
ओषद एक दीया मुझि[4] ऐसा, सहज समाधि लगांउं ॥ १ ॥
या ओषद जुग[5] जांणि अलभ है, तोल मोल नही आवै।
कह्यां सुण्यां कीमत नही[6] काई, पायां मन पति[7] आवै ॥ २ ॥
विषै विकार[8] विघन नही व्यापै, कोटि करम कटि जावै।
जनहरिरांम नांव निज ओसा, जांमण[9] मरण मिटावै ॥ ३ ॥

(ख) ऊंच नीच अंतर नही कोई, राग न किन सुं धेषै।
जे कोई जांणि करै सतसंगा, तन मन एको धारै।
जनहरिरांम संत सरणाई, आप तिरै फिर तारै ॥

(ग) .... भया निसंसै सोई।
अहिनिस एक सकल मैं देषै, ऊंच नीच नही कोई ॥

जे कोई समझि करै सतसंगा, चरन कवल चित धारै।
जनहरिरांम साध सांई का, आप तिरैं अर तारै ॥

(७१) १. (घ) ता तै सबही। २. (ख) मैं मिल। ३. (ख) नितकी, (ग) अपनै तनकै काज वैद कुं, नाड़ि न आंनि दिषाई, (घ) ताषिन। ४. (ग) गुर मैरै। ५. (ख) जुग मांहि दुलभ है, (ग) जुग मांहि, (घ) कुं। ६. (ख, ग) आवै। ७. (ख, ग) पाय पतीजै सोई, (घ) पाया विनां न पावै। ८. (ख) विषीया रोग विथा, (ग) वेद न विथा रोग, (घ) विथा विकार विघन। ९. (ख, ग) त्रिगुण ताप मिटावै।

(७२)

संतो ऐसा सौदा कीजै । लाभ घणा नही छीजै ॥ टेर ॥
ग्यांन ध्यांन का तोला तकड़ी , डिगै न मनकी[1] डांडी ।
सुरति निरत सुं[2] तोलण लागा , काया हटड़ी[3] मांडी ॥ १ ॥
सतगुर साह भये सौदागर , विणजै वसत अपारा ।
कांही मिणीया लीया मूंगीया , कांही हीर हजारा ॥ २ ॥
दूंनां[4] वैस कीयौ घर लेषौ , वसत आपणी सारी ।
हरि हीरा ले पारि पहूंता , और गया जुग[5] हारी ॥ ३ ॥
सौदा एक सकल [6]तन भीतरि , विणजै विरला [7]भाई ।
जनहरिरांम मिले सौदागर , सौदै साट मिलाई ॥ ४ ॥

(७३)

संतो या देवल मैं देवा । जे कोई जांणै भेवा ॥ टेर ॥
माटी ईट पथर चूनै विन , काया देवल कीन्हौ ।
चेतन पुरस भयौ चेजारौ , अंस आपणौ दीन्हौ ॥ १ ॥
या देवल मैं अलष अमूरत , पेम प्रीत लिव लांउं ।
मिनषां मांडि कीयौ परमेसर , ताहि न सीस नवांउं ॥ २ ॥
जिन दोय नैंन दीया निरषन कुं , मुष बोलन कुं [1]रसनां ।
हाथ'र पाव दीया हालन[2] कुं , करीयै उतिम कांमां ॥ ३ ॥
ऐसौ देव न कोई देवल , या जुग मांहि न दूजौ ।
जनहरिरांम कहै निसदिन मैं , सुरति निरत करि पूजौ ॥ ४ ॥

---

(७२) १. (ख) उनमुन केरी, (ग) मन उनमन की । २. (ग) करि, (ख, ग) तोलण बैठा । ३. (घ) तन हटवाड़ा । ४. (ग) दोयुं, (घ) दोना । ५. (ख) भव, (घ) नर । ६. (ख, ग, घ) घट । ७. (ग) कोई ।

(७३) १. (घ) रांमां । २. (घ) चाल्न कुं ।

(७४)

संतो अैसी झिलमिल जोती। अंतर ओत'र पोती ॥ टेर॥
है जांह जोति सदा तन[1] सीतल, ताप न तिन कुं लागै।
तिल विन तेल दीया विन वाती, एक अषंडत जागै॥ १॥
नष चष रोम रोम रग रग मैं, होय अगम [2]परगासा।
कहनी मांहि कछु नही आवै, गम कोई जांणै दासा॥ २॥
जांह नही दिवस पड़त नही रजनी, चंद सूर [3]इकलासा।
जनहरिरांम हंस परिहंसै, कीया[4] सुन्य सर वासा॥ ३॥

(७५)

अधर धरै रे कोई अधर धरै, सुन्य सिषर मैं[1] वास करै॥ टेर॥
त्रिमल नांव नकेवल सहजां, रोम रोम रसनां उचरै।
मनवा उलटि रांम रस पीयै, ता की तार न कब उतरै॥ १॥
आतम एक सकल घट पूरण, षोजि बूझि दिल षबरि करै।
डाल कुं छोडि मूल कुं पकरै, तौ ऊंचा फल अजब चरै॥ २॥
नां तर फूल विनां फल निपना, अगम निगम जाकी साष भरै।
दूरि सैं दूरि दिसंतर देषै, नैड़ां सुं नैड़ा है निजरै॥ ३॥
ऊंचा सोई ऊंचा फल निरषै, नीचा नीची भोम परै।
सतगुर विन सुधि बुधि नही उपजै, ग्यांन विचारि अग्यांन हरै॥४॥
जमका जोर जबर नही पुहचै, आसण कीन्हा अटल धरै।
जनहरिरांम भया[2] अमिनासी, जनम जनम फिर नांहि मरै॥ ५॥

---

(७४) १. (घ) झिलमिल जोति सदा रह सीतल। २. (घ) होते सबद प्रकासा। ३. (घ) उजासा। ४. (घ) तांह करे घरवासा।

(७५) १. (घ) जां। २. (घ) मिल्या अविनासी।

(७६)

राग काफी

रंमता एक जोगीया, नैंणां वीच वसे ॥ टेर ॥
कांन न मुदरा[1] मेषला, भसम न अंग घसे ॥ १ ॥
संष न सेली[2] अंचरा, नाद न बिंद रसे ॥ २ ॥
पाव न पैड़ी पावड़ु, सहजां ध्याय धसे ॥ ३ ॥
हरिरांमा मिल जोगीया, निज[3] मन मांहि हसे ॥ ४ ॥

(७७)

हमारै रांमजी परम सुष के दाता हो ।
तौ विन मेरै रांमजी, काई और न वाता हो ॥ टेर ॥
संतो एक संदेसौ [1]सैंणरौ, सब[2] सेती कहीया हो ।
थे मिल रहीया[3] रांम सुं, सत संग[4] निबहीया हो ॥ १ ॥
संतो रांम संनेही साधवा, चरनन[5] की चेरी हो ।
छिन छिन नेह निहारती, तन मन [6]सैं नेरी हो ॥ २ ॥
संतो निसदिन संगति साध की, करि लीजो लाहा हो ।
कु संगति संसार की, जाकै नही राहा हो ॥ ३ ॥
संतौ तन मन तैं साचा रहुं, मुष असत न भाषुं हो ।
हरिरांमा हरि नांव विन, पष और न राषुं हो ॥ ४ ॥

---

(७६) १. (ग) विन मुदरा विन मेषला, (घ) काना न मुद्रां वाकै । २. (ग, घ) सेली वाकै । ३. (ख) मनही मांहि ।

(७७) १. (ग) कांनि करि । २. (ग) हरि । ३. (ग) दाषौ । ४. (ख) ले मोहि, (ग) दिल मेरी लहीया हो, (घ) गल मेरी ल० । ५. (ख, ग, घ) मैं ताहि की । ६. (ख, घ) चरना सुं, (ग) चरना चित ।

(७८)

राग कनड़ौ

सो भई अनेसै, सुप साजन घरि [१]आवौ ॥ टेर ॥
सांम सषी मिलवा कै [२]कारन, दे दे [३]थाकी सैंन संदेसै ॥ १ ॥
उंन मुंन घ्यांन धरूं [४]आतम कौ, एको[५] आठुं पौहर हमेसै ॥ २ ॥
नित[६] निरषत नैंनन विच ठाढी, जीव वसै पीव मांहि वदेसै ॥ ३ ॥
उर अंगन मैं अनंद वधाई, न्यारौ निज मन मांहि मिलेसै ॥ ४ ॥
जनहरिरांम परम सुष पाया, दिल[७] भीतरि देष्या दरवेसै ॥ ५ ॥

(७९)

राग मारु

इन मन कुं जांन न दीजै हो।
मनसा साजन को नही, तन भीतरि लीजै हो ॥ टेर ॥
मन राष्यां सब रस रहै, मनग्यां सब रस जाय।
मन ही प्याला पेम का, मन पी प्यारां पाय ॥ १ ॥
सेझरीयां सुन्य[१] सूंदरी, रंमै रांम दिन रैंन।
उर परमानंद उपजै, अब और न को दुष दैंन ॥ २ ॥
कांम न काई कलपना, सांसा गया नसाय।
नेह लग्या रहमांन सुं, दिल और[२] न आवै दाय ॥ ३ ॥
मैं मन सुं करि जांनती, सो मुझि मिलीया आय।
हरीया[३] निज मन वीच मैं, कुछि अंतर रही न काय ॥ ४ ॥

---

(७८) १. (ख, ग) में विपर्यय है, (घ) सुष साजन विन भई हु अनेसै।
२. (ग) तांई। ३. (ख) देवत है कोई, (ग) नित देवत है।
४. (ग) तन भीतर। ५. (ख) अंतर, (ग) अलष अजोनी यार मिलेसै, (घ) अहनिस। ६. (ग) सिवर पीया मन मैं।
७. (ख) देषत ही आतम द०, (ग) दिल देष्या आतिम दरवेसै, (घ) दिल भीतर पाया।

(७९) १. (ख, घ) सुष। २. (घ) दूज।
३. (ग) हरिरांमा निज मन विचै, कुछि सतर०।

(८०)

पांउं[1] मुझि पीतम प्यारा हो ।
तन मन सौंपुं [2]तुझि कुं, मिल यार हमारा हो ॥ टेर ॥
जो धम अहळा जात है, सिवरन विन सारा हो ।
आपा[3] उलटि विचारीयै, ब्रह्म वारूं वारा हो ॥ १ ॥
तन जोबन हुय [4]जावसी, छिन मांही छारा हो ।
सासो सास [5]संभारीयै, आतम आधारा हो ॥ २ ॥
सुष दुष सब संसार का, अकरूर अकारा हो ।
अधर विनां [6]धर को नही, भर[7] दूभर भारा हो ॥ ३ ॥
जनहरिरांम प्रकासीया, अंतर उजवारा हो ।
दरसन हरि दीदार का, करि दसवै द्वारा हो ॥ ४ ॥

(८१)

साजन सुष दीजो न्यारे हो ।
रोम रोम मैं रमि रहे, पीर न के प्यारे हो ॥ टेर ॥
अबला अति आतुरि भई, आपनपौ दीजै हो ।
सांईयां तुझि विन नां सरै, मुझि वैग मिलीजै हो ॥ १ ॥
तन मन तेरा तूं धणी, तेरा[1] सब चारा हो ।
भली वुरी सब जीव की, तूं[2] जांणणहारा हो ॥ २ ॥

---

(८०) १. (ख) पाऊंगी, (ग) किम । २. (ख) आगै सौंप सुं, (ग) सौपु तोहि सुं । ३. (ग) एको नांव उचारीयै, नही और अधारा हो । ४. (ग) है धन जोबन देहरी । ५. (ख) आतम नांव उचारीयै, और न आधारा हो, (ग) आपा उलटि मिलाईयै, ब्रह्म वारू वारा हो । ६. (ख, ग) रांम नांम विन दूसरा । ७. (ख) विभचार विचारा हो, (ग) है आन विकारा हो ।

(८१) १. (ख) तुं सुणत पुकारा हो, (ग) लागत मोहि पुकारा हो, (घ) मेरा नही सारा हो । २. (ग) विध ।

मैं मध्यम तन हीनता, तम उतिम यारे हो।
परि पूरबली जांनि कै, हुय[3] नांहि जु वारे हो ॥ ३ ॥
आपा अंतर मेट करि, अपनी करि लीन्ही हो।
हरिरांमा हम[4] दोसती, आतम सुं कीन्ही हो ॥ ४ ॥

(८२)

राग कल्याण

एक मन एक [1]चित भजीयै रांम। आंन देव सेती कुंन[2] कांम ॥ टेर ॥
रांम नांम सुं लगिग्या दाव। अब नही मेरै और उपाव ॥ १ ॥
रांम नांम सुं लगिगी प्रीत। लोक[3] लाज छाडी कुल रीत ॥ २ ॥
रांम नांम सुं लगिग्या ध्यांन। सीषत सुंनत न आवै [4]ग्यांन ॥ ३ ॥
रांम नांम सुं लगिग्या सास। और न मेरै मन वेसास ॥ ४ ॥
रांम नांम सुं लगिग्या प्रांण। और[5] न मेरै आंवण जांण ॥ ५ ॥
जनहरिरांम रांम [6]घर वास। पाया[7] परमानंद विलास ॥ ६ ॥

(८३)

अैसी आरती घट ही [1]मांय कीजे।
रांम रसांयन निसदिन[2] पीजै ॥ टेर ॥
घट ही मैं देवल घट ही मैं देवा।
घट ही मैं सहज करै मन सेवा ॥ १ ॥

---

३. (ख, ग) जोय, (घ) होवत नही न्यारा हो। ४. (ख) जनहरीया मन, (ग) जनहरिरांमा, (घ) जनहरिरामै।

(८२) १. (ग) चित सुं। २. (ख) नही, (ग) और देवन सुं ना कोई कांम। ३. (ग) अब नही या विन रीत। ४. (ग) अब नही मेरै ग्यांन अग्यांन, (घ) मावै। ५. (ख) मेट्या जुग मैं, (ग, घ) अब नही। ६. (ख, ग) रांम की आस, (घ) भया परगास। ७. (ग) पाय परम पद भए निरास।

(८३) १. (ख) घट मैं, (ग) मांहि, (घ) ही मै। २. (ख, ग) निसदिन रांम रसायन।

घट ही मैं पांच पचीसुं पंडा।
घट ही मैं जागै जोति अषंडा ॥ २ ॥
घट ही मैं पाती फूल चड़ावै।
घट ही मैं [3]आतम देव मनावै ॥ ३ ॥
घट ही मैं संष सबद घन तूरा।
घट ही मैं [4]नाथ निरंजन पूरा ॥ ४ ॥
घट ही मैं गावै हरिका दासा।
घट ही मैं पावै पद परगासा ॥ ५ ॥
जनहरिरांम रांम घट मांही।
विन षोज्यां कोई पावै नांही ॥ ६ ॥*

(८४)

राग कालेरौ

पीया[1] निरगुन गुन करि जांनी हो ॥ टेर ॥
बौह आवत बौह जात भये दिन, एको[2] सीष न मांनी हो।
सब सषीयन मिल मन मोहन सुं, लालच तज्य [3]लोभांनी हो ॥ १ ॥
रांम नांम अंतर[4] भई ठाढी, अरध [5]उरध घरि आंनी हो।
यारी एक लगी आतम सुं, आप उलटि उलषांनी हो ॥ २ ॥
निरगुन नाह [6]सूंदरि भई सुरगुन, न्यारौ देह[7] मिलांनी हो।
जनहरिरांम करी[8] हरि अपनी, पूरब प्रीत पिछांनी हो ॥ ३ ॥

---

३. (ग) जाति। ४. (ग) पेम पीया भर पूरा, (घ) पेम परस निज नूरा। * (ख) में सर्वत्र 'ही' नहीं है एवं 'ग' में 'ही मैं' के स्थानपर 'मांहि' पाठ है। सम्प्रदायके लोग इस आरतीको नित्य ही सायंकालमें गाते हैं।

(८४) १. (घ) पीव। २. (ख, ग) एक (तौ) विन भई अयानी हो, (घ) साची। ३. (ग) सुधि बुधि एक सुजानी हो। ४. (ग, घ) मुषड़ा। ५. (ग) सुरत निरत। ६. (ख, ग) भई मैं। ७. (ख, ग) मांहि। ८. (ख, ग) रांम (कहै) गुन प्यारी, (घ) रांम करि अपनी।

(८५)

राग विहागडौ

रे नर काहे कुं गरबांना ।
तलब लीयां आया सिर तेरै, द्वारि षड़ा दरवांना ॥ टेर ॥
तन झूठा जोबन भी झूठा, झूठी सैंण सगाई ।
मात पिता सब ही सुत झूठा, आडा कोय न आई ॥ १ ॥
मरना ऊंच नींच भी मरना, मरनां राव'र रंका ।
छाडि अनीत नीत कुछि [1]कीजै, मांनि मरन का संका ॥ २ ॥
चंगा चीर चढण कुं चंगा, चंगा षांणा पीना ।
एक पलक मैं छोडि [2]चलैंगौ, वास जंगल मैं[3] कीन्हा ॥ ३ ॥
उत हू न ल्यायौ नां इत चालै, मूरष माया काची ।
जनहरिरांम कहै कुछि[4] कीजै, भगति रांम की साची ॥ ४ ॥

(८६)

रे नर किसका[1] करत गुमांनां ।
रूप रंग छिब राग छती सुं, ए सब आंवन [2]जांनां ॥ टेर ॥
आसि पासि सब सषी सहेली, चाबत पांन तंबोळी ।
सेझरीयां सुष रास विलासा, अमल कटोरां घोळी ॥ १ ॥
राज'र पाट गांव गढ [3]छाजै, जा विच करते जौषां ।
देस देस मैं फिरत [4]दुहाई, चालत अपनी सौषां ॥ २ ॥
हैंवर द्वार गिंवर बौह बंधे, माल मुलक बौहतेरा ।
जै जै कार करैं सुष मंगन, दीजै[5] दांन घणेरा ॥ ३ ॥

---

(८५) १. (घ) करीयै । २. (ख) चलै नर । ३. (घ) जंगल वासा कीना । ४. (ख) मन, (घ) सौ ।

(८६) १. (ख) काहै । २. (ख) थिर नही जोय जूवांनां । ३. (घ) गूडर । ४. (ख) आदम और किसी नही सारै । ५. (ख) देवै ।

भेर नगारा नौबति वाजैं, वाजैं तुरही तांना।
साथि चढ़ैं दल लारि चहुंद्दिस, पड़ते दुरि भगांना॥ ४॥
षट रस भोग छतीसुं वांना, भोजन बौहत भूजाई।
जनहरिरांम भगति[६] विन [७]जुग मैं, उठिगे [८]लाड लडाई॥ ५॥

(८७)

संतो रांम सदा संग बेली, दुनीयां [१]दूजा षेल बगेली॥ टेर॥
स्वारथ कुं सब को नर आघा, परमारथ कुं [२]पाछा।
जब सांई मांगैगौ [३]लेषा, जाब [४]न आवै आछा॥ १॥
ष्याली ष्याल षलक मैं षेल्या, मन माया [५]रस भीना।
आगै पीछै कौंण तमारै, हल [६]चल होय हलीना॥ २॥
तूं तालिब तेरै नही तन कौ, तन तालिब नही तेरौ।
मात पिता सुत[७] वित नर नारी, उठगे करि करि मेरौ॥ ३॥*
करि कुछि बाल पणै [८]तरणामैं, सुक्रिथ रांम संभारौ।
पीछै प्रांण पिंड बल [९]थाकै, अंषीयां होय[१०] अंधारौ॥ ४॥

---

६. (घ) भजन। ७. (ख) हरिकी। ८. (ख) जनम गमाई।

(८७) १. (ख) दुनीयां षेल, (ग) या विन और अवेली, (घ) दूजा षेल। २. (ग) यौ संसार सबै स्वारथ का, परमारथ कुं पूठा। ३. (ख, ग) साच कूड़ का लेषा मांगै। ४. (ग) करै क्या झूठा। ५. (ख) सुं। ६. (ख, ग, घ) हल।
७. (ख) यौ तन जांनि सराय का वासा, लादि चले नर डेरा, (ग) यौ जुग जांणि भयौ सपनै ज्युं, मूरष कहै घर मैरौ, (घ) पूत नर।
*(ख, ग) में यहाँ अधिक है—

भाई बंधन सैंण संगाथी, आथि (न) हाथि (नही) तमारै (थारै)।
जम रोकैगौ दस (गढ) दरवाजा, ग्यौ एकल (निकस एक) असवारै॥
८. (ख, ग) करि बाला तरणा तन सेती, (घ) बाल पणै तरणै कुछि करलै। ९. (ख, ग) बीती आव भयौ विरधापौ। १०. (ख) भयौ।

रसनां[११] एक उचरि आतम कुं, दूजी[१२] वात न दाषौ।
आपौ उलटि गहौ[१३]उंन सुंन तैं, रांम रसांयन चाषौ ॥ ५ ॥
जनहरिरांम कहै[१४]सबहू कुं, निज करता भजि[१५]सोई।
तज्य अहंकार भार सिर डारौ, नही तौ[१६]पारि न होई ॥ ६ ॥

(८८)

जीवरा[१]क्यौं नही नांव न लेई, विषीया[२]लालच वेई ॥ टेर ॥
सत का सबद सुण्या नही कांनां, गुर का कह्या न कीया।
रांम भगति का[३]मरम न पाया, मांनि और मन लीया ॥ १ ॥
चंगा रूप देष नर नारी, बंधै[४] जुग सुं बेला।
अंत काल मैं कोय[५] न किस कौ, सब[६]उठि जांहि अकेला ॥ २ ॥
धांम धूम नर धन कै तांई, निसदिन[७] गोता षावै।
जावै जब[८] रीतै कौ रीतौ, हाथ[९]पलै नही आवै ॥ ३ ॥*

---

११. (ख, ग) एको। १२. (ग) दूजा वचन। १३. (ख, ग, घ) आपन कुं। १४. (ख) सुनि लीजो, (ग) सुण भाई, (घ) सबहिन कुं। १५. (ख) भाई, (ग) करता विनां न कोई। १६. (ख) परलै जाई।

(८८) १. (ख) रे जीवरा क्युं, (ग) रे जीवरा तुं क्युं रांम न, (घ) जीवरा क्यौं मुष। २. (घ) झूठै। ३. (ग) भेद। ४. (ख) बांधत इन सुं,

(ग) चंगा तन जोवन धन चंगा, चंगा बांधै बेला।
ए सब जांणि भये छिन भंगा, तुं जब जांहि अकेला ॥

५. (ख) कोई नही अपना। ६. (ख) तुं जब, (घ) उठि उठि। ७. (ख, ग) चहुं दिस। ८. (ख, ग) अंत वेर। ९. (ख) ज्युं आयौ ज्युं जावै, (ग) विनां दत नही पावै, (घ) हाथ कछु।

* (ख, ग) में निम्न पाठ विशेष है—

राज पाट गज बंधन (त) द्वारै, सुंदरि सेझ विलासा।
एक रांम विन सब सुष झूठा, पल मैं होय विनासा ॥
(जैसे पांन पलासा) ॥

बौह भरमन[10] का कांम कमाया, निसचै[11] नांव न जांन्या।
जीव जंजाल पड़्यौ[12] जम झोलै, तन कूकर ज्युं तांन्या ॥ ४ ॥
लोक लाज काज[13] कुल झूठा, झूठा आंन[14] संनेहा।
जनहरिरांम[15] सबद गुर साचा, करीयै दोसत एहा ॥ ५ ॥

(८९)

रे नर तन कहा जांणै आछा, कूड़ करम का राछा ॥ टेर ॥
आहत एक करत मन नाई, मैं तैं घसै पलारै।
सबही[1] दुनीयांदार आहतु, विण कर मूंड सुवारै ॥ १ ॥
कुबधि कतरणी विषै पाछणा, कांम कली जांह तांही।
सांसौ सीली चमोठो लालच, मोह नहरणी मांही ॥ २ ॥
मनसा[2] मांन आतम आरीसौ, माया भई[3] रछांदी।
आडा और भरम का पड़दा, ताहि न दरसै[4] बांदी ॥ ३ ॥
चंगा रूप देष मत विगसौ, मल[5] मंतर की देहा।
जनहरिरांम भसम हुय जासी, नांव[6] विनां सब नेहा ॥ ४ ॥

(९०)

रे नर या घर मैं क्या तेरौ।
जीव जंत न्यारा घर मांही, सो जांनत[1] घर मेरौ ॥ टेर ॥
चीटी चिड़ी कमेड़ी ऊंदरि, घर मांही घर केता।
ज्युं आया[2] सबही उठि जासी, वासौ[3] दिनदस लेता ॥ १ ॥

---

१०. (ग) भरम करम बौह। ११. (ख, ग) एक। १२. (ख) जुग, (ग) जुग जंजाल पड़्यौ मन, (घ) मार्‍यौ जीव गयौ जम। १३. (ग) कुल किरतम झू०। १४. (ख) विषै, (ग) देह। १५. (ग) साच हरि सिवरन, करिलै दोसत।

(८९) १. (ग) दूजा। २. (ख, ग) म्यांन, (घ) ग्यांन। ३. (घ) रछांनी। ४. (घ) बांनी। ५. (घ) मुतर। ६. (ख, ग) रांम।

(९०) १. (ख, ग, घ) सोई कहै। २. (ग) ज्युंही। ३. (घ) सबही।

मैड़ी मिंदर महल चिणावैं, मारै ऊडी नीया।
दिन पूगै नर[4] छोडि चलैंगौ, ज्युं हाली हलसीया॥ २॥
नवरंग रूप सोल सिणगारा, माया विषै विलासा।
जनहरिरांम रांम[5] विन दुनीयां, होसी षासर फासा॥ ३॥

(९१)

ब्याली एक दिन में उठि जांना।
यौ संसार सबै ठग बाजी, तू काहे देष लोभांना॥ टेर॥
तन जोबन धन जोय[1] जुवानी, गाफिल मत गरवांना।
ए पल मैं हुय जांहि[2] षाकदर, जीव लेग्या[3] जरवांना॥ १॥
राग'र रंग रूप सब काचा, काचा नेह लगाया।
रांम नांम विन सास सरीरा, से[4] नही लेषै लाया॥ २॥
मात पिता सुत वित नही संगी, संग न जुग परवारा।
सूंदरी सेण सगा नही संगी, झूठा करत पसारा॥ ३॥
है सब ही स्वारथ का बेली, परमारथ का नांही।
जनहरिरांम रांम[5]सा साजन, कोय[6]न या कलि मांही॥ ४॥

(९२)

रे नर तूं कहा[1] चेतै नांही। पग पासी कै मांही॥ टेर॥
वावरि वेद विषै वावरीया, पोथी पुसतग फंदा।
मांही मन भोळा उळझांना, आप[2] न देषै अंधा॥ १॥
आडा भरम करम का अड़वा, भड़क'रि पाछा भाजैं।
सुरता अर वकता है वेउ, मरते लोका लाजैं॥ २॥

---

४. (ग) घर। ५. (ख) भगति विन हरिकी।
(९१) १. (ग, घ) देष। २. (घ) एक पलक मैं भये। ३. (ग) काढै। ४. (ग) वे, (घ) सो। ५. (ग) है संगी। ६. (ग) समझि करौ मन, (घ) और नही कलि।
(९२) १. (घ) क्युं। २. (घ) उलटि।

देषा देष सकल तज्य भाई, भजि एको प्रितपाळा।
जनहरिरांम पड़ैं नही कबहु, जुग मैं आळ जंजाळा ॥ ३ ॥

(९३)

संतो रांम हमारै सैनां। और लैंन नही दैंनां ॥ टेर ॥
ग्यांन ध्यांन [1]सारा करि देष्या, सतगुर दीया[2] संनेसा।
एको रांम कह्यां मुष [3]सेती, अंतर[4] मेट अनेसा ॥ १ ॥
आंन धरम सेती[5] नही जांन्या, नां तीरथ असनांना।
मेरै एक अलष की आसा, जै अधर धख्या असमांना ॥ २ ॥
जोग न जिग [6]तप नही जांण्या, नां आचार विचारा।
रांम भजै सोइ सजन मेरा, और दुनी का दारा ॥ ३ ॥
नां [7]कोई देवल देव न [8]धोकुं, नेम वरत [9]नही लेवा।
सहजां सेव[10] करूं तन[11] भीतरि, पूजुं आतम देवा ॥ ४ ॥
बावन ही[12] अछर पढि जांण्या, जांणी अणभै बांणी।
एकै रैै ममै विण जांण्या, थोथा वेद [13]पुरांणी ॥ ५ ॥
हींदू वेद पुरांनां [14]लागा, मुसलमांन कुरांनां।
या दोऊं मैं[15] दुविध्या डारी, भूल गया भगवांनां ॥ ६ ॥

---

(९३) १. (ख) मैं गण करि जांण्या, (ग) आपै, (घ) सबही। २. (ख, घ) देत। ३. (ग) आदि अंत एक ही जांण्या। ४. (ख) दूजा। ५. (ख, ग) मैं कोई (जो मै) आंन धरम, (घ) नां मैं आंन धरम। ६. (ख, ग) जो मैं (मैं कोई) जोग जिग, (घ) जोग जिग जप तप। ७. (ख) मैं, (ग) नां मैं देव देहरा। ८. (ख, ग, घ) पूज्या (जू)। ९. (ख) तप तीरथ नही सेवा, (ग) नां कोई वरत न सेवा। १०. (ग) जोति धरूं। ११. (ख, ग) दिल। १२. (ख) जिण वावन, (ग) वावन अछर पढि करि, जांण्यां वेद पुरांणी। १३. (ग) पोथी अणभै वांणी। १४. (ख) भरम्या, (ग) भूला। १५. (ख, घ) दोऊं कै विच, (ग)···विच।

सब संतां मिल कह्यौ समिझ कै, कांणि न किस की[16] राषी।
जनहरिरांम [17]कह्यौ मैं सोई, रांम नांम [18]सत्य भाषी ॥ ७ ॥

(९४)

हो मोहि लागी प्रीत रसूलै, नांव निमष नही भूलै ॥ टेर ॥
लागी प्रीत मोहि भई पूरांणी, भावै जांणि मजांणी।
लोक लषी सैं कौंण कांम है, सूंदरी सांम सुजांणी ॥ १ ॥
भरमां करमां भई दुहागिण, आसां तिसनां दूरा।
यारी एक लगी आतिम सुं, धना भाग सनूरा ॥ २ ॥
तम निरास बौहौतेरी आसा, दीनबंधू हम दासी।
तम हम सुं हरि एसी कीजौ, राषौ पासि षवासी ॥ ३ ॥
आपा उलटि भई मैं ठाडी, दिल दीदार दिषाया।
जनहरिरांम भया सुष सबही, पिव परमानंद पाया ॥ ४ ॥*

(९५)

संतो निरगुन गुन तैं न्यारा, कोई पावै पीतम प्यारा ॥ टेर ॥
आतम[1] रांम सकल सुं[2] न्यारा, पिंड पिंड भर पूरा।
मूरष मरम न जांनै [3]उंन कौ, फिर फिर [4]देषै दूरा ॥ १ ॥
चंद सूर सुषमिण जांह मेला, नादे बिंद समाई।
उलटी धरिण गिगन मैं[5] गरजै, विन वादर झर लाई ॥ २ ॥
विन देवल पूजा विन पाती, दोस मिस विन देवा।
देष्यां दिष्ट मुष्ट नही आवै, सहज करुं ताहि सेवा ॥ ३ ॥

---

१६. (ख, ग) काई। १७. (ख) कहत मैं, (ग) कहत है, (घ) कह्यौ सति। १८. (ग) गल आषी, (घ) नित।

(९४) * यह पद केवल 'ग' प्रतिमें प्राप्त होता है।

(९५) १. (ख) है हरि नांव, (घ) है निज नांव। २. (ग) निरगुन नांव निरूपन न्यारा, (घ, ख) तैं। ३. (ख) अपनौ, (घ) पावै इनकौ। ४. (ख) ढूंढै, (ग) भूदू भरम संग डीयां डोलै, हरि है आप हजूरा। ५. (ग) मैं बरसै, (घ) जाय।

अकल कला कैसें कहुं परगट , कह्यां न के[६] पति आई ।
है सो अगम अगम सुं आगै , षोजि महा[७] पद पाई ॥ ४ ॥
हदि कुं जीत जाय वेहद मैं , सुन्य मैं वास [८]वसाया ।
जनहरिरांम मिले[९] चित चौथै , त्रिगुण ताप मिटाया ॥ ५ ॥

(९६)

संतो तन मन परचै बोलै ।
जे कोई सतका सबद गहेगो , पड़ै न पंतरि[१] झोलै ॥ टेर ॥
वेद पुरांन पढे पढि पिंडत , कहा भयौ जे[२] कोई ।
दोय अछर का मरम लहैगो , संत कहावै सोई ॥ १ ॥
दोय अछर का[३] भेद विसेषा , सिवरि सदा सुषदाई ।
अछर[४] एक भया घट भीतरि , प्रापति विनां न[५] पाई ॥ २ ॥
जोग जिग जप तप बौह[६] तीरथ , अंन आचार[७] विचारा ।
ऊ याहू तैं अगम अगोचर , लहत न कोई पारा ॥ ३ ॥
कुछि कीमत कोई महरंम जांणै , सुरति घेर मंन पौंणां ।
जनहरिरांम ब्रहम[८] कीया वासा , फेर न आवा गौंणां ॥ ४ ॥

---

६. (ग) छिपीयां नांही छिपावै, (ख, घ) को । ७. (ग) महापद पावै, (घ) परमपद । ८. (ख, ग) वासा सुनि वसाई, (घ) अनहद नाद वजाया । ९. (ग) भया चित निहचल, संसा भरम नसाई ।

(९६) १. (ग) परत न दूजै झोलै । २. (ख)नर, (ग) सब । ३. (ग) निज पद का । ४. (ख) है सो मांहि सकल सुं न्यारा, (ग) एको एक सकल तैं न्यारा, (घ) सहजां एक एक तैं न्यारा । ५. (ख, ग) सतगुर गमता पाई, प्रापति विनां न पाई । ६. (ख, ग) जप तप तीरथ जिग असमेधा, (घ) नही । ७. (ग) लोकाचार । ८. (ख, ग) अटल ।

(९७)

संतो सतगुर करण सिहाई ।
अंतर मांहि निरंतर देष्या, जिन [1]औ भेद बताई ॥ टेर ॥
सहजां पुसतग वेद [2]पुरांनां, सहजां [3]अछर वाचै ।
सहजां तार तबल [4]घर तूरा, सहज नचईया नाचै ॥ १ ॥
सहजां गंगा जमन [5]सुरसती, सहजां करत [6]सिनांनां ।
सहजां देव सेव घट भीतरि, सहजां [7]ब्रह्म गिनांनां ॥ २ ॥
सहजां जोग जुगती भी सहजां, सहजां रिधसिध दासी ।
सहजां गिगन ध्यांन धुनि लागी, सहज मिल्या अभिनासी ॥ ३ ॥
सहजां सहजां[8] एक भया सब, रांम नांम [9]जब जांण्यां ।
मोष मुगति का ना कोई संसा, सहजां सबद पिछांण्यां ॥ ४ ॥
सहजां सुरति निरति भी सहजां, सहज मिंदर मैं वासा ।
सहज पीया सुं सेझ रमंती, सहज कीया घर वासा ॥ ५ ॥
सहजां इला पिंगला सहजां, सहजां सुषमिण नारी ।
जनहरिरांम सहज घट[10] भीतरि, पाया[11] देव मुरारी ॥ ६ ॥

(९८)

हो मेरी आंषि [1]फरूकौ लांई, पीव मिलन कै तांई ॥ टेर ॥
पीव [2]प्यारै कौ पंथ निहारत, तन मन सुं भई ठाढी ।
आवैंगे अपनै[3] घरि साजन, मिलुं बांह भरि गाढी ॥ १ ॥

---

(९७) १. (ख, घ) सहजां, (ग) ऐसा । २. (ख) विचारा, (ग) सहजां वेद छुछम की वाणी । ३. (ग) पुसतक । ४. (ख, ग, घ) घन । ५. (घ) सहजां गंग जमन का मेला । ६. (ख, ग) गंगा जमना सहज सुरसरी, सहज सिनांन संजोई । ७. (ख, ग) पाया (वै) सोई । ८. (ख, ग) जांणि । ९. (घ) कुं, (ख, ग) एक रांम कुं (जप) । १०. (ख, ग) घर पाया (आया) । ११. (ख) मिलीया ।

(९८) १. (घ) अंषीया नीझर लाई । २. (ख) नैणां सुं निज पंथ निहारूं, (ग) अपनै । ३. (ख, ग) मोहन मदसूदन ।

पीव मिल्या सब संसा भागा, सुष दुष मेट सरीरा।
उलटा [4]नीर भख्या सुन्य सरवर, जांह निपजैं हरि[5] हीरा ॥ २ ॥
आव भाव करि आघा लेउं, देउं अंतर [6]सांई।
जनहरिरांम रांम[7] रमता सुं, अधर महल रमि [8]आई ॥ ३ ॥

(९९)

हो अजोनी रांम तेरी गति किनीय न जांनी ॥ टेर ॥
ताहि[1] दलीप उभै महूरत मैं, हरि सुष मांहि मिलांनी ॥ १ ॥
सात दिवस मैं जांनि परीषत, परम दसा परसांनी ॥ २ ॥
जिन गजराज तारि लीयौ छिन मैं, सिवरे[2] सारंगपांनी ॥ ३ ॥
तोता रांम पढावत गिनका, पुहती[3] पार विवांनी ॥ ४ ॥
हेत सुता हरि नांव [4]पुकारत, अजामेल उधरांनी ॥ ५ ॥
सेना काज भये हरि नाई, भगत आपनौ जांनी ॥ ६ ॥
जनहरिरांम अनंत[5] निज महमा, सागर सिला [6]तिरांनी ॥ ७ ॥

(१००)

अैसैं[1] रांम निरंजन राया।
सोभा अनंत कही नही जावै, वाजा अनहद वाया ॥ टेर ॥
काया कोट विन्यौ विन टांची, कली न चूनौ लाया।
करता पुरष भया कारीगर, नष चष सौंज[2] वनाया ॥ १ ॥

---

४. (ग) पेम। ५. (ख, ग) सहजां निपज्या हीरा। ६. (ग) देउं तन मन दोऊं। ७. (ख) रांम अपना, (ग) यार अपना। ८. (ख, ग) अरस परस मिल जाई (दोऊं)।

(९९) १. (ग) जांनि। २. (ग) एक टेर सुनि वांनी। ३. (ग) चढगी। ४. (ख) हित सुत काज पुकार सुनी हरि, (ग) पूत पुकार करत नारायन, (घ) उचारत। ५. (ख) कहै, (ग) नांव सुनि। ६. (ग) जल सिर पाज बंधानी।

(१००) १. (ख) अैसा, (ग, घ) देष्या। २. (ख, ग, घ) छाजा षूब बनाया।

या में एक वदेही पुरषा, इलां पिंगला रांणी ।
सुषमिण सदा सुहागिण सूंदरि, मोष मुगति जांह जांणी ॥ २ ॥
अणभै राज करत अभिनासी, जांह चित चाकर लाया ।
जनहरिरांम छोडि हद वासा, वेहद वास वसाया ॥ ३ ॥

(१०१)

है कोई अैसा भेदी, भेद [1]पिछांनै ॥ टेर ॥
गंग जमन की नाहै घाटी । वूंदै नाद बिंद की वाटी ॥ १ ॥
अनहद घोर[2] गिगन मैं गाजै । विण करताल पपावज वाजै ॥ २ ॥
इंदर[3] जोति अषंडी जागी । मिटग्या तिवर भरमना [4]भागी ॥ ३ ॥
सहजां पांच प्रिसण[5] कुं पेलै । सुन्य मंडल [6]मैं रांमत षेलै ॥ ४ ॥*
जनहरिरांम[7] भई पटिरांणी । अब[8] अपनै पीया मन मांनी ॥ ५ ॥

(१०२)

रे नर तूं जिन जांनै दूरै । रांम सकल भर पूरै ॥ टेर ॥
तूं जिस काज फिरैं नर भरम्यौ, अति उदासी डोलैं ।
मूरष मरम न [1]जांनै उंनकौं, उ घट[2] भीतरि बोलै ॥ १ ॥

---

(१०१) १. (ग) विचारै, (घ) सुजानै । २. (ख, घ) नाद । ३. (ख) अंतर, (ग) घटमै, (घ) अंतर जागै जोति अषंडी ४. (घ) षंडी । ५. (ख, ग) पचीसुं । ६. (ख, ग) जब निरभै हुय ।

* (ख, ग) में इसके बाद यह अधिक है—(ख, ग) एकोएकी होय (आस) निरासा, (ख) सुरित कीया वेहद मैं वासा, (ग) हदि छाडि करि वेहद वासा । ७. (ख, ग) सबै (कहै) विध जांणी । ८. (ख) जब, (ग) आपा आतिम मांहि पिछांणी ।

(१०२) १. (ग) पायौ । २. (ख) आपा, (ग, घ) उ तन ।

वेद कथा बौह करत विचारा, मन[3] स्वारथ कै मांही ।
जब तैं जांणि रह्यौ नर पाली, निज[4] पद पाया नांही ।। २ ।।
दुनीयां वेद व्यास [5]सब भूला, भाषै[6] आळ जंजाळुं ।
जनहरिरांम टळै नही टाळचौ, भगति[7] विनां भव काळुं ।। ३ ।।

(१०३)

रहीयै रांम रंग में डूब, चंगा राषि मन तन घूब ।। टेर ।।
साबा पीला लाल सपेता, केता रंग लगाय ।
जब लग रांम रंग नही [1]राता, ऊडत बार न लाय ।। १ ।।
सिर परि सांग पहरि[2] भयौ सांमी, छापा तिलक बणाय ।
जब लग हरि[3] की भगति न जांणी, संग दुनी कै जाय ।। २ ।।
करि करता पूजैं किरतम कुं, हेत[4] घणै हितकार ।
जब लग पेम पीयास न हरि की, माया मोह बिकार ।। ३ ।।
वेद पाठ[5] बौह करत[6] विचारा, अणभै ग्यांन [7]सुणाय ।
जब लग आपौ पोजत नांही, भूलौ और भुलाय ।। ४ ।।
बाजा राग छतीसुं सर करि, तण तण तांति बजाय ।
जब अंतर अनुराग न [8]उपजी, गाय भांवैं मत गाय ।। ५ ।।
जनहरिरांम रची है रंगति, करि करि अधिकी षांति ।
पेम पास दे रंगी पिछोरी, लगै न दूजी भांति ।। ६ ।।

---

३. (ख, ग) जुग परमोधन तांही । ४. (ख) मन कै दुविध्या मांही, (ग) मन परमोध्या नाही । ५. (ख) पिंडत व्यास (देपादेष) सकल जुग । ६. (ख) भाषत । ७. (ग) रांम भजन विन काळुं ।

(१०३) १. (घ) लागा । २. (ग) तन तैं वेस पलटि । ३. (ग) रांम भगति नही । ४. (ख) हरष । ५. (ख, ग, घ) कथा । ६. (ख, ग) ग्यांन, (घ) करत उचारा । ७. (ख) अरथ अधिक तैं लाय, (ग) अधिक अधिक सुं लाय । ८. (ख, घ) उपजै, (ग) जांणी ।

(१०४)

रहीयै नांव मैं गलतांन, नही [1]तौ जांहिगौ निसतांन ॥टेर॥
मारि दूंदर मेटी दुविध्या, धारि अधरा ध्यांन।
होय तन मन मांहि परचा, दाषीया गुर ग्यांन ॥ १ ॥
सबद कुहाड़ी सूड़ि सांसौ, सुक्रिथ[2] करि किरसांन।
नाज[3] निज कण बौहत नेपै, भूष दुप नसांन ॥ २ ॥
मन पौंणां[4] मिल लीयौ लाटौ, सिषर आई साष।
ग्यांन की भरि गूंण गाढी, लदे बाळद लाष ॥ ३ ॥
तत तांडै तणौ नायक, जाय समंदर पारि।
दास हरीया[5] आय बैठे, आर भार उतारि ॥ ४ ॥

(१०५)

संतो जाति न कारन कोय।
ऊंच नीच नर नांहि पटंतर, रांम [1]कह्यां गति होय ॥ टेर॥
वेद व्यास सींगी रिष बासिट, विस्वामित्र अजाति।
अगसत बालमीक कुस गोतम, हरि भज होय सुजाति ॥ १ ॥
कौंन बालमीक कुंन कीता, कौंन के नेरीपाव।
साध[2] साध मैं नां कोई अंतर, दोय टुक एक घाव ॥ २ ॥
दास कबीर जुलाहा जुग मैं, है रिवदास चमार।
रंका वंका केवल कूबा, कहीयै जाति कुंभार ॥ ३ ॥
कुंन दादू वषना बाजिंदा, मैंणा घाटम सेन।
गिनका भील भीलणी सिरीयां, फकर फरीद हुसेन ॥ ४ ॥

---

(१०४) १. (घ) तर। २. (घ) सुक्रत। ३. (घ) नांव। ४. (ख, ग) लोभ लालच। ५. (ग, घ) हरिरांमा घरि (जब)।

(१०५) १. (ख) भज्यां। २. (ख) भंगति मुगति कारण नही कुलकौ।

काळू छींवर[3] सजन कसाई, नांमा जाति अछेप ।
जनहरिरांम करम कुळ हीना, नांव सुं होय अलेप ॥ ५ ॥

(१०६)

संतो घर वंन कारण नांहि ।
एक नांव सब कौं निसतारौ, भजीयै अंतर मांहि ॥ टेर ॥
ब्रह्मा विसन सेस सिव[1] नारद, नर सुर पति ले[2] आदि ।
गिरही रिषव देव औतारा, और की[3] कौंन मुनादि ॥ १ ॥
धू पहीलाद मछंदर जोगी, राजा जनक वदेह ।
रिष दरवासा और परीषत, सीधा[4] नांव संनेह ॥ २ ॥
बाल जति नां कोई सुषदे सा, वन पंड वासा कीन ।
उलटा जिन गिरही गुर कीन्हा, जब हरि दरसन दीन ॥ ३ ॥
करमां मीरां और भीलणी, ध्रोवा कूंतां नारि ।
सीता अर[5] गिनका सिरीया दे, कब निकली घर बारि ॥ ४ ॥
अजामिल अमरीक [6]उधव से, अैसे और अनंत ।
जनहरिरांम रांम सिंवरन सुं, उधरे संत महंत ॥ ५ ॥

(१०७)

संतो नांव महातम एहा, कोई जांणै [1]साध संनेहा ॥ टेर ॥
मनसा वाचा नांव[2] करमना, नांव करै भ्रम दूरा ।
नांव सबै रिध सिध का दाता, मोष[3] मुगति अंकूरा ॥ १ ॥

---

३. (ख) सजना कीर ।

(१०६) १. (ख) सिनकादिक । २. (ख) संभुआदि जुगादि । ३. (ख) औरां । ४. (घ) उधरै । ५. (ख) सीत सती । ६. (ख) नारद सै ।

(१०७) १. (ख) परम, (ग, घ) रांम । २. (ग) नांव सकल का मेट पराक्रम, (घ) और । ३. (ग) नांव, (घ) नांव भया तप सूरा ।

नांव सकल जिग जोग भया तप , नांव आचार[४] विचारा ।
नांव सकल तीरथ व्रत साधन , निसदिन[५] करत उचारा ॥ २ ॥
नांव सकल [६]विध वेद पुरांनां , नांव सकल का टीका ।
ब्रह्मा विसन आदि दे[७] ईसर , नांव कहैं से[८] नीका ॥ ३ ॥
नांव नकेवल नांव [९]निरूपी , नांव धरे[१०] अवतारा ।
नांव निरंजन[११] अलप अजोनी , नांव सकल सुं [१२]न्यारा ॥ ४ ॥
नांव सकल का सारत काजा , मेटै विषै [१३]विकारा ।
नांव भया जुग मांहि जहाजा , ले उतरै भव [१४]पारा ॥ ५ ॥
नांव सकल संमृथ सुषदाई , नांव सकल सिर होई ।
जनहरिरांम नांव[१५] निज महमा , कहत[१६] सुणत सब कोई ॥ ६ ॥

(१०८)

रांम धन अैसा रे मेरा भाई ॥ टेर ॥
यौं धन तन मन साटै लीजै , प्रेम[१] प्रीत [२]लिवलाई ।
निसदिन[३] सुरति धरौ या धन मं , नही तौ लीया न जाई ॥ १ ॥*
यौं धन जांनि सहज का सौदा , हठि पचि मरै बलाई ।
या धन कुं विरला जन [४]जांणै , जण जण[५] हाथ न आई ॥ २ ॥

---

४. (ग, घ) सकल आचारा । ५. (ख) जे कोई, (ग) जे कोई लहै विचारा । ६. (ग) भया । ७. (ख) ब्रह्मा सिंभु विसन आदि दे, (ग) सेस सिव ध्यावै । ८. (ग) नांव सकल मैं । ९. (ग) नांव सकल मैं रूप अरूपी । १०. (ख,ग) सकल । ११ (ख, ग) अपंपर । १२. (ख) मैं सारा, (ग) भेद नही संसारा । १३. (ख, ग) जै कोई नांव उचारै । १४. (ख, ग) पारै । १५. (ग) कहा कहूं । १६. (ख) कहीया पार न, (ग) आदि अंत नही कोई ।

(१०८) १. (ख, ग) हेत । २. (घ) उलषाई । ३. (ग) जो जन जांणि लिवै या धन कुं, सुरित निरत ठहराई । * यह पंक्ति (घ) में नहीं है । ४. (ख, ग) पावै । ५. (ग, घ) तिण ।

या धन मांहि [६]परै नही तोटा, षोटा कबुयन षाई।
जो नर या धन कुं नही [७]धारै, जनम जनम पछताई॥ ३॥
या धन कुं जम[८] डंड न चोरा, लाय लगै नही काई।
जोषा जंत नही या धन कुं, घुन ईली नही षाई॥ ४॥
यौ धन जांनि जिको नर [९]संचै, सब संपति सुष दाई।
पावै[१०] भाग पूरब लै सेती, करणी [११]करम लिषाई॥ ५॥
जनहरिरांम गुपत धन पाया, परगट कहि दिषलाई।
जुग में जांणि लहै जौ कोई, करि सतगुर ओलषाई॥ ६॥

(१०९)

राग पंजाबी

चेतैं क्यौं न मूंढ अजांन॥ टेर॥
देष सकल जुग जांवता, थिर नही दीसै कोय।
इन मैं कोय न [१]संगी तेरा, कली[२] काल के लोय॥ १॥
जांमण मरणा एक है, ऊंच नीच सब मांहि।
रांम भजैं से ऊबरै, नही'स परलै जांहि॥ २॥
नर तन तेरा षूब है, करि इन थकै सलूष।
या[३] औसर वीतां पछै, बौहत सहैंगौ [४]दूष॥ ३॥
लोक लाज काज कुल [५]सेती, पचि पचि मरत गिवार।
जनहरिरांम कहै विन [६]सांई, और न तेरा यार॥ ४॥

---

६. (ख) भवे, (ग) यो धन विणज लाभ। ७. (ख, ग) जांणै। ८. (ख, ग) कोई। ९. (ग) या धनसा संचा नही कोई, (ख, ग) कहूं काळ नही जाई। १०. (ख) कुछीयेक, (ग) यो धन। ११. (घ) लेष।

(१०९) १. (ग) वारो वारी ऊठगे। २. (ग) आज। ३. (ख, ग) यो (विछड्यौ) औसर फिर नावसी। ४. (ख) इन काया इन कूष। ५. (ख) कुल मांही, (ग) कुलकार मैं। ६. (ख, ग) हरिरांमां हरि नांव विनांई, (ग) कौन निभावन हार।

(११०)

कलाळी सोई पीयाला पाई ॥ टेर ॥
सोई पीयाला पी रिष नारद, सो सिनकादिक प्यास।
सोई पीयाला जनक वदेही, सोई सुषदे व्यास ॥ १ ॥
सोई पीयाला पीया परीपत, सोई धू पहलाद।
सोई पीयाला दत दिगंबर, लीया सुष सहलाद ॥ २ ॥
सोई पीयाला पीया मछंदर, सोई गोरप [1]नाथ।
सोई गोपीचंद भरथरी, पी पी[2] होय सुनाथ ॥ ३ ॥
सोई प्रीयाला पी रांमानंद, सोई कबीरै दास।
सोई कमाली पीया कमालै, सोई सेन पवास ॥ ४ ॥
सोई पीयाला पीयैं संत [3]सब्र, हिरदै[4] करि करि हेत।
जनहरिरांम [5]कहै सोई पीयै, तन मन पहली [6]देत ॥ ५ ॥

(१११)

राग केदारौ

यौं मन ठगारा नही ठौर।
पांच इन कै और संगी, करत [1]विषीया दौर ॥ टेर ॥
हीर मांणिक रतन मोती, मांन[2] सरवर मांहि।
मरजीया सो काढि[3] ल्यावैं, और कुं गम नांहि ॥ १ ॥
त्याग[4] माया छोडि[5] मिंदर, पहरि[6] वांना भेष।
उलटि आपौ नांहि पोजै, धरत औरां[7] धेप ॥ २ ॥

---

(११०) १. (ख, ग) जांनि। २. (ख) पीया पीव पिछांनि, (ग) पेम कल्हाळी आंनि। ३. (ख, ग) सो प्याला सब्र संतन पीया। ४. (ख) करि करि हरिसुं नेह, (ग) सिर कै साटै लेह। ५. (ख) पीयैगा सोई, (ग) पियाला पी करि। ६. (ख, ग) अपना तन मन देह।

(१११) १. (ग) दौरा। २. (ख, ग) सुनि। ३. (ख, ग) लाभि लेसी। ४. (घ) महल। ५. (ख) मोह, (ग) छोड़ि घरकुं। ६. (घ) धरत। ७. (ग) धरत रागा, (घ) और ऊपर।

गंग नाहण चले संगा, करण[8] लोका चार।
पंथ[9] पुलीयां पारि नांही, विनां ग्यांन विचार ॥ ३ ॥
राज काजै[10] भया तपसी, करत तन कुं छींन।
आप मन तैं होय[11]मोटा, और देषत[12] हींन ॥ ४ ॥
जोग साझ न[13]भया असटंग, कंभ रेचक पूर।
देह आसा मिटी नांही, निरासा घर दूर ॥ ५ ॥
वेद पढि पढि[14]भया पिंडत, जोग जोतिग जोय।
और कुं दिन मांन[15]दाषै, आप षवरि[16]न होय ॥ ६ ॥
करौ[17]करणी धरौ ध्यानां, एक तन मन[18]वाच।
मोह माया मिटै तेरी, रांम हिरदै[19] राच ॥ ७ ॥
साध संगति सदा[20] गहीयै, नीच संग[21] निवारि।
दास हरीया कहै[22]जुग मैं, डूबतां कुं[23] तारि ॥ ८ ॥

---

८. (ख, ग) अंग (आप) करन उधार। ९. (ख, ग) विना निहचै पारि नांहि, सांग सब्र संसार। १०. (ग) त्याग तप करि। ११. (ग) मांनि मोरा होय मन मैं। १२. (ख) जानत, (ग) ब्रह्म कुं नही चीन। १३. (ग) कीया जोगी, बैठ आसन पूर। १४. (ख) अरथ आनै, (ग) भेद ठानै, देष पुसतक मांहि। १५. (ख, ग) उपदेस दाषै (आवै)। १६. (ख) धरम अपनौ षोय, (ग) आप गुर भ्रम नांहि। १७. (ग) रहौ रहणी। १८. (ख, ग) अगम चीनौ साष। १९. (ख, ग) दीन करणा दाष, (घ) अहनिस। २०. (ख, घ) साची, (ग) साहि संगति साच वेली। २१. (ख, ग, घ) कूड़ कुसंग। २२. (ख, ग) हरिरांमा हरि नांव गहियै (धारौ), (घ) हरिरांमा हरि भगति गहीयै। २३. (ख, ग) ल्यै, (घ) अंत लेसी तारि।

(११२)

राग सोरिठ

कोई मन मिरघा कुं मारै रे ।
तन षेती में चरि चरि जावै, है नही मेरै सारै रे ।। टेर ।।
मिरघा एक पांच हैं हिरनैं, लारि पचीस लवारै रे ।। १ ।।
भरम[1] करम इनका हैं संगी, जे कोई दूरि विडारै रे ।। २ ।।
निसदिन नांव करत रुषवाली, ग्यांन ध्यांन सर धारै रे ।। ३ ।।
उलटी[2] दिष्ट मुष्ट विन[3] संधै, सुरति निरत नही टारै रे ।। ४ ।।
सील की वाड़ संवार चहुं दिस, पेम की फांसी डारै रे ।। ५ ।।
जनहरिरांम मारि मन मिरघा, सब ही कांम सुधारै रे ।। ६ ।।

(११३)

रांम[1] तेरी भगति कठण कुंण जांणी, विरला[2] संत पिछांणी ।। टेर ।।
धूंप काल में धूंप सहत है, सीत काल मैं सीता ।
सीत उसन दोऊं तैं न्यारा, करि कोई पावै[3] प्रीता ।। १ ।।
सब कोउ चाहत है सुष कुं, दुष कुं कोय न चाहै ।
दुष सुष भुगति भवे नही छूटै, जो कुछि भाग[4] लिष्या है ।। २ ।।
निरधन कै चिंत्या जौ धन की, धनवंत फिरत[5] अघाया ।
या[6] दोऊं का मिटै न संसा, जब[7] संतोष न आया ।। ३ ।।

---

(११२) १. (ग) आपो आप मतै फिर आवै, चहूं दिस करत विगारै रे ।
२. (ख, ग) एको । ३. (ग) करि ।

(११३) १. (ख) हरि । २. (घ) सब संतन कै मन भानी ।
३. (ग) पावेगा नितु । ४. (ख) भाग लिष्या अगिला है, (ग) जो लिषीया अगला है । ५. (ख) रहत, (ग) रहत अघाया । ६. (ख) जब, (ग) कब । ७. (ख, ग) मन ।

ग्यांन सीष ग्यांनी हुय बैठा, का मोनी[8] मस वासी।
आसा पासि मिटी नही [9]जीवकी, काल गया जब[10] ग्रासी॥ ४॥
स्वांति रूप स्वांति पद परसै, त्रिसना [11]ताप जरांई।
आडी उर उपजै सो [12]आवै, देव न दोस दिरांई॥ ५॥
घर मांही ग्रेह[13] आळ जंजाळा, बन मनवौ थिर नांही।
अैसैं डिग मिग मेट [14]आपनी, रांम भजौ घट मांही॥ ६॥
वाकै[15] मात पिता नही बंधु, रमता रांम [16]कहाया।
है मांही न्यारै कौ [17]न्यारौ, जिन सिवखा तिन [18]पाया॥ ७॥
जनहरिरांम [19]रांम तुझि महमा, सुष [20]भरि क्या कहि गांउं।
रोम रोम आतम सुप मेरैं, पार न तोरां पांउं॥ ८॥

(११४)

माधौ[1] मैं हुं चाकर तेंरा, राषि चरन सुं नेरा॥ टेर॥
मैं[2] दुषीया काहे दालदरी, तेरै कमी न काई।
दीन बंधु दाता सब ही [3]का, भाग धरापति पाई॥ १॥

---

८. (ख, ग) मोनि गह्यां। ९. (ख) उंनकी, (घ) मनकी। १०. (ख) जीव लेग्या जम, (ग) सो जमपुर का वासी, (घ) जावै काळ घरासी। ११. (ख) तपति। १२. (ग) जो जाकै जैसी उर उपजै। १३. (ख) जुग, (ग) कुल करम। १४. (ख, ग) अैसैं तक तोला मत करि हो। १५. (ग) याकै। १६. (ख, ग) कहाई। १७. (ख, ग) है घट (घट घट) मांहि सकल सुं न्यारा। १८. (ख) सिवखांई सुप पाई, (ग) उलटि सुरत लगाई। १९. (ख, ग) अनंत हरि (है), (घ) नांव। २०. (ग) सुं, (घ) तैं।

(११४) १. (घ) माधव का चाकर मैं हूं हो, आदि अंत मधि नांव तमारौ, पारि उतरणा ते हूं हो। २. (ख) हम, (ग) मैं निरबल दुष दालद भरीया, तैं विन आसन काई। ३. (ग) हरिसा दाता को नही कहीयै।

तीन लोक का ठाकुर तम हौ, और किसी कुं[४] जाचुं।
तम हरता तम ही हो करता, नाच नचावैं [५]नाचुं॥ २॥
का मैं देस दिसंतर डोलुं, का बैठुं घर मांही।
डिग मिग मिटै नही इन जीवकी, कारिज सरै न कांही॥ ३॥
जौ मैं वास करूं वन वन मैं, मनवौ रहण न पावै।
घर मैं धक्का धूंम बौह तेरा, कहि[६] कैसी विन आवै॥ ४॥
मुझि औगुण का छेह न कोई, तुझि गुणवंता सांई।
जनहरिरांम [७]रषौ तांह रहीयै, हरि तरवर की छांई॥ ५॥

(११५)

हे जा य जिंदरी, तैं जोगी रौ न जांण्यौ भूंडी भेव।
जोगी आदि जुगादि रौ, तुं करि करि मुई कुसेव॥ टेर॥
जोगी एक न जांणीयौ, बौह मन बैठी लाय।
जोगणि जोगी वाहिरौ, पल मैं जाहि विलाय॥ १॥
चेतन थकी न चेतीयौ, पीछै भई अचेत।
जोनि गहेसी मोनि मुष, रसनां [१]नांव न लेत॥ २॥
सैंणां सेती रोसणौ, असैंणां[२] सुं गूझ।
सांम संनेही नां कीया, औरां[३] रह्या अळूझ॥ ३॥
निजर न [४]आया जोगीया, रही निहारि निहारि।
अैसा[५] जुग मैं को नही, जोगी री उंनिहारि॥ ४॥
जोगी राष्यां ना रहै, जोगी रमता रांम।
सुरति निरत करि [६]देषीया, जोगी तणां मुकांम॥ ५॥

---

४. (ख) और न किस कुं, (ग) किसी पै जाऊं।
५. (ग) तौ सरनागत पाऊं। ६. (ख, ग) करणी क्या विन।
७. (घ) कहै जांहा राषौ।

(११५) १. (ग, घ) रांम। २. (ग) कुसैंणां। ३. (ख) घरही।
४. (ख, घ) देष्या। ५. (घ) सारा तन फिर जोईया।
६. (ग) जोईया।

जननी जिन्यौ न जोगीयौ, पिता न [7]उंन कै कोय।
हरिरांमा आतम जोगी, जिंद भीतरि जोय ॥ ६ ॥

(११६)

संतो करक कलीजै मांही, हरि विन भाजै नांही ॥ टेर ॥
सूती ही सपनै मैं जांनु, सहीत[1] आये सैंन।
आधी हुय हुय मिलवा[2] लागी, ऊघरि आये नैंन ॥ १ ॥
तम [3]तौ अंतरजांमी कहीयौ, मुझि मांहि लड़ी जांनौ।
मुसकलि होय हमारै मनमैं, तम करतां आसांनौ ॥ २ ॥
राज पाट [4]सुंदरि सुत वित ही, दूजा सुष संसारा।
एता परित न मांगुं कबहु, रांम नांम विन षारा ॥ ३ ॥
जनहरिरांम कहै [5]कुछि कीजै, दीजै दरसन तेरा।
अरस परस मिल तोहि[6] मिटावौ, आवन[7] जावन मेरा ॥ ४ ॥

(११७)

जांमण मरण रांम राय दोय दुष मेरै,
काटत छिन एक वेर नही तेरै ॥ टेर ॥
तम निरमल रांम राय मैं मल देहै,
कैसैं आय करूं [1]अस नेहै ॥ १ ॥
तम परमल रांम राय मैं भंवरे है,
संग न छाडुं मांहि मरें है ॥ २ ॥
हम तम काजै रांम राय वन वन हेरै,
निसचै नांव[2] बताया नेरै ॥ ३ ॥

---

७. (ख, ग, घ) इनकै।

(११६) १. (घ) सही पधारै। २. (ख, ग) निरषण। ३. (ख) हरि तम, (ग) आतिम। ४. (ख, ग) सुत वित हैं सबही, सुंदरी सुष। ५. (ख, ग) मो दीजै, दिल मैं दर०। ६. (ख, ग) दूरि गमावौ, (घ) मोह। ७. (ख, ग) आडा भरम अंधेरा।

(११७) १. (ग) पीव मिलुं करि नेहै। २. (ख, ग) पीव।

आजक काल्हे रांम राय सिंझ सवेरैं,
तुझि निरास मुझि आस नवेरैं ॥ ४ ॥
जनहरिरांमा रांम राय सहज मिले सैं,
भांजि[3] भरम क्रम कोंटि कलेसैं ॥ ५ ॥

(११८)

प्यारीजी नौ पीव वसैं परदेस ।
किन संग पेलुं षेल सजनी, हीयौ हिलोळा लेस ॥ टेर ॥
आवौ आज अजोंनी मेरैं, अबला अरज[1] करेस ।
जोंवती जुग च्यारि वीता, पलटि[2] के केवेस ॥ १ ॥
सुष सागर दुष हरन देवा, निता नंद नरेस ।
पीतमा तिहुं लोक तारण, ताहि विड़द वहेस ॥ २ ॥
दूरिती मैं [3]भई नैरी, करुं तन मन पेस ।
और [4]सांईं मेट संसा, आपनी करि लेस ॥ ३ ॥
साम सेवग राषि[5] सरणै, सकल काज सरेस ।
दास हरीया अधर [6]धरणी, धस्या नांहि धरेस ॥ ४ ॥

(११९)

मनरे गुरू का उपकार ।
विनां कूंची षोलि ताला, मुगति का भंडार ॥ टेर ॥
वेद विन बौह[1] भेद भेद्या, कह्यां[2] सुणीयां नांहि ।
सहज ब्रह्मा पढै पोथी, एक अछर मांहि ॥ १ ॥

---

३. (ग) जहां कोई आय न जाय अनेसै ।

(११८) १. (ग) साद । २. (ग) मरण मांहि मरेस, (घ) पलटिगे । ३. (ख, ग) जांनि । ४. (ख, ग, घ) सतगुर । ५. (ख, ग) सकल सेवग साम । ६. (ग) हरिरांमा के अधर वर है, (घ) हरिरांमा जन अधर ।

(११९) १. (घ) एक । २. (ग) सीध ।

उलटि हदि कुं [3]चड़्या वेहद , वंक नाळी पूर ।
इला पिंगला वीच सुषमिण , निरष आतम नूर ॥ २ ॥
विनां वाती जोति झिल मिल , अषंड दीया लोय ।
देह विन वदेह पुरषा , लहै महरंम सोय ॥ ३ ॥
पंष विन एक जांनि भवरा , विनां वाड़ी वीच ।
हरिरांमा रह रास न्यारा , कवल कदम न कीच ॥ ४ ॥

(१२०)

जीवरे जुगति सुं करि जीण ।
पांच पायक पेल पैदल , मांनका गढ लीण ॥ टेर ॥
सुरति घोड़ा निरत साषति , पिम्या करि पुरगीर ।
पागड़ां पग देत सासा , डाकि पैली तीर ॥ १ ॥
चौकड़ै चित धारि चौकस , लगांमी लिव लाय ।
पेम की सिर पहरि पाषर , अगम दिस कुं ध्याय ॥ २ ॥
तन तरगस बांधि गाढा , गहौ ग्यांन[1] कवांण ।
ध्यांन मूठी धारि उंन मुंन , सबद लावौ बांण ॥ ३ ॥
सुधि बुधि बंदूक साहौ , वचन गोळी वाहि ।
जांमगी सिलगाय जतनां , ढिग दूंदर ढाहि ॥ ४ ॥
सेल सिवरण साहि सहजां , तत करि तरवारि ।
हरिरांमा जन एह औसर , जीत नावै हारि ॥ ५ ॥

(१२१)

राग जैतश्री

द्वारै दास की , सेवा किस विध होय ॥ टेर ॥
आदर भाव नही हस्य बोलन , गरवा तन नही ग्यांन ।
पेम न प्रीत नही कोई नेमा , धरम न हरि कौ ध्यांन ॥ १ ॥

---

३. (ख) चले, (ग) देष ।
(१२०) १. (घ) ग्यांन गह कम्रांण ।

नही गरीबी ब्रिंदगी, लुघता कौं नही लेस।
दया न काहू दीनता, नां गुर कौ उपदेस॥ २॥
पूजै डंभक पाषंडी, औगुण भरीया अंग।
जनहरिरांम कहै निसदिन मैं, रातौ व्रिषीया रंग॥ ३॥*

(१२२)

सोई अभागीया, हरि सुं नांहि संनेह।
माया मोह मगन भयौ मन मैं, व्रिषीया[1] सेती नेह॥ टेर॥
रांम नांम चेत्यौ नही, बालक तरणा मांहि।
पीछै पाव[2] थकै सिर कंपै, अंषीयां सूझै नांहि॥ १॥
औसर मिनषा देह कौ, भूंदू[3] पणै न भूलि।
आयौ हीरौ[4] गाठि सुं, कबह'क[5] जासी षूलि॥ २॥
कूड कपट फिर फिर कीया, सा आज [6]आघा होय।
आवै वरीयां [7]अंतकी, कारिज[8] सरै न कोय॥ ३॥
विणज वटा धन बौह कीया, आप[9] सुवारथ जांनि।
निज परमारथ[10] बाहिरौ, आषरि ह्वैगी हांनि॥ ४॥
वार वार मैं क्या कहुं, कह्यौ न मांनै कोय।
अैसैं कीरौ आक कौ, अब कहां रय होय॥ ५॥
या जुग मांही आयकै, केता कांम कमाय।
जनहरिरांम[11] भजन विन एकै, न्याय रीता[12] नर जाय॥ ६॥

---

(१२१) * (ख, ग) में यह पद नहीं है।
(१२२) १. (ख, ग) है विषीया सुं। २. (ख, ग) पांव थक्या सिर कंपीया। ३. (ख, ग) और न या सै तूल। ४. (ख, ग.) ज्युं कोई हीरौ लाभिकै। ५. (ख, ग) जाय पलै सुं, (घ) जाहि जतन विन। ६. (ख, ग) साच कथ्यौ नही कोय। ७. (ख, ग) लोक लाज कुल काज करे करि। ८. (ख, ग) आप (जाहि) जमारौ षोय। ९. (ग) स्वारथ सेती जांनि। १०. (ग) सिवरन सौदा बाहिरौ। ११. (ख, ग) हरिरांमा हरि नांव विहूणा (भगति विन)। १२. (ग) सेई रीता जाय।

(१२३)

सोई सभागीया, हरिसु मांडै हेत।
हेत विनां निपजै नही, बीज विनां ज्युं षेत ॥ टेर ॥
आप गरीबी आदरै, और गिनै[1] वलवांन।
संसा[2] सोग धरै नही मन मैं, नां कोई मांन[3] अमांन ॥ १ ॥
संगति करि है साधकी, परिहरि[4] दूजी ताति।
आंनि अहूं नही[5] ईरषौ, रांम सिवरि दिनराति ॥ २ ॥
एक [6]नांव हिरदै धरै, पतिव्रत[7] गुरु कौं लेह।
आगै आगै संत भया हैं, सो याही कहि[8]गेह ॥ ३ ॥
लोक वेद[9] नही वासना, आंन जपै नही जाप।
जनहरिरांम[10] कहै उन सेती, सीत[11] लगै नही ताप ॥ ४ ॥

(१२४)

सो[1] वड भागीया, षालिक सुं मिल पेल।
दंद वाद सुं [2]रहत है, पांच पचीसुं पेल ॥ टेर ॥
उलटा मन गिगनां[3] कीया आसन, हठि पचि[4] मरना नांहि।
पिंड ब्रहमंड [5]पवन भया परचा, सुरति सबद कै मांहि ॥ १ ॥

---

(१२३) १. (ख, ग) भया वलवंत। २. (ख) जुग सेती हाथ्या फिरै, जीता नांव लिवंत, (ग) सब जुग सुं हाथ्या फिरै, एको नांव लिवंत। ३. (घ) मांन गुमांन। ४. (ख, ग) और न काई। ५. (ख, ग) आसन किन सुं, (घ) अहूं न आनै। ६. (ख, ग) रांमनांम। ७. (ख, ग) तन मन गुरकुं देह (त)। ८. (ग) लेत। ९. (ख, ग) कांम न काई कलपना। १०. (ख, ग) हरिरांमा जिन (कहै) संत कुं, (घ) हरिरांम कहै संतन कु। ११. (ख) लगै न ठंडा ताप, (ग) लगै न तीनुं ताप।

(१२४) १. (ग) है। २. (ग) जुग मांहि न्यारा रहै। ३. (ख, ग) सहजां। ४. (ख) तप करणा, (ग) करि मरणा। ५. (ख, ग) भया है, (घ) अषंड।

आठ पौहर आनंद रहै [6]मन मैं, रोम रोम जस गाय ।
जाति न पांति वरण नही जाकै, वा सुं ध्यांन लगाय ॥ २ ॥
चित चौथै चेतन[7] कीया मेला, बोलै अनहद बैंन ।
आतम एक सकल करि देषै, दुरिजन नां कोई सैंन ॥ ३ ॥
भरम करम संसा नही [8]कोई, आसा छाडि निरास ।
जनहरिरांम सबद[9] कीया सुन्यमैं, एक[10] अषंडी वास ॥ ४ ॥

(१२५)

मेरे मन रांम सुं षूब वनी, घिल काहू कै कोय धनी ॥ टेर ॥
रांम ही हरता रांम ही करता, रांम[1] हमारै बेली ।
या कुं छाडि किसी पै जांउं, आसै पासि अवेली ॥ १ ॥
रांम सरग मध्य रांम पीयाले, रांम का सकल पसारा ।
तन जोबन धन रांम का दीया, सास न एक विसारा ॥ २ ॥
रांम ही आदि अंत हैं रांमां, रांम सदा हैं[2] संगी ।
घट घट[3] भीतरि रांम विराजै, भजीयै[4] जांणि अभंगी ॥ ३ ॥
रांम नांम[5] सा और न कोई, तीन लोक फिर आया ।
जनहरिरांम भया सुष जब ही, हरि[6] अंतर मैं पाया ॥ ४ ॥

---

६. (ख, ग) मंगल । ७. (ख) घर कीया वासा । ८. (घ) सोगा । ९. (ख, ग) कीया है संतो । १०. (ख) सुनि महल मैं, (ग) नांव नकेवल, (घ) एक निरंतर ।

(१२५) १. (ख) या विन और अवेली, (ग) आसै पासि अवेली । २. (घ) संग भीरा । ३. (घ) रांम भजन भवसागर मांही । ४. (ख) या कुं, (ग) या विन और असंगी, (घ) पारि उतारे तीरा । ५. (ख) एक रांम सा, (ग) रांम सरीषा । ६. (ख) नांव निरंतर, (ग) रांम निरंतर, (घ) रांम निरजन पाया ।

(१२६)

हरजी कौ मिलवौ, कहौ कैसी विध होय।
औघट घाट विषम डर आडा, संग न साथी कोय ॥ टेर ॥
विच [1] है मोह माया की नदीयां, पीव षरा पर [2] तीर।
विन षेवटीया न्याव न चालै, मो [3] वस नांहि सरीर ॥ १ ॥
पीव प्यारै कुं कहि कहि भेजुं, संदेसा मुझि [4] मांहि।
नैणां निरषुं नूर [5] तमारौ, जा दिन कुं बलि जांहि ॥ २ ॥
जोबन जाहि जुरा तन व्यापै, अबला बल नही काय।
धण [6] पीया विन षरी दुहेली, अब ही द्यौ सुष [7] आय ॥ ३ ॥
करि मन कुं षेवटीया [8] बेली, रांमो [9] नांम जिहाज।
जनहरिरांम हो [10] भव पारा, सहज सरे [11] सब काज ॥ ४ ॥

(१२७)

सुणि [1] नर नारीयां, अपणौ पीव पुकारि।
नही तौ परलै जावसैं, लष चौरासी धारि ॥ टेर ॥
सतगुर सबदां सो कह्यौ, मनवा ताहि न भूलि।
ऐसौ कलि मैं को नही, रांम नांम सैं तूलि ॥ १ ॥
साध विनां कुण सीषवै, रांम भजन की रीत।
बूडा वेमुष [2] बापडा, करि करि जुग सुं प्रीत ॥ २ ॥

---

(१२६) १. (ग) वहै। २. (ग) परदूर। ३. (ग) पौहचुं केम हजूर। ४. (ख) सनेसा मुझि, (ग) दिल। ५. (ग) यार हमारौ। ६. (ग) मो। ७. (ग) देष्यांई विन आय। ८. (ग) दिल करि सागर मन षेवटीया। ९. (ग) है निज। १०. (ग) बैठ। ११. (ग) सारत सबही।

(१२७) १. (घ) सुणौ। २. (ख, ग) साषत (साकट), (घ) से नर।

यारी हरि सुं कीजीयै, दूजा दाव निवारि।
पासौ पीव सुं षेलतां, कदे न आवै हारि ॥ ३ ॥
साध मिल्या सुष संपज्या, उपज्या उर[3] आणंद।
जनहरिरांम[4] कहै बलि जांउं, जिन मेट्या दुष दंद ॥ ४ ॥

(१२८)

राग जैजैवती

लीजै लीजै रांम नांम, अहनिस जाग रे।
यौ ही जिग जोग ध्यांन, परम वैराग रे ॥ टेर ॥
नांव सेती बंधी पाज, काज जनकादकी।
जिन नांव हूती तारे, गिनका विषाद की ॥ १ ॥
पतित उधारे [1]नांव, अजामेल साद की।
आपनौ भगत जांनि, करी[2] वाज नाद की ॥ २ ॥
ध्रोवा[3] कौ वधार्यौ चीर, जिन वेर याद की।
टेर सुनि वैग[4] आए, पीर पसु वाद की ॥ ३ ॥
अैसे हू अनंत[5] तारे, संत फरीयाद की।
जांनै जांनै[6] कौन गति, हरीया[7] अग्याद की ॥ ४ ॥

---

३. (ख) निज, (ग) मन, (घ) परम। ४. (ख, ग) हरिरांमा वलि जाहि उसी कुं।

(१२८) १. (घ) रांम। २. (ख, ग) वाज संष नाद की। ३. (घ) द्रोपां। ४. (ख, ग) आप। ५. (ख, ग) अैसैं हरिरांम तारे, अनंत फिरादकी। ६. (घ) हरिरांमा न जानै गति। ७. (ख, ग) अगम।

(१२९)

राग मल्हार ❀

अब रांम सिवर नर वावरे ॥ टेर ॥
जिन औ तन विन टाची घरीयौ, जासु चित लगाव रे ॥ १ ॥
जिन रसना विच विवरौ कीनौ, जपतौ वेर न लाव रे ॥ २ ॥
तन मैं सास किता दिन तेरै, कुछि कर वैग उपाव रे ॥ ३ ॥
हरि भगति न की संगत करीयै, पलक घड़ी दिन पाव रे ॥ ४ ॥
जनहरिरांम कहै निसदिन मैं, जपता वेर न लाव रे ॥ ५ ॥

(१३०)

राग कनड़ौ

हरि वेमुष नर जनम गमायौ । कंचन वदलै काच वसायौ ॥ टेक ॥
एकन उदर भरन कै काजा । कोट करम नर करत अकाजा ॥ १ ॥
पाहन पूजि आंन कुं ध्यावै । आपा आतम देव न पावै ॥ २ ॥
वेद पुरांन पढे पढि गीता । रांम भजन विन रहगया रीता ॥ ३ ॥
जनहरिरांम सवद गुर भेट्या । जनम मरन का संसा मेट्या ॥ ४ ॥

(१३१)

आज महादिन आए दरसन । पीतम यार मिले मन परसन ॥ टेक ॥
पंच सषी मिल पूछत वाता । आए साम कहौ कुसलाता ॥ १ ॥
आए दास भाव तहां जाउं । भगति भाव विन और न पाउं ॥ २ ॥
परि पूरबली प्रीत पिछांनी । अंतर मांहि मिले आसांनी ॥ ३ ॥
विनां वचन सुंनि बौलै वैंनां । गुझि सलुणै अपणे सैंनां ॥ ४ ॥
सांई आसि पासि भरपूरे । नैणां निकट न जांउ दूरे ॥ ५ ॥
जनहरिरांम दास के दासा । सुनि सुहाग वसाया वासा ॥ ६ ॥

❀ यहाँसे अन्तिम संख्या १७८ तकके पद प्रायः 'घ' प्रतिमें ही उपलब्ध हैं, अतः उसीसे लिये गये हैं।

(१३२)

यौं भजि पूरण परमानंदा । मंगल करण हरण दुष दंदा ॥टेक॥
नर सुर नाग लोक तिहुं नायक। निज मन सदा सकल सुष दायक॥१॥
त्यागै भरम करम मिमता कौ । धरत ध्यांन परमनिध वाकौ ॥ २ ॥
निरभै नांव भजै नर नित हू , ना कबहु पल मंझि विसारै ।
उनमुन ध्यांन धरै निसवासुर , जनम मरन का संसा टारै ॥ ३ ॥
हरि हितकार साध सत संगति , भाव भगति परमा गति भेवा ।
जनहरिरांम राम पति पावन , पद वंदन आतम गुर देवा ॥ ४ ॥

(१३३)

राग विलावल

जब घट लागी जांणीयै , लिव ऐक अषंडा ।
षेलै षेल निरास हुय , वासा ब्रह्मंडा ॥टेक॥
नहचै नांव निसंक भजि , तजि भरम मनु का ।
उच नीच मधि एक है , सांई सबनु का ॥ १ ॥
अरध उरध बाजार मैं , विन हाट विसांणा ।
विन पुंजी व्यौपार हुय , आपै आसांणा ॥ २ ॥
कुछि क्यरीया कुछि भाग भल , कुछि गुर गम गैला ।
कुछि पूरब परताप तैं , पाया पद पैला ॥ ३ ॥
जनहरिरांम मैं जिंद मैं , भेट्या अविनासी ।
जांमण मरण मिटाय कै , टाली जम पासी ॥ ४ ॥

(१३४)

एकै माँही अनंत है, अनतु मै एको।
मन महरम कुं पाय कै, हुवा एकमेको ॥टेक॥
अछती माँही छति है, छति माँही अछती।
वसती माँही सुनि है, सुनि माँही वसती ॥ १ ॥
या जल सेती लूण हुय, लूणा फिर नीरा।
सतगुर सेती सिष भया, सिष सु गुर पीरा ॥ २ ॥
पांणी तैं पाला हूवा, पाला फिर पांणी।
युं सिव हु ते जीव हुय, जीव सीव समांणी ॥ ३ ॥
सासा माँही उसास है, उसासा मैं सासा।
हरिरांमा हरि मुझि मैं, हरि मैं हरिदासा ॥ ४ ॥

(१३५)

ता घर सता समाधि है, हम सो घर लहीया।
एक अषंड घट भीतरै, अकहा जू कहीया ॥टेक॥
रहता सु रहता है, जाता नही जांणै।
रोम रोम ररंकार हुय, ताही सुष मांणै ॥ १ ॥
उलघ मेर आकास मैं, वाए अनहदा।
निरदावै निरदंद हुय, वसीया वेहदा ॥ २ ॥
पद परमानंद परस कै, जीवत ही मूवा।
अपना आपा पलटि कै, निज मनवा हूवा ॥ ३ ॥
दिष्ट न आवै मुसट मैं, नही रूप न रेषा।
हरिरांमा परि सुनि मैं, मुझि मील्या अलेषा ॥ ४ ॥

(१३६)

राग गुड विलावल

हरिजन आए मन रळीयां, हिवड़ौ फूल्यौ वन कळीयां ॥टेक॥
जो दिन धिन मिल हरिजन हो, धवल मंगल घर आंगन हो ॥ १ ॥
वचन वचन सुष विलकुल हो, वार फेर लेउ घांघल हो ॥ २ ॥
जां दीठां दिल ठाडा हो, प्रेम प्रस्न भया गाढा हो ॥ ३ ॥
हरिरांमा हरिदासा हो, परम जोति मैं वासा हो ॥ ४ ॥

(१३७)

ता दिन संत पधारे हो, आनंद मंगल चारे हो ॥टेक॥
हरिजन हरि का प्यासा हो, परस पाप का नासा हो ॥ १ ॥
तन मन वाकै चरना हो, प्रेम प्रीत उर धरना हो ॥ २ ॥
विषीया वाद निवारी हो, सुरति कुं वलिहारी हो ॥ ३ ॥
वां मिलीयां सुष सारा हो, वूठां इम्रत धारा हो ॥ ४ ॥
जनहरिरांम नियारा हो, तीन ताप गुन टारा हो ॥ ५ ॥

(१३८)

रांम नांम ध्रत दूध मनां, मथि करि काढै परम जनां ॥टेक॥
चित चकमक पावक तत हो, जुगति विनां नही जागत हो ॥ १ ॥
काया तिल हरि तेला हो, हाथि न होय सुहेला हो ॥ २ ॥
साध साध मिल होई हो, विन संगति नही कोई हो ॥ ३ ॥
आतम आपा मांही हो, विन गुर गम कुछि नांही हो ॥ ४ ॥
हरिरांमा हम तम सुं हो, ओत पोत सम धम सुं हो ॥ ५ ॥

(१३९)

आतम धेन वछा जन थीव , निगम थणा विच रांम रस पीव ॥टेक॥
या रस कौ नही तोल न मोल , पीयगा उर अंतर षोल ॥ १ ॥
अैसा है रस अनंत अपार , पीवत आपा ह्वै ऊधार ॥ २ ॥
यौ रस पीयौ धू पहलाद , सुनि सिषर मैं वाए नाद ॥ ३ ॥
यौ रस पीयौ मछंदर नाथ , सिर गोरष कै धरीयां हाथ ॥ ४ ॥
यौ रस सब संता मिल पीयौ , वाकुं वास अमर पुर कीयौ ॥ ५ ॥
हरिरांमा रस अगम अछेह , पी पी मरै धरै नही देह ॥ ६ ॥

(१४०)

राग धनाश्री

परम सनेही प्यारौ पीतमौ , देष्यौ दिलड़ा कै मांहि ॥ टेक ॥
वादल वादल वीजली , अैसैं घट घट रांम ।
मूरष मरम न जांणीयौ , पायौ नांव न ठांम ॥ १ ॥
सतगुर तौ वौरा भया , सिष सौदागर होय ।
हरि सौदौ चित चौहटौ , तौल न मौल न कोय ॥ २ ॥
सतगुर वौरा होय कै , वुसत अमौलक देह ।
सिष साचा गाहक भया , मन अर तन करि लेह ॥ ३ ॥
विषम सरौवर नीर की , अति ऊंडी वौह घार ।
एक मनां तिर जायगा , दूजा डूबण हार ॥ ४ ॥
अगम देस अमरा पुरी , जांह हरिजन का वास ।
तांह हरिरांमै घर कीया , जनम मरन तजि आस ॥ ५ ॥

(१४१)

राग गौढा वाड़ी धनाश्री

ब्रह्म वदेही वालमा, जीव नीयारौ नांहि।
एक अषंडी रम रह्या, सुनि सेझडीयां मांहि ॥ टेक ॥
सुरति सुहागन सुंदरी, दुलहौ सबद सुजांन।
सदा सनेही ऊपरै, वारू मन अर प्रांन ॥ १ ॥
धरीया कुं नही धारती, धुनि अधरा सुं धारि।
गिगन मंडल मैं घर कीया, सांसा सोग निवारि ॥ २ ॥
जनहरिरांमा सूंदरी, वर अजरांमर पाय।
अरस परस हुय मिल रही, आवा गवन मिटाय ॥ ३ ॥

(१४२)

राग झाड़ी आसा

पीव पीयारौ. परस लै, जासुं नित नित आंनंद होय ॥टेक॥
जुग सागर भव जल भर्यौ, तिर्यौ किसी विध जाय।
नाव करौ हरि नांव की, पैलै पार लंघाय ॥ १ ॥
दुलभ पीयाणौ दूर घर, दुलभ हरि दीदार।
रहूं त चूकुं चाकरी, चलुं त मौष दुवार ॥ २ ॥
साध संगति हरि भगति कुं, दुलभ सुलभ नही जांन।
तन मन दीनां सु पूरै, सतगुर सबद पिछांन ॥ ३ ॥

सुरता बकता मन मता, या जुग मांहि अनंत।
रांम रता वेहद वता, हरिरांमा कोई संत॥ ४॥

(१४३)

हरिजन हरि कौ लाडिलौ, लीवलीण न दूजा लाड॥टेक॥
झूठै झामरझोल मैं, उळझि रहे नर अंध।
साचौ सबद न मानीयौ, बांधि विषै संनबंध॥ १॥
भाव भगति नित नेम का, काम कठण इकतार।
जां पायौ ता परम सुष, निरदावै संसार॥ २॥
मेट्या तिमर अग्यान का, उदै भया गुर ग्यांन।
सिवरन सहजां सु हुवा, एक अषंडी ध्यांन॥ ३॥
हरिरांम हम रांम का, रांम हमारा यार।
ज्युं सौनौ अर सौहगी, मिलग्या तारौ तार॥ ४॥

(१४४)

रांम रसांयन पीजीयै, जा सुं जनम न मरण होय॥टेक॥
वेद विसन ब्रह्मा कहै, गावै सेस महेस।
अलष निरजन आतमा, आपा उलट लहेस॥ १॥
इन सतगुर कै भावनै, नांव दीया उपदेस।
सिवर सिवर जन पौहचगे, पार ब्रह्म कै देस॥ २॥
नष चष रूप न नासिका, दिसट मुष्ट मैं नांहि।
हरिरांमा हरि पाईया, सुरति निरति कै मांहि॥ ३॥

(१४५)

राग गवडी

संतो संगति का फल जांणी,
तर[1] सतसंग काठ तैं लोहा, तारे नांव पषांणी ॥ टेर ॥
हम हैं[2] भवंग भख्या विष सेती, तम[3] मलीयागर षासा।
तोरै[4] संग भया मैं सीतल, परितन छाडुं पासा ॥
हम[5] है तेल भया जाचेला, तम हौ[6] तेल चंपेला।
तेरी संगति सेती सुधख्या, मैं भी भया फुलेला ॥
तम तौ पावक रूपी हरिहौ, मैं काठन का भारा।
ज्युं दारक मैं पावक[7] निकस्या, फेर न होवै दारा ॥
तम तौ भवर वास वन वन का, मैं कीड़ा मद भागी।
तो सुं लाग भया मैं[8] तम सा, अब सागी का सागी ॥
लोहा पलिट[9] भया ज्युं कंचन, पारस का परतापा।
जनहरिरांम[10] हुवा संगति सुं, आतम आपो आपा ॥

---

(१४५) १. (ग) जैसैं जीव सीव नही जूवा, मिल्या लूण'र पांणी। २. (ग) मैं हुं, (घ) मैं हुं भवंग विषै तन भरीया। ३. (ग) तुंम। ४. (ग, घ) तेरै। ५. (ग) हमतौ, (घ) मै हुं। ६. (ग, घ) चंपेल़ चंपेला। ७. (ग) पाया। ८. (ग, घ) तोसा। ९. (ग) पारस पलटि। १०. (ग) होय सत संगति, (घ) भया।

(१४६)

संतो घर ही मैं [1]वइरागा,
आपा उलटि आप कुं देषै, रहै रांम लिव लागा ॥ टेर ॥
घर मैं जोग जुगति ही घर मैं, घर वन एको [2]कीन्हा ।
दोय कुं जीत तीन कुं त्यागै, जब चौथै चित [3]लीन्हा ॥
जौ कोई त्याग भयौ[4] तन जोगी, मन करि त्यागै नांही ।
सांसा मिट्या न भया निसंसै, राग धेष घिल[5] मांही ॥
कुल कुं छाडि भयौ[6] जग लीणौ, मसतग मूंछ मूंडाया ।
मैं तैं मांन विषै मन[7] विंध्या, मथ्या[8] जनम गमाया ॥
त्रिंछया त्याग रहौ घर मांही, भावैं रहौ वनवासा ।
नांव निरंतर ताली लागी, जांह तांह ब्रह्म विलासा ॥
आतम ग्यांन भया उपगारी, निरपष[9] नेह निरासा ।
जनहरिरांम ताहि वलि जांउ, सो सतगुर[10] मैं दासा ॥

(१४७)

संतौ एसा सतगुर सोई, उर अंतर नही कोई ॥ टेर ॥
मथ्या वाद वकै नही कोई, ना चित चहुंदिस घ्यावै ।
आठु जांम रहै आंणदि मैं, हर पद मंगल गावै ॥ १ ॥

---

(१४६) १. (घ) वैरागा । २. (ग) कीना । ३. (घ) चौथै चेतन चीना । ४. (घ) भया । ५. (घ) दिल । ६. (घ) भया जुग लीणा । ७. (घ) तन भरीया । ८. (घ) मिथ्या । ९. (घ) निरगुन । १०. (घ) सो संतन मैं ।

मद न मौह मांन नही मनकै, पकड़ि पांच वसि कीया।
राग दोष सुष दुष नही वंछै, रिदै रांम रस पीया ॥ २ ॥
जांमण मरण निसंसा होई, आसा भई निर आसा।
पूरब छाडि पिछम दिस वूठा, मिलगी धरण अकासा ॥ ३ ॥
जांह नही दिवस भवत नही रजनी, एको अषंड उजाला।
जनहरिरांम परमपद पुहंता, बंध न मोष निराला ॥ ४ ॥

(१४८)

संतौ जीवत मरतग जांनी, ना अतर अभियांनी ॥ टेक ॥
चित निहचल पल नाव न षंडै, मन एको अनुंरागा।
नष चष एको भेद परभेदा, संसा सबही भागा ॥ १ ॥
पांचू पकड़ि तीन सु न्यारा, चौथै पद परवांणी।
सासो सास सुनि घर आया, सुनि मैं सुनि समांणी ॥ २ ॥
सारी सुधि विसर गया देहा, आसा अमर अजीता।
जनहरिरांम भजन आनंद मैं, मिल्या परम सुष मीता ॥ ३ ॥

(१४९)

संतौ नांना रूप वनाया,
या विच एक वसै अविनासी, सुरति निरति दिषलाया ॥ टेक ॥
प्रथम पौन तै पाणी उपनां, पांणी तैं आकारा।
इन आकार विचै निरकारा, ताहि न जांणि गिवारा ॥ १ ॥
जल मैं वीज वीज मैं जल है, ऐसै अवगत माया।
गुर गम होय गहै मन वचनां, आपा अलष लषाया ॥ २ ॥

सरवर ऐक भर्या बौह भांडा, ऐक अनंत रवि देषै।
जनहरिरांम रांम भजि न्यारा, प्रांण महासुष पेषै॥ ३॥

(१५०)

संतौ अवगति गति सुं न्यारा, पावैगा जन पारा॥टेक॥
जोति मैं जीव जीव मैं जोती, माया मोह बंधानां।
अैसै आतम अर परमांतम, गुर गम होय लषानां॥ १॥
हदि ही जनम भया हद मरना, हदि ही कै विच वासा।
हदि कुं छोडि वस्या वेहदि मैं, बौहर न हद की आसा॥ २॥
पूणी पौंन सुरति कतवारी, अंतर डोर लगाई।
तन कागद गुडीयन असमांना, जांह निज मन ठहराई॥ ३॥
सुधि वुधि सास उसास विसरजन, सहजां सहज समांना।
जनहरिरांम पार मिल पैलै, आवा गवन मिटांना॥ ४॥

(१५१)

संतौ एक अषंडी राया, आप आप मैं पाया॥टेक॥
अैसैं वास फूल कै मांही, निकस्य दूर नही जावै।
जैसै रांम रांम घट घट मैं, सो चीनै सो पावै॥ १॥
जल की जिंद जुण पवनां का, बंधे आ सब देहा।
सुरति निरत सुं सिंध सनेहा, धरै न दूजी देहा॥ २॥
जल के संग सदा रहै कवला, नीर न परस्या जावै।
अैसै उच नीच कुल मांही, दास रहै निरदावै॥ ३॥

दूध मैं घ्रत घ्रत मैं दूधा, मथि करि न्यारा हुवा।
येक समैं होय पुनि भेला, अंत जूवाका जूवा ॥ ४ ॥
जनहरिरांम वात अंतर की, अंतर ही कुं भ्यासै।
जौ कुछि काढि कहै काहु कुं, प्यास विनां नही प्यासै ॥ ५ ॥

(१५२)

है हरि भगति दिवांनांदी, दिवांनांदी गलतांनांदी ॥ टेक ॥
गहीयै गुर ग्यांनां आतम ध्यांनां, मन अर तन करि वचनांदी।
पेम पीयाला पी मतवांला, सुरति लगी असमांनांदी ॥ १ ॥
अनहद गाजै भव दुष भाजै, अरधे उरध मिलांनांदी।
हुय इक राजै अधरा छाजै, सुनि मैं सहैर वसावनांदी॥ २ ॥
लगी इक लगना हुयरही मगनां, पीव प्यारै परसावनांदी।
जनहरिरांमा पर विसरांमा, आवा गवन मिटावनांदी ॥ ३ ॥

(१५३)

सयांना साच गहीजै हो,
झूठै माया मोह मैं, कांय राच रहीजै हो ॥ टेक ॥
मात पिता सुत बंधवा, को आगै को पूठ।
मांरौ थांरौ करतड़ा, आय गए सब ऊठ ॥ १ ॥
रांम नांम कुं सिवरीयै, और नवारौ फंध।
हेकै सांई बाहिरौ, जांन सकल जुग धंध ॥ २ ॥

वाद विरौध विकार कुं, वेवै नांहि गिवार।
अंध चुंध मैं वह गया, विन गुर ग्यांन विचार॥ ३॥
सुमत सुमारग सोधिकै, चालैगा कोई सूर।
हरिरांमा धरगाह मैं, भेटैगा निज नूर॥ ४॥

(१५४)

राग कालेरो

जोगिंदौ जांनि जुगारौ रे,
ठगि ठगि जाय ठगारौ रे, गुर विन लषै न कोय॥टेक॥
प्रेम कै बंधन बांधीया, निज मन रता संत।
सासो सास न वीसरै, रहै जोगीया कै तंत॥ १॥
रांम रसांयन पीजीयै, आठु पौहर अभंग।
जौ सुष चाहै जीव कुं, करि संतन को संग॥ २॥
जे कोई चाहै जोगीयौ, सुरति निरति करि जांनि।
तीन ताप गुण जीत कै, चित चौथै घरि आंनि॥ ३॥
जनहरिरांमै जांनीयौ, जोगीयौ जिंद कै मांहि।
एको तन मन वाच करि, जीव जोगीयौ दोय नांहि॥ ४॥

(१५५)

तु नायक जनम गमावै काहि रे, नर रांम भजन विन अंधा॥ टेक॥
काहू आयौ काहू जायौ, किन पौहचाया षांना।
किन या सूरति षूब वनाई, ताहि न चेत्यौ यांना॥ १॥

किसकी कांमन किसकी जांमन , किसका सुत पित भाई ।
देषन कुं जिन दीया च्यार दिन , या झूठी उळषाई ॥ २ ॥
वाद विरोध विकार करै कांहि , अलप सनेही काजै ।
थोरो सो जुग मांहि जीवनौ , विनसै कालिक आजै ॥ ३ ॥
आंन धरम तजि भजि अविनासी, आपा मांझि बतावै ।
जनहरिरांम मिनष तन अैसौ , वार वार नही पावै ॥ ४ ॥

(१५६)

राग विहागड़ौ

संतौं पायौ अगम प्रवांणौ ,
कागद मिस लेषण विन लिषीयौ , हृदै राषि अमांणौ ॥ टेक ॥
वेद पुरांन लहै नही पिंडत , कहै सुंणै नही कोई ।
ररौ ममौ बांवन अछर मैं , है निजमंतर सोई ॥ १ ॥
कोई नित पाठ करै गीता कौ , कोई जोगादिक साझै ।
रांम नांम सबही तै न्यारा , बंधन कबूहन बाझै ॥ २ ॥
कोई तप वरत करै बहु तीरथ , कोई हीयाळौ डोहै ।
अंतर एक वसै अविनासी , मैरे और न कोहै ॥ ३ ॥
रांम नांम कठण कहैव कुं , संतां सुगम दिषायौ ।
जनहरिरांम रट्यौ गुरगंम तै , आपा विच उळषायौ ॥ ४ ॥

(१५७)

संतौ पुहतां का पंथ औला,
जबतै मुष ममकार न छूटै, जीव सीव तै जोला ॥ टेक ॥
वात वणाय कहै मुष पैली, आसण बैठे ऊलै।
या निज मन का महरम नांही, मिटी न डावा डोलै ॥ १ ॥
रसना रोम रोम रग रग मैं, सहजां सिवरन होई।
नांव अषंड विन हौंस मुगति की, ताहि करौ मत कोई ॥ २ ॥
छाक्यौ नाहि पेम कै छाजै, अकबक बांणी बोलै।
दोड़त दोड़त ही विच थाकै, अरथ अगम का तोलै ॥ ३ ॥
भाव विनां भेव्या नही जाई, पूरण परमानंदा।
जनहरिरांम साचकी करणी, आर पार उतरंदा ॥ ४ ॥

(१५८)

अब मेरै वात भली वन आई, पीव परातम पाई ॥ टेक ॥
रांम नांम ऐक निसदिन मैं, तन मन वचन ध्ययाई।
जांमण मरण मिटै इनही तैं, सत गुर सीष सुनाई ॥ १ ॥
वेद विसन सिव सेस कहैत है, निगम मुनीजन गाई।
रांम निरंजन अलष अजोनी, या सुं ध्यांन लगाई ॥ २ ॥
जनहरिरांम रांम सब संम्रथ, पूरब भाग मिलाई।
आपा उलट समांणा आपै, ज्यूं जल बूंद समाई ॥ ३ ॥

(१५९)

रांम रस पीयौ रे भर कूंडौ, अंत न आवै ऊंडौ ॥ टेक ॥
पांच पचीस मिल्या पंथ पैलै, पेम की पायल पीनी ।
पाटि पूजारा सिव सगती मिल, करणी निरमल कीनी ॥ १ ॥
काया कलस पूर मन पवना, जोति निरंजण जागै ।
ध्यांन का धूप धख्या दिल दीपक, भरम करम भव भागै ॥ २ ॥
चेतत सिवरित भया चित चेतन, हर गुर धरम हलाया ।
जनहरिरांमा महल त्रवेणी, प्याला अजर पीलाया ॥ ३ ॥

(१६०)

संतों सतगुर भुरकी डारी,
डारत ही सुं भरम भाजग्या, करम कजौड़ा जारी ॥ टेक ॥
या भुरकी परगट सिव कीनी, नांषि पारबती मांही ।
स्रवा कलप धेन चित्रामन, प्रांन पलटि सुनतांई ॥ १ ॥
या भुरकी नारद मुनि भांनी, भी सिनकादिक लीनी ।
या भुरकी काटै जम फंदा, जिन या चितकर चीनी ॥ २ ॥
या भुरकी नव जोगी लाया, जनक वदेही जांनी ।
या सुं आय मिल्या सुषदेवा, प्रसन करी मनमांनी ॥ ३ ॥
या भुरकी उरधार परीषत, मोष गये दिन सातैं ।
दोय महूरत में पार दुलीपा, मन भुरकी मै जातैं ॥ ४ ॥

धू प्रहलाद मछंदर गौरष, दत रामानंद माधौ।
बिसन सांम राघवा सीधा, मन भुरकी मैं बाधौ ॥ ५ ॥
दास कबीर नामदे नांनग, काळू रंका वंका।
या भुरकी सुं अनंत उधरीया, मेट मनुका संका ॥ ६ ॥
रांम नांम मंत्र भुरकी कौ, षुसी पडै तौ लीज्यौ।
जनहरिरांम कहै सब्रहन कुं, दास विनां मति दीज्यौ ॥ ७ ॥

(१६१)

हो सुष सुंदर रांम मिलावै,
यारी एक लगी आतम सुं, और भई निरदावै ॥ टेक ॥
पेम भावका पहर पटोरा, सुरति निरति करि नाचुं।
अनहद तार तत झणकारा, ऐक अषंड धुनि राचुं ॥ १ ॥
अवल कवल का सझि सिणगारा, जागुं संजम राती।
तनमन जोड़ करूं दासातन, रहूं रांम रंग राती ॥ २ ॥
जाग्यां भाग भयी जुग न्यारी, पीव परातम पाया।
जनहरिरांम सांम अर सुंदर, अरस परस लिव लाया ॥ ३ ॥

(१६२)

तुं मुझिमांन हमारा सांई, मैं मुझिमांन तमांरा हो ॥ टेक ॥
जल विच मीन मीन विच जल है, निमष न होय नीयारा हो॥ १ ॥
ज्युं तिलकै विच तेल भया है, तन विच पीव पियारा हो ॥ २ ॥
ज्युं पावक दारक विच पेष्या, दिल विच दरसन थारा हो॥ ३ ॥
जनहरिरांम रांम अंतर मैं, ऐक मेक मिल यारा हो ॥ ४ ॥

(१६३)*

मो हिरदै हरि नांव न भूलै, तमसा और न तूलै हो ॥ टेर ॥
ना मैं सुचि सिनांन न दांतुं, जुग जजमांन न जाचुं ।
आश्रीवाच करूं नही किनकुं, जोग न जोतग वाचुं ॥ १ ॥
नां मैं वेद पुरांन न पढिहूं, नां जिग जोग न जापुं ।
नां तप वरत करूं नही तीरथ, ओलग आपौ आपुं ॥ २ ॥
नां षटक्रम क्रिया नही करिहूं, सास न सोहूं ध्याया ।
रांमो रांम रख्या गुरगम तैं, जब जाय दरसन पाया ॥ ३ ॥
सांसा सोग त्रिगुण भव तापुं, मन अर तन करि मेट्या ।
जनहरिरांम सहज सुष पाया, नांव निरंजन भेट्या ॥ ४ ॥

(१६४)

जिंदरीया जाहिगी, है रहता हरि नांम ॥ टेक ॥
जिंद थकी नही जांणीयौ, प्रांण आपणा पीव ।
आथि पड़ै कर पार कै, जल ले जासी जीव ॥ १ ॥
बालपणै नही जांणीयौ, भर जोबन मै कांम ।
तर तरणा विरधा भयौ, तौई न चेत्यौ रांम ॥ २ ॥
हलचल सास सरीर मैं, मन छाड्यौ अहंकार ।
पूत पिता परवार मैं, संग न चालण हार ॥ ३ ॥

* यह पद मूल प्रतिमें भी उपलब्ध है ।

पिंड धरती पौढाड़ीयौ, कह तेरा नर कौंन।
रांम भजन विन दूसरा, सब ही आवा गौंन ॥ ४ ॥
हरिरांमा सतगुर मिल्या, सत का सबद सुनाय।
रांम नांम कुं सिवरतां, जीव न परलै जाय ॥ ५ ॥

(१६५)

गगरीया ग्यांन की हो, जा विच अधरा ध्यांन ॥ टेक ॥
काया काची वेलडी, विच पाका फल जांनि।
चाषत ही चेतन भया, अंधा रह्या अजांनि ॥ १ ॥
नर म्रुरष नहैचै विनां, दूरि दिसंतर डोलि।
सो साहिव घट भीतरै, ताहि न देषै षोलि ॥ २ ॥
जुग सागर भवजल भर्यौ, तिर्यौ किसी विध जाय।
नाव करौ हरि नांव की, पैलै पार लंघाय ॥ ३ ॥
पिव मिलन कै कारणै, लंघीया औघट घाट।
अगम अगोचर धांम की, सहजां पाई वाट ॥ ४ ॥
हरिरांमा हदि छाडि कै, वेहदि मैं लिवलीन।
अलष अजोनी आतिमा, सोई दोसत कीन ॥ ५ ॥

(१६६)

रता रांम संतां हदा देस न्यारा हौ,
अषंडी ध्यांन कु धार, म्रुजरौ नैन मंझार ॥ टेक ॥
सुरति लगी सत सबद सुं, पाया परम निवास।
तारी ब्रह्मानंद सुं, सहज कीया घरवास ॥ १ ॥

सुष न दुष संसार का, आसा नांहि निरास ।
जनम मरण का डर नही, का हरि हरि का दास ॥ २ ॥
पाव न पैंडा पंथ विन, अगम अगौचर धांम ।
जनहरिरांम कीया निजमनवै, एक मेक विसरांम ॥ ३ ॥

(१६७)

राग केदारौ

सांई जी कुं साच पीयारौ जांनि,
झूठ जुग जंजाळ परहर, साच सबद पिछांनि ॥ टेक ॥
रांम नांम कुं ध्याय निसदिन, कांम का नही कांम ।
पाप पल में जांहि पैंला, उचरि आतम रांम ॥ १ ॥
रांम नांम सौ नांहि मौसर, भूल आठ न जांम ।
रांम नांम है पतित पावन, विषह मेट विरांम ॥ २ ॥
रांम नांम का सहज सौदा, ताहि लेत सलांम ।
रांम नांम दुष हरन दालद, सुष है सागर रांम ॥ ३ ॥
रांम नांम भजि लाज तज कुल, मेट लोका मांम ।
रांम मोष मुगति का दाता, संतां कौ विश्रांम ॥ ४ ॥
रांम नांम सा नांहि कलमैं, तरण तारण रांम ।
रांम मिल हरिरांम कीया, परम धांम मुकांम ॥ ५ ॥

(१६८)

न्यारा होय केवल रांम,
रोम रोम ररंकार सहजां, उचरि आठूं जांम ॥ टेक॥
प्रथम रसनां रांम रटीया, वचन तन मन एक।
नांम सतगुर दीया नहचै, मेट भरम अनेक ॥ १ ॥
जोग जप तप ध्यांन तीरथ, सेवा दांन सिनांन।
विनां आतम तत चीनां, जांन सब अजांन ॥ २ ॥
विनां रसनां गाय गोमंद, अषंड अंतर मांहि।
लिव एक उनमुन रहै लागी, तारि तूटै नांहि ॥ ३ ॥
अगम मारग कीया मुगता, ताप त्रिगढ चूर।
हरिरांमा चौथै मिल्या चेतन, अटल आसण पूर ॥ ४ ॥

(१६९) *

वाद विषीया स्वाद तजि मन, गहौ ग्यांन विग्यांन रे।
और ऐसा नांहि जुग मैं, रांम सम कोई ध्यांन रे ॥ १ ॥
भूल मति भ्रम मांहि मूढ़, अलष करीयै याद रे।
उलटि आपा देष दिल मैं, पेम विन पसु वाद रे ॥ २ ॥
नांव निहचै ध्याय निसदिन, परम पीतम पाय रे।
सोग सांसा मेट सब ही, भेट त्रभवनराय रे ॥ ३ ॥

---

* साम्प्रदायिक संतोंने इस पदकी संज्ञा अष्टपदी दे रखी है। यह सायं काल बोला जाता है तथा आचार्य एवं संतोंके परमधामको प्राप्त हो जानेपर शव-यात्राके आगे इसका कीर्तन किया जाता है—ऐसी कर्ण-परम्परा है। —सम्पादक

रांम विन विसरांम नांही, सरग मधि पयाल रे।
जीव हरि विन केम छूटै, करम कूटै काल रे॥ ४॥
भलौ पूरण भाग तेरौ, जिंद जब लग जाग रे।
आव धम धम घटै निसदिन, रहौ निज मन लाग रे॥ ५॥
मानषौ औतार विछर, बौहर आवै नांहि रे।
भगति विन बौह भया दुषीया, चौरासी लष मांहि रे॥ ६॥
रांम घट घट मांहि न्यारा, रूप ताहि न रेष रे।
और माया षपै उपजै, आप अमर अलेष रे॥ ७॥
अषंड ऐक धुनि होय सुनि मैं, लगन लागी जाय रे।
हरिरांमा ब्रह्मानंद मांही, सहज सुरति समाय रे॥ ८॥

(१७०)

राग सोरठि

भरम कोई सतगुर भांजै रे, साचौ नांव सुनाय॥ टेक॥
सतगुर मेरै सिरधणी, मैं चरणां की दास।
वाकै पासि विलंबीयै, काटै जम के पास॥ १॥
जोग जिगन जप तप करै, अठ सठ तीरथ नांहि।
उर आतम इक तार विन, जुग कै गैलै जाय॥ २॥
वेद कथा सुनि सीष कै, वाचै देवै विचार।
नांव नियारौ रह गयौ, करि करि लौकाचार॥ ३॥
विन गुरगम नहचै विनां, कहै कहावै कूर।
हरिरांमा ईन जीव सुं, देष रहीजै दूर॥ ४॥

(१७१)

मंना एक रांम भगति सतिमांन , याद न दूजी आंनि ॥ टेक ॥
जुग विषीया कै वीच मैं , राचि रहै दिन राति ।
आपा अहुं न मावई , झूठ दिसौ वह जात ॥ १ ॥
हरिजन सोई हरि भजै , परिहरि कूड़ कलेस ।
पतिवरता सो पीव विन , चित न और धरेस ॥ २ ॥
जुग बंध्यौ जुग बंधनै , कुल मरजाद न मेट ।
नर नायक तन धारिकै , सतगुर सबद न भेट ॥ ३ ॥
संसा सोग संताप कुं , ताहि करौ मति कोय ।
जनहरिरांमा रांम जी , जो कुछि करैं'स जोय ॥ ४ ॥

(१७२)

मनवा रांम भजन करि बल रे ,
तजि संकलप विकलप कुं तवही , आपा हुय निरबल रे ॥ टेक ॥
देष कुसंग पाव नही दीजै , जहां न हरि की गल रे ।
जो नर मोष मुगति कुं चाहै , संतां बैस मिसल रे ॥ १ ॥
सांसा सोग पराकरि सब ही , दंद दूर करि दिल रे ।
कांम क्रोध भरम करि कांनै , रांम सिवर हक हल रे ॥ २ ॥
मनवा उलटि मिल्या निज मन सुं , पाया पेम अटल रे ।
पांच पचीस एक रस कीनां , सहज भई सब सल रे ॥ ३ ॥
नष चष रोम रोम रग रग मैं , ताळी एक अटल रे ।
जनहरिरांम भए परमानंद , सुरति सबद सुं मिल रे ॥ ४ ॥

(१७३)

हंसा सुनि सरवर रय करि रे,
चंच विनां चुग चुग निज मोती, ध्यांन न दूजा धरि रे ॥ टेक॥
पाव'र पंष विनां यक हंसो, वास कीया सुनि घर रे।
अधर महल जा अजब झरोषा, है रहै रास अटल रे॥ १॥
तांह नही धर अंबर नही तारा, चंद न सूर संचर रे।
वेद पुरांन कथा नही कीरतन, वांह अंण अछर उचर रे॥ २॥
सुर नर असुर लोक नही नागा, दिवस रैंन नही पर रे।
जनहरिरांम मिले पर हंसै, जुरा न जम का डर रे॥ ३॥

(१७४)

राग जेतश्री

गहौ सतगुर कौ सरनां ॥ टेक॥
सो सतगुर सत सबद सुनावै, भांजि सकल भ्रमनां ॥ १॥
अजर अमर भजि नांव अपारा, मेटै जांमन मरनां ॥ २॥
निरभै नांव जपौ निरकारा, मनसा वाचा करमनां ॥ ३॥
वेद विसन सिव सेस कहत है, तत नांव सुं तिरणां ॥ ४॥
कोट मुनीजन रिष अठीयासी, महमा जाय न वरनां ॥ ५॥
जनहरिरांम परम पद पाया, दंद वाद दुष हरनां ॥ ६॥

(१७५)

राग भैरु

रिदै रांम हमारै नांमा,
तीन लोक तत तारण तूही, औरन सुं क्या कांमा ॥ टेक॥
जुग सागर भरीयौ भव जल तैं, दुष दुंदर का धांमा।
या विच एक अलष रुषवाळौ, औलग आठूं जांमा॥ १॥

मौटौ एक मगर मछ मनवौ, जहां तहां तांता घालै।
पांच पचीस उठै विष लहर्‌यां, पालनहारौ पालै॥ २॥
जीव'र जंत विचै डर जौषा, धीरी केम धरावै।
ज़नहरिरांम वैसि निज वेरै, उतर पारि हुय जावै॥ ३॥

(१७६)

प्रभु जी प्राण सकल के दाता,
दूजा देव कीया दुनीयां का, तेरै तात न माता॥टेक॥
जोति सरूप सकल घट जोती, रमता रांम कहायौ।
दिष्ट न मुष्ट सुन्यां नही देष्यौ, आप उपनौ आयौ॥ १॥
सांष जोग भगति सब जांन्या, एक तैं एक सुवायौ।
रांम भजन विन कोय न सीधा, वेद पुरांनां गायौ॥ २॥
तीन लौक मैं नांव न तमसा, हमसा संत अनेकुं।
मुष भरि बौलि करूं क्या महमा, रोम रोम रटि एकुं॥ ३॥
तम निरमल दातार दयानिध, मैं मंगन मलधारी।
जनहरिरांम सरन तेरी आयौ, दोय दुष मेट मुरारी॥ ४॥

(१७७)

प्रभु जी पेम भगति मोहि आपौ,
मांग मांग दाता हरि आगै, जपुं तमारौ जापौ॥टेक॥
आठ नवे निध रिध भंडारा, क्या मांगुं थिर नांही।
दे मोकुं हरि नांव षजीनां, षूट कबू नही जांही॥ १॥

इंदर अपछरा सुष विलासा, क्या मांगुं छिन भंगा ।
दीजै मोहि परम सुष दाता, सेवत ही रहुं संगा ॥ २ ॥
तीन लोक राज तप तेजु, क्या मांगुं जम ग्रासा ।
दीजै राज अभै गुरदेवा, अटल अमरपुर वासा ॥ ३ ॥
आठ पौहर औलग अणघड़की, ता सेती निसतारू ।
जनहरिरांम सांम अर सेवग, एक मेक दीदारू ॥ ४ ॥

(१७८)

राग जैजैवती

सतगुर साची कहीया हो,
झूठी कदे न जांनि ॥टेक॥
रांम रांम रसनां सिवराया ।
सिवरि सिवरि तन मन लिव लाया ॥ १ ॥
सहजे सुरति सबद सुं जोरी ।
ऐक अषंडत लागैं डोरी ॥ २ ॥
नीर विनां सीचै वनमारी ।
पीवै वाग सदा हरीयारी ॥ ३ ॥
अरध उरध वीच भंवर उडांणां ।
सुंनि परि सुनि घर वास मंडांणां ॥ ४ ॥
जनहरिरांम अमर घर पाया ।
जा सुं जांमण मरण मिटाया ॥ ५ ॥

(१७९) *

राग रांमग्री

रोम रोम अर्ध नांव कह्या रे।
गुरगम ग्यांन विचारि भगति वल,
आंन भरम सब दूरि वह्या रे॥ टेर॥
सील संतोष नेम व्रत सत जत,
एक रांम कह्यां सब ही लह्या रे।
तीनुं जीत षेल चहुं पासा,
सांसा पांच पचीस दह्या रे॥
तीरथ जप तप और सुभै क्रम,
मंन तन वचनां सहज भया रे।
झूठ कपट मल मिंत्र ठगाई,
मैं तैं मांन अमांन गया रे॥
सपत पीयाल उलटि इकवीसां,
वांहां जाय संतो ध्यांन गह्या रे।
जनहरिरांम परम सुष धांमां,
आप अरस मिल परिस रह्या रे॥

उत्तरार्ध सम्पूर्ण

* यह पद केवल 'ग' प्रतिमें ही उपलब्ध है, अतः वहींसे लिया गया है।

परिशिष्ट

॥ ॐ श्रीमद्‌हरियानन्देभ्यो नमः ॥

पूज्यपाद आचार्यचरण अनन्तश्री हरिरामदासजी
(हरियानन्दजी महाराज) की
अनुभवात्मिका

सटीक घघर निसाणी

तिलककर्त्ता

परमपदस्थ पूज्यचरण श्रीचौकसरामजी महाराज
वैद्यकलानिधि

श्री १००८ श्री भगवद्दासजी महाराज
रामस्नेहि सम्प्रदायाचार्य सिंहस्थल (९)

॥ रामः ॥

घघर निसाणीकी भूमा

यह निसाणी नामक ग्रन्थ योगके विषयका है । योग शब्द संस्कृतके युज् धातुसे बना है (युजिर् योगे) जिसका अर्थ जोड़ना है । अपने मनको एक ध्येयसे जोड़ना अर्थात् मनको स्थिर करना ही योग है । भगवान् पतञ्जलिने ऐसा कहा है—"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" । एकाग्रता योगका शरीर है; जिसमें केवल एकाग्रता ही हो, वह व्यावहारिक योग, और जिसमें अहंता-ममताका नाम-लेश भी न हो, वह पारमार्थिक योग है । गीताके[1] साम्यगर्भित कर्मयोगमें यही कथन है । ज्ञानयोग ही श्रेष्ठ है, बिना ज्ञानका योग निष्फल है । योगके पहलेका ज्ञान अस्पष्ट होता है, इसलिये गीतामें[2] ज्ञानीसे योगीको ही अधिक कहा है । वास्तवमें सच्चा ज्ञानी वही है, जो योगी है, इसीका गीतामें[3] वर्णन है । ब्रह्मविद्योपनिषद्, क्षुरिकोपनिषद्, चूलिकोपनिषद्, नादबिन्दु, ब्रह्मबिन्दु, अमृतबिन्दु, ध्यानबिन्दु, तेजोबिन्दु, योगशिखा, योगतत्त्व, हंस आदि उपनिषद् भी इसीका वर्णन करती हैं । अतएव ज्ञानकी एकमात्र कुञ्जी योग ही है । योगवाशिष्ठमें[4] लिखा है कि योग बिनाका ज्ञानी ज्ञानबन्धु है अर्थात्

---

१ योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥
(गीता अ० २ । ४८)

२ तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद् योगी भवार्जुन ॥
(गीता अ० ६ । ४६)

३ यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥
(गीता अ० ५ । ५)

४ व्याचष्टे यः पठति च शास्त्रं भोगाय शिल्पिवत् ।
यतते न त्वनुष्ठाने ज्ञानबन्धुः स उच्यते ॥ १ ॥

ज्ञानियोंमें अधम है । ज्ञान और योगका बहुत अधिक सम्बन्ध है, इसीलिये "ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः" ज्ञान और क्रियासे[1] ही मोक्ष होना कहा गया है । इसी योगका वर्णन भिन्न-भिन्न शास्त्रकारोंने भिन्न-भिन्न[2] प्रकारसे किया

आत्मज्ञानमनासाद्य ज्ञानान्तरलवेन ये ।
सन्तुष्टाः कष्टचेष्टन्ते ते स्मृता ज्ञानबन्धवः ॥ २ ॥

(योगवाशिष्ठ निर्वाणप्रकरण उत्तरार्ध सर्ग २१)

१ ज्ञान क्रिया करि ऊतरे हरिया हरिजन पार ।
ऐसे अन्धे कन्ध करि, पंगो आन उतार ॥ १ ॥
पंगा सोई ज्ञान है, किरिया अंधी जान ।
जन हरिया मिल एकठा, मुक्ति भई आसान ॥ २ ॥
ज्ञान बिना किरिया न कुछ, किरिया बिना न ज्ञान ।
हरिया किरिया ज्ञान बिन, यो ही आतमध्यान ॥ ३ ॥
ज्ञान ब्रह्म की दृष्टि है, किरिया ध्यान स्वरूप ।
जन हरिया मिल एकठा, आतम तत्त्व अनूप ॥ ४ ॥
ज्ञान सहित किरिया भई, मोक्ष माँहि पद जान ।
हरिया किरिया ज्ञान बिन, भक्ति भई आसान ॥ ५ ॥

(श्रीहरि० वाक्यम्)

जो विन ज्ञान क्रिया अवगाहै, जो विन क्रिया मोक्षपद चाहै ।
जो विन मोक्ष कहै मैं सुखिया, सो अज्ञान मूढन में मुखिया ॥ १ ॥

२ न्यायदर्शन—

समाधिविशेषाभ्यासात् (४ । २ । ३८) । अरण्यगुहापुलिनादिषु योगाभ्यासोपदेशः (४ । २ । ४२) । तदर्थं यमनियमाभ्यामात्मसंस्कारो योगाच्चाध्यात्मविध्युपायैः (४ । २ । ४६) ।

वैशेषिकदर्शन—

अभिषेचनोपवास-ब्रह्मचर्यगुरुकुलवास-वानप्रस्थ-यज्ञदान-प्रोक्षण-दिङ्नक्षत्र-मन्त्र-काल-नियमाश्चादृष्टाय (६ । २ । २), अयतस्य शुचिभोजनादभ्युदयो न विद्यते नियमाभावाद् ; विद्यते वाऽर्थान्तरत्वाद्-यमस्य (६ । २ । ८) ।

सांख्यसूत्र—

रागोपहतिर्ध्यानम् (३ । ३०) । वृत्तिनिरोधात् तत्सिद्धिः (३ । ३१) । धारणासनस्वकर्मणा तत्सिद्धिः (३ । ३२) । निरोधश्छर्दिविधारणाभ्याम् (३ । ३३) । स्थिरसुखमासनम् (३ । ३४) ।

है। भगवान् पतञ्जलिविरचित "पातञ्जलयोगदर्शन" तो खास योगका ही ग्रन्थ ठहरा; अतएव इसमें तो साङ्गोपाङ्ग वर्णन होना ही चाहिये। और दूसरे शास्त्रकारोंने भी योगके विषयमें विशेष जाननेके लिये योगदर्शन देखनेकी आज्ञा[1] दी है। जिस योगका वर्णन उपनिषदोंमें व सूत्रोंमें भली प्रकार किया गया है उसीका श्रीमद्भगवद्गीताके तीनों षट्कोंमें कर्म, भक्ति और ज्ञानके साथ श्रीभगवान्ने समावेश कर दिया है, समावेश क्या कर दिया है, गीताके छठे और तेरहवें अध्यायमें तो योगके सारे मौलिक सिद्धान्त और प्रक्रियाएँ ही वर्णन कर दी हैं।

योगवाशिष्ठ तो बस "यथा नाम तथा गुणः" खास योगका ग्रन्थराज ही है। श्रीमद्भागवतके स्कन्ध ३ अध्याय २८, स्कन्ध ११ अध्याय १५–१९–२० में योगका ही वर्णन है। इतना ही नहीं, इसके उपरांत योगवृक्ष इतना फैला कि उसकी कई शाखाएँ बन गयीं और उनके अलग ही ग्रन्थ बन गये। जैसे, तन्त्रशास्त्रमें "महानिर्माणतन्त्र" और "षट्चक्रनिरूपणतन्त्र" बहुत ही उत्तम योगके तान्त्रिक ग्रन्थ हैं। इनके सिवाय और भी कितने ही योगके ग्रन्थ बन गये हैं; हठयोगप्रदीपिका, शिवसंहिता, घेरण्डसंहिता, गोरक्षपद्धति, गोरक्षशतक, योगतारावली, बिन्दुयोग, योगबीज, योगकल्पद्रुम, योगनिबन्ध आदि अनेक योगके ग्रन्थ हैं।

योग यहींतक नहीं बढ़ा किंतु देशी और विदेशी महात्माओंने अपने-अपने अनुभवके अनुसार लोगोंको ज्ञान करानेके लिये महाराष्ट्री, गुजराती, बंगला, तैलंगी, तामिली, औत्कली, द्राविड़ी और इंग्लिश आदि

ब्रह्मसूत्र—

आसीनः सम्भवात् (४।१।७)। ध्यानाच्च (४।१।८)। अचलत्वं चापेक्ष्य (४।१।९)। स्मरन्ति च (४।१।१०)। यत्रैकाग्रता तत्राविशेषात् (४।१।११)।

१ योगशास्त्राच्चाध्यात्मविधिः प्रतिपत्तव्यः। (न्यायद० २।४।४६ भाष्य)

अलग-अलग भाषाओंमें योगका वर्णन किया। क़बीरसाहब, नानकसाहब, दादूजी, हरिदासजी, सुन्दरदासजी, जनतुरसीजी, चरणदासजी, सेवादासजी, सन्तदासजी, दरियासाजी आदि महात्माओंने हिन्दी साहित्यमें उसी योगवाणीका वर्णन किया कि जिनसे मुमुक्षुओंको बड़ा ही लाभ पहुँचा और पहुँच रहा है।

जिस योगकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की गयीं और जिस योगकी प्राप्ति महापुरुष परब्रह्मरामके उपदेशद्वारा[1] श्रीजैमलदासजी महाराजको हुई, आपने पूर्ण कृपा करके श्रीहरिरामदासजी महाराजको उसीका तारकमन्त्र[2]-सहित उपदेश देकर रामस्नेह-सम्प्रदाय प्रवृत्त करनेकी नींव लगायी। उसी योगका वर्णन लोकोद्धारके अर्थ पूज्यपाद श्रीहरिरामदासजी महाराजने इस ग्रन्थके 'निशानी' नामक छन्दोंमें किया है। अतएव इस ग्रन्थको अत्यन्त ही उपयोगी समझकर इसकी टीका बनाकर सर्व-साधारणके लाभार्थ प्रकट की गयी।

श्रीमान् माननीय ज्योतिषी पं० श्रीनिवासजी पाठक महोदय रतलाम-निवासीका मैं विशेष आभारी हूँ, जिन्होंने बहुत कष्ट उठाकर इसकी टीका करनेमें परिश्रम किया है।

जिन पुस्तकोंसे या जिन महात्माओंसे सहायता ली गयी है, उनके प्रणेताओं तथा उन महात्माओंका भी विशेष आभारी हूँ।

भवदीय

चौकसराम वैद्य

---

१ सुणरे बालक बात हमारी, तोकूं दाखूं गुंझ हदारी।
गेले में गुरु ज्ञान सुणाया, जोग सहित निजनाम बताया॥
(श्रीराम० भक्तमाल)

२ तारकमन्त्र—

ॐ नमः सत्यरामाय चिदानन्दैकमूर्तये।
प्रत्यक्षतत्त्वबोधाय गुरुवेदोकलब्धये॥ १॥

॥ रामः ॥

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम् ।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा ॥ १ ॥

सटीक घघर[1] निसांणी[2] प्रारंभः

[3]पद्मापूजितपादपद्मयुगलं रामं दधन्तं हृदि
रागद्वेषकरालजालमखिलं वृन्दं रिपूणां हरम् ।
याता ये शरणं विशुद्धमनसस्तेषां प्रबोधादिदं
वन्दे श्रीहरिरामदासमनिशं रामाय[4] सन्मन्त्रदम् ॥ १ ॥
हरिरामं गुरुं नत्वा कृत्वा चारुप्रदक्षिणाम् ।
निसानीनामग्रन्थस्य भाषाटीकां करोम्यहम् ॥ १ ॥

साषी

हरिया सम्बत् सत्रहसे वर्ष सईको जान ।
तिथि तेरस आषाढ वदि सतगुरु[5] पड़ी पिछान ॥ १ ॥

---

१ घटघट । २ चिह्न । ३ पं० दिगम्बरेण रचितमिदं पद्यम् । ४ रामदासाय ।

५ सद्गुरुलक्षण—

श्रीगुरुः परमेशानि शुद्धवेशो मनोहरः ।
सर्वलक्षणसंयुक्तः सर्वावयवशोभितः ॥ १ ॥
सर्वागमार्थतत्त्वज्ञः सर्वमन्त्रप्रधानवित् ।
लोकसम्मोहनकरो देववत्प्रियदर्शनः ॥ २ ॥
सुमुखः सुलभः स्वच्छः शुद्धान्तश्छिन्नसंशयः ।
इङ्गिताकारतत्त्वज्ञो दूरतः कृतदुर्जनः ॥ ३ ॥
अन्तर्मुखो बहिर्दृष्टिः सर्वज्ञो देशकालवित् ।
आज्ञासिद्धिस्त्रिकालज्ञो निग्रहानुग्रहक्षमः ॥ ४ ॥

श्रीहरिरामदासजी महाराज स्वयं अपने मुखारविन्दसे अपनेको ही सम्बोधितकर वर्णन करते है कि, संवत् सत्रह सौका सईका वर्ष अर्थात् अठारहवीं शताब्दीके आषाढ कृष्णा त्रयोदशीके दिन मेरेको सद्गुरुकी पहिचान पड़ी ॥ १ ॥

छंद निसाणी

सतगुरु पहिचानी परचे प्रानी सब सिध काम सरंदा है ॥ २ ॥

सद्गुरुकी पहिचान होनेसे सर्वकार्य सिद्ध हो गये, ऐसा परचा (प्रत्यक्ष बोध) जीवको हो गया अर्थात् अनुभव प्राप्त हो गया ॥ २ ॥

सतगुरु से मिलिया अतर्राभालया सारशब्द[1] ओलखंदा है ॥ ३ ॥

वेदवेदान्तविच्छान्तः सर्वजीवदयापरः ।
स्वाधीनेन्द्रियसंचारः षड्वर्गविजयक्षमः ॥ ५ ॥
अग्रगण्योऽतिगम्भीरः पात्रापात्रविशेषवित् ।
निर्मलो नित्यसंतुष्टो निर्द्वन्द्वो नित्यशक्तिमान् ॥ ६ ॥
सद्भक्तवत्सलो धीरः कृपालुः स्मितपूर्ववाक् ।
भक्तिप्रियः सर्वसमो दयालुः शिष्यशासिता ॥ ७ ॥
स्वेष्टदेवगुरुः प्राज्ञो विनयी पूजनोत्सुकः ।
नित्ये नैमित्तिके काम्ये रतः कर्मण्यनिन्दिते ॥ ८ ॥
रागद्वेषभयक्रोधदम्भाहंकारवर्जितः ।
सद्विद्यानुष्ठानरतो विद्यानां च प्रकाशकः ॥ ९ ॥
यदृच्छालाभसंतुष्टो गुणदोषविभेदकः ।
स्त्रीद्रविणेष्वनासक्तो दुःसङ्गव्यसनोज्झितः ॥ १० ॥
अलोलुपोऽहिंसकश्चापक्षपाती विचक्षणः ।
वित्तविद्यादिभिर्मन्त्रयन्त्रतन्त्राद्यविक्रयी ॥ ११ ॥
निःसंकल्पो निर्विकल्पो निर्णीतात्माऽतिधार्मिकः ।
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी निष्पक्षोऽतिनियामकः ॥ १२ ॥
इत्यादिलक्षणोपेतः श्रीगुरुः कथितः प्रिये । (कुलार्णव)

१ सारशब्द—
एक शब्द में कहि समझाऊं, सुनहो सब संसारा ।
रामनाम सो सारशब्द है, और कथन है छारा ॥ १ ॥
(श्रीहरि० वाक्यम्)

सद्गुरुके मिलनेसे (साक्षात्कार हो जानेसे) जीवात्मामें जो भेदभावका अन्तर था वह सब मिट गया और अभेद (अद्वैत) भाव होकर सारशब्द जो ब्रह्मवाचक राम नाम है, जिसकी श्रुति, स्मृति, उपनिषद्, इतिहास, पुराण, आप्तवाक्य (महापुरुषवाक्य) संस्कृत-प्राकृत सर्वग्रन्थोंमें मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है, उस रामनामकी ओलखान हो गयी ॥ ३ ॥

कहै कबीर सुनो हो साधो, परगट कहूं बजाई।
रामनाम सो सारशब्द है, और कथन सब बाई ॥ १ ॥

(कबीर)

स्वप्रकाशः स्वयंज्योतिः स्वानुभूत्यैकचिन्मयः।
तदेष मन्त्रराजस्य मनुराड् द्व्यक्षरः स्मृतः ॥ १ ॥
अखण्डैकरसानन्दस्तारको ब्रह्मवाचकः।

(रामोपनिषद्)

सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन् रुशद्भिर्वर्णैरभिराममस्थात्।

अर्थ—रामं कृष्णवर्णं शर्व्वरं तमः अभ्यस्थात् सायं होमकाले अभिभूय तिष्ठति इति तद्भाष्ये सायणाचार्याः (जिनका उत्तराश्रममें विद्यारण्यस्वामी नाम है)। (ऋग्वेद १० अ. ३ व. ३)

गाणपत्येषु शैवेषु शाक्तसौरेष्वभीष्टदः।
वैष्णवेष्वपि मन्त्रेषु राममन्त्रः कलाधिकः ॥ १ ॥

(श्रीहयग्रीषपञ्चरात्र)

शतकोट्यो महामन्त्रा उपमन्त्रास्त्रयोदश।
एक एव महामन्त्रो रामनाम परात्परम् ॥ १ ॥

(शिवतन्त्र)

गाणपत्यादिसौराश्च हरिः शेषः शिवः शिवा।
तेषां प्राणो महामन्त्रो रामेति चाक्षरद्वयम् ॥ १ ॥
गणेशे भास्करे चैव शिवे शक्तौ हरावपि।
राममन्त्रप्रभावेण सामर्थ्यं जायते ध्रुवम् ॥ २ ॥

(भारद्वाजसंहिता)

विना शक्तिं कथं कार्यं किं कर्तव्येन वा बलम्।
तदाकाशाद्भवेद्वाणी रामनाम हृदं कुरु ॥ १ ॥

तदा संसरति विश्वं लयं याति मुमुक्षुभिः ।
तस्माद्राम महामन्त्र आदिमन्त्र उदाहृतः ॥ २ ॥

(जैमिनि)

श्रीरामेति परं मन्त्रं तदेव परमं पदम् ।
तदेव तारकं विद्धि जन्ममृत्युभयापहम् ॥ १ ॥

(हिरण्यगर्भसंहिता)

श्रीरामेति परं जाप्यं तारकं ब्रह्मसंज्ञकम् ।
ब्रह्महत्यादिपापघ्नमिति वेदविदो विदुः ॥ १ ॥

(सनत्कुमारसंहिता)

यथा घटश्च कलशः पदार्थस्याभिधायकः ।
तथैव ब्रह्मरामश्च नूनमेकार्थतत्परः ॥ १ ॥

(अगस्त्यसंहिता)

रमन्ते योगिनो यत्र नित्यानन्दे चिदात्मनि ।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते ॥ १ ॥

(रामतापनीय)

राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः ।
राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्म तारकः ॥ १ ॥

(हनुमदुपनिषद्)

श्रीराममन्त्रराजस्य माहात्म्यं गिरिजापतिः ।
जानाति भगवाञ्छम्भुर्ज्वलत्पावकलोचनः ॥ १ ॥

(बृहद्ब्रह्मसंहिता)

मन्त्रराजं प्रवक्ष्यामि शृणु नारद तत्परः ।
रकारादिर्मकारान्तो मन्त्रः षड्वर्णसंयुतः ॥ १ ॥

अकारः प्रथमाक्षरो भवति उकारो द्वितीयाक्षरो भवति मकारस्तृतीयाक्षरो भवति अर्धमात्रा चतुर्थाक्षरो भवति बिन्दुः पञ्चमाक्षरो भवति नादः षष्ठाक्षरो भवति तारकत्वात्तारको भवति तदेव रामेति तारकं ब्रह्म त्वं विद्धि ।

प्रणवं केवलमकारोकारोर्धमात्रासहितं तस्मात्प्रणवस्याकारस्योकारस्य च रकारः मकारश्चार्धमात्रस्य इति ।

(रामोपनिषद्)

अंशांशै रामनाम्नश्च त्रयः सिद्धा भवन्ति हि ।
बीजमोंकारः सोऽहं च सूत्रसूक्तमिति श्रुतिः ॥ १ ॥

रामनाम्नः समुत्पन्नः प्रणवो मोक्षदायकः ।
रूपं तत्त्वमसेश्चासौ वेदतत्त्वाधिकारिणः ॥ २ ॥

(महाप्रभुसंहिता)

रकारश्च परब्रह्म नादमोंकारसंयुतम् ।
ॐबिन्दुश्च मकारोऽयं जातं रामाक्षरद्वयम् ॥ १ ॥
रकारस्तत्पदं ज्ञेयं त्वंपदाकार उच्यते ।
मकारोऽसिपदं ज्ञेयं तत्त्वमसि सुलोचने ॥ १ ॥
चिद्वाचको रकारः स्यात्सद्वाच्याकार उच्यते ।
मकारानन्दवाच्यं स्यात्सच्चिदानन्दमव्ययम् ॥ २ ॥

(श्रीमहारामायण)

प्रणवं केचिदाहुर्वै बीजश्रेष्ठं तथापरे ।
तत्त्वतो रामवर्णाभ्यां सिद्धिमाप्नोति मे मतम् ॥ १ ॥

(महाशम्भुसंहिता)

ॐ भृगुर्वै वारुणिः । वरुणं पितरमुपससार । अधीहि भगवो ब्रह्मेति । सोऽब्रवीद्राम एव परं ब्रह्म रामादन्यन्न किंचन यत एते रामाद्देवा उत्पद्यन्ते राम एव विलीयन्ते राम एव स्थितिं वसन्ति तस्माद्राम एव विभुरिति तैत्तिरीयश्रुतिः ।

(रामतापनीय)

यथैव वटबीजस्थः प्राकृतोऽस्ति महाद्रुमः ।
तथैव रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम् ॥ १ ॥

(याज्ञवल्क्य)

रकाराज्जायते ब्रह्मा रकाराज्जायते हरिः ।
रकाराज्जायते शम्भू रकारात्सर्वशक्तयः ॥ १ ॥

(रुद्रयामलक)

ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या यस्यांशा लोकसाधकाः ।
तं रामं सच्चिदानन्दं नित्यं रामेश्वरं भजेत् ॥ १ ॥

(हनुमत्संहिता)

रामनाम परं जाप्यं ज्ञेयं ध्येयं निरन्तरम् ।
कीर्तनीयं च बहुधा मुमुक्षुभिरहर्निशम् ॥ १ ॥

(जाबालिसंहिता)

अद्यापि रुद्रः काश्यां वै सर्वेषां त्यक्तजीविनाम् ।
दिशत्येतन्महामन्त्रं तारकं ब्रह्मनामकम् ॥ १ ॥

विनैव दीक्षां विप्रेन्द्र पुरश्चर्यां विनैव हि ।
विनैव न्यासविधिना जपमात्रेण सिद्धिदम् ॥ २ ॥
तस्मात् सर्वात्मना रामनामरूपं परं प्रियम् ।
मन्त्रं जपेत्सदा धीमान् संविहायान्यसाधनान् ॥ ३ ॥

(हारीतस्मृति)

जपतः सर्ववेदांश्च सर्वमन्त्रांश्च पार्वति ।
तस्मात्कोटिगुणं पुण्यं रामनाम्नैव लभ्यते ॥ १ ॥
योगिनो ज्ञानिनो भक्ताः सुकर्मनिरताश्च ये ।
रामनाम्नि रताः सर्वे रमुक्रीडा त एव वै ॥ २ ॥

(पद्मपुराण)

रामेत्यक्षरयुग्मं हि सर्वमन्त्राधिकं द्विज ।
यदुच्चारणमात्रेण पापी याति परां गतिम् ॥ १ ॥

(क्रियायोगसार)

श्रद्धया हेलया नाम वदन्ति मनुजा भुवि ।
तेषां नास्ति भयं पार्थ रामनामप्रसादतः ॥ १ ॥
प्रमादादपि संस्पृष्टो यथानलकणो दहेत् ।
तथौष्ठपुटसंस्पृष्टं रामनाम दहेदघम् ॥ २ ॥

(आदिपुराण)

रकारोऽनलबीजं स्याद् ये सर्वे वडवादयः ।
कृत्वा मनोमतं सर्वं भस्म कर्म शुभाशुभम् ॥ १ ॥
आकारो भानुबीजं स्याद् वेदशास्त्रप्रकाशकः ।
नाशयत्येव स दीप्त्या हृत्स्थमज्ञानजं तमः ॥ २ ॥
मकारश्चन्द्रबीजं स्याद्यदपां परिपूरणम् ।
त्रितापं हरते नित्यं शीतलत्वं करोति च ॥ ३ ॥
वैराग्यहेतुः परमो रकारः कथ्यते बुधैः ।
अकारो ज्ञानहेतुश्च मकारो भक्तिहेतुकः ॥ ४ ॥
आकृष्टिः कृतचेतसां सुमहतामुच्चाटनं चांहसा-
माचाण्डालममूकलोकसुलभो वश्यश्च मोक्षश्रियः ।
नो दीक्षां न च दक्षिणां न च पुरश्चर्यां मनागीक्षते
मन्त्रोऽयं रसनस्पृगेव फलति श्रीरामनामात्मकः ॥ ५ ॥

(श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण)

छत्ररूपो रकारोऽस्ति अनुस्वारः शिरोमणिः।
राजराजाधिराजेति तस्माद्रामः शिरोमणिः॥ १॥
(पद्मपुराण)

निर्वर्णं रामनामेदं केवलं च स्वराधिकम्।
सर्वेषां मुकुटं छत्रं मकारो रेफव्यञ्जनम्॥ १॥

यन्नामसंसर्गवशाद्द्विवर्णौ
नष्टस्वरौ मूर्ध्निगतौ स्वराणाम्।
तद्रामपादौ हृदये निधाय
देही कथं नोर्ध्वगतिं प्रयाति॥ २॥

रेफोच्चारणमात्रेण बहिर्निर्याति पातकम्।
पुनः प्रवेशसंदेहान्मकारश्च कपाटवत्॥ १॥
(नारदपञ्चरात्र)

तुलसी राके कहत ही, निकसत पाप बहार।
फिर आवन पावत नहीं, देत मकार किवार॥ १॥

तावदेव इदं तेषां महापातकदाहनम्।
यावन्न श्रूयते रामनामपञ्चाननध्वनिः॥ १॥
(शिवसंहिता)

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम॥ १॥
(हनुमन्नाटक)

रामरामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥ १॥
(पद्मपुराण उत्तरखण्ड अध्याय ६, श्लो० ७१)

य एतत्तारकं ब्रह्मणो नित्यमधीते स पाप्मानं तरति स मृत्युं तरति स ब्रह्महत्यां तरति स भ्रूणहत्यां तरति स वीरहत्यां तरतीत्यादि द्रष्टव्यम्।
(रामतापनीयोप० द्वि० कण्डिका मन्त्र० ४)

अन्तःकरणसंशुद्धिर्नान्यसाधनतो भवेत्।
कलौ श्रीरामनामैव सर्वेषां सम्मतं परम्॥ १॥
(मार्कण्डेयसंहिता)

जपे यस्य लाभोऽजपे यस्य हानिः
सदा सर्वथा सर्वसिद्धान्ततत्त्वम् ।
शिवो नारदो व्यासमुख्या वदन्ति
कलौ केवलं राजते रामनाम ॥ १ ॥

(इति)

श्रृणुष्व मुख्यनामानि वक्ष्ये भगवतः प्रिये ।
विष्णुर्नारायणः कृष्णो वासुदेवो हरिः स्मृतः ॥ १ ॥
नाम्नामेव च सर्वेषां रामनामप्रकाशकः ।
ग्रहाणां च यथा भानुर्नक्षत्राणां यथा शशी ॥ २ ॥

(इति)

नारायणादिनामानि कीर्तितानि बहून्यपि ।
आत्मा तेषां च सर्वेषां रामनामप्रकाशकः ॥ १ ॥

(इति)

सप्तकोटिमहामन्त्राश्चित्तविभ्रमकारकाः ।
एक एव परो मन्त्रो राम इत्यक्षरद्वयम् ॥ १ ॥

(वृद्धमनुस्मृतिः)

श्रीरामाय नमो ह्येतत्तारकं ब्रह्मनामकम् ।
नाम्नां विष्णोः सहस्राणां तुल्य एव महामनुः ॥ १ ॥

(हारीतस्मृतिः अ० ४)

अहं भवन्नाम गृणन् कृतार्थो
वसामि काश्यामनिशं भवान्या ।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं
दिशामि मन्त्रं तव रामनाम ॥ १ ॥

(अध्यात्मरामायण)

पेयं पेयं श्रवणपुटके रामनामाभिरामं
ध्येयं ध्येयं मनसि सततं तारकं ब्रह्मरूपम् ।
जल्पं जल्पं प्रकृतिविकृतौ प्राणिनां कर्णमूले
वीथ्यां वीथ्यामटति जटिलः कोऽपि काशीनिवासी ॥ १ ॥

(काशीखण्ड)

रामनाम परं ब्रह्म सर्वदेवप्रपूजितम् ।
महेश एव जानाति नान्यो जानाति वै मुने ॥ १ ॥

(जैमिनि० व्यासवाक्यम्)

रामेति द्व्यक्षरं नाम यत्र संकीर्त्यते बुधैः।
तत्राविर्भूय भगवान् सर्वदुःखं विनाशयेत् ॥ १ ॥

(लोमशसंहिता)

यस्य नामप्रभावेण सर्वज्ञोऽहं वरानने।
रामनाम्नः परं तत्त्वं नास्ति किंचिज्जगत्त्रये ॥ १ ॥

(शिववा०)

रामेति वर्णद्वयमादरेण सदा स्मरन्भक्तिमुपैति जन्तुः।
कलौ युगे कल्मषमानसानामन्यत्र धर्मे खलु नाधिकारः ॥ १ ॥
कवले कवले कुर्वन् रामनामानुकीर्तनम्।
यः कश्चित्पुरुषोऽश्नाति सोऽन्नदोषैर्न लिप्यते ॥ २ ॥
सिक्थे सिक्थे लभेन्मर्त्यो महायज्ञादिकं फलम्।
यः स्मरेद्रामनामाख्यं मन्त्रराजमनुत्तमम् ॥ ३ ॥

(वैष्णवस्मृतौ)

दैवाच्छूकरशावकेन निहतो म्लेच्छो जराजर्जरो
हा रामेति हतोऽस्मि भूमिपतितो जल्पंस्तनुं त्यक्तवान्।
तीर्णो गोष्पदवद्भवार्णवमहो नाम्नः प्रभावात्पुनः
किं चित्रं यदि रामनामरसिकास्ते यान्ति रामास्पदम् ॥ १ ॥

(वराहपुराण)

द्विजो वा राक्षसो वापि पापी वा धार्मिकोऽपि वा।
त्यजन्कलेवरं रामं स्मृत्वा याति परं पदम् ॥ १ ॥

(अध्यात्मरामायण)

ॐ अथाह भारद्वाजो याज्ञवल्क्यं सहोवाच श्रीराममन्त्रस्य माहात्म्यं नो ब्रूहि भगवन् सह उवाच याज्ञवल्क्यः तारकत्वात्तारको भवति तदेव तारकं ब्रह्म त्वं विद्धि तदेवोपास्यं य एतत्तारकं ब्रह्मणो नित्यमधीते स पाप्मानं तरति स मृत्युं तरति स ब्रह्महत्यां तरति स भ्रूणहत्यां तरति स वीरहत्यां तरति स सर्वहत्यां तरति स संसारं तरति स विमुक्तात्मा भवति स महान् भवति सोऽमृतत्वं च गच्छतीति।

(सामवेदपिप्पलायनशाखा)

हरिः ॐ द्वापरान्ते नारदो ब्रह्माणं जगाम कथं भगवन् गां पर्यटन् कलिं संतरेयमिति। सहोवाच ब्रह्मा साधु पृष्टोऽस्मि सर्वे श्रुतिरहस्यं गोप्यं तच्छृणु। येन कलिसंसारं तरिष्यसि। भगवत आदिपुरुषस्य नारायणस्य नामोच्चारणमात्रेण निर्धूतकलिर्भवति। नारदः पुनः पप्रच्छ। तन्नाम किमिति। स होवाच हिरण्यगर्भः—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

इति षोडशकं नाम्नां कलिकल्मषनाशनम् । नातः परतरं प्रायः सर्ववेदेषु दृश्यत इति षोडशकलावृतस्य पुरुषस्यावरणविनाशनम् । ततः प्रकाशते परं ब्रह्म मेघापाये रविरश्मिमण्डलीवेति । पुनर्नारदः पप्रच्छ । भगवन्कोऽस्य विधिरिति । तं होवाच नास्य विधिरिति । सर्वदा शुचिरशुचिर्वा पठन् ब्रह्मणः सलोकतां समीपतां सरूपतां सायुज्यतामेति । यदास्य षोडशकस्य सार्धत्रिकोटिर्जपति । तदा ब्रह्महत्यायास्तरति । स्वर्णस्तेयात् पूतो भवति । वृषलीगमनात्पूतो भवति । सर्वधर्मपरित्यागपापात्सद्यः शुचितामाप्नुयात् । सद्यो मुच्यते सद्यो मुच्यत इत्युपनिषत् । हरिः ॐ सह नाववत्विति शान्तिः शान्तिः शान्तिः । हरिः ॐ ।

(कलिसंतारणोपनिषद्)

राम एव परं ब्रह्म परमात्माभिधीयते ।
रामात्परतरं नास्ति यत्किंचित्स्थूलसूक्ष्मकम् ॥ १ ॥

(पराशरस्मृति)

रामान्नास्ति परो देवो रामान्नास्ति परं व्रतम् ।
नहि रामात्परो योगो नहि रामात्परो मखः ॥ १ ॥
राशब्दो विश्ववचनो मश्चापीश्वरवाचकः ।
विश्वेषामीश्वरो यो हि तेन रामः प्रकीर्तितः ॥ २ ॥

(पद्मपुराणे)

पदश्रवणकराननवाणी त्वङ्नयननासिकादीन्द्रियविषयाधीशैः ।
विवर्जितो रामः साक्षात्परब्रह्मविग्रहः सच्चिदानन्दात्मकः स्वयम् ॥१॥

(शिवस्मृतिः)

रकारार्थो रामः सगुणपरमैश्वर्यजलधिः
मकारार्थो जीवः सकलविधकैंकर्यनिपुणः ।
तयोर्मध्याकारो युगलमथ सम्बन्धप्रमुखः
अनन्यार्हो ब्रूते त्रिनिगमसरूपोऽयमतुलः ॥ १ ॥

(आचार्यवाक्यम्)

श्रीरामं ये च हित्वा खलमतिनिरता ब्रह्मजीवं वदन्ति
ते मूढा नास्तिकास्ते शुभगुणरहिताः सर्वबुद्ध्यातिरिक्ताः ।
पापिष्ठा धर्महीना गुरुजनविमुखा वेदशास्त्रैर्विरुद्धा-
स्ते हित्वा गाङ्गमम्भो रविकिरणजलं पातुमिच्छन्ति त्रस्ताः ॥१॥

(शिववाक्यम्)

श्रीमन्द्भानुसुतातटे प्रविलसद्दिव्यं महत्पत्तनं
तत्कंसस्य जगत्त्रयेऽपि विदितं वर्णैः शुभैर्वह्निभिः ।
अन्त्याद्यौ विबुधाः स्मरन्ति भुवि ये धन्याः कुलं पावितं
तौ तेषां न भजन्ति स्याच्च वदने मध्यस्थितं चाक्षरम् ॥ १ ॥
पठति सकलशास्त्रं वेदपारं गतोऽपि
यमनियमपरो वा धर्मशास्त्रार्थवेत्ता ।
अटति सकलतीर्थं राजिता वा हुताग्नि-
र्यदि भजति न रामं सर्वमेतद् वृथा स्यात् ॥ २ ॥

कबीर कसौटी रामकी, झूठा टिकै न कोय ।
राम कसौटी सो सहै, जो मरजीवा होय ॥ १ ॥
कबीर कहता हूँ कह जात हूँ सुणता है सब कोय ।
राम कह्यां भल होयगा, नहिंतर भला न होय ॥ २ ॥
(कबीर०)

मूरख तन धर कहा कमायो ।
राम भजन बिन जन्म गुमायो ॥
(श्रीरामानन्दजी म०)

रसना राम उचार रे तुझे आय मिलेंगे ।
अर्धनाम उद्धार करेगो, नहिं तो फिरि फिरि जन्म धरेगो ॥
(श्रीजैमलदासजी म०)

रामनाम निजमूल है, और सकल विस्तार ।
जन हरिया फल मुक्ति कूं, लीजै सार संभार ॥ १ ॥
(श्रीहरि० वाक्यम्)

राम कह्या सबही सझा, सबहि राम के माहिं ।
रामदास इक राम बिन, दूजा कोऊ नाहिं ॥ १ ॥
धिन साधू संसार में, सुमरावे निजनाम ।
रामदास सत शब्द दे, पहुंचावे सुन गाम ॥ २ ॥
बड़ा बडेरा मंडका, ब्रह्मा विष्णु महेश ।
रामदास उन भी कह्यो, राम सर्व उपदेश ॥ ३ ॥
(श्रीराम० वाक्यम्)

एक राम के नाम बिन जिवकी जरनि न जाय ।
दादू केते पचि मरे करि करि बहुत उपाय ॥ १ ॥

रामनाम गुरु शब्द सूं, रे मन पेल भरम्म।
निहकरमी सूं मन मिल्या, दादू काट करम्म ॥ २ ॥

(दादू दयाल)

राम नाम जपिबो श्रवनन सुनिबो, सलिलमोहमें वहि नहिं जइबो।

(नामदेव)

रे मन राम नाम संभार, माया के भ्रम कहा भूलो चलेगो कर झार।

(रैदासजी)

दया वोधमाँहीं कही, करि करि ऊँची बाँह।
दयावंत जिनके वसै, राम राम उरमाँह ॥ १ ॥

(गोरखनाथजी)

सुंदर कहत एक दियो जिन राम नाम।
गुरुसो उदार कोउ देख्यो नाँहि सुन्यो है।

(सुन्दरदासजी)

रज्जब मिनखा देह धृक्, आतमराम न जानियो।

(रज्जबजी)

हरिहां वाजींद रामभजन में, देह गले तो गालिये।

(वाजींदजी)

रसना रटै न रामकूँ, आन कथा मुख चोळ।
जन हरिदास वे मानवी, काग विलाई कोळ ॥ १ ॥

(हरिदासजी)

मृगतृष्णा ज्यूं जगरचना, यह देखो हृदय विचार।
कह नानक भज रामनाम, नित जातें हो उद्धार ॥ १ ॥

(गुरुनानक)

माया त्याग भजै नित राम, सो अरिहंत इते सब काम।
जैनशास्त्र दशलाख गरथ, तिनमें भाख्यो यही अरथ।
राम राम सो अरिहंत कहिये, ताही भज अरिमनकूँ गहिये ॥ १ ॥

(जैनमत समयसारनाटक)

राम राम सब कोइ कहै, ब्रह्मा विष्णु महेश।
राम चरण साचा गुरू, देवे यो उपदेश ॥ १ ॥
राम चरण शिव धर्म कूं, जानत नांहीं कोय।
शिव सुमरे ताकूं भजे, सो शिव धरमी होय ॥ २ ॥

(श्रीरामचरणजी महाराज)

तन मन कर हेती [1]रसना सेती रामहि राम रटंदा है ॥ ४ ॥

तब तन-मन उसीमें तल्लीन हो गया और अनन्य प्रेमपूर्वक रसना (जिह्वा) से राम-ही-राम शब्दकी रटना अहर्निश (दिनरात) होने लग गयी ॥ ४ ॥

को काहू के शब्द से, फाट जाय आकाश ।
संत नमाने संतदास, विना राम विश्वास ॥ १ ॥

पाई न गति केहि पतित पावन, राम भज सुनु शठ मना ।
गणिका अजामिल गृध्र व्याध, गजादि खल तारे घना ॥
आभीर यवन किरात खल, श्वपचादि अति अघरूप जे ।
कहि नाम वारक तेपि पावन, होत राम नमामि ते ॥ १ ॥

न मिटै भव संकट दुर्घट है, तप तीरथ जन्म अनेक अटो ।
कलिमें न विराग न ज्ञान कहूँ, सब लागत फोकट झूठ जटो ॥
नट ज्यों जनि पेट कुपेटक कोटिक चेटक कौतुक ठाट ठटो ।
तुलसी जो सदा सुख चाहिये तो, रसना निशि वासर राम रटो ॥१॥

राका रजनी भक्ति तव, राम नाम सोइ सोम ।
अपर नाम उडगण विमल, बसहु भक्त उर व्योम ॥ १ ॥

यद्यपि प्रभु के नाम अनेका । श्रुति कह अधिक एकते एका ॥
राम सकल नामनते अधिका । होउ नाथ अघखगगणवधिका ॥
(रामायण)

राम नाम मणिदीप धर, जीह देहरी द्वार ।
तुलसी भीतर बाहिरे, जो चाहसि उजियार ॥ १ ॥

हिय निर्गुण नैनन सगुण, रसना राम सुनाम ।
मनहु पुरट संपुट किये, तुलसी ललित ललाम ॥ २ ॥

जन मन वन नहिं कर सकै, कलिमल गज पैसार ।
उभय सिंह गरजत सदा, नाथ रकार मकार ॥ ३ ॥ (तुलसी)

जा घट चौकी रामकी, विघ्न धसै नहि चौर ।
ज्यों सूरज मंडल विषै, नहीं तिमिर को ठौर ॥ १ ॥

१ रसनासे राम-नाम-रटन—
राम नाम को कीजिये, आठों पहर उचार ।
हरिया बंदीवान ज्यों, करिये कूक पुकार ॥ १ ॥
(श्रीहरि० वाक्यम्)

रसना सों रटिवो करै, आठों पहर अभंग।
रामदास उण संत को, राम न छांडै संग ॥ १ ॥

(श्रीराम० वाक्यम्)

कबीर राम राम कहि कूकिये, ना सोइये असरार।
रात दिवस के कूकने, कबहुक लगे पुकार ॥ १ ॥
राम नाम जपते रहो, जब लग घटमें प्रान।
कबहुक दीन दयालुके, भनक परेगी कान ॥ १ ॥
रामनामको नित भजो, रसना होट समेत।
हरिया जोग रु जुगति विन, सहज न को सिवरेत ॥ १ ॥
राम नाम रसना रटै, सोई जग में साध।
हरिया सुमिरन सहज का, वांका मता अगाध ॥ २ ॥

स्मरणके स्थान—१ रसना, २ कण्ठ, ३ हृदय, ४ नाभि।
स्मरणके भेद—१ अधम, २ मध्यम, ३ उत्तम, ४ अत्युत्तम।

प्रथम राम रसना सुमरि, द्वितिये कंठ लगायं।
तृतिये हिरदै ध्यान धरि, चौथे नाभि मिलाय ॥ १ ॥

प्रथम सो प्रथम अध नाम रसना लिया, दूसरे नाम मधं कंठ धारा।
तीसरे उत्तम सो नाम हिरदै कह्या चतुरथै नाभि अतिउत्तम यारा ॥

(श्रीहरि० वाक्यम्)

तुरसी अध सुमरिण धौं एह, रसना राम राम जपिलेह।
यह आलंबन तोलौं करै, मध सुमिरण की सोझी परै ॥ १ ॥
तुरसी मध सुमिरण जु यह, कंठ कमल अस्थान।
राम नाम उच्चार हुय, घायल करै सो प्रान ॥ २ ॥
उत्तम सुमिरण हिरदा में, आरंभै धरि ध्यान।
श्वासोच्छ्वास रख्यो करे, तुरसी नाम निर्बान ॥ ३ ॥
तुरसी अति उत्तम भजन, कापें वरण्या जाय।
लख्यो ज कापे परै, भाग हुवै तो पाय ॥ ४ ॥

(जन तुरसी)

आठ पहर चौसठ घड़ी, रहै राम से रत्त।
जब जाय फाटै संतदास, चौरासी का खत्त ॥ १ ॥

(संतदासजी)

वरस्या है प्रेमा दरस्या नेमा कंठ[1] कमल फूलंदा है ॥ ५ ॥
भँवरा[2] गुंजारू खुल्ला बारू मुरली टेर सुणंदा है ॥ ६ ॥

और प्रेमकी वर्षा होने लगी, जिससे स्वयं ही (आपोआप) योगशास्त्रोक्त षट्चक्र-भेदन तथा क्रमानुसार राम नाम रटने (जपने) के नियम (विधि) जान पड़ने लग गये और राम नामकी रटना अहर्निश अखण्ड होती रहनेसे प्रथम ही प्रथम कण्ठस्थ कमलका विकास हो गया (कण्ठकमल फूल गया), जब कण्ठमें स्मरण होनेसे कण्ठ-कमल फूला तब जैसे भ्रमर (भँवरा) शब्द करता है उसके समान कण्ठमें (राम नाम-रटन) गुंजार शब्द होने लगा और कण्ठ-कमलका द्वार खुल गया जिससे उस नादकी टेर बाँसुरीकी टेरके सदृश सुनायी पड़ने लगी ॥ ५-६ ॥

श्वास रु उच्छासा हिरदैवासा[3] सुमिरण[4] ध्यान धरंदा है ॥ ७ ॥
नाभी[5] घर आया नाच नचाया सहजाँ[6] सुख सुमरंदा है ॥ ८ ॥

---

१ विशुद्धिचक्र ।

२ गदगद सुमरण कंठ में, अमृत की सी धार ।
एक अखंडी होत है, भवर पंख भणकार ॥ १ ॥
(श्रीहरि० वाक्यम्)

३ रसना, कण्ठ और हृदय—इन तीन स्थानोंमें स्मरण क्रमसे पहुँचनेमें श्रीहरिरामदासजी महाराजको ७ वर्ष और २ मासकी अवधि लगी थी ।

राम राम रसना किया, मास दोय विश्राम ।
हरिया हिरदै कंठ बिच, सागर वर्ष मुकाम ॥ १ ॥
(श्रीहरि० वाक्यम्)

४ गुण तारे माया तिमिर, शीत भरम मन चन्द ।
रज्जब सुमिरण सूरतें, सहज पड़े सब मन्द ॥ १ ॥

५ हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिमण्डले अर्थात् हृदयमें प्राणवायु, गुदामें अपानवायु और नाभिमें समानवायु रहता है एवम् उदानः कण्ठदेशे स्याद् व्यानः सर्वशरीरगः इति अर्थात् कण्ठमें उदानवायु और सर्वशरीरमें व्यानवायु निवास करता है ।

६ नाभिस्थानमें जब स्मरण होने लगता है तब सहज स्मरण होता है ।

तदनन्तर हृदयस्थान (अनाहत चक्र) में श्वास और उच्छ्वासकी गतिका ठहरना हुआ और मन-ही-मनमें स्मरणका ध्यान धरने लगा, हृदयमें स्मरण होनेके पश्चात् नाभिस्थान (मणिपुरचक्र) में स्मरण करता हुआ प्राणवायु समानवायुमें आकर मिला (प्राणवायु समानवायुके घरमें अर्थात् नाभिस्थानमें जब आया) तब अनेक प्रकारके नाच नचाने लगा और सहजमें ही आपसे आप मुखसे राम नामका स्मरण होने लग गया ॥ ७-८ ॥

रग रग आरंभा भया अचंभा छुच्छम[1] वेद भणंदा है ॥ ९ ॥

और व्यानवायु जो सर्वशरीरमें व्यापक हो रहा है उससे प्राण और समानवायुका योग होनेसे रग-रगमें (नस-नसमें) आश्चर्यजनक एक क्रियाका आरम्भ हुआ जिसका भेद वर्णन करना बड़ा सूक्ष्म है ॥ ९ ॥

ओऊँ अरु सोऊँ देख्या दोऊँ पारब्रह्म परसंदा है ॥ १० ॥

रंकार सुमरण सहज, नाभि कमल अस्थान ।
हरिया पच्छिमदेशकों, पहुँचन का परमान ॥ १ ॥
ज्यूं जल सेझै सिंधुका, बाका थाह न कोय ।
हरिया सुमिरन सहजका, निशिदिन घटमें होय ॥ २ ॥

सोरठा

हरिया मुख ममकार, जब सहजाँ सुमिरण नहीं ।
मरै धरै आकार, मेला जीव रु शीव बिन ॥ १ ॥

अर्थात् सहज सुमिरण नाभिस्थानमें जब रकारका स्मरण होने लग जाय तो पश्चिम देशको पहुँचनेका प्रमाण समझना । सहज सुमिरणमें मकारका स्मरण बंद होकर केवल ररंकार शब्दकी रात-दिन रटना होने लग जाती है तभी जीव और शिव एक हो जाते हैं ।

[1] छुछम वेद—यह महात्माओंका सांकेतिक शब्द है जिसमें सूक्ष्म भेद (वार्ताओं) का वर्णन है अथवा स्वसंवेद्य गुणको भी कहते हैं अथवा भगवान्‌के श्वासोच्छ्वासरूप वेदको भी कहते हैं अथवा 'छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्' इसको भी कहते हैं ।

ऐसी स्थिति होनेके पश्चात् ओऊँ=हंसः और सोऊँ=सोहं-इन दोनोंके "हंसः सोहं सोहं हंसः" इस अजपा[1] नाम गायत्रीके जपका ज्ञान प्राप्त होनेसे परब्रह्म परमात्माके दर्शनकी प्राप्ति होती है वह हुई ॥१०॥

---

१ अजपाके जपसे परब्रह्म परसता हैं—

ओऊं सोऊं जाप अजप्पा, घटमें कीया संप असंपा।

(श्रीहरि० वाक्यम्)

ओऊं सोऊं अर्थात् हंसः सोहं अजपा जप है। इसने घटमें असंप (जीव ब्रह्मका भेद) का संप (अभेद) कर दिया—ठीक वाच्यार्थ सफल कर दिया।

उलटा अजपा जाप जपाया। हद को जीत वेहदमें आया॥

(श्रीराम० वाक्यम्)

नासापथसमाकृष्टः पवनः फुसफुसं गतः।
शोधयेच्छोणितं दुष्टं तेन जीवन्ति जन्तवः॥ १॥
सोहंशब्देन जीवानां श्वासोच्छ्वासौ निरन्तरम्।
स्यातां वा हंसशब्देनोच्छ्वासश्वासौ विपर्य्ययात्॥ २॥
इत्ययं द्व्यक्षरो मन्त्रो जीवजप्योऽजपा मता।
जपारम्भो हि जननं मरणं तत्समापनम्॥ ३॥

इसी अजपा मन्त्रको अजपा गायत्री कहते हैं।

एकविंशतिसाहस्रं षट्शताधिकमीश्वरि।
जपते प्रत्यहं प्राणी सान्द्रानन्दमयीं पराम्॥ ४॥
विना जपेन देवेशि जपो भवति मन्त्रिणः।
अजपेयं ततः प्रोक्ता भवपाशनिकृन्तनी॥ ५॥

(दक्षिणामूर्तिसंहिता)

अजपा नाम गायत्रीं जीवो जपति सर्वदा।
षट् शतानि दिवारात्रौ सहस्राण्येकविंशतिः॥ १॥
एतत्संख्यान्वितं मन्त्रं हंसः सोहं क्रमेण वै।

(कुलार्णव)

जातः स इति वै शब्दमुच्चार्यारभते जपम्।
महाप्रयाणसमये हमुच्चार्य समापयेत्॥ १॥

(दक्षिणामूर्तिसंहिता)

मम्मा हुय पासे कमल विकासै अर्ध नाम आखंदा है ॥ ११ ॥
ऊ नामज केवल बडे महाबल रोम रोम उचरंदा है ॥ १२ ॥

जिससे राम राम शब्द जो मैं जपता था उसमेंसे मकार बोलना बंद हो गया अर्थात् मायासे रहित अद्वैतरूप अर्धनाम जो केवल रकार है उसी रकारका (राँ राँ राँ राँ राँ राँ) स्मरण होने लग गया, नाभिकमलका विकास हो गया, जिससे शुद्ध निर्गुण (मायारहित) पार परब्रह्मका दर्शन हुआ तब महाबलशाली अर्धनाम रकार जो अद्वैतरूप है केवल उसीका उच्चारण रोम-रोममें हो रहा है ऐसा मालूम होने लगा ॥

यह अजपा जप तो स्वाभाविक रीत्या अहर्निश होता ही रहता है, परंतु यही अजपा जप राममन्त्रके सहित जपनेसे फलदायक होता है ।

ओऊं सोऊं ऊंबरा, दोऊं खाली ओड़ ।
नाम विना ऊगै नहीं, पच पच मरो करोड़ ॥ (रज्जबजी)
ओऊं सोऊं देह लग, निशि दिन आवे जाय ।
एक अखंडी शब्द में, हरिया सुरति समाय ॥ १ ॥

अर्थात् हंसः सोहं यह श्वासोच्छ्वास शब्द, शरीर है तबतक रात-दिन आता-जाता रहता है, इसीके द्वारा एक अखण्डी शब्द जो ररंकार आत्मा स वाचक शब्द है उसमें सुरति समाय दो यानी समावेश कर दो—

ओऊं सोऊं शब्द की, सहजाँ सुणी अवाज ।
जन हरिया इन ऊपरै, ररंकार का राज ॥ १ ॥
ओऊं सोऊं शब्द की, तीन लोक लग सोय ।
जन हरिया ररंकारका, आर पार नहिं कोय ॥ २ ॥
(श्रीहरि० वाक्यम्)

अजपाजपनिष्कृष्ट-लक्षण—

मन पवना अरु सुरति से, आतम पकड़े आप ।
रज्जब लावे सुरति सो, एहै अजपाजाप ॥ १ ॥
(रज्जबजी)

अजपाजाप लगावे हेत, नीरक्षीर न्यारा करिदेत ।
विष छांडे अमृत कूं पीवे, समझ पिछाणै सुमरिण साच ।
अन्तर एक राम सुख राखे, और सकल सुख मानै काच ॥
(श्रीजैमलदासजी महाराज)

रहता से रत्ता है निज तत्ता न्यारा हुय निरखंदा है ॥ १३ ॥
ऐसा अविनासी आय न जासी भाग वडे[1] भेटंदा है ॥ १४ ॥

यह रकारका स्मरण इस शरीरमें रहनेवाले आत्मामें रत (लवलीन) होनेसे निज तत्त्वरूप हो जानेके कारण न्यारा होकर देखने लग गया अर्थात् द्रष्टा होकर अपने आपको देखने लगा, जिस परब्रह्मको अलग होकर देखने लगा वह परब्रह्म ऐसा अविनाशी है जो न तो कहींसे आता है न कहीं जाता है, अपनेमें ही सदा-सर्वदा विराजमान रहता है उस परब्रह्मकी भेट बड़े महाभाग्य होते हैं तब ही होती है ॥१३-१४॥

रेचक[1] अरु पूरक कर बिन कुंभक आप उलटि पलटंदा है ॥ १५ ॥

विना हाथकी सहायताके जब आपसे आप स्वयं बाँयेसे दहिना और दहिनेसे बाँई तरफ उलट-पुलट रेचक-पूरक होकर कुम्भक होने

---

१ मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥ १ ॥
बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ २ ॥
(गीता)

१ प्राणायाम—
प्राणायामस्त्रिधा प्रोक्तो रेचपूरककुम्भकैः ।
सहितः केवलश्चेति कुम्भको द्विविधो मतः ॥ १ ॥
यावत्केवलसिद्धिः स्यात्सहितं तावदभ्यसेत् ।
रेचकं पूरकं मुक्त्वा सुखं यद्वायुधारणम् ॥ २ ॥
न रेचको नैव च पूरकोऽत्र नासापुटे संस्थितमेव वायुम् ।
सुनिश्चलं धारयते क्रमेण कुम्भाख्यमेतत्प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ३ ॥
(हठयोगप्रदीपिका)

अर्थात् जबतक "केवल कुम्भक" सिद्ध न हो तबतक रेचक-पूरकादि क्रिया करके कुम्भकका अभ्यास करता रहे, जब रेचक और पूरकके विना ही स्वयं वायु नासापुटमें ही सुनिश्चल स्थिर होकर कुम्भक हो जावे उसको केवल कुम्भक कहते हैं, यह जिसके सिद्ध हो जाता है उसको—

लगता है, अथवा रेचक और पूरकके किये विना "केवल कुम्भक" ही होने लगता है ॥ १५ ॥

त्राटक[1] हुय ध्यानू वात विज्ञानू आपा पट खूलंदा है ॥ १६ ॥

त्राटक (विना पलक झपकाये एक सरीखे नेत्र किसी सूक्ष्म लक्ष्यकी ओर जमाकर एकाग्र अनन्य भावका चित्त हो) ध्यान करनेसे

कुम्भके केवले सिद्धे रेचपूरकवर्जिते ।
न तस्य दुर्लभं किंचित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
शक्तः केवलकुम्भेन यथेष्टं [1]वायुधारणात् ॥
राजयोगपदं चापि लभते नात्र संशयः ।
कुम्भकात् कुण्डलीबोधः कुण्डलीबोधतो भवेत् ॥
अनर्गला सुषुम्णा च हठसिद्धिश्च जायते ।
हठं विना राजयोगो राजयोगं विना हठः ॥
न सिध्यति ततो युग्ममानिष्पत्तेः समभ्यसेत् ।

तीन लोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है । जो केवल कुम्भक करनेको समर्थ हो जाता है और जो यथेष्ट वायु धारण कर सकता है वह राजयोगके पदको प्राप्त होता है इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं । कुम्भकसे कुण्डलीका प्रबोध होता है और कुण्डलीके प्रबोध होनेसे सुषुम्णा सरल हो जाती है जिसमें हठयोगकी सिद्धि हो जाती है ।

१ त्राटक[2]—

निरीक्षेन्निश्चलदृशा सूक्ष्मलक्ष्यं समाहितः ।
अश्रुसम्पातपर्यन्तमाचार्यैस्त्राटकं स्मृतम् ॥ १ ॥
मोचनं नेत्ररोगाणां तन्द्रादीनां कपाटकम् ।
यत्नतस्त्राटकं गोप्यं यथा हाटकपेटकम् ॥ २ ॥

(हठयोगप्रदीपिका)

---

१ स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः ।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥
यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता)

२ कितने ही ललाट-देशमें प्राण-निरोध करनेको भी त्राटक कहते हैं ।

विज्ञान (भूत-भविष्य-वर्तमानज्ञान) प्राप्त होता है तब अपने आपका पड़दा खुल जाता है और अपने आपको पहिचानने लग जाता है। अर्थात् "अहं ब्रह्मास्मि" ज्ञान हो जाता है ॥ १६ ॥

सुखमण की घाटी चढ़िया वाटी अरसघरां ठहरंदा है ॥ १७ ॥

उपरोक्त प्रकारसे प्राण-वायुका कुम्भक एकाग्रतासे रकार रटणपूर्वक होता हुआ [2]सुषुम्णाकी महाघाटीके पथमें जब प्राणवायु अपानवायुके

अर्थात् इधर-उधर नहीं देखते हुए विना पलक झपकाये निश्चल दृष्टिसे किसी लक्ष्यको एकाग्रचित्त होकर जबतक नेत्रोंमेंसे पानी टपकने न लग जाय तबतक देखते रहनेको आचार्योंने त्राटक कहा है। यह त्राटक नेत्रके सर्वरोगको और तन्द्रा आदिको मिटानेवाला यत्नपूर्वक गुप्त रखने योग्य है।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥ ११ ॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ १२ ॥
समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ १३ ॥
प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥ १४ ॥
युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥ १५ ॥

(भगवद्गीता अध्याय ६)

२ सुषुम्णा—इडा और पिंगला नाड़ीके मध्यमें सुषुम्णा है।

दोहा

इला चंद रवि पिंगला, मध सुखमण का घाट।
हरिया गुरु परसाद ते, खूला सहज कपाट ॥ १ ॥

(श्रीहरि० वाक्यम्)

इडा भगवती गङ्गा पिङ्गला यमुना नदी।
तयोर्मध्ये प्रयागस्तु यस्तं वेद स वेदवित् ॥ १ ॥

(बृहत्सामब्राह्मण)

सुषु इत्यव्यक्तशब्दं म्नायति म्ना—कः मेरुदण्डबाह्ये इडा-पिङ्गला-नाडी-मध्यस्थनाडीविशेषः ।

मेरोर्बाह्यप्रदेशे शशिमिहिरशिरे सव्यदक्षे निषण्णे ।
मध्ये नाडी सुषुम्णा त्रितयगुणमयी चन्द्रसूर्याग्निरूपा ॥ १ ॥

(शब्दकल्पद्रुम)

मेरुबाह्ये इडा नाडी पिङ्गला या समन्विता ।
सुषुम्णा भानुमार्गेण ब्रह्मद्वारावधिस्थिता ॥ १ ॥

(योगस्वरोदय)

नाडीर्दश विदुस्तासु मुख्यास्तिस्रः प्रकीर्तिताः ।
इडा वामे तनोर्मध्ये सुषुम्णा पिङ्गला परे ॥
मध्या तास्वपि नाडी स्यादग्निसोमस्वरूपिणी ॥ १ ॥

अत्रेडा वामवृक्काधःस्था धनुर्वक्रा वामनासापर्यन्तगता, एवं पिङ्गला दक्षिणाण्डाधःस्था धनुर्वक्रा दक्षिणनासान्तं गता, पृष्ठवंशान्तर्गता सुषुम्णा इत्यर्थः ।

(शारदातिलक)

तात्पर्य यह है कि, मेरुदण्डके बाहरके बाँये भागमें इड़ा नामकी नाड़ी बाँये अण्डके मूलसे निकलकर धनुषके समान टेढ़ी होकर वामनासाके अन्तपर्यन्त गयी है, एवं दक्षिण अण्डके मूलसे निकलकर धनुषके समान टेढ़ी होकर मेरु-दण्डके दक्षिणभागमें रहकर पिङ्गला नामकी नाड़ी दक्षिणनासिकाके अन्तपर्यन्त गयी है, और इन दोनों (चन्द्रसूर्यस्वरूपिणी) इड़ा-पिङ्गला नाड़ीके मध्यमें (मेरुदण्डके बीचमें अर्थात् मेरुदण्डके भीतरके मध्यभागमें अग्निरूपिणी सुषुम्णानाड़ी मूलाधारसे निकलकर ब्रह्मद्वारपर्यन्त गयी हुई है, यह नाड़ी त्रि-गुणात्मिका चन्द्रसूर्याग्निरूपा है। मेरुदण्डको ही पृष्ठवंश कहते हैं। इसी पृष्ठवंशके भीतरके भागमें सुषुम्णा नाड़ी रहती है और बाहरके भागमें बाँयी ओर इड़ा, दहिनी ओर पिङ्गला नामकी नाड़ियाँ आजु-बाजु मिली हुई रहती हैं। इन्हीं तीनों नाड़ियोंको गङ्गा-यमुना और प्रयाग भी कहते हैं ।

सुषुम्णाको पश्चिमद्वार अथवा वंकनाल अग्निरूपिणी भी कहते हैं। इसके और भी कई नाम शास्त्रोंमें इस प्रकार कहे गये हैं—

सुषुम्णा शून्यपदवी ब्रह्मरन्ध्रं महापथः ।
श्मशानं शाम्भवी मध्यमार्गश्चेत्येकवाचकाः ॥ १ ॥

इस सुषुम्णा नाड़ीके विषयमें विशेष विवेचन इस प्रकार है—

मस्तिष्कका स्वरूप कद्दुएकी खोपड़ीके समान है, इसमें श्वेत रूईके समान चरबीकी गिल्टियाँ बारीक झिल्लियोंमें लिपटी हुई भरी हैं जिनको भेजा कहते हैं।

इसके चौड़ाईमें दो भाग नारंगीकी फाँकोंके समान हैं और लम्बाईमें भी दो भाग हैं। सामनेका भाग पेशानीकी तरफवाला डाक्टरीमें (Cerebrum) सेरीब्रम् कहलाता है और पिछला भाग (Cerebellum) सेरीबेल्लम् कहलाता है। यह पिछला भाग पतला होता हुआ बारीक सूतकी तरह रीढकी हड्डीमें फैला हुआ है। जिसको हराम मगज कहते हैं। इस रीढकी हड्डीमें शरीरकी सम्पूर्ण शक्तियों और प्रत्येक प्रकारके स्नायुओंके केन्द्र हैं। सम्पूर्ण केन्द्रोंमें गाँठ लगी हुई है, जिससे मनुष्य अपनी शक्तिको प्रयोगमें नहीं ला सकता। कुण्डलिनी नाम केन्द्र यदि जगाया जावे तो यह जोरमें भरकर इन गाँठोंको तोड़ सकता है, क्योंकि जीवात्मा इसीमें लिपटा हुआ अचेत रहता है, जो इच्छाओंकी व कर्मोंकी जंजीरमें बँधकर शरीरके अंदर कैद है। शरीरमें ऐसे आत्मिक केन्द्र तो चौदह हैं परंतु इनमेंसे छः अधिक विख्यात हैं जो षट्चक्र कहलाते हैं। डाक्टरोंकी सम्मतिमें ये वे स्थान हैं जहाँ किसी प्रकारके स्नायुके झुंड आकर इकट्ठे होते हैं, और जहाँ अत्यन्त अधिक बल दूसरे अङ्गोंकी अपेक्षा इकट्ठा रहता है और इनमें प्रतिसमय शक्ति भरी और बहती रहती है।

रीढकी मेरुदण्ड (Spinal Cord) स्पाइनल कोर्ड में जो हराम मगज भरा है उसके बीचों-बीच बालके बराबर बारीक नाली मस्तिष्कसे लेकर नीचे गुदातक चली गयी है जिसको अंग्रेजीमें (Canal of String) केनाल आफ स्ट्रिंग और संस्कृतमें सुषुम्णा कहते हैं, यह रंग तेजीसे भरी हुई है, और यही स्थान शक्ति व जिंदगीका घर है। और जिस प्रकार बेंतमें गाँठ होती है इसी तरह इसमें षट्चक्रोंका स्नायु-केन्द्र है और इनके स्थानकी ठीक पहिचान यह है कि, इस स्थानके सामने शरीरमें जरा-सा गड्ढा व खाली स्थान अवश्य होता है। (षट्चक्रोंका विशेष वर्णन षट्चक्रवर्णनके प्रसंगमें आगे लिखनेमें आयगा)। इड़ा नामकी नाड़ी सुषुम्णाके बाँई तरफ होती हुई आज्ञा-चक्रतक आती है, फिर वहाँसे मुड़कर सीधे नथनेमें पहुँचती है। और पिङ्गला सुषुम्णाके सीधी तरफ लिपटी हुई आती है फिर वहाँसे मुड़कर बाँये नथनेमें जाती है। सुषुम्णा रीढके भीतर होकर जाती है। इसके मध्यमें खाली स्थान है जिसको चित्रा कहते हैं इसीमें आत्मा रहता है। इस नाड़ीके छः दरजे हैं जिनमें केवल पाँच साधारणतया प्रकट किये जा सकते हैं। डाक्टरी मतसे तो नाड़ियाँ रुधिर ले जानेका काम करती हैं परंतु योगशास्त्रमें ऐसा माना है कि वे वायु और शक्ति भी ले जाती हैं। यह गिनतीमें सब चौदह हैं, परंतु इनमेंसे उपरोक्त (इडा-पिङ्गला-सुषुम्णा) तीन अधिक विख्यात और आवश्यकीय हैं। यह नाड़ियाँ बारीक सूतके समान स्नायु हैं जो कि हड्डियोंसे निकलती हैं। योगी-

साथ मिलकर सुषुम्णा नाड़ीके मार्गमें चढ़ा तब अरसघर (शून्यस्थान) में जाकर ठहरा ॥ १७ ॥

फिरिया मन पूरव चले अपूरब ठाम ठाम ठमकंदा है ॥ १८ ॥

तत्पश्चात् पूर्वसे मन फिरकर कण्ठ, हृदय, नाभिमें क्रमसे ऊपरसे नीचे स्थान-स्थानपर श्वास ठहरता हुआ (स्थिर होता हुआ) पश्चिमकी तरफ यानी सुषुम्णा मार्गके द्वारकी ओर चलने लगा ॥ १८ ॥

जालंधर[1] बंधा उरधे कंधा मन अरु पवन मिलंदा है ॥ १९ ॥
उलट्या है आसण पलट्या वासण सुरत शब्द परसंदा है ॥ २० ॥

कंधेके ऊपरका जालंधर बन्ध करनेसे प्राणवायुकी ऊर्ध्वगति रुक जाती है और पश्चिमतानसे ब्रह्मनाड़ीमें जाने लगता है। तथा मूलबन्ध करनेसे अपानवायु उलटकर ऊर्ध्वगामी होता है एवं जालंधरबन्ध और मूलबन्ध करनेपर प्राण-अपान वायुके आसन उलट-पुलट होनेके कारण दोनों मिल जानेसे सुरत शब्दका स्पर्श हुआ ॥ १९-२० ॥

का अभीष्ट यह होता है कि रीढकी नाड़ी अर्थात् सुषुम्णाको स्वच्छ रक्खे जिससे तेजीकी लहर बराबर जारी रहे और सम्पूर्ण केन्द्र स्वतन्त्र और दृढ़ रहे जिससे इच्छानुसार काम दे सके।

इस प्रकार सुषुम्णाके स्वरूपका वर्णन योगशास्त्रमें किया हुआ है। इससे सुषुम्णाका मार्ग कितना अधिक कठिन है यह सहज ही ध्यानमें नहीं आ सकता है। इसी अति कठिन मार्गकी घाटीको अर्थात् गाँठें बीच-बीचमें जो आड मारनेवाली हैं उनको लाँघके छेदन करके प्राणकी गति जब सुषुम्णामें होती है तब शनैः-शनैः ठहरता हुआ ब्रह्मद्वारपर त्रिकुटीमें पहुँचता है।

प्रथम ध्यान पूरब दिशा, गगन गर्जिया जाय।
ठाम ठाम पाताल कूं, पछे पिछम कूं थाय ॥ १ ॥

१ बन्ध तीन प्रकारके होते हैं जालंधर, मूल और उड्डियान।

१ जालंधर बन्ध—

कण्ठको सिकोड़कर मजबूतीसे चिबुक अर्थात् ठोडीको हृदयमें जमाके सीधा बैठनेको जालंधर बन्ध कहते हैं।

बहती वँकनाड़ी खुली किवाड़ी भँवरगुफा भणकंदा है ॥ २१ ॥
उल्लंघ्या मेरा गुरुमिलचेरा चहुँ चकडोल फिरंदा है ॥ २२ ॥

चलती हुई वंकनाड़ी (सुषुम्णा) की किवाड़ी खुल गयी (सुषुम्णा नाड़ीका द्वार खुल गया) जिससे भँवरगुफा (ब्रह्मरन्ध्रस्थान)

कण्ठमाकुञ्च्य हृदये स्थापयेच्चिबुकं दृढम् ।
बन्धो जालंधराख्योऽयं जरामृत्युविनाशकः ॥ १ ॥
है जालंधर बंध में, मन पवना की गांठ ।
हरिया मिल्या उतान में, सुरत शब्द की सांठ ॥ १ ॥
सुरत चली आकाश कूं, दे जालंधर बंध ।
जन हरिया जहां जाणियै, हद वेहद की संध ॥ २ ॥
हरिया शब्द पयाल को, चल्या गगनतें होय ।
जब जालंधर बंध को, विरला जाने कोय ॥ ३ ॥
(श्रीहरि० वाक्यम्)

२ मूलबन्ध—

एडीसे योनिस्थानको दबाकर गुदाको संकोच करे और नीचे जानेवाले अपान वायुको बलपूर्वक ऊपर खींचके चढ़ाते रहनेको मूलबन्ध कहते हैं ।

पार्ष्णिभागेन सम्पीड्य योनिमाकुञ्चयेद् गुदम् ।
अपानमूर्ध्वमाकृष्य मूलबन्धोऽभिधीयते ॥ १ ॥
अधोगतिमपानं वा ऊर्ध्वगं कुरुते बलात् ।
आकुञ्चनेन तं प्राहुर्मूलबन्धं हि योगिनः ॥ २ ॥

३ उड्डियानबन्ध—

नाभिके ऊपरके भागको पीठकी ओर खींचके चिपका रखनेको उड्डियान-बन्ध कहते हैं ।

उदरे पश्चिमं तानं नाभेरूर्ध्वं च कारयेत् ।
उड्डियानो ह्यसौ बन्धो मृत्युमातङ्गकेसरी ॥ १ ॥
मूलस्थानं समाकुञ्च्य उड्डियानं तु कारयेत् ।
इडां च पिङ्गलां बध्वा वाहयेत्पश्चिमे पथि ॥ २ ॥
बन्धत्रयमिदं श्रेष्ठं महासिद्धैश्च सेवितम् ॥ ३ ॥

इन तीनों बन्धोंके करनेसे सुषुम्णामार्गमें दोनों वायुका गमन हो जाता है ।

मूलबन्धादपानस्य गतिरुर्ध्वं प्रजायते ।
जालंधरात्तथा प्राणस्त्वधोगामी भवेत्पुनः ॥ १ ॥

में पहुँचनेका ज्ञान हो गया। तत्पश्चात् जालंधरबन्ध और मूलबन्धके करनेसे प्राणवायु अपानवायुसे मिलके उड्डियान बन्धद्वारा सुषुम्णा नाडीके खुले हुए द्वारमें प्रवेश कर गया। उड्डियानबन्धके अभ्याससे प्राणको कहीं जानेका मार्ग नहीं मिला। अतः वह पीठकी तरफसे मेरुदण्ड-मध्यस्थित सुषुम्णाके मेरुको उल्लंघकर गुरु-चेला दोनों (प्राण-अपान वा प्राण-मन) मिलके चारों तरफ चकडोल (नीचेसे ऊपर, ऊपरसे नीचे) चक्रके समान फिरने लगे। अर्थात् तीनों प्रकारके बन्धोंके साधनद्वारा कुण्डलिनी जाग्रत् हो, जो अपने मुखसे सुषुम्णाके मार्गको रोक रखा है उसको खुला कर देती है और प्राण-अपान दोनों मिलके उस सुषुम्णाके विवरमें प्रवेशकर नीचेसे ऊपर और ऊपरसे नीचे फिरने लगते हैं ॥ २१-२२ ॥

षट्चकर[1] भेद्या भवदुख छेद्या साँसा शोक नसंदा है ॥ २३ ॥
गरजत है गेणूं बरजत वेणूं सरवर शून्य वसंदा है ॥ २४ ॥

प्राणापानौ मिलित्वाऽधः सुषुम्णावदनान्तरे।
उड्डियानेन बन्धेन विशते नात्र संशयः ॥ २ ॥
एवमभ्यासतो नित्यं कुम्भकस्य निरन्तरम्।
ब्रह्मरन्ध्रं प्रविश्याथ प्राणो भवति निश्चलः ॥ ३ ॥ (मोक्षगीता)

मूलबन्धसे अपान वायुकी ऊर्ध्वगति होती है और जालंधरबन्धसे प्राणकी अधोगति होती है एवं दोनों प्राण-अपान मिलके सुषुम्णाके मुखके भीतर उड्डियान बन्धके करनेसे निःसंशय प्रवेश होते हैं। इस प्रकार नित्य कुम्भक करनेका अभ्यास निरन्तर करते रहनेसे प्राण ब्रह्मरन्ध्रमें प्रवेशकर निश्चल हो जाता है।

१ षट्चक्र—

१ मूलाधार, २ उपस्थ, ३ नाभिमूल, ४ हृदय, ५ तालुमूल, ६ ललाट— इन छः स्थानोंमें एकत्रित हुए स्नायुसमूह मूलके केन्द्रोंको षट्चक्र कहते हैं।

आधारे लिङ्गनाभौ प्रकटितहृदये तालुमूले ललाटे
द्वे पत्रे षोडशारे द्विदशदशदले द्वादशार्धे चतुष्के।
वासान्ते बालमध्ये डफकठसहिते कण्ठदेशे स्वराणां
हंक्षंतत्त्वार्थयुक्तं सकलदलगतं वर्णरूपं नमामि ॥ १ ॥

षट्चक्रोंका कोष्ठक

संख्या	नामचक्र	स्थान	पद्मपत्र-संख्या	वर्ण	देवता	मतान्तर
१	मूलाधार	मूलाधार	४	व से स पर्यन्त	उत्पत्तिशक्ति	अधःशक्ति
२	स्वाधिष्ठान	लिङ्ग	६	ब से ल ,,	ब्रह्मा	शिव
३	मणिपुर	नाभि	१०	ड से फ ,,	विष्णु	
४	अनहद	हृदय	१२	क से ठ ,,	महादेव	ब्रह्मा
५	विशुद्ध	तालुमूल	१६	स्वर सोलह	दुर्गा	सुषुम्णा
६	आज्ञा	ललाट	२	ह क्ष	शून्यस्थान	

सहस्रारचक्र (सहस्रदल) यह सातवाँ चक्र है, इसका ब्रह्मरन्ध्र स्थान है। इसके सहस्र (१०००) दल हैं और परमपद इसकी शक्ति है। इनके उपरांत किसी-किसीने सूर्यचक्र और मनश्चक्र नामक दो चक्र और माने हैं।

शरीरस्थ पद्माकार षट्प्रकारचक्रम्

सप्त पद्मानि तत्रैव सन्ति लोका इव प्रभोः।
१ गुदे पृथ्वीसमं चक्रं हरिद्वर्णं चतुर्दलम् ॥ १ ॥
२ लिङ्गे तु षट्दलं चक्रं स्वाधिष्ठानमिति स्मृतम्।
त्रिलोकवह्निनिलयं तप्तचामीकरप्रभम् ॥ २ ॥
३ नाभौ दशदलं चक्रं कुण्डलिन्या समन्वितम्।
नीलाञ्जननिभं ब्रह्मस्थानपूर्वकमन्दिरम् ॥ ३ ॥
मणिपूराभिधं स्वच्छं जलस्थाने प्रकीर्तितम्।
४ उद्यदादित्यसंकाशं हृदिचक्रमनाहतम् ॥ ४ ॥
कुम्भकाख्यं द्वादशारं वैष्णवं वायुमन्दिरम्।
५ कण्ठे विशुद्धिशरणं षोडशारं पुरोदयम् ॥ ५ ॥
शाम्भवी वरचक्राख्यं चन्द्रविन्दुविभूषितम्।
६ षष्ठमाज्ञालयं चक्रं द्विदलं श्वेतमुत्तमम् ॥ ६ ॥
षट्चक्राणीह भेद्यानि नैतद्भेद्यं कथंचन।
राधाचक्रमिति ख्यातं मनःस्थानं प्रकीर्तितम् ॥ ७ ॥
७ सहस्रदलमेकार्णे परमात्मप्रकाशकम्।
नित्यज्ञानमयं सत्यं सहस्रादित्यसंनिभम् ॥ ८ ॥

पहिला मूलाधार चक्र है। यह रीढकी हड्डीके आखीर या सबसे नीचेवाला स्थान है जो गुदाका कमल भी कहलाता है, इसको अंग्रेजीमें Sacral Plexus

सेकरे प्लेक्सस कहते हैं। योगी लोग इसको सूरजका स्थान कहते हैं। इसमें सत–रज–तम तीनोंका भण्डार समझते हैं। इसीपर सम्पूर्ण जीवन निर्भर मानते हैं। इस स्थानपर कुण्डलिनी देवी साढ़े तीन आंटे देके लिपटी है जो उत्पत्तिकी शक्ति रखती है। इसका चक्र पृथ्वीके समान हरे रंगका है, इसमें चतुर्दल कमल है, उनमें व, श, ष, स–ये चार वर्ण हैं, इसको ब्रह्मचक्र भी कहते हैं।

दूसरा स्वाधिष्ठान नामका चक्र है। यह उपस्थ इन्द्रीके ऊपर दबानेसे जो खाली स्थान ज्ञात होता है इसके ठीक सामने रीढकी हड्डीमें है, यह कमल छः दलका है, इसमें ब, भ, म, य, र, ल–ये छः व्यञ्जनाक्षर हैं; इसको ब्रह्माका स्थान बतलाते हैं। कोई-कोई शिवका स्थान भी कहते हैं। यह सम्पूर्ण संसारका उत्पन्न करनेवाला है और यही त्रिलोकमें अग्निका स्थान है और तपाये हुए सुवर्णके समान रंगवाला है।

तीसरा मणिपुर नामका चक्र है। यह नाभिके मुकाबलेमें है, इसको अंग्रेजीमें Solar Plexus सोलर प्लेक्सस कहते हैं। इसमें दशदलका कमल चक्र है। जिनमें ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ—ये दश अक्षर क्रमसे विराजमान हैं। यह विष्णुका स्थान है और नील कमलके समान घनश्याम वर्णका है। इसको स्वच्छ जलका स्थान और ब्रह्मस्थान भी कहते हैं।

चौथा अनाहत नामका चक्र है। इसको अंग्रेजीमें Cardiac Plexus कारडियेक् प्लेक्सेस कहते हैं। यह छातीके मध्यमें जो गड्ढा कौडी कहलाता है उसके मुकाबिलेमें है और महादेवका स्थान है, इसमें द्वादश (१२) दलका कमल है, बारहों दलोंमें क्रमसे क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ–ये बारह वर्ण हैं, इसका रंग उदय होते हुए सूर्यके समान है और इसको कुम्भक स्थान, वायुका स्थान तथा विष्णुका स्थान भी कहते हैं। कितने ही इसको ब्रह्माका भी स्थान कहते हैं।

पाँचवाँ विशुद्धि नामका चक्र है। यह गलेमें हँसलीकी हड्डीके ऊपर जो गड्ढा-सा है इसके मुकाबिलेमें है। इसमें सोलह (१६) दलका कमल है जिनमें क्रमसे सोलह ही स्वर अनुस्वारयुक्त विराजमान हैं (अं, आं, इं, ईं, उं, ऊं, ऋं, ॠं, लृं, ॡं, एं, ऐं, ओं, औं, अं, अः) इसको दुर्गाका स्थान, कई पार्वतीपतिका स्थान तथा सुषुम्णाका स्थान भी कहते हैं। यह महत्प्रभ धूम्रवर्णका है, कितने ही शुक्ल वर्णका भी कहते हैं। यह जीवकी विशुद्धि करनेवाला है। कण्ठमें सुषुम्णा, इडा, पिङ्गला—इन तीनों नाड़ियोंका वेष्टन मनुष्योंके रहता है। यह षट्कोण आकृतिका और छः अंगुल प्रमाणका है।

छठा आज्ञा नामका चक्र है। यह दोनों भ्रुवोंके मध्यमें नाककी जड़के स्थान-पर है। यहाँ इडा, पिङ्गला, सुषुम्णा-इन तीनों नाड़ियोंका प्रान्त आकर मिला है इस कारण इसको त्रिपथ स्थान कहते हैं। यह षट्कोणाकृति चार अंगुलका रक्तवर्ण है। इसमें दो दलका उत्तम श्वेतवर्णका कमल है इसमें ह और क्ष इन दो अक्षरोंका निवास है। इसको राधाचक्र तथा मनका स्थान व शून्य स्थान अथवा शून्य सरोवर भी कहते हैं। इसका ध्यान करनेसे वायु, जल, अग्निपर अधिकार होता है, भय जाता रहता है और कर्मके बन्धनसे छूट जाता है।

सातवाँ सहस्रदल कमल चक्रका स्थान वह है, जो ईश्वरी ज्ञानसे सम्बन्ध रखता है, जिसका वर्णन करना जिह्वा और लेखनीसे बाहर है, परंतु कुछ योगी-जन ऐसा कहते हैं कि तालूके ऊपर एक सहस्रदलका कमल है जिसमें चन्द्रमाका स्थान है और जो सुषुम्णाकी जड़ है, इसीके ऊपर ब्रह्मरन्ध्र है। इस चन्द्रमासे प्रतिसमय अमृत-वर्षा होती रहती है, जिसकी दो धार होकर नीचे सूरजके स्थानतक जाती हैं, एक रीढकी बाँईं ओरको जो इडा कहलाती है, दूसरी रीढके अंदर होकर जो सुषुम्णा कहलाती है। रीढके नीचेका केन्द्र जो सूर्यस्थान कहलाता है, इसमेंसे एक आतशी किरण निकलती है जो सीधी होकर ऊपर चढ़ती है मानो स्नायु शक्तिकी लहर बाँईं ओरसे सीधी ओरको प्रतिसमय जाती और चक्कर लगाती रहती है। मूलाधार कमलसे एक प्रकारका विष निकलता है, जो सीधे नथनेमें आता है और नाशकारी है, परंतु उसको चन्द्रका अमृत प्रभावित करता रहता है इसीसे उसका असर जाता रहता है। सहस्रदल पद्म एक महासागरके समान है। इसमें परमात्मतत्त्वका प्रकाश हो रहा है जो नित्य ज्ञानमय सत्यस्वरूप एक हजार सूर्यके प्रकाशके तुल्य प्रकाशवाला है। यही ब्रह्मस्थान है, इसीको परमपद स्थान कहते हैं, इसमें जो योगी अपनी योगसाधन-क्रियाद्वारा पहुँच जाता है वह परमपदको प्राप्त हो जाता है और जन्म-मरणसे रहित हो जाता है। "यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम"।

इस प्रकारके ये षट्चक्र हैं, इनको भेदकर जो सातवें ब्रह्मरन्ध्र चक्रमें पहुँच जाता है उसको कुछ भी कष्टसाध्य नहीं रहता है।

मूलाधार चक्रकी विवेचना—पीछे कह आये हैं कि छःस्थानोंमें एकत्रित हुए स्नायुसमूह मूलके केन्द्रोंको षट्चक्र कहते हैं।

स्नायु (नाड़ी) समूह बहत्तर हजार (७२०००) हैं उनमेंसे २४ मुख्य हैं उनमेंसे भी १० मुख्य हैं।

नाडीनां संवहो देवि कञ्जयोनिः खगाण्डवत्।
तत्र नाड्यः समुत्पन्नाः सहस्राणां द्विसप्ततिः ॥ १ ॥

प्रधाना दक्षवाहिन्यो भूयस्तत्र दश स्मृताः ।
इडा[१] च पिङ्गला[२] चैव सुषुम्णा[३] च तृतीयका ॥ २ ॥
गान्धारी[४] हस्तिजिह्वा[५] च पूषा[६] चैव यशस्विनी[७] ।
अलम्बुषा[८] कुहूश्चैव[९] शङ्खिनी[१०] च दश स्मृताः ॥ ३ ॥
एवं नाडीमयं चक्रं विज्ञेयं शक्तिचक्रके ।
इडायाः पिङ्गलायाश्च मध्ये या सा सुषुम्णिका ॥ ४ ॥
इयं च त्रिगुणा ज्ञेया ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका ।
रजोगुणा च वज्राख्या[११] चित्रिणी[१२] सत्त्वसंयुता ॥ ५ ॥
तमोगुणा ब्रह्मनाडी[१३] कार्यभेदक्रमेण च ॥

(निरुत्तरतन्त्र)

तात्पर्य यह है कि बहत्तर हजार नाड़ियोंमें इडा १, पिङ्गला २, सुषुम्णा ३, गान्धारी ४, हस्तिजिह्वा ५, पूषा ६, यशस्विनी ७, अलम्बुषा ८, कुहू ९, शङ्खिनी १०—ये दश नाड़ी और इनके अतिरिक्त वज्रा ११, चित्रिणी १२ और ब्रह्मनाडी १३ कुण्डली मुख्य नाड़ियाँ हैं, इनमें इडा-पिङ्गलाके मध्यमें त्रिगुणात्मिका सुषुम्णा रहती है, यह ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मिका है । सुषुम्णाके मार्गको रोकके कुण्डलिनी नाड़ी स्थित है। वज्रा इसीके पासमें और चित्रिणी (चित्रा) सुषुम्णाके मध्यमें खाली स्थानमें रहती है । इन नाड़ीसमूहोंमें जबतक कुण्ड लिनी नाड़ी जाग्रत् न हो तबतक सब योगसाधन वृथाके समान ही होता है । जब यह कुण्डलिनी नाड़ी जाग्रत् होकर सुषुम्णाके द्वारको खुला करके सरल हो सुषुम्णामें प्रवेश करती है तब योगसाधन होता है । इसलिये प्रथम, मूलाधार जो षट्चक्रका प्रथम चक्र है उसमें कुण्डलिनीका निवास रहता है उस कुण्डलीका वर्णन इस प्रकार है—

कुण्डलीको कुण्डलिनी, कुण्डली, कुटिलाङ्गी, भुजंगी, नागन, बालरंडा, शक्ति, ईश्वरी, और अरुन्धती नामसे भी पुकारते हैं ।

गुह्यलिङ्गयोर्मध्ये अङ्गुलिद्वयमितस्थानम् । तत्तु शरीरस्थसकलनाडीनां मूलस्थानम् । अत्र व-श-ष-साक्षरयुक्तं स्वर्णवर्णं चतुर्दलपद्ममस्ति । तन्मध्ये इच्छाज्ञान-क्रिया-स्वरूपं त्रिकोणं वर्तते । तन्मध्ये कोटिसूर्यसमप्रभस्वयंभूलिङ्गमस्ति । अत्र पृथिवी वर्तते । तत्रैव मृणालसूत्रवत् सूक्ष्म-सार्धत्रिवलयाकार-स्वयंभूलिङ्गवेष्टितविद्युत्तुल्यप्रभ-कुल-कुण्डलिनी वर्तते । यथा—

मूलाधारे त्रिकोणाख्ये इच्छाज्ञानक्रियात्मके ।
मध्ये स्वयंभूलिङ्गं तु कोटिसूर्यसमप्रभम् ॥
तद्वाह्ये हेमवर्णाभं वसवर्णं चतुर्दलम् ॥

(इति तन्त्रसारः)

अथाधारपद्मं सुषुम्णाख्यलग्नं ध्वजाधो गुदोर्ध्वं चतुःशोणपत्रम्।
अधोवक्त्रमुद्यत्सुवर्णाभवर्णैर्वकारादिसान्तैर्युतं वेदवर्णैः ॥ १ ॥
अमुष्मिन्धरायाश्चतुष्कोणचक्रं समुद्भासि शूलाष्टकैरावृतं तत्।
लसत्पीतवर्णं तडित्कोमलाङ्गं तदन्तः समास्ते धरायाः स्वबीजम्॥ २ ॥

वज्राख्या वक्त्रदेशे विलसति सततं कर्णिकामध्यसंस्थं
कोणं तत्त्रैपुराख्यं तडिदिव विलसत्कोमलं कामरूपम्।
कन्दर्पो नाम वायुर्निवसति सततं तस्य मध्ये समन्ता-
जीवेशो बन्धुजीवप्रकरमभिहसन् कोटिसूर्यप्रकाशः ॥ ३ ॥

तन्मध्ये लिङ्गरूपिद्रुतकनककलाकोमलः पश्चिमास्यो
ज्ञानध्यानप्रकाशः प्रथमकिसलयाकाररूपः स्वयम्भूः।
विद्युत्पूर्णेन्दुबिम्बप्रकरकरचयस्निग्धसंतानहासी
काशीवासी विलासी विलसति सदिवावर्तरूपः प्रकारः ॥ ४ ॥

अस्योर्ध्वे विषतन्तुसोदरलसत् सूक्ष्मा जगन्मोहिनी
ब्रह्मद्वारमुखं मुखेन मधुरं साच्छादयन्ती स्वयम्।
शङ्खावर्तनिभा नवीनचपला माला विलासास्पदा
सुप्ता सर्पसमा शिरोपरिलसत् सार्धत्रिवृत्ताकृतिः ॥ ५ ॥

(तत्त्वचिन्तामणिः)

इत्यादि वचनोंके भावार्थसे कुण्डली मूलाधारस्थानमें अर्थात् गुदा और लिङ्गके मध्यमें दो अंगुल प्रमाणका भगस्थान है, वह शरीरस्थ सकल नाड़ियोंका मूलस्थान एक वालिस्त लंबा और चार अंगुल चौड़ा शुभ्र और कोमल वेष्टनाम्बर (लपेटनेके वस्त्र) के समान (कंद) है। यहाँ चतुर्दलकी आकृतिका एक पद्म है उसमें चार दल हैं, उनमें व, श, ष, स—ये चार वर्ण स्वर्णके तुल्य देदीप्यमान हैं। उस चतुर्दल पद्ममें इच्छा-ज्ञान-क्रियास्वरूप एक त्रिकोण है और यह पश्चिममुखी है अर्थात् पीछेको मुख है, ऐसे वंकनालमेंहीसे ऊर्ध्वगमन होता है। इसकी कर्णिकामें वज्रा नाम नाड़ी रहती है और त्रिकोणमें कोटि-सूर्यसमप्रभ स्वयम्भू लिङ्ग है, यहाँ पृथ्वी है; इसीपर कमलके तन्तुके समान सूक्ष्म विद्युत्तुल्यप्रभावाली कुण्डलिनी स्वयम्भू लिङ्गको और सब नाड़ियोंको घेरकर साढ़े तीन आँटे देकर कुटिल आकृतिसे अपने मुखमें पूँछको दबाकर ब्रह्मद्वार (सुषुम्णाके द्वार) को आच्छादित करके बैठी हुई है। इसके जाग्रत् करनेपर जब यह सुषुम्णाके मार्गसे अपना मुँह हटाती है तब ब्रह्मद्वारका कपाट खुल जाता है इसी कारण योगियोंको इसके जानने और जगानेका प्रयत्न करते रहना चाहिये।

उपरोक्त प्रकारसे सुषुम्णा-मार्गमें प्राण-अपान दोनों मिलके प्रवेश करनेके बाद मेरुदण्डके मध्य जो षट्चक्रके स्थानकी गाँठें सुषुम्णामें पहिले बता आये हैं उन्हीं षट्चक्रकी गाँठोंको शनैः-शनैः क्रमसे भेदते (छेदते) हुए (प्राण-अपान मिलके) जब ब्रह्मरन्ध्रमें पहुँच गये

अथवा यह कुण्डलिनी नाड़ी सब नाड़ियोंके ऊपर स्थित होकर मणिपूरक चक्र कर्णिकाको आवृत करके ब्रह्मरन्ध्रके द्वारको सर्वदा रोके रहती है और सुषुम्णाके द्वारको बंद किये रखती है। इसलिये प्राणवायु और अपानवायुको धौंकनेवाला अर्थात् उत्तेजित करनेवाला जो पुरुष है वह उस प्राण और अपानवायुकी एकतासे उत्तेजित हुई अग्निसे जाग्रत् होकर मन और प्राणवायु-सहित सुषुम्णाको सूचितन्तुन्यायसे[1] ऊपर ले जाता है, इनके ऊपर जानेसे वह अपने इच्छित परमानन्दको प्राप्त हो जाता है।

अथवा कुण्डलिनी नाड़ी सोते हुए सर्पके समान है उसको जाग्रत् करनेके लिये पहिले अपानवायु और प्राणवायुसे विधिपूर्वक बीचकी अग्नियोंके स्वरूपको तेज करे, उनकी तेजीसे उसे जगाकर वह पुरुष ज्योतिर्मयस्वरूप होकर सुषुम्णा मार्गसे आत्मामें लय हो जाता है।

अथवा वज्रासन (सिद्धासन) लगाकर हाथोंसे पाँवोंकी एडी पकड़कर कन्दस्थानको दृढ़तासे दबावे और वज्रासनसे ही धौंकनीको कुम्भक वायुसे प्रचलित करे, उसके प्रचलित होनेसे अग्नि प्रज्वलित होता है। उसकी गरमीसे वह बालरंडा मुख फैला देती है, उस समयमें सुषुम्णाद्वारा ही योगीश्वर अपने स्वरूपके आनन्दको पाते हैं।

अथवा नाभिदेशमें सूर्य रहता है। उसका आकुञ्चन करके चार घड़ीपर्यन्त नित्य निर्भय होकर शक्ति (कुण्डली) का चालन करे तो कुण्डली कुछ ऊपरको खिंचती है जिससे प्राणवायु स्वयं (आप ही) सुषुम्णामें प्रवेश कर जाता है।

सुप्ता गुरुप्रसादेन यदा जागर्ति कुण्डली।
तदा सर्वाणि पद्मानि भिद्यन्ते ग्रन्थयोऽपि च ॥ १ ॥

(हठयोगप्रदीपिका)

इस प्रकार क्रिया करनेसे गुरुकी कृपासे जब सोती हुई कुण्डली जाग्रत् हो जाती है तब सब पद्म (सम्पूर्ण षट्चक्र) भेदित होकर ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि, रुद्रग्रन्थि—ये तीनों ग्रन्थियाँ भी भेदित हो जाती हैं।

---

१ जैसे सूईमें डोरा पिरोया हुआ हो तो वह सूई कपड़ेके अनेक सूतोंमेंसे तन्तुसहित ऊपरको निकल आती है उसको सूचितन्तुन्याय कहते हैं।

तब सर्व भवसागरका दुःख छेदन (नाश) हो गया और संशय तथा शोक नष्ट हो गया और जिस शून्य सरोवरमें अकथनीय गगन-गर्जना-का अलौकिक गम्भीर नाद हो रहा है उसमें वास (निश्चल निवास) प्राप्त हो गया ॥ २३-२४ ॥

हंसा सुन होती मंझे मोती मुख विन चूण चुगंदा है ॥ २५ ॥
आतम ब्रह्मंडा एक अखंडा विन रसना गावंदा है ॥ २६ ॥
अंबर घर आये ब्रह्म वधाये अनहद नाद[1] घुरंदा है ॥ २७ ॥
नोबत नीसाणा दिल दीवाणा बाजा भेरि वजंदा है ॥ २८ ॥

---

१ नादकी चार अवस्था—

आरम्भश्च घटश्चैव तथा परिचयोऽपि च ।
निष्पत्तिः सर्वयोगेषु स्यादवस्थाचतुष्टयम् ॥ १ ॥

१ आरम्भावस्था—

ब्रह्मग्रन्थेर्भवेद्भेदो ह्यानन्दः शून्यसम्भवः ।
विचित्रः क्वणको देहेऽनाहतः श्रूयते ध्वनिः ॥ १ ॥

हृदय स्थानके द्वादशदल अनाहत चक्रमें ब्रह्मग्रन्थि है। जब प्राणायामके अभ्याससे सुषुम्णा मार्गद्वारा इस ग्रन्थिको प्राण भेदन करता है तब शून्य हृदयाकाशमें आनन्द हो जाता है और उस हृदाकाशोत्पन्न आनन्दमें विचित्र (नानाविध) प्रकारका आभूषणका नाद अर्थात् स्त्रियोंके पाँवमें पहननेके आभूषणोंकी मधुरध्वनि श्रवण होने लगती है इसको आरम्भावस्था कहते हैं। जब आरम्भावस्था प्राप्त हो जाती है तब वह पुरुष दिव्य देहवाला, तेजस्वी (प्रतापवान्) उत्तम सुगन्धिवाला और रोगरहित देहवाला हो जाता है। और जब हृदाकाशमें नादका आरम्भ हो जाता है उस समय हृदाकाश, विशुद्धाकाश और भ्रूमध्याकाशको योगीजन शून्य, अतिशून्य और महाशून्य पदके नामसे मानते हैं और उनके नादका श्रवण क्रमसे करते जाते हैं।

२ घटावस्था—जब प्राणवायु हृदाकाशस्थ ब्रह्मग्रन्थिको भेदन करके प्राण, अपान और नादबिन्दुसे मिलकर कण्ठस्थानके षोडशदल विशुद्धिनामक चक्रको जिसको मध्यचक्र भी कहते हैं और जो विष्णुग्रन्थिका स्थान है इसको भेदन करता है तब परमानन्द (ब्रह्मानन्द) सूचक अतिशून्य नामक आकाशमें अनेक प्रकारके नादोंकी ध्वनिको सम्मर्दन करनेवाली भेरीकी-सी ध्वनि सुनायी देने लगती है और वह योगी दृढासन और पूर्वकी अपेक्षा विशेष ज्ञानी देवके समान दिव्य देहवाला हो जाता है। यह मध्यचक्र षोडशाधारका बन्धक है—

मध्यचक्रमिदं ज्ञेयं षोडशाधारबन्धनम् ॥

जो षट्चक्र, षोडशाधार, द्विलक्ष्य और पञ्चाकाशको नहीं जानता उसको योगसिद्धि कैसे हो सकती है—

षटचक्रं षोडशाधारं द्विलक्ष्यं व्योमपञ्चकम् ।
स्वदेहे यो न जानाति कथं योगी स सिध्यति ॥

षट्चक्र—१ मूलाधार, २ स्वाधिष्ठान, ३ मणिपुर, ४ अनाहत, ५ विशुद्ध, ६ आज्ञाचक्र ।

सोलह आधार—१ पग का अङ्गुष्ठ, २ मूलाधार, ३ गुह्याधार, ४ वज्रोली, ५ उड्डियानबन्ध, ६ नाभिमण्डलाधार, ७ हृदयाधार, ८ कण्ठाधार, ९ क्षुद्र-कण्ठाधार, १० जिह्वामूलाधार, ११ जिह्वाका अधोभागाधार, १२ अर्धदन्त मूलाधार, १३ नासिकाग्राधार, १४ नासिकामूलाधार, १५ भ्रूमध्याधार और १६ नेत्राधार ।

मतान्तरसे सोलह आधार—१ मूलाधार, २ स्वाधिष्ठान, ३ मणिपुर, ४ अनाहत, ५ विशुद्ध, ६ आज्ञाचक्र, ७ बिन्दु, ८ अर्धेन्दु, ९ रोधिनी, १० नाद, ११ नादान्त, १२ शक्ति, १३ व्यापिका, १४ शमनी, १५ रोधिनी, १६ ध्रुवमण्डल ।

द्विलक्ष्य—१ बाह्यलक्ष्य (भ्रूमध्य तथा नासिकाग्र) २ आभ्यन्तरीयलक्ष्य (मूलाधारादि षट्चक्रोंको अन्तर्दृष्टिसे देखना)

पाँच प्रकारके आकाश—

पहिला—श्वेतवर्ण ज्योतीरूप आकाश ।

दूसरा—पहिलेके भीतर धूम्रवर्ण ज्योतीरूप महाकाश ।

तीसरा—दूसरेके भीतर नीलवर्ण ज्योतीरूप महत्तत्त्वाकाश ।

चौथा—तीसरेके भीतर पीतवर्ण ज्योतीरूप महाशून्याकाश ।

पाँचवाँ—चौथेमें बिजलीके वर्ण ज्योतीरूप सूर्याकाश ।

उपरोक्त प्रकारसे शरीरमें ६ चक्र, १६ आधार, २ लक्ष्य और ५ आकाश हैं । इनको जो योगी नहीं पहिचानता उसको योगकी सिद्धि नहीं होती है ।

२ परिचयावस्था—जब प्राण ब्रह्मग्रन्थिको भेदन करके भ्रूमध्यमें द्विदल आज्ञाचक्रको जो सर्वेश्वरका पीठस्थान है जिसमें रुद्रग्रन्थि है इस रुद्रग्रन्थिको प्राण भेदन करता है तब भ्रूमध्याकाश (महाशून्याकाश) में प्राण पहुँचता है इसको परिचयावस्था कहते हैं । इससें एक विशेष जानने योग्य मर्दल (एक प्रकारके बाजे) की ध्वनि सुनायी पड़ती है, इस अवस्थामें सहजानन्द और सर्व सिद्धियोंकी प्राप्ति, दोष, दुःख, जरा, व्याधि, भूख, प्यास और निद्रा-

का नाश हो जाता है और अहर्निश स्वाभाविक आत्मसुखमें योगी मग्न हो जाता है।

४ निष्पत्तिअवस्था—जब प्राणवायु ब्रह्म, विष्णु और रुद्र ग्रन्थिके भेदने-पर ब्रह्मरन्ध्रमें प्रवेश करता है तब चतुर्थावस्था प्राप्त होती है। उस समय वंशी-के समान मधुर शब्द मानो बड़ी सुन्दर मनमोहक वंशीका शब्द हो रहा हो (परब्रह्म श्रीकृष्ण परमात्माकी वंशीकी अनुपम ध्वनिके समान जिसको सुनकर गोपियोंने मुग्ध होकर सांसारिक सर्वसुखोंको भुला दिया) वैसी वंशीकी ध्वनि होने लगती है तब अन्तःकरण एक तल्लीन हो जाता है। चित्तकी एकाग्रताको ही राजयोग कहते हैं। इस अवस्थामें जो योगी प्राप्त हो जाता है वह सृष्टिकर्ता तथा संहारकर्ता अर्थात् "कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं" ईश्वरके समान समर्थ हो जाता है तथा अखण्ड सुखको पा जाता है।

इस अवस्थामें अनेक प्रकारके बाजोंकी ध्वनि सुनायी पड़ने लगती है। सुन्दरदासजीने इसका वर्णन इस भाँति किया है—

प्रथम भँवर गुंजार शंख ध्वनि दुतिय कहीजे।
तृतिये बजई मृदंग चतुरथे ताल सुनीजे॥
पंचम घंटानाद षष्ठ वीणाधुन होई।
सप्तम बजई भेरि अष्टमे दुंदुभि दोई॥
नवमे गर्ज समुद्र की दशम मेघ घोषइ गुनै।
कह सुंदर अनहदनाद को दशप्रकार योगी सुनै॥ १॥

३६ प्रकारके कुल बाजे होते हैं—

मंडल वीन रबाब अनोप तंबूर उपंगह।
बल सुसुरह पिनाक कुमायच पुंग सुरंगह॥
वंशी परगह वांश कानूटक ताल सुपिंगी।
तूर भेरि सहनाइ पाव रणसंग दर सिंगी॥
करनाट पणव आनंक मुरज डफ सुडाक डमरू छबै।
जलतरँग जाँझ मंजीर मिल षटइत्रिंश बाजा बजै॥ १॥

कोई कहते हैं कि कुल बाजोंका भेद साढ़े तीन प्रकारका ही है।

ताल फूँक अरु तार के अर्ध नकीरी लीन।
सब ही या संसार में बाजे साढ़े तीन॥ १॥

चाहे जितने बाजे क्यों न हों, अनहद नादके आगे तो सर्वसंसारभरके बाजे तुच्छ हैं, उसकी उपमा तो हदके बाहर ही है इसीसे उसका नाम अनहद है। अथवा स्वयमेव बजनेसे अनाहत है इसलिये उसका वर्णन अवर्णनीय है। इस अनहद नादकी प्राप्ति होनेके पश्चात् तो परमपदको प्राप्त हो ही जाता है।

जब षट्चक्रोंको भेदन करता हुआ प्राणरूपी हंस शून्य सरोवरपर (त्रिकुटीमें) पहुँच जाता है, तब वह सुन्न (निश्चल तथा शून्य स्थिति-का) हो जाता है और उस शून्य सरोवरमें ब्रह्मानन्दरूपी मोतीका चूण मुखके विना ही हंसरूपी प्राण चुगने लगता है (आनन्दास्वादन करने लगता है) जिससे आत्मा और अखिल ब्रह्माण्ड एक ही मालूम होने लगता है, इसलिये "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" इत्यादि महावाक्योंका जो अर्थ है उसका ज्ञान प्राप्त हो जाता है और विना जिह्वाके "यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" "प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म" इस प्रकार आनन्ददायक पदके गुण गाने लग जाता है ॥ २५-२६ ॥

ऐसी स्थिति होनेके पश्चात् जब प्राणरूपी हंस अम्बर घर (ब्रह्म-रन्ध्ररूपी महा आकाश) में प्रवेश करता है और ब्रह्मसे साक्षात्कार होनेमें तत्पर होता है तब मानो उसको परब्रह्मकी ओरसे तदाकार वृत्ति करनेको वधानेके लिये अनहदनाद बजने लगता है। जिसमें नोबत, निसाण, दिल, दिवाण, भेरी, मृदंग आदि अनेक बाजोंका नाद सुनायी पड़ने लगता है ॥ २७-२८ ॥

मन शिक्खर मिलिया त्रयगढ़ भिलिया पद चोथा पावंदा है ॥ २९ ॥
अघ मिल उर्धा पवन निरुध्धा ध्यान[1] समाधि लगंदा है ॥ ३० ॥

अनाहतस्य शब्दस्य ध्वनिर्य उपलभ्यते ।
ध्वनेरन्तर्गतं ज्ञेयं ज्ञेयस्यान्तर्गतं मनः ॥ १ ॥
मनस्तत्र लयं याति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥

(हठयोगप्रदीपिका प्र० उप० ४)

१ ध्यान और समाधिके लक्षण—

ध्यान—

१ तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ।

नाभि आदि देशोंमें ध्येयका जो ज्ञान होता है वह ध्यान है ।

२ ध्यातृ-ध्येय-ध्यान-कलना वद् ध्यानम् ।

ध्यान करनेवाला और जिसका ध्यान किया जाय तथा ध्यान—इन तीनोंका प्रभेद जिसमें प्रतीत हो वह ध्यान कहलाता है।

२ धारणयोग्यदेशे अखण्डतैलधारावत् प्रवाहो ध्यानम्।

ध्येयकी ओर अखण्ड मनोवृत्ति तैलधाराके समान लगी रहे उसको ध्यान कहते हैं। तद्रहित समाधि कहलाती है।

१ ध्यानके भेद दो प्रकारके होते हैं—

१ एक पूर्व ध्यान।

२ दूसरा पश्चिम ध्यान।

पूर्वध्यान—नाभिदेशसे तथा पादाङ्गुष्ठसे हठ-क्रियाद्वारा प्राणको ऊपर चढ़ानेको कहते हैं। इसमें ॐकारका जप करना होता है और इस ध्यानमें अनेक विघ्न उपस्थित होते हैं। पूर्वध्यानी पुनर्जन्म पाता है।

पश्चिमध्यान—राममन्त्रका स्मरणपूर्वक पश्चिमतानसे प्राणको ऊपर चढ़ानेको कहते हैं। इससे मोक्षकी प्राप्ति होती है।

द्वावेव शोभनौ मुक्तिपन्थानौ योगसम्मतौ।
एकस्तु पश्चिमश्चैव द्वितीयः पूर्व उच्यते॥ १॥
राममन्त्रं चाधिकृत्य पन्थास्तिष्ठति पश्चिमः।
ओमित्यधिकृत्यास्ते पन्थास्तु पूर्वसंज्ञितः॥ २॥
पूर्वस्मात् पुनरावृत्तिः पश्चिमान्मोक्षमश्नुते॥

(गुह्योद्घाटनतन्त्र)

पश्चिममार्गका सविस्तर वर्णन देखना चाहें वे "योगशिखोपनिषत्" देख लेवें।

पश्चिममार्गके ध्यानकी रीति कुछ वर्णन की जाती है—

योगशास्त्रमें नाना प्रकारके आसन कहे हैं, जितने प्रकारके जीव हैं उतने ही प्रकारके आसन हैं। जीव चौरासी लाख बतलाये गये हैं अतः आसन भी उतने ही हैं, इन सबमेंसे ८४ आसन मुख्य हैं। इनमें भी सिंहासन, भद्रासन, मयूरासन, कुक्कुटासनादि १६ आसन उत्तम माने हैं। इन सोलहमें भी १ पद्मासन, २ सिद्धासन सर्वोत्तम माना है। इन दो आसनोंमें भी सिद्धासन उत्तमोत्तम माना है। इसलिये पश्चिमध्यान-साधन-समयमें सिद्धासन लगाकर बैठना चाहिये।

सिद्धासनके लक्षण हठयोगप्रदीपिकामें इस प्रकार लिखे हैं—

योनिस्थानकमङ्घ्रिमूलघटितं कृत्वा दृढं विन्यसे-
न्मेढ्रे पादमथैकमेव हृदये कृत्वा हनुं सुस्थिरम्।

स्थाणुः संयमितेन्द्रियोऽचलदृशा पश्येद् भ्रुवोरन्तरं
ह्येतन्मोक्षकपाटभेदजनकं सिद्धासनं प्रोच्यते ॥ १ ॥

तात्पर्य—बाँये पाँवकी एडीको योनिस्थानके मध्यमें लगाके (गुदा और उपस्थेन्द्रियके मध्य भागका नाम भग किंवा योनि है जिसको सीवन भी कहते हैं) उस स्थानको बाँये पाँवकी एडीसे जोरसे दबावे और दहिने पाँवको उठाकर इन्द्रीकी जड़में एडीको लगाकर नीचेको दबावे (मूलबन्ध करे) । इस रीतिसे सीधा बैठकर फिर ठोडीको हृदयसे ४ अंगुल ऊपर मजबूतीसे जमावे (जालंधरबन्ध करे) और सूखे काष्ठके समान करड़ा होकर सर्व इन्द्रियोंको अपने काबू (वश) में करके नेत्रोंको अचल दृष्टिसे भृकुटीके मध्यमें लगाकर बैठनेको सिद्धासन कहते हैं । यह सिद्धासन मोक्षद्वारके कपाटको भेदन करनेवाला (मुक्तिको देनेवाला) कहा है ।

योगशास्त्रमें इस आसनका नाम सिद्धासन कहा है और इसको ही वज्रासन, मुक्तासन, गुप्तासन आदि कई नामोंसे पुकारते हैं । और फलस्तुतिमें भी "मोक्षकपाटभेदजनकम्" यह वाक्य कहकर "नासनं सिद्धसदृशम्" परमावधि लिखा है । इससे प्रमाणित होता है कि इसके समान कोई अन्य आसन नहीं है, परंतु इसकी जितनी महिमा वर्णन की है उतना उसका कारण नहीं बताया गया । यदि कारण बताया जाता तो इसकी महत्ता हृदयंगम होनेसे सिद्धासनकी सिद्धियोंका पता चल जाता । इसको परमोत्तम बतानेका कारण जानने योग्य है । इसका सविस्तर वर्णन कहीं नहीं मिलता है अतएव यहाँ उसका वर्णन करना आवश्यक जानकर किया जाता है ।

"योनिस्थानकमङ्घ्रिमूलघटितम्" इस पूर्वोक्त श्लोकमें सिद्धासन-साधनकी ५ बातें मुख्य मानी गयी हैं—

१—योनिस्थानको दृढ़तासे एडीसे दबाना ।

२—ठोडीको हृदयसे ४ अंगुल ऊपरवाले स्थानमें सुस्थिर (दृढ़) जमाना ।

३—स्थाणु (काष्ठ) के समान सीधा करड़ा होकर बैठना ।

४—संयमितेन्द्रिय अर्थात् इन्द्रियोंको दमन करना ।

५—नेत्रोंको अचल दृष्टिसे भ्रुकुटिके मध्यमें जमाना ।

इन पाँच बातोंके करनेसे सिद्धासन होता है । इनका क्रमानुसार वर्णन इस तरह है ।

पहिली—योनिस्थानको एडीसे दबानेका प्रयोजन सुषुम्णाको जाग्रत् करनेका है । योनिस्थान (सीवन) में सुषुम्णाका ठीक विवरस्थान है । सुषुम्णाको

सिद्ध करना ही योगका पर्यवसान है। इस ग्रन्थमें श्रीहरिरामदासजी महाराजने फरमाया है—"सुखमण की घाटी चढिया वाटी अरस घराँ ठहरंदा है" तथा "सुषुम्णा शून्यपदवी ब्रह्मरन्ध्रं महापथः" इत्यादि वाक्योंसे सुषुम्णा ही मोक्षपदवी है इसी सुषुम्णाके द्वारा पश्चिमयोग-ध्यानसाधक योगीका वंकनालसे ऊर्ध्वगमन होता है। सुषुम्णाके विवरमें कुण्डलिनी नाड़ी साढ़े तीन आँटे लगाकर कुटिलाकृतिसे सर्पिणीके समान अपने मुखमें पूँछको दबाकर सुषुम्णामार्गके द्वार (छिद्र) को रोके बैठी है जो योगीको सुषुम्णातक जाने देती नहीं है। इसीलिये बाँये पाँवकी एडीसे योनिस्थानको दृढ़ दबानेसे मूलबन्ध होगा और अपानवायुकी ऊर्ध्वगति होगी जिससे एक प्रकारकी प्रबल ऊष्मा उत्पन्न होती है उसीके कारण वह योनिस्थानस्थ कुण्डलिनी जाग्रत् होकर सुषुम्णामार्गको अपना मुख हटाकर रास्ता दे देती है। जिससे योगीलोग सुषुम्णामार्गमें प्राण-अपानको प्रवेशकर अपने स्वरूपके आनन्दको प्राप्त होते हैं।

दूसरी—हृदयमें चिबुकको दृढ़तासे जमानेकी है, उससे जालंधरबन्ध होता है। जालंधरबन्ध होनेसे प्राणवायुकी गति अधोगामिनी होती है और प्राण अपानवायुसे मिलकर सुषुम्णाके द्वारमें प्रवेश करने योग्य हो जाता है। इस कारण हृदयमें चिबु.. (ठोडी) को दृढ़तासे जमाके बैठनेके लिये लिखा है।

तीसरी—स्थाणुके समान सीधा बैठना उसका प्रयोजन है। सीधा अकड़कर बैठनेसे श्वासोच्छ्वासकी गति बराबर सीधी आने-जानेसे सुषुम्णामें प्रवेश होनेमें कठिनाई नहीं पड़ती, तथा अन्य किसी नाड़ीमें प्राण-अपान प्रवेश नहीं कर सकते। अगर (ऋजुकाय नहीं बैठनेसे) अन्य नाड़ीमें वायु प्रवेश हो जावे तो मृत्यु तथा महाव्याधियोंका उत्पन्न होना सम्भव है।

> समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
> सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ १ ॥
> प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
> मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥ २ ॥

श्रीमद्भगवद्गीताके उक्त श्लोकोंमें भी ऋजुकाय (सीधा अकड़कर) बैठकर योगाभ्यास करनेके लिये लिखा है जिससे कुम्भकादि साधन अच्छी तरह हो जाय।

और प्राण-अपान वायु दूसरी नाड़ियोंमें प्रवेश न करे इसी कारण स्थाणु पद देकर भी सिद्धासनमें बैठना लिखा है। सच पूछो तो एक सिद्धासन ही सर्व योगसाधनकी कुंजी है। इसीलिये सिद्धासन मोक्षद्वारके किवाड़ तोड़नेका बड़ा वज्रासन है।

चौथी—इन्द्रियोंको काबूमें रखकर बैठनेकी है। अगर इनको स्वाधीन न किया जाय तो मन स्थिर नहीं होगा और इसके स्थिर न होनेसे योगकी सिद्धि प्राप्त करना भी असम्भव है। अतः इन्द्रियोंका दमन करना ही पहिला काम है।

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥ १ ॥
तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ २ ॥
(श्रीमद्भगवद्गीता)

इन्द्रियोंके दमन करनेके लिये प्रयत्न करनेवाले विद्वान्‌के भी मनको हे कुन्तीपुत्र ! ये प्रबल इन्द्रियाँ बलात्कारसे मनमानी ओर खींच ले जाती हैं। अतएव इन सब इन्द्रियोंका संयमन करके युक्त अर्थात् योगयुक्त और मत्परायण होकर रहना चाहिये। इस प्रकार जिसकी इन्द्रियाँ अपने स्वाधीन हो जायँ (कहना चाहिये) उसकी बुद्धि स्थिर हो गयी।

ऐसा स्थिरबुद्धि होकर बैठनेके लिये ही "संयमितेन्द्रिय" यह पद सिद्धासन-में दिया है।

इतना तो मालूम हो ही गया है कि इन्द्रियोंका वेग बड़ा ही बलवान् होता है परंतु इनमें भी शिश्न और रसना दो इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल हैं; प्रायः इन्हींसे शैतानी और चपलता होती है। इन नाड़ियोंका स्थान पाँवके पीछे बाहरकी तरफ टखने और नड़ेके बीचमें हैं। जो यहाँसे ये नाड़ियाँ पिंडली और जंघामें-से ऊपरको जाती हैं। और इन्हींसे इन्द्रियोंको प्रबलता प्राप्त होती है। (डाक्टर लोग भी शैतान आदमियोंकी इन नाड़ियोंको काट देते हैं जिससे उनकी ये इन्द्रियाँ निकम्मी हो जाती हैं) योगमें इसके लिये बहुत ही सरल उपाय बताया गया है। जिससे किसी प्रकारकी तकलीफ न हो और ये प्रबल इन्द्रियाँ स्वाधीन हो जायं। योगिराज श्रीजैमलदासजी महाराजने सिद्धासनमें भी एक नया लक्षण दिखाया है जिससे ये प्रबल इन्द्रियाँ स्वयं विना कठिनाईके स्वाधीन हो जाती हैं—

"जंघनपर कर धारि के वे सम आसण चितलाय"

अर्थात् हठयोगप्रदीपिकाके अनुसार ही सिद्धासन करके बैठो परंतु दोनों हथेलियोंके तलवोंको जाँघोंपर धारण करो। तात्पर्य यह है कि हथेली-तलके दबावसे एक प्रकारकी विद्युत् शक्ति उत्पन्न होती है वह सर्व शरीरमें अपने प्रभावका प्रसार करके उन प्रबल इन्द्रियोंके वेगको दमनकर अपने स्वाधीन कर

लेती है। अतएव सिद्धासनसे बैठकर सर्व इन्द्रियोंका दमन और मनको समाहित करनेके लिये दोनों हाथोंकी हथेलियोंको जोरसे जाँघोंपर जमाकर बैठना चाहिये।

पाँचवीं—नेत्रोंको अचल दृष्टिसे भृकुटीके मध्य जमाकर बैठनेकी है। ऐसा करनेका मुख्य प्रयोजन मनकी चञ्चल वृत्तिको स्थिर करना और ध्येयमें तल्लीनता प्राप्त कर समाधि अवस्था प्राप्त करना है।

भ्रूमध्यस्थानमें नेत्रोंको अचल दृष्टिसे जमाकर बैठनेसे खेचरी नामकी मुद्रा होती है।

सूर्याचन्द्रमसोर्मध्ये निरालम्बान्तरं पुनः।
संस्थिता व्योमचक्रे या सा मुद्रा नाम खेचरी ॥ १ ॥

(हठयोगप्रदीपिका)

अर्थात् इडा-पिङ्गला नाड़ीके बीचमें निरालम्ब भ्रूप्रदेश (आकाशस्थान) में मनोवृत्ति स्थित हो जानेको खेचरी मुद्रा कहते हैं।

इस खेचरी मुद्राके अभ्याससे उन्मनी अवस्था स्वयंसिद्ध हो जाती है।

"अभ्यस्ता खेचरी मुद्राप्युन्मनी सम्प्रजायते।"

इसलिये खेचरीका एक भेद उन्मनी है ऐसा कह सकते हैं।

शङ्खदुन्दुभिनादं च न शृणोति कदाचन।
काष्ठवज्जायते देह उन्मन्यावस्थया ध्रुवम् ॥ १ ॥

उन्मनी अवस्थामें असम्प्रज्ञात निर्विकल्प समाधिके लक्षण हो जाते हैं इससे चतुर्थपदकी प्राप्ति होती है।

चतुर्थ पदके लक्षण—

भ्रुवोर्मध्ये शिवस्थानं मनस्तत्र विलीयते।
ज्ञातव्यं तत्पदं तुर्यं तत्र कालो न विद्यते ॥ १ ॥

भ्रूमध्यस्थानमें शिवका स्थान है। उसमें जब मन विलीन हो जाता है तब तुर्य पद (चतुर्थपद) प्राप्त हो जाता है ऐसा जानो। इसमें कोई कालकी (समयकी) अवधि नहीं है। क्योंकि भ्रूमध्यस्थानमें अचल दृष्टि जमाके मनको उसमें विलीन करनेसे ही चतुर्थपदकी प्राप्ति होती है। इसीलिये सिद्धासनमें अचल दृष्टिसे भ्रूमध्यको देखना बतलाया है।

रामस्नेहिसम्प्रदायके आदि योगिराज श्रीजैमलदासजी महाराजने भी चाचरी अगोचरी मुद्राको इंगितकर यही बात कही है—

"निरत धरे निजनासिका वे सुनमें सुरत समाय"

अर्थात् निज नासाग्रभागपर दृष्टि जमाके स्थिर होनेको चाचरी मुद्रा कहते हैं। गीताजीमें भी इसीको जमानेका लिखा है—

"सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्"

तथा "सुनमें सुरत समाय" इस पदसे चौथी अगोचरी मुद्रा बतायी है। मुद्रा पाँच होती हैं—

चाचरि, भूचरि, खेचरी, और अगोचरि नाम।
उन्मनि मिल यह मुद्रिका, पंच लखहु सुखधाम ॥ १ ॥
अत्र सुन मुद्रा पंचविध, प्रथम खेचरी होय।
मुखमें तास निवास है, बढवे जीभ विलोय ॥ २ ॥
दूसरि मुद्रा भूचरी, नासा जासु निवास।
प्राणापान जुदी जुदी, कर देवे इक पास ॥ ३ ॥
तीजी मुद्रा चाचरी, वसे दृगन विच सोपि।
नासा आगे दृष्टि धरि, देखे अचरज कोपि ॥ ४ ॥
चोथी मुद्राऽगोचरी, करत श्रवणमें वास।
ज्ञान सुरत इक होत है, अनहद शब्द प्रकाश ॥ ५ ॥

पाँचवीं उन्मनी मुद्रा है जिसका स्थान दशमद्वार है, इसकी सिद्धिके लिये ही तो सब कुछ करना पड़ता है। समाधिकी सिद्धि इसीसे ही होती है। यह स्वयं समाधिरूप है। इस प्रकार पाँचों मुद्राओंका साधन सिद्धासनसे सिद्ध होता है। ये पाँचों मुद्रा निश्चल दृष्टिसे नासान्त (भ्रूमध्यभाग) वा नासाग्रभागमें दृष्टि जमानेसे सिद्ध होती है। अतएव भ्रूमध्यमें निश्चल दृष्टि जमाके सिद्धासनमें बैठनेसे सर्व मुद्रा सिद्ध होना बतलाया है। उपरोक्त पाँचों बातोंको लक्ष्यमें रखकर देखा जाय तो सिद्धासन कोई साधारण नहीं है, क्योंकि योगशास्त्रमें सारभूत और मोक्षद्वारके कपाटका भेदनकर सिद्धिका दाता यही कहा है, इसलिये ऐसा विश्वास है कि जिसको केवल यह सिद्ध हो जाता है, वह परमपदका भागी होता है। इस प्रकार सिद्धासन लगाकर पश्चिमध्यानाभ्यासी योगी बैठे और मुखसे राममन्त्रका जप करता हुआ रसना १, कण्ठ २, हृदय ३, नाभि ४—इन चार स्थानोंमें क्रमसे प्राणोंका निरोध करे। प्रथम पूर्वध्यान जो नाभिसे सीधा हृदयादि स्थानमें होकर भ्रुकुटीदेशमें जाता है वहीं त्राटक ध्यान होता है।

पूरब ध्यान भया जब ताटक।
खूला सहज गगन का फाटक ॥

भ्रूमध्यमें प्राणके रुकनेको त्राटक कहते हैं, यह होनेके पश्चात् क्रमसे जिन-जिन स्थानोंमें होता हुआ ऊपर गया था उन्हीं स्थानोंमेंसे होता हुआ नीचे

नाभिमें आकर पातालमें (आधार-चक्रसे नीचेके अङ्गोंकी पातालसंज्ञा मानी है, जैसे कटिप्रदेशको अतल, लिङ्गप्रदेशको वितल, गुह्यप्रदेशको सुतल, जङ्घाप्रदेश-को तलातल, गुल्फप्रदेशको रसातल, पादप्रदेशको महातल, पादतलको पाताल माना है) जाकर फिर वंकनालमें पृष्ठवंशान्तर्गत सुषुम्णामें प्रवेश होकर मेरु-दण्डमें जो २१ ग्रन्थियाँ हैं उनको छेदन करता हुआ पृष्ठ त्रिकुटीमें पहुँचकर सुषुम्णा नाड़ीके द्वारा दशमद्वार (ब्रह्मरन्ध्र) में प्रवेश करता है। तब योगी जीवन्मुक्त हो जाता है। त्रिकुटीतक तो माया तथा मृत्यु है।

त्रिकुटी ताँई रामदास, पड़ै काल की घात।
त्रिकुटी पहुँता सुन गया, जाकी पूरण वात ॥ १ ॥
मन मनसा का रामदास, त्रिकुटी ताँई सूत।
आगै केवल ब्रह्म है, जहाँ माया नहिं भूत ॥ २ ॥
रामदास वीसोवरष (१८२०), तामें काती मास।
ता दिन छाँडी त्रिकुटी, किया ब्रह्म में वास ॥ ३ ॥

(श्रीरामवाक्यम्)

इस प्रकार ध्यान करनेको पश्चिमध्यान कहते हैं। इस ध्यानको करनेवाले मुक्त हो जाते हैं। एवं ध्येयका ध्यान करते-करते जब ध्याताकी वृत्ति अभेदात्मक स्थिर हो जाती है तभी समाधि अवस्था प्राप्त होती है।

२ समाधि—

१ तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।

२ ध्यातृ-ध्येय-ध्यान-कलनावद् ध्यानं रहितं समाधिः।

ध्यान अर्थमात्र रह जाय और स्वरूपशून्य-सा प्रतीत हो उसे समाधि कहते हैं। ध्येयमें एकाग्रचित्तवृत्तिकी स्थितिको समाधि कहते हैं। इस स्थितिमें ध्याता (योगी), ध्यान (चिंतवन) ध्येय (वस्तु)—इन (त्रिपुटी) की कल्पना जिसमें हो वह सविकल्प तथा सम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है। और जिसमें ध्यातृ आदि त्रिपुटीका स्फुरणतक नहीं हो वह निर्विकल्प समाधि तथा असम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है। उसके लक्षण योगशास्त्रमें ये हैं।

सलिले सैन्धवं यद्वत् सात्म्यं भजति योगतः।
तथात्ममनसोरैक्यं समाधिरमिधीयते ॥ १ ॥

अर्थात् जिस प्रकार जलमें सैन्धव (नमकका टुकड़ा) एकरूप हो जाता है इसी प्रकार योगी समाधि अवस्थामें आत्मा और मनकी एकताको प्राप्त हो ब्रह्ममें लीन हो जाता है। और उसको देहसम्बन्धी कुछ भी ध्यान नहीं रहता; उसीको समाधि अवस्था कहते हैं।

यह समाधि दो प्रकारकी होती है—
एक जडसमाधि, दूसरी चेतनसमाधि।

चेतनसमाधिके दो भेद हैं—
एक पिपीलिकामार्ग, दूसरा विहंगममार्ग।
विहंगममार्गके भी दो भेद हैं—
एक युञ्जानयोगी, दूसरा युक्तयोगी।

परंतु ये सब भेद सम्प्रज्ञात तथा असम्प्रज्ञात समाधिके अन्तर्गत आ चुके हैं। अतएव मुख्य समाधि दो प्रकारकी ही हैं—

समाधिके पर्यायवाचक शब्द १५ हैं—१ राजयोग, २ समाधि, ३ उन्मनी, ४ मनउन्मनी, ५ अमरत्व, ६ लय, ७ शून्याशून्य, ८ परमपद, ९ अमनस्क, १० अद्वैत, ११ निरालम्ब, १२ निरञ्जन, १३ जीवन्मुक्ति, १४ सहजावस्था, १५ तुर्या।

समाधिका दूसरा क्रम स्कन्दपुराणमें इस प्रकार लिखा है।

एकश्वासमयी मात्रा प्राणायामे निगद्यते।
प्राणायामद्विषट्केन प्रत्याहार उदाहृतः ॥ १ ॥
प्रत्याहारद्विषट्केन धारणा परिकीर्तिता।
भवेदीश्वरसंगत्यै ध्यानं द्वादशधारणम् ॥ २ ॥
ध्यानंद्वादशकेनैव समाधिरभिधीयते।
यत् समाधौ परं ज्योतिरनन्तं स्वप्रकाशकम् ॥ ३ ॥

प्राणायाममें एक श्वासकी मात्रा।
बारह प्राणायामका एक प्रत्याहार।
बारह प्रत्याहार करनेसे एक धारणा।

बारह धारणाका साधन करनेसे एक ईश्वरसे संगति प्राप्त करनेवाला ध्यान प्राप्त होता है।

इस प्रकारके ध्यान वारंवार करनेसे एक समाधि होती है। इस समाधि अवस्थामें परमज्योति अनन्त स्वप्रकाशमय परब्रह्म परमात्मामें तल्लयता प्राप्त हो जाती है।

धारणा पञ्चनाडीभिर्ध्यानं षष्टिकनाडिकम्।
दिनद्वादशकेन स्यात्समाधिः प्राणसंयमात् ॥ १ ॥
(गोरक्षपद्धति)

निर्गुणो ध्यानसम्पन्नः समाधिं च ततोऽभ्यसेत् ।
दिनद्वादशकेनैव समाधिं समवाप्नुयात् ॥ १ ॥
(मार्कण्डेयपुराण)

षट् श्वासा की एक पल, इसा सास सो खाय ।
छठे महीने खेतसी, सुरति मेरु चढ जाय ॥ १ ॥
(खेतसीयोगीराज)

ऐसी दशा प्राप्त होनेका मुख्य साधन योग है। इस विषयके सम्बन्धमें पहिले बहुत कुछ लिखा जा चुका है उससे जो कुछ अवशिष्ट रह गया है उसीका दिग्दर्शन संक्षेपसे यहाँ कराया जाता है।

योगका सब खेल यथावत् मन और वायुके ऐक्य होनेसे ही सिद्ध होता है। क्योंकि जब इनकी एकता होगी तब चित्त एकाग्र होकर जिस काममें लगेगा वह कार्य अवश्य ही सफल होगा। भगवान् पतञ्जलिने भी योगदर्शनमें लिखा है—

१ योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ।
२ युज्यतेऽसौ योगः ।

चित्तकी वृत्तिके निरोधको योग कहते हैं । १ ।
जो युक्त किया जाय उसको योग कहते हैं । २ ।

योग दो प्रकारका होता है—
एक हठयोग और दूसरा राजयोग ।

हठयोगमें आसनाभ्यासकी तथा आग्रहयुक्त और हठयुक्त नियमोंकी प्रधानता होती है।

राजयोगमें ध्यान-धारणाद्वारा मनःसामर्थ्य बढ़ानेका महत्त्व विशेष है तथा आत्मशक्तिका अनुभव लेना मुख्यतया होता है। इन दोनोंमेंसे राजयोगकी प्रशंसा अधिक की है। राजयोगको ही सहजयोग, सहजावस्था और समाधि कहते हैं। सर्व हठयोगके उपाय राजयोगकी सिद्धिके लिये ही किये जाते हैं। जब राजयोग सिद्ध हो जाता है तो पुरुष मृत्युको भी जीत लेनेवाला हो जाता है।

सर्वे हठलयोपाया राजयोगस्य सिद्धये ।
राजयोगसमारूढः पुरुषः कालवञ्चकः ॥ १ ॥

अतएव राजयोग ही योगोंमें प्रधान माना गया है।

योगके अष्टाङ्ग

१ यम, २ नियम, ३ आसन, ४ प्राणायाम, ५ प्रत्याहार, ६ धारणा, ७ ध्यान, ८ समाधि ।

यम—१ अहिंसा, २ सत्य, ३ अस्तेय, ४ ब्रह्मचर्य, ५ अपरिग्रह ।

नियम—१ शौच, २ संतोष, ३ तप, ४ स्वाध्याय, ५ ईश्वरप्रणिधान ।

आसन—चौरासी लक्ष हैं उनमेंसे जो मुख्य हैं उनका वर्णन पश्चिमध्यान-साधनमें देखिये ।

प्राणायाम—तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः । पद्मासन-सिद्धासनमेंसे कोई भी आसन लगाके श्वास-प्रश्वासकी गतिको रोककर बैठनेको प्राणायाम कहते हैं । इसके तीन प्रकार हैं—१ पूरक, २ कुम्भक और ३ रेचक ।

लक्षण—

इडया पवनं पिब षोडशभिश्चतुरुत्तरषष्टिकमौदरकम् ।
त्यज पिङ्गलया शनकैः शनकैर्दशभिर्दशभिर्दशभिर्द्व्यधिकैः ॥ १ ॥

अर्थात्—वाम नासापुटसे सोलह वार प्रणवस्मरण करता हुआ वायुको ऊपर खींचकर पान करे (इसीको पूरक कहते हैं) । तत्पश्चात् उस वायुको ६४ चौसठ वार ॐकारका स्मरण करने पर्यन्त उदरके भीतर धारण कर रखे (इसको कुम्भक कहते हैं)। तत्पश्चात् दाहिने नासापुटसे उस वायुको धीरे-धीरे बतीस वार ॐकार-स्मरणकी मात्राके प्रमाणसे बाहर निकाले । फिर कुछ देर बाहर श्वासको रखे, फिर दहिने नासापुटसे १६ सोलह वार वायु खींचे । इस भाँति ६४ वारमें कुम्भक (धारण करना), ३२ वारमें रेचक और १६ वारमें पूरक करे । ऐसा तीन वार करनेसे एक प्राणायाम होता है ।

इस प्राणायामके दो भेद हैं—सगर्भ और अगर्भ । जिसमें ॐकार तथा राममन्त्रका जप और ध्यान हो वह सगर्भ है । और जिसमें प्राणायामके सिवाय जप-ध्यान वगैरह कुछ भी नहीं किया जाता है वह अगर्भ है । अगर्भसे सगर्भ प्राणायाम १०० गुणा अधिक फलदायक है ।

जपध्यानं विनाऽगर्भः सगर्भस्तत्समन्वयात् ।
अगर्भाद् गर्भसंयुक्तः प्राणायामः शताधिकः ॥ १ ॥
(महाभारत)

जाप्येन तु जपं कुर्यादविलम्बितमद्रुतम् ।
मनसैव प्रसंख्यातं प्राणायामविधौ सदा ॥ २ ॥
(नन्दिपुराण)

अर्थात् सगर्भ प्राणायाममें जप करना, वह न तो अधिक धीरेसे न अधिक जल्दीसे करना, समानवृत्तिसे मन-ही-मनमें गिनती लगाके जप करना चाहिये ।

ऐसे अनहद नादको श्रवण करता हुआ मन जब ब्रह्मरन्ध्रमें प्रवेश करके परब्रह्मसे मिल जाता है तब त्रिगढ़ अर्थात् हृदय, कण्ठ, भ्रूमध्य स्थानस्थ तीनों प्रबल ग्रन्थिरूप गढ़ (किले) को भेदकर ब्रह्मपद, विष्णुपद और रुद्रपदरूपी तीनों पदोंसे भी पर परब्रह्मरूपी चौथे परमानन्द पदको प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार जब अपानवायु प्राणवायुसे मिलकर कुम्भकद्वारा निरुद्ध होता है तब चित्तका ध्यान उस परब्रह्म परमात्माकी ओर लगने और ध्येयाकार वृत्ति प्राप्त होनेसे समाधि लगानेकी अवस्था प्राप्त हो जाती है ॥ २९-३० ॥

इस रीतिके साधनको प्राणायाम कहते हैं। इसके और भी कई भेद हैं; यथा—१ जघन्य, २ मध्यम, ३ उत्कृष्ट। और कुम्भक ८ प्रकारका है—१ सूर्यभेदन, २ उज्जई, ३ सीत्कारी, ४ शीतली, ५ भस्त्रिका, ६ भ्रामरी, ७ मूर्छा, ८ प्लावनी—इनके करनेसे कुण्डलिनी जाग्रत् होती है।

प्रत्याहार—जो पाँचों इन्द्रियोंके शब्दादि विषयोंसे मनको हटानेसे होता है। इसके भी पाँच भेद हैं, कई-कई इसके अठारह भेद भी कहते हैं।

अष्टादशसु यद्वायोर्मर्मस्थानेषु धारणम्।
स्थानात् स्थानात् समाकृष्य प्रत्याहारो निगद्यते ॥ १ ॥

धारणा—एक लक्ष्यपर वा ध्येयपर चित्तवृत्ति स्थिर करनेको कहते हैं। यह धारणा ५ प्रकारकी है—१ स्तम्भनी, २ द्राविणी, ३ दाहिनी, ४ शोषणी, ५ भ्रामणी। ये पृथिव्यादि पञ्चभूतोंकी हैं। शरीरमें इनके ये स्थान हैं—

१ पादादिजानुपर्यन्तं पृथिवीस्थानमुच्यते।
२ आजानोः पायुपर्यन्तमपां स्थानं प्रकीर्तितम् ॥ १ ॥
३ आपायोर्हृदयान्तं यद्वह्निस्थानं तदुच्यते।
४ हृन्मध्यात्तु भ्रुवोर्मध्ये यावद्वायुकुलं भवेत् ॥ २ ॥
५ आभ्रूमध्यात्तु मूर्धान्तमाकाशस्थानमुच्यते ॥

इन पाँचों स्थानोंमें पाँच-पाँच घटिकापर्यन्त प्राण रोककर ब्रह्मादि देवताका ध्यान करनेसे भूमि आदि पाँच तत्त्वोंका जय हो जाता है।

ध्यान—तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।

समाधि—तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः। इनके सिवाय नेती, धोती, ब्रह्मदाँतुन, गजकर्म, नौली, वस्ती, गणेशक्रिया, वागीशकर्म, शङ्ख-

घरिया नहिं घारूं अधर आधारूं सहजाँ सेवकरंदा है ॥ ३१ ॥
दशमें मिल द्वारी लाई तारी अम्मर बींद वरंदा है ॥ ३२ ॥
मनवा थिर पवना पांचूं दमना प्याला अजर पिवंदा है ॥ ३३ ॥
निरमल जहां नूरा उदय अंकूरा परमानंद परसंदा है ॥ ३४ ॥
तिरवेणी छाजै ब्रह्म विराजै निरभै राज करंदा है ॥ ३५ ॥
झिलमिल्ला जोती ओत रु पोती जीव रु शीव मिलंदा[1] है ॥ ३६ ॥

पखाली, त्राटक आदि साधन तथा १ महामुद्रा, २ बन्धमुद्रा, ३ महावेधमुद्रा, ४ खेचरीमुद्रा, ५ उड्डियानमुद्रा, ६ मूलबन्धमुद्रा, ७ जालंधरमुद्रा, ८ विपरीतकरणी-मुद्रा, ९ वज्रोलीमुद्रा, १० शाम्भवीमुद्रा—ये दश महामुद्रा हैं। इनका साधन करनेसे चित्तको शान्ति प्राप्त होती है और लयावस्था भी शीघ्र प्राप्त होती है। इनका विस्तारपूर्वक वर्णन "गोरक्षपद्धति" "हठयोगप्रदीपिका" "शिखोप-निषद्" आदि योगके ग्रन्थोंमें देखिये। इन पूर्वोक्त साधनोंके क्रमाभ्याससे लयावस्था प्राप्त होती है।

आजकलके धूर्त योगी पाखण्डी शरीरशुद्धिपूर्वक आत्मानुभवके लिये नहीं, किंतु लोकमान्यताके लिये केवल नेती, धोती, ब्रह्मदाँतुन, उड्डियानबन्ध, त्राटक आदि क्रिया दिखाकर योगकी बड़ी-बड़ी डींगें मारते हैं। उन फर्राबाजोंको योगी मत समझो, यह तो पेटभराईका रास्ता इन्होंने निकाल लिया है। इन धूर्त चालाक योगियोंके फंदेमें आ गये तो जर और जान दोनोंसे ही हाथ धो बैठोगे, सिवाय लोकमान्यताके खाली इन दिखानेकी क्रियाओंमें क्या पड़ा है—

मनकी मिटी न वासना नवतत कियो न नास।
तुलसी केते पचिमरे देदे तनकों त्रास ॥ १ ॥
पाणीमांही[1] परगटी पावक[2] एक प्रचंड।
सात[3] द्वीप साबत रह्या दग्धभया नवखंड[4] ॥ २ ॥

यदि आपको इसकी चाट लग गयी है, अभ्यास करना चाहते हैं तो चेटक-मेटक बातें बनानेवाले चुट्टपुट्टियोंके कथनको छोड़कर अच्छे भजनानन्दी योगिराज सद्गुरुकी तलाश करें कि जिस गुरुके पास अभ्यास करनेसे अपना जन्म सफल कर आप कृतकृत्य हो जायँ। (टिप्पणीकार)

१ जाप न अजपा जहँ नहीं, तहँ नहिं सास उसास।
हरिया जीव रु शीवका, एक अखंडी वास ॥ १ ॥
(श्रीहरि० वाक्यम्)

इसी अवस्थाको निर्विकल्प समाधि कहते हैं।

---

१ अन्तःकरण। २ ब्रह्मज्ञान। ३ सात धातु। ४ नव तत्त्व।

जब समाधि अवस्था प्राप्त होती है उस समय नाम-रूप धारण करनेवाले सगुण ब्रह्मकी ध्यान-धारणा मिट ज़ाती है। और नाम-रूपरहित निरञ्जन निराकार परब्रह्म परमात्माका आश्रय (अवलम्बन) प्राप्तकर स्वतः स्वाभाविक रीतिसे ही (आपसे आप) सेवा करने लगता है। एवं दशम द्वार (ब्रह्मरन्ध्र) में मन और प्राण मिलकर अमर बींद (परम पुरुष परमात्मा) का करमेलन करता है। मानो मन-प्राण-रूपी स्त्रीने परब्रह्मरूपी वरसे करमेलन (हथलेवा जोड़) कर विवाह किया है ॥ ३१-३२ ॥

मनकी गति स्थिर हो जाती है तब पाँचों ही पवन (प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान नामके वायु) दमन (वशीभूत अथवा काबूमें) हो जाते हैं। और अजर प्याला (ब्रह्मानन्दरूपी प्याला) पीने लग जाते हैं। जहाँ निर्मल निर्विकार शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूपी नूर (ज्योति) के दर्शनका अङ्कुर उदय होता है तहाँ परमानन्द परब्रह्मकी प्राप्ति होती है ॥ ३३-३४ ॥

जहाँ त्रिवेणी (त्रिकुटी स्थान) पर परब्रह्म विराजमान होकर निर्भय राज्य करता है उसीकी झिलमिल ज्योति (प्रकाशमान ज्योति) में जीव और शिव (ब्रह्म) तिलमें तैलके समान ओतप्रोत होकर मिल जाते हैं ॥ ३५-३६ ॥

हरि हीरा पाया विणज हलाया तोल न मोल लहंदा है ॥ ३७ ॥
हरि हीरा होती पारख कोती खोट न चोट चढंदा है ॥ ३८ ॥
मन पंचे रहता मुखा न कहता अंतर लिव लावंदा है ॥ ३९ ॥
सुध बुध को विसरी सुरत न निसरी पूरण ब्रह्म अनंदा है ॥ ४० ॥
जीवत जहाँ मुक्ती शिवमिल शक्ती जन्म न फेर मरंदा है ॥ ४१ ॥
अम्मी रस पीया जुगजुग जीया बालिक मिल खेलंदा है ॥ ४२ ॥

श्रीहरिरामदासजी महाराजने फरमाया कि मैंने ध्याता, ध्यान, ध्येय- इस त्रिपुटीके ऐक्यरूपी अनमोल हीरेको पाया, फिर उसका विणज (व्यापार) शुरू किया तो न तो तोल ही ज्ञात हुआ और न मोल ही ज्ञात हुआ (अचिन्त्य अतुल अमूल्य है)। इस हीरेकी परीक्षा कठिन है। यह हीरा ऐसा प्राप्त हुआ कि जो न तो कभी खोटा हो, न कभी चोट ही चढ़नेका प्रसंग आवे ॥ ३७-३८ ॥

पंच-पंचायतमें बैठकर निर्णय करनेवाला विचारकर्ता जैसे मध्यस्थ पुरुष होता है वैसे ही इस शरीरमें अन्तःकरणका अगुआ मनरूपी पंच है। उस हीरेकी परीक्षा करनेवाला रहते हुए भी वह (मन) अपने मुखसे कुछ भी वर्णन नहीं कर सका और भीतर ही भीतर लौ लगा दी और सब सुध-बुध भूल गया, परंतु जो सुरत पूरण ब्रह्म आनन्दरूप- में बस गयी थी वह नहीं निकली ॥ ३९-४० ॥

शिव और जीवका योग (मेल) सुषुम्णामें जहाँ हुआ, बस यही जीवन्मुक्ति है और इसीसे जन्म-मरणका फेरा मिट जाता है और अमृत- रसका पानकर युगोयुग जीवित रह अखिल ब्रह्माण्डके स्वामी सच्चिदानन्द आनन्दकन्द पूरण परब्रह्म परमात्मासे मिलकर खेलता रहता है ॥ ४१-४२ ॥

हंसा परहंसा एको अंसा सुन पर सुन सोहंदा है ॥ ४३ ॥
उड़े विन पंखा मिले असंखा पार न को पावंदा है ॥ ४४ ॥
जाहर जुग जोगी है अणभोगी ओघट घाट रमंदा है ॥ ४५ ॥
नाथन के नाथू मस्तक हाथू शिव ब्रह्मा सेवंदा है ॥ ४६ ॥
हरिजन हरि जाणी वेद वखाणी शेष विष्णु ध्यावंदा है ॥ ४७ ॥
धरिया अवतारू अनँत न पारू रहता एक रहंदा है ॥ ४८ ॥

जब आत्मा और परमात्मा दोनों एकरूप होकर परम शून्य स्थानमें विराजमान (सुशोभित) होते हैं अर्थात् आत्मा परमात्मामें तदाकार हो जाता है तब उसको विना पंखके उड़नेकी सामर्थ्य प्राप्त हो जाती

है। ऐसे अनगिनत आत्मा इस प्रकार लय हो जाते हैं जिनका कोई पार नहीं है ॥ ४३-४४ ॥

जाहिरातमें (प्रकटरूपमें) योगाभ्यासी योगी जान पड़ता है, परंतु अभोक्ता होकर वह औघट घाटमें रमता रहता है जिसके मस्तकपर ईश्वरके भी ईश्वर परमेश्वरका हाथ हो जाता है। (परब्रह्म परमात्माकी जिसपर पूर्ण कृपा हो जाती है) उसकी शिव-ब्रह्मादि सर्व देवता सेवा करने लग जाते हैं ॥ ४५-४६ ॥

वेद कहते हैं जिनका शेष और विष्णु ध्यान करते हैं उन भगवान्‌को हरिके जनोंहीने जाना है। जिसने अनेक अवतार धारण किये, जिसका न आदि है और न अन्त है और जो सर्वदा एक ही रहता है ॥ ४७-४८ ॥

अंतः नहि करणू बाल न तरणू वृद्ध न को वरषंदा है ॥ ४९ ॥
पाषाण न पाती छाप न ताती थान न आन थपंदा है ॥ ५० ॥
अणघड़ अज्ञातू मात न तातू निराकार निर्द्वंदा है ॥ ५१ ॥
हाट न कोइ शहरू विणज न बोहोरू खरच न को खूटंदा है ॥ ५२ ॥
सूरा नहि सत्ती जोग न जत्ती जरा न जम पूजंदा है ॥ ५३ ॥
तीरथ नहि वरतू आभ न धरतू अकल कला आपंदा है ॥ ५४ ॥
नारि न को पुरुषा चतुर न मुरखा वेद न चार वचंदा है ॥ ५५ ॥
अनुभव पद बोल्या अंतर खोल्या विधि विरला बूझंदा है ॥ ५६ ॥

जिसके अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) नहीं हैं। और जो न बालक न तरुण (जवान), न वृद्ध है न आयुवाला है। और जो न पाषाण न पत्ता है और तप्तमुद्रा भी जिसके नहीं है और न जिसके कोई स्थान है न आन है ॥ ४९-५० ॥

वह अनघड़ (आकाररहित) अजात (अजन्मा) माता-पिता-रहित है। जो निराकार निर्द्वन्द्वस्वरूप है। उसका न कोई शहर है न कोई दुकान है। न वाणिज्य करनेवाला है न लेन-देन करनेवाला वोहरा है। न उसके खरच है न कभी उसके खूट ही आती है ॥ ५१-५२ ॥

न वह शूर है न सती (दानादि देनेवाला) है, न वह जोगी है न जती है, और जिसके पास न कभी जरा (बुढ़ापा) और जम (मृत्यु) पहुँच सकते हैं। न वह तीर्थ है न कोई व्रत है। न आकाश है और न धरती (पृथ्वी) है अर्थात् निरञ्जन निराकार निर्विकल्प निर्गुण आदिमध्यान्तरहित वह अजन्मा और अकल है और कलाका देनेवाला है ॥ ५३-५४ ॥

न स्त्री है न पुरुष हैं, न चतुर है न मूरख है और चारों वेद भी जिसकी महिमा नहीं बाँच सकते हैं और नेति-नेति कहते हैं। यह अनुभवकी वार्ता जो गुप्त थी उसको पदोंमें और छन्दोंमें प्रकट की है जिसकी विधि कोई विरला ही समझ सकता है ॥ ५५-५६ ॥

मिलिया गुरु आदू पाय अनादू पूरबले लेखंदा है ॥ ५७ ॥
जाण्या हम जैसा कहिये कैसा कछु इक मन सरमंदा है ॥ ५८ ॥
कायम कुरबाणी कर आसाणी तुहि तुहि काम कमंदा है ॥ ५९ ॥
तूही है रामा तु ही रहीमा जन हरिराम जपंदा है ॥ ६० ॥

पूर्वजन्मके लेखसे आदिगुरु मिल गये और उनकी कृपासे अनादि रूपको पाया (जाना)। जैसा हमने जाना है उसको कैसे वर्णन किया जाय ? क्योंकि वह अवर्ण्य है, इसलिये मन बतलानेमें कुछ संकोच करता है ॥ ५७-५८ ॥

यदि उपरोक्त विधिसे स्थिर होकर अपनेको इसपर कुर्बान कर दोगे तभी आसानीसे सफलता प्राप्त करोगे। ग्रन्थकी समाप्तिमें श्रीहरिरामदासजी महाराज ईश्वरके प्रति प्रार्थना करते हैं कि हे भगवन्! आप ही राम हो, आप ही रहीम हो और जो कुछ हो सो आप ही आप हो ॥ ५९-६० ॥

॥ इति श्रीहरिरामदासजी महाराजकृत घघर निसानी सम्पूर्ण ॥

हरिजसोंकी स्थायीका अकारादिक्रम

श्री १००८ श्री क्षमारामजी महाराज
रामस्नेहि सम्प्रदायाचार्य सिंहस्थल (१०)

शब्द एवं भावार्थ

अ

अकथ=अकथनीय
अकबक=गद्‌गद गिरा
अकरम=कर्मरहित
अकल=अपार, ईश्वर
अकलि=बुद्धि, कलारहित
अकाज=विघ्न, बिगाड़
अकूरड़ी=कचरेका ढेर
अंक=अक्षर, राम
अखाड़ौ=डेरा, स्थल, रंगभूमि
अगम=अगम्य, बेहद, असीम
अगसत=अगस्त्य ऋषि
अगमागम=अगमगति
अगौर=भयंकर, अधिक, अघोर
अग्य=अज्ञान
अग्यानता=ज्ञानका अभाव
अंगणै=आँगने, चौकमें
अंग=शरीर
अघाया=तृप्त हुआ
अड़वा=खेतमें रक्षार्थ मनुष्यके आकारका कृत्रिम पुतला
अचूक=अखूट, अन्यर्थ, पक्का
अचंमा=आश्चर्य
अंचरा=अँचला, चोला
अछक=परमानन्दित, मस्त
अछति=लभ, अस्ति
अछर=अक्षर, परमात्मा, अकारादि वर्ण
अछेह=असीम
अजब जोगी=ईश्वर, अद्‌भुत योगी
अजर=परमेश्वर
अजरायल=विकट, अमिट
अजर जराया=अपचको पचाया
अजोनि=अयोनि, ईश्वर, राम
अजूं=अभी
अडोली=आभूषणरहित, सवारीरहित
अण अछर=बिना शरीर, क्षरपदार्थ
अणषरी=सूक्ष्मवेद, घटके अंदर निरन्तर रामध्वनि
अणघड़=अणघाट
अण चीतीयौ=अचानक, सहसा
अणजंगी=जंगरहित, लघुतारहित
अणदेही=बिना स्वरूप, अदृष्ट
अणभै=निर्भय, प्रत्युत्पन्न, चमत्कार-पूर्ण, अनुभव
अणभंग=अभंग
अणसास=अमूंझणी, घबराहट
अंतर=अन्तःकरण
अंतरतार=एकाग्रता
अथग=अथाह, अगाध
अथाह=अगाध
अदल=न्याय, ठीक
अदीठ=अदृश्य, अदृष्ट
अदुवाव=अच्छी हवा
अदेबगर=राजकीय करसे मुक्त
अंद=इन्द्र
अन्देसा=फिक्र, शोक

अध=अधम, नीचे
अधकूंप=मृत्यु-कूपसे
अधप=अतृप्त
अधर=बिना सहारे, निराधार
अनत=अन्यत्र, दूर
अनभंग=निरन्तर
अनमंता=मतरहित
अनरथ=पाप, दोष, अपराध
अनवी=न झुकनेवाला
अनहक=अनुचित, व्यर्थ
अनहद=अमर्यादित
अनातम=जड,मूर्ख
अनाथि=निर्धनता
अनादु=अनादि
अनुपमं=उपमारहित
अनुभै=दे० अणभै
अनुरागी=प्रेमी
अनेसै=शोक, फिक्र
अनन्त=अपार
अपल=बिना रोक-टोक
अपती (त)=पापी निर्लज्ज
अपूरब=पश्चिम मार्ग, शून्य देश
अपंपरम्=परात्पर
अब=मेघ, अम्बु
अबीह=निडर, निर्भय
अबेली=साथीरहित
अभ्यास=प्रयत्न, योगाभ्यास
अमराव=सरदार
अमांणौ=नाप-तौलमें न आनेवाला; अमान
अमांन=तिरस्कार
अरध=नीचा, आधा
अरपै=समर्पण करना
अरधरकार=रकार, रेफ
अरस=आकाश, ईश्वर
अरस घरां=शून्यमें
अरसतणा=परब्रह्मका
अलगरजू=गरजरहित
अल पल्ड़ी=अल्प बात, व्यर्थ
अलि=भौंरा, सखि
अल्लूवा=उल्लू
अवल कवल=उल्टा कमल
अवगत (ति)=अनिर्वचनीय
अवगाहि=विचारके
अवचल=अचल, निष्कम्प
अवसांण=समय, अवसर
असतरी=स्त्री
असती=व्यभिचारिणी, झूठ
असतूति, स्तुति=प्रार्थना
असथल=शरीरसम्बन्धी
असमांण=आकाश
असराल=साफ, बड़ा
असली=कुलीन
असीनौ=ऐसा
अहळ जमारो=व्यर्थ जीवन
अहळा=व्यर्थ
अहेरै=शिकार

आ

आऊठांन=निसांण, सहनांण
आषतां=कहते हुए
आषा=अन्नके दाने जो भोपा लेते हैं
आषि=कहना, आखना
आघा=पास, समीप, भीतर
आचार=लोकाचार, रीति, पवित्रता
आचारी=पवित्र, शुद्धाचरणवाला

आजूणै=आज, पूर्व
आठ काठ=आठ प्रकारकी मालाएँ (तुलसी, जीयापोता, रुद्राक्ष, सूत्रग्रन्थि, वनमाला, स्फटिक, कर्पूर, मोती)
आठु कठ=हरदम, आठों पहर
आड, आडि, आडी=सीमा, मर्यादा, रोक
आंण=शपथ, आज्ञा, कार
आंणि=ले आना, ले आकर
आतमंग्यांन=आत्मबोध
आतम ब्रह्म=पिण्ड-ब्रह्माण्डकी एकता
आतळै=आखड़े, ठोकर लगे,
आथवण=अस्तकाल
आथि=धन, पैसा
आदि जुगादि=अनादि काल
आदि सकति=आद्याशक्ति
आदु=अनादि, आत्मस्वरूप
आदेस=नमस्कार, अभिवादन
आध=आधा, अपूर्ण
आध ओषा=आधा तथा पूर्ण
आधार=आश्रय, मूलाधारादि १६ आधार (दे० निसानी-टीका)
आधौ=आधाशीशीका दर्द
आंनदेव=हड़बू, पाबू, गोगा, रामदेव आदि, ब्रह्मातिरिक्त अन्य देवता
आप=स्वयं
आपदा=आपत्ति, प्रपञ्च, उपाधि
आपंदा=प्राप्ति करना
आपुं=आप, स्वयं
आपसरिष=आप-जैसा
आपौ=अहंकार, अपणायत

आब=जल
आभ=जल, मेघ, आकाश
आरषे=प्राचीन, आर्ष, चिह्न
आरपार=परावार
आरबी=अरब देशका एक बाजा
आरभार=सम्पूर्ण दुःख
आरिड=चिल्लाहट
आरीसौ=दर्पण
आळ जंजाळ=मिथ्या वचन
आवागौंन=आवागमन
आव भाव=आदर-सत्कार, हाव १०, भाव ८
आसण=जसनाथी सिद्धोंके इष्ट स्थानका नाम
आसामुषी=आशावान्, आसगीर
आसिंग=आश्रय, साथ, अनुराग, सम्बन्ध, शक्ति, बल
आसै=अभिप्राय, आशय, आसरा
आहत=काटना, घायल
आहतु=घायल किया हुआ

इ-ई

इक डंकी=अखण्ड, निरन्तर
इक्यारथ=व्यर्थ, अकारण
इणीयां=शस्त्रोंकी नोकोंके सामने
इंदर=अंदर, भीतर, इन्द्र
इमीरी=अमृतकी
इरषौ=ईर्ष्या, द्वेष
इष्ट=इष्टदेव, प्यारा, वाञ्छित
ईछना=देवताकी मनौती, अभिलाषा
ईछ-पलीछ=अन्यको प्रसन्न करना, लटापौरी

ईंडा=अंडा
ईमांन=विश्वास
ईयांणौ=अज्ञानी, मूर्ख
ईली=धान्यमें पड़नेवाला जन्तुविशेष

उ-ऊ

उषणै=उठावे, आखड़ना, खोदना
उगेल=उल्टी
उज्यागर=प्रख्यात
उझर=उजाड़, शून्य
उत्तानपात=उड्डियान बन्ध, नाभिमें योगसाधनाकी एक मुद्रा
उथले=याद करे, उथापे
उदग्या=त्याग किया
उदीयांन=उद्यान, बगीचा, जंगल
उंनमांन=अनुमान, प्रमाण, अटकल
उपदेस=शिक्षा, सीख
उभ जुहार=खड़ी नमस्कार, दोनों हाथोंसे प्रणाम
उवरांगि=उठाकर
उलषायौ=परिचय कराया
उरध=ऊर्ध्व, ऊँचा
उरधमुष कूंप=कण्ठ कमल
उलींद=निद्रालु
उसारा=उतारा
ऊ=वह
ऊषडि=नष्ट होना, उखाड़ना
ऊंडौ=गहरा
ऊंणत=न्यूनता, कमी
ऊथपै=उन्मूलन करना, अनादर
ऊ नांव=वह नाम, रेफ
ऊपनी=पैदा होना
ऊंमटि, ऊमटि=सदल, उमड़कर, मेघोंका छा जाना
ऊम्हावौ=उमंग, उत्साह
ऊरडि=घस जाना
ऊल पैल=व्यर्थ, नखरा, विषय
ऊलै=इस पार
ऊवट=पीठी, उबटना, उधड़ना
ऊवरै=बचे

ए-ऐ

एक=अद्वितीय
एतली=इतनी
एती=इतनी
ऐंठ=जूँठन

ओ-औ

ओड=जातिविशेष, जो मिट्टी खोदने व ढोनेका कार्य करती है
ओतपोत=ओतप्रोत, अरस-परस
ओथि=वहाँ
ओलग, ओळग=आलाप, पुकार, जाग, याद
ओलै=पर्दा, गड्ढा, ओट, छाने
ओवड़े=बरसना
ओवरी=धान रखनेकी कोठी, स्थान
ओसा=नेत्राञ्जन
औ=यह
औघड़=परमेश्वर, बिना कान फटा नाथ
औछाह=उत्साह, उत्सव
औदकी=उचकना
औधरि=अवधार, निश्चय
औल=उपालम्भ
औलष, औलषाई, औलषै, औलषत=पहिचान, पहिचानना

औंला=उल्टा
औसर=अवसर

अं

अंक=अक्षर, 'राम'
अंगणै=आँगनमें
अंजन=माया
अंतर=अन्तःकरण, बीचमें
अंद=इन्द्र

क

कष=घास, तुस, फूँस
कड़=गहरा, कमरपर्यन्त
कड़िकस्य=कमरबन्ध
कचोड़ी=न्यायालय
कचोळै=कटोरा, प्याला
कछिकाछ=कछना
कजा=बुरा, बिगाड़
कजोड़ा=कचरा, फूँस
कठ=निरन्तर, घड़ी
कठंदरै=पींजरा, कठौंदरा
कतार=पंक्ति, सिलसिलेवार
कतेबां=कुरान
कदे=कभी
कनफूंका=कान फूंक देनेवाला गुरु
कपाट=किंवाड़
कपाट गैणुं=ब्रह्मकपाट
कबाड़ी=प्रपञ्ची, कुठारधारी
कबाड़्या=लगाये
कबांण=धनुष
कबू=कभी
कबूलै=स्वीकार
कमकमी=कुंकुम
कमडल=मृगनाभि
कमसलि=अकुलीन
कमंध=बिना सिर, कबन्ध
कमागर=शिकलीगर
करक=दर्द व पीड़ा, हाड़
करणी=कर्तव्यता, करतूत
कर्ता, करता=करनेवाला
करदां=छुरी
करम=कृपा, भाग्य, मनोरथ, कर्तव्य
करवत=करोत, आरा
करींगै=करेंगे
करेसी=कठिन, करेगा
करोध=क्रोध
कळता=अंदर धँसते
कळया=अंदर धँसे, डूबे
कलपना=कामना, रचना
कळह=लड़ाई
कलि उथल=प्रलय
कलिक=कल, जैसा
कळिन=दलदल, कीचड़, फँस जाना
कलीजै=हृदयमें
कळीया=धसीया, फँस गया, कलीजना
कलेस=क्लेश
कवली=ग्रास, कूंडा पन्थमें लड्डुका चूरमा
कवि=काव्यकर्ता
कसनी=कसौटी
कसीस=धनुष चढ़ाकर
कसूत=उल्टा कार्य
कहर=दैवी आपत्ति
कागणि=मादा कौआ
काचा=अपूर्ण ज्ञानी
काचै=अपक्व
कादि=निकालकर

काती=कतरनी, छुरी
कापरिसांह=दुष्टजन, कायर
कापे=काटे
काम=कामदेव, वासना
काय=कोई
कायम=रचा, वसीकर, स्थिर, स्वरूप, अचल
कार=मर्यादा, सीमा
कारिकौ=कच्चा
कारीगर=सुथार आदि
काळ=मृत्यु
काळ पसारा=यमका फैलाव
काल्रर=ऊषर भूमि
काळांती=काले केशोंसे
कासी कांठै= कासीके किनारे
किडौ=कितना, घासका ढेर (किरड़ो)
किता=कितने, कितना
कितीयेक=कितनी
किधू=कहीं भी
क्रितम=कृत्रिम, बनावटी
किलोड़िया=छोटा बैल
किवड़ा=कितना
किसा=कैसा, क्या
कीर=धीवर, कंगाल
कीरतना=रासधारी
कीरतंन=कीर्त्तन
कुटुम घरमा=कुलधर्म, कडूंबा, गोत्र
कुड=कुएपर लगा हुआ वह पत्थर जिसपर भूंण लगाया जाता है।
कुभोमि=नीच भूमि, ऊषर भूमि
कुमांणसा= दुष्टजन
कुरंदा=पापकर्म
कुरसीबंध=पारम्परिक, प्रतिष्ठित
कुवचन=दुष्ट वचन
कुस=सीताजीका पुत्र
कुसल=मद्य
कुसंगति=बुरी संगति
कूकस=कचरा
कूष=पेट, कुक्षि
कूच=जाना, चलना
कूड़ (कूर)=झूठ
कूतरी=कुत्ती
कूवै=कूपमें
केनेरी पाव=थोरी वंशमें हुए किता जातिके एक नाथयोगी
केल=केला, खेल
केहा=कैसा
कैजिड़ौ=कितना, कैसा
को=कोई
कोर=किनारा, सीमा, धार
कोल मुलां=नक्का, कलमां वगैरह, कौल करना
कोस=चड़स, ढोल, चमड़ेका थैला, कुएसे पानी निकालनेवाला कोश
कोसीटा=मुरबा बंदी
कौगतिहारी=कौतुकी
कौट=खोट, टांका, अन्य धातुकी मिलावट
कौल=वचन
कंकणी=कड़ा, कंकण
कंद=खाँड, समुदाय
कंध=कंधा, माथा
कंभ=कुम्भ, घड़ा
कंवला=कमल
कांठै=नजदीक, पास, किनारे

कांन कछाया=कान फड़ाया, कृष्णका स्वरूप बनाया
कांना=मात्रा, स्वर
कांनि (ण, णि)=कसर, मोकाण, कायदा, न्यूनाधिक, मर्यादा, अन्तराय
कांनै=एक तरफ
कांन्नड़=रामदेवका भक्त
कांमण=स्त्री, अभिचार, जादू
कांमी=कामदेव, कामना
कांय=क्यों, कैसे
कांही=क्या
कुंद भराय=पैरोंसे खूँदना, कुंदा मारो, चाबुक मारो
कूंडै=मिट्टीका बर्तन, कूंडापन्थी मृतकके पीछे शंखोढाल करते हैं, उसे भी कूंडा कहते हैं, कूंडा पन्थमें मृतक पुरुषकी जगह औरको बैठा देते हैं।
कूंत=भाला, सेला, परिमाण, अनुमान

ष (ख)

षड़=घास, खड़ना, वन
षड़ो=खड़ा, स्थिर
षट करम=यजन, याजन, पठन, पाठन, दान देना, लेना; स्नान-संध्या आदि कर्म
षट चक्कर=मूलाधारादि ६ चक्र
षटभाषा=संस्कृत-प्राकृतादि देशभाषा
षट ध्रनं=छः दर्शन
षटाउ=इकट्ठा करनेवाला, सहनेवाला
षट्टकै=चिन्ता, खटकना
षड़े=चलावे, खड़े रहते, सम्मुख
षपै=क्षय, नाश होना
षफण काठ=मुर्देके लिये कफन व लकड़ी
षफनी=चोला, गूदड़ी
षरा=पूर्ण, पक्का
षलक=जगत
षल्ड़ी=चमड़ी, खाल
षाक=राख, भभूत
षाकदर=श्मशान, भस्म
षाग=तलवार
षाटि=संचना, संचित, खाटला, कमाई, कीर्ति, परिश्रम
षाधि=खाध, खघवा, ईति (टिड्डी, फाका, मूषक, तोता आदि)
षाभड़ै=योनि, खड्डा
षार=कड़वा, जहर, क्रोध, क्षार
षारेल=खारा
षाल=चमड़ी
षाळ=खाला, नाला
षलां=वैरी, शत्रु
षालिक=मालिक
षाली=रिक्त
षासा=बारीक वस्त्र
षिलकै=हास्यमें
षुमार=मस्ती, आनन्द
षुरगीर=घोड़ेका सरजाम, खुगीर, नमदा, जीन
षूलि=नष्ट होना, उखड़ना
षेतरपाल=क्षेत्रपाल, ग्रामदेव, खेड़ादेव
षैर=ठीक
षैरवंटी=सींघोड़ा, गुड़ आदि बाँटना
षोज=परम्परा, चारण-चिह्न
षोट=दोष, कपट, बुराई

षोड़ि=शरीर, अवगुण, सोलह
षांघी=तिरछी
षांट=परिश्रम
षांड=धूल, रेत (व्यंग)
षांमी=चूक, कमी
षूंन=रक्त, अन्याय
षंसयाल (खुस्याल)=खुशहाल, प्रसन्न
ष्यांत=विचार, ध्यान
ष्वास } ष्वाइस }=इच्छा, नाई
ष्वाजा="ष्वाजा पीर" (अजमेरमें)

ग

गदगद=प्रेमदशा
गय=गति, हाल, हाथी
गयंद=हाथी
गयां=जानेपर
गरक=डूबना
गरकाव=ग्रस्त
गरथ=धन, प्रबन्ध
गरवा=भारी, बड़ापना
ग्रभ=गर्व, अभिमान, गर्भ
ग्रहचारा=गृहस्थधर्म
गळत=गलता है
गळै=कण्ठमें, गल जाना
गल्हां=बातें
गहर=अभिमान, गुमरेज
गही=पकड़ी
गहेस=पकड़े
गागरी=घड़ा
गाढा=दृढ़, घना
गाफिल=मूर्ख, अचेत, असावधान
गाभ=गर्भ
गाळीयां=अपशब्द
गालै=नष्ट करे
गाहक=ग्राहक
गाहड़ि=गाज, गर्जना
गाहि=कचरना, गाहना
गिगन=आकाश
गिड़गिड़ी=आवाज, ध्वनि, नगारा
गिणवां=गिनतीके
गिरसत=गृहस्थाश्रम
गिरिंदु=पहाड़, हिमालय
गिळगिळी=गुदगुदी
गिलांन=घृणा, ग्लानि
गिवार=अजान, मूर्ख
गीरबौ=गर्व, अहंकार
गुझिग्यांन=गुह्यज्ञान
गुडीयन=ग्रन्थि, गाँठ, पतंग
गुण=सत्त्व, रज, तम
गुर=गुरु
गुरगम=गुरुसे प्राप्त ज्ञान
गुरज=गदा
गुरपरचै=गुरुका मिलाप
गुल=जामकी, अग्निका फूल
गुष्ट=चर्चा
गूडर=तंबू
गूण=बोरा, छाटी
गेणु=गगन, आकाश, गहना
गेरा=कमेड़ा-कमेड़ी
गैब=अलौकिक
गैल=पीछे, रास्ता, संग
गैला=मार्ग
गोगपाल=गोगा चोहान
गोफणी=भिंदिपाल
गोरिवै=गाँवके पास
गोळी=गुटिका, वटिका

गोवळ=पशु, गोधन
गोवल गांव=गोकुल गाँव
गोसी=चड़स पकड़नेवाला पुरुष
गौष=गवाक्ष, झरोखा
गौरा=त्यौहार, गणगौर
गौह्ली } =लीपना-पोतना
गौहंळी }
गौहान=गुरांजणी, नेत्रकी फुंसी
गौंड़ीया=कन्हपाके शिष्य, काल-बेलिया
गंजीया=निन्दा किये
गंदा=गलीच, नीच
गंभीर=गम्भीरवायु, नासूर
गांय=गाँव
ग्यांन=ज्ञान, उपदेश, बोध

घ

घड़नाव=घड़ोंकी नौका
घटपरचै=देहका परचा
घतै=डालता है
घरजांणी=घरका विनाश
घरटी=चक्की
घरी=६० पलकी १ घड़ी, २४ मिनट-का समय
घाई=गति, स्वर
घाटम=घाटम नामक एक व्यक्ति, जो मींणा थे और जयपुर राज्यमें घोड़िग्रामके निवासी थे।
घाटी=मार्ग
घुन=अनाज व लकड़ीमें पड़नेवाला कीड़ा
घुळी=घुल गयी
घूंघा=गूँगलिया, गूँगा नामक जन्तु-कीट
घोबौ=वेदना, सिर-दर्द
घोर=ध्वनि, कब्र
घोरां=कब्रमें
घंट=घंटा
घांघल=न्योछावर, बलिहारी
घांम=धूप

च

चकडोल=चक्रके समान
चकमक कड़ा=लोहेका कड़ा, जिसे पत्थरपर मारकर अग्नि पैदा करते हैं।
चट=जल्दी, शीघ्र
चतुराई=पवित्रता
चितरंग=चित्रांण, चतुरंग
चमोठो=चमड़ेका टुकड़ा, जिसे नाई उस्तरेकी सफाई हेतु रखते हैं।
चमंक=चमकान, अभाण, अरुचि
चरनां=पैरोंमें
चाचर=भूतगण, योगकी मुद्रा
चाड=शरीर, विपत्ति, रक्षक, पुकार
चाढि=चढ़ावे, चढ़ाकर, निवेदन करके
चांणिक=चमक, नीति,
चाणिक्य=चतुर, चमक
चात्रिग=चातक, चतुर
चापडै=प्रकटरूपमें, प्रत्यक्ष
चापरि=जल्दी, शीघ्र
चारि=भोजन, आहार
चालीयां=चलनेपर
चाळौ=उपद्रव, छेड़छाड़, खेल, तमाशा, ढोंग

चावष=चाबुक
चावगर=तमासगीर, ख्याली
चिष=अल्प
चितारौ=चित्रकार
चित्रावन=समझौतरी, उपदेश, ज्ञान
चिरत=चरित्र
चुडिष-चुडिष=चूँट-चूँटकर
चुणि चुणि=चुनना, चयन, एक-एक करके उठाना
चूरि=पार करके
चेरी=दासी
चेला=शिष्य
चोट=आघात, प्रहार, छेड़छाड़
चोळी=लाल, शरीर, पहननेका वस्त्र
चोवा=सुगन्धित द्रव्य
चौपड़ि=चौसर
चौरे (चौड़े)=दूसरोंको सुनायी पड़नेवाला उच्चारण, प्रकट
चंपीया=दबाया
चांपै=नाँपे, फिरे
चांबती=चमड़ीका
चांवड़ी=चामुण्डा देवी
चूंप=सफाई
चौंरी=चँवरी
च्यार चक=चहुँदिश

छ

छकि छकि=तृप्त होना
छकीयौ=तृप्त
छटीया=गूँण, छाटी, बोरा
छति=क्षति, नाश
छतीसुं पौंन=छत्तीस जातियाँ, सभी जातियोंसे तात्पर्य। यथा—

सीसगर दरजी तंबोली
रंगवाल ग्वाल,
बढ़ही तरासबींग तेली
धोबी धुनिया।
कंदोई कहार काछी
कलाल कुलाल माली,
कागदी कुदाल और
कुसाग पाट्ट बनिया॥
चितेरा बघेरा बारी
लखेरा ठठेरा मोचीं,
पटवा रु छप्परबंध
नाई भारभुनिया।
सोनार लुहार मेद
कसाई अरु सिकलीगर,
झींमर चमार एह
छत्तीस पौंण सुनिया॥

छलछिदर=भूत-प्रेत, कपट, अवगुण
छली=भरी, कपटी
छाजन=छादन, ढकना, कपड़ा
छाप न ताती=तप्त मुद्राका अभाव
छार=भस्म
छिपती=छिपा, छिप जाना
छीलर=छोटी तलैया, पोखरा
छुछम=सूक्ष्म, स्वसंवेद्य गुण
छूंनि=मांसके छोटे टुकड़े करके
छेक=छिद्र
छेहड़ौ=पार
छोति=सूतक

ज

जक=पलक, स्थिरता, शान्ति
जतजोषा=८ प्रकारके शीलमें भंग पड़ना

जन=जनलोक, हरिभक्त
जनेती=बराती
जमदांणी=यमराजका
जरकस=कवच, कलाबूतके वस्त्र
जरणां=सहनशीलता, क्षमा
जरत्र=जूत, चोट
जल जोगणी=जलमें रहनेवाली योगिनी
जल पंडर=बर्फ, परनाल
जल्ाली=जल्ला
जसनाथी=जसनाथी सम्प्रदायके अनुयायी
जहर=विष
जाई=स्त्री, कन्या, पुत्री
जागीरी=पट्टा, परगना, जागीरदारी
जाडि=मूर्खता
जाडि } =समूह, मोटा
जाडौ }
जाणितल=ज्ञाता
जांणुं=जाननेवाला, जानकार
जाति=जात देनेवाला, मनौती करनेवाला, यात्रा
जातिपांति=जातिपंक्ति
जारि=जलाते
जाळ=युक्ति, वृक्षजाल, फंदा
जालंधर बंध=कण्ठ-संकोच कर वायुको रोकना
जास=जिसके
जाहर जुग जोगी=प्रख्यात योगी
जिग=यज्ञ, (अश्वमेध, राजसूयादि)
जिगासा=जिज्ञासा, जाननेकी इच्छा
जिनाय=उत्पन्न करके
जिनांदा=जिसका
जिन्हां=जिसने
जीतव=जीवन
जीप=जीत, जय
जीवजै=जीते रहो
जीवण=आयु
जीव परचै='आप'का अनुभव
जुगति=नियम
जुगारौ=अनेक युगोंका पुराना
जुड़ि=इकट्ठे होना
जुण=बन्ध, योनि
जुर=ज्वर, ज्वरावस्था
जुहार=नमस्कार
जूई=जुदी, न्यारी
जूंजर=जर्जर
जूवा=अलग, द्यूत
जेज=देर
जेथ=जहाँ
जेर=परास्त, वशीभूत
जेहांन=संसार
जोखा=सहल, जोखना, डर, भय, हानि
जोग=संयोग, हठयोगादि, आहार-विहार, मिलाप
जोगिंदो=योगिराज, परमात्मा
जोगी=नाथ, कनफटा
जोजरो=जीर्ण, शीर्ण
जोय=स्त्री, देखना
जोला=न्यारा
जोसी=ज्योतिषी
जोरो=यमराज, जबर्दस्त, बलवान्
जंगम=एक पन्थ, शैवोंका भेद

जंजाल=जगत्रास, धंधा, स्वप्न, उलझन
जंत्री (जंत्र)=बाजा, तंबूर, सितार
जांन=जीव, सामर्थ्य, जिंदगी, बरात
जांनीतल=जानकार, ज्ञात मार्ग
जांम=प्रति, सब, माता
जांमौ कांमौ=जाति एवं काम, पेशा
जिंद=शरीर, जीवन
जिंदा=जीवित, जोगी
जिंदरी=काया
जूंण=जीवन, योनि

झ

झफांन=पत्तझड़, पतन
झामर झोल=प्रपञ्च
झालै=ठहरे, पकड़ना
झुरि झुरि=रो-रोकर, वियोगिनीका प्रलाप
झूझ=युद्ध करना, जूझना
झूलाय=स्नान
झोल=परदा
झोळा=फसलको खराब करनेवाली हवा
झोलै=पकड़, झोला, धड़धड़ाना, गोद
झांभौ=जंभदेव, विश्नोई पन्थके प्रवर्त्तक
झींणीमाया=सूक्ष्म अहंकार, भक्ति-ज्ञान-वैराग्य आदि होने-का अहंकार, वासना

ट

टाळ=छोटी टहनी
टीपणौ=पञ्चाङ्ग
टुक, टुकि=थोड़ा
टुल्य=तुल्य, भरपूर
टेक=प्रतिज्ञा, मान, स्थायी
टोकल=मोटा
टोर=ध्वनि, आघात
टोहाळी=रखवाली, टहूका
टोहि=ध्यान, खबर
टांची=टाँकी, टंकी, तख्ती
टांणा टूंणा=जादू-टोना, टोटका, वशीकरण आदि

ठ

ठेल=धक्का देना, ढकेलना
ठोक=पीटना
ठौर=स्थान
ठंटाला=कमजोर, अचल
ठांना=स्थान, जैन साधुओंके लिये ठाणां (स्थान)
ठांम=ठौर, स्थान

ड

डाळ=मोटी टहनी, शाखा
डिगमिग=दुविधा, दुश्चिन्ता, हलचल
डूलौ=भूलना, हटना
डेडरौ=मेंढक
डेरवा=डहरवा, क्रोष्टुशीर्ष
डोहती=डोलती
डंडोता=दण्डवत्; यथा—

उर शिर दृष्टि वचन मन,
पद कर जानु प्रमांन ।
अष्ट अंग से होत है,
नमस्कार सविधान ॥

डंभ=पाखण्ड
डांक=कूदना, थोरियोंका बाजा 'डेरू'

डांन=दाँव, अवसर

ढ

ढरडा=चाल, रीति, स्वभाव, प्रथा
ढारभारुं=वनस्पति, जंगल, बनराय, अठारह भार
ढिकूली=लाव, पत्थर
ढिग=ढेर, ढिग्गा, समीप
ढील=देर, विलम्ब
ढूकडै=समीप, पहुँचना
ढूढस=ढोंग, पाखण्ड
ढूलड़ी=गुड्डी
ढूलियां=गुड़ियाँ
ढूलौ=गुड्डा
ढेरी=समूह, राशि
ढोर=पशु
ढंपरी=सूका, पतझड़

त

तकतोला=ताका तोला
तगोटा=तंगोटी
तड़=स्वस्थ, मस्त
तड़का=प्रातःकाल
तणा=का
तत=तत्त्व,परमार्थ
ततमत=तत्त्व मत
तता=शीघ्र, ताता, गर्म
तन परचै=शरीरका ज्ञान
तबल=तबला, भेरी आदि
तम=आपको
तर=तरु, वृक्ष
तरक फरक=कल्पना, चञ्चलता, वाद-विवाद
तरगस=भाथाण, तूणीर
तरणापौ=तारुण्य, युवावस्था
तरना=तारुण्य, प्रौढ
तरपण=संकल्प
तराजै=समान, सदृश
तरनि=तरुणी, सूर्य
तरोगुं=तीन गुण (सत्त्व, रज, तम)
तलक=तक, पर्यन्त
तलसीर=जमीनका पानी
ताकड़ी=तराजू, काँटा
ताटिक=ललाट देशमें प्राणवायु रोकना
तात=पिता, भाई, पुत्र
ताती=तप्त, गर्म
तार=लय, ध्यान, लगन
तारायन=नक्षत्रमण्डल
तारी=तारक, ताली देना, हथलेवा, तारनेवाला
तालिब=परीक्षा, चाहनेवाला, ढूँढ़नेवाला
ताली=समाधि, करतल-ध्वनि
तास=त्रास, ताड़ना, ऐसे
तासीर=गुण, असर
तिनका=तृण
तिन्हां=उसने
त्रिगढ=कण्ठ, हृदय, बंक
त्रिविध (ताप)=अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव
तिवर=अँधेरा, तिमिर
तिहवां=तीनोंको (कौआ, कुत्ता, दुष्ट)
ती=से, के द्वारा
तीजणी=तीजका व्रत रखनेवाली स्त्री
तीठ=दया

तीन चक=तीन गढ़ (जीतके)
तीनपौली=मुख, हृदय, वंकनाल
तीर=किनारे, अलग
तुझि मैं=तेरेमें
तुरही=भेरी
तुरी=घोड़ा
तुलि=तुल्य, सदृश, रुई
तूल=बराबर, रुई
तेगै=तलवार
तेजपंज=प्रकाशसमूह
तेबीयै=कुएसे पानी निकालना
तेरैताळी=शरीरके १३ स्थानोंपर बँधे हुए मंजीरोंको एक ही व्यक्तिद्वारा लयपूर्वक बजाते हुए नृत्य
तेरैतीन=छिन्न-भिन्न
तेरै रकमांण=१३ प्रकारका कर, ढाल-बाँछ, घूआँ, वेगार, चिड़ा, चिड़कली आदि
तेह (हा)=गहराई, जलका संचार
तै=तेरे
तैसनैस=नष्ट होना, तहस-नहस
तोटा=हानि, कमी
तोलां=बाट, तौल
तोई=तो भी
तोरे=किनारे, अन्तसे
तंतवा=तन्तु, तार
तांडे=समूह, सोबत, विणजारोंके बैलों-का समूह
तांण=खिंचाव, शक्ति, सहारा, विस्तार, अहंकार
तांवणी=हौंडी
तूं=आप

थ

थाघ=गहराई
थाट=यूथ, समूह
थापन=विश्नोइयोंका पण्डा, ईश्वर
थापना=निर्माण करना
थाय=स्थायी, स्थिर रहेगा
थोकां=साज, सामग्री, समूह
थांन=स्थान, देवालय
थांन मांन=देव, भैरुँ, मावड़ी, पाबू आदिका स्थान

द

दई=भाग्य, भावी, देव
दत=दत्तात्रेय
दतब=पुण्य
दतारो=दानी
दफ्तर=स्थान, लिखाई-पढ़ाईका स्थान, कायदा किताब, ख्यात
दमड़ी=धन, पूर्वकालीन मुद्रा, जो १ पैसेमें आठ होती थी।
दर=स्थान
दरगाह=मुक्ति, स्थान
दरवांन=पार्षद, चौकीदार
दरसण=मुद्रा, दर्शन
दलांचो=फौजका समूह
दवना=दमन, वश करना
दवा=आशीर्वाद, औषध
दवादस=बारह
दस दोषा=कायिक, वाचिक, मानसादि
दसत=हाथ, आज्ञा
दसवे द्वार=ब्रह्मरन्ध्र
दसा=स्वरूप
दहल=घबराहट, धाक

दाषवी=कही
दाषवै=कहे, बतावे
दाषा=कहा गया
दाषि=कहते हैं, कहकर
दाषे=कथन करना
दाषै=बताये, कहे
दाट=ढक्कन
दाढ्या=खाया
दाध=धन्यवाद, दाद
दाधा=जला हुआ
दाधि=जली, दग्ध हुई
दाय=पसंद, रुचिकर, इच्छा
दार=लकड़ी
दाव=अवसर, जीतका पासा
द्वार नव=नव दरवाजे—आँख, कान, नाक, मुख, गुदा, लिङ्ग
दासी=चेरी
दिगंबर=नग्न
दिवै=देवे
दिवांने=पागल
दिसटंग=दृष्टान्त
दिसंतर=देशान्तर
दिह=दिन, दशों दिवस
दिहसों=दिन
दीठ=देखकर
दीदार=दर्शन, रूप
दीरघ=बृहत्, बड़ा
दीरघता=बड़प्पन
दीसै=दीखता है, दिखायी देता है
दीहड़ा=दिवस
दुतीयै=दूसरा
दुनीयांदार=संसारी
दुभर=अगाध, दुर्भर
दुय=दोय, दावाग्नि, धूं
दुरत=द्रुत, शीघ्र
दुरसा=ठीक
दुरंजी=दुराजी
दुरांत=भेद, अन्तराय
दुवाव=वह वायु, जिससे फलों व पौधों में कीड़े पड़ जायँ।
दुसराय=दुबारा, पुनरावृत्ति।
दुहेली=कठिन, संकटयुक्त
दूंदर=द्वन्द्व, शीतोष्णादि
दूवौ=आशा
देषादेषी=अन्धपरम्परा
देषीया=देखते हैं, देखे जाते हैं
देज=देना
देवण=देने लायक
देवदोसं=देवताओंका कोप
देवळ=देवस्थान, थड़ा
देह=देते हैं
देहदसा=दीदार, भेख, शरीरका भाग्य
दोष=द्वेष, शत्रुता
दोषी=शत्रु
दोषत=मित्र
दोजष=नरक
दोयफल=सुख-दुःख
दंदवाद=विषमवाद, झूठावाद
दांण=कर, जगात, दान

ध

धजनेजा=ध्वजा, बड़ानेजा
धण=स्त्री
धणीयाप=अपणायत, अपनत्व, स्वामित्व
धम=भीख, धमक, श्वास
धमचक=धींगामस्ती

घरकड़=पृथ्वीमें क़मरपर्यन्त
घरष=हर्ष, प्रसन्नता
घरमलाभ=जैनयतियोंका आशीर्वाद
घरवेस=फकीर, एक स्थानमें रहनेवाला
घलाली=सौदा दिलानेवालोंका पारिश्रमक, दलाली
घवल मंगल=मङ्गलाचार
घाड़ौ=डाका
घावै=इधर-उधर दौड़ना
घाह पुकार="त्राहि माम्" ऐसी पुकार
घिल्का=दिल्का, हृदयका
घीग=प्रहारार्थ उद्यत, मुक्का या घूँसा
घींगा=मस्ती
घीर=घीरज
घीव=पुत्री
घुरि=प्रथम
घू=ध्रुव
घोक=पूजा, वन्दना, दण्डवत् प्रणाम
घोम=धूप, धुआँ
घौड़ा धुक=भाग-दौड़, शीघ्रता
घौलहर=धवलहर, महल
धौलेरड़ै=दमामणियाँ
ध्यांन=चित्तकी एकाग्र वृत्ति

न

नकुला=वंशरहित
नकेवलं=एकाकी, नितांत
नको=कोई नहीं, अत्यन्ताभाव
नषेदै=निषेघ
नगेस=शिव, शेष, सुमेरु
नमो=नमस्कार
नरफकर=निष्फिक्र मनुष्य, संत
नरसंघी=नरसिंह
नरायनं=प्राणियोंके प्राण, विष्णु
नवध्या=नवधा भक्ति
नवनाथुं=आदि नाथ, परमानन्द नाथ, प्रकाशानन्द नाथ, काकुलेश्वरानन्द नाथ, कौलेश्वरानन्द नाथ, भोगानन्द नाथ, सहजानन्द नाथ, गगनानन्द नाथ, विमलानन्द नाथ—ये ९ नाथ
नव नीवज=९ प्रकारका नैवेद्य
नव परकार=नवरंग, नया रूप
नवाये=नमन किया
न्यारा=अलग
न्यारेला=न्यारा
न्याव=न्याय, इन्साफ
नाट=निषेध, मनाई
नाटक चेटक=नृत्य, खेल, चरित्र
नाणै=अलग
नाद=शब्द, नाद
नान्हो मोटो=सूक्ष्म-स्थूल, चेतन
नान्हो=छोटा, सूक्ष्म
नायक=स्वामी, प्रेरक
नाल=पंक्ति
नाळ=परम्परा, मर्यादा
नाळि=बन्दूक, ओर, देखना
नालेर=नारियल
नाळै=देखे
नाव=नौका, तरणि
नांव=नाम
नासै=भागे, हटे
नाहै=स्नान करे

नाह्यां=स्नान किये
निकच=कमजोर
निकचो=बेकार
निकलंक=शुद्ध ब्रह्म, निष्कलङ्क
निकसन कुं=निकलनेके लिये
निकसो=निकलना, साफ नहीं होना
निकंदन=प्रलयकर्त्ता, नाश
निगमनिरूपनं=वेदप्रतिपादित
निग्रह=रोकना, वशमें करना
निछोरै=करे, चुकावे
निजग्यांन=आत्मज्ञान
निजानन्द=आत्मानन्द
निजोरी=ईश्वराधीन
नित=नित्य, शाश्वत
निदांन=कारण, हेतु, अन्त
निमंष=निमिषमात्र, क्षणमात्र, त्रुटि
निरआसा=निराश
निरअंजन=मायारहित
निरगुन=त्रिगुणातीत
निरत=दृष्टि
निरदंदन=निर्द्वन्द्व, सुःख-दुखादि क्लेशरहित
निरदावै=पक्षरहित
निरधार=बिना आश्रय, निर्णय, निश्चय
निरपष=निष्पक्ष
निरबंध=बन्धनरहित
निरमलं=पापरहित
निरलंग=न्यारा, टुकड़ा
निरवत=त्याग, निवृत्त
निरासनं=स्थानरहित, विभु
त्रिव्यापक=सर्वत्र व्यापक
निवाज्या=कृपा की
निवाला=ग्रास
निवास=ठहराव
निसकर=निशिकर, चन्द्रमा
निसतांन=नाश
निसह=रातभर
निसंक=निर्लज्ज, निर्भय
निसांन=नगारा आदि, झंडा
निहचा=निश्चय
निहाला=कृतार्थ
नीकी=नेकी, भलाई, अच्छी
नीझर=निर्झर, झरना
नीपनां=प्रकट होना, सिद्ध, पैदावार, अच्छी फसल
नीसरणी=सीढ़ी, पागोथिया, सोपान
नेता=नेतरा
नेदांण=पौधोंके पास उत्पन्न होनेवाले घास-फूसको काटना, निराई
नेपै=पैदावार, अच्छी फसल
नेवज=नैवेद्य, देवभोग
नेवर=घूँघरू, गहना
नेहनाता=स्नेहका सम्बन्ध
नैणां=नयनों
नौका=नाव, जैनमतमें नवकारमन्त्र, माला
नंदक=नीच, निन्दा करनेवाला
नंदीया=बुझ जानेपर
नांव=नाम
निंहचल=निश्चल, अचल
नींदीयां=निन्दा किये

प

परम=चरम, परमात्मा, उत्तम, बड़ा
परमागति=परमगतिमान, पण्डित
परमारथी=परोपकारी

परमोधि=उपदेश, ज्ञान
परलै=प्रलय, नाश
परवत=प्रवृत्त
परवाड़ौ=ख्याल, पाबू-राठौड़का चरित्र, प्रशंसाके गीत
परवेस=प्रवेश, गति
परातम=परमात्मा
परापरी=परम्परासे
परायनं=परमपद, शरणागत
परां=पाँख, दूरसे
परिजांणि=पहिचान
परित=परन्तु, पै, प्रत्यक्ष, अन्य
परि पूरबली=पूर्व जन्मकी पख
परिभोमि=परभूमिका, सप्तमीभूमिका
परिसरि=परस्पर, शून्य
परिहरि=छोड़कर
परोदेव=परमदेव
पलमां=क्षणमें
पलाणै=ऊँटपर जीन लगाना
पलाप्यौ=फलीभूत होना
पलारै=तेज करना, साफ करना
पलीता=जामकी
पलै=गाँठमें
पषापषी=पक्षपात
पषाळै=प्रक्षालन, धोवे
पचीस चीरागरी=मशाल लेकर चलनेवाली २५ प्रकृतियाँ
पछ=पथ्य
पछिमघाटी=पश्चिममार्ग, बंकनाल
पछिमध्यांन=सीधा श्वास चढ़ाकर त्रिकुटीसे पीछा घेरकर हृदय, नाभि, मूलचक्र, बंकनाल होकर मेरुदण्ड त्रिकुटीद्वारा दशम द्वारमें चढ़ाना
पट=किंवाड़
पटा=अधिकार-पत्र
पटोरा=पाटंबर, पीताम्बर
पटंबर=रेशमी वस्त्र
पडपंच=छल, कपट, जगत् (प्रपञ्च)
पडपंचम=बकवाद
पडल=नेत्ररोग, पटल, पर्दा
पणै=से
पत=लाज, लज्जा
पतड़ा=पञ्चाङ्ग
पति=स्वामी, भरोसा, लाज
पतिआय=विश्वास करे
पतित=पापी
पद=स्थान
पपील=कीड़ी, पपीहा
पर=पर, पराया, दूर
परकासीया=प्रकाशित किया
परचीया=अनुभव, सिद्धि
परचै=विश्वास, अनुभव
परतीत=भरोसा, विश्वास
परदल=शत्रुदल
परनव=प्रणव, ॐकार
परनांमी=नामसे परे
पर पूठि=रक्षा, दया, परोक्षरूपसे
पसाय=भरोसा, कृपा, विस्तार
पहर=तीन घंटेका समय
पहलूंण=प्रथम, मुख्य
पहुँचै=पहुँच
पाषर=कवच
पाषिदिल=पवित्र चित्त
पाज=सेतु

पाट=रेशमी वस्त्र, पट्टा, परदा, उत्तराधिकारी, कपाट
पाटण, पट्टण=बड़ा शहर
पाटिपूजारा=वाममार्गी
पाडि=निकालना, उच्चारण करना, इकट्ठा करना, उखाड़ना, संग्रह
पाड़ीवाटि=लुटेरा, लूटना
पाड़ै=उखाड़े
पाणतीया=खेतमें पानी देनेवाला
पात उतांन=उड्डीयान बन्ध
पातरि=वेश्या
पातिग=पाप
पायल=स्त्रीके पैरका गहना, वाममार्ग-में वीर्यपान, विभिन्न पन्थोंमें अनुयायियोंद्वारा तैयार किया हुआ पेय द्रव्य
पार=अन्त
पारकै=दूसरेके, अन्यके
पारधी=व्याध, शिकारी
पारि=बस
पारिष=परीक्षा
पारी=संयोग
पारै=पार
पाळ (लि)=दीवार, किनार
पाल्यौ=पनपे, फैलावे, सफल हुआ
पालै=निभावे, मना करना, पालन
पावड़ु=पावड़ी
पास=फंदा
पासीगर=ठग, फाँसीवाला
पासै=किनारे, एक तरफ
पासौ=चौपड़-पासा, अलग होना, समीप
पाहर=वैरी, ५ विषय
पिछोरी=कौशेय वस्त्र, उत्तरीय पट्ट, पिछवाई
पिड़=स्थान
पिन=पुण्य
पीछी=मोरपंख
पीतम=प्रियतम
पीयांन=प्रयाण
पीयु=पीना
पीर (रा)=पीड़ा, महात्मा, सिद्ध, भक्त
पीरां=पैगम्बर
प्रीत=प्रण, नियम, स्नेह
पीव=पति, प्यारा, परमेश्वर
पीव परचै=रामका मिलाप, परिचय
पुकार=आर्त्तध्वनि
पुड़ग=बूंद
पुन्य=पुनः, फिर, पुनि
पुर=छोटा शहर
पुरसाद=प्रसाद, भोजन
पुरांन=सर्ग-विसर्गादि दस लक्षणवाले भागवतादि १८ पुराण
पुळीया=चलता है
पुखि=मुट्ठी, प्रसृति, अञ्जलि
पूठा=पीछे
पूरण=पूरा
पूरब ध्यांन=आधार चक्रसे सीधा श्वास चढ़ाकर त्रिकुटी द्वारमें ले जाना
पूरि=बाढ़, तटपर्यन्त जलका आ जाना
पेटै=भीतर
पेम=प्रणय, प्रीति, प्रेम
पेलै=नष्ट करे

पेस=अर्पण, भेट
पैजार=जूत, पदत्राण
पैठ=विश्वास, दुकान, इज्जत
पैले=पहिले, उसकान
पैस=घुसकर
पोष्या=पोषण
पोटल=पोट, गठड़ी
पोटा=गठड़ी
पोय'र=पिरोकर
पौरस=शक्ति, पुरुषार्थ
पौह=प्रातःकाल
पंग=सर्प, पङ्गु
पंगड़ा=बच्चा, बच्ची
पंगरन=पगरखी, फटा वस्त्र
पंचगड़=पचीया, फोड़ा, गूमड़ा, अदीठ, गाँठ
पंजर=ढाँचा; कृश
पंड=शरीर, स्थान
पंडर=श्वेत, पाण्डुर
पंडौता=पण्डा
पंतरि=झूठा, दूजा
पंतरीया=भूला
पंथीया, पन्थी=बटाऊ
पंथबारा=नाथ व वाममार्गमें १२-१२ पन्थ हैं।
पांगरै=बढ़ना
पांच परधांन=पाँच मन्त्री, पाँच ज्ञानेन्द्रिय
पांडै=विप्र, ब्राह्मण
पांण=ताकत
पांणै=पवन
पांति=पंक्ति
पानैं=साथ, तेजी

पांहण=पत्थर
पिंड=शरीर
पिंडत=पण्डित
पूंजी=धन, गाँठी
पूंजीयां=बीतनेपर, समाप्त होनेपर
पैंडे=मार्ग
पौंत=पवन
प्यादा=पैदल
प्याल=पाताल, पगतल
प्यालाअजर=वाममार्गमें वीर्यका प्याला, ब्रह्मानन्द
प्यांणौ=(प्रयाण) चलना, मार्ग
प्रकाशनं=प्रकाशक
प्रणम्य=नमस्कार करके
प्रथरोमा=मछली
प्रमला=सुन्दरी, बीनणी, परिमला
प्रसंग=प्रकरण, कथा
प्रांण पुरस=सूत्रात्मा
प्रांमीया=पाया
प्रिसणां=पिशुन, चुगलखोर, शत्रु, चोर

फ

फदलाह=अन्याय, गलत
फन-फन=प्रत्येक सर्पके फणमें
फ़रक=भेद
फैंडा=तूफान

ब

बगतर=कवच
बगसीस=बख्शीश, रीझ, मौज, अर्पण, उपहार, क्षमा
बगां=ब्रगुलोंमें
बगेली=कपटी

बझ्यौ=बँध गया
बभूत=भस्म, राख
ब्रह्म-अगनि=सुषुम्णा
ब्रह्म-कपाट=परमधाम, ब्रह्मपुर, ब्रह्म-रन्ध्र
ब्रह्म-विचार=आत्मज्ञान
ब्रह्म-समाधि=असम्प्रज्ञात, निर्विकल्प समाधि
ब्रह्मानन्द=ब्रह्मसुख
बलाबल=चारों ओर
बलाय=व्याधि, बला, भूत-प्रेतकी बाधा
बसंतड़ी=रहनेवाली
बहोड़ि=लौटकर, फिर
बागली=झोली
बाज=श्येन, पातल, भाग्यानुसार भोजन
बावन=वामन भगवान्
बाह=समय, खेत बाहनेका प्रथम समय, बिजाई
बाहड़ै=फिरे
बाहिरौ=बिना, रहित
बिनेह=दोनों
बिरकत=वैरागी
बीहै=डरता है
बूक=चुल्लु भरकर
बूकंत=खाना, पड़ना
बूठै=छोटा पेड़
बेड़ी=नौका, बेरी
बेरै=बेड़ा, नौका
बेला=समय, समुद्र की मर्यादा, साथ
बेली=बेल, साथी
बेलीज=कंठबेल
बोलाऊ=साथी, संघी, बातचीत करने-वाला साथी
बौहदा=बकवाद, व्यर्थ, शोर
बौहरंग=बहुरंगी
बंदीवान=अपराधी, कैदी
बंद्या=वन्दनसे
बंधवा=गोत्र, जातिके लोग
बंधिक=बधिक
बंबही=बाँबी, विवर, छिद्र
बंभना=ब्राह्मण
बांक=टेढ़ापन, वक्रता
बांठ=वृक्ष
बांठि=मरोड़, अभिमान
बांण=तीर
बांणि=व्यसन, स्वभाव, गिरा
बांब=ठूँठ
बिंदी, बूंद, बूंदी=वीर्य, अनुस्वार, बंद करना, रोकना
ब्यौहारा=व्यवहार

भ

भगति=भजन, सेवा
भड़=भट्ट,योद्धा
भड़क'रि=भिड़क, चमक करके
भठिपडियांह=चूल्हेमें जावे
भमाड़े=भगाये
भया=हुआ, होता है
भरकीयै=भड़कना, चौंकना होना
भरता=भगत, स्वामी
भरम=भ्रान्ति, ज्ञान
भँवर गुफा=ब्रह्मरन्ध्र
भवंग=सर्प
भळका=भाला, बाणकी नोक, चमक
भसि=भौंककर

भाषै=कहना
भागा=टूटनेपर
भाजै=मिटे, हटे, नष्ट होना, भगाना
भाठी=भट्ठी, भाड़
भामनी=कामिनी, स्त्री
भार=समूह, वजन, वस्तुएँ, बाहर
भालि=भाल्लेड़ी, नोक, बरछा, काँटा, ललाट, देखकर
भाव=दर, कीमत, प्रेम, प्रीति, आदर
भावै=अथवा
भिरंग=भौंरा
भीना=भीज गया
भीर=भय, संकट, भीड़
भीरी=सहायक
भुगत्यां=भोगे
भुय=जमीन
भुरकी=मोहन मन्त्र, अभिमन्त्रित राख या कोई चूर्ण
भुसलि=दुखी होना, बकवाद करना, भोंककर
भूजाई=मिठाई
भूदूं=अज्ञानी
भेट=मिलाप, पूजा
भेटीया=मिलनेपर
भेदी=भेद जाननेवाला
भेर=भेरी, वाद्यविशेष
भेळै=इकट्ठे, मिलाना, एक साथ, घुसना
भेव=भेद, रीति, तत्त्व, रहस्य
भोग=भोग भोगना, नैवेद्य चढ़ाना
भोराळ=अर्गला
भोपा=पाबू, मावड़ी या भैरवका सेवक
भोमीया=जुझार, देव, ठाकुर, भूस्वामी
भोयन=समझ, अव्यावहारिक
भोरि=इकट्ठा करके, चयन करके
भंगार, भंगारू=व्यर्थ, टुकड़े, एक प्रकारका मिश्रित धातु
भांज, भांजि=तोड़कर, मिटाकर
भांडा=पात्र, बर्तन
भांणै=आदर, परवाह, भान, परोसी हुई थाली
भांन=भानु, सूरत
भ्रांत=भेद, भ्रान्ति, ग्लानि
भैंन=बहिन

म

मकरी=जन्तुविशेष, मस्ताना, फरेबी
मड़ा=मुर्दा
मजनौ=लैलाका आशिक
मजाल=शक्ति, हिम्मत
मट=मद, स्थान
मठ=मठ, मकान, मढि
मडी=साधुओंका स्थान
मडांण=आरम्भ
मत=पन्थ, मजहब, निषेध, बुद्धि
मत्त=सम्प्रदाय, मान्यता
मता=माया, मन्त्रा, संग्रह
मथेनी=एक जैन जाति—मथेन, महात्मा
मथ्यकरि=मन्थन करके
मदन=कामदेव
मदीठ=न देखना
मधि आंगुली=मध्यमा
मन=बुद्धि, मन, चित्त, अहंकार
मन गुरा=मनमुखी

मनमुखी = गुरुरहित
मनरळीया = मनोहर
मरजीया = समुद्रमेंसे मोती निकालने-वाला गोताखोर
मरमां = मर्म, कठोर वाक्य
मलवा = खेतका लगान, खाद
मसकला = शाण
मसलि = लोकोक्ति, मिसल
मसवासी = मास-व्रती, एक माससे अधिक एक स्थानपर न रहनेवाला साधु
मसतांनां = फ़ग़ल, फक्कड़
मसि = स्याही
मसीड़े = स्थान, देवालय
महमाई = स्थान, देवालय
महमाई = देवी, माता, महामाया
महरम = अन्तर्यामी, भेदी
महरसुलां = जापमन्त्र, मुहम्मद व ईश्वरावतार
महरी = स्त्री
महापद = परमपद, मुक्ति
महिर = दया
महोला = डेरा, नगरका एक भाग
माघ = मार्ग
माट = मटका, भौंड, नाद
माणसीयांह = मनुष्य
माता = मोटा, पीवर, मस्त
माधौ = माधव
मानिधाता = मान्धाता राजा
माया = शक्ति (प्रधाना), संसार
मार = आघात
मारेल = घायल
माळ = केश
मावा = माप, मीजांन, मिष्टान्न, खोवा
मांन = म्यान
म्रितग } मिरतग } = मृतक, मरा हुआ
मिनष = मनुष्य
मिरघ = मृग, हरिण
मिलीयां = मिलनेपर
मिवन = मणि
मुगति = मुक्ति
मुजरा = नमस्कार
मुझिम्मांन = अतिथि, पाहुना
मुट्ठी = अधिकारमें, अंगुलियोंको सिकोड़नेकी क्रिया
मुन = मन, ४० सेर
मुनादि = घोषणा
मुनी = मौनी, मननशील, ऋषि
मुळकै = मन्द हँसना
मुलां = मुसलमानोंका गुरु मौलवी
मुरधर = विष्णु भगवान्
मुर = तीन
मुराद = मनसा, इच्छा
मुरींदा = शिष्य, अनुयायी
मुसाय = ठगाकर, चुराकर
मुसारा = ठग, चोर
मुष्ट = मुट्ठी, मुक्की, हाथ
मूठ (मूंठि) = मारणमन्त्र
मूवां = मरनेपर
मेष = कील, निशान, एक राशि
मेषला = आडबन्ध, लंबा चोला
मेट्या = मिटाया
मेर = सुमेरु, शिखर
मेल्तां = धरते हुए

मेवा=बादाम, पिस्ता आदि
मेवासा=शत्रु, जनसमुदाय
मेवासी=समुदायप्रिय, किलेमें रहनेवाला
मैमत=मस्त
मोकळी=बहुत, खुली, विस्तृत
मोष=मोक्ष
मोज=आनन्द, रीझ, इनाम
मोट=बड़ा, अभिमान, अहंकार
मोटो=स्थूल
मोताहळ=मोती
मोदी=परचून खाद्य सामग्री बेचनेवाला
मोन काठं=काष्ठमौन
मोरचा=निशाना
मोरनां=सितार तथा वीणाका अंग, खूंटी
मौहमंद (महमद)=हज़रत पैगम्बर
मंझ (मंझे, मिंझे)=मध्य
मंड=लोक
मंडहै (मांडहौ)=विवाह, मण्डप, वितान
मंडाण=निर्माण, आरम्भ
मांडै=निर्माण करे, लगावे
मांन=मद, अहंकार
मांहिल्ड़ी=भीतरकी
मिंदर=मन्दिर, महल
मींच=मृत्यु
मुंहकाम=पक्का, दृढ़
मुंहपीठ=अदृश्य, पिछाड़ी
मुंहरेड़ी=अगवानी, मुखिया, हजूरी
मूंक्या=लगे, छोड़ा
मैंगल=हाथी
मैं-तैं=भेद-भाव, अपना-पराया

य

यारी=मित्र
यांनौ=अज्ञानी
यांहती=यहाँसे

र

रड़ै (रड़ी)=ऊँचा टीबा, कंकरोल-युक्त ऊँची भूमि, पहाड़ी
रछांदी=नाईके औजार रखनेकी पेटी
रजरूधा=धूलसे ढका हुआ
रजा=आज्ञा, हुक्म, मरजी
रजु=सरल, प्रसन्न, प्रत्यक्ष
रतामता=अनुरक्त-मस्त
रदका=रद्दी, बेकार
रय=निवास, शब्द
रळी=आनन्द, अच्छा कार्य, वाञ्छा
ररंकार=अर्द्ध रकार
रस=आनन्द, प्रेम, प्रीति
रसतह=रास्ता, मार्ग
रसांयन=वलीपलित जराको हटानेका उपचार
रसीनौ=रसिया, प्रेमी
रहणी=धारण, रहनी
रहता सुं रहता=तीन कालमें रहनेवाले रामसे अनुरक्त
रहमांन=कर्ता-पुरुष, दयालु
राग=अनुराग, ६ राग
राछा=औजार—उस्त्रा, कैंची आदि
राजतेजं=राजाका तप-प्रभाव
राजपाट=राजगद्दी
राता=रक्त, लाल, लगन, उन्मत्त
राति जगावै=जागरण देना

रातौ रहे=फूला हुआ, रत, तल्लीन
राय=राजा, छिद्र (दरार)
राव=राजा, धनिक
रावत=शूरवीर
रास=खेल, समुदाय
रासि=राशि, जेवड़ी, ढेर
रिगसीया=चलना
रिजक=सम्पदा, सम्पत्ति
रित=ऋतु
रिदौ=हृदय
रिध=ऋद्धि
रिव=सूर्य, रवि,
रीठ=तलवार
रुष=विचार, लक्ष्य
रुतवंत=ऋतुमती
रूनौ=रोया
रेचक अर पूरक=प्राणायामके अङ्ग
रोज=प्रतिदिन
रौळि=झगड़ा
रंक=गरीब, दीन
रंन=जंगल, भयानक युद्ध
रांढु=रस्सा
रांमति=खेल-तमाशा
रूंड=रामके दास
रौंस=रहस्य, गुप्त भेद, केलि
रौंसणो=रुष्ट, नाराज होना

ल

लष=लाख
लषपाषा='लछपछ'
लघु=अल्प, थोड़ा
लड़लूँग्रा=गुच्छा, फुंदा
लदाय=लदवाता है
लदै=लादना, रखना
लवारै=लवारिया, छोटे बच्चे
लाटौ=खलिहान
लाडिलौ=प्यारा, दुलारा
लाल पाल=लल्ला-पल्ला, लालन-पालन
लाव न साव=लूँण-लखणहीन
लाह=लाभ
लाहा छेवा=लाभ, तोटा, अन्त
लिव=लय, श्रुति, एकतार लगन
लीला विलास=लीला, हाव-भाव
लूर=बादल, लोर
लेते=ढूँढ़ते
लोकश्रम=लोक-लज्जा
लोकाचार=लोक-व्यवहार
लोकायत=लौकिक
लंगर=जमात, पंक्ति
लंघणा=उल्लंघन करना
लांबा मारग=दूरका रास्ता
लांवणी=खेत-काटनी, लुनना
लुंणसी=समेटेगा, प्राप्त करेगा, लुनेगा

व

वषना=श्रीदादूजीके शिष्य
वटपाट=वाट पाड़ना, लूटना, लुटेरा
वदी=बुराई
वधांवणी=स्वागत, सत्कार, अगवानी, सामेला
वधिवधि = अधिक
वनमाली=मालाकार, माली
वर=वरदान, श्रेष्ठ, दूल्हा
वरत=कूएँसे जल निकालनेकी रस्सी, लाव, व्रत, उपवास
वरति=वृत्ति, वर्त्तमान है
वरीस=वरष, वर, श्रेष्ठ
व्रह्मंड (व्रहमंड)=भूगोल-खगोल

वळधोया=छोटे बैल
वळि वळि=धन-माया
वळीतौ=लकड़ी
वळे=पुनः, फिर
वसायौ=मूल्याङ्कन
वहरावै=भिक्षा देना
वहरै=काटना
वहोड़ि=बहुरना, लोटना
वाग=समूह, पशुओंका झुंड
वाट=मार्ग
वाढ, वाढि=काटना, छेदना
वाद=तीन-वाद, जल्प, वितण्डा
वाय (वाव)=हवा, बाजा, बजना
वार=देर, समय
वारोवारी=क्रमसे, समयसे
वारौ=चड़स, कोस
वावरि=जाल, वागुर, डोरी, खेतकी मेड़पर लगायी जानेवाली डोरी
वावरिया=झील, बावरी
वावरे=पागल, मूर्ख
वास=उपवास
वासना=इच्छा, लोकवासना, देह-वासना, शास्त्रवासना
वासिग=वासुकी, नाग, सर्प
वाहला=बहनेवाला, खालाका पानी
वाही=प्रहार किया
वाह्या=फेंका
विकल=पागल, व्याकुल
विकताई=वैराग्य
विगूता=विगोया
विघन=छल, अन्तराय, प्रत्यूह
विहद=विरुद
विटब=विडम्बना
विड=विकट जंगल, बिछुड़ना, बेहड़
विडांणी=पराई
विण=बिना
विणजवटा=सट्टेका व्यापार
विणससी=नष्ट होगा
विणंठी=बुरी बात, नाशी
विथा=व्यथा, पीड़ा
विद्या=१४ विद्या, ज्ञान, चातुरी
विधूसण=नाश, विध्वंस
विजक्यौ=भ्रमित, विलासी
विमुष=नुगुरा, गुणरहित
वियापी=व्यापी
विरच=हटना, अस्थिर
विरला=कोई-सा
विरहनी=वियोगिनी
विरांम=संकल्प-विकल्प, भेद-खेद
विरह=विरह, वियोग
विलकुल=निश्चय
विलषै=तरसना
विलषांण=उदास, विलखना
विलगै=अलग
विलब्या=अटक्या, लगे रहे
विलवाय=आश्रित
विलंबियै=सहारा, पास, लगाना
विलंबी=लगी, अटकी
विवरौ=भेद, व्यवस्था, विवरण
विसरी=जहरकी, विस्मृति, भूलना, विसरना
विसरै=विस्मृति, भूले
विसहर=विषधर, सर्प
विसायत=सम्पदा, अनेक वस्तुएँ
विसूरै=याद करना, झूरना

विषाद=दुःख, दुःखी
विषै=शब्दादि पाँच विषय
विहंगा=पक्षी
विहांण=प्रातःकाल
विहूंणा=रहित
वीट्यौ=घेरा हुआ, लपेटा हुआ
वीठल=भगवान्
वीरमूंठ=वीर-विद्या
वीष=वीख, डग, पैंड, चाल
वूठा=वर्षा होना
वूठै=बरसते हुए
वूहा=बह गया, चला जा रहा
वेकले=दोय
वेकांम=व्यर्थ, निकम्मा
वेषासा=आपत्ति
वेगम=स्त्री, बिना बुद्धिके
वेठ=मजूरी, बेगार
वेड=पागल, दोनों
वेढ=मेठ, अकड़न, बड़प्पन
वेदन=कष्ट, पीड़ा
वेदवा=फटकार, शाप
वेद विध्यांन—वैदिक विधि, वेदरीति
वेयहदी—बेहदमें गया हुआ
वेलू—मिट्टी
वेवै—सोचे, विचारे
वेसूला—बेफेम, अमर्यादित
वेह—कटार, धार
वेहदवाता=वेहदवान
वेहमाता=विधाता कर्मवती
वेह वाल्या=विधाताका लिखा लेख
वेहाल=दुर्दशा
वैफ़रवांणी=बिना आज्ञा
वैराट नगर=ब्रह्मस्थान
वैसनौ=वैष्णव, साधु
वोलाऊ=साथी, ईश्वर
वंकनाड़ी=वंकनाल, मेरुदण्ड, पृष्ठका २१ हड्डियोंका स्थान
वंकनाल=(दे० वंकनाड़ी)
वंचन=बच जाना, ठगना
वंदणा=यतियोंका नमस्कार
वंधक=बधिक
वंधवा=ज्ञाती, गोती, सम्बन्धी
वंभना=ब्राह्मण, विप्र
वंस=कुल, वंश, बाँस
वांना=भेष
वांहण=सवारी, देवदोष, लकवा
वांहती=वहाँसे
वांही=वहाँ ही

स

सकळ=कलायुक्त, बलवान्
सकांम=कामनायुक्त
सकोमल=मुलायम, नाजुक
सषीयन=सहेली, अलि
सगुरा=दीक्षित गुरुभक्त
सचै=सके
सजड़=मजबूत, दृढ़
सजीवन=जीवित करना
सतगुर=श्रेष्ठ गुरु
सतगुर केरै=सद्गुरुके
सतमिणसी=वेश्या
सतव्रत=सत्यव्रत, सच्चा नियम
सतावी=जल्दी
सतासमाधि=असम्प्रज्ञात समाधि
सतीयाधरम=वाममार्गमें स्त्री परपुरुषको देना सतीयाधर्म कहलाता है।

सतांणा=जोरसे
सद=तत्काल, सद्य, ताजा
सदका=पूरा सौ टकेका
सधीर=दृढ़, शान्त, सन्तोष, धैर्ययुक्त
सब्द=शब्द
सबूरी=धैर्य
सभ राज=शुभ राज्य, दोनों राज्य
समवादि=सम्मुख
समागम=समाज, संगत, मिलाप
समो = समान
समंक=चन्द्रमा
सल सांठि=सम्पदा, कपड़ेका सल
सलूक=यत्न, सम्पत्ति, व्यवहार
सलूंणा=सुन्दर, सलोना
सरषरु=सम्मुख
सरगरा=बाण बनानेवाला
सरभर=तुल्य, बराबर
सरस=रसयुक्त, अच्छा
सरिक्यां=छप्पर
सरिषा=सदृश
सरौ=मत, स्वर्ग
सवरि=स्मरण करो
सहज=सहजावस्था, स्व-भाव
सहजां=स्व-भावज
सहर की सोब्रता=सरायका मिलाप
सहल=सहज
सहारा=आधार
सहिसघै=सह सकना
साकट (साषत)=विधर्मी, गिरा हुआ, दुष्टजन, शाक्त
साष=शाखा, बाजरी आदिकी खेती, साक्षी
साषति=साटका, ताजना, चाबुक, देवी-उपासक
साषित=काटी जीन
सागर=सात (७)
साज=सामग्री
साझन=साधन
साटै=बदलेमें
सातदीपं=जम्बू, प्लक्षादि सात (७) द्वीप
सातसती=सीता कुन्ती द्रोपदी,
अनसूया ऋषिनार।
तारादे मन्दोदरि,
सप्त सती संसार॥
सात सुखं=प्रथम सुख निरोगी काया आदि सात (७) सुख
साद=स्वर, हेला, शब्द
साध=सज्जन
साध-समांधि=सम्प्रज्ञात, सविकल्प समाधि
सापरसि=सज्जन पुरुष
साबूत=पूर्ण, निश्चय, अनुभव
सायर=कवि, नागर, समुद्र
सापरिसांह=सज्जन
सायंत=समता, शान्ति
सार=वस्तुएँ, तत्त्व, महत्त्व, सहायता
सारी=गोटी
सारेह=सर्वत्र
सारंगप्रांन=(शार्ङ्ग-पाणि) विष्णु भगवान्
श्रावगी=सेवा करनेवाला, जैनश्रावक
साल=वर्ष
साल फोलै=पीड़ा होना
साल सुवारै=साल सवाये, प्रतिवर्षमें

सालि=चावल
सालै=घावमें पीड़ा होना, चुभना
साव=आदर
सावटु=अच्छी पोशाक
सावा=मुहूर्त्त (विवाहका)
साह=सेठ
साहि=सजना, सजकर, उठाना
साहिब=मालिक
साहिबी=प्रभुता, ऐश्वर्य-सम्पन्नता
सिकदार=जमींदार, श्रेष्ठ मनुष्य, किलेदार, प्रभु
सिकदारी=प्रभुत्व
सिका=रुकावट, मनाई
सिकासै=अवकाश
सिकैसाल=टकसाल, पैसा
सिकौ=छाप, सिक्का
सिषर=शिरपर्यन्त, पर्याप्त ऊँची
सिषरगिर=गिरिशिखर
सिषरांह=पहाड़ोंके
सिदक=सत्यता, निश्छलता
सिध (सिधि)=अणिमादि आठ सिद्धियाँ
सिरषरु=प्रत्यक्ष, सामने
सिरजनं=सृष्टिकर्ता, राम, ईश्वर
सिरताज=मुकुटमणि
सिरीयां=कुम्हारी
सिरै=प्रधान
सिल्ता=नदियाँ (सरिता)
सिवमिल सकती=ब्रह्म तथा सुषुम्णा
सिवरन=स्मरण, भजन
सिव सकती=वाममार्गमें स्त्री-पुरुष
सिवसता घर=ब्रह्मस्थान, दशमद्वार, सुषुम्णा-घर
सीष=शिक्षा, सीख
सीत=सेंत, मुफ्त, सहज
सीधा=सिद्ध हुआ
सीर=संस्कार, धारा
सीरष=रजाई
सीरी=संगाती, साथी, शीतलता
सील=शील
सीली=सांण, पत्थर, शिला
सीव=सीमा, हद, ब्रह्म, ईश्वर
सीवळा=शीतल
सीस=शिर
सुक्रिथ=एक बार, सुकृत
सुषम मारग=सूक्ष्म मार्ग, परमार्थ मार्ग
सुषमिण=सुषुम्णा
सुगुणां=चतुर
सुचिक्रिया=मृतकका अन्त्येष्टि कर्म
सुदर=शूद्र
सुन्दरि=स्त्री
सुधि=स्मृति, समझ, पवित्र
सुनमांन=सम्मान, आदर
सुन्य परिसुन्य=परम शून्य
सुन्य सरवर=शून्याकाश
सुभराज=ड्रूमोंकी आशीष
सुर=देव
सुरता=श्रोता
सुरति=एक विशेष प्रकारकी चित्त-वृत्ति
सुल्तांनां=राजा, बादशाह
सुवार=क्षौर कर्म, हजामत
सुवारि संवार=शृङ्गार करना, सजाना, आच्छादन
सुवै=शयन, सोना
सुहाग=सौभाग्य

सुहेला=सुगम
सूड़=फोग, वांठ आदि काटकर खेत साफ करना
सूत=सीधा कार्य
सूप=छाजला
सूभर=परिपूर्ण, भरा हुआ
सूर=शूरवीर, सूर्य, दिन
सूर महातम=शूरवीरका माहात्म्य
सूरवां=शूरवीर, साधक
सूरातन=शौर्य, शूरत्व
सूल=बचाव, रक्षा, साधन, ठीक
सेझ=शय्या, सहज
सेझै=नीचेका, स्वाभाविक
सेत=श्वेत
सेती=प्रति, से
सेर=१६ छटाँकका तौल
सेरी=गली, मार्ग
सेली=नादी
सेवग=भृत्य, नौकर
सेवा=सेव्य, पूजा
सेहरी=बादली
सोक=आवाज
सोष=प्रसन्नता
सोषी=मित्र
सोधि=देखकर, पवित्र करके, शुद्ध करके
सोम्भ=शोभा
सोय=वह
सौ=समान, समस्त
सौदा=व्यापार
सौदागरी=व्यापार
सोळवौ सोनो=शुद्ध सोना, सौ टंच, १६ बार तपाया हुआ सोना
संचरी=जाना, चलना
संची=इकट्ठी
संजम=आहार-निद्रादिका नियम
संजोग=मिलाप
संजोय=प्रज्वलित करना, जलाना
संझा=संध्या
संताप=शोक, पश्चात्ताप
संदेसड़ो=संदेश, संकेत
संध=जोड़, निछोह
संधांण=सांधा, सन्धि
संपजै } सांपजै } =मिले हुए, प्राप्त हुए
संपट=सम्पुट, डिब्बा
संभाय=संभालकर, सजकर
संभेहळे=बारातका मिलाप
संमृत=स्मृति, ज्ञान, मन्वादि रचित १८ स्मृतियाँ
संमृथ=समर्थ, शक्तिमान्
संवार=प्रातःकाल
संसा=संशय
सांठि=माया, व्यापार
सांठी=प्रत्यञ्चा, लकड़ी
सांतरा=अच्छा, उत्तम
सांदरौ=शोक
सांध=सौंध, सन्धि
सांभळै=सुने
सांम=धणी, स्वामी
सिंध=समुद्र
सिंन्यास=त्याग, चौथा आश्रम, संथारा, अनशन
सींगण=तीरके पंख आदि कमान
सींगी=सींगड़ी
सुं=से
सुंठ=चढ़ाकर

सूंधा=सीधा
सूंधौ=इत्र, सुगन्धित तैल
सूंन=रिक्त, खाली, शून्य
सूंनित=सुन्नत, खतना
सूंम=कृपण
सैंदेही=साक्षात् , सशरीर
सौंज=सामग्री
सौंन=शकुन, सूँण
सौंस=शपथ
सौंह=सभी
स्वान्त=शान्तिपद, मोक्ष
स्वायन=श्वान, कुत्ता
स्वार=आच्छादन, शृङ्गार करना, प्रातः काल
स्वाल=प्रश्न
स्वांतिरूप=शांन्तिपद, ब्रह्मपद

ह

हक=सत्य, यथोचित
हकमूवा=सत्यके लिये मृत्यु
हजूरा=पास
हठजौहर=हठ या वैरसे शरीरको जलाना
हदि=सीमा
हदि बेहद=हद बेहद, त्रिकुटीतक हद, ऊपर बेहद, स-मान—अ-मान
हरघम=प्रतिश्वास, नित्य
हरि रस हंदा माट=राम रसका मटका
हरीवघण=हरियालीमें इधर-उधर चरनेवाला पशु, झुंडसे अलग पशु
हाकल=आवाज
हाथि=वशमें
हालमाली=माली हालत
हाळी=खेतका नौकर
हासाषेल=खेल-तमाशा
हासिल=फायदा, राजका कर
हितू=हितैषी, प्यारा
हिलोळा=लहर, तरंग, चक्र
हिवड़ै=हृदय, हिया
हीचाहीच=खैंचाताण
हीयाळे=हिमालयमें
हीयै=घटमें, हृदयमें
हेकल=अकेले
हेल=अपराध
हैरांन=खेद, दुःखित, दुःख
होतासण=अग्नि
होसी=होवेगी
हंस=जीव, पक्षी
हंसा परिहासा=आत्मा, परमात्मा
हंसौ=(दे० हंस)
हांढै=फिरे
हांणि=हानि
हैंवर=घोड़ा, हयवर
हौंस=उमंग, ज्ञान, वाञ्छा, हिरस

"ॐ रॉ रामाय नमः"

वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्

श्री रामस्नेही सम्प्रदाय
सिंहस्थल - खैड़ापा
का
मूल रूप

श्री नाद वृक्ष

पूर्व प्रकाशन वि० संवत् १६८५
ईसवी सन् १६२८

संशोधित व रूपान्तरित प्रकाशन
वि०सं० २०५१ सन् १९९४

महापुरुष परब्रह्म राम
(दुलचासर, रोड़ा)

श्री जैमलदासजी महाराज
(वि० संवत्-१७६०-१८१०)

रामस्नेहिसम्प्रदाय की सिंहस्थल पाट गादी

श्री हरिरामदासजी महाराज

[अग्रिम पृष्ठ पर आपकी पाट गादी (आचार्य) एवं शिष्य प्रशिष्य परम्परा द्रष्टव्य है ।]

।। श्रीरामाय नमः ।।

।। राम ।।

श्री रामस्नेहिसम्प्रदाय सीथल पीठ की (आचार्य) पाट-गादी

(१) श्री हरिरामदासजी महाराज

[वि० सं० १८००-१८३५ चेत्र शु० ७]
[ॐ] श्री बिहारी दास जी महाराज
निर्वाण १८२५-१८३४ के मध्य

(२) श्री हरदेवदासजी महाराज
[वि०सं० १८३५-१८६४
फाल्गुन कृ० ५]

(३) श्री मोतीरामजी महाराज
[वि०सं० १८६४-१८६६
आषाढ़ कृ० १०]

(४) श्री रघुनाथदासजी महाराज
[वि०सं० १८६६-१६०६
मार्गशीर्ष कृ० १०]

(५) श्री चेतन दास जी महाराज
[वि०सं० १६०६-१६५०
आश्विन कृ० १४]

(६) श्री रामप्रतापजी महाराज
[वि०सं० १६५०-१६६६
ज्येष्ठ कृ० १]

(७) श्री चौकसरामजी महाराज
[वि०सं० १६६६-१६६८
भाद्रपद शु० १५]

(८) श्री रामनरायणजी महाराज
[वि०सं० १६६८-२००५
गद्दी त्याग एवं निर्वाण-वि०सं०
२०२१ मार्गशीर्ष कृ० ११]

(६) श्री भगवद्‌दासजी महाराज
[भाद्रपद शु० १५ वि० सं० २००५ से
वि०सं० २०३८ चैत्र शु० १३]

(१०) श्री क्षमाराम जी महाराज
वि०सं० २०३८ से वर्तमान

आचार्य पीठ सिंहस्थल की थांभायत शिष्य शाखा

१. (सिंहस्थल)
श्री नारायणदासजी महाराज
(वि०सं० १८०६-१८५३ माघ शु० ६
[आप की आठ थांभायत
शिष्य-प्रशिष्य शाखाओं का प्रस्तार
अगले पृष्ठ पर द्रष्टव्य है ।]

२. (खेड़ापा)
श्री रामदास जी महाराज
[इस आचार्य पीठ के पीठाचार्य के
रूप में सिंहस्थल प्रस्तार विवरण के
बाद द्रष्टव्य है ।]

३. (मुल्तान)
श्री लक्ष्मणदासजी महाराज

४. (लालमदेसर)
श्री आदूरामजी महाराज
प्रीतमदासजी
चतुरदासजी
तिलोकरामजी

५. (सिंहस्थल)
श्री अमीररामजी महाराज

६. (सिंहस्थल)
श्री दईदासजी महाराज

श्री नारायणदास जी म० सिंहस्थल (थांभा-१) का प्रस्तार क्रम
१. (ऊढसर)
सदारामजी
मानारामजी
योगीदासजी
गिरधारीदासजी
जमनादासजी
ईश्वरदासजी
आत्माबाई
(बरसीसर)
ध्यानदासजी
शिवरामदासजी
कनीरामजी
३. (गीगासर)
मयारामदासजी
प्रेमदासजी
(बेलासर)
लक्ष्मणदासजी
शालगरामजी
जयकृष्णदास जी
अक्षयराम जी
भगवानदास जी
६. (सिंहस्थल)
विजैराम जी
७. (सिंहस्थल)
सांवतराम जी
दूदारामजी
मुकनदासजी
२. (कालू)
मूलदासजी
राघोदासजी
गोविन्दरामजी
रामसुखदासजी
अमरदासजी
नानकरामजी
भक्तीरामजी
मनमोहनरामजी
पुरुषोत्तमदासजी
४. (पलाणा)
चैनदासजी
चतुरदासजी
सेवारामजी
शिवरामदासजी
रामसुखदामजी
५. (सूढ़सर)
कान्हडदासजी
उदैरामजी
अमृतराम जी
८. (जैतपुर)
गजारामजी
हरीरामजी
मुक्तीरामजी
रामीबाई
(बामटसर)
बालकदास जी
(गुसांईसर बड़ा)
ढावारामजी
पदमदासजी
(सिनावड़ा)
रामकिशनदास जी
(श्री डूंगरगढ़)
उमारामजी
अक्षयरामजी
हीरांबाई
(सूरतगढ़)
नरोत्तम दास जी
च्यवनराम जी
(पदमपुरा)
रतीरामजी
भगवानदासजी
आत्मारामजी
(श्री डंगरगढ़)
गंगारामजी
(गुसांईसर)
दूल्हारामजी
चैनरामजी
(बीकानेर)
चन्दणाबाई
आशारामजी पं०
सिंहस्थल पीठाचार्य [३]
श्री मोतीरामजी महाराज
की खालशाही शाखा
(गुसांईसर, कोषाणा)
ज्ञानदास जी
जगरूपदास जी
जरणाराम जी
आशारामजी
भजनदासजी
रामस्वरूपजी
(रातकूड़िया)
सुभरणरामजी
(साथीण)
गुल्लांबाई
रिद्धांबाई
मलूकदासजी
गोपालदासजी
निर्भयरामजी
(गंगारडा)
आत्माबाई
माणकरामजी
हनुमानदासजी

सिंहस्थल पीठाचार्य [४] श्री रघुनाथदासजी महाराज की खालशाही शाखा
१. (मेंदसर)
जेंसारामजी
नाजूरामजी
जमनादासजी
(फुलेरा)
रामजीदासजी
(पीसांगण)
काशीरामजी
(बाजोली)
परमलदासजी
२. (रासीसर)
क्षेमदासजी
मंगलदासजी
(नोखा, गोंदिया, जोधपुर)
मोहनरामजी
राधेश्यामजी
३. (दासोड़ी एवं भीनासर)
अन्नाराम जी
लाखारामजी
(भीनासर)
कनीरामजी
स्वामीरामसुख-दासजी महाराज
(चाखू, भेलू, करणू)
जीयारामजी
सदारामजी
रामधनजी
हरसुखदासजी
श्रीरामजी
(नोखा)
चैनरामजी
(पालड़ी)
माधवदासजी
(सवालिया)
लक्ष्मणदासजी
लिछमीबाई
(रतनगढ़)
खूमारामजी
रूपदासजी
झूंथाराम जी
मोहनरामजी
४. (रासीसर)
रिद्धारामजी
सीतारामजी
५. (देशनोक)
पीराराम जी
उदैराम जी
केशवदास जी
अभयरामजी
नेनूरामजी
मनसारामजी
(नोखा)
माणकरामजी
परतीतरामजी
गुलाबीबाई
(देशनोक)
मेहतूबाई
सरजूबाई
(गवालू)
जमनादासजी
हीरारामजी
दुर्गदासजी
११. (रामसर)
निर्भयरामजी
भानूरामजी
६. (सिंहराज)
रामभजनदासजी
७. (भाणेरा)
मगनीरामजी
चैनरामजी
सुरतरामजी
८. (बून्दी)
सुखरामदासजी
परमानन्ददासजी
मनसारामजी
गणेशरामजी
आत्मारामजी
९. (मेड़ता डांगावास
केशवदासजी
ब्रह्मदासजी
किशोरदासजी
१०. (सींथल)
चैनाबाई
जुक्तिरामजी
रामरतनजी
अग्रीबाई

सिंहस्थल पीठाचार्य [५] श्री चेतनदासजी महाराजकी खालशाही शाखा
१. (खजवाणा)
दूल्हारामजी
बांकीदासजी
प्रयागदासजी
२. (कोषाणा)
गंगादासजी
३. (संसारदेसर)
गुलाबदासजी
४. (नापासर)
जालारामजी
रामजीदासजी
गंगारामजी
भोलारामजी
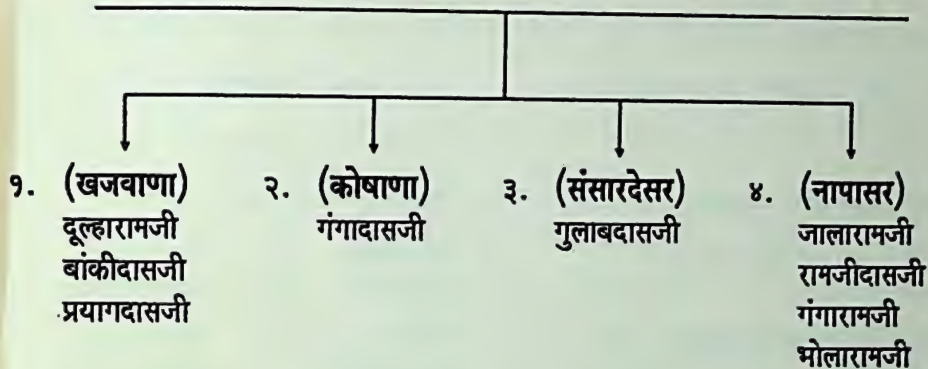
सिंहस्थल पीठाचार्य [६] श्री रामप्रतापजी महाराज की खालशाही शाखा
१. (बीकानेर)
बलदेवदासजी
२. (सालवा कल्लां)
प्रभुदासजी
धन्नारामजी
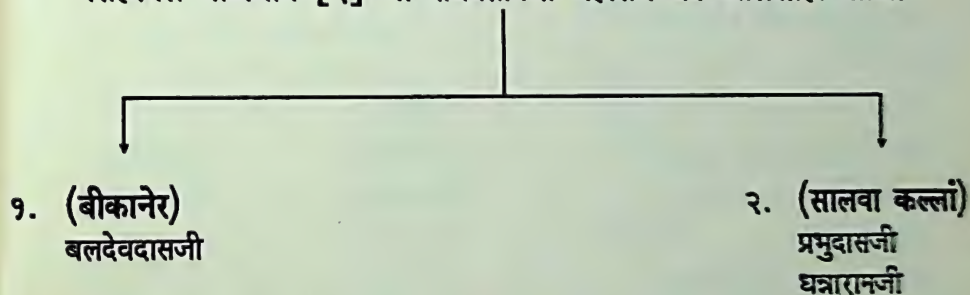
सिंहस्थल पीठाचार्य [६] श्री भगवद्‌दासजी महाराज की खालशाही शाखा
१. (बनडाऊ)
सोहनरामजी
२. (परसणेऊ)
नरोत्तमदासजी
केसरबाई
३.
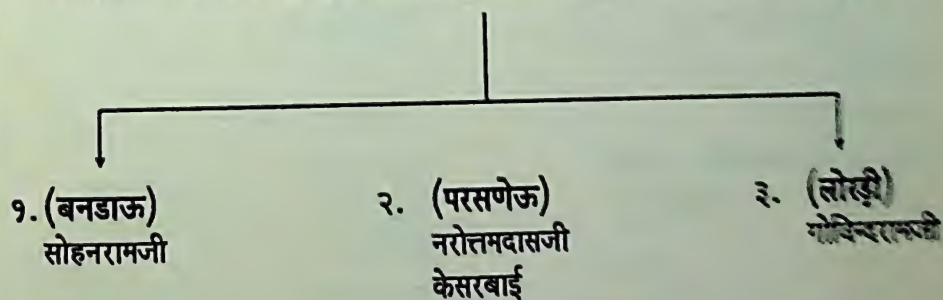
।। श्री रामाय नमः ।।

श्री रामस्नेहिसम्प्रदाय खेड़ापा पीठ की **राम** **खेड़ापा पीठाचार्य [१] श्री रामदासजी म०**

की (आचार्य) पाट-गादी

१. श्री रामदासजी महाराज (वि० सं० १८०६-१८५५ आषाढ़ कृ० ७)
२. श्री दयालुदासजी महाराज (वि०सं० १८५५-१८८५ माघ कृ० १०)
३. श्री पूरणदासजी महाराज (वि० सं० १८८५-१८६२ कार्तिक शु० ५)
४. श्री अर्जुनदासजी महाराज (वि०सं० १८६२-१६५० वैसाख कृ० १०)
५. श्री हरलालदासजी महराज (वि०सं० १६५०-१६६८ पोष कृ० ७)
६. श्री लालदासजी महाराज (वि०सं० १६६८-१६८२ भाद्रपद कृ० ४)
७. श्री केवलरामजी महाराज (वि० सं० १६८२-२००६ पोष शु० ३)
८. श्री हरिदासजी महाराज (वि०सं० २००६-२०२२ फाल्गुन शु० ८)
९. श्री पुरुषोत्तमदासजी महाराज (वि०सं० २०२२ से वर्तमान)

की थाम्भायत शाखा

१. (गांगाणी, भोपालगढ़)
गंगारामजी
गोविन्दरामजी
प्रह्लादरामजी
माधवदासजी
रामरतन जी

२. (बालेसर)
कान्हड़दासजी
बालकदासजी
नवलांबाई
शोभारामजी
आशारामजी मू०
उदैराम जी
सायबराम जी

३. (खेड़ापा)
हरजीदासजी
हेमदासजी

४. (जैतारण)
हेमदासजी
दौलतरामजी
रूपदासजी
कल्याणदासजी
चैनारामजी
रामगोपालजी

(बलूंदा)
नरसिंहदासजी
भावनादासजी
गिरधारीदासजी

(पीपलिया कल्लां)
रामबगस जी
(जैतारण)
केशर बाई
रामप्यारीबाई
सुगनांबाई
रामकुंवरबाई

खेड़ापा पीठाचार्य [१] श्री रामदास जी महाराज की थांभायत शाखा

५. (भोपालगढ़)
मनीरामजी

कृपारामजी
भाऊदासजी
प्यारारामजी
गिरधारीदासजी
परमलदासजी
सुखरामदासजी
गंगारामजी

(साथीण)
देवारामजी
कारजरामजी
इम्रतरामजी
बालकदासजी
रामसुखदासजी
रामनिवासजी

खांगटा
सूरतरामजी

तेजरामजी

नरसिंहदासजी
रतनदासजी

पन्नीबाई

केशवदासजी
श्रीरामजी

(बासणी सेजां)
पोकरदासजी
उदयरामजी
मानारामजी
नेनूरामजी
दयारामजी
सीतारामजी (उ०)

(पुष्कर)
कुशालदासजी

(पीसांगण)
केवलरामजी

हरीदासजी
रघुनाथरामजी

साथीण
दयारामजी

फूलीबाई
आशारामजी
रामाकिशनजी
रामसुखजी
रामनारायणजी

(खांगटा,
वीसनगर)
हरिकृष्णदासजी
उदैरामजी

रामजीबाई

रामनारायणजी
सुखरामदासजी

(देवरिया)
रामस्वरूपजी

(खम्बाद)
जयरामदासजी
परमेश्वरदासजी

४. बोरून्दा
गंगारामजी
बाईरामजी

(पालड़ी)
गुलाबदासजी
नेनूरामजी

(ढावा)
बन्दगीदासजी
उदासीरामजी
जुगतिरामजी
शिवरामदासजी
अमरदासजी
(जयपुर)
सांवतरामजी

(अहमदाबाद)
पारसरामजी
गुमानारामजी
काशीरामजी
हरीदासजी

खेड़ापा पीठाचार्य [१] श्री रामदास जी महाराज की थांभायत शाखा

खेड़ापा पीठाचार्य [१] श्री रामदासजी महाराज की थाम्भायात शाखा
११. (डांगियास)
लालदासजी
ध्यानदासजी
अमृतरामजी
रामप्रतापजी
हिम्मतरामजी
रामसुखदासजी
रामेश्वरबाई
(जोधपुर)
गणेशरामजी
रामरतनजी
(जोधपुर, कागल)
वीनतीरामजी
(बालेसर)
डूंगरदासजी
अमरदासजी
आत्मारामजी
मोहनरामजी
धीरतरामजी
१२. (समदड़ी)
प्रेमदासजी
लादूरामजी
सुन्दरदासजी
शालिगरामजी
भक्तिरामजी
हीरांबाई
गंगाबाई
(तलवाड़ा)
दुर्गदासजी
रिद्धारामजी
लालदासजी
(उम्रां, बालोतरा)
दीपदासजी
(बालेसर)
दौलीबाई
खेमदासजी
१३. (जोधपुर बागर)
बुधारामजी
हेमदासजी
चरणदासजी
प्रेमदासजी
खिम्यादासजी
रामलिगनजी
हरिप्रसादजी
(पुष्कर)
रामचन्द्रजी
रमैय्यारामजी
प्रेमदासजी
(जोधपुर जालोरी)
तीजांबाई
रामनारायणजी
रामबल्लभजी
रामकृष्णजी
रामप्रकाशजी
(जोधपुर)
त्यागीरामजी
केलारामजी
नवलरामजी
नारायणरामजी
प्रेमदासजी
सम्रथरामजी
भगवानदासजी
१४. (नीम्बाज)
राधोदासजी
चैनरामजी
इम्रतरामजी
गुलाबदासजी
हरिरामजी (पर०)
हुलाशरामजी
चौकसरामजी
दिगम्बरदासजी पं०
स्थिरतारामजी तप०
माधवरामजी
(विष्णु भवन,
जोध०)
माणकरामजी
(दूदोड़)
रामलिगनजी
बक्शीरामजी
नवलरामजी
प्रभुदासजी
विवेकरामजी
(ब्यावर)
मणीरामजी
चतुरदासजी
खिमतारामजी
विशनदासजी

खेड़ापा पीठाचार्य [१] श्री रामदासजी महाराज की थाम्भायत शाखा
१५. (झुटावद)
मनीरामजी
अर्जुनदासजी
गोपालदासजी
ईश्वरदासजी
बल्लभदासजी
गंगारामजी
श्यामदासजी
माणकरामजी
(उ०)
(गरौता)
गंगाबाई
बाणारसीबाई
रामरतनबाई
हरीदासजी
जीवणदासजी
१६. (बोरावड़)
सेवारामजी
रामरिखजी
१७. (नसीराबाद)
जाझूरामजी
बालकदासजी
रामप्रतापजी
१८. (बूड़ीवाड़ा)
रूपरामजी
गोविन्दरामजी
शालगरामजी
गंगारामजी
सम्प्रथरामजी
(असाड़ां)
भक्तिरामजी सू०
रामगोपालजी
जुक्तिरामजी
१६. (मकलां)
कालूरामजी
काशीरामजी
परमानन्दजी
भक्तिरामजी
मोडीरामजी
(रामसर)
प्रयागदासजी
भजनदासजी
हिम्मतरामजी
२०. (ईडर)
सगरामदासजी
रामचन्द्रजी
मुनीजी
भगवानदासजी
उदयरामजी
गुलाबदासजी
रूपरामजी
भाऊदासजी
हिम्मतरामजी
सम्प्रथरामजी
(अहमदाबाद)
मूलारामजी
फतहरामजी
चन्द्रशेखरजी (उ०)
(प्रान्तीज)
मुक्तिरामजी त्या०
जुक्तिरामजी
जीवणदासजी
आत्मारामजी
(बीझवाड़िया)
कानारामजी
२१. (चत्रखेड़ा)
गोविन्दरामजी
महारामजी
रामलालजी
गुलाबदासजी
चिरंजीवदासजी
(बडौदा)
दयारामजी
बद्रीदासजी
बालकदासजी
विष्णुरामजी
केशवरामजी
गोविन्दरामजी
लाखारामजी
(सूरत)
स्वरूपदासजी
मनसुखदासजी
रामलालजी
मंगलदासजी
रामविलासजी

खेड़ापा पीठाचार्य [१] श्री रामदासजी महाराजकी थाम्भायत शाखा

२२. (जोधपुर सूर०)
परसरामजी वि०
सेवगरामजी प०
मोबतरामजी प०
सुबदरामजी प०
संपतरामजी प०
हरसुखदासजी प०
रामबल्लभजी वि०
अभयरामजी वि०
मोहनरामजी (उ०)

(चोंखां)
छुच्छमरामजी

(किशानगढ़ मदनगंज)
माधोदासजी
बालारामजी

(वीसनगर)
मोहनरामजी
मोहनरामजी
माधोदासजी

(जोधपुर)
केवलरामजी

२३. (खेड़ापा)
पदमदासजी भंडारी

२४. (बीकानेर)
सहजरामजी
सादूरामजी
उदयरामजी
रूपदासजी
दारणारामजी
शालगरामजी
प्रेमप्रकाशजी

(भालू)
उदयरामजी
शिवनाथरामजी
प्रभुदासजी

(मंडलां)
रामसज्जनजी

(देवली)
रामकल्याणजी
विष्णुदासजी
हेतूरामजी
मयारामजी
भजनारामजी
भूरारामजी

(जयपुर)
हेतमरामजी

२५. (तीतरी)
वक्तरामजी
तुलसीदासजी
रामरतनजी
शीतलदासजी
गंगाविष्णुजी
रूपरामजी
शालग्रामजी
पूर्णानन्दजी
ईश्वरदासजी

(गंगाशहर)
अमृतरामजी
किशोरदासजी
हेतूरामजी
मुरलीदासजी

(बीदासर)
गंगादासजी
शालगरामजी
पूर्णानन्दजी
कृष्णानन्दजी

(बासणी, चारणां)
आदूरामजी
हीरांबाई

(सरदारशहर)
कोलदासजी
सेवादासजी
हनुवन्तरामजी
तनसुखदासजी

(मेंदसर)
आतमारामजी
चैनदासजी

(गाजू, मूंडवा)
दूलारामजी
मलूकदासजी
हरसुखदासजी
योगीदासजी
सोहनरामजी
घनश्यामदासजी

(जैसलसर)
प्रेमदासजी
नवलरामजी
बानारामजी
लच्छीरामजी
जीवणदासजी
जयरामदासजी

खेड़ापा पीठाचार्य [१] श्री रामदासजी महाराजकी थाम्भायत शाखा

२५. (तीतरी) पूर्वानुवृत्त
वक्तरामजी
[पूर्वपृष्ठ पर]
तुलसीदास जी
[पूर्व पृष्ठ पर]
रामरतनजी
शीतल दासजी

गंगाविष्णुजी

रूपरामजी
शालगरामजी
पूर्णानन्दजी
ईश्वरदासजी

(बासणी)
रामप्रतापजी
खेमदासजी

(राजलदेसर)
हिम्मतरामजी

भगवानदासजी

मुखरामजी
गंगारामजी

(रांजलदेसर)
केशवदासजी

(रतनगढ़)
ताजारामजी

(मथुरा)
चैनारामंजी
रामलालजी
भगवानदासजी

(दिल्ली)
रामप्रसाद जी

पुरुषोत्तमदासजी
नरसिंहदासजी
बुद्धारामजी

(दिल्ली सब्जी०)
केवलरामजी
सेवारामजी

(राजलदेसर)
हुकमारामजी

२६. (गारासणी)
पूरणदासजी
भगवानदासजी

२७. (बीकानेर)
कुशालदासजी
नृसिंहदासजी

२८. (कंटालिया)
लालदासजी
प्रेमदासजी

२९. (चांचोड़िया)
मेघोदासजी
शिवरामदासजी

३०. (चांचोड़िया)
देवादासजी
लक्ष्मीदासजी

३१. (समदसर)
शोभारामजी
शालगरामजी
उदयरामजी

३२. (खेड़ापा)
उदयरामजी
प्रेमदासजी

३३. (बीकानेर)
राजूरामजी सू०
धन्नाबाई

३४. (बनाराबास)
सांवतरामजी
सगरामदासजी

चरणदासजी
मुक्तरामजी (केकड़)
तुलसीदासजी
रामसुखजी

(चीतलवाना)
सूरतरामजी
कृपारामजी

खेड़ापा पीठाचार्य [१] श्री रामदासजी महाराज की थाम्भायत शाखा

खेड़ापा पीठाचार्य [१] श्रीरामदासजी महाराजकी थाम्भायत शाखा

खेड़ापा पीठाचार्य [२] श्री दयालुदासजी महाराज की खालशाही शाखा
१. (मथानिया)
भगवानदासजी
प्रीतमदासजी
पुरुषोत्तमदासजी
प्रयागदासजी
मोहनरामजी
२. (पीपाड़ शहर)
तेजरामजी
मुक्तरामजी
मगनीरामजी
शिवरामदासजी
खिमतारामजी
उदयरामजी
(पीपाड़ जवासिया)
भजनदासजी
सीतारामजी
(मादलिया)
शीतलदासजी
शरणरामजी
सादूरामजी
कनीरामजी
३. (सियाट)
विजयरामजी
सुमतिरामजी
बगसीरामजी
गोविन्दरामजी
(जोधपुर सोजती)
जैतरामजी
सहजरामजी
मोहनरामजी
जस्सीरामजी (उ०)
(जोधपुर)
आदूरामजी
(जोधपुर)
चतुरदासजी
(मालास)
खिमतारामजी
४. (बाड़ियां कोषाणा)
उदोतरामजी
(छो.रामद्वारा पीपाड़)
भक्तीरामजी
किशोर दासजी
(रातकूडिया)
मोहनरामजी सू०
(सोजत)
दीनरामजी
५. (बा० रामद्वारा पीपाड़)
देऊबाई
६. (गच्छीपुरा)
गंगारामजी
चतुरदासजी
७. (कीतलसर)
रूपदासजी
देवादासजी
रामसुखदासजी
रामलिगनजी
मुकनदासजी
रामेश्वरबाई
८. (जोधपुर कागड़ी)
रामबगसजी
सुखरामदासजी
कृष्णदासजी
बिहारीदासजी
६. (सामसर गच्छीपुरा)
अलखरामजी
स्वरूपदासजी
रामकृष्णदासजी
लक्ष्मणदासजी
रामेश्वरबाई

खेड़ापा पीठाचार्य [२] श्री दयालुदासजी महाराज की खालशाही शाखा

ड़ापा पीठाचार्य [२] श्री दयालुदासजी महाराज की खालशाही शाखा
राम
खेड़ापा पीठाचार्य [३] श्री पूरणदासजी महाराज की खालशाही शाखा
६. (वीसलपुर)
भगवानदासजी
मथुरादासजी
मंगलदासजी
गंगाबाई
७. (गूंदली)
रामलालजी
बालकरामजी
रामनरायणजी
रामनिवासजी
रामप्रसादजी
(ढसूक)
(अरांई)
गोपालदासजी
रामविलासजी
रामस्वरूपजी
८. (झाकल)
हेमदासजी
मंगनीरामजी
रामेश्वरदासजी
इच्छारामजी
गैबीरामजी
सम्रथरामजी
टीकमदासजी
१६. (खांचोर फलोदी)
सेवादासजी
लिक्षमणदासजी
२०. (अलाय)
केवल दासजी
आत्मा रामजी
घमडी रामजी
२१. (कोटा)
भगवान दास जी
मथुरा दास जी
मंगल दास जी
गंगा बाई
(खेरालू)
विष्णुरामजी
मोहनरामजी
विश्रामदासजी
धनवरदासजी
मुरारीदासजी
(केशरगाँव)
भोलारामजी
१.(जोधपुर, राम महोला)
दामोदरदासजी
रामबगसजी
प्यारारामजी
भीखारामजी
परमलदासजी
हेमारामजी
आत्मारामजी
(जोधपुर बागर)
सहजरामजी
आनन्दरामजी
(जोधपुर)
सीतारामजी
२. (बीकानेर)
हस्तूबाई
(जगाणा)
प्रभुदासजी
शंकरदासजी
(जोधपुर)
लक्ष्मणदास जी
भजनदासजी
(सूरत)
सम्रथरामजी
(सूरत)
जस्सूरामजी
हेमारामजी
आत्मारामजी
(जोधपुर, भावन-भवन)
भावनादासजी
केशवदासजी
कुशालदासजी
सूरतरामजी
कृष्णरामजी
(जोधपुर)
शालिग्राम जी
(पादड़ी, खेड़, ब्रह्मा)
सेवारामजी
आशारामजी

खालशाही शिष्य शाखा-खेड़ापा पीठाचार्य

४. श्री अर्जुनदासजी महाराज

१. (नगर)
कल्याणदासजी
नृसिंहदासजी

२. (बीकानेर)
दुर्गादासजी
चरणदासजी
जय राम दास जी

(बीदासर, दड़ीबा)
बंशीरामजी
हीरांबाई
बालकद्दासजी

३. (पोकरण)
केशवदासजी
बालकदासजी
भजनदासजी
प्रभुदास जी

(खीचन्द)
परमलदासजी

४. (सांचोर)
रमतारामजी

५. (श्री हरलालदासजी महराज)

१ (डीसा केभ्य)
भगवानदासजी
मोतीरामजी
जुत्तीरामजी
मुरारीदासजी

२ (सिरोही)
श्यामदासजी
रमतारामजी
जस्सीरामजी
मगनीरामजी

३ (जोधपुर)
खेतारामजी
(गवैय्या)

६. (श्री लालदासजी महाराज

१ भादरेज
रणछोड़दासजी

२ पीपाड़
केशरबाई
खम्याबाई

७. श्री केवलरामजी महाराज

१ (भोपाल गढ़)
भोलीबाई

८. श्री हरिदासजी महाराज

१ (जोधपुर)
कृष्णाबाई

२ (द्यावड़ी)
जगदीशरामजी

६. श्री पुरुषोत्तमदासजी महाराज

१ (माणसा)
निर्मलरामजी

२ (भोपालगढ़ बासणी चाः)
भजनदासजी

३ (झूठा)
पूनारामजी
रामप्रसादजी

४ (वीलावास)
घनश्यामदासजी

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः॥

वर्णनातीत का वर्णन–

सन्तों की वाणी में आया है कि न जाग्रत् है, न स्वप्न है, न सुषुप्ति है, न तुरीय है; न बन्धन है, न मोक्ष है आदि-आदि। कारण कि ये सब तो सापेक्ष हैं, पर तत्त्व निरपेक्ष हैं। निरपेक्ष भी वास्तव में सापेक्ष की अपेक्षा से है। तत्त्व भी वास्तव में अतत्त्व की अपेक्षा से कहा जाता है; अतः उसको किस नामसे कहें? उसका कोई नाम नहीं है अर्थात् वहाँ शब्दकी गति नहीं है। शब्द से केवल उसका लक्ष्य होता है।

तत्त्व न प्रत्यक्ष है, न अप्रत्यक्ष है; न परोक्ष है, न अपरोक्ष है; न छोटा है, न बड़ा है; न अन्दर है, न बाहर है; न ऊपर है, न नीचे है; न नजदीक है, न दूर है; न भेद है, न अभेद है, न भेदाभेद है; न भिन्न है, न अभिन्न है, न भिन्नाभिन्न है। कारण कि ये सब तो सापेक्ष हैं, पर तत्त्व निरपेक्ष है। जैसे सूर्य में न प्रकाश है, न अँधेरा है और न प्रकाश-अँधेरा दोनों हैं। कारण कि जहाँ प्रकाश है, वहाँ अँधेरा नहीं होता और जहाँ अँधेरा है, वहाँ प्रकाश नहीं होता, फिर प्रकाश-अँधेरा दोनों एक साथ कैसे रह सकते हैं? ऐसे ही तत्त्व में न ज्ञान है, न अज्ञान है और न ज्ञान-अज्ञान दोनों हैं। वहाँ न ज्ञाता है, न ज्ञान है, न ज्ञेय है; न प्रकाशक है, न प्रकाश है, न प्रकाश्य है; न ज्ञान है, न दर्शन है, न दृश्य है; न ध्याता है, न ध्यान है, न ध्येय है। तात्पर्य है कि तत्त्व में त्रिपुटी का सर्वथा अभाव है। कारण कि त्रिपुटी सापेक्ष है, पर तत्त्व निरपेक्ष है। वास्तव में जहाँ स्थित होकर हम बोलते हैं, सुनते हैं, विचार करते हैं, वहीं सापेक्ष और निरपेक्ष की बात आती है; तत्त्व वास्तव में न सापेक्ष है, न निरपेक्ष है।

– परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज की पुस्तक '**सहज साधना**' *से उद्धृत*

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

प्रार्थना–

हे नाथ! हमें आपके चरित्र अच्छे लगें, आपकी लीला अच्छी लगे, आपका रूप अच्छा लगे, आपका धाम अच्छा लगे, आपके गुण अच्छे लगें, आपकी महिमा अच्छी लगे, तो यह आपकी कृपा ही है, हमारा कोई बल नहीं है। आज जो हम आपका नाम ले रहे हैं, आपकी चर्चा सुन रहे हैं, आपमें लगे हुए हैं, यह केवल आपकी ही कृपा है। यह न तो हमारा उद्योग है और न हमारे कर्मों का फल ही है। किसी की ऐसी योग्यता, सामर्थ्य नहीं है कि आपकी कृपा के बिना आपकी तरफ आ सके। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर– जैसे कितने–कितने अवगुण भरे हुए हैं और कैसा वायुमण्डल है! कैसा कलियुग का समय है! ऐसे समय में आपकी तरफ वृत्ति होती है तो यह केवल आपकी कृपा है। आपकी कृपा के बिना जीव अपने बल से आपकी तरफ आ सकता ही नहीं! सन्तों का संग भी आप ही देते हो। प्रेरणा भी आपकी होती है। आप ही ऐसा वायुमण्डल बना देते हो, जिससे आपकी तरफ आने के लिये हम बाध्य, विवश हो जाते हैं! मान में, बड़ाई में, आदर में, प्रशंसा में, रुपयों में, भोगों में, संग्रह में, सुख में, आराम में हमारा मन स्वतः जाता है– यह तो है हमारी दशा! और इस पर भी जो सत्संग मिलता है, आपकी चर्चा मिलती है, आपकी कथा मिलती है तो यह आपकी ही कृपा है महाराज! संसार का चिन्तन तो अपने–आप होता है; क्योंकि ऐसा स्वभाव पड़ा है, पर आपकी चर्चा, आपका चिन्तन आपकी कृपा से ही होता है। आपने ही सद्‌बुद्धि दी है। हमारी दशा तो बेदशा है, पर आप हमारी दशा की तरफ देखते ही नहीं हो, हमारे अवगुणों की तरफ देखते ही नहीं हो। आपकी अपनी कृपा से ही आप मोहित हो जाते हो! अपनी ही कृपा के वशीभूत होकर आप हम–जैसों को भी अपनी तरफ खींचते हो! उस कृपा से ही हम आपकी ओर आते हैं, अपनी शक्ति से, भक्ति से नहीं!

– परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज की पुस्तक **'सब जग ईश्वररूप है'** *से उद्धृत*